विश्वसाहित्य की रूपरेखा

भगवतीशरण उपाध्याय

1957

विश्व साहित्य की रूपरेखा

भगवतशरण उपाध्याय

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण : अक्तूबर, १९५७

मूल्य
बारह रुपये

प्रकाशक : राजपाल एंड संज़, दिल्ली
मुद्रक : नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रंथ की आवश्यकता उसका लेखन प्रारंभ करने से बहुत पहले प्रतीत हुई थी। हिंदी का लेखक प्रायः संसार के सारे साहित्यों के लेखकों से कम पढ़ा-लिखा है। यह दर्द की बात है और मैं यह कहते हुए अपने को भी उसी वर्ग में गिन रहा हूँ। लगा कि इस प्रकार का साहित्य प्रस्तुत कर दिया जाय जिससे दूसरे साहित्यों का ज्ञान हमारे सक्रिय लेखकों को हो और वे जानें कि हमें और बहुत जानना है और कि हमारे समानधर्मो विदेशी साहित्यकारों ने किन-किन परिस्थितियों में कैसी-कैसी कृतियों का सृजन किया है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर प्रायः छः महीने की दिन-रात की मेहनत से इसे प्रस्तुत कर सका हूं। ग्रंथ के सम्बन्ध में किसी प्रकार की मौलिकता का दावा स्वाभाविक ही नहीं करता। मेहनत का दावा ज़रूर करता हूँ क्योंकि बड़ी-बड़ी पुस्तकों को छान-निचोड़कर आखिर ग्रंथ के विविध साहित्यों के इतिहास प्रस्तुत हुए हैं। हां, उस छान-निचोड़ की दिशा में यदि कुछ वैभव बन पड़ा हो तो, पंडितों और लेखकों की तृप्ति से, सुख पाऊंगा। आशा करता हूं कि लेखक ग्रंथ को पढ़ेंगे और विविध साहित्यों से बल प्राप्त करेंगे। इसी उद्देश्य को सामने रखकर पुस्तक लिखी गई है, इसी उद्देश्य से यह लेखकों को ही समर्पित भी हुई है।

'विश्वसाहित्य की रूपरेखा' की पांडुलिपि आज पांच साल से ऊपर हुए तैयार होकर पड़ी थी। आज तक ग्रन्थ क्यों नहीं छप पाया इसकी एक कहानी है, जिसे कहने की ज़रूरत नहीं। वर्तमान प्रकाशकों ने इस बड़े ग्रन्थ को छापकर मेरा और लेखकों का हित किया है।

कहना न होगा कि ग्रन्थ लिखने में मुझे प्रभूत परिश्रम करना पड़ा था, और कार्य खोज के आनन्द से भी संयुक्त न था, निरंतर श्रम का था।

काशी
१६-६-५७

भगवतशरण उपाध्याय

अनुक्रमणिका

१. अंग्रेजी साहित्य

: १ :

ऐंग्लो-सैक्सन साहित्य

(६००-१०६६ ई०)

इस देश के निवासियों के लिए, जो अपना इतिहास सहस्राब्दियों में गिनते हैं, इंग्लैंड का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं। उसके साहित्य का इतिहास तो अपेक्षाकृत नितान्त आधुनिक है। साधारणतः उसका आरम्भ कवि चॉसर[1] से माना जाता है।

आरंभ

परन्तु चॉसर से पहले ही अंग्रेजी साहित्य का जन्म हो गया था, यद्यपि चॉसर पूर्व के छह सदियों के उस साहित्य को कुछ समृद्ध नहीं कहा जा सकता।

अंग्रेजी का उद्भव ऐंग्लो-सैक्सन बोली से छठी सदी ई० में हुआ। इससे पूर्व इंग्लैंड पर ५५ ई० पू० से ४१० ई० तक रोमन्ज़ का अधिकार रह चुका था, फलतः वहाँ लैटिन भाषा का प्रभुत्व था। रोम पर आई आपत्ति के समय जब रोमन्ज़ अपने देश लौट गए तो इंग्लैंड के देशज सैल्ट्स ने अपनी रक्षार्थ जर्मन निवासी जूट्स को निमंत्रित किया जिनके पीछे-पीछे सैक्सन्ज़ और ऐंग्ल्ज़ इंग्लैंड पहुँचे। उनकी भाषा और साहित्य का प्रभाव सातवीं सदी के अंग्रेजी साहित्य पर प्रकट रूप से दिखाई देता है। यह सही है कि उस काल का साहित्य जिस भाषा में प्रस्तुत हुआ वह भी अंग्रेजी कहलाती है, यद्यपि आज हम उसे अपने प्राकृत रूप में नहीं समझ सकते, अनुवाद-रूप में ही पढ़ पाते हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों ने उसे अंग्रेजी मानने में भी आपत्ति की है। परन्तु विशेष अन्तर काल की दूरी ने डाल दिया है और चॉसर-कालीन भाषा-साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में ही चाहे क्यों न हो, हमें उस प्रारंभिक अंग्रेजी साहित्य पर एक नजर डालनी ही होगी। उस प्राक्-चॉसर-साहित्य के निर्माण का संबंध दो विशेष घटनाओं से है। उनमें एक तो छठी सदी ईस्वी में ऐंग्ल्ज़, सैक्सन्ज़ आदि का इंग्लैंड-प्रवेश है, दूसरी ५९७ ई० में ऑगस्टाईन[2] का केन्ट में ईसाई धर्म का प्रचार।

प्राचीन काव्य

जर्मन लोग जहाँ जाते थे, आज ही की भाँति, वे अपनी अनुश्रुतियाँ भी साथ लिये

---

१. Geoffrey Chaucer (१३४०-१४००); २. Saint Augstine (मृ० ६०४)

जाते थे। चॉसर-पूर्व का अंग्रेजी काव्य इन्हीं जर्मन अनुश्रुतियों पर अवलंबित है। यह काव्य तत्कालीन पश्चात्कालीन हस्तलिपियों में इंग्लैंड के अनेक संग्रहालयों में अंशतः आज भी सुरक्षित है। इनमें 'बोवुल्फ' की काव्य-बद्ध कथा विशेष महत्व की है। कथा के रूप में तो 'बोवुल्फ' की अनुश्रुति इंग्लैंड में एंग्ल्ज़ के आगमन के साथ ही पहुँच गई थी परन्तु उसका पद्यांकन सातवीं सदी के अन्त (प्रायः ७०० ई०) में हुआ, जब भारत में हूणों की रौंदी भूमि पर जहाँ-तहाँ राजपूत-राजकुल खड़े हो रहे थे। 'बोवुल्फ' की हस्तलिपि अठारहवीं सदी में जलते-जलते बच गई थी और उसकी सिंकी-तपी प्रति आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। जर्मन काव्य से संबंधित 'वाल्डेयर' नामक काव्य के भी दो अंश पिछली सदी में उत्तरार्द्ध में कोपेनहागेन के राजकीय पुस्तकालय में मिल गए थे।

'बोवुल्फ' की कथा का संबंध इंग्लैंड अथवा एंग्ल्ज़ से नहीं है। जर्मन जाति सदा से अपनी अखंडता में विश्वास करती आई है। इसी से वह इस स्कैंडिनेविया (नॉरवे, स्वीडन, डेनमार्क) संबंधी अनुश्रुति की रक्षा भी कर सकी। कथा अनैतिहासिक है, ग्रेन्डेल नामक उस दैत्य की, जो डेनराज ह्रोथगर की सभा को भयानक रूप से भंग कर दिया करता है और जिसका संहार अपने दल की सहायता से बोवुल्फ नाम का पराक्रमी वीर करता है। काव्य के उत्तरार्द्ध में बोवुल्फ राजा बनकर अग्निदैत्य से अपने देश की रक्षा करता है। निश्चय ही कथा कल्पित जगत् की है, परन्तु उसमें जो वीरों के दरबार, उनका रहन-सहन, आपान आदि का वर्णन है, वह तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। काव्य की पंक्तियाँ अतुकांत और लंबी हैं, किंतु प्रत्येक पंक्ति में अनुप्रास की रवानी है और कवि की भारती तो निःसंदेह विशद है, अंशतः लाक्षणिक भी। वस्तु-नाम उसने साधारणतः चित्र-नाम से अंकित किये हैं। उदाहरणतः समुद्र को वह 'हंस-पथ' और शरीर को 'पंजरालय' कहता है।

यह जर्मन अनुश्रुति-प्रधान काव्य ईश्वरवादी ईसाई धर्म के विश्वासों से सर्वथा मुक्त है, यद्यपि अपने निर्माणकाल में, उस धर्म-प्रचार का समसामयिक होने के कारण, उसमें जहाँ-तहाँ ईसाईवादी विधि-क्रियाओं का उल्लेख हो गया है। उसकी काव्यधारा सशक्त है—महाप्राण, अतीव शालीन, वीरकाव्यसी।

इसी जर्मन परंपरा में कुछ और खण्ड-काव्य या स्फुट कविताएँ हैं, जिनकी वेदना-व्यंजक अनुभूति पाठक के हृदय को छू लेती है। इनमें प्रधान हैं 'दि ड्योर्स लेमेंट', 'दि मेडन्ज़ कम्प्लेंट', 'दि हज़्बैंड्ज़ मैसेज', 'दि रूइन, 'दि वांडरर', 'दि सीफेअरर'। अधिकतर कविताएँ जर्मन सामन्तों के दरबारों की हैं, शक्तिमय वीरकार्यों की।

धर्म-काव्य

इन कविताओं का संबंध तो उस जर्मन जीवन से है जो ऐंग्ल-सैक्सन-जूट्स के साथ

अनुश्रुतियों की परंपरा में इंग्लैंड पहुँचा। इनके अतिरिक्त उस प्राक्-चॉसर-काल में ईसाई धर्म के प्रादुर्भाव ने भी कुछ कम काव्य स्फूर्ति नहीं सिरजी।

छठी सदी ईस्वी के अन्त में आगस्टाईन ने रोम से इंग्लैंड जाकर केंट के जूट्स को ईसाई बनाना शुरू किया। इसी काल आयरलैंड के ईसाई साधुओं ने भी, नॉर्थंब्रिया में अपने मठ बना, प्रचार-कार्य प्रारंभ किया। इसी प्रचार-प्रेरणा से तत्कालीन धर्म-काव्य प्रस्तुत हुए। इनकी कथाएँ तो ईसाई धर्म की थीं, पर वाक्यावली, शब्दयोजना, काव्यप्रवाह सभी कुछ उसी पुरानी जर्मन अन-ईसाई परंपरा का था। ईसाई धर्म के समसामयिक प्रचार में इस नीति ने दूरगामी सफलता पाई। 'अन्द्रियाज़' उसी परंपरा का काव्य है, जिसमें सेंट एन्ड्रू द्वारा सेंट मैथ्यू की रक्षा वर्णित है। इस काल के दो कवि विशेष जाने हुए हैं—कीडमन[1] और 'साइनेवुल्फ[2]। इन्होंने अनेक ईसाई सन्तों की कथा काव्यबद्ध की। 'बाइबिल' की अनेक कथाओं को इन्होंने काव्य का रूप दिया। 'सेंट जुलियाना', 'एलीनी' अथवा 'हेलेन', 'जूडिथ' आदि उस काल की कुछ जानी हुई कृतियाँ हैं। इनमें 'दि ड्रीम ऑफ दि रूड' जहाँ प्राचीन अंग्रेजी काव्यों में कल्पना के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखता, वहाँ 'जूडिथ' (निरंकुश होलोफ़र्निज़ का जूडिथ द्वारा संहार) ऐंग्लो-सैक्सन काव्य-परंपरा में लोमहर्षक वर्णन और अभिनयोचित तथ्य में बेजोड़ है। कीडमन और साइनेवुल्फ के व्यक्तिगत जीवन के आँकड़े हमें उपलब्ध नहीं।

प्राचीन गद्य

यह तो हुई उस काल की काव्य-रचना, पर तब का गद्य-सृजन भी कुछ कम महत्व का नहीं। वस्तुतः उस दिशा के गद्य-प्रयास अनेकार्थ में काव्य से अधिक महत्व के हैं। कम से कम उस काल के अंग्रेज लेखकों और विद्वानों को हम कवियों की अपेक्षा अधिक जानते हैं। शेरबोर्न का बिशप आल्धेलम[3] पहला ज्ञात व्यक्ति है, जिसने इंग्लैंड में अलंकृत लैटिन में गद्य-रचना की। तब की रचनाएँ लैटिन में ही हैं। परन्तु उस काल का महान् पंडित और रचयिता बीड[4] है, जिसने अरबों से आक्रांत यूरोप के इस पश्चिमी द्वीप में संस्कृति का एक प्रशस्त केन्द्र स्थापित किया और जिसके 'दि एक्लेज़ियास्टीकल हिस्ट्री ऑफ दि ऐंग्लज़' (लैटिन में) ने उसके लिए अक्षय कीर्ति अर्जित की। बीड इतिहास, ज्योतिष आदि का प्रकाण्ड विद्वान् था, यद्यपि जैरो के मठ से आए तपोनिष्ठ साधुओं में उसका स्थान विशिष्ट था। बीड के कुछ ही काल बाद डेन्ज़ के आक्रमण शुरू हुए। उन्होंने अंग्रेजी संस्कृति पर विकराल चोटें कीं। परन्तु उन चोटों और अत्याचारों का जनता ने खुलकर सामना भी किया। ऐंग्ल-सैक्सन राजा ऐल्फ्रेड[5] ने अपने देश की रक्षा में स्तुत्य कार्य किया। वह

---

१. Caedmon; २. Cynewulf; ३. Aldhelm (६५०-७०९); ४. Bede (६७३-७३५); ५. King Alfred (८४९-९०१)

केवल सैनिक ही न था; भोज की भाँति वह विद्या-व्यसनी भी था। समर से समय मिलते ही भोज की ही भाँति वह भी भारती का रूप सँवारता। उसने ग्रेगरी महान् के 'पैस्टोरल राइल' का अनुवाद प्रस्तुत किया और बीड के इतिहास का अंग्रेजी रूपान्तर अपनी प्रजा को दिया। उसके किए अन्य अनुवादों में ओरोसियस का 'दि यूनिवर्सल हिस्ट्री' और बोएथियस का 'दि कन्सोलेशन आफ़ फ़िलॉसफ़ी' है। इसी काल उसी नृपति के तत्वावधान में 'दि क्रॉनिकल आफ़ विंचैस्टर' नामक एक राष्ट्रीय इतिहास भी प्रस्तुत हुआ। इससे उस काल के इंग्लैंड के विदेशियों के साथ संघर्ष, तप और त्याग का परिचय मिलता है।

प्रथम लैटिन-इंग्लिश शब्दकोष

इसी डेन-आक्रमण-काल में दो धर्म-गुरुओं ने अत्यन्त निर्भीकता और साहस के साथ अपने उद्गारों और रचनाओं द्वारा अपनी जनता का नेतृत्व किया। ये थे, ईल्फ़िक[१] और वुल्फ़स्टैन[२]। ईल्फ़िक ने पहला लैटिन-इंग्लिश कोष तैयार किया, अंग्रेजी में अपने प्रवचन दिए और मधुर प्रायः गेय गद्य में अपने श्रोताओं को 'बाइबिल' का सन्देश सुनाया। वुल्फ़स्टैन की वाणी देश के शत्रुओं के विरुद्ध उठी और वह अपने राजा ईथेलरेड को भी उसकी कमजोरी और कायरता के लिए विधिवत् धिक्कारने से न चूका। डेन्ज़ के अत्याचारों के बीच उसके अंग्रेजी में दिये प्रवचन वायु में गूँज उठे। उसके 'प्रवचनों' ने जनता में अपने-शत्रुओं के विरुद्ध एक नई स्फूर्ति भर दी।

: २ :

साहित्यिक आदर्श में परिवर्तन

नार्मन विजय से चॉसर तक (१०६६-१३५०)

नार्मन्ज़, जिन्होंने १०६६ ई० में इंग्लैंड को विजय किया, डेन्ज़ के भाई-वंद होते हुए भी, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से फ्रैंच बन चुके थे और फ्रैंच विधि तथा प्रशासन के साथ-साथ वे साहित्य में भी फ्रैंच आदर्शों के प्रवर्तक बने। ऐंग्लो-सैक्सन साहित्य मानों इस द्वीप से लुप्त हो गया। नये मॉडल प्रस्तुत हुए जिनमें 'चॉसन डे रोलेंड' तथा 'रोमन डे ला रोज' का यथेष्ट स्थान है। नार्मन विजय के सौ साल पश्चात् नये साहित्य की रचना होने लगी जिसे 'ऐंग्लो-नार्मन' साहित्य की संज्ञा दी जाती है और जिसे हम ऐंग्लो-सैक्सन और फ्रैंच परंपरा का घोल कह सकते हैं।

इस नई परंपरा में लिखित पहला ग्रंथ 'पोयमा मौरेले' (११७०) था जो पूर्णतः धार्मिक रंग में रँगा है और जिसमें आक्रांत ब्रिटन्ज़ की लाचारी झलकती है। ब्रिटन्ज़ के त्रिलों

---

१. Ælfric २. Wulfstan

में आत्मविश्वास उत्पन्न करनेवाली कृति का सृजन (१२००) लायामन[1] ने किया। लायामन ने वारसे की कृति 'ब्रूट' का अनुवाद प्रस्तुत किया था जिसमें नार्मन्ज़ की बर्बरता का चित्रण है किन्तु उसने अपनी ओर से भी कहानियाँ जोड़ी हैं जिनमें किंग आर्थर की कहानी उल्लेखनीय है।

नार्मन्ज़ के अतिरिक्त और भी बहुत से प्रभाव काम कर रहे थे। अरब जिन्होंने भारत और चीन से बहुत कुछ सीखा था समस्त यूरोप को नये विचारों से ऋद्ध कर रहे थे। क्रूसेड्ज़ (अर्थात् यूरोसेलेम को तुर्कों से छुड़ाने के लिए ईसाइयों ने जो युद्ध किये) ने भी नये विचारों का संचार किया। इसके फलस्वरूप इंग्लैंड में भी स्फूर्ति दिखाई देने लगी। 'कर्सर मुंडी' (१३२०) जो 'न्यू टैस्टेमेंट' की कहानियों का संग्रह है एक अपूर्व ग्रन्थ है। इससे पूर्व १३०३ में रॉबर्ट मानिंग[2] ने फ्रैंच कहानियों का अनुवाद प्रस्तुत किया था जिसका लोक-परक साहित्य में अपना स्थान है। इनके अतिरिक्त, फेबल्ज़ जिन पर पंचतंत्र की कहानियों का प्रभाव दीख पड़ता है प्रचलित हुई। इन कहानियों में 'दि वीपिंग बिच', 'दि फॉक्स एंड दि वुल्फ', 'स्प्रिग टाइम' तथा 'दि सांग ऑफ दि हज़्बेंडमन' प्रसिद्ध हैं।

इस काल के लेखकों में से केवल एक ही लेखक के जीवन-चरित का पता चलता है। वह था रिचर्ड रोल्ले[3] जो पुराने तपस्वी सन्तों और फॉक्स, बुन्यन तथा वेज्ले में संयोजन का काम करता है। इस काल का अन्त लॉरेंस मिनोट[4] से होता है जिसने ऐडवर्ड तृतीय[5] की विजयों का हाल लिखा।

इंग्लैंड में एक नई शैली का उद्भव होने लगा जो व्यंग्य प्रधान थी। इस शैली का रूप 'दि आउल एंड दि नाईटिंगेल' में दिखाई देता है।

लैटिन और फ्रैंच का रोमांस (एक प्रकार का शौर्य काव्य) के प्रभावाधीन इंग्लैंड में 'हेवलॉक' तथा 'हॉर्न' की रचना हुई। इसी प्रभाव के फलस्वरूप आर्थर की गाथायें पुनः जीवित हो उठीं।

: ३ :

अंग्रेजी काव्य

चॉसर और उसके परवर्ती (१३५०-१५१६)

आधुनिक अंग्रेजी काव्य-साहित्य का आरंभ ज्योफ्रे चॉसर से होता है। चॉसर सैनिक, राजनीतिज्ञ और विद्वान् था। मध्य-वर्गीय होने के नाते राज-दरबारों और साधा-

---

१. Layamon; २. Robert Manning; ३. Richard Rolle (ज० १२९०); ४. Laurence Minot; ५. Edward III

रण जनता दोनों के संबंध में उसका ज्ञान असाधारण था। उसने फ्रांस और इटली की यात्राओं में फ्रैंच और लैटिन काव्य-रचना का भी अभ्यास किया था। ओविड और वर्जिल की रचनाएँ उसे कण्ठाग्र थीं। समसामयिक साहित्य का उसे समुचित ज्ञान था। रूपक और दरबारी भावांकनों में उसे विशेष अभिरुचि थी। उसकी प्रारंभिक कृतियों 'दि बुक ऑफ दि डचेज़' (१३६९) और 'दि हाउस ऑफ फेम' से रूपक और मध्यकालीन वस्तु-रचना के क्षेत्र में उसे अच्छी ख्याति मिली। परन्तु उसके वास्तविक कीर्ति-स्तम्भ हैं—'ट्रॉयलस एण्ड क्रिसिडी' (१३८५-८७) 'दि लीजेन्ड ऑफ गुड विमेन' (१३८५) और 'कैन्टरबरी टेल्स'। इनमें अन्तिम रचना चॉसर समाप्त न कर सका था।

'ट्रॉयलस एण्ड क्रिसिडी' इटैलियन कथाकार बोकाचो के 'इल फिलोस्त्रातो' पर अवलम्बित है। पीछे यह शेक्सपियर के इसी नाम के नाटक का आधार बना। यह पद्य-साहित्य में एक प्रकार का उपन्यास है, जिसमें क्रिसिडी के प्रति ट्रॉयलस का प्रणय और क्रिसिडी की उपेक्षा तथा वंचकता अंकित है। रचना का भावतत्व आज की दुनिया में भी नितान्त सार्थक है और इसके चरित्रों की सजीवता आज भी सिद्ध है। इस महान् रचना की अपेक्षा 'दि लीजेन्ड ऑफ गुड विमेन', जिसमें क्लियोपेट्रा, थिस्बी, फिलोमेला, आदि नारियों के प्रणय-विषाद प्रतिबिम्बित हैं, गौण कृति है। इसमें फिर भी रूपकों, लिरिकों आदि की भरमार है।

पर चॉसर का यश विशेषतः 'कैन्टरबरी टेल्स' पर अवलंबित है। कैन्टरबरी जाने वाले तीर्थयात्रियों की कहानियाँ अद्भुत क्षमता और कुशलता से कही गई हैं। वैयक्तिक और सामूहिक दोनों रूपों से ये काव्य-कथाएँ मध्यकालीन मानवता का चित्रण करती हैं। अभाग्यवश 'कैन्टरबरी टेल्स' चॉसर समाप्त न कर सका।

जॉन गॉवर[1] ने भी अपनी रचनाएँ इसी काल में कीं। वह चॉसर का समकालीन था। चॉसर की ही भाँति उसने भी फ्रैंच और लैटिन का ज्ञान प्राप्त किया और अंग्रेजी की ही भाँति उन भाषाओं में भी वह स्वाभाविक अधिकार से काव्य-रचना करता था। उसने भी अपने जीवन काल में ही इतनी ख्याति पाई कि कहते हैं, यदि चॉसर न हुआ होता तो उस काल का प्रतिनिधि कवि गॉवर ही होता।

विलियम लैंगलैंड[2] भी इसी काल हुआ और उसने पश्चिमी बोली में अपनी 'दि विज़न ऑफ़ पीयर्स दि प्लाऊमैन' लिखी। यद्यपि लन्दन की भाषा अंग्रेजी की प्रति-भाषा बनती जा रही थी, फिर भी स्थानीय बोलियों का प्रभाव कुछ कम न था। चॉसर पश्चिमी बोली की कविताओं का विरोधी था। विलियम लैंगलैंड ने इसी बोली में काव्य-रचना की। उसने समसामयिक समाज का अपनी कृति में भरपूर पर्दाफ़ाश किया है। शासन

१. John Gower (मृ० १४०८); २. William Langland (१३३०-१४००)

की दुर्व्यवस्था, धन के अनाचार आदि प्रचुर परिमाण में चौदहवीं सदी की इस असामान्य कृति में प्रतिबिम्बित हैं। लैंगलैंड आधुनिक समाज-शास्त्री की भाँति काव्यतः समाज का विश्लेषण करता है। उसकी धारणा है कि श्रम और ईसाई धर्म की सेवा में ही मनुष्य का कल्याण है। उसने ईसाई-जीवन के आदर्शों से अनुप्राणित अंग्रेजी का सर्वोत्तम काव्य लिखा और उस क्षेत्र में महाकवि दांते के सन्निकट पहुँच गया। लगता है, यदि वह रहस्यवादी न हो गया होता तो निश्चय ही क्रांति का अग्रदूत होता।

पन्द्रहवीं सदी का काव्य-साहित्य सर्वथा नीरस तो नहीं कहा जा सकता परन्तु है वह प्रतीकतः 'परावलंबित'। उस सदी का अधिकतर काव्य चॉसर से अनुप्राणित और प्रकारतः उसी की कृतियों का रूपान्तर है। स्वतन्त्र कृतियों का उस युग में प्रायः अभाव है जिसका एक कारण शायद यह भी है कि चॉसर-सा सुकवि उसका पूर्ववर्ती प्रतीक है। टॉमस ऑक्लीव[1] और जॉन लीडगेट[2] इसी परंपरा के कवि हैं और वह स्टिफ़ेन हॉवैस[3] भी, जिसने 'दि पास्टाइम ऑव प्लेज़र' की रचना की। पन्द्रहवीं सदी के पिछले सपक्ष में जॉन स्कैल्टन[4] नाम का समर्थ कवि हुआ। उसकी कविता में काव्यत्व की कमी है, व्यंग्यात्मकता जहाँ-तहाँ फूहड़ तक है परन्तु परंपरागत काव्य-सौंदर्य के अभाव के बावजूद उसमें एक जनपरक ताजगी है।

स्कॉच कवि

स्काटलैंड में चॉसर का विस्तार अधिक योग्यता से हुआ। 'टैस्टेमेंट ऑफ क्रेसिड' और 'किंगिस क्वेर' उस दिशा में सुन्दर प्रयास हैं। चॉसर का अनुवर्ती होकर भी विलियम डनबर[5] 'टैस्टेमेंट ऑफ क्रेसिड' के रचयिता रॉबर्ट हेनरीसन[6] के विपरीत अपने पैरों पर खड़ा है। मध्यकालीन चारण की भाँति उसकी वाणी तत्कालीन जीवन को मूर्तिमान् करती है। गैविन डगलेस[7] भी इसी परिवार का कवि है और यद्यपि उसकी अपनी स्वतन्त्र कृतियों ने आधुनिक आलोचकों को विशेषतः प्रभावित नहीं किया, फिर भी उसका वर्जिल का अंग्रेजी अनुवाद निःसंदेह सत्य है। स्कॉटलैंड के नृपति जेम्स प्रथम[8] की काव्य-मेधा उस काल सजग थी और उसके 'किंगिस क्वेर' में राज-रचना का एक नमूना हमें उपलब्ध है।

---

१. Thomas Occlieve (१३७०-१४५४); २. John Lydgate (१३७३-१४५०); ३. Stephen Hawes (१४७५-१५३०); ४. John Skelton (१४६०-१५२९); ५. William Dunbar (१४६०-१५२०); ६. Robert Henryson (१४२५-१५००); ७. Gavin Douglas (१४७५-१५२२); ८. James I (१३९४-१४३९)

इटैलियन प्रभाव (१५१६–१५७५)

सोलहवीं सदी के मध्य इटली का सर्वगामी प्रभाव इंग्लैंड के साहित्य पर भी पड़ा। वियाट[1] और सरे[2] ने 'टोटेल्स मिसेलिनी' (१५५९) के नाम से कविता-संग्रह प्रकाशित किया। लार्ड सरे को कामुक राजा के कोप का शिकार बन तीस वर्ष की आयु में ही सिर कटाना पड़ा। वियाट ने चौदह पंक्तियों के इटैलियन सॉनेट को अंग्रेजी रूप में सजाया। इस सॉनेट-निर्माता अंग्रेजी कवि का काव्य-संस्कार संकर और बोझिल होता हुआ भी अपनी विशेषता रखता है। सरे की काव्य-धारणा अधिक स्वाभाविक है। उसने वर्जिल के 'ईनिड' के दूसरे और चौथे खंडों का अंग्रेजी ब्लैंक वर्स में अनुवाद किया। सरे को इसका गुमान भी न था कि जिस मुक्त छन्द का प्रयोग उसने पहले-पहल किया वह कालान्तर में अंग्रेजी छन्द-परंपरा में इतने महत्व का सिद्ध होगा। उसी परंपरा का उपयोग अंग्रेजी के जगद्विख्यात् कवि मारलो और शेक्सपियर दोनों ने किया। मिल्टन, कीट्स और टैनिसन तीनों सरे के छन्द-विन्यास से प्रभावित हुए।

वियाट और सरे दोनों स्वयं पैट्रार्क से प्रभावित थे और एलिजाबेथ-युग के प्रायः सभी कवियों ने पैट्रार्क की ही उन प्रणय-चेष्टाओं का अनुकरण किया जिनकी दाय उनको वियाट और सरे द्वारा मिली थी। सॉनेट की परंपरा का शेक्सपियर, सिडनी आदि ने भी अनुसरण किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि शेक्सपियर और सिडनी दोनों ने पहले उस प्रणाली का मजाक उड़ाया मगर दोनों उसके शिकार हो गये। सॉनेट की शैली अंग्रेजी में अमर होकर रही। एलिजाबेथ-युग में तो उसका प्रचार रहा ही, बाद के युगों में भी १४ पंक्तियों की वह कविता-शैली कवियों द्वारा अपनायी जाती रही। स्वयं मिल्टन ने सॉनेट का प्रयोग किया, यद्यपि उसने परंपरा के अनुकूल उसका उपयोग प्रणय-संबंधी अभिव्यक्ति में नहीं किया। जनतान्त्रिक टिप्पणियों में उसे सॉनेट का साहाय्य अत्यन्त शक्तिप्रद सिद्ध हुआ। स्वयं वर्ड्स्वर्थ ने इंग्लैंड को प्रमाद से मुक्त करने और नैपोलियन को धिक्कारने के लिए सॉनेट को ही उपयुक्त समझा। कीट्स का "चैपमैन्स होमर' सॉनेट की ही पद्धति में लिखा गया। १९वीं सदी में मैरेडिथ ने भी अपनी कविता 'मॉडर्न लव' में प्रेम के विश्लेषण के लिए सॉनेट का ही प्रयोग किया और रोसैट्टी ने भी घूम-फिरकर दांते और पैट्रार्क के ही सॉनेट को काव्याभिव्यक्ति के लिए उचित समझा। इस प्रकार, यद्यपि वियाट और सरे की कविता स्वयं इतनी महत्व की न हुई, परन्तु उसे व्यक्त करने के लिए जिस 'सॉनेट' काव्य-प्रणाली का उन्होंने प्रयोग किया वह निश्चय ही अगले युगों में अंग्रेजी काव्य का सौंदर्य बन गई।

---

१. Sir Thomas Wyatt (१५०३-४२); २. The Earl of Suarey (१५१७-४७)

: ४ :

पुनर्जागरण-युग

(१५७८–१६२५)

ऐडमन्ड स्पैन्सर[1] काव्य-कला का पण्डित माना गया है। केम्ब्रिज में पढ़ते समय ही उसने अपने गुरुजन और सहपाठियों पर गहरा असर डाला। उसके व्यक्तित्व का प्रभाव सर्वत्रपड़ा और शीघ्र ही लीसेस्टर के अर्ल ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया वह बराबर आयरलैंड में रहा और वहीं से उसने अपनी कविताओं की दो जिल्दें प्रकाशित कीं—'दि शेपर्ड्स कैलेन्डर' और 'दि फेयरी क्वीन'। स्पैन्सर अंग्रेजी भाषा का संस्कर्त्ता माना जाता है। अंग्रेजी में वह होमर और वर्जिल की वीर-काव्य-परंपरा स्थापित करना चाहता था जिसमें शब्द-गाम्भीर्य और काव्य-शालीनता नये रूप से अभिव्यक्त हों। अनेक बार उसने ऐसी काव्य-कहानियाँ लिखीं जिनमें कथा-वस्तु क्लासिकल पृष्ठभूमि पर खड़ा हुआ। दरबार को उसने अपनी काव्य-प्रतिभा से विशेषतः आकृष्ट किया। 'फेयरी क्वीन' में तो उसने स्वयं रानी एलिजाबेथ को नायिका बना दिया। परन्तु उसकी काव्य-मेधा अभिजात-कुलीय दरबार तक ही सीमित न रह सकी और उसने उसके पार साधारण मानव के अज्ञान, अंध-विश्वासों और कमजोरियों पर भी अपनी तीखी निगाह डाली, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि दरबारी परंपरा के बाहर भी उसका कृतित्व उतना ही सार्थक हुआ जितना राज-सभा की अभिव्यंजना में। हाँ, इतना जरूर है कि उसके कृतित्व में 'रेनेसांस' और सावधि युगों का समान रूप से योग मिला। वस्तुतः वह पुनर्जागरण-युग और आधुनिक काल की संधि पर खड़ा हुआ है।

उसकी रचना में शब्द का माधुर्य अमिट है और, यद्यपि काल की गति ने उसकी कृतियों के कथानकों को आज निःशक्त बना दिया है, फिर भी उसके काव्य की अभिव्यंजना, कल्पना की सुचारुता और शब्दों का संगीत इस काल भी अपना प्रभाव रखते हैं। 'शेपर्ड्स कैलेंडर' में पुराण-पन्थिता का प्रचुर-पुट है, फिर भी कविताओं का रूप काफी मनोरम है। 'फेयरी क्वीन' ने स्पैन्सर के बाद के अधिकतर अंग्रेज कवियों को आकृष्ट किया है। आज उसकी भी सत्ता कमजोर पड़ गयी है, परन्तु एक समय था जब काव्य-कल्पना में उसका विशेष महत्व था। एलिजाबेथ के युग से ही 'फेयरी क्वीन' का कथानक पुराना और अस्पष्ट हो चला था, परन्तु उस काल इस काव्य का रूपक लोगों को मोह लेता था। आज की दुनिया में 'फेयरी क्वीन' का संसार मनुष्य का वह यथार्थ चित्रण हमें नहीं दे पाता जो चॉसर और शेक्सपियर दोनों की

1. Edmund Spencer (१५५२-९९)

अमित शक्ति। मध्यकालीन जीवन का फिर भी एक सबल रूप स्पैन्सर की कृतियों में उपलब्ध है।

एलिजाबेथ-युग की वास्तविक और सुन्दर कविता ने नाटक का रूप लिया और यह मानी हुई बात है कि स्पैन्सर को छोड़कर कविता के क्षेत्र में कोई कवि मार्लो[1] और शेक्सपियर[2] का मुकाबला नहीं कर सका। एलिजाबेथ के नाटककार नाटक के क्षेत्र के बाहर अपनी काव्य-सम्पदा में भी कुछ कम चमत्कार उत्पन्न नहीं करते, यद्यपि उनका प्रधान ध्येय नाटक है। मार्लो का 'हीरो एण्ड लीयन्डर' शेक्सपियर के 'वीनस एण्ड एडो-निस', 'रेप ऑफ लुक्रीस', और विविध सॉनेट, और बैन जान्सन[3] के अनेक लिरिक उस युग की काव्य-सम्पदा का हमें परिचय देते हैं। उस काल छोटी-बड़ी सब तरह की कविताएँ लिखी गयीं। माइकेल ड्रेटन[4] की कृतियों में कविता की अनेकरूपता का भंडार प्रस्तुत है। इटैलियन रोमांस की धारा तो उसे न छू सकी, पर स्वयं उसने कविता की अनेक प्रणालियों का प्रयोग किया। ड्रेटन की कृतियों में 'दि बैरन्स वर्स', और 'पोल्योल्बियन' भारी-भरकम कविताएँ हैं, जिनमें वह इंग्लैंड की अनुश्रुतियाँ, जन-विश्वास, भौगोलिक वर्णन आदि प्रस्तुत करता है। परन्तु इनके अतिरिक्त भी उसने कुछ ऐसी कविताएँ छोड़ी हैं जिनकी भाव-सम्पदा और सुकुमारता असाधारण है। 'निम्फीडिया' परी-साहित्य का एक सुन्दर नमूना है और 'बैलेड ऑफ एजिनकोर्ट' तो अंग्रेजी काव्य-साहित्य पर अपनी गहरी छाप छोड़ गया है।

ड्रेटन की ही परंपरा में सेमुएल डेनियल[5] ने भी लिखा। 'वार ऑफ दि रोज़िज़ (लैंकास्टर और यार्क के गृह-युद्धों का इतिहास) उसने पद्य में लिखा, परन्तु उसकी महत्ता वस्तुतः 'एपिस्सटल्स' की-सी उसकी कविताओं में है, जिनका प्रभाव वर्ड्सवर्थ पर काफी पड़ा। ये कविताएँ वर्णनात्मक इतनी नहीं जितनी चिन्तनशील हैं।

एलिज़ाबेथ-काल की लम्बी कविताएँ अपने ऐतिहासिक भार से पाठक को उबा देती हैं, परन्तु उस काल के गीत और लिरिक अपने प्रभावों में आज सदियों बाद भी ताजे हैं। स्वयं शेक्सपियर ने अपने नाटकों में जहाँ-तहाँ इन गीतों का उपयोग किया है जो हृदय को छू लेते हैं। इस प्रकार की गेय कविताओं के क्षेत्र में जॉन डॉन[6] अनुपम है। वह स्वयं रूमानी प्रवृत्ति का व्यक्ति था—प्रणयी, राज-सभासद्, सैनिक—उसका जीवन विविध स्थितियों से होकर गुजरा। फलतः उसका चित्त अस्थिर और जागरूक था। उसने पढ़ा बहुत और सोचा भी काफी अतः उसके विचारों में तीव्रता काफी थी। उसकी अनुभूति

---

१. Christopher Marlowe (१५६४-९३); २. William Shakespeare (१५६४-१६१६); ३. Ben Jonson (१५७३-१६३७); ४. Michael Drayton (१५६३-१६३१) ५. Samuel Daniel; ६. John Donne (१५७२-१६३१)

उसके हृदय पर असाधारण प्रभाव डालती थी, परन्तु उसकी मेधा उसके प्रणय को भी चिन्तनशील दर्शन का रूप दे देती थी। वह सौंदर्य के आकार को देखता-समझता है। परन्तु उसके आधार को भौतिक पंजर अथवा शव मानता है। प्रणय और चिंतन दोनों का जॉन डॉन की काव्य-स्थिति में अद्भुत ऊहापोह है। कुछ अजब नहीं कि सेन्टपाल का डीन होने के बाद युवावस्था में ही अपने आवेगमय जीवन के आवेगों के कारण ही उसने अपना अन्त कर लिया था।

जॉन डॉन अपने समय का क्रांतिकारी कवि है। वह पारंपरिक पद्य के रूप को स्वीकार नहीं करता, न पुरानी उपमाओं को ही स्वीकार करता है। पेट्रार्क के अनुयायी सॉनेट लिखनेवालों की उपमाओं को वह तत्काल त्याग देता है, यद्यपि उसकी अपनी उपमाएँ स्वयं अनोखी हैं। प्रसिद्ध डाक्टर जॉनसन ने कालान्तर में जॉन डॉन और उसकी प्रणाली को मैटाफिजिकल (भौतिक अनुभूति से परे) कहा, क्योंकि उसकी कविताओं में विरोधी भावनाओं का समरूप में उपयोग हुआ। जॉन डॉन की पद्धति अनेक बार सूत्रवत् हो जाती है। डॉन का प्रभाव सत्रहवीं सदी के धार्मिक कवियों पर बहुत गहरा पड़ा। जार्ज हर्बर्ट[१] उनमें विशेष प्रसिद्ध है। अपनी कविता 'दि टैम्पल' में उसने धार्मिक अनुभूति का सुन्दर वृतान्त उपस्थित किया। हेनरी वॉन[२] रहस्यवादी कवि हुआ जिसने 'रिट्रीट' और 'आई सॉ इटरनिटी दि अदर नाइट' नाम की महत्वपूर्ण कविताएँ लिखीं। रिचर्ड क्राशॉ[३] इस वर्ग का तीसरा कवि है, जिसकी कविता 'स्टैप्स् टु दि टैम्पल' विशेष महत्व की मानी जाती है।

टॉमस कैरो[४] ने 'कवेलियर' कवियों का प्रारंभ किया। उसकी शैली में काफी भावुकता है और संग्रहों में उसके प्रेम संबंधी लिरिकों के उदाहरण उपलब्ध हैं। 'दि रैपचर' नाम की उसकी कविता में श्रृंगार का प्रायः नग्न वर्णन हुआ है, जिससे आलोचकों ने उसकी तीव्र आलोचना की है। इस कवेलियर काव्य-परंपरा में ही सर जॉन सर्कलिंग[५] भी हुआ जिसने जब-तब उस परंपरा को छोड़कर विचारशील काव्य की भी रचना की। रिचर्ड लवलेस[६] कैरो या सर्कलिंग का-सा मेधावी तो न था, पर उसने भी कुछ सुन्दर गीत लिखे। इस परंपरा से गीतकार रॉबर्ट हैरिक[७] कुछ विशेष दूर न था, यद्यपि उसे कवेलियरों में नहीं गिना जाता। वह बैन जॉन्सन का शिष्य था और अपनी कविता उसने डेवेनशायर में लिखी। १६४८ ईस्वी में 'हेस्पराइडीज़' में उसकी हज़ार से ऊपर कविताओं का संग्रह

---

१. George Herbert (१५९३-१६३३); २. Henry Vaughn (१६२२-९५); ३. Richard Crashaw (१६१२-४९); ४. Thomas Carew (१५९७-१६३९); ५. John Suckling (१६०९-१६४२); ६. Richard Love Lace (१८१८-५८); ७. Robert Herrick (१५९१-१६७४)

प्रकाशित हुआ। विषाद की छाया उसके लिरिकों में काफी पड़ी है और उसका शब्द-चयन तो निश्चय ही अनूठा है। उसकी कविताओं में इंग्लैंड का ग्राम्य जीवन मूर्तिमान् हो उठा है। उसके लिरिक प्रेम और कल्पना प्रधान हैं, उनका प्रवाह सरल और सहज है और सीमित क्षणभंगुर आनन्द के प्रति उनकी अभिव्यक्ति हृदयग्राहिणी है। हैरिक के जीवन के प्रति इस दृष्टिकोण में उसका एकान्तवास भी सहायक हुआ। उसके विपरीत एन्ड्रू मार्वेल[1] प्रवाहित जीवन का सबल सुकवि है। उसने क्रॉमवेल और चार्ल्स द्वितीय-काल के इंग्लैंड का मनोहारी वर्णन किया है। प्यूरिटन होने के कारण उसकी कविताएँ व्यंग्य और शब्द—प्रहारों से भरी हैं। इस रूप में उसकी यह कविताएँ अपनी उन पूर्ववर्त्ती कृतियों के विपरीत पड़ती हैं, जो मधुर और सरल थीं।

: ५ :

पुनर्जागरण-युग का अन्त

(१६२५–१७०२)

सत्रहवीं सदी इंग्लैंड के इतिहास में विशेष महत्व की है। गृह-युद्ध ने उस देश में एक नयी परंपरा स्थापित की, जिसने जनतन्त्र के विकास में बड़े महत्व के परिवर्तन किये। विज्ञान और तर्कवाद नयी शक्ति धारण कर रहे थे और व्यापार तीव्र गति से एक नई विज्ञानानुमोदित क्रांति की ओर बढ़ चला था। डॉन ने उसी नयी चेतना का अपनी विकल कविताओं द्वारा परिचय दिया। मिल्टन[2] उसी सदी के आरंभ में उत्पन्न हुआ और उसने उस काव्य-सम्पदा को सिरजा जो अंग्रेजी साहित्य में अमर हो गयी।

जॉन मिल्टन इंग्लैंड के महान् कवियों में है। यदि हम नाट्य-परंपरा के कवियों से उसे अलग कर दें तो निश्चय ही उसकी शालीनता अनुपम है। उसने ख्याति भी अपनी काव्याभिसृष्टि के गौरव के अनुकल ही पायी है। गृह-युद्ध के पहले की उसकी कविताओं में 'कोमस' प्रधान है। उसकी प्रारंभिक कविताएँ सन् १६४५ में संग्रहीत हुईं। मिल्टन को जो केवल कवि के रूप में जानते हैं, उनको पता नहीं कि अपने निबन्धों में उस महाकवि ने गद्य का कितना प्रखर रूप सिरजा है। गृह-युद्धों के अवसर पर उसने जिस गद्य-धारा का सृजन किया वह उस काल के अंग्रेजी साहित्य में अनुपम है। मिल्टन अंग्रेजी साहित्य का प्रायः पहला पैम्फलेटियर है जिसने कलम का उपयोग जन-संघर्ष के पक्ष में किया। क्रॉमवेल के नेतृत्व ने उसमें मानवता के विजयी भविष्य के प्रति अद्भुत निष्ठा और आशा जगा दी थी। उसी संघर्ष की कटुता और मानवता के प्रति सजग निष्ठा ने जीवन के अंतिम सालों में दृष्टिहीन, प्रायः निराश, मिल्टन को अपना वह अद्भुत वीर काव्य लिखने को बाध्य

१. Andrew Marwell (१६५१-१६७८); २. John Milton (१६०८-७४).

किया जो 'पैराडाइज़ लॉस्ट' और 'पैराडाइज़ रिगेन्ड' के नाम से जगत् में विख्यात हुए। इनमें पहला काव्य-खंड सन् १६६७ में प्रकाशित हुआ, दूसरा चार वर्ष बाद सन् १६७१ में।

मिल्टन ने जीवन के भीतर संघर्ष की जो व्यवस्था पायी, वह निश्चय ही तत्कालीन एतिहासिक स्थिति का प्रतिबिम्ब थी। 'कोमस' में उसने उसी अन्तस्संघर्ष की व्याख्या की। मिल्टन की सभी कृतियों में 'कोमस' आज विशेष लोकप्रिय है। इसी प्रकार "पैराडाइज़ लॉस्ट' में ईव और एडम संघर्ष करते हैं, जैसे क्राइस्ट सेटन के विरुद्ध 'पैराडाइज़ रिगेन्ड' में संघर्ष करता है और सैमसन 'एगोनिस्टस' में मिथ्या मतों के विरुद्ध। 'पैराडाइज़-लॉस्ट' सब युगों के लिए महान् कृति है। एडम और ईव, मुमकिन है, हमारे आज के जीवन में महत्व न रखते हों, परन्तु मिल्टन के शैतान का विद्रोह निश्चय ही एक जीवित परंपरा है, जिसमें हम सदा साँस ले सकते हैं। मिल्टन न केवल प्यूरिटन सम्प्रदाय का, वरन् विश्व साहित्य का, एक महान् कृतिकार है।

सैमुएल बटलर[1] प्यूरिटनवाद का सबसे बड़ा तत्कालीन प्रतिवादी है। जहाँ मिल्टन ने प्यूरिटनवाद को सुन्दरतम चित्रित किया वहाँ बटलर ने उसे अपने व्यंग्यात्मक काव्य 'हूडीब्रास' में मिथ्यावाद का मूर्तिमान स्वरूप कहा। बटलर मिल्टन के प्यूरिटनवाद का इस प्रकार सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी हुआ। बटलर का यह भाण वास्तव में अपनी भणैती की नग्नता में मिल्टन की शालीनता का ठीक जवाब है। मिल्टन, कहते हैं, अपने जीवन-काल में जनता में अप्रिय हो गया था, यद्यपि इसके लिए विशेष प्रमाण नहीं मिलता। वस्तुतः उसके जीवन काल में ही उसकी कृतियाँ श्रद्धा से पढ़ी गयीं और १८वीं सदी में तो उसका अनुकरण भी काफी हुआ। इसमें फिर भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि मिल्टन की काव्य-धारा क्लिष्ट है और उसमें लैटिन और ग्रीक सन्दर्भों की भरमार है। 'ल'अलेग्रो' और 'इल पेन्सरेसो' उस शैली के सिद्ध प्रमाण हैं। मिल्टन की पद्धति के विरोधी कवियों ने हीरोइक कपलेट का प्रयोग किया, जिसे कवि पोप ने विशेष महत्व देकर प्रसिद्ध किया।

इस हीरोइक पद्धति में भाषा के प्रवाह और सरलता को विशेष महत्व दिया गया। प्रसाद उसका विशेष गुण हुआ। इस प्रकार के छन्दपरक आन्दोलन का प्रथम प्रवर्तक एडमन्ड वालेर[2] और सर जॉन डेनहम[3] हुए। इनके आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि क़ाव्य की विकृत और क्लिष्ट भाषा आशुगम्य और सहज बन गयी। विषय और उसकी अभिव्यक्ति दोनों में सरल समानता दृष्टिगोचर हुई। डेनहम की प्रसिद्ध कविता 'कूपर्स हिल' को जान ड्राइडन[4] ने जो इतना सराहा वह उसके सहज प्रवाह के कारण ही।

जॉन ड्राइडन—नाटककार, आलोचक और अनुवादक—स्वयं इस पद्धति का

---

१. Samuel Butler (१६१२-८०); २. Edmund Waller (१६०६-८७)
३. John Denham (१६१५-६९); ४. John Dryden (१६३१-१७००)

प्रधान व्याख्याता था। सुन्दर प्रभावशाली वाक्यावली से अलंकृत, सुष्ठ, सरल कविता लिखना उसकी कला का अन्तरंग गुण था। ड्राइडन ने अपनी कृतियों द्वारा बड़ी कीर्ति कमाई है, यद्यपि अंग्रेज जाति ने उसे इतना महत्व न दिया। समकालीन घटनाओं को अपनी कविता में मूर्त्त कर ड्राइडन ने काव्य-क्षेत्र में उस काल का एक नया प्रयोग किया। उसका 'एनस मिराबिलिस' डच-युद्ध और लन्दन के अग्नि-संहार का काव्य-रूप है। शैफ्ट्सबरी के षड्यन्त्रों और मन्मथ की कृतघ्नता ने उसके 'एबसालोम एण्ड एचिटोफेल' में अपनी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति पायी। इसी प्रकार उसकी अन्य कविताएँ भी समकालीन राजनीतिक और धार्मिक प्रवृत्तियों की पोषक हैं। ड्राइडन ने वर्जिल, जुवेनल, ओविड और चॉसर के अनुवाद किये। उसने गद्य का भी रूप निखारा। फेबल्स की भूमिका में जिस गद्य का उसने प्रयोग किया वह उस क्षेत्र में अनुपम है।

: ६ :

क्लासिकल काव्य

(१७०२–१७७०)

व्यंग्य

अलैग्ज़ैन्डर पोप[१] अंग्रेजी साहित्य का सबसे बड़ा व्यंग्य-कवि है। व्यंग्य को उसने अपनी कला से आलोकित कर एक विशिष्ट रस के रूप में प्रस्तुत किया। उसके आलोचकों ने उसे अनेक प्रकार से जाँचा है परन्तु अधिकतर उस पर चोटें ही पड़ी हैं। उसके व्यंग्य को साधारणतः लोगों ने अन्यायनिष्ठ माना है। जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि पोप कलाकार था। अंग्रेजी भाषा में उसका स्थान क्लासिकल कवि के सन्निकट है। उसके दृष्टि विस्तार की कुछ सीमाएँ निश्चित हैं। पोप में सेवा और त्याग की भावना मिल्टन की ही भाँति प्रबल थी। 'ऐस्से ऑन मैन' में उसने पद्य में अपने अध्यात्म का रूप रखा। परन्तु निश्चय ही आध्यात्मिक साहित्य में उसके दृष्टिकोण की विशेषता नहीं। उसका महत्व साहित्य में व्यंग्य कृति उत्पन्न करने में है। 'दि रेप ऑफ द लॉक' में उसने १८वीं सदी के समाज का जो चित्र खींचा है, वह व्यंग्य के रूप में बड़े महत्व का है। 'डन्सियाड' में उसने प्रमाद और निष्क्रियता का बुरी तरह मज़ाक उड़ाया है और समसामयिक मूर्खों का जो रूप उसने उसमें प्रस्तुत किया है वह नितान्त हास्यास्पद है। उसकी अपेक्षाकृत छोटी कृतियाँ तो और भी सुन्दर हैं। 'दि एपिस्सटल टु डाक्टर आर्बुथनौट' इस दिशा में सुन्दर दृष्टांत के रूप में रखा जा सकता है। स्पोरस अथवा लार्ड हर्वी के व्यंग्य चित्र अत्यन्त आकर्षक हैं। इसमें ऐडिसन पर भी उसकी चोट काफी गहरी है।

---

१. Alexander Pope (१६८८-१७४४);

पोप ने व्यंग्यात्मक काव्य के अतिरिक्त दूसरी कविताएँ भी लिखी हैं जिनमें होमर के अनुवाद के अतिरिक्त 'पेस्टोरल्स' और 'विन्डसर फॉरेस्ट' महत्व की हैं। होमर की कृति का उसका अनुवाद तो काफी पढ़ा गया है, यद्यपि उसकी अनुवाद-शैली की आलोचकों ने कटु आलोचना भी की है। अनुवाद में जो उसने अलंकरण की बहुलता उपस्थित कर दी है उससे उसके प्रति आलोचना की कटुता भी बढ़ गई है। उसकी रूमानी प्रवृत्ति का विशेषतः 'एलोयसा टु एबेलार्ड' और 'एलिजी टु दि मेमॅरी ऑफ ऐन अनफॉरचुनेट लेडी' में होता है।

अलैग्ज़ैन्डर पोप ने अपने परवर्ती काल के साहित्य पर कुछ कम प्रभाव नहीं डाला। उसके अनुयायियों में विशिष्ट सैमुएल जॉन्सन[1] और ऑलिवर गोल्डस्मिथ[2] हुए, यद्यपि अपनी कला में दोनों उससे काफी भिन्न हैं। सैमुएल जॉन्सन ने अधिकतर गद्य ही लिखा, यद्यपि उसके दो व्यंग्य 'लन्दन' (सन् १७३८) और 'दि वैनिटी आफ ह्यूमन विशेज़' (सन् १७४९) उसकी व्यंग्यात्मक शक्ति को प्रचुरता से प्रदर्शित करते हैं। गोल्डस्मिथ के काव्य पर एक सामाजिक छाप है। 'ट्रैवलर' (सन् १७६४) और 'डिज़र्टेड विलेज' (सन् १७७०) में गोल्डस्मिथ ने इंग्लैंड और आयरलैंड की सामाजिक और आर्थिक कुरीतियों का चित्रण किया है। समसामयिक सामाजिक स्थिति को समझने और व्यक्त करने की उसमें पोप से कहीं बढ़कर शक्ति थी। उसकी शैली चॉसर की कला के अनुकूल थी, और उसकी अभिव्यक्ति में भावों का सम्मिश्रण असाधारण हुआ।

पोप और उसके अनुयायियों ने अपनी कृतियों पर समकालीन समाज की छाप डाली। १८वीं सदी के कवियों की एक विशेषता प्रकृति-पर्यवेक्षण की रही है। जेम्स टॉमसन[3] इस प्रकार का सम्भवतः पहला कवि है जिसने प्रकृति का आमूल वर्णन किया है। 'सिक्स सीजन्स' नाम की उसकी कृति ऋतुओं का चित्रण करती है जो कालिदास के 'ऋतुसंहार' की भाँति प्रकृति संबंधी स्वतन्त्र काव्य है, यद्यपि दोनों की प्राकृतिक संवेदना में न केवल मात्रा का बल्कि गुण का भी अन्तर है। 'सीजन्स' नाम की यह कविता बड़ी लोकप्रिय हुई। यह है भी बड़ी सरल; प्रायः १०० वर्षों तक इंग्लैंड के कविता-पाठकों पर उसका अधिकार बना रहा। साधारण जीवन, गरीबी आदि के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति विशेष लोकप्रियता का कारण हुई। इसी कारण जो लोग पोप की प्रतिभा के समक्ष नहीं टिक पाते थे उन्होंने भी टॉमसन की सादगी को सराहा; थी भी प्रकृति-अंकन की उसकी कला सर्वथा मौलिक जो प्रकृति के प्रति लोगों की बढ़ती हुई अभिरुचि को समृद्ध करती गई।

---

१. Samuel Johnson (१७०९-८४); २. Oliver Goldsmith (१७२८-७४); ३. James Thomson (१७००-४८);

भावुकता

तब के इंग्लैंड में एक नयी मानवता का उदय हो रहा था। व्यवसाय ने एक धनी और संतुष्ट वर्ग उत्पन्न कर दिया था जो मनुष्य के प्रति दया और सहानुभूति की प्रेरणाओं से आकृष्ट हुआ और, यद्यपि उसने अपने स्वार्थ के अर्जन में कभी कमी न की, अपनी अभिरुचि की उसने परिधि निश्चय ही बढ़ा दी। मानव-चित्त में एक प्रकार का विद्रोह उदित हो रहा था और उसका संबंध निरन्तर बढ़ते हुए जनान्दोलनों से होता जा रहा था। व्यापार, जो निरन्तर समाज को धनी और कंगाल—दो स्पष्ट भागों में विभक्त करता जा रहा था, मानवता के प्रति इस नयी सहानुभूति का विशेष कारण बना। अनेक साहित्यकारों ने उस काल की परस्पर विरोधी तथा मानवता-प्रेरित प्रवृत्तियों का अपनी कृतियों में अंकन किया। विलियम काउपर[1] ने अपनी कृति 'जॉन गिल्पिन' में इसी प्रकार की प्रवृत्तियों और अनुभूतियों का प्रदर्शन किया। काउपर के 'लेटर्स' अंग्रेजी भाषा के सर्वोत्तम नमूने हैं। उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'टास्क' है जिसमें कवि नगरों से दूर देहात की दुनिया में घूमता है और बड़े सहज भाव से गाँव के दृश्य प्रस्तुत करता है। उस काल के कवियों ने तर्कवाद के विरोध में बहुत कुछ लिखा। परन्तु कुछ को इसी कारण तर्कवाद और न्याय-सम्मत जीवन के लोप का भी अंदेशा हो आया। काउपर भी उन्हीं में था और उसने अपनी सशक्त कविता 'कास्ट अवे' में अपने उसी भय का मूर्तन किया।

इस भय ने १८वीं सदी के कृतित्व को काफी कलुषित भी कर दिया। फलतः एक अद्‌भुत कष्टकर कायिक चेतना कवियों के एक वर्ग में उत्पन्न हुई। विषाद की एक विचित्र अनुभूति का उन्होंने अनेकतः अंकन किया। विषाद प्रेरित काव्य 'एलेजी' का इसी कारण अनेकतः अंकन उदय हुआ। बहुत कुछ तो हिन्दी के आधुनिक छायावाद की भाँति विषादमय कविता लिखना उस काल का फैशन हो गया था परन्तु, चाहे रीतिवत् ही क्यों न हो, कुछ कवियों का तो इसने जीवन ही अपनी शक्ति से प्रभावित कर दिया। इनमें 'एलेजी' का रचयिता टॉमस ग्रे[2] विशेष प्रसिद्ध हुआ। होरेस वालपोल के साथ अपनी तरुणावस्था में ग्रे ने यूरोप के समृद्ध और सुखी जीवन का काफी अनुभव किया था। परन्तु १८वीं सदी के केम्ब्रिज के उसके पिछले जीवन ने उसे शिथिल कर दिया। विषाद की एक लहर जैसे उसके रोम-रोम में बहकर भिन गयी जिसने उसकी कृतित्व-शक्ति शिथिल कर दी। अपने समय के यूरोप के प्रसिद्ध विद्वानों में टामस ग्रे भी एक था। उसने अपनी कविताओं में नयी रुचियों का समावेश किया। उसके 'डिसेन्ट ऑफ ओडिन' में नार्वे आदि उत्तरी देशों के प्रति संकेत हैं और 'दि बार्ड' में मध्यकालीन जीवन के प्रति। विषादपूर्ण एलेजी संबंधी साहित्य अंग्रेजी में काफी बढ़ चला जिसमें कब्रिस्तानों, खंडहरों, फैले सुनसान मैदानों का वर्णन महत्व का समझा गया।

---

१. William Cowper (१७३१-१८००); २. Thomas Gray (१७१६-७१);

विलियम कॉलिन्स[1] तो अपने विषाद के वितरण में ग्रे से भी बढ़ गया। कॉलिन्स अपने जीवित वातावरण से अनभिज्ञ हो, यह उसकी 'हाउ स्लीप दि ब्रेव' से तो नहीं लगता, परन्तु यह निश्चय है कि उसकी प्रवृत्ति प्रायः स्वप्निल थी। उसकी कविताओं—'ओड ऑन दि पापुलर सुपर्स्टिशन्ज़ ऑफ दि हाई लैन्ड्स', 'ओड टु ईवनिंग' और 'डर्ज इन सिम्बेलीन'—में विषाद की छाया जैसे शब्द-शब्द को अपने भार से बोझिल कर रही है। साधारणतः उसकी कला बोझिल है परन्तु जब कभी वह सरल हो पाता है तब जैसे उसका स्वर मधुर गुनगुनाहट से अद्भुत आकर्षण धारण कर लेता है।

विलियम काउपर के जमाने से ही कविता के क्षेत्र में असाधारण रुग्णता का प्रारंभ हो गया था। क्रिस्टोफर स्मार्ट[2] ने तो इस काव्यगत रुग्णता की पराकाष्ठा कर दी। उसका नितान्त विकृत और बदनाम जीवन पागलखाने में ही जाकर सुस्थिर हुआ। वहाँ उसने दीवारों पर कोयले से अपना 'सांग टु डेविड' लिखा। ब्राउनिंग ने उस गीत को बेहद सराहा है।

जमाने के भौतिकवाद ने कुछ कवियों को जैसे विक्षिप्त कर दिया। अनेकों ने अपनी साधना उस भौतिकवाद के विरोध में प्रयुक्त की। अर्थवाद दिन-दिन जोर पकड़ता जा रहा था और कवि, जब वे उसका आन्दोलन के रूप में प्रतिवाद न कर सके तब, स्वप्निल और अन्तर्मुख हो गये; निरन्तर इलहाम-सा उन्हें होने लगा और वे एक प्रकार की रहस्यमयी प्रेरणा से अपना उद्बोधन करने लगे। विलियम ब्लेक[3] ने तो जैसे फ़रिश्तों और दूसरी अपार्थिव मूर्तियों को स्पष्ट देखा, जैसे वे मूर्तियाँ उसे घेर कर मित्रों के समुदाय की भाँति बगीचों में बैठने लगीं। इस प्रकार के स्वप्नों ने उसे दुनिया से पृथक् कर दिया। उसके आलोचकों का कहना है कि उसने मानव-आत्मा को भौतिकता की दासता से मुक्त कर दिया और जीवन को नेक और बद के परे श्वेताकार जलती हुई शक्ति के रूप में देखा। निःसंदेह ब्लेक रहस्यवादी था। अपनी इस नयी चेतना में काव्य की परंपरा से ब्लेक इतनी दूर हो गया है कि उसने अपनी नयी रहस्यमयी भाषा, अपने नये प्रतीक, अपनी नयी शब्दावली बना ली है जो पाठक को उलझन में डाल देती है। यदि कविता का कोई स्वरूप ब्लेक ने प्रस्तुत किया है तो वह केवल 'सांग्स ऑफ इन्नोसेन्स एण्ड एक्सपीरियन्स' और 'एवरलास्टिग गॉस्पेल' आदि में देखा जा सकता है।

रॉबर्ट बर्न्स[4] भी इसी काल हुआ। उसने बड़े सुन्दर व्यंग्य लिखे जिससे उसका प्रवेश एडिनबरा के शिष्ट समाज में हो गया। वह अशिक्षित किसान कवि कहा जाता है, परन्तु कुछ ही दिनों बाद राजधानी के आसव-सिंचित जीवन ने उसे अकर्मण्य बना डाला।

---

१. William Collins (१७२१-५९); २. Christopher Smart (१७२२-७०); ३. William Blake (१७५७-१८२७); ४. Robert Burns (१७५९-९६)

उसे फ्रेंच-राज्यक्रांति का शिशु भी कहा गया है। परन्तु उसके ये दोनों विरुद प्रश्नात्मक हैं। वह पोप, टॉमसन, ग्रे, शेक्सपियर सबको पढ़ चुका था और एक शिष्ट अंग्रेज कवि की भाँति लिखता था। साथ ही उसकी सुन्दरतम कृतियाँ फ्रेंच-क्रांति के पहले ही लिखी जा चुकी थीं। उसने धर्म की कृत्रिमता के प्रति विद्रोह किया और मनुष्य-मनुष्य का भेद उसे असह्य हो उठा। 'जॉली बेगर्स' में उसने इस भेद पर प्रबल कुठाराघात किया। 'टैम ओ' शैन्टर' भी इसी प्रकार की एक सशक्त कृति है। इसी कारण वह चर्च से विरक्त होकर पानशालाओं की ओर आकृष्ट हुआ, यद्यपि इस आकर्षण ने उसके चित्त को संयत न रहने दिया।

कविता का रूप अब तक बदल चुका था। फिर भी जॉर्ज क्रैब[1] के-से कुछ लोग पोप की ओर जब-तब झुक पड़ते थे। जिस कपलेट का पोप और जॉन्सन ने प्रयोग किया था, क्रैब ने भी उसका प्रयोग किया। उसकी कविताओं के विषय साधारणतः देहाती जीवन के थे। उसने रूमानी माया को अपने पास फटकने न दिया।'दि विलेज', 'दि पैरिश रजिस्टर' और 'टेल्स इन वर्स' उसकी प्रभूत आकर्षक कृतियाँ हैं। उसकी काफी कटु आलोचना हुई परन्तु रूमानी आलोचकों ने वस्तुतः उसके ऋद्ध यथार्थवाद को न पहचाना।

: ७ :

रोमान्टिक काव्य

(१७७०-१८३२)

१९वीं सदी में अंग्रेजी कविता में उस नयी धारा की अभिसृष्टि हुई जो साधारणतः रोमान्टिक (रूमानी, रोमांचक) कही जाती है और जिसने भारत की भाषाओं के अनेक कवियों को भी समय पाकर प्रभावित किया। रोमान्टिक शैली के कवियों की प्रकृति के प्रति बड़ी सहानुभूति थी। जीवन के ऊपर प्रकृति का प्रभाव वे प्रायः आध्यात्मिक मानते थे। उद्योगवाद और उद्योगशील नगरों से आतंकित होकर जैसे वे रक्षा के लिए प्रकृति की ओर बढ़े। प्राचीन धार्मिक परंपराओं की जड़ता से भी ऊबकर अध्यात्म की नई दशा, एक नई अनुभूति की ओर वे बढ़ चले। स्पैन्सर, मिल्टन और पोप की दुनिया बाहरी थी, इनकी स्वयं इनके आवेगों में बिखरी अथवा कसी। वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, स्कॉट, बायरन, शेली और कीट्स रोमान्टिक शैली के प्रमुख कवि हैं।

टॉमस चैटरटन[2] ने मध्यकालीन काव्यधारा का अनुकरण करते हुए उस अद्भुत रस का कविता में संचार किया जो रोमांटिक काव्य का आधार बना। चैटरटन नितान्त अल्पायु में मरा, केवल १८ वर्ष की आयु में। और वह भी सामान्य मृत्यु से नहीं आत्महत्या—

---

१. George Crabbe (१७५४-१८३२); २. Thomas Chatterton (१७५२-७०)

द्वारा। चैटरटन निस्संदेह मनस्वी और मेधावी था और यदि वह जीता रहता तो शायद बहुत कुछ कर सकता, परन्तु उसके भावावेगों ने उसे अकाल ही उठा लिया। उसकी इस अकाल-मृत्यु ने आलोचकों में उसके सम्भावित भावी जीवन के संबंध में आशा और निराशा दोनों की प्रवृत्ति जन्मी है, परन्तु उनके प्रति समभाव होकर भी कम से कम हम उसे रोमान्टिक कवियों की परंपरा का दूरस्थ प्रवर्तक मान सकते हैं।

विलियम वर्ड्सवर्थ[1] रोमान्टिक कवियों में सबसे महान् है। उसका जीवन भी काफ़ी लम्बा था, ८० वर्ष का, यद्यपि मृत्यु से प्रायः ३५ वर्ष पहले ही उसकी कवित्व-शक्ति का निधन हो गया। अपने प्रारंभिक वातावरण में अकृत्रिम मानव ने उसे आकृष्ट किया। रूसो की विचारधारा ने मानवता के प्रति उसकी आशाओं को सशक्त किया, फ्रेंच राज्यक्रान्ति को उसने मनुष्य की स्वतन्त्रता के जनक के रूप में स्वीकार किया, और इंग्लैंड की फ्रांस के विरुद्ध युद्ध-घोषणा का उसने सबल प्रतिवाद किया; परन्तु जब नैपोलियन की महत्त्वाकांक्षा शार्लमान का अनुकरण कर चली तब उसे बड़ा क्षोभ हुआ। बर्क के प्रभाव से उसने भी धीरे-धीरे इंग्लैंड की राजनीति का रुख स्वीकार कर लिया और शीघ्र—वह घोर प्रतिक्रियावादी बन गया। इन क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं से पृथक् वर्ड्सवर्थ प्रधानतः प्रकृति का कवि है। पिछले काल के प्रकृति-प्रेमी कवियों ने उसका अनुकरण भी प्रचुर मात्रा में किया है। वर्ड्सवर्थ की प्रारंभिक ख्याति उसके 'लिरिकल बैलेड्स' के प्रकाशन से हुई। इस संग्रह में उसकी अपनी कविताओं के अतिरिक्त कोलरिज[2] का "एन्शेन्ट मरिनर' भी प्रकाशित हुआ परन्तु जहाँ वर्ड्सवर्थ ने सादे देहाती जीवन की घटनाओं का मूर्तन किया, वहाँ कोलरिज ने विचित्रता की उपासना की। 'दि लिरिकल बैलेड्स' (१७९८) के पहले ही 'दि प्रिल्यूड' का प्रकाशन १८५० में ही हो चुका था। 'प्रिल्यूड' आधुनिक अंग्रेजी साहित्य की सबसे महान् कविता मानी जाती है, जिसमें मानव-चित्त की एकानुभूति असाधारण रीति से चित्रित हुई। 'लिरिकल बैलेड्स' के बाद वर्ड्सवर्थ ने कविता में सॉनेट का ही उपयोग किया। 'ओड टु इम्मोरटेलिटी' में उस कवि ने जन्मपूर्व के जीवन का एक रहस्यमय अंकन किया। 'कैरेक्टर ऑफ दि हैपी वारियर' में उसने अपने भाई और नेल्सन के कर्मठ जीवन की संसृष्टि की और 'ओड टु ड्यूटी' में वह फिर क्लासिकल अनुभूति की ओर आकृष्ट हुआ। 'लाओडेमिया' भी उसकी एक असामान्य क्लासिकल कृति है। प्रकृति के साथ उसकी घनी सहानुभूति थी और आलोचकों का विचार है कि काव्यालेखन में उसे उस दिशा से बड़ी प्रेरणा मिली। सम्भव है कि प्रकृति-चेतना का उसे आभास मात्र रहा हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने मनुष्य—प्रकृति की अनजानी

---

१. William Wordsworth (१७७०-१८५०); २. Samuel Taylor Coleridge (१७७२-१८३४)

गहराइयों तक पैठकर अनुभूति की समृद्धि खोजी और पाई। उसकी अपील परिपक्व चेतना के प्रति है।

कोलरिज वर्ड्सवर्थ का मित्र था, अभिन्न मित्र, और दोनों पर एक दूसरे का गहरा प्रभाव पड़ा। वर्ड्सवर्थ की प्रकृति संयत, धीर और तपस्यापूर्ण थी। उसने काव्य के क्षेत्र में जो खोजा वह पाया। कोलरिज इसके विपरीत सर्वगामी था। इसी से उसकी बुद्धि एकाकी न हो सकी। कहते हैं, अफीम के प्रति उसकी अदम्य तृष्णा भी उसमें एकनिष्ठा के अभाव का कारण हुई, यद्यपि अफीम का उपयोग उसने उस रोग के निवारणार्थ किया जो आमरण उसे जकड़े रहा। अपने मित्रों और पत्नी तक के प्रति उसका भाव उपेक्षा का था, अनुत्तरदायी, यद्यपि उससे मिलने वाला विरला ही उसके व्यक्तित्व के सम्मोहन और शब्दों के चमत्कार के जादू से बच पाता था।

कोलरिज केवल कवि ही न था, आलोचक और दार्शनिक भी था। उसने दर्शन, धर्म, विज्ञान और राजनीति का समन्वित स्वप्न भी देखा। उसकी 'बायोग्रेफिया लिट-रेरिया' में कला की आधुनिक दार्शनिक आलोचना के बीज मिलते हैं। कोलरिज की कल्पना में स्मृति और स्वप्न का अद्भुत संयोग था। उसके काल्पनिक संसार में अद्भुत पक्षियों, अनूठे जहाजों, अनोखे समुद्रों का भी स्थान था। अपार्थिव मूर्तियाँ, अपार्थिव संगीत, अपार्थिव रूपरेखाएँ अद्भुत रूप से जीवित-सी होकर उसके कल्पना-क्षेत्र में विचरण करती थीं। 'एन्शन्ट मरिनर' उसके इसी स्वप्न का सत्य है। 'कुबलाखाँ' भी इसी परंपरा में एक अबीसीनियन कुमारी का जादूभरा संगीत है। कवि जीवन के तन्तुओं को तोड़कर अज्ञात, परन्तु जीवित स्वप्न-देश में पहुँच जाता है।

सर वाल्टर स्कॉट[१] की गणना भी रोमान्टिक प्रवृत्ति के कवियों में की जाती है। स्कॉट अंग्रेजी के प्रारंभिक उपन्यासकारों में है और उसका साहित्य में अधिकार विशेषतः उपन्यास-रचना पर माना जाता है, परन्तु काव्य के क्षेत्र में भी उसने काफी ख्याति प्राप्त की, यद्यपि उसका काव्य-क्षेत्र औपन्यासिक विशेषताओं से भरा है। उसकी कविता में भी उपन्यास की ही भाँति मध्यकालीन संघर्षमय जीवन के आलोक मिलते हैं। मध्यकालीन बैलेड और रोमांस उसकी कविताओं में सजग हैं। इस प्रकार की उसकी कविताओं का आरंभ 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्स्ट्रेल' (१८०५) से होता है। 'मारमियन' (१८०८) और 'दि लेडी ऑफ दि लेक' (१८१०) इसी परंपरा की कविताएँ हैं। उपन्यासों में सफल हो जाने से उसकी निष्ठा काव्य-रचना में कम हो गई, फिर भी भावों के आवेग, करुण रस की आर्द्रता, वीर और रौद्र रसों के परिपाक और अतीत के चमत्कारी वर्णन में स्कॉट अनोखा है।

---

१. Sir Walter Scott (१७७१-१८३२)

लार्ड बायरन[1] रोमांटिक कवियों में अपना विशेष स्थान रखता है। बायरन का व्यक्तित्व उसकी कविताओं से कहीं महान् माना गया है। यद्यपि ऐसा कहने से उसकी कवित्व शक्ति की उपेक्षा भी हो गयी है, फिर भी यह सच है कि बायरन का महान् व्यक्तित्व केवल काव्य-शक्ति तक ही सीमित न था और अनेक बार वह राजनीति के क्षेत्र में भी आकार धारण कर लेता था। यूरोपियन जनता ने तो अधिकतर उसे उसकी स्वातन्त्र्य-प्रियता से जाना। उसने ग्रीक-आजादी के लिए जो कुछ किया, वह सब का जाना हुआ है। बायरन महान् था, व्यक्तित्व में, आजादी की उपासना में, प्रणय की रुग्णता में, काव्य की प्रौढ़ता में। आरंभ में उसने जो 'आवर्स आफ आइडिलनेस' लिखा तो आलोचकों और कवियों ने उसे धिक्कारा। इस पर दबना तो दूर रहा, उस महाकवि ने उनका उत्तर 'इंग्लिश बार्ड्स एण्ड स्कॉच रिव्युअर्स' (१८०९) नामक अत्यन्त प्रखर चुभने वाली व्यंग्यात्मक कविता से दिया। बायरन अत्यन्त सुन्दर था, कुछ लंगड़ा, और घोर प्रणयी, दु:साध्य कामुक। कहते हैं कि एक बार जब एक प्रणयिनी से वह पहले-पहल मिला, तब उसका प्रभाव उस नारी पर ऐसा पड़ा कि उसे देखते ही नारी ने अपनी डायरी निकाली और उसमें लिखा—'मैड, बैड एण्ड डेन्जरस' (पागल, बद और खतरनाक)। बायरन लार्ड वर्ग का था। लन्दन की बैठकों का वह 'विजयी नैपोलियन' माना जाता है, यद्यपि प्रणय के क्षेत्र में उसकी यह विजय इंग्लैंड तक ही सीमित न रही। यूरोप के कॉन्टिनेन्ट पर भी उसका विस्तार हुआ; और इटली, विशेषकर वेनिस में तो उसने भयानक कामुकता का जीवन बिताया। काउंटेस गिचौली से उसका संबंध इटली के स्वप्न-जगत् का रहस्य बन गया है। वैसे स्वयं इंग्लैंड में बायरन की कामुकता का व्यापार कुछ कम सजग न था और स्वयं उसकी अर्द्धभगिनी के साथ जो उसका प्रणय-संबंध बताया जाता है, वह सर्वथा निराधार न था। रोमांटिक प्रवृत्तियों और भावावेगों से उन्मत्त, बायरन की तेजस्विता इंग्लैंड में राजनीति के क्षेत्र में विशेष व्यक्त न हो पायी, क्योंकि रोमांचकता उसकी राजनीति पर छा गयी थी। एक बार नॉटिंघम के श्रमिकों के प्राणदंड के विरुद्ध जो उसने लार्ड सभा में व्याख्यान दिया, वह अद्भुत शक्ति का था और कुछ लोगों ने आशा भी बाँधी कि एक दिन बायरन इंग्लैंड के राजनीतिक क्षेत्र का नेतृत्व करेगा, परन्तु उनकी कामना सफल न हुई।

बायरन पर्यटक था। उसने अनेक लम्बी यात्राएँ कीं और उन यात्राओं में जो रोमांचक साहसिकता का पुट था, उसने उससे अंग्रेज पाठकों को घर बैठे विदेशों से साक्षात् कराया। 'गियोर' (१८१३) में उसने अपनी पीढ़ी की अभिरुचि को अभिव्यक्त किया। इससे उसकी ख्याति फ्रांस से रूस तक फैली। इससे भी अधिक विख्यात 'चाइल्ड हेरल्ड' (१८१२-१८) हुआ, जिसमें उसने लुके-छिपे अपना ही परिचय दिया। इसके पिछले सर्गों का वर्णन व्याख्या-

---

१. George Gordon Lord Byron (१७८८-१८२४)

प्रधान है। नगर, खंडहर, फैले मैदान बायरन के तीव्र वर्णन से पाठक के सामने मूर्तिमान हो आते हैं। इन सबकी पृष्ठभूमि रोमांचक है, जो एक अनोखी शालीनता का सृजन करती है। उसने कुछ सचेतक कारुणिक कथाएँ भी अपने 'मैनफ्रेड' और 'केन' जैसी कृतियों में सिरजीं परन्तु वस्तुतः उसकी ख्याति काव्य के क्षेत्र में व्यंग्यात्मक रचना 'बेप्पो' (१८१८) 'दि विज़न ऑफ जजमेंट' (१८२२) और 'डॉन जुआन' (१८१९-२४) पर प्रतिष्ठित हुई। 'डॉन जुआन' तो निश्चय ही अंग्रेजी भाषा की महत्तम कविताओं में है। इसमें जीवन की विषमताएँ, कारुणिकता, साहस, आवेग सभी कुछ सजीव हो उठे हैं। व्यंग्य उसके चित्र-चित्र से बोलता है, जीवन शब्द-शब्द से चूता है।

शेली[1] और कीट्स[2] इसी अंग्रेजी रोमाण्टिक शैली के कवि हैं। शेली प्रखर रोमांचक बायरन के विपरीत इस परंपरा का सबसे बड़ा आदर्शवादी है। उसके आदर्शवाद पर कुछ आलोचकों ने असन्तोष प्रकट किया है और उसे ब्लेक की श्रेणी में रखा है। निःसन्देह शेली ब्लेक की ही भाँति द्रष्टा है, परन्तु वह उससे कहीं बढ़कर कवि है। आरंभ से ही शेली को संघर्ष करना पड़ा था; पहले पिता के विरुद्ध, फिर अपने आचार्यों के विरुद्ध। ऑक्सफोर्ड में जो उसने अपने अनीश्वरवादी सिद्धान्तों से आचार्यों को चुनौती दी, तो उसे विश्वविद्यालय छोड़ना पड़ा। हैरियट के साथ उसका विवाह भी अत्यन्त कष्टकर सिद्ध हुआ और इन कटु अनुभवों ने उसकी प्रकृति को सर्वथा अक्खड़ बना दिया। उसने अपनी पत्नी को त्याग दिया और पत्नी ने आत्महत्या कर ली। उसके बाद उसने मेरी गोडविन से विवाह किया, जिसके साथ उसने अपने जीवन का बड़ा भाग स्विट्ज़रलैंड और इटली में बिताया, जहाँ स्पेजिया की खाड़ी में तूफान से उसकी मृत्यु हुई। जिसके जीवन में इतनी घटनायें घटें, इतनी तिक्त अनुभूतियाँ भरी हों, उसका द्रष्टा हो जाना कुछ अजब नहीं, विशेषकर जब उसमें कृतित्व की इतनी महान् शक्ति हो, जितनी शेली में थी। शेली ने जीवन को केवल देखा, उसकी कटु अनुभूतियों को सहा ही नहीं, उसने उन्हें बदल भी देना चाहा। आशावादी द्रष्टा की भाँति उसने कहा कि यदि अत्याचार दूर कर दिया जाय, क्रूरता और अनाचार का लोप हो जाय, द्वेष और शक्ति के तांडव संसार से उठा दिये जाएँ तो निःसंदेह जीवन सुन्दर हो जाय और संसार स्वर्ग। इसी संदेश को लेकर वह मानवता के सामने खड़ा हुआ और इसी संदेश को लेकर वह 'क्वीन मैब' और 'रिवोल्ट ऑफ इस्लाम' के साथ कार्यक्षेत्र में उतरा। लेकिन उसकी साधना की सिद्धि वस्तुतः 'प्रोमेथियूस अनबाउण्ड' में हुई। इस गेय नाटिका में उसने स्काइलस की 'ट्रैजेडी' को अपना मॉडल बनाया और जुपिटर द्वारा प्रोमेथियूस के चट्टान से बाँधे जाने की कथा लिखी। उसने इसमें मनुष्य को प्रेम की शक्ति से निरंकुशता और अत्याचार का प्रतिरोध करने को ललकारा। आधुनिक अंग्रेज़ी-

---

१. Percy Bysshe Shelley (१७९२-१८२२); २. John Keats (१७९५-१८२१)

साहित्य में 'प्रोमेथियूस अनबाउण्ड' का लिरिक तत्व अद्वितीय है। शेली की आलोचना भी तीव्र हुई है और इसमें कुछ तथ्य है कि उसमें विनोद की मात्रा बहुत कम है। साधारण जीवन से भी, उसके संघर्ष के बावजूद, उसका संबंध कम दीखता है। इस रूप में न तो वह चॉसर है, न शेक्सपियर, न मिल्टन। संसार से जैसे वह दूर है और उसकी भाव-प्रतिमाओं में वायु, सूखी पत्तियाँ, ध्वनियाँ, लहरें आदि रूप धारण करती हैं। अनेक बार तो ऐसा लगता है कि वह जीवित जगत से दूर के किसी आत्म-परिवार का परिचय दे रहा है। आज काव्य-पाठकों के संसार पर उसकी पकड़ ढीली पड़ चली है, क्योंकि जीवन उसकी पकड़ से छूट चुका है। यद्यपि 'ओड टु दि स्काई लार्क' आज भी चाव से पढ़ा जाता है।

रोमांटिक परंपरा के विशिष्ट कवियों में जॉन कीट्स है। रोमांचकता का वह मूर्तिमान् स्वरूप था। इंग्लैंड के महान् कवियों में वह सबसे अल्पायु में मरा, केवल २५ वर्ष की आयु में। वह रोमांटिक कवियों में सबसे पिछला था, सबसे पहले मरा। उसका पिता अस्तबल का रक्षक था। उसने उसे डाक्टर बनाने की प्रभूत चेष्टा की, यद्यपि बचपन से ही काव्य-प्रेम ने कीट्स को कविता के प्रति अनुरक्त कर दिया था। प्राचीन काव्यों से उसने कथाएँ ढूँढ़ निकालीं और स्पैन्सर तथा शेक्सपियर की कृतियों से शब्द की माया-शक्ति प्राप्त की। साथ ही एक्रोपोलिस से लायीं एल्गिन की संगमरमर-प्रतिमाओं (एल्गिन मार्बल्स) और उसके मित्र हेडन के चित्रों ने उसे आलेखन की शक्ति प्रदान की। वैसे कविता के क्षेत्र में वह किसी का शिष्य न था, अपने आप उसने उस दिशा में सफलता पाई। उसके 'लैटर्स' उसके आलोचनात्मक विचारों के अद्भुत प्रमाण हैं, यद्यपि साथ ही वे फैनी ब्राउन के प्रति उसके असीम प्रेम का उद्घाटन करते हैं। इटली जाकर उसने अपने गिरते हुए स्वास्थ्य की रक्षा का असफल प्रयत्न किया। क्षय ने उसे विवश कर दिया और एक दिन वह दुनिया से चल बसा।

उसकी लम्बी कविता 'एन्डीमियन' (१८१८) उसी साल लिखी गयी, जिस साल यूरोप का महादार्शनिक हीगेल मरा और महामना मार्क्स उत्पन्न हुआ। आलोचकों ने 'एन्डीमियन' की या तो सक्रिय उपेक्षा की अथवा उसकी तीव्र आलोचना। यह सही है कि यह कविता अतिरंजित है परन्तु इसके अनेक स्थल उस सौंदर्य के प्रतीक भी हैं जो मूर्तिकार और चित्रकार के समन्वित प्रयत्न शब्दांकन के आधार से प्रस्तुत कर सकते हैं। 'लामिया', 'इज़ाबेल' और 'ईव ऑफ सेन्ट अग्नीज़' के द्वारा उसने काव्य-कथाएँ प्रस्तुत कीं जिनकी पृष्ठभूमि रंगों के विस्तार में नितान्त ऋद्ध थी।

कीट्स आवेगों का कवि था, सौंदर्य का उपासक और उसकी प्रेरणा से समर्थ कवि। 'हाइपीरियन' नामक उसकी कविता, यद्यपि अधूरी रह गई, परन्तु उतने से ही प्रमाणित है कि यदि कीट्स ने उसे पूरा कर दिया होता तो वह दार्शनिक कवि के रूप में भी कितना महान् होता। धीरे-धीरे उसकी संवेदना अपने वातावरण से घनी हो चली थी और जहाँ

शेली एक स्वप्न के देश में विचरने लगा था वहाँ कीट्स अपने वातावरण का घना स्पर्श पाने लगा था। 'हाइपीरियन' में पुरानी परंपरा के देवताओं के स्थान पर नित्य नये देवों की उठनेवाली शृंखला का प्रतिपादन है जो उसकी मिल्टन-वत् प्रगतिशीलता को एक मात्रा तक प्रकट करता है। यदि कीट्स कुछ काल और जी गया होता तो मानवता उसकी सक्रिय भावुकता के योग से निःसंदेह बलवती होती।

: ८ :

बुद्धिवाद और विज्ञान

(१८३२-७५)

आशावाद

१९वीं सदी के कवि, जिनका आरंभ कीट्स तथा अन्य रोमांटिक कवियों के बाद हुआ, अधिकतर मलका विक्टोरिया के समकालीन थे। टैनिसन[1] शायद विक्टोरिया कालीन कवियों में सबसे महान् हुआ, यद्यपि उसके आलोचकों ने उसके पराभव में कुछ उठा न रखा। शब्दों की शालीनता और ध्वनियों के उपयोग में तो वह अंग्रेजी-साहित्य में बेजोड़ है। उसकी प्रारंभिक गेय कविताएँ तो जैसे शब्दों के सुन्दरतम् नमूने बुनती चली जाती हैं। हाँ, इतना जरूर है कि मौलिकता और गहराई में अपने पूर्ववर्ती रोमांटिक कवियों की अपेक्षा वह काफी पीछे है। उसकी बड़ी कविताओं में लोगों ने शिथिलता का दोष पाया है, यद्यपि 'उलिसिज़' के संबंध में यह दोष सार्थक नहीं। 'उलिसिज़' वीर-काव्य की आत्मा को रोमांचक सजीवता से अनुप्राणित करती है।

परन्तु वस्तुतः टैनिसन की प्रतिभा उसकी लिरिकों और 'दि डैथ ऑफ इनोन', 'दि ड्रीम ऑफ फ़ेयर विमन', 'दि पैलेस ऑफ आर्ट' आदि छोटी कविताओं में है, यद्यपि उसकी महत्वाकांक्षा उसे इन तक ही सीमित न रख सकी। उसकी 'ईडिल्स ऑफ दि किंग' में चित्रण और रूपकों का प्रसार है परन्तु चॉसर या स्पैन्सर के सामने वह फीकी पड़ जाती है। टैनिसन ने ऑर्थर-संबंधी कहानियों को विक्टोरिया-कालीन आचार से मढ़ा, परन्तु वह स्वयं समसामयिक युग को पकड़ न सका। आँखों के नीचे बहता जीवन उसके दृष्टिपथ से ओझल हो गया, और एक दूर की अनजानी स्वप्निल दुनिया उसकी नजरों में लहरा उठी। 'ईडिल्स' में ऑर्थर-संबंधी काव्य-कहानियों की ही भाँति शब्दों की शालीनता है, कल्पनाकी रोमांचकता है और अनजाने का अनोखापन है, परन्तु वह सारा ही जीवन से परे की दुनिया है, उसका लोक उस 'पोयट लारियट' का लोक है जो टैनिसन था। 'इन मैमोरियम' का

---

१. Alfred Lord Tennyson (१८०९-९२)

लोक निश्चय ही उसका अपना है; टैनिसन का, कवि का; और चूँकि यह कवि की अपनी सच्ची कृति है अतः उस युग की वह महान् कृति भी बन गयी है। उसमें उसने अपने मित्र आॅर्थर हैलम की मृत्यु का वर्णन किया है और उसके विचार जीवन-मरण तथा उनके बाद की दुनिया का स्पर्श करते हैं। सावधि जगत् का विज्ञानवाद उसे जैसे डरा देता है और वह बालक की भाँति भगवान् की संरक्षा का वरदान माँगता है। 'इन मैमोरियम' निस्सन्देह अकृत्रिम कृति है।

टैनिसन काफी पढ़ा गया है, उसका अनुकरण भी काफी हुआ है; इसीसे यह भी प्रत्यक्ष है कि उसके अनेक आलोचक हुए। उसने काव्य के क्षेत्र में प्रगति करते हुए अपनी आँखें स्वदेश के औद्योगीकरण की ओर से मींच लीं। इसी कारण उसकी कविता भी मैथ्यू आर्नल्ड के शब्दों में 'जीवन की व्याख्या' न बन सकी। इस खतरे से जैसे भयभीत होकर वह अपनी अन्य कविताओं—'लाक्सले हॉल', 'दि प्रिन्सेस' और 'मॉड'—में वास्तविक जीवन के स्तर पर उतर आता है।

जिन नैतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक समस्याओं का टैनिसन ने स्पर्श-मात्र किया, रॉबर्ट ब्राउनिंग[1] के लिए वे प्रधान प्रेरणाएँ बन गयीं। रॉबर्ट ब्राउनिंग को अधिकतर दार्शनिक कवि माना जाता है। साहस और शक्ति उसके शब्द-शब्द से टपकती है, परन्तु यह सब उसके उस दर्शन से संबंध रखता है जिसमें वह निर्भीकतापूर्वक मृत्यु से लड़ता है अथवा मृत्यु के भय का सफल सामना करता है। इसी कारण उसकी कविता में जीवन के प्रति बड़ा विश्वास बन पड़ा है। आशावादी जीवन स्पष्टतः निराशा पर व्यंग्य करता है।

ब्राउनिंग ने कविताएँ तो लिखी हीं, उसने नाटक के भी कुछ प्रयोग किये। उसने ड्रामे का प्रयोग बिना उसके रंगमंचीय अभिनय के विचारों के किया। उसमें उसका दर्शन-मात्र प्रतिबिम्बित था, जैसा कि 'पैरासेल्सस' (१८३५) या 'पिप्पा पासेज़' (१८४१) से प्रकट है। इन नाटकों में गति केवल मानव-कर्मों की शृंखला से प्रस्तुत होती है, उसके लिए अनेक चरित्रों की पारस्परिक प्रतिक्रियाएँ उतना अर्थ न रखती थीं जितना एक ही व्यक्ति के आन्तरिक द्वन्द्व। इसी कारण उसने एक प्रकार के एक-पात्रीय वक्तव्य वाली नाटकीयता की नींव डाली। इसी रूप में उसके विशेषतः जाने हुए नाटक 'एन्ड्रीया डेल सार्टो', 'फ्रालिप्पो लिप्पी', 'सॉल', और 'दि बिशप आर्डर्स हिज़ टूम्ब' आदि प्रस्तुत हुए। इनका प्रकाशन जिल्दों की एक शृंखला में 'ड्रामेटिक लिरिक्स' (१८४२), 'मैन एण्ड विमैन' (१८५५) और 'ड्रामेटिस पर्सोनी' (१८६४) में संग्रहीत हुए। इन्होंने रॉबर्ट ब्राउनिंग को जो यश प्रदान किया वह टैनिसन को छोड़ कर और किसी को १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में न मिला।

इसी परंपरा में प्रस्तुत उसकी 'दि रिंग एण्ड दि बुक' (१८६८-६९) है, जिसमें

---

१. Robert Browning (१८१२-८९)

एक-पात्रीय नाटकीयता का तन्तु बुना गया है और जो अंग्रेजी साहित्य की सबसे लम्बी कविताओं में से एक है। इसमें ब्राउनिंग ने एक इटैलियन अपराध-कहानी का काव्य रूप में वितन्वन किया है और उसी सूत्र से उसने अपने रहस्यमय काव्य-दर्शन का अंकन किया है। उसकी कविताएँ प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों से भरी हैं और इटली का पुनर्जागरण-काल जैसे ब्राउनिंग के पृष्ठों में एक बार फिर जी उठता है। ब्राउनिंग के साहस और निर्भीकता के बावजूद उसका प्रयास 'डॉन क्विक्ज़ोट' का-सा है। दर्शन के माध्यम से घूमने वाले उसके चरित्र जैसे एक कल्पित संसार में घूमते हैं और किसी प्रकार भी उनको स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। लगता है, जैसे उसके नर-नारी पात्र किसी तानाशाही दुनिया के जीव हैं, जिनका तानाशाह ब्राउनिंग स्वयं है।

रॉबर्ट ब्राउनिंग के साथ अंग्रेजी-साहित्य की प्रसिद्ध कवियित्री एलिज़ाबेथ बेरेट[1] का नाम संबंधित है। एलिज़ाबेथ निस्सन्देह ब्राउनिंग के सम्पर्क में विशेष चमकी परन्तु निश्चय ही काव्य के क्षेत्र में उसका अपना स्थान है और उसकी कविताएँ, 'सॉनेट्स फ्रॉम दि पौर्चुगीज़' 'ओरोरा ले', जो उसने ब्राउनिंग से संबंध के पहले लिखी थीं, इस दिशा में ज्वलन्त प्रमाण हैं। ब्राउनिंग एलिज़ाबेथ को लेकर इंग्लैंड से बाहर कॉन्टिनेन्ट भाग गया था और उसके अनुयायियों पर उसका यह आचरण रोमांटिक हीरो के रूप में अपनी छाप छोड़ गया।

नैतिक और साहित्यिक आलोचना

१९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मैथ्यू आर्नल्ड, फ़िल्सजेरॉल्ड, रोसेट्टी, स्विनबर्न, मॉरिस, क्रिस्टियना रोसेट्टी, पैटमोर, टॉमसन आदि प्रमुख हैं। मैथ्यू आर्नल्ड[2] जो आलोचक के रूप में विशेष प्रसिद्ध है, कविता के क्षेत्र में भी काफी जाना हुआ है। उसकी कविताएँ—'एम्पिडा-क्लीज़ ऑन एटना', 'दि फ़ोरसेकन मरमैन', 'थेरसिस', 'दि स्कॉलर जिप्सी' और 'डोवर बीच'—काफी प्रसिद्ध हैं। विशेषकर अपनी गद्य-कृतियों में, उसने मानव-जीवन की समस्याओं पर विचार किया। उसकी 'सोहराब एण्ड रुस्तम' की-सी लम्बी कविता काफी लोकप्रिय है, परन्तु निस्सन्देह मैथ्यू आर्नल्ड का वास्तविक स्थान आलोचना के क्षेत्र में है।

एडवर्ड फ़िल्सजेरॉल्ड[3] अत्यन्त प्रमादी था और स्वतन्त्र कविताएँ भी उसने कुछ बहुत नहीं लिखीं परन्तु फारसी कवि उमर खय्याम की अमर रुबाइयों को जो 'दि रुबाइयात ऑफ उमर खय्याम' के नाम से १८५९ में उसने प्रकाशित कीं, वह अनूदित साहित्य के क्षेत्र में एक आलोक-स्तम्भ है। कहते हैं, फ़िल्सजेरॉल्ड ने अनुवाद को मूल से सुन्दरतर बना दिया है। इस एक सफल अनुवाद ने उसे हजार स्वतन्त्र कृतियों के कवि-सा साहित्य में प्रतिष्ठित

१. Elizabeth Barrett (१८०६-६१); २. Mathew Arnold (१८२२-८८)
३. Edward Fitzgerald (१८०९-८३)

कर दिया और वह १९वीं सदी के पिछले दशकों में साहित्य के प्रधान व्यक्तियों में से माना गया है।

फित्सजेरॉल्ड को खोजने का श्रेय डी० जी० रोसेट्टी[1] को है। रोसेट्टी का स्थान विक्टोरिया-काल के साहित्य में बहुत ऊँचा है। वह इटली के एक राजनीतिक शरणार्थी का बेटा था। विक्टोरिया-काल का साहित्यकार होकर भी उसने साहित्य से दार्शनिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रसंगों को अलग रखा। वह निरा कलाकार था। वैसे भी वह पहले चित्रकार रह चुका था, जहाँ उसने परंपरा की श्रृंखला को तोड़ कर स्वतन्त्रता और सत्य का अन्वेषण किया था। उसका चिह्न प्रतीकवादी और कल्पना-प्रधान था, जिस से उसकी कविता में भी यथार्थ के विरुद्ध चित्रों का प्राधान्य हो गया है, यद्यपि उसके सिद्धान्तों में यथार्थता का अभाव नहीं। चित्त के इस संघर्ष का उदाहरण स्पष्ट रूप से उसके 'दि ब्लेसेड डेमोज़ेल' में मिलता है, जिसमें काव्य-विस्तार और प्रसंग रहस्यवादी हैं परन्तु अन्तिम लक्ष्य श्रृंगारिक है, प्रायः यौन, काय-प्रधान। उसकी नितान्त पार्थिव कृतियों में सर्वत्र प्रतीकों की छाया है जो उसके साहित्य पर धुँधले जल-प्रवाह, मलिन ज्योत्सना और जब-तब प्रभूत चित्रों के साथ अवतरित होती है। उसके लिरिकों और वैलेडों का यही वातावरण है। यही उसके प्रकाशनों—'पोयम्स' (१८७०) और 'बैलेड्स' तथा 'सॉनेट्स' (१८८१)—में प्रतिबिम्बित है। 'दि हाउस ऑफ लाइफ़' उसकी प्रसिद्ध कृति है, जिसमें रहस्य और यौन का अद्भुत सम्मिश्रण है। दांते और उसके समवर्ती साहित्यकारों का जो रोसेट्टी ने अनुवाद किया तो वस्तुतः वह स्वयं उनके गहरे प्रभाव से वंचित न रह सका। रोसेट्टी के आकर्षक व्यक्तित्व ने अनेक प्रतिभाशाली तरुणों को आकृष्ट किया।

इन तरुणों में स्विनबर्न[2] अपनी कविता और उसके नग्न प्रणय-निवेदन से शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गया। स्विनबर्न पहले इटन और फिर ऑक्सफोर्ड का विद्यार्थी था, जहाँ उसने अपनी जीवन-संबंधी चुनौतियों द्वारा काफी हलचल पैदा की और जब १८६६ में वह साहित्य के क्षेत्र में अपनी 'पोयम्स एण्ड बैलेड्स' लेकर उतरा, तब तो विक्टोरिया-कालीन काव्य में उसके भाव-विद्रोही प्रणय-बहुल नग्न चित्रणों ने उथल-पुथल मचा दी। एक वासना की लहर-सी नये काव्य-क्षेत्र में बह गयी, जिसको विक्टोरिया-कालीन काव्य-क्षेत्र में सहन करने की ताब न थी। एक प्रकार से वह कीट्स की भावनाओं को उनके ग्रीक आधारों से पुनरुज्जीवित कर रहा था। उसके लिरिकों ने एक प्रकार से ड्रामा और कोरी कविता के क्षेत्र में विप्लव मचा दिया। उसकी कृतियों में विशेष 'इटिनस', 'एटलान्टा इन कैलीडन' (१८६५) और 'इरेक्थियस' (१८७६) विशेष प्रसिद्ध हैं। स्विनबर्न ने कविताएँ

---

१. Dante Gabriel Rossetti (१८२८-८२); २. Algernon-Charles Swinburn (१८३७-१९०९)

और नाटक फिर-फिर लिखे परन्तु उसके कृतित्व की शक्ति उनमें इतनी प्रकट न हो सकी जितनी उसकी प्रारंभिक कृतियों में हुई थी। कारण यह था कि उसकी वासना-चेतना स्वाभाविक ही कायिक शक्तियों से सम्बद्ध थी और अपनी तरुण आयु में उनका 'डोलोरिस', 'लाउस वेनेरिस', 'फ़ास्टाइन' आदि में वह अकृत्रिम अशृंखलित रूप प्रस्तुत कर सका। शर्म और परहेज उसकी राह में कहीं नहीं अटके।

विलियम मॉरिस[1] भी रोसेट्टी के ही भावों से प्रभावित था। काव्य के क्षेत्र में वह शिल्प के क्षेत्र से प्रादुर्भूत हुआ। उसने शिल्प की चेतना काव्य की सृष्टि में डाली, और अपने जीवन-काल की उस परिस्थिति को वह न भुला सका जहाँ तीव्र उत्पादन और अमित लाभ का राज है। 'दि डिफ़ेन्स ऑफ गिनिवियर' (१८५८) के चित्र कल्पना-प्रधान होकर भी जीवन से ओतप्रोत हैं। उनमें शक्ति और वजन है। 'दि अर्थली पैराडाइज़' में उसने लम्बी कविता को चॉसर की भाँति कथालेखन का आधार बनाया परन्तु उसमें न तो चॉसर की सचेष्ट मानवता है, न उसका भाषाधिकार और न शक्तिशाली चरित्र-चित्रण। धीरे-धीरे समसामयिक जीवन की पुरुषता ने उसे कल्पना के अकृत्रिम क्षेत्र को छोड़ने पर बाध्य किया। उसकी कृतियों में विशेषतः 'ए ड्रीम आफ़ जॉन बॉल', 'न्यूज़ फ्रॉम नोह्वेयर', 'दि वैल ऐट दि वर्ल्ड्स ऐण्ड' विशेष प्रसिद्ध हुईं।

क्रिस्टियना रोसेट्टी[2] यद्यपि प्रसिद्ध रोसेट्टी की ही बहिन थी, परन्तु उसका जीवन भाई के जीवन के बिल्कुल विपरीत था, नितान्त धार्मिक। 'गॉबलिन मार्केट' में उसने सुन्दर काव्य-चित्रण किया। कॉवेन्ट्री पैटमूर[3] ने इसी काल 'दि एंजिल इन दि हाउस' नाम के काव्य में एक उपन्यास ही रच डाला, जिसमें उसने कविता को रोजमर्रा के जीवन का बाना पहनाया। उसने 'दि अननोन इरोस' द्वारा पेचीदा विचारों को काव्य के रूप में प्रस्तुत किया और कैथोलिक कवि के रूप में इसी अपनी जटिल रहस्यमय विचारधारा के कारण विशेष प्रसिद्ध हुआ। फ्रान्सिस टॉमसन[4] भी कैथोलिक कवि ही था और उसने भी काफी लोकप्रियता हासिल की। गरीबी और कष्ट के जीवन को उसने अपनी कविता में प्रतिबिम्बित किया। 'दि हाउण्ड ऑफ हैवन' उसकी जानी हुई कृति है।

: ९ :

नवयुग का उदय

१९वीं सदी के पिछले दर्शकों में उपन्यास-साहित्य काव्य-साहित्य के ऊपर उठ गया। कई साहित्यकारों ने पहले काव्य के माध्यम से साहित्य-क्षेत्र में जीवन आरंभ किया परन्तु

---

१. William Morris (१८३४-९६); २. Christiana Rossetti (१८३०-९४)
३. Coventry Patmore (१८२३-९६); ४. Francis Thomson (१८६०-१९०७)

शीघ्र वे उपन्यासकार हो गये और उपन्यासकार के रूप में ही वे विशेष प्रसिद्ध हुए। इनमें टॉमस हार्डी[1] और जॉर्ज मैरेडिथ[2] विशेष उल्लेखनीय हैं। जॉर्ज मैरेडिथ ने अपनी प्रारंभिक काव्य-कृति 'लव इन दि वैली' द्वारा अच्छा नाम कमाया। उसकी कविताओं और उपन्यासों में स्वभावतः ही अनेक बार एकरूपता का दर्शन होता है। उसने उपन्यासों की ही भाँति कविताओं में भी दर्शन की चेतना मूर्त्त की। सदाचार और वनस्पति-शास्त्र के आँकड़ों को एकत्र कर उसने 'पोयम्स एण्ड लिरिक्स ऑफ़ दि जौय ऑफ़ अर्थ' लिखा, जिसमें उसने दिखाया कि पृथ्वी मनुष्य को अपनी वन्य प्रकृति दबा रखने में उसकी सहायता नहीं करती। पशुता और भावावेग दोनों मनुष्य को दबाये रखने में एकत्र प्रयत्न करते हैं। मैरेडिथ की कविताओं में मनुष्य की कमजोरियों का प्रभूत चित्रण हुआ है। काव्य-रूप में उसकी कृतियाँ कठिन हैं, यद्यपि उनकी भाव-चेतना स्वस्थ और सबल है।

टॉमस हार्डी प्रारब्धवादी था। नर-नारी के कारुणिक प्रसंग उसके उपन्यासों और कविताओं, दोनों में क्रूर प्रारब्ध-चालित रूप में उपस्थित होते हैं, जिनका निराकरण वह कभी नहीं करता। अपनी लघु लिरिकों में वह परिस्थितियों से मजबूर क्रूरता की चपेटों से विह्वल नर-नारियों को प्रारब्ध द्वारा नियंत्रित अन्धों की भाँति खिंचे जाते चित्रित करता है। जिस संक्षिप्तता और शब्द-लाघव द्वारा हॉर्डी इन चित्रों को उपस्थित करता है, वह वैयक्तिक काव्य-कला की एक विजय है। अपनी उपन्यास-शृंखला के बाद उसने नैपोलियन के युद्धों के आधार पर 'दि डाइनास्ट्स' (१९०४-८) नाम का एक वीर-काव्यात्मक नाटक भी लिखा। उसका नाटक रंगमंच के योग्य तो न हुआ परन्तु चित्त के रंगमंच पर अनेक आलोचकों को वह विशेष सफल जँचा।

टी० ई० लॉरेन्स[3] ने १९०६ ई० में 'दि डॉन इन ब्रिटेन' नामक लम्बी कविता के कुछ भाग प्रकाशित किये। यह कविता उस काल की काव्य-धारा के नितान्त विपरीत थी। निस्सन्देह रोमान्टिक कवियों की रूमानी चेतना उसमें नहीं, परन्तु उसकी इस कृति में सभ्यता के प्रारंभिक दिनों के मानव प्रयास के जो चित्र प्रस्तुत हुए हैं, अपनी नग्न सामर्थ्य में वे निश्चय ही असाधारण हैं। इस प्रकार की दूसरी कविता 'दि टैस्टोमेन्ट आफ़ ब्यूटी' (१९२९) रॉबर्ट ब्रिजज़[4] ने लिखी, जो प्रारंभ में बड़ी लोकप्रिय हुई। इस दार्शनिक कविता में ब्रिजज़ ने बुद्धि और सौन्दर्य की परिभाषा की।

---

१. Thomas Hardy (१८४०-१९२८); २. George Meredith (१८२८-१९०९); ३. T. E. Lawrence (१८८८-१९३५); ४. Robert Bridges (१८४४-१९३०)

: १० :

बीसवीं सदी

२०वीं सदी का आरंभ अंग्रेजी-साहित्य में एक नये युग के रूप में आया। यह सही है कि १९वीं सदी के पिछले युगों के अनेक कवियों ने अपनी पुरानी निष्ठा किसी न किसी रूप में जीवित रखी, परन्तु निस्सन्देह उन का युग अब समाप्त हो चुका था। रोमान्टिक परंपरा को समाप्त कर उसके स्थान पर कवियों के एक नये दल ने नये लिरिकों की रचना की, जिनका स्वर विषाद और करुणा का था और उनकी गेयता में आकर्षक सौन्दर्य था। उन्होंने अपनी कविताओं से सदाचार और दर्शन की विक्टोरिया-कालीन समस्याओं को बाहर कर दिया और हल्की-फुल्की पंक्तियों में अपने चित्त और प्रणय की अनुभूतियों को मूर्त्त किया। ऑस्कर वाइल्ड,[1] जिसका नाम काफी बदनाम हो गया है, इन्हीं में था। यद्यपि काव्य के क्षेत्र में वह अपेक्षाकृत प्रायः अनजाना है, परन्तु नाटक-क्षेत्र में निश्चय ही वह विशेष विख्यात हुआ। अर्नेस्ट डाउसन[2] ऑस्कर वाइल्ड से अपनी कविता के गेय तत्व में कहीं अधिक ऋद्ध है। काव्य के प्राचीन प्रतीकों का वह नये सिरे से प्रयोग करता है। जॉन्सन[3] के लिरिकों में एक प्रकार के गम्भीर सौन्दर्य का मूर्तन हुआ है। केम्ब्रिज में लैटिन का प्रोफेसर ए० ई० हॉसमन[4] इन कवियों से जीवन में भिन्न होकर भी चित्त से बहुत कुछ इन्हीं का-सा है। 'श्रोपशायर लैड' (१८९६) और 'लास्ट पोयम्स' (१९२२) द्वारा उसे इस दिशा में प्रचुर ख्याति मिली है। उसने पुराने शब्दों के नये प्रयोग किये और आवेगों के मूर्तन तथा उनकी अभिव्यक्ति में प्रयुक्त भाषा तो निश्चय ही शब्द-रूप में स्वीकार्य है। प्रकृति के प्रति उसकी भावनाएँ भी सबल-सहज तीव्रता प्रस्तुत करती हैं। हॉसमन आवेगों का कवि है।

जॉर्ज पंचम के नाम से जिस काव्य-धारा का बोध होता है, वह उस राजा की सम-सामयिकता मात्र से संबंध रखता है, कुछ उसके कृतित्व से नहीं। उसके राज्यकाल के लिरिक कवियों के एक दल को 'जॉर्जियन पोयट्स' कहते हैं। इधर के आलोचना-क्षेत्र में उन पर गहरा आघात हुआ है। उनको आलोचकों ने गाम्भीर्य-हीन, अति समसामयिक माना है। आलोचकों का कहना है कि उन्होंने घने से घने आवेगों का सुन्दर पद्य-रचना के लिए प्रयोग कर उनके साथ अन्याय किया है। रूपर्ट ब्रूक[5] जिसने १९१४ में स्वदेश-

---

१. Oscar Wilde (१८५६-१९००); २. Ernest Dowson (१८६७-१९००); ३. Lionel Johnson (१८६७-१९०२); ४. Alfred Edward Housman (१८५९-१९३६); ५. Rupert Brooke (१८२७-१९१५)

प्रियता, कर्त्तव्यनिष्ठा और आदर्शवाद पर कुछ सॉनेट प्रकाशित किये, इन आलोचकों के रोष का केन्द्र बन गया। ब्रूक ने युद्ध में मृत्यु को वीर-दर्प का आधार माना। वाल्टर डि ला मेर[1] शब्द का जादूगर माना जाता है, जिसने शब्दों की चेतना में एक नयी रहस्यमयी संसृष्टि की। उस काल के प्रधान कवियों में जेम्स एलरॉय फ़्लैकर[2] का नाम उल्लेखनीय है। वह फ्रेंच और फारसी पढ़ा हुआ था, जिससे उसने अपनी लिरिकों की ध्वनि में उन भाषाओं के मधुर पद्य का योग दिया। इन कवियों के विरुद्ध जो विशेष आलोचना हुई, उसका स्वर यह था कि कविता में आज के जीवन का योग होना चाहिए। जॉन मेसफ़ील्ड[3] ने इसी विचार-धारा से प्रभावित हो कर अपने प्रारंभिक सागर-संबंधी लिरिकों को छोड़ मानव कहानियों की कष्ट-चेतना को अपनाया। 'दि ऐवरलास्टिंग मर्सी' और 'दि डेफ़ोडिल फ़ील्ड्स' इस प्रवृत्ति के प्रमाण हैं। मेसफ़ील्ड ने उन यथार्थवादी प्रसंगों को फिर से ग्रहण किया जो उपेक्षित हो गये थे। इस काल के अन्य कवियों ने तो अपने इस विद्रोह को और भी जटिल रूप से प्रकट किया। जेरार्ड मैनली हॉपकिन्स उन्हीं में से है और यद्यपि वह १८८९ में मर चुका था, १९१८ में उसकी रचना प्रकाशित हुई। वह जेसुइट कवि था और उसने धार्मिक धाराओं का मूर्तन किया, परन्तु पद्य रचना और विचार दोनों से उसकी मौलिकता प्रमाणित है। उसने कविता की ध्वनि में शब्द और व्याकरण दोनों को दबा दिया है। उसकी काव्य-शैली का अनेक बाद के कवियों ने अनुकरण किया। विलफ़्रिड ओवेन की युद्ध-संबंधी कविताओं पर हॉपकिन्स का काफी प्रभाव पड़ा, यद्यपि वह एक पीढ़ी पहले मर चुका था।

बीसवीं सदी के विशिष्ट अंग्रेजी कवियों में एलियट[4] और यीट्स[5] हैं। एलियट ने पद्य और गद्य दोनों लिखा है और दोनों में उसने प्रभूत ख्याति पाई है। उसकी प्रारंभिक कविताओं का संग्रह १९१७ में 'फ्रूफ राक' के नाम से निकला था। ये कविताएँ व्यंग्यपूर्ण और नाटकीय थीं, जिन्होंने तत्कालीन सभ्यता पर गहरी व्यंग्यात्मक चोटें कीं। एलियट की साधना और बुद्धि प्रतीकवादी हैं। उसकी कृति 'दि वैस्ट लैण्ड' का काफ़ी आदर हुआ है। इसमें उसने प्रथम महासमर के बाद के यूरोप का जीवन प्रतिबिम्बित किया है। 'दि वैस्ट लैण्ड' द्वारा उसने यह प्रकट किया है कि आज की सभ्यता का एक अपना अतीत तो अवश्य है, परन्तु न कोई उसका भविष्य है, और न विश्वास, न आदर्श, न निष्ठा। विश्वास तो वह अनिवार्य आवश्यकता मानता है। अपने 'मर्डर इन दि कैथेड्रल' नामक पद्य-नाटक में उसने इसका विशेष निरूपण किया है। इसकी पद्य-रचना भी सरल है और इसका तथ्य

---

१. Walter de la Mare (ज० १८८३); २. James Elroy Flecker (१८८४-१९१५); ३. John Masefield (ज० १८७८); ४. Thomas Stearns Eliot (ज० १८८८); ५. William Butler Yeats (१८६५-१९३९)

आधुनिक जीवन का स्पर्श करता है। एलियट का प्रभाव देश-विदेश के नवोदित कवियों पर काफ़ी पड़ा, यद्यपि आज की संघर्षमयी परिस्थितियाँ उन्हें उसकी ओर से विमुख कर चली हैं।

यीट्स एलियट का समीपवर्ती हो कर भी उम्र में काफी बड़ा था और १९३९ मे उस का देहान्त हो गया। उसके जीवन में दो पीढ़ियों का काव्य सिरजा गया। स्वयं उसने उन दोनों काल की प्रवृत्तियों का अनुसरण किया। यीट्स की शुरू की कविताओं में अलंकार और माधुर्य अधिक है और वह उनकी पृष्ठ-भूमि अपने देश आयरलैंड की प्रकृति से प्रस्तुत करता है। उस काल की रचनाओं में वह सर्वथा 'रोमांटिक' है। 'दि लेक ऑइल ऑफ इनिसफ्री' उसकी काफी ताजी रचना है। बदलते हुए जमाने और काव्य के रूप को उसने पकड़ा और इसी कारण वह जमाने की दौड़ में पीछे न छूट सका। उसने अपनी बाद की रचनाओं में यद्यपि अतीत के विश्वासों और प्रतिमाओं को निखारा, फिर भी उसकी कल्पना ने कुछ सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कीं, जिन का संग्रह चार खंडों में प्रकाशित हुआ—'दि वाइल्ड स्वान्स एट कूल', 'माइकेल रॉबर्टीज़ एण्ड दि डान्सर', 'दि टॉवर' और 'दि वाइन्डिग स्टेयर'। यीट्स ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' का अनुवाद कर उन्हें पाश्चात्य पाठकों और आलोचकों के सम्मुख पहली बार रखा।

: ११ :

नाट्य-साहित्य

शेक्सपियर से पूर्व (१५९२ तक)

इंग्लैंड में रंगमंचीय खेलों का आरंभ जूलियस सीज़र की विजय के बाद रोमन्ज़ ने किया था। परन्तु उनके इंग्लैंड छोड़ने के साथ ही उन खेलों का अन्त भी हो गया। आरंभ में विदूषक, भाँड़, गायक आदि घूम-घूम कर, स्थान-स्थान, गाँव-गाँव जा-जा कर कुछ ऐसे प्रदर्शन करते रहे, जिनमें विविध चेष्टाओं, भाव-भंगियों, गायन आदि में नाटक का बीज होता था। इन गायकों में जो अभिनय के बीजतत्व के भी धनी थे, वे 'मिन्स्ट्रल' कहलाते थे। उनके प्रदर्शनों में भीड़ काफी इकट्ठी होती थी और, यद्यपि चर्च बराबर इस प्रकार के प्रदर्शनों का विरोध करता था, उसके पादरियों को व्यक्तिगत रूप से इनमें दिलचस्पी थी। लुक-छिप कर वे बराबर इन प्रदर्शनों को देखते थे।

धर्म ने आरंभ में निश्चय ही इस प्रकार के नाट्य-प्रदर्शनों का विरोध किया होगा। परन्तु कालान्तर में वही रंगमंचीय अभिनयों का कुछ काल के लिए आधार बन गया। ईसा के जीवन की अनेक घटनाएँ धीरे-धीरे चर्च की इमारत में अभिनीत होने लगीं जहाँ रंगमंच पर अथवा फैले मैदान में अभिनेता और दर्शक मिले-जुले रहते थे। यह अभिनय बहुत कुछ

आज की हमारी 'रामलीला' की ही भाँति होते थे। शीघ्र ही चर्च को पता चल गया कि धीरे-धीरे इन नाटकों का अभिनय अथवा नाट्य तत्व धार्मिक प्रदर्शनों से बढ़ गया था। उसने उन का रुख फिर बदलना चाहा पर अब स्थिति उनके हाथ से बाहर निकल गई थी और तेरहवीं-चौदहवीं सदियों में अभिनय ने सर्वथा धर्मेतर लौकिक रूप धारण कर लिया। चर्च ने रंगमंच अपनी इमारतों से अलग कर दिया।

धार्मिक नाटकों में पहले लैटिन भाषा का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता था। अब नाटक के लौकिक हो जाने से उसकी भाषा अंग्रेजी हो गयी। मध्यकालीन श्रेणियों और नागरिक संस्थाओं का नाटकों के प्रदर्शन में विशेष हाथ रहा। नाटकों का अभिनय-क्षेत्र अब नितान्त विस्तृत हो गया। इन लौकिक नाटकों में भी कथानक विशेषतः धार्मिक हीं हुआ करते थे, यद्यपि उनके अन्तरंग अनेक पारिवारिक दृश्यों से भरे होते थे। इन धार्मिक प्रदर्शनों के बाद उन नाटकों की बारी आई जिन्हें मोरैलिटी प्लेज कहते हैं। पन्द्रहवीं सदी के पिछले दशकों के इन नाटकों में सदाचार का अभिनय होता था और आचार संबंधी ही पाप-पुण्यात्मक पात्र इनकी रीढ़ थे। ये नाटक स्वाभाविक ही उद्देश्यपरक थे और आचारादर्श उनका लक्ष्य था। फिर भी उनमें यथार्थ और करुणा का प्रचुर समावेश था।

मोरैलिटी नाटकों के अतिरिक्त कुछ ऐसी संक्षिप्त नाटिकाएँ भी थीं जिन्हें इन्टरल्यूड कहते थे। वे न तो मोरैलिटी नाटकों की भाँति रूपक थीं और न धार्मिक कथाएँ ही थीं। उनका अभिनय अधिकतर ट्यूडर-काल के सामन्त परिवारों में होता था। उस काल की एक विशेष कृति, हेनरी मैंडवल की लिखी, 'फुलगिन्स ऐण्ड लुकरी' है। इस प्रकार की नाटिकाओं में पहली बार सामयिक जनता का भावकोण प्रदर्शित हुआ। १५३३ ईस्वी में प्रकाशित हेवड का 'दि प्ले ऑफ़ दि वैदर' एक मनोरंजक डायलॉग प्रस्तुत करता है। इन इन्टरल्यूडों ने जनता का विशेष मनोरंजन किया। प्रहसन और विनोद अधिकतर ग्राम्य होते थे और अभिनय प्रायः भौंडे, फिर भी इन इन्टरल्यूडों का नाट्य-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बाद ही प्रायः एकाएक—कम-से-कम मध्य की मंजिलों को प्रत्यक्ष करना कठिन है—अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटकों का आविर्भाव हुआ और मार्लो तथा शेक्सपियर अपनी कृतियाँ लेकर साहित्य में उतरे।

मार्लो और शेक्सपियर के आविर्भाव के पहले क्लासिकल ड्रामा (ग्रीक और लैटिन) के अंग्रेजी में कुछ प्रयोग हुए। जॉर्ज गैसक्वाइडनी, निकोलस उदाल आदि ने कॉमेडी और ट्रेजेडी में कुछ सराहनीय प्रयत्न किये। ग्रीक और लैटिन साहित्य का अध्ययन इंग्लैंड में विशेषतः रेनेसान्स से ही आरंभ हो गया था और इस दिशा में ग्रीक और पौराणिक कथाओं ने प्रचुर नाट्य-सामग्री मॉडल के रूप में अंग्रेजी नाट्यकारों के लिए प्रस्तुत कर दी। सेनेका के लैटिन व्याख्यानों ने भी इस दिशा में प्रशस्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। इस क्षेत्र में सेनेका के भावतत्व से अनुप्राणित १५६२ में सैकविल और टॉमस नॉर्टन की

अंग्रेजी कृति 'गोरबोडक' खेली गयी। उसका रूप चाहे लैटिन हो परन्तु कथानक अंग्रेजी था। 'गोरवोडक' वस्तुतः साधारण जनता के लिए नहीं दरबारियों, वकीलों और अन्य बुद्धि-वादी पढ़ी-लिखी जनता के लिए लिखा गया था और स्वाभाविक ही लोकप्रिय न हो सका। इस काल कुछ ऐतिहासिक नाटक लिखे गये जिनको आधार बनाकर शेक्सपियर ने भी अपने अनेक नाटक प्रस्तुत किये। यह सिद्ध हो गया कि स्थानीय और स्वदेशी कथानकों से ही विशेषतः नाटक जनसाधारण के हृदय में स्थान पा सकते हैं। इस दिशा में कीड[1] और मार्लो ने विशेष प्रयत्न किये। टॉमस कीड ने पहली बार अंग्रेजी जनता के लिए उचित नाटक और रंगमंच की रचना की। उसकी 'स्पेनिश ट्रैजेडी' में सेनेका की पृष्ठभूमि किसी न किसी रूप में वर्तमान थी, परन्तु फिर भी उसने उसे उस ट्रैजेडी का रूप दिया जो जनता की समझ से दूर न थी। दिन-रात षड्यन्त्रों के जगत् में रहने वाले लोगों का कीड के इस नाटक ने काफी मनोरंजन किया। स्वयं शेक्सपियर कीड की इस 'स्पेनिश ट्रैजेडी' से प्रभावित हुआ। क्रिस्टोफर मार्लो केम्ब्रिज का तरुण नाटककार था। प्रायः ३० वर्ष की आयु में नाटक के क्षेत्र में बहुत कुछ करके वह मर भी गया। परन्तु उसकी कृतियों ने अंग्रेजी नाट्य-साहित्य में एक विप्लव उपस्थित कर दिया। मार्लो का जीवन स्वयं विद्रोहात्मक था और उस काल के राजनीतिक षड्यन्त्रों में भी, कहते हैं, उसका हाथ रहा था। उसकी चार महत्त्व की रचनाएँ ट्रैजेडी के रूप में १५८७ और १५९३ के बीच प्रस्तुत हुई। वे थीं 'टम्बरलेन दि ग्रेट' (दो भागों में), 'ट्रैजिकल हिस्ट्री ऑफ डॉक्टर फॉस्ट्स', 'दि ज्यू आफ़ माल्टा' और 'एडवर्ड दि सैकेंड'।

इनमें पहली रचना में तातार सरदार तैमूर की क्रूरता और विजयों का निदर्शन है। डॉक्टर फॉस्ट्स में मार्लो ने एक धार्मिक दार्शनिक भावना का व्यक्तिगत प्रकाशन किया जिसमें अन्तर्वृत्तियों का संघर्ष मुख्य था। 'दि ज्यू ऑफ माल्टा' में बाराबास नाम के एक यहूदी का चित्रण है जिसने ईसाइयों के अत्याचार का बदला अनाचार से दिया। एडवर्ड द्वितीय में उसी नाम के राजा के भावावेगों और कमजोरियों का वर्णन है। मार्लो ने मुक्त छन्द में एक नयी साहित्यिक चेतना अपने नाटकों में रखी, जो न केवल साहित्य के दृष्टिकोण से क्रांतिकारी थी बल्कि धार्मिक दृष्टिकोण से भी, क्योंकि उसने 'टम्बरलेन' के माध्यम से सारी अपार्थिव धार्मिकता को चुनौती दे दी। पार्थिव जीवन, जैसे भौतिक को सत्य मान, अनिश्चित के अपने बन्ध तोड़ स्वतन्त्र हो गया। 'दि ज्यू ऑफ माल्टा' जरूर कुछ कमजोर है परन्तु 'एडवर्ड द्वितीय' 'टम्बरलेन' और 'फॉस्ट्स' की ही भाँति सफल है। मार्लो ने अंग्रेजी ट्रैजेडी को मुक्त छन्द की शालीनता दी जो नाट्यांकन में चिरप्रतिष्ठित हुई।

कीड और मार्लो ने जिस प्रकार ट्रैजेडी को सुघड़ता दी उसी प्रकार जॉन लिली[2]

---

१. Thomas Kyd (१५५८-९४) २. John Lyly (१५५४-१६०६)

और रॉबर्ट ग्रीन[1] ने कॉमेडी की रूपरेखा सँवारी। लिली के दर्शक दरबारी थे और उसके अभिनेता अधिकतर बच्चे। लिली की अनेक नाट्य रचनाएँ आज हमें उपलब्ध हैं, 'कैंपेसपे' 'सैफो एण्ड फाऑोन', 'गैलेथिया', 'एन्डिमियन', 'मिडास', 'मदर बौम्बी', 'लव्ज़ मेटा-मोरफोसिस' और 'दि वोमन इन दि मून'। इनमें अन्तिम नारी के ऊपर एक सुन्दर व्यंग्यात्मक पद्य-नाटक है। लिली यूफ्यूइज्म का जनक कहलाता है। उसकी कला शिष्ट वर्ग के लोगों के लिए थी। शेक्सपियर के शीघ्र ही अद्‌भुत कॉमेडी कृतियाँ रचने के कारण लिली अन्धकार में पड़ गया नहीं तो स्वयं उसकी रचनाओं का कुछ कम महत्व न था।

रॉबर्ट ग्रीन कवि, नाटककार, गद्य-लेखक आदि सभी कुछ था। उसने अपने कथानकों में विविध सामाजिक दलों और भिन्न बौद्धिक मात्राओं के चरित्र एकत्र कर प्रस्तुत किये। वह भी प्रहसनकार (कॉमेडियन) ही था और उसने काल्पनिक जगत् को समसामयिक संसार में ओतप्रोत कर अपनी कॉमेडियों में प्रदर्शित किया। उसकी विशिष्ट कृतियाँ 'फ्रायर बेकन एण्ड फ्रायर बन्गे' और 'स्कॉटिश हिस्ट्री ऑफ जेम्स दि फोर्थ स्लेन एट फ्लौडन'।

सोलहवीं सदी के अन्त तक अंग्रेजी नाटक का रूप स्पष्टतः प्रतिष्ठित हो गया। अब उनका प्रदर्शन केवल राजकीय दरबार में ही न होकर जनता में भी होने लगा, यद्यपि नगरों के प्यूरिटन शासकों का दृष्टिकोण उनके प्रति कठोर होने से उन्हें नगर के बाहर सरायों में ही खेलना पड़ता था। अभिनेताओं को भी उस काल बड़ी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती थीं, क्योंकि कानून उनके काम को जायज़ न मानता था और समाज भी उन्हें अधिकतर धूर्त्त और बदमाश ही समझता था। इसी कारण उन्हें रानी अथवा विशिष्ट सामन्तों के संरक्षण में उनके 'जनों' के रूप में रहना पड़ता था। रंगमंच भी आज के रंगमंच से भिन्न था; उसकी छत न थी, मंच एक ऊँचा प्लेटफॉर्म था। पीछे की छत में एक अट्ट था जहाँ से बिगुल बजाकर खेल का आरंभ सूचित कर दिया जाता था। मंच पर पर्दे न थे और उसे श्रोतागण तीन ओर से घेरे रहते थे। कीमती वस्त्र पात्रों के रूप और स्थिति को व्यक्त करते थे। मंच के पीछे दोनों ओर एक-एक दरवाजा होता, जिससे पात्र आते-जाते थे।

: १२ :
शेक्सपियर और उसके परवर्ती
(१५९२-१६४२)

जिस अंग्रेजी नाट्य-साहित्य ने संसार के साहित्य-क्षेत्र में अपना असाधारण स्थान बनाया उसका अनुपम स्रष्टा विलियम शेक्सपियर था। शेक्सपियर स्ट्रैटफोर्ड ऑन एवॉन

१. Robert Greene (१५६०-९२)

का रहने वाला था और अभिनेता तथा नाटककार दोनों था। उसके पहले भी इंग्लैंड में नाटककार हुए थे, परन्तु जिस रूप और मात्रा में उसने अपनी समकालीन जनता को आकृष्ट किया वैसा न कभी किसी ने पहले किया था न पीछे किया। संसार के नाटक-क्षेत्र पर उसने असाधारण प्रभाव डाला।

शेक्सपियर ने अपनी जनता के लिए लिखा, अंग्रेज नागरिकों और अंग्रेजी राज-दरबार के लिए। भाषा, भाव-व्यंजना, नाटकीय प्रभाव और चरित्र-चित्रण में वह लासानी है। उसने लिखा भी अमित मात्रा में, प्रायः ३६ नाटक अपनी कविताओं के अतिरिक्त। इनमें कुछ ऐतिहासिक हैं, कुछ अनैतिहासिक, कुछ कॉमेडी (सुखान्त अथवा विनोद व्यंग्य-युक्त नाटक), कुछ ट्रैजेडी (दुखान्त नाटक), कुछ रोमांटिक कॉमेडी और कुछ रोमांटिक ट्रैजेडी। अपने ऐतिहासिक नाटकों के लिए उसने सामग्री इंग्लैंड और विदेशों के इतिहास से ली, रेफएल होलिंशेड के 'क्रॉनिकल्स' और प्लूटार्च की 'लाईव्ज़' से।

शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटक हैं—'हेनरी दि सिक्स्थ' (तीन भाग का नाटक) 'रिचर्ड सैकेण्ड और रिचर्ड थर्ड', 'हेनरी फोर्थ' (दो भाग) और 'हेनरी फिफ्थ'। इनमें से अधिकतर उस महाकवि की प्रारंभिक कृतियाँ हैं। इनमें रिचर्ड-संबंधी नाटक ट्रैजेडी हैं। उसकी अनैतिहासिक कॉमेडियों की संख्या भी काफी है और उन्होंने नाटकीय सफलता असाधारण मात्रा में अर्जित की। 'लव्ज़ लेबर्स लॉस्ट', 'दि टू जेन्टिलमेन ऑफ वेरोना', 'दि कॉमेडी ऑफ ऐरर्स', 'दि टेमिंग ऑफ दि श्रू', 'ए मिडसम्मर नाइट्स ड्रीम', 'मच अडो अबाउट नथिंग', 'ऐज़ यू लाइक इट', 'ट्वेल्व्थ नाइट', 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस', 'ऑल्ज़ वैल दैट एन्ड्स वैल', 'ट्रायलस एण्ड क्रेसिडा'—सब नाटकीय जगत् में विख्यात हैं और आज भी संसार के अभिनय-क्षेत्र पर छाए हुए हैं। इनमें 'ए मिडसम्मर नाइट्स ड्रीम' कॉमेडी के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखता। इन कॉमेडियों में प्लॉट का महत्व विशेष नहीं है। वस्तु के रूप में शेक्सपियर साधारण से साधारण स्थिति या घटना चुनता है परन्तु अपनी लेखनी के जादू से, शब्दावली से, चरित्र-चित्रण से, व्यंग्यात्मक चोट से, उन्हें असामान्य, सर्वथा अपना बना देता है—एक नई दुनिया, पर जानी-देखी हुई दुनिया, जिसमें प्रणय और घृणा, क्रोध और दया, मिलन और विरह, ईर्ष्या और जलन, चाटुकारिता—सभी अपने आवश्यक आवेशों के साथ अभिसृष्ट होते हैं और असाधारण शक्ति से हमें वशीभूत कर लेते हैं। समसामयिक संसार पर तो शेक्सपियर ने चोटें कीं ही, विगत ग्रीक जगत् को भी, जो क्लासिकल रूप में उस काल स्तुत्य हो गया था, उसने न छोड़ा—'ट्रायलस एंड क्रेसिडा' में उसे भी व्यंग्यात्मक बाणों से जर्जर कर दिया।

शेक्सपियर की महान् ट्रैजेडी-रचनाएँ 'हैमलेट', 'ओथैलो', 'मैक्बेथ', 'किंग लियर', 'ऐण्टॅनी एण्ड क्लियोपेट्रा' और 'कोरियोलेनस' हैं। ये सारे सत्रहवीं सदी के पहले छह सालों

में लिखे जा चुके थे। परन्तु केवल इन्हीं तक उस महाकवि के दुःखात्मक आवेगों का अंकन सीमित नहीं है। वस्तुतः 'रिचर्ड सेकण्ड' और 'रिचर्ड थर्ड' के रूप में ही वह अंशतः ट्रैजेडी प्रस्तुत कर चुका था। जिस प्रकार उसने रोमांटिक कॉमेडियों की रचना की थी, रोमांटिक ट्रैजेडियों का भी सृजन किया। उनका एक सुघड़ नमूना 'रोमियो एण्ड जूलियट' है। 'जूलियस सीज़र' में शेक्सपियर ने विगत रोमन इतिहास का संसार फिर से सिरजा और वह इतना सजीव कि उस प्रकार का कोई नाटक न पहले कभी लिखा जा सका था, न पीछे लिखा जा सका। इन ट्रैजेडियों में शेक्सपियर की कला ने अद्भुत शक्ति धारण कर ली है। 'हैमलेट' खून, आत्महत्या, विक्षेप की कहानी है, परन्तु उसके पात्रों का चित्रण अद्भुत है और छन्द का व्यवहार असाधारण निपुण। 'हैमलेट' पुनर्जागरण काल का प्लॉट लेकर रंग-मंच पर अवतरित होता है। पुनर्जागरण काल की कला, ज्ञान, पापाचरण, शालीन वातावरण सभी कुछ उसके अन्तर्मुख, सयाने, तरुण राजकुमार के चतुर्दिक घूमते हैं। इसमें दृश्य जगत् की सक्रियता अन्तर्मेधा के चिन्तन से होड़ करती है। 'ओथैलो' प्रणय-संकट, ईर्ष्या और भावावरोध की करुण कहानी है। 'मैक्बेथ' भग्न महत्वाकांक्षा का विमूर्तन है, जिसमें भाषा और भाव सम्मिलित चोट करते हैं। जीवन की निस्सारता को अभिव्यक्त करते हैं। 'किंग लियर' दुःखान्तक नाटकों में जैसे वीर काव्य है, महाकाव्य की शालीनता लिए हुए, प्रायः वन्य, शक्तिम। 'ऐन्टॅनी एण्ड क्लियोपेट्रा' में जो मर्यादा प्रणय और नारी को दी है महाकवि ने उन्हें अपनी अन्य कृतियों में और कहीं न दी। इसके दोनों चरित्र शेक्सपियर के सबसे कुशल, सफल और सर्वथा अकृत्रिम चरित्रों में हैं, प्रायः अनुपम। 'कोरियोलेनस' इसके विपरीत राजनीतिक ट्रैजेडी है जिसमें राजनीतिक गांभीर्य वातावरण को कठोर बनाए हुए है।

'दि विन्टर्स टेल' और 'दि टैम्पेस्ट' शेक्सपियर की पिछली रोमांटिक रचनाएँ हैं। इनमें वह अपनी कुशल ट्रैजेडियों से हट आया है। इनमें से पहली में पशुपालन (पैस्टोरल) संसार जी उठा है, परन्तु संसार जो अनजाना नहीं है, पहचाना जा सकता है। 'दि टैम्पेस्ट' में पार्थिव-अपार्थिव दोनों शक्तियों का प्रदर्शन है और इसमें कवि की जाग्रत मेधा का विकास है।

महाकवि शेक्सपियर नाटक के संसार में प्रायः अकेला है, काव्य-कुशलता में, नाटकीय प्रभाव में, चरित्र-चित्रण में, वस्तु के संघटन में, भाषा और भाव में। वह अपनी जनता की आवश्यकताएँ-कामनाएँ, गुण-दोष जानता है, साथ ही अपने रंगमंच की सीमाओं को भी। उनके अनुकूल ही वह अपने नाटकों के स्थल प्रस्तुत करता है और असामान्य रूप में सफल होता है।

शेक्सपियर के समवर्ती

शेक्सपियर अंग्रेजी साहित्य में इतना असाधारण है कि उसके सूर्य के समान-तेज से और नक्षत्रों का मलिन हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यद्यपि उसकी महा-

नता को उसके समकालीन नाटककार न प्राप्त कर सके, निस्सन्देह अनेक ऐसे थे जिनका अंग्रेजी साहित्य में अपना स्थान है। बैन जॉनसन इसी प्रकार का एक यशस्वी व्यक्तित्व था जो शेक्सपियर का अनेकार्थ में एक प्रकार से जवाब है। जॉन्सन क्लासिकवादी है, ग्रीक और लैटिन नाटकों का पोषक और नाटक के क्षेत्र में सुधारवादी। रोमांचक शैली से मुँह फेर उसने यथार्थवाद को अपनाया और कॉमेडी के क्षेत्र में उसने काल, स्थान तथा प्लॉट की एकता स्थापित करने का प्रयास किया। उसकी प्रारंभिक कृतियों में 'एवरी मैन इन हिज ह्यूमर' अमर हो गया है। उसके पात्र विनोदी हैं और उसने उनके रुग्ण आचार की अच्छी खिल्ली उड़ाई है। उसे कुछ लोगों ने सत्य ही १७वीं सदी का डिकेन्स कहा है। सम-सामयिक व्यापार और धन ने मध्यवर्गीय जनता को जो नितान्त भ्रष्ट कर दिया था तो जॉन्सन अपने नाटकों में उसका भण्डाफोड़ करने से न चूका। बेन जॉन्सन अत्यन्त मौलिक है और उसके नाटकों ने काफी ख्याति भी पाई है, यद्यपि जितनी ख्याति उसे उनके द्वारा मिलनी चाहिए थी उतनी मिली नहीं। 'वोल पोने', 'दि साईलैंट वोमन', 'दि अलकेमिस्ट' और 'बार्थोलोमिओ फेयर' अंग्रेजी साहित्य की कॉमेडी के क्षेत्र में अनूठी रचनाएँ हैं।

बेन जॉन्सन ट्रैजेडी के क्षेत्र में इतना सफल न हुआ। 'सेजेनस' और 'कैटिलीन' ट्रैजेडी के क्षेत्र में उसकी कृतियाँ हैं जिनमें जीवन का अभाव है और जिनके पात्र मूर्च्छित से हैं। शेक्सपियर की समकालीनता जॉन्सन की ख्याति में विशेष घातक सिद्ध हुई।

इस काल का दूसरा नाटककार जॉर्ज चैपमैन[1] है जो विशेषतः होमर के अपने अनुवाद के लिए प्रसिद्ध है। उसने तीन ऐतिहासिक ट्रैजेडी लिखीं—'बुस्सी डि एम्ब्वॉए', 'दि रिवैंज ऑफ बुस्सी डि एम्ब्वॉए' और 'दि ट्रैजेडी ऑफ चार्ल्स, ड्यूक ऑफ बिरोन' इनकी ऐतिहासिकता फ्रांस के दरबार से सम्बद्ध है और मार्लो से काफी प्रभावित उसकी शब्दावली शालीन है, यद्यपि नाटकीय क्षेत्र में उसको महान् कहना शायद उचित न होगा।

१७वीं सदी के कुछ यथार्थवादी नाटककार डैक्कर, फ्लैचर, टूअरनेर आदि हैं। टॉमस डैक्कर[2] यथार्थवादी होता हुआ भी रोमांटिक था। श्रमिकों का वह हिमायती था और अपने 'शू मेकर्स हॉलीडे' में उसने उनका प्रशंसनीय वर्णन किया है। उसकी रचना 'दि ऑनेस्ट व्होर' बड़ी करुण कृति है जिसमें उसने यथार्थवादी ढंग से समसामयिक समाज का चित्रण किया है। डैक्कर जहाँ श्रमिकों और साधारण नागरिकों को अपना पात्र बनाता है टॉमस हेवुड[3] नये उठते हुए मध्यवर्ग को चित्रित करता है जैसा उसके 'ए वोमन किल्ड विद् काइण्डनेस' से प्रकट है। इस कृति में साधारण जनता का दिग्दर्शन निस्संदेह उचित नहीं

---

१. George Chapman (१५५९-१६३४); २. Thomas Dekker (१५७०-१६४१); ३. Thomas Heywood (१५७५-१६५०);

कहा जा सकता। फिर भी इतना सही है कि अब इंग्लैंड में ऐसे नाटककार उत्पन्न हो गये थे जिन्होंने अपने कृतित्व का क्षेत्र दरबार से हटाकर विस्तृत जनसाधारण पर रखा। ब्योमोन्ट और फ्लेचर, दोनों ने नागरिकों को अपने नाटकों का केन्द्र बनाया।

जॉन फ्लेचर[1] और फ्रांसिस ब्योमोंट[2] दोनों ने पहले कुछ काल सम्मिलित रूप से लिखा। 'दि नाइट ऑफ दि बर्निंग पेस्टल' उनकी सम्मिलित रचना है जिसमें उन्होंने नागरिकों के विश्वासों की आलोचनापूर्ण अभिव्यंजना की। उनकी तीन कृतियाँ 'फिलैस्टर' 'दि मेड्स ट्रैजेडी', और 'ए किंग एण्ड नो किंग' विशेष जानी हुई हैं। इन ट्रैजेडियों का क्षेत्र यथार्थता से काफी दूर है और नाटक-शैली भी यथार्थवादी नहीं कही जा सकती। कृत्रिम आवेगों का उनमें बरबस योग है। अपनी कृत्रिमता के ही कारण वे शेक्सपियर की-सी स्वाभाविकता अपनी कृतियों में प्रस्तुत न कर सके।

१७वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अपार्थिव प्रसंगों की भी काफी रचना हुई। वैब्स्टर[3] ऐसे नाटककारों में काफी प्रसिद्ध हो गया है। उसकी दोनों रचनाओं—'दि ह्वाइट डेविल' और 'दि डचेज़ ऑफ मालफ़ी'—में कथानक प्रतिशोध-प्रधान हैं। शेक्सपियर के 'हैमलेट' की भाँति उसकी शैली में षड्यन्त्र ललित कला का रूप धारण कर लेते हैं। उसकी रचना में नाट्य तत्त्व प्रभूत है जिसका प्राण कथानक की भयंकरता है। जीवन को जॉन वैब्स्टर अपनी कृतियों में भ्रष्ट, भयानक और क्रूर प्रकाशित करता है। सीरिल टूअरनेर[4] की ट्रैजेडी 'दि रिवेंजर्स ट्रैजेडी' और 'दि एथीस्ट्स् ट्रैजेडी' में वैब्स्टर की शैली असाधारण रूप धारण कर लेती है। उसके पात्र नितान्त क्रूर और प्रतिशोधवादी हो जाते हैं, चरित्र नितान्त भ्रष्ट। दरबार का चित्र ही इन कृतियों का क्षेत्र भी है। अस्वाभाविक पुतलियों की भाँति उसके पात्र चलते-फिरते हैं। वैब्सटर की ही भाँति टूअरनेर भी अपने नाटकों में प्रधानतः कवि है।

ब्योमौन्ट और फ़्लैचर की ही भाँति अनेक तत्कालीन नाटककारों ने सम्मिलित रचना की जिससे उनका व्यक्तिगत मूल्यांकन और स्वतंत्र कृतिमत्ता की व्याख्या कठिन है। उनमें कुछ की कृतियों का हवाला दिया जा सकता है। टॉमस मिडिलटन[5] का नाम दो कॉमेडियों से सम्बद्ध है—'ए चेस्ट मेड इन चीप साइड' उनमें विशेषतः प्रसिद्ध है। उसकी ट्रैजेडियों में विख्यात है 'दि चैन्जलिंग' जिसमें शेक्सपियर और वैब्स्टर दोनों की शैलियों का योग है। यह कृति भी भयानक घटनावादी है। फ़िलिप मासिंजर[6] कॉमेडी का सफल नाटककार माना जाता है और उसने अपनी 'ए न्यू वे टु पे ओल्ड डेट्स' नामक रचना में

---

१. John Fletcer (१५७९-१६२५); २. Francis Beaumont (१५८४-१६१६);
३. John Webster (१५७५-१६२४); ४. Cyril Tourneur (१५७५-१६२६);
५. Thomas Middleton (१५७०-१६२७); ६. Philip Massinger (१५८४-१६३९);

जॉन्सन की ही भाँति मानव-स्वभाव की रुग्णता पर भयंकर व्यंग्य प्रस्तुत किया है। उठते हुए वणिक्-वर्ग की हृदयहीनता का इतना भण्डाफोड़ १७वीं सदी की रचनाओं में कम हुआ है।

: १३ :

पुनर्जागरण काल का अंत

(१६४२–१७०२)

१६४२ ईस्वी में प्यूरिटनों ने इंग्लैंड में थ्येटर बन्द कर दिये। स्वाभाविक ही था कि नाटकों की रचना की गति यदि सर्वथा बन्द नहीं हो जाय तो कम-से-कम रुक जाय। हुआ भी ऐसा ही। जो कुछ नाटक उस काल या उसके बाद लिखे भी गये, वे नितान्त नगण्य और अस्वाभाविक हैं। जॉन फोर्ड[1] और जेम्स शर्ले[2] ने अपने नाटकों में भ्रष्टाचार, क्रूरता और भयानकता का चित्रण करते हुए अधिकाधिक करुणाव्यंजित काव्यकारिता प्रस्तुत की। गृह-युद्ध के आरंभ के साथ-साथ अंग्रेजी ड्रामा का सर्वोन्नत युग समाप्त हो गया।

चार्ल्स द्वितीय के राज्यारोहण के बाद १६६० में इंग्लैंड में थ्येटर फिर खुले। जॉन्सन, शेक्सपियर फिर रंगमंच पर अवतरित हुए, यद्यपि नाटक के क्षेत्र में यह नया जीवन अधिकतर राज-दरबार तक ही सीमित रहा। चार्ल्स-द्वितीय और उसकी बहन हेनरीएटा (जिसकी शादी लुई चतुर्दश के अनुज और लीन्स से हुई थी) दोनों फ्रेंच दरबार में रह चुके थे और उसके उपासक थे। उन्होंने स्वदेश लौट कर जो कामुकता की धारा बहा दी वह इंग्लैंड के इतिहास में बेजोड़ थी। थ्येटर भी उन्हीं के प्रयास और संरक्षा में फिर खुले।

उस काल की नाटक-परंपरा में कॉमेडी का विशेष प्रभाव बढ़ा। इथरेज, वाइकरले और कांग्रीव ने कॉमेडी का अंग्रेजी में नये रूप से निर्माण किया। तीनों दरबारवादी थे और तीनों ने अभिजात-कुलीय जीवन के ही प्रसंगों का खुले तौर से चित्रण किया। सर जॉर्ज इथरेज[3] ने अपनी रचना 'दि मैन ऑफ मोड' में इस शैली का विशेष प्रयोग किया जिसमें शालीन नर-नारियों का विनोदपूर्ण अंकन हुआ। विलियम वाइकरले[4] की नाट्य-शैली इथरेज से कहीं प्रखर थी और उसे उसने विनोद और भ्रष्टाचार के दृश्यों तक ही सीमित न रखा, बल्कि उसमें व्यंग्य की तीव्रता भी पूर्ण रूप से जोड़ दी। अंग्रेज़ी रंगमंच पर उसकी चार रचनाओं ने सदा के लिए अपना स्थान बना लिया है। ये हैं—'लव इन ए वुड'

---

१. John Ford (१५८६-१६३९); २. James Shirley (१५९६-१६६६); ३. George Etherege (१६३४-१६९०); ४. William Wycherley (१६४०-१७१५)

(१८७१), 'दि जेन्टिलमैन डान्सिग मास्टर' (१६७३), 'दि कंट्री वाइफ (१६७५) और 'दि प्लेन डीलर' (१६७६)। इनमें पिछली दोनों कृतियाँ वाइकरले की शैली और शक्ति को पूर्णतः प्रकट करती हैं। विलियम कांग्रीव तीनों में सबसे अधिक संयत है। उसके डायलॉग बेजोड़ हैं, उसकी ख्याति २५ वर्ष की ही आयु में देश भर में फैल गयी। उस ख्याति को अर्जित करने का श्रेय उसके नाटक 'दि ओल्ड बैचेलर' (१६९३) को है। इसके अतिरिक्त उसने तीन कॉमेडी और लिखीं 'दि डबल डीलर' (१६९४), 'लव फॉर लव' (१६९५), 'दि वे ऑफ दि वर्ल्ड' (१७००)। उसने एक ट्रैजेडी भी लिखी, 'दि मोर्निंग ब्राइड'। नाटककार के रूप में उसकी महत्ता उसके अंकन की सर्वांगीणता में है। उसका दृष्टिपथ विस्तृत है और उसका अंकन समुचित। उसने नेक और बद का अपने नाटकों में चित्रण नहीं किया, बल्कि शिष्ट और अशिष्ट का, प्रखर और मन्द चित्रण किया है। विलियम कांग्रीव का नाम भी अंग्रेजी साहित्य के कॉमेडीकारों में अमर हो गया है।

१७वीं सदी के अन्त में सर जॉन वैनब्रू[1] ने अपनी रचना 'दि रिलैप्स' (१६९६) और जॉर्ज फर्गुहर[2] ने 'दि बोज स्ट्रैटेजम' १८वीं सदी के आरंभ में (१७०७) में लिखीं। पिछली कृति १८वीं सदी के विस्तृत आलोक के रूप में उस काल के उपन्यास-संसार की भूमिका है। नाटक की पृष्ठभूमि दरबारी बैठकों से हटकर गाँव और नगरों को ढक लेती है। उस काल का अंग्रेजी साहित्य वस्तुतः अपनी कॉमेडियों के लिए प्रसिद्ध है परन्तु तब कुछ 'हीरोइक' (वीरपरक) ड्रामा भी लिखे गये। इस क्षेत्र में ड्राइडन ने सराहनीय प्रयत्न किया। उसका सुन्दरतम नाटक 'औरंगजेब' (१६७५) है। अपनी रचना 'ऑल फॉर लव' में उसने शेक्सपियर द्वारा प्रस्तुत 'ऐन्टॅनी एण्ड क्लियोपेट्रा' की कहानी फिर से कही और उसमें उसने मुक्त छन्द का प्रयोग किया। टॉमस ओटवे[3] इस दिशा में ड्राइडन से अधिक समर्थ हुआ और उसने १६८२ ईस्वी में 'वेनिस प्रिजर्वड' लिखकर एलिज़ाबेथ-कालीन शैली का पुनरुद्धार किया।

: १४ :

नाटक का पुनरुत्थान

(१७०२–१७७०)

१७३७ ईस्वी के लाइसेन्सिंग ऐक्ट ने नाटककारों की दुःशीलता से ऊब कर भाषा और चित्रण की कुछ सीमाएँ बाँध दीं जिससे अनेक नाटककार नाटक के क्षेत्र से अलग हो गये। हेनरी फील्डिंग इसी प्रकार का एक साहित्यिक था, जिसने नाटक का क्षेत्र छोड़कर

१. Sir John Vanbrugh (१६६४-१७२६); २. George Furguhar (१६७७-१७०७); ३. Thomas Otway (१६५२-८५);

उपन्यास का क्षत्र अपनाया। नाटकों के सैन्सर की जो परंपरा तब प्रतिष्ठित हुई वह आज भी प्रतिष्ठित है। उस काल के अभिनय-क्षेत्र में दो नाम अमर हो गये—गैरिक[१] और मिसेज सिडौन्स। इसी मिसेज सिडौन्स का चित्र लिखकर सर जोशुवा रेनाल्ड्स ने अपने को धन्य माना।

१८वीं सदी की प्रारंभिक कृतियों में जॉन गे[२] की 'दि बैगर्स ओपेरा' (१७२८) काफी प्रसिद्ध है। अनेक आलोचकों ने वालपोल पर इसे एक व्यंग्य माना है। इस कृति ने अनेक परवर्ती नाटककारों को प्रभावित किया यद्यपि वे इसकी प्रखरता प्राप्त न कर सके। सामाजिक क्षेत्र में एक नया जीवन मूर्तिमान हो रहा था, एक नयी दुनिया इंग्लैंड की जमीन पर खड़ी हो रही थी और साहित्य में भी तदनुकूल परिवर्तन स्वाभाविक था। भावों और आवेशों की पृष्ठभूमि पर एक नयी अनुभूति की चेतना जगी और १८वीं सदी के नाटककारों ने उसकी प्रतिष्ठा में विशेष योग दिया। उसके प्रारंभिक प्रवर्तकों में एक रिचर्ड स्टील[३] है जिसने १७०५ में 'दि टैन्डर हज़बैंड' लिखकर गार्हस्थ जीवन के सौंदर्य का निरूपण किया। जॉर्ज लिल्लो[४] और भी नीचे उतरकर साधारण की परंपरा में खड़ा हुआ और अपने 'लन्डन मर्चेन्ट ऑर दि हिस्ट्री ऑफ दि जॉर्ज बार्न वेल' में जो उसने अप्रैंटिस के जीवन का सही गम्भीर और अकृत्रिम खाका खींचा वह ड्रामा के क्षेत्र में एक नया भाव लेकर उतरा। ह्यू कैली[५] और रिचर्ड कम्बरलैण्ड[६] ने भावों के जगत् में अपनी लेखनी चमत्कृत की। कम्बरलैंड की कृति 'दि वेस्ट इण्डियन' (१७७१) ने तो भावनाओं के संसार में मानव-प्रश्नों को सर्वथा डुबो दिया। उसका आकार उसकी शैली में सर्वथा नगण्य हो गया। और तब प्रख्यातनामा गोल्डस्मिथ और शैरिडन ने अकृत्रिम, स्पष्ट, मानवेंगित नाटक की कैली और कम्बरलैंड की परंपरा से रक्षा की।

ऑलिवर गोल्डस्मिथ अंग्रेजी साहित्य के महान् व्यक्तित्वों में है। १७६८ ईस्वी में उसने 'दि गुड नेचर्ड मैन' लिखा और पाँच वर्ष बाद 'शी स्टूप्स टु कांकर'। इनमें दूसरी कृति तो आज भी रंगमंचों का (विशेषकर गैर पेशेवाले) आकर्षण है। अकृत्रिम मानवता जैसे इसमें सजीव हो उठी है। यद्यपि उसमें असम्भाविता की मात्रा कुछ कम नहीं, पात्रों का अंकन अद्भुत शक्ति के साथ हुआ है। हार्डकेसल और टोनी लम्पकिन अपना व्यक्तित्व रखते हुए भी उस काल के जीते-जागते विनोदी जीव हैं।

परन्तु १८वीं सदी के उस उत्तरार्द्ध में जिसमें गोल्डस्मिथ ने अपनी रचनाएँ कीं, रिचार्ड शैरिडन[७] अनुपम हुआ। वह कभी परराष्ट्र-विभाग का उपमंत्री और ट्रेजरी का

---

१. David Garrick (१७१७-७९); २. John Gay (१६९५-१७३२)
३. Richard Steele (१६७२-१७२८); ४. George Lillo (१६९३-१७३९)
५. Hugh Kelly (१७३९-७७); ६. Richard Cumberland (१७३२-१८११)
७. Richard Brinsley Sheridan (१७५१-१८१६)

मंत्री था। उस काल के रंगमंच के प्रमुख निर्माताओं में शैरिडन अग्रणी था। उसकी ख्याति उसकी तीन कॉमेडी-कृतियों पर अवलंबित है—'दि राइवल्स' (१७७५), 'दि स्कूल फॉर स्कैन्डल' (१७७७), 'दि क्रिटिक' (१७७९)। शैरिडन नितान्त प्रखर बुद्धि और असाधारण मौलिक था और कॉमेडी के क्षेत्र में उसने पुनर्जागरण-काल की सजीवता फिर से प्रस्तुत की। उसकी प्रवृत्ति निश्चय ही रोमांचक है। चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में तो वह नितान्त अनूठा है और उसने बैन जॉन्सन की कृतिमत्ता पुनः स्थापित कर दी। हाँ, यह मानना होगा कि शैरिडन की दुनिया में न कोई गहराई है, न मानव-स्वभाव की कोई पहचान या व्याख्या। फिर भी अपने अल्पकालीन साहित्यिक जीवन में उसने जो कुछ रचा वह प्रतीक बन गया। जिस प्रसाद और सरलता से वह अपने पात्र उपस्थित करता है और दृश्य रँगता है वह साधारण नहीं। 'दि स्कूल फॉर स्केन्डल' में उसकी शैली प्रखर और अधिक सक्रिय हो उठती है और दृश्य नितान्त अकृत्रिम हो जाते हैं। विनोद और हास्य की अभिसृष्टि जितनी उसकी कॉमेडियों में हुई है, उतनी अन्यत्र उपलब्ध नहीं। १८वीं सदी के उत्तरार्द्ध का जो चित्रण उसने किया है उतना कोई अन्य नाटककार न कर सका।

: १५ :

शेरिडन से शॉ तक

(१७७०–१९५०)

औद्योगिक क्रान्ति

शैरिडन के बाद अंग्रेजी नाटच साहित्य पर जैसे तुषारापात हो गया। जहाँ कहानी, उपन्यास और कविता की साहित्य में भरमार हो गई, वहाँ नाटक का क्षेत्र जैसे सर्वथा अनुर्वर सिद्ध हुआ। उन्नीसवीं सदी रोमांटिक कवियों का सृजन-काल है। ऐसा नहीं कि नाटक लिखने के प्रयत्नों से वह काल सर्वथा रहित हो। नाटक लिखे गये और रोमांटिक कवियों ने स्वयं अनेक रचनाएँ उस दिशा में प्रस्तुत कीं। परन्तु वस्तुतः वे असफल रहीं। शेली की 'चेंची' को छोड़कर और कोई रोमांटिक कृति सफल न हुई और वह 'चेंची' भी सर्वथा यौन होने के कारण रंगमंच पर अभिनीत नहीं हो सकी, अथवा कम-से-कम इंग्लैंड के तत्कालीन सेंसर के अनुकूल नहीं हो सकी।

उस काल, एलिज़ाबेथ-काल के अर्थ में नाटक तो नहीं, परन्तु प्रहसन और मेलोड्रामा जरूर लिखे गये। नाटक के प्रति इस उदासीनता का कारण न केवल अभिनय के प्रति रोमांटिकों की उदासीनता थी वरन् राजदरबार की उपेक्षा भी उसका एक कारण था। विक्टोरिया को राजनीति साहित्य से अधिक प्रिय थी और इस दिशा में एलिज़ाबेथ से वह सर्वथा भिन्न थी। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के नाटक को दरबार की संरक्षा न प्राप्त हो

सकी, यद्यपि दरबार की संरक्षता प्राप्त न होना नाटक की सृष्टि में विशेष कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि आखिर शेक्सपियर या शॉ के नाटकों को भी तो वह संरक्षा आज उपलब्ध नहीं और अपनी नाटकीय कुशलता के कारण ही तो आखिर वे लोकप्रिय हो सके हैं। नाटक के ह्रास का विशेष कारण हमें अन्यत्र खोजना होगा—जनता की उदासीनता में। औद्योगिक क्रान्ति ने एक नये मध्यवर्ग और उससे भी समृद्ध धनी वर्ग की अभिसृष्टि कर दी थी और ये दोनों साहित्य के प्रति उदासीन थे। एक धन की सीमाओं के बाहर देखता तक न था, दूसरा उसका गुलाम था और कलाकार उनके साथ अपनी आत्मीयता स्थापित न कर सका। सामन्तवाद की हमदर्द संरक्षा उठ चुकी थी और पूंजीवर्ग की संरक्षा उपलब्ध न थी और कलाकार भी रोमांटिक होने के कारण यथार्थवादी न हो सका, नये जीवन के नये रूप को अपनी कृतियों में वह मूर्तिमान न कर सका। इसके अतिरिक्त उस काल लन्दन में केवल दो अभिनय गृह—'कोवेन्ट गार्डन' और 'ड्रूरी लेन'—जिनको नाटक खेलने का एकाधिकार प्राप्त था, सीमित संख्या में ही नाटकों का प्रदर्शन कर सकते थे। हाँ, १९वीं सदी के तीसरे चरण के अन्त में निश्चय ही अधिकाधिक नाट्यगृह सर्वत्र बन चले।

उन्नीसवीं सदी का अन्त

ऊपर नाटककार की समसामयिक प्रवृत्तियों से आत्मीयता स्थापित न कर सकना उस काल के नाटक-ह्रास का जो एक कारण माना गया है, वह विशेषतः स्मरण रखने की बात है। १८वीं सदी में लिल्लो ने बदलती हुई जन-प्रवृत्ति का एक अंश में अंकन किया था। १९वीं सदी में नाटक में समसामयिक जीवन को यदि किसी भाषा में किसी ने अभिव्यक्त किया तो वह टी० डब्ल्यू० रॉबर्टसन[१] था। उसकी कृति 'कास्ट' मानी हुई रचना है। वह नाटक संगीत प्रधान है और लोग उसे फूहड़ कहने से भी न चूके, परन्तु अभिनीत होकर वह जीवन को खोलकर रख देता है। उन्हीं दिनों नार्वे में नाटक के असाधारण आचार्य इब्सन[२] का प्रादुर्भाव हुआ। इब्सन ने अपने काल के और परवर्ती कलाकारों को, क्या स्वदेश क्या विदेश में, सर्वत्र प्रभावित किया है। अंग्रेजी ड्रामा पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा और असाधारण मेधा वाले बर्नार्ड शॉ ने स्वयं इब्सन की कृतियों से बहुत कुछ सीखा। उसके नाटक 'बैंड' और 'पियर गिन्ट' के बराबर अंग्रेजी में शायद कुछ नहीं है। उसके अन्य नाटकों—'दि डॉल्स हाउस', 'दि घोस्ट्स', 'ऐन एनिमी आफ दि पीपल', "कैन दि डैड अवेकन", का जोड़ भी आधुनिक नाटक-साहित्य में मिलना सम्भव नहीं। उसके बाद हेनरी आर्थर जोन्ज़[३] और सर ए० डब्ल्यू० पिनेरो[४] का धरातल सहसा बहुत नीचे उतर आता है। इनमें पहले ने 'दि सिल्वर किंग' नाम का संगीत-प्रधान नाटक लिखा और 'सेन्ट्स एण्ड

---

१. T. W. Robertson २. Henrik Ibsen (१८२८-१९०६) ३. Henry Arthur Jones (१८५१-१९२९) ४. Sir Arthur Pinero (ज० १८५५-१९३४)

सिनर्स' तथा 'मिसेज डेन्स डिफैन्स' नामक समस्या-नाटक रचे और दूसरे ने 'दि सेकेण्ड मिसेज टैंकुएरे' रचा। परन्तु जोन्ज़ और पिनेरो दोनों इब्सन के मुकाबले नितान्त लघु थे, नगण्य। ऑस्कर वाइल्ड का उल्लेख करने के पहले गिल्बर्ट[१] की ओर संकेत कर देना उचित होगा। दोनों ने ओपेरा (संगीत) नाटक प्रहसन लिखे। वस्तुतः दोनों वाइल्ड और शॉ के पूर्ववर्ती थे, जिन्होंने उनके लिए क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया। वाइल्ड बड़ी प्रतिभा का नाट्यकार था। और उसका जेल चला जाना नाटक-साहित्य के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ, फिर भी उसकी अनेक कॉमेडी कृतियों में 'लेडी विंडरमियर्स फ़ैन', 'ए वोमन ऑफ नो इम्पोर्टेन्स', 'ऐन आइडियल हज़बैंड' और 'दि इम्पौर्टेंस ऑफ बींग अर्नेस्ट', प्रधान हैं जो उसकी मेधा प्रचुर मात्रा में प्रकट करती हैं।

बीसवीं सदी

२०वीं सदी नये सम्भार के साथ नाटक के क्षेत्र में अवतरित हुई। उसके साथ १९वीं सदी की किसी प्रकार भी तुलना नहीं की जा सकती। नाटक संबंधी २०वीं सदी की यह सम्पदा समृद्धि में एलिज़ाबेथ-काल के समान थी। बार्कर ने अपनी कृतियों द्वारा एक नये प्रकार की नाटच-कुशलता प्रस्तुत की। बार्कर[२] समस्या-सजीव और असाधारण यथार्थ-वादी था। उसके नाटक 'दि वौयसे इनहेरिटेन्स' (१९०५) और 'वेस्ट' (१९०७) इस दिशा में प्रमाण हैं। 'दि मैरिग ऑफ एनलीट' तथा 'प्रूनेला' में उसने रोमांटिक तत्व भी अंकित किये। 'प्रूनेला' की रचना उसने लॉरेन्स हॉसमन के सहयोग से की थी।

यथार्थवादी और समसामयिक जीवन की पृष्ठभूमि बनाकर नाट्य रचना करने वाले इस काल के कलाकारों में जान गाल्र्ज़वर्दी[3] अग्रणी हैं। "स्ट्राइफ" (१९०९), 'जस्टिस' (१९१०) और 'लॉयलटीज़' (१९२२) नाम की उसकी रचनाओं ने ड्रामा क्षेत्र में काफी ख्याति पाई। सेन्ट जॉर्ज इरविन[४] ने अपने 'जैन क्लेग' (१९११) और 'जॉन फर्गुसन' (१९१५) में समसामयिक यथार्थवादिता की परंपरा रखी। जॉन मेसफील्ड[५] ने १९०८ में 'दि ट्रैजेडी ऑफ मैन' की रचना की और गार्हस्थ्य पृष्ठभूमि में काव्यगुण का योग दिया।

इरविन के साथ कुछ आइरिश कवियों का भी नाम लिया जाता है, जिन्होंने नाटक के क्षेत्र में कुछ प्रयोग किये। लेडी ग्रैगरी, यीट्स, सिन्ज, ओकेसी आदि उसी परंपरा के हैं। यीट्स नाटककार से कवि अधिक सफल माना जाता है। यद्यपि उसकी 'कैथलीननी हाउलीहान' और 'दि लैंड ऑफ हार्ट्स डिजायर' आइरिश कल्पना के प्रकट नमूने हैं।

---

१. Gilbert Cannan (ज० १८८४) २. Harley Grenville Barker (ज० १८७०) ३. John Galsworthy (१८६७-१९३३) ४. Saint George Irwin ५. John Mase-Field (ज० १८७४)

नाटककार के रूप में जॉन मिलिंगटन सिंज[1] उससे कहीं कुशल कलाकार था। उसका 'प्लेब्वाय ऑफ दि वैस्टर्न वर्ल्ड' आइरिश चरित्र की सुन्दर व्याख्या है। सीन ओ 'केसी[2] ने 'जूनो एण्ड दि पेकौक' और 'दि शैडो ऑफ ए गनमैन' में डबलिन का जीवन प्रतिबिम्बित किया।

सर जेम्स बेरी[3] की बड़ी प्रतिकूल आलोचना हुई है परन्तु उसका 'पीटरपैन' कल्पना और भावना का सम्मिलित क्षेत्र होकर भी नाटक के दृष्टिकोण से कुछ कम श्लाध्य नहीं। उसकी दो और रचनाएँ—'दि ऐडमिरेबल क्राइटन' (१९०२) और 'डियर ब्रूटस' (१९१७) विशेष प्रसिद्ध हुईं।

परन्तु सावधि साहित्य का शेक्सपियर तो जॉर्ज बरनार्ड शॉ[4] है। अनेक आलोचकों का कथन है कि अंग्रेजी नाटक-साहित्य में यदि केवल दो व्यक्तियों का नाम लिया जाय तो उनमें एक शॉ निश्चय होगा। इस राय से कोई सहमत हो या नहीं, इसमें शायद दो मत नहीं हो सकते कि शॉ शेक्सपियर के बाद के नाटक-साहित्य का सबसे बड़ा प्रतिनिधि है। उसका जीवन-काल भी सुदीर्घ था। १८५६ से १९५० तक, ९४ वर्ष। अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में सम्भवतः कोई कलाकार इतना दीर्घायु न हुआ। अंग्रेजी ड्रामा के इतिहास में शॉ का सृजन काल काफी दीर्घ था। १८९२ में ही उसने अपना नाट्यकार जीवन 'विडोअर्स-हाउसेज' से आरंभ किया और १९३९ तक 'इन गुड किंग चार्ल्ज़ गोल्डन डेज़' तक निरन्तर जारी रखा। शॉ की मेधा असामान्य थी, नितान्त प्रखर। इब्सन की भाँति उसने भी अपने नाटकों को अपने विचारों का समर्थ वाहक बनाया। उसके व्यंग्य चुभने की शक्ति में बेजोड़ हैं, कांग्रीव और वाइल्ड दोनों का वह सम्मिलित उदाहरण है। वह सोशलिस्ट था, फेबियन सोसाइटी के निर्माताओं में से, और यौन, धर्म, आचार सभी कुछ उसके अभिप्रेत विषय थे। नाट्य-कुशलता उसमें असाधारण थी।

'मिसेज़ वारेन्स प्रोफेशन' में उसने गणिका के जीवन में अपने दूषित वातावरण का अनिवार्य परिणाम प्रदर्शित किया है जिसमें नारी वारांगना के दूषित पेशे को लाभकर रूप में बाध्य होकर स्वीकार करती है और इस प्रकार केवल रूमानी वेश्या नहीं रह जाती। आचार और आचरण के परंपरागत क्रम को विपरीत कर अंकित करना शॉ की सहज कला है। उसकी कॉमेडी के व्यंग्य की यही सार्थकता है। यही रूप निरन्तर 'सीज़र ऐण्ड क्लियोपेट्रा' से लेकर उसकी 'सेन्ट जोन' तक की कृतियों में विघटित है।

उसकी रचनायें समस्या-प्रधान और प्रश्न-प्रधान होने के कारण चरित्रों को नहीं देतीं। इसका अपवाद उसकी नाट्य-शृंखला में बस एक है, 'कैन्डिडा'

---

१. John Millington Synge (१८८१-१९०९) २. Sean O' Casey ३. Sir James Barrie (१८६०-१९३७) ४. George Bernard Shaw (१८५६-१९५०)

(१८९४)। वस्तु का चुनाव वह अपनी समस्याओं के अनुकूल करता है। इसीसे उसके नाटकों की वस्तुभूमि निरन्तर समस्याओं की विविधता के अनुकूल बदलती जाती है। कहीं तो 'दि डैविल्ज़ डिसाइपल' की भाँति उसका प्लॉट साधारण कथानक के रूप में खुलता है और कहीं (अधिकतर) जैसे 'गैटिंग मैरिड' में कहानी सूक्ष्मतम हो जाती है। फिर भी उसके कुछ नाटकों में इन दोनों तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण है। जैसे— 'मेज़र बारबरा', 'दि शोइंग अप ऑफ़ ब्लैको पौसनेट' अथवा 'जॉनबुल्स अदर आइलेंड' में। इन नाटकों की विषेशता इनके कलेवर से अधिक अनेक बार इनकी प्रशस्त भूमिकाओं में होती है। इन्हीं भूमिकाओं में वह अपने विचारों को व्यंग्यपूर्ण शक्तिम-चुने शब्दों में रखता है। 'ऐंड्रोक्लीज़ एण्ड दि लॉयन' की भूमिका में ईसाई धर्म पर उसने प्रबल प्रहार किया है। समस्याओं की प्रधानता पहले महासमर के बाद के उसके नाटकों में विशेष रूप धारण करती है। जैसा 'हार्ट ब्रेक हाउस', 'दि ऐपल कार्ट', टु ट्रू टु बी गुड', 'दि मिलियोनेयर्स', और 'जिनेवा' नाम की उसकी रचनाओं से प्रकट है। उसके 'मैन एण्ड सुपरमैन' और 'बैक टु मैथुसेला' ने कभी नाट्य-संसार पर सम्मोहन डाल दिया था, यद्यपि आज उनके जादू की शक्ति उतनी नहीं रही। 'पिगमेलियन' का प्रभाव भी दर्शकों पर कुछ कम न पड़ा। फिर भी यह कहना कठिन है कि शॉ का प्रभाव साहित्यिक जगत् पर कब तक रहेगा। इतना निश्चय कहा जा सकता है कि आगे कुछ काल तक उस महान् कलाकार का प्रभावाकार छोटा नहीं होगा। राजनीति, समाज, अर्थ, दर्शन, सब पर वह अपने व्यंग्य का चुटीला प्रहार करता है और समस्याप्रधान होकर भी उसके नाटक अभिनय के क्षेत्र में आज बेजोड़ हैं। उसके नाटकों की रंगमंचीय सफलता अर्थार्जन में भी उसकी असाधारण रूप से सहायक हुई है। साहित्य के क्षेत्र में अपने जीवन-काल में शायद किसी अन्य कलाकार ने अपनी रचनाओं से इतना धन नहीं कमाया जितना बरनार्ड शॉ ने।

आधुनिक काल के अंग्रेजी नाटक का विवरण वस्तुतः शॉ के साथ समाप्त हो जाता है फिर भी उसके कुछ समकालीनों का उल्लेख यहाँ अनुचित न होगा। टी. एस. एलियट का उल्लेख कवि-परंपरा में हो चुका है। उसका 'मर्डर इन दि कैथेड्रल' (१९३५) पद्यात्मक ट्रैजेडी का एक सुन्दर नमूना है। ओडन और क्रिस्टोफर इशरक ने भी कुछ प्रयोग किये हैं जो दिलचस्प हैं। इन्होंने पद्य और नृत्य के समावेश से नाटक को गद्य के चंगुल से मुक्त करना चाहा है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य उदीयमान नाटककार भी साहित्य-निर्माण में प्रयत्नशील हैं, जिनका विवरण यहाँ समीचीन नहीं।

: १६ :

उपन्यास

आरंभ से डि फ़ो तक

कहानी-लेखन की उस परंपरा का प्रादुर्भाव जिसे हम उपन्यास कहते हैं, साहित्य में अपेक्षाकृत काफी पीछे हुआ। कुछ ने तो अंग्रेजी में उसका आरंभ रिचर्डसन की 'पामेला' से माना है। जो भी हो, उपन्यास का आरंभ १६वीं सदी के पहले नहीं रखा जा सकता। १६वीं सदी में भी उपन्यास के रूप में सर फ़िलिप सिडनी की जिस कृति 'आर्केडिया' का उल्लेख किया जाता है वह वस्तुतः उपन्यास के माने हुए रूप को अभिव्यक्त नहीं करती।

उपन्यास की परिभाषा तो आसान नहीं पर साधारणतः उसकी व्याख्या में कहा जा सकता है कि वह गद्य की शैली में लिखा वह साहित्य है जो कहानी पर अवलम्बित है, जिसमें चरित्र का वर्णन है और युग-विशेष का जीवन प्रतिबिम्बित है। जिसमें भावनाओं और आवेगों की क्रिया और प्रतिक्रिया अंकित है और जिससे नर-नारियों का अपने वातावरण के प्रति सक्रिय दृष्टिकोण निदर्शित होता है। इस प्रकार के उपन्यास का आरंभ वस्तुतः १६वीं सदी में संभव न था। फिर भी पृष्ठभूमि के रूप में सर फ़िलिप[1] की 'आर्केडिया' की ओर हम संकेत कर सकते हैं।

जॉन लिली ने भी १६वीं सदी में अपने 'यूफ़ुएस' और 'यूफ़ुएस एण्ड हिज़ इंग्लैंड' नाम के मनोरंजक रोमांस लिखे। एलिज़ाबेथ-युग में ही रॉबर्ट ग्रीन ने भी अपना 'पैन्डोस्टो' लिखा जिसे शेक्सपियर ने अपने 'विन्टर्स टेल' का आधार बनाया। उस तथाकथित उपन्यास में लन्दन के उपेक्षित संसार का अंकन हुआ। टॉमस लॉज[2] ने भी अपनी 'रोजालाईन्ड' तभी लिखी। परन्तु सच्ची मनोरंजन की सामग्री टॉमस डिलोने[3] ने प्रस्तुत की। उसके 'जैक ऑफ़ न्यूबरी' में जुलाहों का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ और 'दि जेन्टल क्राफ्ट' में चमारों का। टॉमस डैक्कर ने भी समसामयिक घृणित जीवन के चित्र अपनी कृति 'गुल्स हॉर्न-बूक' में प्रस्तुत किये। टॉमस नैश[4] ने उपन्यास-लेखन की कला में कुछ प्रगति कर १६वीं सदी समाप्त की।

१९वीं सदी का उतरार्द्ध उपन्यास-लेखन की दिशा में पिछली सदी में कुछ अधिक जाग्रत हुआ। जॉन बुन्यन[5] का नाम अंग्रेजी साहित्य में काफी बड़ा है। वह सैनिक

---

१. Sir Philip Sidney (१५५४-८६); २. Thomas Lodge (१५५८-१६२५); ३. Thomas Deloney (१५४३-१६००); ४. Thomas Nashe (१५६७-१६०१); ५. John Bunyan (१६२८-८८)

और पादरी बारी-बारी रह चुका था और उसने साहित्य-प्रसिद्ध अपनी रचना 'दि पिल्ग्रिम्स प्रोग्रैस' १६७८ में प्रकाशित की। दो साल बाद उसकी दूसरी रचना 'दि लाइफ़ एण्ड डैथ ऑफ़ मिस्टर बैडमैन' भी लिखी गयी और अन्त में 'होलीवार' (१६८२) प्रकाशित हुआ। 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रैस' रूपक है और उसका कथानक कल्पना पर अवलंबित है, यद्यपि उसमें कहानी का यथार्थ कुछ कम नहीं है।

परन्तु उपन्यास का वस्तुतःआरंभ १८वीं सदी में डेनियल डि फ़ो[1] से हुआ। डि फ़ो ह्विग और टोरी दोनों दलों का एजेंट था। वह सट्टेबाज और दिवालिया भी था और उसने कुछ वैज्ञानिक अन्वेषण भी किये। उसने इधर-उधर की यात्राएँ भी की थीं और वह उस जमाने का जाना हुआ पत्रकार था। अनेक बार उसे कैद भुगतनी पड़ी। 'दि रिव्यू', जिसका उसने १७०४ से १७१३ तक प्रकाशन किया, अंग्रेजी पत्रकारिता की एक मंजिल है। उसकी उपन्यास की दिशा में प्रबल कृति 'रॉबिन्सन क्रूसो' (१७१९) है। यद्यपि 'कैप्टन सिंगिलटन', 'मोल फ्लेन्डर्स', 'कर्नल जैक', 'ए जर्नल ऑफ़ दि प्लेग इयर', 'रोक्साना', आदि भी कुछ कम जानी हुई कृतियाँ नहीं हैं। डि फ़ो अपने पाठकों की अभिरुचि के अनुकूल रचना करता था। यही कारण था कि उसकी कृतियों ने प्यूरिटन मध्यवर्ग को शीघ्र ही अपनी ओर आकृष्ट किया। उसकी कल्पना, यथार्थ और यात्रानुभूति ने अंग्रेजी साहित्य को 'रॉबिन्सन क्रूसो' के रूप में जो दिया वह असाधारण देन सिद्ध हुआ। इस कृति का उस साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा और अनेक भाषाओं में आज उसके अनुवाद प्रस्तुत हैं।

'रॉबिन्सन क्रूसो' की पृष्ठ भूमि काल्पनिक होती हुई भी यथार्थ का आभास प्रस्तुत करती है और उसकी सफलता विशेषतः उसके इसी गुण पर अवलम्बित है, यद्यपि 'रोक्साना' और 'मोल फ्लैन्डर्स' के चरित्र भी पाठक को बरबस अपनी ओर खींचते हैं।

: १७ :

रिचर्डसन से स्कॉट तक

(१७४०-१८३२)

भावुकता

डि फ़ो के बाद उपन्यास का क्षेत्र फिर अनुर्वर हो गया। उसके 'रॉबिन्सन क्रूसो' के प्रकाशन के प्रायः पच्चीस वर्ष बाद रिचर्डसन की 'पामेला' प्रकाशित हुई। सेमुएल रिचर्डसन[2] अंग्रेजी साहित्य के प्रधान निर्माताओं में हो गया है। वह मुद्रक था और जीवन भर मुद्रक ही बना रहा। १७४० में उसने अपनी 'पामेला' प्रकाशित की। १७४७-४८ में 'क्लैरिसा' और १७५३-५४ में 'दि हिस्ट्री ऑफ़ सर चार्ल्स ग्रैंडिसन।'

---

१. Daniel De Foe (१६९०-१७३९); २. Samuel Richardson

तीनों उपन्यासों की कहानी साधारण है। 'पामेला' बाँदी है जो अपनी मालकिन के पुत्र के दुराचरण के प्रयत्नों से निरन्तर अपनी रक्षा करती है और अन्त में उसके विवाह-प्रस्ताव को गंभीरता से स्वीकार करती है। सर चार्ल्स ग्रैंडिसन भी अपने कुशल व्यवहार और संयम से सदाचरण करता है। रिचर्डसन प्यूरिटन था परन्तु उसकी रचना में कला का प्रचुर निरूपण हुआ।

वास्तविकवाद

रिचर्डसन मध्यवर्ग का था और उसने उसी वर्ग के पात्रों के गुण-दोषों का विवेचन किया। उसका यह अभाग्य था कि हेनरी फील्डिंग, उसके जीवन-काल में ही प्रादुर्भूत हुआ। फील्डिंग अभिजातकुलीय था, अभिजातकुलीयों के स्कूल ईटन में शिक्षा पा चुका था। क्लासिक्स का प्रेमी था और सर रॉबर्ट वालपोल के लाइसेंसिंग ऐक्ट के बनने से पहले तक नाटककार भी था। पेशे से वह जर्नलिस्ट, वकील और जज भी रहा।

१७४२ में उसने रिचर्डसन की 'पामेला' का मजाक बनाने के लिए 'दि हिस्ट्री ऑफ़ दि ऐडवैंचर्स ऑफ जोजेफ़ एन्ड्रूज़ एण्ड हिज़ फ्रैंड मि. अब्राहम ऐडम्ज़' प्रकाशित किया। यह 'पामेला' की एक प्रकार से व्यंग्यपूर्ण पैरोडी था। इसमें पामेला की स्थिति में बदलकर एक नौकर रखा गया है, जिसे बिगाड़ने का प्रयत्न उसकी मालकिन करती है। बाद में जब वह भाग जाता है तब फील्डिंग की दृष्टि में रिचर्डसन की दुनिया ओझल हो जाती है और उपन्यास अपने स्वाभाविक पथ पर चल पड़ता है। उसकी 'हिस्ट्री ऑफ़ जोनाथान वाइल्ड' दि ग्रेट' नामक कृति 'जोजेफ़ एन्ड्रूज़' से भी अधिक व्यंग्यपूर्ण है। फील्डिंग जीवन के आवेशों का खुला पोषक था और इसी विचार की अभिपुष्टि में उसने 'दि हिस्ट्री ऑफ़ टॉम जोन्ज़' (१७४९) की रचना की, जो उसकी कृतियों में सबसे सुन्दर है। उसकी 'अमेलिया' १७५१ में प्रकाशित हुई। इसकी करुणा इसे अस्वाभाविक बना देती है। जो भी हो, फील्डिंग सहज कलाकार था।

टोबियास स्मोलेट[1] फील्डिंग का समकालीन था। स्कॉटलैंड का निवासी और पेशे का डाक्टर। उसकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं; 'दि ऐडवैंचर्स ऑफ रोडरिक रैन्डम' (१७४८), 'दि ऐडवैंचर्स ऑफ़ पेरेग्रीन-पिकल' (१७५१), 'ऐडवैंचर्स ऑफ़ फर्डिनेन्ड काउन्ट फ़ैदम' (१७५३), दि ऐडवैंचर्स ऑफ सर लैन्सेलॉट ग्रीव्ज़' (१७६२), 'दि ऐक्सपीडीशन ऑफ़ हम्फ्रे क्लिकर' (१७७१)। इनमें और तो घटिया किस्म की हैं परन्तु 'पेरेग्रीन पिकल' सुन्दर है। इसके पात्र सजीव हैं। उपपात्र तो नायक से भी अधिक। इसमें और स्मोलेट की अन्य कृतियों में भी अशान्त और अधीर सामुद्रिक और जहाजी जीवन का सुन्दर और स्वाभाविक चित्र खींचा गया है। उस चित्र में क्रूरता और कामुकता का भी खासा चित्रण है।

१. Tobias George Smollet (१७२१-७१)

लॉरेंस स्टर्न[1] अठारहवीं सदी का एक अनूठा उपन्यासकार है। वह सिपाही का लड़का और पादरी का पोता था। उसने केम्ब्रिज से एम० ए० की डिग्री ली और पादरी बन गया। उसका 'लाइफ़ एण्ड ओपीनियन्स ऑफ़ ट्रिस्ट्रम शैन्डी' (१७५९-६७) अनोखा उपन्यास है, सर्वथा मौलिक, जो प्रकाशित होते ही लोकप्रिय हो गया था। वैसे कहानी भयानक है, और तीसरे खंड में नायक का जन्म होता है। अपूर्ण वाक्य, अपूर्ण सादे पृष्ठ, अनोखा विनोद, सभी कुछ इसमें अजीब हैं, फिर भी भावों का विचित्र निर्वाह हुआ है। इस प्रकार वह मानव जीवन की विचित्रता का रूप अंकित करता है और मानवता की विषादमयी अनुभूति से सहानुभूति प्रकट करता है। उसके 'सैन्टिमैन्टल जर्नी' (१७६१) में फ्रांस की यात्रा का अंकन है।

अठारहवीं सदी के मध्य में ही उपन्यासों की धारा जो मोटी हो चलती है, वह उसके अन्त तक बाढ़ बन जाती है और तब साधारण रूप से भी इन उपन्यासों का विवरण कठिन हो जाता है। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख समीचीन है। इन्हीं में सेमुएल जॉनसन का 'रैसेलास' (१७५९) है, जो अबीसीनिया की कहानी के रूप में अठारहवीं सदी के आशावाद पर एक प्रकार का प्रहार है। इस प्रकार ऑलिवर गोल्डस्मिथ का 'विकर ऑफ वेकफ़ील्ड' भी रूप और शैली में प्रायः अकेला है। इसका आज भी साहित्यिकों में बड़ा आदर है। गोल्डस्मिथ असाधारण कलाकार है। उसमें हास्य और चित्रण दोनों संपन्न करने की अद्भुत क्षमता है। उसमें गजब की कारुणिकता है, जिससे वह कंगालों और आपद्ग्रस्तों के प्रति असाधारण तौर पर अनुरक्त हो जाता है। इसी काल क्वीन कैरोलिन की अनुचरी फैनीबर्नी नाम की नारी ने भी उपन्यास-रचना की। अपने सुन्दरतम उपन्यास 'इवेलिना' (१७७८) में उसने गाँव की एक लड़की का लन्दन के कृत्रिम भड़कीले जीवन में प्रवेश बड़ी खूबी से कराया है। उसकी इस कृति की जॉनसन, बर्क, रेनाल्डस आदि ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उसने 'सेरवीलिया' 'कैमिला', और 'वान्डरर' नाम के तीन उपन्यास और रचे। पर तीनों ही एक से एक गए बीते थे।

भावावेगवादी उपन्यासों का आरंभ स्टर्न ने किया था। उनकी परिपाटी चल पड़ी। हेनरी मैकेन्जी[2] ने अपने 'दि मैन ऑफ फ़ीलिंग' में उस परंपरा को और जाग्रत किया। इसका हीरो स्थल-स्थल पर रो पड़ता है, जिससे उपन्यास पैरोडी का रूप धारण कर लेता है। इन्हीं दिनों टॉमस डे ने अपना 'सैन्डफ़ोर्ड एण्ड मर्टन' (१७८३-८९) नामक उपन्यास लिखा, जिससे नीतिपरक उपन्यासों की परंपरा चली। उसका 'फूल ऑफ क्वालिटी' (१७६६-७०) भी उसी शैली का वाद-प्रतिवाद-युक्त उपन्यास है।

उसके बाद ही उस प्रकार के उपन्यास लिखे गये, जिन्हें गौथिक कहते हैं। यह भयपरक हैं। अपराध, पाप, भय, खून, बदला आदि इस प्रकार के उपन्यासों के चित्रण-

१. Lawrence Sterne (१७१३-६८); २. Henry Mackenzie (१७५५-१८३१)

आधार हैं। और इनका प्रणयन विशेषतः मध्यकालीन 'वस्तु' के पुनरुज्जीवन से आरंभ हुआ। इस परंपरा का पहला उपन्यासकार प्रसिद्ध सर राबर्ट वालपोल का पुत्र होरेस वालपोल[१] था। अपनी अभिजातकुलीय समृद्धि के वातावरण में उसने महत्वाकांक्षा के लब्ध्यर्थ उन व्यक्तियों को प्रयत्नशील देखा, जिन्हें स्वार्थ साधने में आचारोपचार का मोह न था। उसी वातावरण का होरेस वालपोल ने अंकन किया। भेद केवल इतना था कि उसने पृष्ठभूमि मध्यकालीन इटली के पापाचारयुक्त वातावरण से चुनी। वह स्वयं पुराविद् था। पुरातत्व से अनेक लोगों को उस काल कुछ प्रेम हो गया था। बात यह थी कि व्यापार, उद्योग आदि से जो समृद्धि हुई तो उसने आखिर ऐसे निठल्ले लोग भी उत्पन्न किये, जो अपना अवकाश —जिसकी कुछ सीमा न थी—भरना चाहते थे। उनकी जागीरदारियों में खड़े मध्ययुगीय गिरजों आदि द्वारा उनकी रोमैन्टिक तुष्टि भी हो जाती थी और इस प्रकार एक पृष्ठभूमि भी उनकी कृतियों के लिए मिल जाया करती थी। होरेस वालपोल इसी रूप से अपने उपन्यासों में पुरावर्ती पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर गौथिक उपन्यास-परंपरा की नींव डाल सका। 'दि कासल ऑफ़ ओट्रैन्टो' (१७६४) इसी परंपरा की कहानी लेकर साहित्य क्षेत्र में अवतरित होता है।

विलियम बैकफ़ोर्ड[२] का 'दि हिस्ट्री ऑफ़ दि कॉलिफ़ वाथेक' (१७८२) वालपोल की कृति से भी अधिक मध्यकालीन क्रूर घटनापरक है, जिसमें खलीफा की क्रूरता का वर्णन है। इस लोमहर्षक पद्धति के उपन्यासकारों में सबसे जनप्रिय मिसेज ऐन रैडक्लिफ़[३] हुई। उसके पाँच उपन्यासों में सबसे प्रसिद्ध 'दि मिस्ट्रीज़ आफ़ उडोल्फ़ो' (१७९४) और 'दि इटैलियन' (१७९७) थे। उसने मनोवेगों को कायम रखते हुए अपने दृश्यों को प्राकृतिक पृष्ठभूमि दी और इस प्रकार १८वीं सदी की निसर्गप्रिय काव्य-परंपरा का उपन्यास में भी निर्वाह किया। उस नारी ने अपनी कृतियों द्वारा लार्ड बायरन और शेली तक को प्रभावित किया। उपन्यासकारों की इसी लोकरंजन परंपरा में मैथ्यू ग्रेगरी लेविस[४], चार्ल्स रॉबर्ट मैटूरिन[५], मिसेज़ शेली[६] आदि थे। इन्होंने 'दि मांक' (१७९६), 'टेल्स ऑफ़ टेरर', 'टेल्स आफ़ वंडर' (लेविस) 'मेलमोथ दि वांडरर' (मैटूरिन) और 'फ्रैंकेन्स्टीन' लिखकर लोमहर्षक उपन्यासों का भंडार भरा। इनमें मिसेज़ शेली का लिखा 'फ्रैंकेन्स्टीन' इस प्रकार के उपन्यासों में बड़ा सफल हुआ।

उन्नीसवीं सदी में सही उपन्यास-कला का जन्म हुआ। ऐसा नहीं कि लोमहर्षक

---

१. Horace Walpole (१७१७-९७); १. William Beckford (१७६०-१८४४); ३. Mrs. Ann Radcliffe (१७६४-१८२३); ४. Mathew Gregry Liewis (१७७५-१८१८); ५. Robert Maturin (१७८२-१८२४); ६. Mrs. Mary Wollstone Craft Shelley (१७९७-१८५१)

उपन्यासों का अन्त हो गया हो क्योंकि पाठकों के मनोरंजन के साधन-स्वरूप इस प्रकार के उपन्यासों का सृजन होना स्वाभाविक ही था, कि जब ऐसे पाठकों की कमी न थी, परन्तु उन्नीसवीं सदी अपने नये वातावरण के साथ आई। उपन्यास अब केवल मनोरंजन की सामग्री न था। वरन् स्पष्ट कला के रूप में सिरजा जाने लगा। इस परंपरा का आरंभ जॉर्ज ऑस्टिन की कन्या जेन ऑस्टिन[1] ने किया। साहित्य में उसकी सूझ सर्वथा नई थी। न तो उसे उसके पूर्ववर्तियों ने प्रभावित किया और न यूरोपियन उथल-पुथल ने। उसने लोमहर्षक उपन्यासों पर अपनी कृतियों से भरपूर चोट भी की (देखिये उसका—'नार्थेंगर अबे')। उसने वर्णन और यथार्थवादी सूक्ष्मता को बड़ा महत्व दिया और उसकी लेखनी से पहली बार कला प्रसूत होकर 'प्राइड एंड प्रेजुडिस' (१८१३) के रूप में आई। उसके चरित्रों में अनूठापन कुछ न था। वे समाज में घर-घर चलते-फिरते हाड़-मांस के जीव थे। जेन ऑस्टिन के संक्षिप्त डायलॉग भी बड़े चुटीले हैं। उनकी शक्ति लम्बे वक्तव्यों में जब-तब नष्ट हो जाती है। इसमें विशेषत: दो परस्पर विरोधी पात्रों का चित्रण है। यही रूप हमें उसके दूसरे उपन्यास 'सैन्स एण्ड सैन्सिबिलिटी' (१८११) में भी मिलता है। जेन ऑस्टिन ने 'मैन्स फील्ड पार्क' (१८१४), 'एम्मा' (१८१६) और 'परसुएशन' (१८१७) नामक तीन और उपन्यास लिखे परन्तु कोई उसके 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस' के स्तर तक न उठ सका।

ऐतिहासिक उपन्यास

इसी काल-प्रसार में सर वाल्टर स्कॉट ने भी अपने प्रसिद्ध उपन्यास लिखे, परन्तु जेन ऑस्टिन के उपन्यासों से सर्वथा भिन्न। ऐतिहासिक उपन्यास-परंपरा का प्रारंभ सर वाल्टर स्कॉट ने किया। ज्ञान और सुरुचि में शायद सर वाल्टर का जोड़ नहीं। घटनाओं की खोज और अध्ययन में उसने असाधारण परिश्रम किया। आलोचना में भी उसने बड़ी उदारता दिखाई। जेन ऑस्टिन की कला को अपनी अपेक्षा अत्यधिक ऊँचा घोषित किया। वह स्कॉच था, ऐडिनबरा के एक वकील का पुत्र, और साहित्य में, विशेषत: स्कॉटलैंड की ख्यातों में, उसे बड़ी दिलचस्पी थी। उसने तत्संबंधी कुछ कविताएँ भी लिखीं, परन्तु यशस्वी वह अपने उपन्यासों के कारण ही हुआ। अभिजातकुलीयता के स्वाद ने उसे घृणा के भार से दबा दिया था। फिर भी उसका हाथ निरन्तर खुला रहा और धन की आवश्यकता बराबर बनी रही। उसके जर्नल में धन-संबंधी उसकी व्यग्रता का बड़ा करुण संकेत मिलता है। धन की आवश्यकता ने उसे उपन्यास लिखने को और भी बाध्य किया। मेरिया एजवर्थ ने अपना 'कैसिल रैक्रन्ट' (१८००) लिखकर ऐतिहासिक उपन्यास का रूप रखा था। परन्तु वस्तुत: वह परंपरा स्कॉट के हाथों सँवारी गई। उसमें उसने पृष्ठभूमि, वातावरण आदि प्रकृति

१. Jane Austine (१७७५-१८१७)

के स्पर्श और पिछले युगों के संयोग से चित्रित किये जो न फील्डिंग ने किया था न ऑस्टिन ने। सही में, उसमें मध्यकालीन हीरो की असाधारणता हमें विशेष प्रभावित करती है, परन्तु उस युग के समाज और सामान्य जनता की जितनी प्रांजल झलक में उसके दृश्यों से मिलती है और कहीं नहीं।

उसका पहला उपन्यास 'वेवरली' (१८१४) १७४५ के जैकोबिन विद्रोह के चित्र उपस्थित करता है। उसी परंपरा में उसके उपन्यास 'गाई मैनरिंग' (१८१५), 'दि ऐन्टीक्वेरी' (१८१६), 'ओल्ड मौरटैलिटी' (१८१६), 'दि हार्ट ऑफ़ मिडलोथियन' (१८१८) और 'रॉबराय' (१८१८) भी लिखे गये। इनमें स्मृति और कल्पना दोनों एकत्र मिलते हैं। दोनों उसे सम्मिलित रूप से विधायिनी प्रतिभा प्रदान करते हैं। क्रूसेड-संबंधी उपन्यास 'आइवन्हो' (१८२०) और 'दि टेलिस्मान' (१८२५) अत्यन्त लोक-प्रिय हुए। 'कैनिलवर्थ' (१८२१) और 'दि फार्चुन्ज ऑफ़ निजेल' (१८२२) में अत्यन्त आकर्षक रूप में एलिजाबेथ और जेम्स प्रथम के संबंध की घटनायें वर्णित हैं। उसने केवल स्कॉटलैंड और इंग्लैंड के इतिहास से ही घटनायें चुनकर नहीं अनुप्राणित कीं, अपने 'क्वेन्टिन डरवर्ड' (१८२३) में तो फ्रांस के राजदरबार को भी अपनी लेखनी का आधार बनाया। परन्तु इस प्रकार उसका इधर-उधर भटक जाना ही मात्र था क्योंकि वह स्कॉटलैंड की स्थिति को वस्तुतः न भूल सका। 'सेंट रोमन्स वेल' (१८२४) और 'रैड गॉन्टलेट' (१८२४) की कथाओं के लिए वह फिर स्कॉटलैंड की ओर अभिमुख हुआ।

स्कॉट आज भी ऐतिहासिक उपन्यासों में रुचि रखने वाले पाठकों का मनोरंजन करता है। अपने परवर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों को भी उसने कम प्रभावित न किया। बुलवर लिटन, थैकरे, रीड, जॉर्ज एलियट तक उसके ऋणी हैं। उसका प्रभाव कालान्तर में फ्रांस से रूस तक और अटलांटिक सागर पार अमेरिका तक व्यापक बना।

उन्नीसवीं सदी की उपन्यास-परंपरा में अन्त में लव पीकॉक[1] का उल्लेख कर देना आवश्यक होगा। शैली में भिन्न होकर भी पीकॉक 'रोमांटिक साहित्य' का शत्रु था। उसने रोमांटिक साहित्य का मखौल उड़ाने वाले व्यंग्यात्मक उपन्यासों की एक परिपाटी ही खड़ी कर दी। उसके उपन्यासों में मनोरंजन की सामग्री प्रचुर है, जिसके प्रमाण हैं उसके 'मेड मेरियन' (१८२२), 'मिसफॉर्चुन्स आफ एल्फिन' (१८२९), और 'क्रोचेट कासल' (१८३१)। उसने भी अपने परवर्ती उपन्यासकारों पर अपना प्रभाव डाला। जॉर्ज मेरेडिथ और आल्डुस हक्स्ले दोनों को उपन्यास के क्षेत्र में अपने प्रयोग करने में पीकॉक से प्रभूत प्रेरणा मिली।

---

१. Thomas Love Peacock (१७८५-१८६६)

: १८ :

डिकेन्ज़ से आज तक

चार्ल्स डिकेन्ज[1] उन्नीसवीं सदी का सबसे बड़ा उपन्यासकार है। अनेक लोगों के विचार से तो वह अनेकार्थ में इंग्लैंड का सबसे प्रधान उपन्यासकार है। इस पिछले मत को चाहे, कोई न माने, परन्तु इसे स्वीकार करने में संभवतः किसी को आपत्ति न होगी कि डिकेन्ज़ चोटी का उपन्यासकार है। अपनी विनोदात्मक उपन्यास-शैली में तो निःसन्देह वह बेजोड़ है। उसका विनोद कभी साहित्य पर बोझ बनकर नहीं आता, उसमें घुलामिला प्राण बन कर आता है। स्वाभाविकता उसका प्राण है। डिकेन्ज़ को जीवन साध्य है, प्रिय, परन्तु वह अपने वातावरण से क्षुब्ध है, अपने समाज से घृणा करता है। उसकी प्रवृत्ति विद्रोहात्मक थी और उसके उपन्यासों में भी उसका विद्रोह झलक आता है पर उसे परिस्थितियों से मजबूर होकर मध्यमवर्गीय आचार से समझौता कर लेना पड़ा। 'पिकविक पेपर्स' (१८३६-३७) इसका प्रमाण है। 'ऑलिवर ट्विस्ट' (१८३८) में हास्य के ऊपर कारुणिकता की छाया स्पष्ट है। वह समसामयिक समाज की हृदयहीनता के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता है। 'निकोलस निकल्बी' (१८३८-३९) में प्लॉट महत्त्व धारण कर लेता है और चरित्र-चित्रण शक्तिम हो उठता है। बैन जॉनसन की भाँति 'दि ओल्ड क्युरियॉसिटी शॉप' (१८४१) में मध्यवर्ग के आचार पर प्रखर व्यंग्य है। 'बार्नबी रज' (१८४१) डिकेन्ज़ का पहला ऐतिहासिक उपन्यास है। उसके 'मार्टिन चुज़लविट' (१८४४) में अमेरिका के दृश्य भरे हैं, क्योंकि यह कृति उसकी अमेरिका-यात्रा के बाद सम्पन्न हुई। १८४३ और ४८ के बीच उसने 'क्रिस्मस बुक्स' लिखी। यह कृति जिसमें मानव-दया में उसकी निष्ठा प्रदर्शित है, बड़ी लोकप्रिय हुई। करुण रस उसके 'डम्बे एण्ड सन' (१८४८) में जैसे फूट पड़ा है। 'डैविड कॉपरफील्ड' (१८५०) में उसकी उपन्यास-कला आत्म कथानक का रूप धर लेती है। चरित्र-चित्रण भी इसमें गजब का हुआ है।

डिकेन्ज़ के प्रधान उपन्यास 'ब्लीक हाउस' (१८५३) के साथ उसके कृतित्व का दूसरा युग आरंभ होता है। 'हार्ड टाइम्ज़' (१८५४) उसने कारलाइल को समर्पित किया है और 'लेसे फेयर' (अनिरुद्ध व्यापार) पर वह प्रखर प्रहार है। 'लिटिल डोरिट' (१८५७) में वह आफिसों की दीर्घ-सूत्रता पर चुटीला व्यंग्य करता है। 'दि टेल ऑफ टू सिटीज़' (१८५९) फ्रेंच राज्य-क्रांति संबंधी सुन्दर उपन्यास है, जो उसकी प्रतिभा को नई दिशा की ओर ले जाता है, स्कॉट से सर्वथा भिन्न। 'ग्रेट ऐक्स्पैक्टेशन्ज' (१८६१) और 'आवर म्यूचुअल फ्रेंड' (१८६४) नामक दो उपन्यास उसने और लिखे। कभी जब

---

१. Charles Dickens (१८१२-७०)

वह 'दि मिस्ट्री आफ एडविन ड्रूड' लिख ही रहा था कि मृत्यु के क्रूर कर ने उसकी जीवन-गति बन्द कर दी।

डिकेन्ज़ निरन्तर लिखता रहा, साथ ही निरन्तर भ्रमण भी करता रहा। उसने अमेरिका के श्रोताओं को अपने उपन्यास, कविता की भाँति पढ़-पढ़ कर सुनाये। इससे उसे लाभ प्रचुर हुआ पर जीवन शिथिल हो गया, यद्यपि श्रोताओं की उपस्थिति उसके लिये मादक शराब का काम करती थी। १८७० में जब वह मरा, इंग्लैंड के जीवन से जैसे प्रधान सार चला गया। वह अपने समाज के अंगांग में समा चुका था। शॉ के पहले फिर कोई ऐसा न हुआ जो डिकेन्ज़ की भाँति अंग्रेज जनता को खिलखिलाकर हँसा सकता।

विलियम मेकपीस थैकरे[१] डिकेन्ज़ का समकालीन था। पर दोनों दो स्तरों के व्यक्ति थे। डिकेन्ज़ को सही शिक्षा नहीं मिली थी। उसके पिता को ऋणी होकर अनेक बार जेल का मुँह देखना पड़ा था। स्वयं उसे पहले कारखानों में काम करना पड़ा। थैकरे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अफसर का, कलकत्ते में जन्मा बेटा था, चार्टर हाउस और कैम्ब्रिज की हवा खाया हुआ। थैकरे जीवन भर जर्नलिस्ट रहा और लगातार 'पंच' में लिखता था। उसने 'कॉर्नहिल' मैगेज़ीन का सम्पादन भी किया। 'वैनिटी फेयर' (१८४७-४८) उसकी पहली कृति थी, जिसने उसे उपन्यासकार के रूप में अमर कर दिया। दस वर्ष बाद उसने 'दि वर्जीनियन्ज' (१८५७-५९) लिखा। इसी बीच उसने 'पेन्डैनिस' (१८४८-५०), 'हेनरी एस्मंड' (१८५२) और 'दि न्यूकम्स' (१८५३-५५) भी लिखे। वह बावन साल की आयु में मरा, डिकेन्ज़ से भी छोटी उम्र में। वह अच्छे प्रकार के रहन-सहन का आदी था, इससे अपनी आय बढ़ाने के लिए उसने भी लन्दन और अमेरिका में अपनी कृतियाँ सुना कर धन कमाना शुरू किया। उसकी आय प्रायः डेढ़ लाख रुपये प्रति वर्ष तक हो गई थी पर उसे उससे संतोष न होता था।

थैकरे को अपना समाज प्रतिकूल न पड़ा और उसने उसकी खिल्ली भी नहीं उड़ाई। वह अपनी कृतियों में उसका प्रतिबिम्ब मात्र उतारता गया। निःसंदेह इसके लिये उसमें असाधारण प्रतिभा थी। कृतघ्नता के प्रति उसका आक्रोश तीव्र था। उसकी दृष्टि यथार्थ के प्रति गहरी थी और चरित्र-चित्रण उसका डिकेन्ज़ से कहीं सूक्ष्म होता था। 'वैनिटी फेयर' इस दिशा में बड़ा मार्मिक उपन्यास है।

लिटन[२] की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। स्कॉट की भाँति ही उसने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे और 'दि लास्ट डेज़ आफ पॉम्पेयी' (१८३४) में कला की दृष्टि से उससे ऊपर उठ गया। वह कला उसके 'रिएन्जी' (१३८५) में शायद और भी निखरी। 'ज़नोनी'

---

१. William Make Peac Thackeray (१८११-६३); २. Edward Lytton, Lord (१८०३-७३)

(१८४४) उसका लोमहर्षक उपन्यास है, जिसकी लोमहर्षकता में वह अपने 'पॉल क्लिफर्ड' (१८३०) में सामाजिक आक्रोश का भी पुट देता है। लिटन ने कुछ और भी उपन्यास लिखे— 'युज़ीन अराम', 'दि कैक्स्टन्स', 'माई नॉवेल', 'पेल्हम', 'दि कमिंग रेस'। इनमें अन्तिम में उसने 'यूरोपियन' (काल्पनिक—भावी सामाजिक) उपन्यास की बुनियाद डाली।

चार्ल्स किंग्स्ले[1] ने पहले तो अपने उद्देश्यपरक उपन्यास 'यीस्ट' (१८४८) और 'आल्टन लॉक' (१८५०) लिखे, फिर ऐतिहासिक 'हाइपैटिया' (१८५३) और 'वेस्टवर्ड हो' (१८५५)। 'दि वाटर बेबीज़' नामक उसने एक फैन्टेसी भी लिखी। ए० डब्लू किंगलेक[2] ने अपने 'इयोथेन' (१८४४) में पूर्वात्य पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। सर रिचर्ड बर्टन[3] ने 'अरेबियन नाइट्स' (अलिफ लैला) का अनुवाद प्रस्तुत किया, और जॉर्ज बोरो[4] ने अपनी भ्रामक प्रवृत्तियुक्त उपन्यास—'लोवेंग्रो' (१८५१) 'दि रोमानी राई' (१८५७) और 'वाइल्ड वेल्स' (१८६२) लिखे। हडसन[5] और रिचर्ड जेफ्रीज़[6] भी बोरो की परंपरा के ही साहित्यिक थे।

चार्ल्स रीड[7] डिकेन्ज़ के सामाजिक आक्रोश की परंपरा का उपन्यासकार था, जिसमें सामग्री की यथार्थता अधिक प्रामाणिक थी। 'इट इज़ नैवर टू लेट टु मैन्ड' (१८५६) कारागार के जीवन का भंडाफोड़ करता है। मध्यकालीन पृष्ठभूमि पर 'दि क्लॉयस्टर एण्ड दि हार्थ' (१८६१) नाम का एक सजीव ऐतिहासिक उपन्यास भी रीड ने लिखा। बैन्जेमिन डिजरेली[8] का व्यक्तित्व राजनीति में बड़ा था और उसके उपन्यास 'कोनिंग्सबी (१८४४), 'सिविल' (१८४५) और 'टैंक्रेंड' (१८४७) उसकी राजनीतिक आइडियालोजी (सिद्धान्त) प्रस्तुत करते हैं। डिजरेली उन्नीसवीं सदी की राजनीति में सबसे महान् व्यक्ति (प्रधान मंत्री) था। इससे अधिकतर उसका साहित्य उसके राजनीतिक व्यक्तित्व में खो जाता है। पर हैं उसके उपन्यास सुन्दर, जिनमें वह टोरी नीति से सँवारे नये इंग्लैंड का स्वप्न देखता है। मिसेज गैस्केल[9] ने अपने उपन्यासों 'मेरी बार्टन' (१८४८) और 'नॉर्थ एण्ड साउथ' (१८५५) में व्यावसायिक क्रूरता का भंडाफोड़ किया। उसने 'क्रैंफोर्ड' नामक एक और सामाजिक उपन्यास लिखा। विल्की कॉलिन्स[10] ने 'दि वोमन इन ह्वाइट' (१८६०) और 'दि मूनस्टोन' (१८६८) लिखकर होरेस

---

१. Charles Kingsley (१८१९-७५); २. Alexander William Kinglake (१८०९-९१); ३. Sir Richard Burton (१८२१-९०); ४. George Henry Borrow (१८०३-८१); ५. William Henry Hudson (१८४१-१९२२); ६. Richard Jefferies (१८४८-८७); ७. Charles Reade (१८१५-८४); ८. Benjamine Disraeli (१८०४-८१); ९. Mrs. Elizabeth Cleghorn Gaskell (१८१०-६६); १०. William Collins (१८२४-८९)

वालपोल और मिसेज रैडक्लिफ की लोमहर्षक उपन्यास परंपरा पुनरुज्जीवित की। उसकी कला उनसे कहीं प्रखर और प्रौढ़ थी।

मौलिक उपन्यासों के सृजन में दो बहनों—एमिली ब्रोन्टे[1] और चार्लोटे-ब्रोन्टे[2] को बड़ी सफलता मिली। इनमें से पहली ने अपने 'वुदरिंग हाइट्स' (१८४७) द्वारा प्रभूत ख्याति कमाई है, दूसरी के अनेक उपन्यास 'जेन आयर' (१८४७) 'शर्ले' (१८४९), 'विलेट' (१८५३), 'दि प्रौफ़ेसर' (१८५७) हैं। उसके दृश्य घरेलू हैं, यथार्थवादी। जॉर्ज एलियट[3] का नाम भी इनके साथ ही लिया जाता है। सो केवल इसलिए नहीं कि वह भी नारी थी। उन्नीसवीं सदी के नारी उपन्यासकारों में वह सबसे अधिक विदुषी थी। वह नारी थी परन्तु उसने पुरुष के नाम से लिखा। वह दार्शनिक मेधा की नारी थी और उसकी उत्कट दार्शनिकता ही हर्बर्ट स्पैन्सर से विवाह में घातक हुई। अपने पति विख्यात लेखक लेवेस के कहने से उसने उपन्यास लिखना शुरू किया। 'सीन्ज़ ऑफ़ क्लारिकल लाइफ़' (१८५७) को तत्काल सफलता मिली और 'ऐडम बीड' (१८५९) ने उसका यश प्रतिष्ठित कर दिया। 'दि मिल ऑन दि फ्लौस' (१८६०) भी उसकी एक ऊँची कृति है। जिसमें 'ऐडम बीड' की ही भाँति हृदय और मेधा का संघर्ष है। 'सिलास मारनर' (१८६१) में वह संघर्ष प्रायः एक समष्टि का रूप धर लेता है। 'रोमोला' (१८६३) इटैलियन पुनर्जागरण काल का ऐतिहासिक उपन्यास है और 'फ़ैलिक्स होल्ट' (१८६६) रिफॉर्म बिल का अनुवर्ती। उसका 'मिडिलमार्च' (१८७१-७२) उन्नीसवीं सदी के प्रधान उपन्यासों में गिना जाता है। ऐतिहासिक युगों और दार्शनिक चिन्तन से वह यथार्थ की चतुर्वर्ती भूमि पर इसमें उतर आती है और समाज सहसा इसमें प्रतिबिम्बित हो आता है। बाल्ज़ाक जैसे उसकी इस कृति में उतर आया हो।

ऐन्थॅनी ट्रोलोप[4] एक दूसरी कोटि का उपन्यासकार है, सहज वर्णन-प्रवाह का। उसकी प्रखर कल्पना निरन्तर दृश्यों और चरित्रों का एकत्र सृजन करती जाती है। वह पुरुष रूप में जेन ऑस्टिन है, पर साथ ही अपनी सीमाओं को पूर्णतः जानने वाला। इसी से वह अनधिकार चेष्टा नहीं करता। उसकी कृतियाँ 'दि वार्डेन' (१८५५) और 'बारचेस्टर टॉवर्स' (१८५७) सुघड़ हैं। ट्रोलोप से कहीं मौलिक जॉर्ज मेरेडिथ (१८२८-१९०९) है। इधर के सालों में मैरेडिथ का यश घट गया है क्योंकि उसके उपन्यासों की कठिनता आशुगम्य नहीं। परन्तु उसकी मेधा अस्वीकार नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि अपने 'हीरो' की ही भाँति, जिस पर वह हँसता है, वह स्वयं गर्वीला है। उसके लिए उपन्यास केवल कहानी का आधार नहीं है। उसके विचार में जीवन का आदर्श रूप उसकी सहज स्वाभा-

---

१. Emily Bronte (१८१८-४८); २. Charlotte Bronte (१९१६-५५); ३. George Eliot Marian Evans (१८१९-८०); ४. Anthony Trollope (१८१५-८२)

विकता में है, जिसके मस्तिष्क, हृदय, शरीर, सभी नकारात्मक निर्देश हैं। इसी व्याख्या के लिए वह विशुद्ध और सूक्ष्म भावनाओं का विश्लेषण करता है। इसी मनोयोग से वह अपने दूसरे उपन्यासों 'रिचर्ड फेवरेल' 'ईवान हैरिंग्टन' और 'हैरी रिचमांड'— की सृष्टि करता है। भावों के विश्लेषण के अर्थ में ही वह अपने कथानकों में नारी को केन्द्रीय स्थान प्रदान करता है। 'रोडा फ्लेमिंग' (१८६५) 'विट्टोरिया' (१८६७) और 'डायना ऑफ दि क्रॉसवेज़' (१८८५) भी उसी प्रेरणा से प्रस्तुत हुए। उसकी सबसे प्रख्यात कृति 'दि इगोइस्ट' (१८७७) है। उसके डायलॉग बड़े सजीव हैं। उसके 'वन ऑफ आवर कांकरर्स' (१८९१) में उसका दृष्टिकोण और भी जटिल हो गया है। जटिलता उसकी लोकप्रियता में बाधक हुई है।

मैरेडिथ की ही सूक्ष्म चेतना हेनरी जेम्स[1] को भी मिली थी। जेम्स अमेरिका में जनमा और शिक्षित हुआ था, परन्तु इंग्लैंड में बस गया था। उसे नागरिकता का अधिकार उसकी मृत्यु से केवल एक वर्ष पहले मिला। 'डेजी मिलर' (१८७९) में उसने यूरोपियन जीवन के प्रति अमेरिकन प्रतिक्रिया का चित्रण किया और 'दि ट्रैजिक म्यूज़' (१८९०) तथा अन्य उपन्यासों में अंग्रेज-जीवन का अध्ययन किया। जैसे-जैसे उसकी साहित्यिक सक्रियता बढ़ती गई, वैसे ही वह शैली में जटिल होता गया। उस जटिलता का दर्शन हमें 'दि विंग्स ऑफ़ दि डव' (१९०२) 'दि ऐम्बैसेडर' (१९०३) और विशेषतः 'दि गोल्डन बोल' (१९०४) में होता है। जेम्स विशेषकर उसकी अभिजात कुलीनता के प्रति बड़ी कमजोरियाँ लेकर, यूरोप गया था। उसके जो आदर्श थे, वे उसे वहाँ न मिले, फिर भी उसने अपनी कल्पना को साहित्यमें सार्थक कर दिया है। यद्यपि चित्र अयथार्थ हैं फलतः जटिल होते गए। उसकी शैली बड़ी सूक्ष्म है और अपनी कल्पना के प्रति उसकी निष्ठा इतनी प्रबल है कि अपने साहित्यिक विस्तार में वह चित्रण की एकरूपता के कारण यथार्थ लगने लगता है, मिथ्या भी निरन्तर के अंकन से नित्य सिद्ध होने लगता है।

टॉमस हार्डी इंग्लैंड के सबसे महान् उपन्यासकारों में से है। टॉमस हार्डी और हेनरी जम्स समसामयिक हैं, पर दोनों की दुनिया अलग-अलग है। हार्डी का पहला उपन्यास १८७१ में 'डेस्परेट रैमेडीज़' निकला और तब और 'जूड दि ऑब्स्क्योर' के १८९५ में प्रकाशन के बीच वह निरन्तर उपन्यास लिखता गया। उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं—'दि रिटर्न ऑफ़ दि नेटिव' (१८७८), 'दि ट्रम्पेट मेजर' (१८८०), 'दि मेयर ऑफ कैस्टर-ब्रिज' (१८८६), 'दि वुडलैंडर्स' (१८८७) और 'टैस ऑफ़ दि डुर्बविल्स' (१८९१)। हार्डी पेशे से शिल्पी था और अपनी कला को भी उसने शिल्प का महत्त्व दिया। इमारत की एक-एक ईंट उसने प्लान के मुताबिक बिठाई। परन्तु वह प्रारब्धवादी था।

---

१. Henry James (१८४२-१९१६)

प्रारब्ध मनुष्यों को निरन्तर उनके अन्त की ओर खींचता जाता है, सदा उनके सुख की सम्भावनाओं से दूर, दुःख की ओर। उसका जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण प्रायः दर्शन का रूप धारण कर लेता है। उन्नीसवीं सदी का भौतिक आशावाद और ईसाई धर्म की सान्त्वनाएँ, दोनों में उसका अविश्वास था जो निरन्तर बढ़ता गया और जीवन का अर्थ उसके लिए प्रायः कुछ नहीं रहा। जीवन को उसने निरुद्देश्य माना। फिर भी प्रारब्ध के शिकार मानवों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति है और उसकी यह सहानुभूति उन्हीं तक सीमित नहीं, कीड़े-मकोड़ों तक को छू लेती है। हार्डी कथानक का भी असाधारण शिल्पी है और घटना-चक्र निरन्तर सहज रीति से उसके उपन्यासों में घूमता है। देहात का जीवन उसके उपन्यासों में मूर्त्तिमान हो उठता है। 'टैस' और 'जूड दि ऑब्स्क्योर' में तो उसकी कला ग्रीक ट्रैजेडी का रूप धारण कर लेती है। वर्डस्वर्थ की सम्मोहक करुण प्रकृति उसके हाथ में नितांत क्रूर बन जाती है। उसके सुन्दरतम चरित्र वे हैं जो नगर के जीवन से दूर गाँवों के अकृत्रिम वातावरण में रहते हैं और नगर की सत्ता स्वीकार नहीं करते। हार्डी को एक ओर तो 'दूसरे दर्जे का रोमांटिक', दूसरी ओर साहित्य के महानतम व्यक्तियों में से एक होने का श्रेय मिला है। इसमें सन्देह नहीं कि उसका स्थान अंग्रेजी साहित्य में बहुत ऊँचा है, परन्तु उसका साहित्य आगे भी पाठकों को आकृष्ट करेगा, इसमें सन्देह है।

डारविन के वानस्पतिक विज्ञान ने जिन अनेक अंग्रेज साहित्यिकों को प्रभावित किया था, सैमुएल बटलर[१] भी उन्हीं में था। अपने उपन्यास 'दि वे ऑफ़ ऑल फ्लेश' (१९०३) में उसने स्विफ्ट की व्यंग्यात्मक शैली का सहारा लिया और विक्टोरियाकालीन समाज के तथाकथित समन्वित दृष्टिकोण पर गहरा प्रहार किया। उसकी कृतियाँ 'अरवोन' (१८७२) और 'अरवोन रिविजिटेड' (१९०१) इस दिशा में और चुटीली सिद्ध हुईं। समसामयिक मूल्यों पर उनकी व्यंग्यात्मक चोटें दिलचस्प हैं। बटलर बौद्धिक क्रान्तिकारी है और उसकी कृतियाँ नितान्त मौलिक हैं।

१८७०-८० की दशाब्दी में उपन्यासों के आकार में विशेष परिवर्तन हुआ। भारी-भरकम उपन्यास लोगों की रुचि से गिर गए और प्रकाशकों ने भी देखा कि छोटे उपन्यास छापने में ही अधिक लाभ है। रॉबर्ट लुई स्टिवेन्सन[२] इस परिवर्तनके स्रष्टाओं में प्रथम था। उसका 'ट्रैजर आइलैंड' प्रकाशित होते ही लोकप्रिय हो गया। छोटे उपन्यासों के साथ ही उन छोटी कहानियों का भी प्रादुर्भाव हुआ, जिनका आरम्भ एडगर एलेन पो ने अमेरिका में पहले ही कर दिया था। स्टिवेन्सन की 'न्यू अरेबियन नाइट्स' (१८८२) के बाद उसके और भी रोमांटिक उपन्यास निकले—'किडनैप्ड' (१८८६), 'दि ब्लैक एरो' (१८८८) 'दि मास्टर ऑव बैलेन्ट्रे' (१८८९), 'दि रांग बाक्स' (१८८९)। 'डाक्टर जेकेल एण्ड

१. Samuel Butler (१८३५–१९०२); २. Robert Louis Stevenson (१८५०-९४)

मिस्टर हाइड' में स्टिवेन्सन ने नेक-बद का एक रूपक प्रस्तुत किया जो आज भी काफी जनप्रिय है। स्टिवेन्सन कलाकार था और उसकी कला क्या उपन्यास, क्या कहानियाँ, क्या निबन्ध, क्या पत्र-लेखन सभी सहज और असामान्य हैं। उसके निबन्ध तो शैली के प्रतीक हैं—जैसे उसका पाठक सामने हो और उससे वह सीधा बात कर रहा हो। उसके भ्रमण-वृत्तान्त तो सर्वथा अनूठे हैं।

उसी काल कुछ ऐसे उपन्यासकारों का प्रादुर्भाव हुआ जो बड़े सफल हुए, परन्तु जो कहानी कहने मात्र में निपुण थे और जिन्होंने पाठक जनता को देख कर लिखा और लोकप्रिय हो गए। सही उपन्यासकारों की श्रेणी में उन्हें नहीं रखा जा सकता, यद्यपि उनमें से कई उनके स्तर को छू लेते हैं। ये हैं—वीडा राइडर हैगर्ड[१], ए० कानन डॉयल,[२] मिसेज हम्फ्री वार्ड,[३] हॉल केन[४] मेरी कोरेली,[५] ग्रांट एलेन,[६] एडगर वालेस[७] और पी० जी० वुडहाउस[८]। ये प्लॉट की खूबी और कथानक की रोचकता से पाठकों का मन हर लेते हैं। इन्होंने अपनी कृतियों से धन भी काफी कमाया। इनमें हॉल केन और वुडहाउस विशेष उल्लेखनीय हैं। वुडहाउस ने तो अंग्रेजी साहित्य को अत्यन्त मुहावरेदार भाषा भेंट की।

जॉर्ज गिसिंग[९] और रुडयार्ड किपलिंग ने भी इसी काल लिखा। दोनों ऊपर लिखे उपन्यासकारों से अपनी कला और मर्यादा में भिन्न थे। गिसिंग लोकप्रिय नहीं हो सका, यद्यपि उसमें मेधा अथवा साहस की कमी न थी। अपने 'वर्कर्स इन दि डॉन' (१८८०) 'डिमोस' (१८८६), 'दि नेदर वर्ल्ड' (१८८९), और 'न्यू ग्रब स्ट्रीट' (१८९१) में उसने अपने समाज के भ्रष्टाचार का भयानक भंडाफोड़ किया। उसकी अवहेलना शायद उसकी अप्रिय सत्य के प्रति व्यग्रता और प्रहार के कारण हुई। उसकी कृतियों में रंजन का अभाव था। 'दि प्राइवेट पेपर्स ऑफ हेनरी राईक्राफ्ट' (१९०३) में वह अपेक्षाकृत अधिक सफल हुआ। किपलिंग (१८६५-१९३६) बड़ा लोकप्रिय हुआ। वह साम्राज्यवादी था और उसका दृष्टिकोण तब के इंग्लैंड को अधिक प्रिय था। जब वह साहित्य के क्षेत्र में उतरा, स्टिवेन्सन की ही भाँति कहानी और छोटे उपन्यास लिखने में वह उस्ताद था। उसकी यह संक्षिप्त शैली भी उसकी लोकप्रियता में सहायक हुई। उसकी सफलता का एक और कारण उसके कथानकों की भारतीय पृष्ठभूमि भी था। उसकी कहानियों—'प्लेन टेल्स फ्रॉम दि हिल्ज' (१८८८)—और उपन्यासों—'दि लाइट दैट फेल्ड' (१८९१) और 'किम'

---

१. Sir Henry Rider Haggard (१८५६-१९२५); २. Sir Arthur Canon Doyle (१८६९-१९३०); ३. Mrs. Mary Humphry Ward (१८५१-१९२०); ४. Sir Thomas Henry Hall Caine (१८५३-१९३१); ५. Marie Corelli (१८६४-१९२४); ६. Charles Grant Bliarfindie Allen (१८४८-९९); ७. Edgar Wallace (१८७५-१९३२); ८. P. G. Woodhouse ९. George Robert Gissing (१८५०-१९०३)

(१९०१) से उसे प्रभूत ख्याति मिली। इनके अतिरिक्त उसकी और कृतियाँ—'स्टॉकी एण्ड को' (स्कूल जीवन की कहानियाँ) (१८९९), 'दि जंगल बुक्स', (१८९४-१८९५) 'पक ऑफ पूक्स हिल' (१९०६) भी जानी हुई हैं। शैली में किपलिंग सरल है बाइबिल की तरह और कल्पना में चित्रमय, परन्तु विचारों में सर्वथा प्रतिक्रियावादी है। 'कालों के प्रति गोरों के दायित्व' वाले सिद्धान्त का वह प्रबल पोषक है, यद्यपि उसकी कविता 'रेसेशनल' में इंग्लैंड के खतरों की ओर संकेत है।

जॉन गॉल्ज़वर्दी इस दृष्टिकोण का विरोधी आत्मालोचन का उपन्यासकार है। 'दि आइलैंड फैरिसीज़' (१९०४) में उसने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया। उसका 'दि मैन आफ प्रॉपर्टी' और 'फोरसाईट सगा' में उच्च मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण है। उसने अपने सिद्धान्त की परिभाषा 'सम्पत्ति के विरुद्ध सौन्दर्य का संघर्ष' दी है। उसकी लेखनी के स्पर्श से वर्णन मूर्त्ति धारण करता जाता है। उसने आधी सदी के इंग्लैंड के उच्च मध्य-वर्गीय जीवन का जैसा यथार्थ और सफल चित्रण किया है, वैसा दूसरा कोई न कर सका। वह शीघ्र ही इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों में लोकप्रिय हो भी गया, यद्यपि आज उसकी लोकप्रियता उतनी नहीं जितनी कभी पहले थी। उसका अध्यवसाय उद्देश्यपरक है। ऑर्नल्ड बैनेट[1] ने 'दि कार्ड' में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की सफलता का अंकन किया जो प्रायः आत्म-परक था। उसकी 'दि ओल्ड वाइव्ज़ टेल' (१९०८) पर मोपासाँ का स्पष्ट प्रभाव है। उसकी तीन और कृतियाँ जानी हुई हैं—'क्लेहैंगर' (१९१०) 'हिल्डा लैसवेज़' (१९११) और 'दीज़ ट्वेन' (१९१६)।

एच० जी० वेल्ज़[2] ने इस काल उपन्यास और कहानी लेखन में एक नया संसार रचा—वैज्ञानिक आधार पर निर्मित उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। चोटी का वैज्ञानिक तो वह था ही, साथ ही इतिहासकार, निबन्धकार और उपन्यासकार भी था। उसने अपने युग को अपनी प्रतिभा से अनेक प्रकार से विविध मात्रा में प्रभावित किया। उपन्यास के क्षेत्र में वह 'दि टाइम मशीन' (१८९५) लेकर उतरा। फिर एक के बाद एक उसके 'दि इन्विज़िबलमैन' (१८९७) 'दि वार ऑफ दि वर्ल्डस' (१८९८) 'व्हैन दि स्लीपर वेक्स' (१८९९), और 'दि फर्स्ट मैन इन दि मून' (१९०१) आते गए। इनमें केवल वैज्ञानिक स्थितियों का उपन्यासगत विवरण था, परन्तु शीघ्र ही ऐसे उपन्यासों की सृष्टि में वेल्ज़ लगा जिनमें दृष्टिकोण और सिद्धान्त झलकने लगे। 'दि फूड ऑफ दि गॉड्स' (१९०४) और 'इन दि डेज़ ऑफ दि कॉमेट' (१९०६) इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। वेल्ज़ विश्वासों से सोशलिस्ट था और उसने प्लैटो की ही भाँति १९०५ में एक काल्पनिक शब्द-संसार रचा—'ए मॉडर्न यूटोपिया'। उसने कुछ विनोदी, हास्य प्रधान उपन्यास—'दि व्हील्स ऑफ चान्स'

१. Arnold Bennet (१८६७-१९३१); २. H. G. Wales.

(१८९६) 'लव एण्ड मिस्टर लेविशम (१९००) और 'किप्स' (१९०६) भी लिखे। इनमें अन्तिम सुघड़ कृति है। वेल्ज़ कलाकार से अधिक विचार-प्रधान है और, यद्यपि अनेकतः वह सुन्दर है, उसकी शैली 'जर्नलिस्टिक' है। 'एन वेरोनिका' (१९०९) और 'दि न्यू मेकियावेली' (१९११) फिर भी सुन्दर हैं। उसका 'टोनो बंगे' (१९०९) असाधारण व्यंग्यकृति है, प्रचुर टिकाऊ। 'दि हिस्ट्री ऑफ़ मिस्टर पोली' (१९१०) में वह एक बार फिर 'किप्स' की परंपरा की ओर मुड़ा और 'मिस्टर ब्रिटलिंग सीज़ इट थ्रू' (१९१६) में उसने महासमर के प्रति अपनी प्रतिक्रिया मूर्त की। उसका दृष्टिकोण दिन-दिन विश्ववादी होता जा रहा था और वैज्ञानिक होने के कारण विशेषतः वह मानव-जाति को एक इकाई के रूप में देखने लगा। इसी विचार का परिणाम 'दि आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री' (१९२०) नामक उसका इतिहास हुआ। 'दि वर्ल्ड ऑफ विलियम क्लिसोल्ड' (१९२६) और 'जोन एण्ड पीटर' (१९१८) में उसकी विचार-सरणी और भी गद्यपरक हो गई। परन्तु निश्चय ही वेल्ज़ अद्भुत प्रतिभा का व्यक्ति था और उसके 'किप्स' तथा 'टोनो बंगे' बने रहेंगे।

सामाजिक उपन्यासों की परंपरा बीसवीं सदी में स्वाभाविक ही चल रही है, परन्तु अन्य प्रकार के उपन्यास भी बराबर लिखे जाते रहे हैं। टियोडोर जोज़फ कॉनरड कोरज़े-नियोस्की नामक पोल ने भी कुछ दिलचस्प उपन्यास लिखे। वह जोज़फ कॉनरड[१] नाम से प्रसिद्ध है। उसके उपन्यासों में जहाजी-समुद्री जीवन का अच्छा खाका बन पड़ा है। उसकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'अलमेयर्स फॉली' (१८९५), 'दि निगर ऑफ दि नार्सिसस' (१८९८), 'यूथ' (१९०२) 'टाइफून' (१९०३) 'नौस्ट्रोमो' (१९०४), 'लार्ड जिम' (१९०६), 'दि ऐरो ऑफ गोल्ड' (१९१९)। कॉनरड अंग्रेजी के विदेशी निर्माताओं में से है। जॉर्ज मूर[२] ने फ्रेंच साहित्य से प्रभावित होकर कुछ उपन्यास और आत्म परिचायक ग्रंथ रचे। इनमें मुख्य हैं 'कन्फ़ेशन्स ऑफ़ ए यंगमैन' (१८८८), 'हेल एण्ड फ़ेयरवैल अवे' (१९११), 'सॉल्वे' (१९१२), 'वैल' (१९१४), 'ईस्थर वाटर्स' (१९८४), 'दि ब्रूक केरिथ' (१९१६), 'हेलाइज़ एण्ड अबेलार्ड' (१९२१)। इनमें अन्तिम धार्मिक उपन्यास है। सॉमरसेट मॉम[३] ने अपने उपन्यासों में बड़ी सफलता पाई है और आज सतहत्तर वर्ष की आयु में भी लिखता जा रहा है। 'लिज़ा ऑफ़ लैंबेथ' (१८९७) के लन्दन-जगत् को छोड़ अपने पिछले उपन्यासों में उसने चीन, मलाया आदि पूर्वात्य देशों का जीवन व्यक्त किया है। उसकी 'दि ट्रैम्बलिंग ऑफ़ ए लीफ़' (१९२१), 'दि पेन्टेड वेल' आदि सुघड़ कृतियाँ हैं। आलोचकों ने उसकी उपेक्षा की है परन्तु यथार्थ के निरूपण में वह निपुण और साहसी है। यह सत्य है, उसके उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

---

१. Joseph Conrad (१८५७-१९२४); २. George Moore (१८५२-१९३३); ३. Somerset Maughm (ज० १८७४)

लीज़ लवर' (१९२८) लिखी—यौन, निरावृत अंकन। परंपरा के शत्रु लॉरेंस ने सांप्रति के प्रति विद्रोह किया परन्तु वह स्वयं यौन की परिधि से बाहर न जा सका। काश, अपनी अनुभूति और 'दृष्ट' का उपयोग उसने सभ्यता के पुनर्निर्माण में किया होता।

लॉरेन्स के साहस का लाभ कुछ तरुण कलाकारों को भी हुआ। उनमें आल्डुस हक्स्ले[1] प्रधान हैं, यद्यपि वह लॉरेन्स के साध्य से, उसके दर्शन से, नितान्त दूर हैं। इतनी सूक्ष्म मेधा इस शताब्दी के उपन्यास-निर्माण में, उस साहित्य के दार्शनिक विश्लेपण में किसी और को न मिली, यद्यपि यह वक्तव्य दर्शन और निरूपण के पक्ष में ही सत्य है। पिता की दिशा में उस मेधावी को चार्ल्स डॉरविन के सहायक टॉमस हक्स्ले का सुदूर पैतृक प्राप्त है और माता के पक्ष में मैथ्यू आर्नल्ड का योग, फिर वह आज के संसार के एक असाधारण प्रतिभाशील परिवार का व्यक्ति है। उसका बौद्धिक स्तर इंग्लैण्ड के पिछले उपन्यासकारों से सर्वथा भिन्न है। किसी साहित्यकार ने प्रथम महा-समर के बाद के इंग्लैण्ड के बौद्धिक जीवन का विश्लेषण ऐसा समर्थ और सही नहीं किया जैसा हक्स्ले ने। अपने उपन्यास 'क्रोमयेलो' (१९२१) और 'ऐण्टिक हे' (१९२३) में उसने वंचक जीवन का व्यंग्यात्मक निदर्शन किया है। 'दोज़ बैरेन लीव्ज़' (१९२५) में एक प्रकार की गवेषणा है—अनुसंधान और प्राप्ति। यौनानुभूति उसके लिए लॉरेन्स की भाँति आनन्दानुभूति नहीं है। वह उससे दूर है। मानव को वह बौद्धिक स्तर पर सर्वथा खोल कर देख लेता है, निर्लिप्त, यद्यपि कष्टकर उद्रेक से अशक्य हो जाता है। उसकी सुन्दरतम, सर्वथा मौलिक कृति, 'प्वाइंट काउण्टर प्वाइंट' (१९२८) है। जिस यांत्रिक संसार में वेल्ज़ प्रेम-विह्वल हो सकता था, उससे हक्स्ले को किंचित् भी संतोष नहीं होता। इस यांत्रिक दुनिया को वह अपने 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' (१९३२) में और भी फटकारता है। धीरे-धीरे मानव-पशु के इस विवेचक की प्रवृत्ति और भी अन्तर्मुख हो जाती है और उसके 'आइलेस इन गाज़ा' (१९३६) से लगता है जैसे उपन्यास अब उसके विचारों का वहन नहीं कर सकते। 'एण्ड्स एण्ड मीन्स' (१९३७) में तो वह कथानक तक को छोड़ देता है और उसका चिन्तन कला से दूर दर्शन का रूप धारण कर लेता है। कुछ अजब नहीं जो, जैसा उसने लेखक से कहा था, 'टाइम मस्ट हैव ए स्टॉप' उसे अपनी कृतियों में सबसे सुन्दर और महान् लगता हो। और कुछ अजब नहीं कि उसकी प्रेरणा सांप्रति जगत् को भूल कर अलख को खोजने लगे। आल्डुस हक्स्ले ने अभी हाल रामकृष्ण-मिशन के लॉस-एन्जिल्स मठ के आचार्य स्वामी प्रणवा-नन्द से कान फुका कर शिष्यत्व ग्रहण कर लिया है।

कुछ उपन्यासकारों ने इधर मनोवैज्ञानिक ढंग से भी अन्तर्जीवन को व्यक्त

---

१. Aldous Huxley (ज० १८९४)

करना शुरू किया है। इनमें डोरोथी रिचार्डसन[१] पहली है। उसने अपने 'प्वाइंटेड रूफ्स' (१९१५) में अकेले एक चरित्र की चेतना का अध्ययन किया है। इस दिशा में मिसेज वर्जीनिया वुल्फ़[२] को विशेष सफलता मिली। उसके उपन्यासों में प्रधान हैं—'दि वॉएज़ आउट' (१९१५), 'नाइट एण्ड डे' (१९१९), 'जैकाब्स रूम' (१९२२), 'मिसेज़ डैलोवे' (१९२५) 'टु दि लाइटहाउस' (१९२७), 'आर्लैंडो' (१९२८), 'दि वेव' (१९३१) और 'दि इयर्स' (१९३७)। वर्जीनिया वुल्फ़ की उपन्यास कला में चित्रकला का 'इम्प्रेशनिज़्म' उतर आया है। इस प्रकार उसके उपन्यास एक प्रकार का आन्तरिक एकान्त चित्रण हो गये हैं। परन्तु उसके वर्णन में माधुर्य और प्रवाह है, विनोद है। विनोदनात्मरंजन उसके 'ऑर्लैण्डो' का प्राण है।

इस अध्याय का अन्त जेम्स ज्वायस[३] की कृतियों के उल्लेख बिना नहीं किया जा सकता। जेम्स ज्वायस को नितान्त सराहा भी गया है, खुली गाली भी मिली है। अच्छा-बुरा वह जैसा भी हो, शताब्दी का वह शायद सबसे मौलिक उपन्यासकार है। लघु कहानियों के जगत् में अपने संग्रह 'डब्लिनर्स' द्वारा नाम कमा वह उपन्यासों के क्षेत्र में उतरा। 'ए पोर्ट्रेट ऑफ़ दि आर्टिस्ट ऐज़ ए यंगमैन' (१९१६) के आधार से उठ कर उसकी सर्वथा वैयक्तिक कला 'उलिसेज़' (१९२२) में प्रौढ़ हो गई। उसके बाद 'फ़िनेगन्स वेक' (१९३९) प्रकाशित हुआ। उसने सचेतक-अचेतक दोनों जीवनों का सर्वांगीण रूप में चित्रण किया। उसके दर्शन में देश और काल की संज्ञा कृत्रिम है, सब कुछ सापेक्ष्य है, कला उसी सापेक्ष्यता का निरूपण है। 'उलिसेज़' का जगत यौन-चित्रण का अनंगीकृत निरावृत्त अंतरंग है। उसकी कला धर्म और चर्च के प्रति उसके विद्रोह में निखरी। ज्वायस विश्लिष्ट जगत् में समष्टि ढूँढ़ता है। उसकी कृतियाँ इसी 'एकायनता' (एकता) के अन्वेषण का परिणाम हैं। ज्वायस के उपन्यासों का प्रभाव युवा सृजकों पर गहरा पड़ा।

: १९ :

अंग्रेजी गद्य-साहित्य

अट्ठारहवीं सदी तक

यहाँ हम केवल उस गद्य का इतिहास लिखेंगे, जो अधिकतर निबन्धगत है, कहानी-उपन्यास और नाटक-संबंधी गद्य से भिन्न।

अंग्रेज़ी गद्य का आरम्भ दसवीं सदी से होता है। उसके पहले और काफी बाद

---

१. Dorothy Richardson; २. Virginia Woolf (ज. १८८२); ३. James Joyce (१८८२-१९४१)

तक लैटिन का बोलबाला था। जब उसका स्थान अंग्रेजी ने लिया, तब भी उसकी परंपरा जीवित रही। लोग लैटिन में बोलते-लिखते थे और शिष्टता तथा शिक्षित की तो पहिचान ही उसके प्रयोग से होती थी। लैटिन का जब बोलबाला या साधारण प्रयोग उठ गया, तब भी उसकी परंपरा बनी रही और इसी से उस काल अंग्रेजी के दो रूप हो गए, एक तो लैटिन-बोझिल, दूसरी सहज अंग्रेजी। लैटिन भाषा के रूप में तो उठ गई, पर गद्य की कृत्रिमता में अपनापा छोड़ती गई। इसी बोझिल भाषा में ईल्फ्रिक ने लिखा। अल्फ्रेड का 'क्रॉनिकल' सरल शैली वाली अंग्रेजी में लिखा गया। नॉर्मन-विजय (१०६६) के बाद लैटिन-शैली का अंग्रेजी गद्य मिट गया, अल्फ्रेड (मृत्यु ९०१) प्राय: १०० वर्ष बाद तक चलता रहा। इस प्रकार प्रांजल सरल अंग्रेजी अपनी स्वाभाविक धारा में बह चली, यद्यपि नार्मनों के साथ आई फ्रेंच भाषा का दबदबा उस धारा पर कुछ काल के लिए हावी हो गया। उस प्राचीन गद्य की परंपरा का आरम्भ विशेषत: तेरहवीं सदी में हुआ। सेन्ट मार्गरेट, सेन्ट कैथरीन, सेन्ट जुलियाना के चरित आदि उसके स्मारक हैं। १४७६ में इंग्लैण्ड में विलियम कैक्सटन[1] का छापाखाना खुला। कैक्स्टन के प्रेस और स्वयं उसके प्रयास ने इंग्लैण्ड को स्टैन्डर्ड भाषा दी। टॉमस मेलॉरी[2] ने १४७० में 'मार्टी डी आर्थर' लिखी जो उसी प्रेस में छपी। लार्ड बेर्नर्स[3] ने फिर १५२० में 'क्रॉनिकल' प्रस्तुत किया जो अनुवाद मात्र था, परन्तु जो चौदहवीं सदी का जीवित चित्र प्रतिबिंबित करता था। इसी अनुवाद के साथ कुछ लोगों के विचार से आधुनिक अंग्रेजी गद्य का आरम्भ होता है। इसके बाद ही अंग्रेजी बाइबिल प्रस्तुत हुई जो अंग्रेजी गद्य का सहज अकृत्रिम अथच सशक्त रूप है? विलियम टिन्डेल[4] और माइल्स कवरडेल[5] उसके विधायक थे। जॉन वाइक्लिफ़ की १४वीं सदी वाली शैली में नया अनुवाद कल्पनातीत सुन्दर उतरा। टिन्डेल ने जो काम शुरू किया था, उसके प्राणदण्ड के बाद कॅवरडेल ने उसे पूरा किया। बाइबिल के अनुवाद के साथ ही तद्वर्ती धार्मिक साहित्य का भी उदय हुआ। उनमें जॉन फौक्स[6] का 'बुक आफ मार्टीयर्स' सबसे अधिक विख्यात है। उसमें प्रोटेस्टैंट शहीदों का बड़ा भावुक वर्णन है। इसका प्रोटेस्टैन्ट धर्म में प्राय: १०० वर्ष बाद तक बोलबाला बना रहा। रिचर्ड हुकर[7] ने १६वीं सदी के अन्त में अपनी 'लॉज़ ऑफ़ एकलेज़िएस्टिकल पॉलिसी' सुन्दर सहज भाषा में लिखी, यद्यपि उसकी शैली अंग्रेजी और लैटिन के बीच की थी, जिसमें स्पष्टत:, शालीनता तथा देशीयता का समान पुट था।

---

१. William Caxton (१४२१-९१); २. Sir Thomas Malory (मृ. १४७१); ३. Lord Berners (१४६७-१५५३); ४. William Tindale (१४८४-१५३६); ५. Miles Coverdale (१४८८-१५६८); ६. John Foxe (१५१६-८७); ७. Richard Hooker (१५५४-१६००)

लेडी जेन ग्रे के शिक्षक रोजर ऐशम[1] ने 'टोक्सोफ़िलस' (१४५५) और 'दि स्कूल मास्टर' (१५७०) में तत्कालीन गद्य शैली उद्घाटित की। १६वीं सदी के तीसरे चरण के आरम्भ में सर टॉमस नार्थ[2] ने प्लूटार्च के जीवन चरितों का अनुवाद किया जो शेक्सपियर आदि के तत्संबंधी ऐतिहासिक नाटकों का आधार बना। वैसे ही फिलेमन हॉलैण्ड द्वारा अनूदित प्लिनी की 'नेचुरल हिस्ट्री' भी शेक्सपियर के बड़े काम आई।

रैफेल होलिन्शैड[3] ने 'क्रॉनिकल' के रूप में अंग्रेजी जीवन को प्रतिबिंबित किया था वह भी शेक्सपियर की लेखनी के जादू से १६वीं सदी के अन्त में मूर्तिमान् हुआ। उसी सदी के अन्त में रिचर्ड हकलुइट[4] ने 'दि प्रिंसिपल वायजेज़' नामक यात्रा-ग्रन्थ प्रस्तुत किया और १७वीं सदी में रॉबर्ट बर्टन[5] ने 'अनाटॅमी ऑफ़ मलेंकली' (१६२१) लिखकर मानव-मस्तिष्क की क्रियाओं पर प्रकाश डाला।

अंग्रेजी गद्य का पहला वास्तविक महान् व्यक्ति फ्रांसिस बेकन[6] था। वस्तुत: वह काल अंग्रेजी गद्य के विकास में बड़ा महत्व रखता है। उसी काल बाइबिल का 'सम्मत पाठ' भी प्रस्तुत हुआ। बेकन की विचारधारा ने तत्कालीन धार्मिकता को अपनी वैज्ञानिकता से चुनौती दी। बेकन स्वयं तो रूढ़िवादी ही था परन्तु जिस मन: स्थिति को उसने उत्साहित किया, वह धर्म-विरोधिनी सिद्ध हुई। बेकन की अधिकतर कृतियाँ लैटिन में हैं और यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं कि इंग्लैंड का तत्कालीन महत्तम गद्यकार अंग्रेजी से उदासीन रहा हो। १५९७ में उसके 'एैसेज़' प्रकाशित हुए। इन निबन्धों की शैली अत्यन्त कसी हुई, सूत्रवत् है। एक शब्द का व्यवहार भी वह आवश्यकता से अधिक नहीं करता।

१७वीं सदी का पूर्वार्द्ध गृहयुद्ध और प्युरिटन-विजय का था। उस काल का गद्य गंभीर और शालीन है, जिसका प्रभाव आज के पाठकों पर गहरा पड़ता है। सर टॉमस ब्राउन[7], जेरमी टेलर[8] और जॉन मिल्टन ने तब अपनी शक्तिम शैली से अंग्रेजी गद्य को सनाथ किया। ब्राउन पंडित था, राजनीति से सर्वथा दूर। जादू और अमानुषिक घटनाओं में उसका विश्वास था, यद्यपि वैद्य होने के कारण विज्ञान से उसका सीधा सम्बन्ध था। उसकी शैली में दोनों का समावेश है और वह नितान्त सुन्दर बन पड़ी है। अपने 'हाड्रियोटेफ़िया' और 'अर्न बरियल' (१६५८) और 'रेलिजिओ मेडिसी' में जिस शैली का ब्राउन ने उद्घाटन किया, वह आश्चर्यजनक है। जेरेमी टेलर ब्राउन का समकालीन था और उसकी कृतियाँ 'होली लिविंग' (१६५०) तथा 'होली डाइंग' (१६५१)—

---

१. Roger Ascham (१५१५-१५६८); २. Thomas North; ३. Raphael Holingshed; ४. Richard Hakluyt (१५५३-१६१६); ५. Robert Burton (१५७६-१६४०); ६. Francis Bacon (१५६१-१६२६); ७. Sir Thomas Browne (१६०५-'८२); ८. Jeremy Taylor (१६१३-'६७)

प्रवचन के क्षेत्र में भाषा की शालीनता में अपना जोड़ नहीं रखतीं। टेलर पादरी था। मिल्टन बाँए हाथ से लिखा करता था और अधिकतर उसने लिखा भी लैटिन में ही। व्याख्यान और लेखन की स्वतन्त्रता के पक्ष में १६४४ में जो उसने अपनी 'एरियोपेजेटिका' लिखी, वह शक्ति तथा शालीनता में लासानी है, यद्यपि उसके वाक्यों की पेचीदगी कुछ सरल नहीं अनेक बार तो उसने अंग्रेजी और लैटिन की खिचड़ी तक कर दी है।

१७वीं सदी के आइज़क वाल्टन[1] का 'कम्प्लीट ऐंगलर' (१६५३) सदियों पार आज भी पाठकों को आकृष्ट करता है। उसने अनेक जीवन-चरित लिखे और यह 'ऐंगलर' तो गृह-युद्ध के समय ही लिखा गया, जिसमें मछली मारने के व्यसन के साथ ही अंग्रेजी देहात का जीवन भी प्रतिविम्बित हुआ। १६६० के पुनरारोहण के साथ अंग्रेजी गद्य का एक नया रूप शुरू हुआ। चार्ल्स द्वितीय लुई के फ्रांसीसी दरबार में प्रवासी के रूप में एक जमाने तक रह चुका था। वह जब स्वदेश लौटा तो लुई के दरबार की अनेक विशेषताएँ साथ लेता आया। उनमें से एक विशेषता फ्रैंच भाषा की चपलता, सरलता और उसका सहज प्रवाह था। अंग्रेजी पर फ्रैंच भाषा की इस रीति की छाया पड़ी। रॉयल सोसाइटी की नींव ने न केवल वैज्ञानिक विषयों की छानबीन शुरू की वरन् उसका प्रभाव साहित्य और दर्शन पर भी पड़ा। कवि और नाटककार जॉन ड्राइडन ने साहित्य-संबंधी निबन्ध तभी लिखे। उनमें 'ऐसेज़ ऑफ़ ड्रामेटिक पोएज़ी' (१६६८) सबसे पहले प्रकाशित हुआ और 'प्रिफेस टु दि फेब्रुल्स' (१७००) सबसे पीछे। ड्राइडन की शैली बड़ी सहज और सरल थी।

इसी काल टॉमस होबेस[2] और जॉन लॉक[3] ने भी अपने राजनीतिक ग्रन्थ लिखे—होबेस ने 'लेवायथान' (१६५१) और लॉक ने 'सिविल गवर्नमेंट'। लॉक का निबन्ध 'ऐन ऐसेज़ कनसर्निंग ह्यूमन अन्डरस्टैंडिंग' (१६९०) का प्रभाव सारे यूरोप पर पड़ा।

१७वीं सदी का सबसे विख्यात गद्यकार सेमुएल पेपिज़[4] था। उसने साधारण जन की साधारण बातें अपनी कृति में लिखीं, पहली बार और अपने जीवन की बातें सविस्तार। पेपिज़ रॉयल नेवी का विधाता और रॉयल सोसाइटी का प्रधान था। उसकी डायरी सादी और अद्भुत है, जिसका जोड़ अंग्रेजी साहित्य में नहीं। पेपिज़ के कुछ और समकालीन थे जिन्होंने उसी की भाँति अपने जीवन की भी अपने लेखों पर छाया डाली। जॉन एवेलिन[5] रॉयल सोसाइटी का सदस्य, राजदरबारी और पेपिज़ का मित्र था, जिसने उद्यानों, मैदानों,

---

१. Izaak Walton (१५९३-१६८३); २. Thomas Hobbes (१५८८-१६७८); ३. John Locke (१६३२-१७०४); ४. Samuel Pepys (१६३२-१७०४); ५. John Evelyn (१६२०-१७०६)

यात्राओं आदि का वर्णन लिखा। वह वस्तुतः चार्ल्स द्वितीय के सभासदों से रुचि में बड़ा भिन्न था। पेपिज़ और ऐवेलिन की ही भाँति क्लेयरेन्डन का अर्ल ऐडवर्ड हाइड[1] जब अपने विषय में लिखने चला तब राजनीति से घने रूप से संबंधित होने के कारण उसे 'हिस्ट्री ऑफ़ दि रिबैलियन' लिख देना पड़ा। उसकी शैली जटिल है, फिर भी तत्कालीन घटनाओं का उससे भरपूर ज्ञान हो जाता है।

क्वीन एन का काल अंग्रेजी साहित्य के समुन्नत युगों में से है। उस काल के अधिकतर गद्य ने उपन्यास का रूप लिया। 'रॉबिन्सन-क्रूसो' के लेखक डि फ़ो ने १८वीं सदी में फिर भी गद्य का रुख एक नयी दिशा में फेरा—पत्रकारिता की दिशा में। 'दि रिव्यू' पत्र-शैली का ही नमूना है। रिचर्ड स्टील[2] और जोज़ेफ़ ऐडिसन[3] ने उस दिशा में और सफल प्रयत्न किये और उनके पत्रों के कालमों में जो मध्यवर्ग के पाठकों के लिए छपते थे, आचार, फ़ैशन, साहित्य सभी कुछ रूपायित होता था। निबन्ध-लेखन भी उस काल एक नये स्तर पर उतरा। ऐडिसन ने अपने 'स्पेक्टेटर क्लब' में एक नयी दुनिया ही रच डाली। जोनाथन स्विफ्ट[4] ने बड़ी निर्भीकता से जानी हुई दुनिया के व्यंग्यात्मक चित्र सिरजे। 'दि बैटल ऑफ़ दि बुक्स' और 'ए टेल ऑफ़ ए टब' (१७०४) से लेकर 'गुलिवर्स ट्रैवेल्स' (१७१६) तक की कृतियाँ एक के बाद एक साहस और शैली की दुनिया रचती गयीं। उसके 'जर्नल टु स्टेला' से प्रमाणित है कि उसके व्यंग्य ने शत्रु नहीं उत्पन्न किये। 'ड्रेपियर्स टेलर्स' (१७२४) में उसने राजनीतिक वंचकता का घृणापूर्वक भंडाफोड़ किया। शक्ति, सूझ और व्यंग्यात्मक विनोद में स्विफ्ट अकेला है। उसने अंग्रेजी गद्य को नयी शक्ति और दिशा दी।

: २० :

आधुनिक गद्य

१८वीं सदी में इंग्लैंड के सक्रिय संघर्षमय जीवन ने भाषा की मर्यादा इस मात्रा में स्थापित कर दी कि वह अभिव्यक्ति का असाधारण साधन बन गयी। राजनीति, विज्ञान, धर्म सभी क्षेत्रों में उसकी अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत हुई और सर्वत्र उसने समर्थ निर्माताओं का सक्रिय योग पाया। जिस प्रकार होबेस और लॉक ने अपने राजनीतिक सिद्धान्त दार्शनिक सुगम गद्य में व्यक्त किये थे, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी जोजफ़ बटलर[5] सा विवेचक हुआ। 'दि अनालोजी ऑफ़ रिलीजन' (१७३६) द्वारा उसने धर्म की स्थापनाओं

१. Edward Hyde, Earl of Clarendon (१६०८-१६७४); २. Richard Steele (१६७२-१७२९); ३. Joseph Addison (१६७२-१७१९); ४. Jonathon Swilft (१६६७-१७४५); ५. Joseph Butler (१६९२-१७५२)

का सशक्त समर्थन किया । परन्तु दुनिया तेजी से बदलती जा रही थी और लोगों में परंपरा के प्रति सन्देह घर करता जा रहा था । ऐसों में बर्नार्ड मैन्डेविल[1] असामान्य मौलिकता का व्यक्ति था । 'दि फ़ेबल ऑफ़ दि बीज' (१७१४) में उसने राज्य की वंचकता पर गहरी चोट की । उसके निबन्ध आज के पत्रकारों की कुशल शैली में लिखे गये हैं, सरकार की आलोचना में ।

जॉर्ज बर्कले[2] आदर्शवादी था और जीवन के क्षेत्र में उसने दार्शनिक समस्याओं को सरका दिया । उसने भौतिक संसार के अस्तित्व को न मानकर चेतना को ही मानव-ज्ञान का आधार स्वीकार किया । डेविड ह्यूम[3] ने भी ज्ञान-चिन्तन में ही अपना गद्य माँजा और देकार्त को अपने अनुशीलन में पुनर्जीवित किया । ह्यूम के 'ऐसेज़ कनसर्निंग ह्यूमन अन्डरस्टैंडिंग' (१७४८) का चिन्तन के क्षेत्र पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

१८वीं सदी में इतिहास का विशेष चिन्तन हुआ है और इतिहास के क्षेत्र में विशेषतः गद्य-भारती जागी । ह्यूम स्वयं इतिहासज्ञ था, यद्यपि उस दिशा में 'दि डिक्लाइन एण्ड फ़ाल ऑफ़ दि रोमन एम्पायर' (१७७६) लिखकर ऐडवर्ड गिबन[4] ने बड़ा नाम कमाया । उसकी 'ऑटोबायग्राफ़ी' स्वयं शैली का सुघड़ नमूना है । उसके इतिहास ने प्राचीन का उद्‌घाटन किया, जिससे नवीन का सापेक्ष्य मूल्यांकन किया जा सका । गिबन की कृति का भी उस काल के ज्ञान पर बड़ा प्रभाव पड़ा । प्रसिद्ध डाक्टर सेमुएल जॉन्सन गिबन के मित्रों में से था । उसके व्यक्तित्व ने अंग्रेजी साहित्य पर असाधारण प्रभाव डाला । उसका यश अधिकतर जेम्स बॉसवेल[5] का 'लाइफ़ ऑफ़ जॉन्सन' पर अवलम्बित है, जिसमें उस महाकाय साहित्यिक के प्रतिपल का जीवन प्रतिबिंबित है । जॉनसन का शेक्सपियर की कृतियों का संस्करण (१७६५) उस महाकवि के अध्ययन में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ । उसकी भूमिका ने अपने साहस-भरे दृष्टिकोण से एक प्रकार से उसकी रक्षा कर ली । जॉन्सन की महान कृति उसकी 'डिक्शनरी' (कोष) (१७४७-५५) है, जिस पर बाद के प्रायः समस्त कोष अवलम्बित हुए । शब्दों का जितना ज्ञान उनके निर्माण और विकास के रूप में जॉन्सन को था, उतना किसी को न था । जॉन्सन की बौद्धिक चर्चा प्रसिद्ध है । उसके क्लब में बर्क, रेनाल्ड्स (जिसके घर क्लब की बैठकें हुआ करती थीं), फॉक्स आदि सभी बैठते थे । उसकी वाक्यावली की छाप अंग्रेजी साहित्य में उतर गई । उसी चर्चा की गद्य-शैली में जॉन्सन ने कॉवले से ग्रे तक के कवियों का जीवन चरित' दि लाइव्ज़ ऑफ़ दि पोयट्स' (१७७९-८१) के नाम से प्रकाशित किया । 'दि रैम्बलर' और' दि आइडिलर' में उसने ऐडिसन से कहीं

---

१. Bernard Mendeville (१६७०-१७३३); २. George Berkeley (१६८५-१७५३); ३. David Hume (१७११-७६); ४. Edward Gibbon (१७३७-९४); ५. James Boswell (१७४०-९५)

अधिक साहित्यिक पूँजी प्रस्तुत की। इन पत्रों के अतिरिक्त उसके ज्ञान का भंडार 'ए जर्नी टू दि वैस्टर्न आइलैंड्स ऑफ़ स्कॉटलैंड' (१७७५) में भी खुल पड़ा है। उसके 'रैसेलस' का हवाला अन्यत्र दिया जा चुका है।

व्यक्तित्व में जॉन्सन से नितान्त लघु होकर भी कर्तृत्व में ऑलिवर गोल्डस्मिथ उससे महान् था। उसमें साहित्यिक प्रतिभा कहीं अधिक थी। जॉन्सन ने उसके विषय में स्वयं कहा है कि उसने साहित्य के सभी प्रकारों को अपनाया और जिस-जिस को उसने अपनाया, उस-उस प्रकार को अलंकृत किया। नाटककार और उपन्यासकार तो वह था ही, निबन्धकार भी वह असामान्य था। उसके निबन्धों में उसका व्यक्तित्व खुल पड़ा है। 'दि सिटिज़न ऑफ़ दि वर्ल्ड' (१७६२) नामक लेख-संग्रह में उसने एक चीनी यात्री के बहाने जीवन पर कुछ चुटीले वक्तव्य किये हैं। गोल्डस्मिथ भी जॉन्सन की बैठक का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। एडमण्ड बर्क[1] का नामोल्लेख पहले ही हो चुका है। बर्क असाधारण राजनीतिज्ञ था और अपने काल का प्रमुख वक्ता। उसने लिखा भी बहुत कुछ और जहाँ उसके व्याख्यान शब्दों का जादू प्रस्तुत करते हैं; उसके लेख चिन्तनशील व्याख्या का। 'इम्पीचमेंट ऑफ़ हेस्टिंग्स' जो उसके वारेन हेस्टिंग्स के विरुद्ध पार्लमेंट में दिये व्याख्यानों का संग्रह है, आज भी भारतीयों के आकर्षण का विषय है। उसकी अधिकतर रचनाएँ व्याख्यान के ही रूप में संग्रहीत हुई परन्तु वे भावों की उदारता और भाषा के प्रवाह में अद्वितीय हैं। 'दि सबलाइम एण्ड दि ब्यूटिफुल, (१७५६) उसकी प्रारम्भिक कृति है। उसकी पिछली कृतियों में प्रधान हैं—'ऑन अमेरिकन टैक्जेशन' (१७७४), 'ऑन कॅन्सलियेशन विद अमेरिका' (१७७५) और 'रिफ्लेक्शन्स ऑन दि फ्रैंच रैवोल्यूशन' (१७९०)। बर्क प्राचीनता और परंपरा का बड़ा हिमायती था। उसकी गद्य शैली में जॉन्सन और गिबन दोनों से अधिक प्रवाह है।

१८वीं सदी के गद्य की शैली चिट्ठी-पत्रियों और पत्रिकाओं में भी निर्मित हुई। व्यक्तिगत चिट्ठी-पत्रियों में तो उसकी आकृति अनेक बार बहुत सुन्दर बन पड़ी है। वास्तव में १८वीं सदी में पत्र-लेखन को जितनी सुरुचि का आधार मिला शायद कभी नहीं। टॉमस ग्रे की चिट्ठियों में उस सदी के साहित्य का एक प्रांजल रूप सुरक्षित है और विलियम काउपर की चिट्ठियाँ तो उसकी कविताओं से कहीं अधिक सजीव हैं। उसके वर्णन जीवन का रस निचोड़ कर रख देते हैं। सुन्दर, भोंडे सभी प्रकार के जीवन का। जॉन वेजले[2] ने जो मेथॉडिस्ट सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक था, अपनी डायरी में अपने संचारों का सहृदय वर्णन किया है। होरेस वालपोल की चिट्ठियाँ १८वीं सदी के जीवन का दर्पण हैं। यद्यपि

१. Edmund Burke (१७२९-९७); २. John Wesley (१७०३-९१)

उनका कलात्मक रूप चेस्टरफील्ड के अर्ल के पत्रों में और भी निखर गया है। जेम्स मैक्फर्सन[1] अंग्रेजी साहित्य का अति करुण व्यक्तित्व है। उसने एक नये किस्म के गतिमान गद्य की अभिसृष्टि की जिसमें उसने अनेक पुरानी कविताओं का रूपान्तर भी किया। बाद में मालूम हुआ कि उनके मूल सिवा मैकफर्सन के दिमाग के और कहीं न थे। जब उससे मूल कविताओं के संबंध में प्रश्न किया गया, तब वह अपने तथाकथित अनुवादों के आधार पर मूल की अभिसृष्टि करने बैठा। मैकफर्सन के वर्णनात्मक संग्रह का नाम 'दि वर्क्स ऑफ ओस्सियन' है।

१९वीं सदी में कोलरिज ने अंग्रेजी गद्य को अपनी 'बायोग्रेफिया लिटरेरिया' (१८१७) में जो एक नयी चेतना दी, वह थी साहित्यिक आलोचना की। कोलरिज के लेखों ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण से १९वीं सदी के चिन्तन को बड़ा प्रभावित किया। आलोचना के क्षेत्र में तो उसने सर्वथा नयी शब्दावली का सृजन किया। जॉन कीट्स की चिट्ठियों में भी अद्भुत भावुक शक्ति है, जो उन पर उसकी स्वाभाविक काव्य प्रतिभा की छाया डालती है। परन्तु वास्तव में बायरन के पत्रों और जर्नलों में समसामयिक जीवन का जितना कल्पनातीत सुखद, सच्चा और क्रूर वर्णन है, उतना और कहीं उपलब्ध नहीं।

चार्ल्स लैम्ब[2] अंग्रेजी साहित्य के प्रधान निबन्धकारों में हो गया है। उसके 'ऐसेज़ ऑफ़ एलिया' (१८२३) और 'लास्ट ऐसेज़' (१८३३) अंग्रेजी गद्य साहित्य की अमर कृतियाँ हो गई हैं। उसकी निबन्ध शैली का प्रारम्भ फ्रैंच निबन्धकार मोन्तेन ने किया था। उसका पहला अंग्रेज समर्थक काउले था। पुराने निबन्धकारों की पृष्ठभूमि पर खड़ा लैम्ब अपने विनोद और नित्य के जीवन का योग देता है। उसका सृजनात्मक हृदय दुःख बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उसकी बहिन का विक्षेप उसके लिए दारुण विषाद बन जाता है। उसके निबन्धों में साधारण और सामान्य का अटूट उपयोग हुआ है।

निबन्धकार के रूप में लैम्ब का मित्र विलियम हैज़्लिट[3] भी प्रभूत विख्यात हुआ। उसके निबन्धों में आज भी असामान्य ताजगी है। वह शब्दों का शिल्पी है और शब्दों का चुनाव धीरता से करता है। अपनी आलोचना में वह कहीं समझौता नहीं करता, प्रखर है। लैम्ब दयार्द्र है, हैज़्लिट परुष। अपने 'लिबर अमोरिस' (१८२३) में उसका व्यंग्य अपने को भी नहीं छोड़ पाता। उसके निबन्ध-संग्रहों में सबसे प्रखर 'दि स्पिरिट ऑफ़ दि एज'

---

१. James Macpherson (१७३६-९६); २. Charles Lamb (१७७५-१८३४); ३. William Hazlitt (१७७८-१८३०)

(१८२५) है। इसमें उसने अपने समकालीनों का शब्द-चित्रण किया है, स्पष्ट और निष्ठुर।

डि क्विन्सी[1], कॉबेट[2], और लैण्डर[3] भी प्रायः उसी काल के निबन्धकार हैं। टॉमस डि क्विन्सी ने तो अपने 'कन्फेशन्स ऑफ ऐन इंगलिश ओपियम ईटर' (१८२१) द्वारा अंग्रेजी गद्य में एक नया प्रयोग किया। इसमें उसने अफीमची के रूप में अपनी अनुभूतियों और स्वप्नों का चित्रण किया है। विलियम कॉब्बेट बड़े दम का निबन्धकार है, जो बड़े जोशो-खरोश से लिखता है, 'रूरल राइड्स' (१८३०) में उसने इंग्लैण्ड के देहातों का जीता-जागता चित्र खींचा है। यह यात्रा उसने घोड़े पर की थी। उसका वर्णन बड़ा स्वाभाविक है, जो कभी वासी नहीं हो सकता। वॉल्टर सैवेज लैण्डर इन सबसे भिन्न है; शैली, शब्दावली, अनुभूति, सब में अपने 'इमेजिनरी कनवरसेशन्स' (१८२४-२९) में उसने शाब्दिक सौंदर्य का एक राज्य खड़ा कर दिया।

उन्नीसवीं सदी के पत्र-पत्रिकाओं में भी साहित्य का रस काफी छलका। इनमें 'दि जैन्टिलमैन्स मैगेज़ीन' (१७३१-१८६८) पोप के जमाने से ब्राउनिंग के काल तक चली। उन्नीसवीं सदी के पहले दशक में ही प्रसिद्ध 'एडिन्बरा रिव्यू' निकली। उसका सम्पादक फ्रैंसिस जैफ्रे[4] था, जिसने रोमांटिक कवियों की अच्छी खबर ली। सिडनी स्मिथ[5] भी उस पत्रिका में लिखता था। उसकी पैनी लेखनी का तीखापन असह्य हो जाता था। एडिन्बरा रिव्यू के जवाब में 'टोरियों' ने १८०९ में अपनी 'क्वार्टरली रिव्यू' निकाली। स्कॉट का जामाता और चरितकार लोखार्ट[6] अपनी सबल लेखनी का उपयोग ब्लैक वुड्स एडिन्बरा मैगेज़ीन' के कॉलमों में करता था। इस पत्रिका का नाम अक्सर कीट्स की समालोचना में लिखे लेखों के सम्बन्ध में लिया जाता है।

चार्ल्स डारविन[7] वैज्ञानिक था। परन्तु अपने विचारों की स्पष्टता के कारण उसकी गद्य-शैली की चर्चा भी की जाती है। अपने 'ओरिजिन ऑफ दि स्पिसीज़' और 'दि डिसेन्ट ऑफ मैन' में उसने वैज्ञानिक जटिलता से अलग अकृत्रिम गद्य का प्रयोग किया। डारविन के समर्थन में टी. एच. हक्स्ले,[8] ने भी स्पष्ट गद्य का सहारा लिया। वैज्ञानिकों के अतिरिक्त राजनीतिक दार्शनिकों का हाथ भी उन्नीसवीं सदी के गद्य-निर्माण में काफी रहा है। उन्होंने राजनीति में व्यक्तिगत चेतना और व्यापार में स्वतंत्रता का विचार रखा।

---

१. Thomas de Quincy (१७८५-१८५९); २. William Cobbet (१७६२-१८३५); ३. Walter Savage Lander (१७७५-१८६४); ४. Francis Jeffrey; (१७७३-१८६८); ५. Sydney Smith (१७७१-१८४५); ६. J. G. Lokhart; ७. Charles Darwin (१८०९-८२); ८. Thomas Henry Huxley (१८२५-९५)

जेरेमी बैन्थम[१] टी. आर. माल्थ्यूस,[२] जेम्स मिल[३] और उसका पुत्र जॉन स्टुअर्ट मिल[४] इसी क्षेत्र के लेखक हैं। पर उनकी शैली में चिन्तन तथा वाद-प्रतिवाद तो है, साहित्यिक आनन्द नहीं। हाँ, जॉन स्टुअर्ट मिल की 'ऑटोबायोग्रैफी' में निश्चय ही कुछ आकर्षण है।

टॉमस बैबिंग्टन मैकॉले[५] का गद्य अत्यन्त समृद्ध था। सविस्तार ज्ञान रखता हुआ भी वह अपनी विवेचनाओं में कठमुल्ला और एकांगी था। उसकी भाषा में गजब का प्रवाह था और शब्दावली का वह आचार्य था। कुवाच्यों के धन में वह बेजोड़ था। उसकी 'हिस्ट्री ऑफ इंग्लैण्ड' (१८४९-६१) साहित्य की कोटि की है। टॉमस कारलाइल[६] साहित्यकार था, परन्तु उसका आधार उसने इतिहास को बनाया। उसकी सुन्दरतम कृतियाँ 'सार्टर रिसार्ट्स' (१८३३-३४), 'ऑन हिरोज़ ऐण्ड हिरोवर्शिप' (१८४१) और 'पास्ट ऐण्ड प्रैजैण्ट' (१८४३) हैं। उसकी ख्याति उसके 'फ्रैंच रेवोल्यूशन' से ही हो गई थी। उसके वाक्य लम्बे, कभी सामान्य, कभी पेचीदे और चिन्तनशील हैं। उसके शब्दों की परंपरा अटूट है। उनका प्रवाह अविच्छिन्न। कारलाइल के आदर्शवाद के साथ ही धार्मिकों का ऑक्स-फोर्ड से एक आन्दोलन चला। उसमें अग्रणी जॉन हेनरी न्यूमेन[७] था, जिसने सुन्दर गद्य रचना की। अपनी 'अपोलोजिया प्रो विटा सुआ' (१८६४) में उसने अपने ही आध्यात्मिक इतिहास को भावमयी वाणी में व्यक्त किया। जॉन रस्किन[८] उन्नीसवीं सदी के साहित्य-कारों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अपने 'मॉडर्न पेन्टर्स' में उसने सौंदर्य के दर्शन को धर्म का स्थानापन्न बना दिया। वास्तु का उसने अपने 'सैवन लैम्प्स ऑफ आर्किटेक्चर' (१८४९) और 'दि स्टोन्स ऑफ वेनिस' (१८५१-५३) में दार्शनिक विवेचन किया। अपनी शताब्दी के घृणित व्यवसायवाद का उच्छेद उसन अपने 'अण्टू दिस लास्ट' (१८६२) में किया। रस्किन के वाक्य नितान्त लम्बे ह और शैली पेचीदा है।

उस सदी के साहित्यकारों में मैथ्यू आर्नल्ड का स्थान बहुत ऊँचा है। उसने कविता को जीवन का दर्पण कहा है और आलोचना के साहित्य में प्रायः एक क्रांति उपस्थित कर दी। उसने आलोचना के उन सिद्धांतों का पहली बार निर्माण किया, जिनके आधार पर साहित्य का मूल्यांकन हो सके। जहाँ रस्किन ने कला को धर्म का पद दिया था, वाल्टर पेटर[९] ने कला का अन्त कला ही में माना और 'कला कला के लिए' का आदर्श चलाया उसकी 'स्टडीज इन दि हिस्ट्री ऑफ रैनैसांस' गद्य-साहित्य में असामान्य सौंदर्य प्रस्तुत करती है। वाल्टर पेटर उन्नीसवीं सदी के गद्य का अन्तिम शैलीकार था।

---

१. Jeremy Bentham (१७४८-१८३२); २. Thomas Robert Malthus (१७६६-१८३४); ३. James Mill; ४. John Stuart Mill (१८०६-७३); ५. Thomas Babington Macaulay (१८००-५९); ६. Thomas Carlyle (१७९५-१८८१); ७. John Henry Newman (१८०१-९०); ८. John Ruskin (१८१९-१९००); ९. Walter Pater (१७३९-९४);

बीसवीं सदी

बीसवीं सदी का गद्य, नाटक और उपन्यासों से भिन्न, अमित है, और उसका मूल्यांकन अथवा उल्लेख आसान नहीं। जी. के. चैस्टर्टन,[१] हिलेयर बैलॅक,[२] मैक्स बीरबोह्म,[३] लाइड जार्ज[४] विन्स्टन चर्चिल[५] आदि इस काल के कुछ प्रसिद्ध गद्यकार हैं। इनमें पहला अपने विचारों की शक्ति के लिए स्मरणीय होगा, दूसरा अपनी साहित्यिक ताजगी के लिए, तीसरा शैली की बारीकी के लिए और पिछले दोनों अपने व्याख्यानों की शालीनता के लिए। यह शालीनता चर्चिल के संस्मरणों में फूट पड़ी है। इस काल की शैली का चमत्कार लिटन स्ट्रेची[६] के अमूल्य इतिहासांकनों में देखा जा सकता है। 'एमिनेन्ट विक्टोरियन्स' (१९१८), 'क्वीन विक्टोरिया' (१९२१) और 'एलिज़ाबेथ एण्ड ऐसेक्स' (१९२८) उसकी शालीन कृतियाँ हैं।

: २१ :
अमेरिका में अंग्रेजी साहित्य

अंग्रेजी साहित्य का मूल विकास इंग्लैण्ड में हुआ, जिसका संक्षिप्त विवरण पीछे दिया जा चुका है। इंग्लैण्ड के उपनिवेशों में भी अंग्रेजी साहित्य फूला-फला। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, आदि में भी, जहाँ अंग्रेज बसे, उस साहित्य की बेल लगी। यहाँ उन सब देशों के साहित्यिक इतिहास का यह विवरण दे सकना स्थानाभाव के कारण किसी मात्रा में सम्भव नहीं। परन्तु अंग्रेजी की उन बाह्य शाखाओं के सम्बन्ध में सर्वथा चुप रह जाना भी उचित नहीं होगा। इससे उनमें से कम से कम एक—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के साहित्य की ओर संकेत कर देना अनिवार्य है।

इंग्लैण्ड के बाहर अंग्रेजी साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र उत्तरी अमेरिका ही बना भी। उसका अपना साहित्य काफी स्वतंत्र और विशद भी है। यद्यपि हम यहाँ उसका सविस्तार उल्लेख नहीं कर सकेंगे। केवल संक्षिप्त, प्रायः सांकेतिक, उल्लेख ही करेंगे, मात्र चोटी के साहित्यकारों का।

वैसे तो सत्रहवीं सदी से ही अमेरिका में साहित्य की चर्चा होने लगी थी; १८वीं सदी में सही-सही उसे वहाँ प्रतिष्ठा मिली। प्यूरिटनों में अग्रणी और अमेरिका के महान्

१. Gilbert Keith Chesterton (१८७४-१९३६); २. Hilaire Belloc (१८७०-१९५३); ३. Sir Max Beerbohm (ज० १८७२); ४. Llyd George (१८६३-१९४५); ५. Sir Winston Churchill (ज० १८७४); ६. Lyton Strachey (१८८०-१९३२)

चिन्तकों में एक जोनाथान एडवर्ड्स[1] था। १८वीं सदी के मध्य की धर्म-शास्त्रीय गवेषणाओं में उसका स्थान बहुत ऊँचा है। वह उदारवादी और कैल्विनवाद का विशिष्ट अग्रणी था। उसकी प्रारम्भिक चेतना आदर्शवादी और रहस्यवादी थी। अमेरिका के उस काल के लिखने वालों में वह असामान्य है। बेंजामिन फ्रैंकलिन[2] के नाम का राजनीति के अतिरिक्त अमेरिका के पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन से भी घना संबंध है। प्रकाशन के क्षेत्र में तो बेंजामिन फ्रैंकलिन ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। वस्तुतः अमेरिका की अनेक प्रकाशन शृंखलाओं का आरम्भकर्त्ता वही है। उसकी क्रियाशीलता से साहित्य का कितना उपकार उस देश में हुआ, आज उसका अन्दाज लगा सकना कठिन है।

फिलिप फ्रेनू[3] अमेरिका का पहला विशिष्ट कवि था। वह उस देश की दो साहित्यिक धाराओं—नव-क्लासिकवाद और रोमाण्टिक परंपरा—के सन्धि-स्थल पर खड़ा है। वह अमेरिकी नेशनलिस्ट था और उसने देश की आजादी और फ्रेंच राज्यक्रांति के पक्ष में लिखा। जैफर्सन के प्रजातांत्रिक दल का वह प्रबल समर्थक था। वह बुद्धिवादी और व्यंग्यकार भी है। वाशिंगटन-इरविंग[4] पहला अमेरिकन लेखक था, जिसकी इंग्लैण्ड में मुक्त कंठ से प्रशंसा हुई। उसमें रोमांस और उससे भी बढ़ कर विनोद और हास्य का पुट है। उसकी प्रसिद्ध कृतियाँ 'ब्रेसब्रिज हॉल' (१८२२), 'दि अलहम्ब्रा' (१८३२) और 'ओलिवर गोल्डस्मिथ' (१८४९) हैं। उसका लिखा जनरल वाशिंगटन का जीवन-चरित भी काफी प्रसिद्ध है। इरविंग वैसे तो रोमांटिक है, परन्तु उसका व्यंग्य भी बड़ा प्रखर है।

ब्रियां[5] ने अमेरिकन कविता को उसकी पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया। वह रोमान्टिक कवि और प्रकृति का पुजारी ('ए फॉरेस्ट हिम') था। वह साथ ही प्राचीन 'क्लासिकल परंपरा' और आदर्शों का भक्त भी ('दि फ्लड ऑफ ईयर्स') था। 'न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट' के सम्पादक के नाते उसने काव्य-शैली पर काफी लिखा। वह आजादी और राष्ट्रीयता का प्रबल समर्थक था, परन्तु रोमान्टिक उदारवादिता की दृष्टि से। जेम्स फेनिमोर कूपर[6] उपन्यासकार था। उसने कुछ समुद्री जीवन की कहानियाँ भी लिखीं। उसे ख्याति 'लैदर स्टॉकिंग टेल्स' से मिली। उसकी अन्य सुन्दर कृतियाँ निम्नलिखित हैं—'दि स्पाई' (१८२१), 'दि पायोनियर्स' (१८२३), 'दि पाइलेट' (१८२४)। उसने यूरोपियन और अमेरिकन दृश्यों का अंकन बड़ी खूबी से किया है।

---

१. Jonathan Edwards (१७०३-५८); २. Benjamin Franklin (१७०६-९०); ३. Philip Freneau (१७५२-१८३२); ४. Washington Irving (१७८३-१८५९); ५. William Cullen Bryant (१७९४-१८७८); ६. James Fenimore Cooper (१७९९-१८५१)

एडगर एलेन पो[1] अमेरिका का प्रकाण्ड साहित्य निर्माता हो गया है। उसका प्रभाव सारे अंग्रेजी साहित्य पर पड़ा है। वह अभिनेता पिता और अभिनेत्री माता का पुत्र था। शिक्षा उसकी इंग्लैण्ड में हुई थी और साहित्य-साधना उसने पत्रकार के रूप में शुरू की थी। उसने कविता की व्याख्या की और साहित्य के सिद्धांत तथा प्रयोग दोनों क्षेत्रों में अप्रतिम हुआ। उसने फ्रैंच प्रतीकवादियों और अमेरिकन कल्पनावादियों का समर्थन किया। उसके रोमान्स और बुद्धिवाद के सामंजस्य ने गद्य-पद्यात्मक कृति 'यूरेका' को जन्म दिया। वह सम्पादक और समालोचक भी था। उसकी गद्य और पद्य की कृतियों ने संसार के साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला।

रॅल्फ वाल्डो इमर्सन[2] उन अमेरिकन प्रतिभाओं में था जिनका संसार के इतिहास में साका चला। वह उच्च कोटि का चिन्तक और निबन्धकार था। वह अंग्रेजी साहित्य के प्रधान निबन्धकारों में गिना जाता है। उसकी कृतियाँ 'नेचर' (१८३६), 'दि अमेरिकन स्कॉलर' (१८३७), 'दि डिविनिटी स्कूल ऐड्रेस' (१८३८), विशेष प्रसिद्ध हैं। उसमें अपने विचारों द्वारा दूसरे के विचारों को उद्वेलित कर देने की अद्भुत क्षमता थी। अंग्रेज और अन्य रहस्यवादी लेखकों से वह प्रभावित था। भाषा को उसने द्विधा साधक माना—आध्यात्मिक सत्य के प्रतीक तथा मूर्त्त भावना के वाहक रूप में। भाषा की सार्थकता उसके विचार में इन दोनों स्थितियों की पूर्ण एकता द्वारा सत्यं-शिवं-सुन्दरं के सृजन में है। उसकी शैली पुष्ट, संक्षिप्त और दार्शनिक है। उसके निबन्ध और कविताएँ 'क्लासिक' बन गईं। कलात्मक स्रष्टा के रूप में हैनरी डैविड थोरो[3] का स्थान इमर्सन के निकट ही है। वह प्रकृतिवादी था और वैयक्तिक आध्यात्मिक स्वतंत्रता में विश्वास करता था। उस दिशा में उसने 'सक्रिय अवज्ञा' (पैस्सिव रैजिस्टैन्स) का प्रचार किया। इस पद का प्रयोग उसी ने पहले-पहल किया। महात्मा गांधी उससे बड़े प्रभावित थे और उसी के शब्दों—पैस्सिव रैजिस्टैन्स का उन्होंने अपने सत्याग्रही दृष्टिकोण से प्रयोग और प्रचार किया। वह उच्च कोटि का निबन्धकार था। उसकी कृतियाँ 'लाइफ विदाउट प्रिंसिपल' (१८६२), 'दि मेन वुड्स्' (१८६४), 'केप काड' (१८६५), 'ए यैंकी इन कैनेडा' (१८६६) आदि जानी हुई हैं। उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'वाल्डेन ऑर 'लाइफ इन दि वुड्स्' है। उसकी कविताओं के भी दो संग्रह प्रकाशित हैं। प्रकृति-सम्बन्धी उसकी कविताएँ प्रसिद्ध हैं।

नेथेनियल हाथार्न[4] प्रसिद्ध उपन्यासकार और कहानीकार था। उसने अपने उपन्यासों में आध्यात्मिक आचार-सम्मत यथार्थवाद की साधना की। शैली उसकी बड़ी

---

१. Edgar Allanpoe (१८०९-४९); २. Ralph Waldo Emerson (१८०३-८२); ३. Henry David Thoreau (१८१०-६२); ४. Nathaniel Hathorne (१८०४-६४)

निखरी-सुथरी है। ये उपन्यास एक प्रकार के सामाजिक सम्वेदनशील रूपक हैं। पाप की समस्या को उसने अपनी कृतियों में हल करने का प्रयत्न किया। उसका प्रसिद्ध उपन्यास 'दि स्कारलेट लैटर' और अनेक अन्य कृतियाँ उस दृष्टिकोण से प्रस्तुत हुईं। 'दि हाउस ऑफ़ दि सैवन गेबल्स' (१८५१) उसकी विशिष्ट कृतियों में है। हाथार्न ने बहुत लिखा और बहुतों को प्रभावित किया। प्रसिद्ध उपन्यासकार हरमन मैल्विल[१] उन्हीं प्रभावितों में था। पहले उसने अपनी समुद्री यात्राओं से प्रभावित हो तत्सम्बन्धी कहानियाँ लिखीं, फिर रूढ़िवाद से सर्वथा मुक्त आध्यात्मिक उपन्यास लिखे। उसने प्रतीक रूप से विश्व का सत्य खोजा और परिणाम हुआ तीन उपन्यास—'मार्दी' (१८४९), 'मोबी-डिक' (१८५१) और 'पियर' (१८५२)। 'मोबी-डिक' उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है। उसकी कविताओं का भी एक संग्रह छपा। वह हाथार्न का मित्र था उसकी शैली में दृश्यों को व्यक्त करने की बड़ी शक्ति है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल का वर्णन अद्‌भुत क्षमता से कर सकता है। 'मोबी-डिक' व्हेल मछली के शिकार का अंकन करता है, परन्तु वस्तुतः वह जीवन की बर्बरता और मानवता के संघर्ष का चित्रण है।

कविता के क्षेत्र में क्या घर क्या बाहर हेनरी वाड्स्वर्थ लांगफैलो[२] (१८०७-८२) का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उसने सुन्दर छन्दोबद्ध अनुवाद के रूप में संसार के अनूठे साहित्य-रत्नों की भेंट अपने देश को तो की है, स्वयं प्रबन्ध-काव्य लिखने में वह अप्रतिम था। सुन्दर-सरल शैली में वह आध्यात्मिक सत्य अनायास कह जाता था, जो सहज रीति से पाठकों की जबान पर चढ़ जाता था। उसकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं—'ए सॉम ऑफ़ लाइफ', 'दि विलेज ब्लैकस्मिथ', 'दि वार्निंग', 'दि आर्सिनल एट स्प्रिंग फील्ड', 'दि बिल्डिंग ऑफ दि शिप', 'इवैंजेलीनी', 'दि गोल्डन लीजेन्ड', 'दि सांग ऑफ़ हिमावाथा', 'टेल्स ऑफ़ ए वेसाइड इन', 'पॉल रीवियर्स राइड', 'किंग रॉबर्ट ऑफ़ सिसिली', 'दि सागा ऑफ़ किंग ओलफ', 'दि न्यू इंग्लैंड ट्रैजेडीज़', 'माइकेल ऐंजेलो, आदि। जेम्स रस्सल लोवेल[३] भी लांग-फेलो की ही भाँति अमेरिकन साहित्य का विशिष्ट निर्माता था। वह बड़ी सूझ का आलोचक था। उसी काल का ऑलिवर वेन्डेल होम्स[४] भी सुन्दर निबन्धकार था। उसकी शैली बड़ी मधुर थी। उसने लिखा भी पर्याप्त। लोवेल और होम्स दोनों का अमेरिकन गद्य प्रभूत ऋणी है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के अमरीकी साहित्य में वाल्ट व्हिटमैन[५] के आकार की प्रतिभाएँ इनी-गिनी ही हैं। वह रूढ़ियों का शत्रु था और अपनी कविता

---

१. Herman Melville (१८१९-९१); २. Henry Wadsworth Longfellow (१८०७-८२); ३. James Russell Lowell (१८१९-९१); ४. Dr. Oliver Wendell Holmes (१८०९-९४); ५. Walt Whitman (१८१९-९२)

में उसने तुक, छन्द, रूप, संकेत, शैली सभी दिशाओं में युगान्तर कर दिया। साहस के साथ उसने जीवन के नए विषयों को अपनाया। भौतिक जीवन के यौन पहलू, जनतांत्रिक बन्धुत्व का विकास, वैयक्तिक चेतना का सामाजिक प्रसार में निलय—ये सब उसकी कविताओं के दृष्टिकोण हुए। उसने अपनी गद्य-कृति 'डैमोक्रेटिक विस्टाज' (१८७१) द्वारा यथार्थ-वादी दृष्टिकोण से अमेरिकन जनतांत्रिक संदेश की विफलता पर गहरी चोट की। 'लीव्ज़ ऑफ़ ग्रास' नामक अपना कविता-संग्रह लेकर १८५५ में वह साहित्य-क्षेत्र में उतरा। उसने लिखा—'सावधानी से मेरी कविताएँ पढ़ो क्योंकि वे रक्त-मांस के बने मनुष्य को छूती हैं! उसकी इमर्सन ने बड़ी प्रसंशा की, यद्यपि लोवेल और होम्स उसके दृष्टिकोण को स्वीकार न कर सके। व्हिटमैन अमेरिका से अधिक यूरोप में प्रसिद्ध हुआ, उसने कवि को सत्य का संवाहक माना जो प्रगति का अग्रदूत है और जिसके दर्शन की नींव पर प्रगति का निर्माण होता है। व्हिटमैन की कृतियाँ अनेक हैं, एक से एक महान्।

जिन अमेरिकन कवियों ने गृह-युद्ध के बाद की कुण्ठा को स्वीकार न कर आगे आशा की लौ देखी, उन्हीं में सिडनी लेनियर[1] भी था। दक्षिण के कवियों में वह विशिष्ट था। उसने अपनी कविताओं में सामाजिक आलोचना को स्थान दिया। संगीतज्ञ होने के कारण उसने कविता को प्रायः गेय बना दिया। उसकी अनेक कविताएँ सामाजिक हैं—'कॉर्न', 'देयर इज़ मोर इन दि मैन दैन देयर इज़ इन दि लैण्ड', 'दि रिवेन्ज ऑफ़ हमिश'। कुछ मधुर लिरिक निम्नलिखित हैं—'दि स्टरप कप', 'ए बैलेड ऑफ़ ट्रीज एण्ड दि मास्टर', 'ईविनिंग सांग', 'सांग ऑफ़ दि चटाहूची'।

संसार के साहित्य में मार्क ट्वेन[2] (सेमुएल क्लेमेन्स,) का अपना स्थान है। व्यंग्य और विनोद के क्षेत्र में वह प्रायः अप्रतिम है परन्तु उसके अतिरिक्त गंभीर साहित्य के विवेचन में भी वह कुछ पीछे नहीं। वह वाग्मी भी असाधारण था। वैसे तो उसने अनेक रचनाएँ कीं परन्तु सुधार और आदर्शवादी रचनाएँ उसकी विशेष महत्व की हैं। मिसिसिपी घाटी के जीवन का जो चित्र उसने खींचा है, वह साहित्य में अमिट है। 'टॉम सॉअर' (१८७६), 'लाइफ़ ऑन दि मिसिसिपी' (१८९३) और 'हकलबेरी फ़िन' (१८९४) उसकी कुछ असामान्य कृतियाँ हैं। इनका हास्य हृदय पर गहरी छाप छोड़ जाता है। इनमें से अन्तिम कृति जीवन की यथार्थताएँ, आदर्श, वैयक्तिक चरित और वातावरण का अद्भुत विश्लेषण करती है। उसने मानवतावाद का बड़ी सहृदयता से चित्रण किया और झूठ तथा कपट का भंडाफोड़ किया। मार्क ट्वेन न केवल अमेरिका में वरन् सारे यूरोप में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। उससे कहीं रोमांटिक ब्रैट हार्ट[3] था, जिसने पश्चिम

---

१. Sidney Lanier (१८४२-८१); २. Mark Twain, (Samuel Clemens १८३६-१९१०); ३. Bret Harte (१८३६-१९०२)

के जीवन को उसी प्रकार अपनी कृतियों में प्रतिबिम्बित किया जैसे मार्क ट्वेन ने पूर्व को, परन्तु निस्संदेह वह मार्क ट्वेन की निष्ठा और ईमानदारी को नहीं पा सकता, मार्क ट्वेन असाधारण ऊँचाई का साहित्यकार है।

एमिली डिकिन्सन[1] उस काल की सबसे बड़ी अमेरिकन कवियित्री है। उसकी कविताओं में गहरी मात्रा की मौलिकता है। उसके लिरिक निष्ठा और माधुर्य के सुन्दर उदाहरण हैं। अमेरिकन यथार्थवाद के साहित्यिक आन्दोलन में विलियम डीन हॉवैल्स[2] का स्थान ऊँचा है। उसने सामाजिक न्याय का सबल चित्र अपनी कृतियों में खींचा। पहले उसने कविताएँ लिखीं फिर उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध सब कुछ और यह समूचा साहित्य प्राय: ८० जिल्दों में प्रकाशित हुआ। हॉवैल्स का दृष्टिकोण अभी तक टॉल्सटॉय का है। उसके उपन्यासों में सबसे सुन्दर 'दि लैदरवुड गॉड' (१९१६) है। यथार्थवादी साहित्यकार की सही परंपरा गार्लेन्ड के बाद फ्रैंक नोरिस[3] ने कायम की। उसकी सुन्दर कृति 'दि ऑक्टोपस' उसी परंपरा का विस्तार करती है। हेनरी जेम्स[4] भी यथार्थवाद के क्षेत्र में शैलीकार के रूप में विख्यात हो गया है। वह आलोचक और कृतिकार था और उपन्यास तथा कहानी को व्यंजना का सबसे ऊँचा साधन मानता था। उसकी कुछ कृतियों, आलोचना की दिशा में 'क्रिटिकल प्रिफ़ेसेज़', 'दि आर्ट ऑफ़ दि नॉवल', 'दि आर्ट ऑफ़ फ़िक्शन' हैं, और उपन्यास की दिशा में 'दि पोर्ट्रेट ऑफ़ ए लेडी', 'दि स्वाएल्स ऑफ़ दि पोइन्टन', 'दि विंग्स ऑफ़ दि डव', 'दि ऐम्बैसेडर्स' और 'दि गोल्डन बोल' हैं। एडिथ वार्टन[5] ने जो हेनरी जेम्स द्वारा प्रभावित थी, अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सामंजस्य पर विचार किया। उसकी कृतियाँ 'इथन फ्रोम', 'दि एज ऑव इनोसेंस' उसके उसी दृष्टिकोण की परिचायक हैं।

क्लासिकल परंपरा का सबसे महत्वपूर्ण कवि रॉबर्ट फ्रॉस्ट[6] है। वह अत्यन्त सरल और यथार्थवादी है। १९१३ में उसने अपने लिरिक 'ए ब्वाएज़ विल' प्रकाशित किया और बाद में अन्य कविताओं का संग्रह। उसमें अनुभूति का पुट पर्याप्त है और करुण वातावरण उसे विशेष आकृष्ट करता है।

थियोडोर ड्रीज़र[7] जैकलण्डन के-से उन अनेक साहित्यकारों में है जो व्यक्तिवाद से समाजवाद की ओर प्रस्थित हो चुके हैं। वह भी प्रकृतिवादी दल का रचयिता है। पहले उसने मनुष्य को उद्देश्यहीन और रूढ़ियों का शिकार चित्रित किया। 'सिस्टर कैरी' और

---

१. Emily Dickenson (१८३०-८६); २. William Dean Howells (१८३७-१९२०); ३. Frank Norris (१८७०-१९०२); ४. Henry James (१८४३-१९१६); ५. Edith Warton ६. Robert Frost (ज० १८७५); ७. Theodore Dreiser (१८७१-१९४५)

'जेनी गरहार्ट' उसी के नमूने हैं। 'दि फिनेन्शियर' और 'दि राइटन' में उसने 'सुपरमैन' की शालीनता स्थापित की परन्तु 'ऐन अमेरिकन ट्रैजेडी' (१९२५) में ड्रीज़र समाजवाद की ओर स्पष्ट रूप से बढ़ गया। रॉबिन्सन जैफर्स[1] आधुनिक अमेरिकन काव्य-क्षेत्र का विशिष्ट कवि माना जाता है। उसकी कल्पना-शक्ति उतनी ही सबल है, भावनाओं की गति जितनी आकर्षक। जैफर्स नितान्त व्यक्तिवादी है। शेरवुड ऐन्डरसन[2] अभिव्यंजनावादी कहानीकार है जो सामाजिक व्यवस्था का प्रबल विरोधी है। उसके उपन्यासों के पात्र अधिकतर आत्मकथात्मक हैं। उसकी कृतियों में यौन के प्रति अमात्रिक आकर्षण व्यक्त हुआ है। टॉमस वोल्फ[3] के हीरो भी प्रायः उसी प्रकार के हैं जैसे ऐन्डरसन के पात्र, आत्म-चरितात्मक, जो अपने भीतर की दुर्बलताओं से निरन्तर संघर्ष करते हैं। ऐडविन आरलिंगटन रॉबिन्सन[4] इस सदी का सबसे बड़ा अमेरिकन कवि माना जाता है। उसने अपनी कविताओं में मनुष्य के विश्व से सम्बन्ध को व्यक्त किया। इसी परंपरा का यूजीन ओ'नील[5] भी है। वह पुरानी देव-भावना के मिट जाने और नई विज्ञान व्यवस्था की सामाजिक असफलता से उद्विग्न हो उठा है। उसने कविता के अतिरिक्त अनेक नाटक भी लिखे और उनमें उसने रोमान्टिक यथार्थवाद का प्रयोग किया। १९३६ में उसे नोबेल पुरस्कार मिला। इधर का वह सब से बड़ा अमेरिकन नाट्यकार है।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे[6] अमेरिका के सुन्दरतम उपन्यासकारों में है। शैली का तो वह असाधारण उस्ताद है और उसका प्रभाव आज के गद्यकारों पर गहरा पड़ा है। उसने युद्ध में गति और खतरे का विशेष अध्ययन किया है। उसके उपन्यासों में इनका विवेचन बड़ी खूबी से होता है। पिछले स्पेनी गृहयुद्ध सम्बन्धी उसका एक ड्रामा और अद्-भुत कहानियाँ 'दि फ़िफ्थ कॉलम एण्ड दि फर्स्ट फॉटी फाइव स्टोरीज़' (१९३८) एकत्र छपे हैं। उनमें भी गति और खतरे का निर्वाह भरपूर हुआ है। उसका 'फेयर-वैल टु आर्म्स' अनेक लोगों के विचार में सुन्दरतम अमेरिकन युद्ध-उपन्यास है। उसका उसी महत्व का दूसरा उपन्यास 'फ़ॉर हूम दि बैल टॉल्स' है। दोनों संसार के आधुनिक साहित्य में अपना स्थान रखते हैं।

अमेरिका में भी प्रथम महासमर के बाद राजनीतिक और आर्थिक उपन्यास विशेष-रूप से लिखे जाने लगे, उपटन सिनक्लेयर[7] ने अद्भुत योग्यता और क्षमता से कारखानों और उद्योगों का जीवन चित्रित किया। 'दि जंगल' से लेकर 'किंग कोल', 'दि गूज़ स्टेप', 'ऑइल'

---

१. Robinson Jeffers (ज० १८८७); २. Sherwood Anderson (१८७६-१९४१); ३. Thomas Wolfe (१९००-३८); ४. Edwin Arlington Robinson (१८६९-१९३५); ५. Eugen o' Neill (ज० १८८८); ६. Ernest Hemingway (ज० १८९८); ७. Upton Sinclair (ज० १८७८)

'बोस्टन', 'दि फ्लियुर किंग' आदि में, विविध अमेरिकन जीवन की आलोचना हुई है। और इधर हाल में तो प्रथम महासमर और दूसरे महासमर के अन्त के बीच के जीवन पर ६ उपन्यासों की सीरीज़ में उपटन ने संसार के साहित्य को एक नई सम्पदा दी है। रूढ़िवादिता, मिथ्यावाद, मध्यवर्गीय गाँव के जीवन पर अपने उपन्यासों में उत्कट् व्यंग्य करने वाला समर्थ उपन्यासकार सिनक्लेयर लेविस[१] था जो इटली में मरा। उसकी सुन्दरतम कृतियाँ, 'बैबिट' के अतिरिक्त 'ऐरौस्मिथ' (१९२५) और 'डाडस्वर्थ' (१९२९) हैं। वह पहला अमेरिकन था जिसे साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार मिला था। व्यंग्य के क्षेत्र में रिंग लार्डनर[२] लेविस से भी बढ़ गया है। उसे इस सदी का सुन्दरतम व्यंग्य शैलीकार माना जाता है। उसकी निम्नलिखित कृतियाँ निम्नवर्ग का जीवन प्रायः उसी की ज़ुबान में चित्रित करती हैं—'यू नो मी आॅल' (१९१६), 'दि लव नेस्ट एण्ड अदर स्टोरीज़' आदि।

जीवित अमेरिकन उपन्यासकारों में जॉन स्टीनबैक[३] का स्थान बहुत ऊँचा है। वह उपन्यास क्षेत्र का सफल कलावन्त है। वर्तमान उपन्यासकारों में यथार्थवादी प्रकृतिवाद की कला का वह अप्रतिम शैलीकार है। उसकी कुछ कृतियों को संसार के आलोचकों से बड़ा आदर मिला है। वे ये हैं—'दि कप ऑफ़ गोल्ड' (१९२९), 'टु ए गॉड अननोन' (१९३३), 'टोरटिला फ्लैट' (१९३५), 'इन डयूवियस बैले' (१९३६), 'ऑन माइस एण्ड मेन' (१९३७), 'दि ग्रेप्स ऑफ़ राथ' (१९३९), 'दि मून इज़ डाउन' (१९४२)।

कार्ल सैण्डबर्ग[४] फास्ट के अतिरिक्त वर्तमान अमेरिकन कवियों में शायद सब से वृद्ध है। वह ह्विटमैन की परंपरा में है। १९१४ में वह अति साधारण पुरुष, बर्बर, कल्पना और सौन्दर्य का अप्रतिम प्रतिनिधि बनकर अमेरिकन काव्य-क्षेत्र में उतरा। उद्योग और खेती सम्बंधी काव्य-क्षेत्र का वह असामान्य विवेचक है। इस दिशा में उसकी 'शिकागो पोएम्स' (१९१६) कॉर्नहस्कर्स' (१९१८) और 'स्मोक एण्ड स्टील' (१९२०) प्रमाण हैं।

ऐलेन ग्लास्गो[५] दक्षिण की स्थानीयता का उपन्यासकार है। उसने गृह-युद्ध से आज तक के वर्जीनिया के बदलते जीवन का चित्रण किया है। उसके उपन्यास समस्या-उपन्यास हैं। पर्ल बक[६] जीवित अमेरिकन उपन्यासकारों में बहुत ऊँचा स्थान रखती है। उसके अनेक उपन्यास संसार के श्रेष्ठतम आधुनिक उपन्यासों में गिने जाते हैं। उनमें उसने अमेरिका का नहीं बल्कि चीन के साधारण वर्ग का जीवन व्यक्त किया है। पूर्वात्य जीवन

---

१. Sinclair Lewis (१८८५-१९५१); २. Ring Lardner ३. John Steinbeck (ज० १९०२); ४. Carl Sandburg (ज० १८७८); ५. Ellen w (१८७४-१९४५); ६. Pearl Sydenstricker Buck (ज० १८९२)

का इतना सच्चा अध्ययन शायद किसी पाश्चात्य उपन्यासकार ने नहीं किया है। चीनी जीवन और संघर्ष का जितना सही और सरस अंकन उसने किया है अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं। उसके अनेक प्रथम श्रेणी के उपन्यासों में महान् 'गुड अर्थ' और 'ड्रैगन सीड' हैं। उसने १९३८ में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया।

पद्य में फास्ट, सैण्डवर्ग और स्टिफेन विन्सेन्ट बैनेट[1] तथा गद्य में लार्डनर, हेमिंग डॉस पैसस[2] और स्टिफेन विन्सेन्ट बैनेट अमेरिकन साहित्य के निकटतम 'क्लासिकल' (वर्तमान) युग के उत्तरोत्तर प्रतिनिधि हैं। बैनेट ने केवल वस्तुओं के कारण पर ही नहीं उनके महत्व पर भी जोर दिया। अपनी कहानियों, उपन्यासों और कविताओं में उसने सामाजिक दृष्टिकोण का मानवतावादी सहृदयता से अंकन किया है।

---

१. Stephen Vincent Benet (१८९८-१९४३); २. Dos Passos

२. अरबी साहित्य

: १ :

इस्लाम से पूर्व

(६३२ तक)

अरबी भाषा, साहित्य और विज्ञान का विस्तार बड़ा है। आज भी पश्चिमी एशिया और मध्यपूर्व तथा उत्तरी अफ्रीका की अनेक जातियाँ अरबी ही बोलती हैं। अरबी साहित्य अधिकतर इस्लाम की उपज है। अरबी ने लिया सर्वत्र से, परन्तु स्वयं वह सर्वथा सैमेटिक ही बनी रही।

अरब के प्राचीन अभिलेखों (सातवीं सदी ई० पू० से चौथी सदी ईस्वी) से कुछ ऐसी जबानों का पता चलता है जो उत्तर की थीं तथा दक्षिणी लिपि में लिखी जाती थीं, और जो आज मर चुकी हैं। जिस अरबी भाषा और साहित्य का आज प्राधान्य है और जिसने सदियों ख्याति पाई है वह कुरैश जाति की बोली थी। वही सांस्कृतिक विचारों, धार्मिक चिंतन और साहित्यिक व्यंजना का वाहन बनी, परन्तु जो भाषा हजरत मुहम्मद का आदर्श बनी, वह एक मिली-जुली जबान थी जिसे इस्लाम-पूर्व के कवियों ने अपने विचारों और गायनों का वाहन बनाया था।

प्राचीन कविता

प्राचीनतम कवियों में अनेक नाम गिने जाते हैं। कुछ ये हैं—इम्रू अ-ल क़स[१], आबिद इब्न-अल-अब्रास[२], अल्कमा[३], अम्र इब्न-कमी-आह[४], अल-मुहाल्हिल[५], अम्र इब्न-कुल्सूम[६], अल-हारिस इब्न-हिल्लिज़ा[७], तरफा इब्न-अल'अब्द[८], अल-मुतलम्मिस[९], अल-अश'अस[१०] और कवियित्री जलीलाह[११], कुछ उत्तरी प्रागिस्लाम कवियों के नाम हैं—औस इब्नहजार[१२] जुहैर, इब्न अबी-सुल्मा[१३], अल-हुताया[१४], काब इब्न जुहैर[१५] और अल नाबिगाह[१६]। अरबी साहित्य का, जैसा कहा जा चुका है, विस्तार बड़ा है और यद्यपि उसमें

१. Imru' Al-Qays (ल० ५००); २. 'Abid Ibn-Al-Abras (ल० ५००); ३. Alqamah; ४. 'Amr Ibn-Qami 'Ah (ज० ४८०); ५. Al-Muhalhil ६. 'Amr Ibn-Qulthum; ७. Al-Harith Ibn-Hillizah; ८. Tarafah Ibn-Al 'Abd; ९. Al-Mutlammis; १०. Al-Ash'th; ११. Jalilah; १२. Aws Ibn-Hajar; १३. Zuhayr Ibn-Abi-Sulma; १४. Al-Hutay 'Ah; १५. Ka'b Ibn-Zuhayr; १६. Al-Nabighah;

धार्मिक साहित्य का भाग कुछ कम नहीं। अरब को अनेक अरब-साहित्यकारों ने शुद्ध साहित्य की संज्ञा दी है और धार्मिक ज्ञान को इल्म कहा है। अरबी मकतबों में धार्मिक विषयों को छोड़, जिन पर शिक्षण होता है वे हैं—साहित्यिक आलोचना और इतिहास, व्याकरण, लिपि-लेख, कोष (लुगत), अलंकार-काव्य, शब्द-शास्त्र, शैली-सिद्धान्त और तर्क-विज्ञान।

इस्लाम-पूर्व के अरबी साहित्य में गद्य-पद्य ख्यातों-गीतों का हवाला मिलता है। कुरान से ही अनेक प्रागिस्लामी शैलियों का पता चलता है। स्वयं वह धार्मिक पुस्तक पहले से चली आती शैलियों में लिखी गई। हम्माद-अल-राविया[1] ने प्राचीन कविताओं के संग्रह का पहला प्रयत्न किया। तब तक केवल मौखिक रूप से इन कविताओं का प्रचार या संरक्षण होता आया था। अम्र-इब्न-क़मी'आह ने पहला समूचा कसीदा (ओड) लिखा। फिर अल-कैस' तूरफा, जुहैर आदि के दीवान लिखे गये। कुछ खंडित काव्यों के स्रष्टा ता' अब्बाता शर्रा[2] और अल-शन्फरा[3] माने जाते हैं। उकाज के त्योहार पर अधिकतर ऊपर के प्रागिस्लामी कवियों के अतिरिक्त अम्र इब्न-कुल्सूम, अल-हारीस इब्न हिल्लिज़ा और अन्ताराह[4] की कवितायें बड़े शौक से पढ़ी और सुनी जाती थीं। इनके अतिरिक्त अल-ज़ब्बी[5] के कसीदों का संग्रह 'अल-मूफद्दा लियात' में हुआ और ऐतिहासिक कविताओं का अबु तम्माम[6] ने 'अल हमासह' (शौर काव्य) में किया। अल-इस्वहानी[7] के गीत 'अल-अगानी' (गीत) में संग्रहीत हुए।

यह अरबी साहित्य का पहला युग था। कसीदा का उदय और विस्तार मुहम्मद साहब से पहले हो चुका था और उसका प्रायः वही रूप आज तक वर्तमान है। कसीदों के विषय विविध और हजारों हैं—प्रिया का आवाहन, आखेट के दृश्य, कबीला-जीवन, आपानकों के दृश्य, तूफान और द्वन्द्व युद्ध, पराक्रम, रात के हमले. दाता के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन, दुःख-सुख के गीत, मैत्री और प्रतिशोध के गीत, व्यंग्य और आलोचना के प्रसंग इत्यादि।

इम्रू' अल-क़ैस और आबिद इब्न अल-अब्रस ने अपनी काव्य-शैलियों में सुन्दर निखरी हुई टैकनीक का विकास किया। यहूदी अल-समव'अल इब्न-आदिया[8] भी, जो मदीना के पास ही तैमा के दुर्ग में रहता था, अपनी काव्य प्रतिभा के लिए विख्यात हो चला था। उसी की भाँति कुछ अन्य अरबेतर ईसाई कवियों के नाम भी इस काल प्रसिद्ध हुए। इनमें प्रधान अदी-इब्न जैद[9] फारसी और अरबी दोनों की शैलियों पर समान रूप से अधिकार

१.Hammad Al-Rawiyah (मृ० ७७२); २. Ta' Abbata Sharra; ३. Al-Shanfara; ४. Antarah; ५. Al-Dabbi (मृ० ७८५); ६. Abu-Tammam (ज० ८५०); ७. Abu-Al-Faraj Al-Isbhani (८९७—९६७); ८. Al-Samaw 'Al Ibn-'Adiya; ९. 'Adi Ibn-Zayd (ज० ५४५)

रखता था। वह ईराकी ईसाई था और उसका कुल अल-हीरा के अरब लखमियों का सेवक और विशेष प्रियपात्र था। उसकी ख्याति तब अन्तर्जातीय हो गई थी, और वह अल-हीरा के अरब बादशाहों में सबसे प्रसिद्ध अल-नू'मान तृतीय (५८०-६०२) का कृपाभाजन था। उसी की भाँति अबु-दू'अद अल-इयादी[१] भी ईराक़ी ईसाई था। उसने प्रागिस्लामी काव्य को बाह्य प्रभावों से भरा-पूरा। उसकी शैली पर अल-हीरा के अर्धबर्बर, अर्ध-घुमक्कड़ अनागरिक जीवन का पूरा प्रभाव पड़ा। प्राचीनतम काल से मुहम्मद के समय तक के कवियों में छन्दों के प्रयोग में वह अकेला माना जाता है। उसने अठारह छन्दों में से बारह का प्रयोग किया। प्रसिद्ध इम्रू-अल-कैस तक ने केवल दस तक का इस्तेमाल किया था। अल-हीरा के लखमी दरबार के साये में अनेक काव्य-रूपों का विकास हुआ। 'रमल' (मोतियों से सुसज्जित) और 'खफीफ़' (आशुगम्य) अरबी काव्यालंकार में उन्हीं की देन है। उस दरबार से ही दो और विशिष्ट अरबी कवियों के नाम जुड़े हुए हैं: अल-मुतक़्क़िब अल अबदी[२] और रूपातिलब्ध अल-अशा[३] के। 'रमल' और 'मुतक़ारिब' छन्दों का विकास पह्लवी छंदों से माना जाता है। सातवीं सदी के अन्त में अरबी नीति-प्रबन्ध काव्य ने 'मुज़्दाविज' (शेरनुमा) छन्द का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया। इसका उदय सासानी शाहों के शासन काल में ईरान में हुआ था, परन्तु इसका प्रयोग अधिक दिनों तक न हो सका और इसका स्थान 'रजाज़' (ऊँट के चलन से घुटनों का स्पंदन) ने ले लिया।

इस्लाम के उदय के ठीक पहले अल-हिजाज़ का जुहैर इब्न-अबी-सुल्मा साहित्याकाश में चमक रहा था। वह बद्दू आचारों का प्रतिष्ठाता था और उसने अपनी नीतिपरक कविताओं में उस मरुभूमि के सारे आचार-विचारों को पिरो दिया। इसीसे उसकी जबान एक ओर प्राचीन अरबी भाषा और दूसरी ओर क़ुरान की शैली की संधि पर अवस्थित है। अल-हारिस-इब्न हिल्लिज़ा की रचनाओं (मु'अल्लक़ात) में बिजैन्टाइन साम्राज्य और सासानी साम्राज्यों के मरणान्तक संघर्षों का प्रभूत उल्लेख है। धुबियान का अल-नाबिग़ा इस्लाम के उदय से पूर्व पचास वर्ष तक सीरिया के ईसाई ग़स्सानी दरबार में रहा था और उसकी कविता वहाँ की शैली से खूब मँज गई थी। वह अल-हीरा के ईरान प्रभावित दरबार में भी कुछ काल रहा था। उसकी कविता में दोनों दरबारों की बहार है। उसकी और तरुण कवि अल-अ'शा[३] की नीति-परक कविताओं में अरबी विचारों का उत्तुंग अरमई संस्कृति से अपूर्व संगम हुआ है।

---

१. Abu Du 'Ad Al-Iyadi; २. Al-Mutaqqib Al-Abdi (ल० ५५०); ३. Al-A'sha (ल० ५६५)

क़ुरान

'क़ुरान' एक साहित्यिक युग का अन्त और दूसरे का आरम्भ करता है। जीवित, साहित्यिक आवाज के रूप में इसका प्रागिस्लामी साहित्य से बड़ा सामंजस्य है। इसमें वर्णित बहिश्त के चित्र सर्वथा पार्थिव आपानकों के हैं, जिनके वर्णन में प्राचीन क़ाफ़िर (प्रागिस्लामी) शायरों ने कलम तोड़ दी थी। क़ुरान के आरम्भ के 'सूराओं' (अध्यायों) में क़यामत का वर्णन गज़ब की मार्मिकता, शक्ति और ओज से हुआ है। साहित्यिक शैली की दृष्टि से क़ुरान ने पूर्ण विकसित प्राचीन काव्य-शली को छोड़ कर समकालीन पेशेवर धार्मिक तुकबन्दी की गद्यात्मक तर्ज़ 'सर्ज' को अपनाया। वस्तुतः प्राचीन और सम्प्रति के सम्मिलन के लिए कोई अन्य साहित्यिक कड़ी भी उपलब्ध न थी। उस अंधकार के युग में जब अरबों के पास यहूदियों और ईसाइयों की रचनाओं के मुकाबले का कोई साहित्य न था, 'क़ुरान' एक महान् चुनौती बन कर आया। उस काल का वह प्रमुख साहित्य और साहित्यिक शैली प्रस्तुत करता है।

मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से क़ुरान तत्कालीन अरबी जगत् का असाधारण दर्पण है। इस अर्थ में तब तक के अरबी साहित्य में इस असामान्य रचना के सदृश कुछ भी न था।

उसमें सीरिया, ग्रीस, अबीसीनिया और ईरान के साथ कुरैशी व्यापार का जिक्र है, और वहाँ जाने वाले अरबी कारवाँनों का। दक्षिण अल यमन को जाड़ों और उत्तर सीरिया को गर्मियों में जाने वाले कुरैश खान्दान के सार्थवाहों (कारवाँ) को घने बन्धु भाव से वह प्रेरित करता है। आर्थिक सम-सामयिक स्थिति का तो उसमें विस्तृत उद्घाटन हुआ है, विशेषकर सूदखोरी का। सूदखोरों पर मुहम्मद साहब[1] की चोट खासी पड़ी है। धर्म के क्षेत्र में क़ुरान तत्कालीन अरब की मूर्त्तिपूजा, आचार, विश्वास आदि पर प्रभूत प्रकाश डालता है। वस्तुतः वह प्रागिस्लामी साहित्य-शैलियों का भी आज हमारा प्रधान ज्ञान-स्रोत है। यदि क़ुरान न होता तो लैटिन से निकली अनेक रोमान्स भाषाओं की ही भाँति अरब की बोलियाँ भी भाषाओं का रूप धारण कर लेतीं। क़ुरान ने जहाँ अरबी जनता को एक बन्धुत्व की शृंखला में बाँधा, वहीं उसने वहाँ की विविध बोलियों को भी एक सूत्र में नथ कर अरबी भाषा में लय कर दिया। अरबों में एक धर्म के साथ एक भाषा का भी प्राधान्य हुआ। मध्य युग में उधर की दुनिया में अरबी शिष्ट साहित्यिक व्यंजना की भाषा थी। नवीं और बारहवीं सदियों के बीच अरबी में रची वैज्ञानिक, दार्शनिक और धार्मिक कृतियों की उधर की कोई भाषा बराबरी नहीं कर सकती। मानव जाति की वर्णमालाओं में अरबी से केवल लैटिन का विस्तार बड़ा है। वरन् जितनी भाषाओं की लिपि अरबी वर्णमाला ने प्रस्तुत की है, उतनी और में नहीं।

---

१. Mohammad Prophet (५७०-६३२)

क़ुरान की मक्का संबंधी पहली नब्बे 'सूराएँ' गजब का महत्त्व रखती हैं। लघु, तीव्र, गहरी चोट करने वाली इन सूराओं को नबी जैसे इलहामी प्रेरणा से अनुप्राणित करता है। इनमें गजब की गति है, गजब की रवानी। शब्द-शब्द में ज्वाला है। पद-पद में तूफान छिपा है। जो बोलने वाले की आवाज में भड़क उठता है। विद्रोह, मूर्त्ति पूजा, दंड, एकेश्वरवाद पर साहित्य की एक अनजानी शैली गढ़ती सी उसकी वाणी गूँज उठती है। फिर धीरे-धीरे मदीना को हिजरत के बाद वाणी धीमी हो चलती है। ६२२ से ६३२ तक का काल, नई मदीना की, सूराओं का है। इनमें घोषणाएँ और अनुशासन हैं। इलहामी आवाज़ की लिरिक अर्धगेयता अब समाप्त हो जाती है और उसका स्थान प्रबन्ध-रूप, व्याख्यान और राजनीतिक सिद्धांत ले लेते हैं।

धीरे-धीरे काव्य-जनीन बोली क़ुरान के पिछले स्तरों में एक साहित्यिक गद्यशैली का जन्म होता है। मुहम्मद साहब के तीसरे उत्तराधिकारी उसमान (६४४-५६) के ख़िलाफत काल में क़ुरान का एक पाठ प्रस्तुत किया गया, यद्यपि उसका आज का रूप ९३३ में प्रस्तुत हुआ। धर्म के क्षेत्र में अरब में तो क़ुरान ने एक क्रांति मचा ही दी, अरबी व्याकरण, शब्दकोष, इतिहास, अनुवृत, धर्मशास्त्र आदि के निरूपण में भी उसका प्रभाव दूरगामी सिद्ध हुआ।

क़ुरान की शैली प्रागिस्लामी तुकान्त गद्य की थी और उसकी भाषा सातवीं सदी की मक्का की। क़ुरान में उपमाओं की भरमार है। साथ ही अमसाल (कहावतों) का भी प्रभूत उपयोग हुआ है। ऐतिहासिक प्रसंग का प्रयोग अल्लाह की ताकत जाहिर करने और मनुष्य तथा राष्ट्रों को सावधान करने के लिए हुआ है। अरबी और अन-रबी, मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों ने क़ुरान की हृदयस्पर्शी और प्रभावोत्पादक शैली की अमित शक्ति समान रूप से स्वीकार की है। इसी कारण क़ुरान की भाषा, शैली, व्याकरण और वक्तृत्त्व-शक्ति का अध्ययन प्रखरमति आलोचकों का इष्ट हो गया। क़ुरान का इस्लाम के विस्तार और साधारण मुस्लिम के वैयक्तिक आचार-गठन में प्रभूत योग रहा है। क़ुरान के बिना हम इस्लाम की स्थिति को सोच नहीं सकते। इसके बिना इस्लाम निराधार हो जायेगा। क्योंकि उसका आदि स्रोत यही है। यही उसका प्रमाण है, एकमात्र शब्द-प्रमाण। उन्नीसवीं सदी में यूरोपियन पंडितों ने क़ुरान का अध्ययन शुरू किया और कुछ यूरोपियन अनुवाद प्रस्तुत हुए। परन्तु मूल का असर अनुवाद में कहाँ तक आ सकता था, विशेष कर अरबी मूल का, जिसमें ध्वनि का इतना प्राधान्य है, जो शब्द-शब्द पर पुलक और आँसू उत्पन्न करता है।

: २ :

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद

(६३२-७५०)

मुहम्मद की मृत्यु के बाद अरबी साहित्य में एक नये युग का प्रारम्भ होता है। नया युग जिसमें अरब और उनका साहित्य संसार के सक्रिय संपर्क में आये। अरबों ने ६२२ और ७५० ई० के बीच सधे शक्तिम धावों द्वारा पिरेनीज़ से पामीर तक सारा भूविस्तार आक्रांत कर लिया। सीरिया, ईराक़, विजैंटीन, ईरान, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन, एक-एक कर इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति के शिकार हो गये। इसी बीच साम्राज्य की बढ़ती हुई सीमाओं को सँभालने के लिए खलीफा की राजधानी मदीने से सीरिया में दमिश्क जा पहुँची। विजयी रसाले विविध शिष्ट और सुसंस्कृत जातियों के संपर्क में आये और अरबों ने उनसे साहित्य-कला सीखी। नागरिकता के उसूलों को अपना वे व्यवस्थित समाज के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अरबों के हजारों कुल ईराक़ और सीरिया में, ईरान और मिस्र में, सर्वत्र सीमाओं में फैल कर बस गये। फिर स्वदेश न लौटे। सबसे विशिष्ट आवश्यकता इस काल में उन्हें अपने क़ुरान का पाठ शुद्ध रखने की हुई। इससे लिपि और व्याकरण की ओर उनका ध्यान गया। क़ुरान की व्यवस्था के लिए अनुवृत्तों तथा परंपराओं का जानना आवश्यक हो गया और उनके अध्ययन के लिए धर्मशास्त्र एवं कानून-विधान की नींव पड़ी। व्याकरण और निरुक्त (शब्दशास्त्र) को सँभालने के लिए प्राचीन साहित्य का अनुशीलन अनिवार्य हो गया। प्राचीन वृत्त एकत्र किये जाने लगे। पुरानी वंश-तालिकायें, जो अब तक मौखिक याद की जाती थीं, लिख डाली गईं। अरबों के पराक्रम की कथाएँ प्राचीन परंपराओं की पेचीदी गुत्थियों से मुक्त की जाने लगीं। पैग़म्बर की जीवनी (सीरा) और आक्रमणों (मग़ाज़ो) की ऐतिहासिक खोज के सिलसिले में कुछ तवारीख़ लिख डाले गये। वाहब इब्न मुनब्बीह[1] अपने देश अल-यमन की ख्यातों का बड़ा जानकार था। अपनी उस जानकारी तथा बाइबिल संबंधी ज्ञान का लाभ उसने अरबी धर्म-शास्त्र और कानून व्यवस्था की नींव डाल कर इस्लाम और अरबी साहित्य को दिया। इस्लाम का निष्णात पंडित अल-हसन अल-बसरी[2] उसका समकालीन था। उसके संरक्षित प्रवचन इस्लामी धर्मशास्त्रीय ज्ञान के ही प्रतीक नहीं, अरबी गद्य के भी उत्तम नमूने हैं। इस्लाम के अनेक फिरकों ने अलहसन को अपना प्रधान धार्मिक नेता माना जिसकी व्याख्या विशेषतः आदर से देखी जाने लगी। फिर भी अभी वह युग लेखन का इतना न था जितना मौखिक वाचन का। प्राचीन चारणों की भाँति शायरी मुँह से सुनाई जाती थी। सुनाने वाले राविया कहलाते थे।

---

१. Wahb Ibn-Munabbih (मृ० ७३२); २. Al-Hasan Al-Basri; (मृ० ७२८);

वस्तुतः वह रावियों का ही युग था । सामग्री, जिसका राविया उपयोग करते थे, पुरानी थी, प्राचीनों की, जिसे जब-तब वे शुद्ध कर, पाठ-भेद उत्पन्न कर दिया करते थे । का'ब इब्न-जुहैर[१] ने मुहम्मद साहब की प्रशस्ति 'बानत सु'आद' (सुआद महाप्रस्थान कर चुका है) लिखी, जिसके लिए पैग़म्बर ने उसे अपना वस्त्र दे दिया था । अनेक बार तो चारण अपनी रचनायें भी पुराने काव्यों में जोड़ दिया करते थे । हम्माद-अल-राविया[२] ने इस प्रकार अपनी रचनायें अनेक बार जोड़ीं । उसने जिस ग्राम्य लोक-प्रिय भाषा का उपयोग किया, उसकी वाक्य-परंपरा व्याकरण की दृष्टि से प्रश्नात्मक थी, परन्तु चूँकि वह आम जनता के लिए लिखता था, उसकी भाषा क्षम्य मानी गई । उसने इस्लाम-पूर्व, 'अल-मुखद्र-मून' (संकर, ख़तनाहीन) अल-हुताया के दीवान में अपनी रचनाओं के योग से बहुत उलट-फेर किये । अल-मुखद्रमून उन साहित्यिकों का दल था जो पैदा तो हुए थे मुहम्मद साहब के पहले पर मरे इस्लाम के उदय के पश्चात् । अल-मुफ़ज़्ज़ल अल-ज़ब्बी[3] ने इसीलिए उसे वंचक कहा है । यद्यपि स्वयं अल-ज़ब्बी उस प्रकार की वंचकता का कुछ कम पोषक नहीं । हम्माद के शिष्य खलफ़-अल-अहमर[४] ने तो कसीदे के कसीदे इधर-उधर कर दिये । परन्तु अनेक बार ये चारण, स्वयं ऊँचे तबके के कवि थे । अनेक बार तो प्रधान कवियों ने 'उस्ताद की सेवा' में चारण की स्थिति से ही साहित्य-रचना शुरू की थी । यही संबंध पहले अल-फरज़दाक़[५] और अल-हुताया[६] में, अल-हुताया और जुहैर में, जुहैर और कवि औस इब्न-हुज्र[७] तथा तुफ़ैल अल-ग़नवी[८] में था । कवि अल-मिस्कीन[९] को चारण 'गुलाम' कहा गया है । चारण का सामाजिक स्तर इस प्रकार काफ़ी नीचा था । विख्यात है कि जब-जब जरीर[१०] काव्य रचना चाहता था, अपने चारण को दवात लाने और चिराग़ में तेल डालने को कह दिया करता था । हकलाने वाला कवि अबू-अल-अला-अल सिन्दी[११] अपनी जगह स्वतंत्र किये हुए गुलाम (मावला) को अपनी (सिन्दी की) कविता सुनाने भेज दिया करता था । अल-अख़तल[१२] का चारण स्पष्टतः नीच सामाजिक स्तर का था ।

पुनर्जागरण

परन्तु धार्मिक अनुशीलन का प्रचार बढ़ता जा रहा था । हाँ, उस साहित्य के विस्तार में गद्य की उचित शैली का अभाव निश्चय ही बाधक सिद्ध हो रहा था । मुहम्मद ने शाइरों की भर्त्सना की थी, जिस परंपरा को मुसलमानों ने कुछ हद तक जीवित रखा । फिर भी साहित्यिक अरबी में पुरानी परंपरा को लौटते देर न लगी । यह पुनर्जागरण विशेषतः

१. Ka'b Ibn-Zuhayr २. Hammad Al-Rawiyah (७१३-७२); ३. Al-Mufaddal Al-Dabbi (मृ० ७८६); ४. Khalaf Al-Ahmar (मृ० ८००); ५. Al-Farazdaq; ६. Al-Hutayah; ७. Aws-Ibn-Hujr; ८. Tufayl Al-Ghanawi; ९. Al-Miskin; १०. Jarir (मृ० ७२९); ११. Abu Al-'Ala'Al Sindi (६४०-७१०); १२. Al-Akhtal

ईराक़ में हुआ जहाँ नये धर्म की जड़ें इतनी मजबूत न हो सकी थीं। जब-जब धर्मशास्त्रियों ने इसे दबाना चाहा, तब-तब चारण और कवि दमिश्क और दूसरे राज-दरबारों में चले गये, जहाँ उनका खुला स्वागत हुआ। इन पनाह लेने वाले कवियों में प्राचीन अल-फरज़दाक जरीर और ईसाई अल-अख़तल थे। उन्होंने अल-हीरा और ग़स्सानी दरबारों की यादें ताजी कर दीं और दमिश्क पहुँच कर तो उन्होंने प्राचीन ग़ैर-मुसलमान कवियों का अनुकरण करना शुरू कर दिया। विशेष कर अल-अख़तल ने, जो अब्बल मलिक (६८५-७०५) का राजकवि हो गया था। उसके और जरीर के बीच व्यंग्य-स्पर्द्धा ('मुहाजाह') और साहित्यिक विवाद (नक़ा'इद) हुए।

घुमक्कड़-समाज की नई नागरिक व्यवस्था ने अरबी कसीदे की बनावट में खासा फर्क डाला। पुराने ढर्रे बदल गये। ईरानी और ग्रीक शिष्ट कुलों की भाँति मदीने के संभ्राँत कुलों में भी गायक रखे जाने लगे। 'नसीब', जो कभी कसीदा का ही अंग था, अब प्रणयपरक लिरिक बन गया। उसको यह रूप देने में सबसे अधिक हाथ 'उमर-इब्न अबी-रबीया'[१] का था। उसकी कविता में ग़ज़ब का लोच और नज़ाकत थी। उसकी सादगी और मृदुता ने सुनने वालों के मर्म को छू लिया। उसने करुण और आनन्द रस के स्रोत बहा दिये। उसके दीवान से प्रकट है कि उसका अधिकतर जीवन कामिनियों के पदानुसरण में बीता। वह मक्का के एक रईस अरब पिता और ईसाई माता का पुत्र था।

उससे कुछ ही पहले 'मजनू'[२] हुआ था। जिसका लैला के प्रति प्रेम अमर हो गया है। मजनू हाड़-मांस का आदमी था, सर्वथा काल्पनिक नहीं। उसका वास्तविक नाम कैस-अल-मुलव्वा था। स्वयं ख़लीफ़ा अल-वलीद द्वितीय अपने खाली वक्त को (और उसे ख़ाली वक्त की कमी न थी) आपानकपरक कविताओं से भरा करता था। गोशे तनहाई को भरने वाली शायरी और उसकी बुनियाद शराब का पीना इतना बढ़ गया कि जमाने ने विप्लव से उसका प्रतिकार किया। वह विप्लव वास्तव में एक नये उदय होते युग की भूमिका था जिसने उमय्या खिलाफत को शीघ्र निगल लिया।

: ३ :
नया युग
(७५०—८३३)

बाह्य प्रभाव

इस्लाम की भौतिक और बौद्धिक विजयों के वारिस और प्रसारकर्त्ता के रूप में 'नया युग प्रारम्भिक अब्बासियों के तत्त्वावधान में उदित हुआ। खिलाफत की राजधानी दमिश्क से

१. 'Umar Ibn-Abi-Rabi'ah (मृ० ७१९); २. Qays Al-Mulawwah (मृ० ६९९)

उठ कर बग़दाद आ गई (७६२)। सारा साहित्य, सारी कला, सारा चिन्तन तब उसी नई दिशा की ओर मुड़ा, इस्लाम और मुसलमानी संस्कृति की नयी राजधानी बग़दाद की ओर। बग़दाद अब प्रत्येक दिशा में अनुकरणीय मॉडल प्रस्तुत करने लगा। उठते हुए नये अरबी साहित्य को ग्रीक और ईसाई विचारों का, यहूदी और ईरानी चिन्तनों का, अरमई, भारतीय आदि धाराओं का योग मिला। साहित्य एक नई दिशा की ओर चला।

भारतीय प्रभाव

अब्बासी ख़लीफ़ा अल-मन्सूर (मृ. ७७५) ईसाई नेस्तोरी वैद्यों का प्रबल संरक्षक था। उसने उनको अपने धर्मोपदेश करने की अनुमति तो दे ही दी। ग्रीक, सीरियक और फ़ारसी वैज्ञानिक कृतियों में भी उसने अपना गहरा अनुराग प्रदर्शित किया। परन्तु ख़लीफ़ा अल-मामून (मृ. ८३३) तो इस दिशा में मन्सूर से भी बढ़ गया। ग्रीक प्रभाव अपनी अरबी मूर्धा पर भी तभी चढ़ा। फिर भी कुछ काल बाद ग्रीक सौंदर्य-साधना से ऊब और हट कर अरब-मेधा फ़ारस की ओर फिरी। कुछ ही काल बाद भारत ने भी अरब को अपनी प्राचीन और सम-सामयिक प्रतिभा से आकृष्ट किया और उसके दर्शन और विज्ञान अपनी रस-बहुल धाराओं से उस मरु की चिरकालिक प्यास बुझाने लगे। मज्दी और मनीची प्रभाव ने उसे फिर कुछ निस्तेज कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि अनेक अरब विद्वानों ने भारतीय दर्शन का स्वाद लिया। उनके नाम आज उपलब्ध नहीं। भारतीय दर्शन का आस्वादन करने वाला पहला अरब-ईरानी शिया अबु अल-रैहां अल-बीरूनी[१] था, जिसकी प्रखर मेधा ने भारतीय गणित, ज्योतिष, इतिहास, पुराण और भाषा संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया। भौतिक विज्ञान और गणित के क्षेत्र में अरबी साहित्य में वह सर्वथा बेजोड़ है। भारत संबंधी उसका ग्रंथ स्वयं भारत के इतिहास-निर्माण में आज एक मंज़िल का काम करता है। अल-बीरूनी के बौद्ध धर्मावलम्बी बलख और सुग्ध (सोग्दियाना) से संपर्क ने इस्लाम और अरबी साहित्य दोनों को प्रभूत रूप से प्रभावित किया।

भारतीय पंडित बग़दाद में

७७० ई. में भारत से एक 'हिन्दू' गणित और ज्योतिष का एक-एक ग्रन्थ लेकर बग़दाद पहुँचा। ज्योतिष की वह पुस्तक सिद्धांतों की थी। जिसका इब्राहीम अल-फज़ारी[२] ने तत्काल अरबी अनुवाद 'अल-सिन्द-हिन्द' प्रस्तुत कर दिया। इस अनूदित ग्रंथ ने अरब ज्योतिष के अध्ययन में विप्लव उपस्थित कर दिया। उसी में पहले-पहल भारतीय अंकों का उल्लेख हुआ। जिससे अरबी के अंक-नाम 'हिन्दसा' की संज्ञा सार्थक हुई। उसी आधार से उठ वह अंकमाला अल-ख्वारिज़्मी के ग्रंथों द्वारा पश्चिमी जगत्—यूरोप के देशों में प्रचलित हुई।

---

१. Abu-Al-Rayhan Al-Biruni (मृ० १०४८); २. Ibrahim Al-Fazari (मृ० ७७७)

भारतीय अंकमाला

अरबी साहित्य की अनेक विज्ञानपरक दिशाओं में इन भारतीय ग्रंथों का गहरा प्रभाव पड़ा। परन्तु यदि केवल अंकमाला के प्रचार तक ही यह प्रभाव सीमित रहता तो भी 'अल-सिन्द-हिन्द' का प्रकाशन संसार के सारे देशों के सार्वकालिक इतिहास में युग-प्रवर्त्तक माना जाता। ख्वारिज़्मी की मृत्यु ८५० ई. के लगभग हुई।

ख़लीफ़ा अल-मामून ने 'बैत-अल-हिक्मा' (ज्ञान-सदन) की बग़दाद में प्रतिष्ठा कर (८३०) अरब जगत् में पहली शोध-संस्था और उन्नत अध्ययन-पीठ की नींव डाली। अध्ययन-पीठ तो यह संस्था थी ही, अपने ग्रंथागार और वेधशाला के कारण भी यह जगत् का आकर्षण बन गई। इतनी बड़ी अनुवाद संस्था तो प्राचीन जगत् में कहीं न देखी गई थी। ज्योतिष के सम्बन्ध में जितना कार्य पहले हो चुका था, उसकी वहाँ छानबीन की गई। इसके अतिरिक्त उस दिशा में वहाँ बड़े असाधारण कार्य हुए। अल-मामून ने वहाँ और दमिश्क से बाहर पर्वत क़ासिऊन पर एक-एक वेधशाला स्थापित की। इस प्रकार की एक ही संस्था प्राचीन जगत् में तीसरी सदी ई. पू. में स्थापित हुई थी, सिकन्दरिया का 'म्यूज़ियम'।

पंचतंत्र

बग़दाद में और अन्यत्र अरबी-साहित्य के क्षेत्र में गैर अरबी भी प्रभूत संख्या में अध्ययन, खोज, अनुवाद और रचना करने लगे थे। अल-खलील इब्न-अहमद[1] ने पेचीदे अरबी छन्द शास्त्र को पूर्णतः निश्चित कर दिया और उसके ईरानी शिष्य सीबा-वैह[2] ने व्याकरण के रूपों के संबंध में वही कार्य किया था जो उसके गुरु ने छंद-रचना के क्षेत्र में किया था। भाषा-विज्ञान का मनन विशेषतः अल-बसरा के केन्द्रों में हुआ। इसी प्रकार का एक दूसरा पीठ अल-कूफा में स्थापित हुआ। खुसरो के समय पहलवी में 'पंचतंत्र' की संस्कृत कथाओं का एक अनुवाद प्रस्तुत हुआ था। इब्न-अल-मुकफ्फा (शिया होने के कारण ७५७ ई. के लगभग मार डाला गया) ने उसका अरबी अनुवाद 'कलील वा दिम्न' (बिदपाई की कहानियाँ) के नाम से किया। मुकफ्फा का दूसरा नाम रूज्बी था।

इस काल वैय्याकरणों का नाम भी स्तुत्य हुआ। अबु-उबैदाह[3] विशिष्ट व्यंग्यकार के अतिरिक्त महान् पंडित था। उसने वहाँ ईरानियों का नेतृत्त्व कर अरब राष्ट्रीय दल से लोहा भी लिया। उसका प्रतिस्पर्द्धी अल-अस्मा'इ[4] सम्पादक, टीकाकार और अरबी-काव्य का आलोचक था। वह कभी हारूँ-अल-रशीद[5] का दरबारी भी

१. Al-Khalil Ib'n-Ahmad (मृ० ७९१); २. Sibawayh (मृ० ७९३); ३. Abu'ubaydah (मृ० ८२४); ४. Al-Asma'i (मृ० ८३०); ५. Haron Al-Rashid (मृ० ७८६-८०९)

रह चुका था । जो कुछ भी अरबी साहित्यिक क्षेत्र में पश्चात्काल में लिखा गया उस सबकी बुनियाद अल-अस्मा'इ की ही प्रखर मेधा ने डाली ।

इस काल की विशिष्ट प्रगति काव्य की दिशा में हुई । एक नई प्रकार की काव्य-रचना, नई उपमाओं से मंडित शुरू हुई । इस नई चेतना का प्रारंभ करने वाला एक अच्छा कवि था—बश्शार इब्न-बुर्द[१] । खलीफ़ा अल-महदी (७७५-८५) ने उस ईरानी प्रज्ञा-चक्षु को उसके इस्लाम-विरोधी विचारों के कारण प्राण-दण्ड दे दिया । भावुकता, शैली की निखार और भावों की मृदुता में बश्शार लासानी था । इसी काल अरबी साहित्य के दो प्रमुख स्तम्भ हुए, अबु-नुवास[२] और अबु-अल-अताहियाह[३] । अबु-नुवास हारूँ अल-रशीद के विदूषक के रूप में प्रसिद्ध है, साथ ही वह अलफ़ लैला (अरेबियन नाईट्स) के अनेक विनोदों का भी स्मरणीय नायक है । अनेक आलोचक तो उसे अरबी साहित्य का सुन्दरतम कवि मानते हैं । जन्म से वह ईरानी था जिसने शिक्षा बसरा में पाई थी और जो बग़दाद में बस गया था । वहाँ खलीफ़ा के दरबार में पहुँचते ही उसने वहाँ की सारी प्रतिभाओं को अपने तेज से मलिन कर दिया । उसकी कविताओं के विषय विविध हैं—प्रशस्ति (मदह), व्यंग्य (हिज), आखेट के गीत (तरदियात), एलेजी (मरसिया) धर्म (ज़ोहदियात) । उसके मदिरा सम्बन्धी मदिर गीतों (खमरियात) ने तो सुनने वालों को विमुग्ध कर दिया। उसने मदिरा के आपानकों का समर्थन करते हुए लिखा कि 'तोबा और परहेज़ की जरूरत नहीं, क्योंकि खुदा की रहमत आदमी के गुनाह से बड़ी है ।' कामुकता और विलास-वासना का तो अबु-नुवास और उसके ईरानी बन्धुओं ने जो अरबों में प्रचार किया उससे उनकी आचार-रीढ़ टूट गई ।

अबु अल-अताइया[३] अबु-नुवास के विपरीत श्रीमानों के विलास का शत्रु था। वह अरब था, अल-कुफा में जन्मा, जो मिट्टी के बर्तन बेचकर अपनी रोजी कमाता था । किंवदन्ती है कि प्रणय में असफल होने से वह तपःशील हो गया। उसके शत्रुओं ने एलान कर दिया कि अपनी तर्क-बुद्धि (इस्लाम-विरोधी) को छिपाने के लिए उसने आचार-प्रधान दर्शन अंगीकार कर लिया है, जो ग़लत था। अताइया जनकवि था, जिसने जन-भाषा का प्रयोग अपनी कविता में किया । अरबी में इस प्रकार का प्रयोग करने वाला वह पहला कवि था। उसने अपनी कविता की भाषा से प्रमाणित कर दिया कि महान् कवि का भाषा-संबंधी साधारणीकरण किसी प्रकार कवि की मेधा या महानता को कम नहीं करता । उसकी कविताओं में धर्म को प्रचुर स्थान मिला है । इस दिशा में उसने युग-प्रवर्त्तक का काम किया, क्योंकि कविता से उसके बाद धार्मिक भावना फिर बहिष्कृत न हुई । धार्मिक भावों का काव्य द्वारा

---

१. Basshar Ibn-Burd (मृ० ७८४); २. Abu-Nuwas (७५०-८१०); ३. Abu-Al-'Atahiyah (७४८-८२८)

प्रकाश औरों ने किया था। अन्धकवि बश्शार का जिक्र ऊपर कियाँ जा चुका है। इसी प्रकार अबीसीनिया के भाँड़ कवि अबु-दुलामाह्[१] ने भी इस्लाम के विरुद्ध बड़ी गहरी व्यंग्यात्मक फबतियाँ कसी थीं। अताइया के पद्य में इतिहास का गहरा धर्म-शास्त्रीय विवेचन है। अल्लाह् की इच्छा उसने प्रत्येक कार्य में मानी थी और प्रार्थना मात्र को सर्वार्थ-साधक कहा। धर्म को ही सारी लौकिक बातों में उसने निर्णायक माना।

कानून-व्यवस्था

गद्य का साहित्य भी तब का बड़ा ही विस्तृत है। उसका क्षेत्र अधिकतर धर्म-शास्त्र और दर्शन था। रोमन्ज़ के 'जूरिस्प्रुडैन्स' (जूरिसप्रूडैन्शिया) के आधार पर उन्होंने 'फ़िक़ह्' नाम से मुस्लिम कानून-व्यवस्था की चार शाखाओं को जन्म दिया। इनमें सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण शाखा 'मज़्हब' अबु हनीफाह्[२] ने चलाई, जिससे उसका नाम 'हनीफा' पड़ा। हनीफा अल-कूफा और बग़दाद में रहा। उसके सम्प्रदाय में बड़ी सहिष्णुता है। मलिक इब्न-अनस[३] के नाम पर 'अलमुवत्ता' नाम से उसने अपने निर्णयों की कानूनी व्यवस्था की। तीसरी व्यवस्था मुहम्मद इब्न-इद्रीस अल-शाफ़ी'इ[४] के नाम से 'शाफ़ी' कहलाई। चौथी कानून-व्यवस्था 'हन्बली' का नाम उसके व्यवस्थापक अहमद इब्न-हन्बल[५] के नाम पर पड़ा। इसकी रूढ़िवादिता बग़दादी कट्टर मुल्लाओं की शपथ बन गई।

इतिहास का भी तब स्वतन्त्र अध्ययन आरम्भ हुआ। इब्न-इसहाक़[६] ने मुहम्मद साहब का जीवन-चरित लिखा जो इब्न-हिशाम[७] के संस्करण में आज भी संरक्षित है। पैग़म्बर के आक्रमणों का विवरण अल-वाक़ीदी[८] ने 'अल-मग़ाज़ी' के नाम से लिखा।

: ४ :

विदेशों में अरबी साहित्य

(८३३-१५१७)

खलीफ़ा अल-मामून (८१३-३३) के बाद अरबों के विस्तृत साम्राज्य की शक्ति टूटने लगी। बग़दाद की केन्द्रीय सत्ता बहुत कुछ धूमिल हो गई। साम्राज्य के विविध प्रान्त स्वतंत्र हो गये और वहाँ एक नये साहित्य की साधना होने लगी।

इस नये नष्टप्राय अरब-सत्ता के युग में जिन विशिष्ट देशों ने अरब साहित्य

---

१. Abu-Dulamah (मृ० ७८०); २. Abu-Hanifah (मृ० ७६७); ३. Malik Ibn-Anas (७१५-९५); ४. Muhammad Ibn-Idris-Al-Shafi'I (मृ० ८२०); ५. Ahmad Ibn Hanbal (मृ० ८५५); ६. Ibn-Ishaq (मृ० ७६६); ७. Ibn-Hisham (मृ० ८३४); ८. Al-Waqidi (मृ० ८२३)

साधना का विस्तार किया, स्पेन उनमें मुख्य था । कोर्दोवा में उमैया खानदान की शाख लगी थी (७५६-१०३१) । वहाँ इब्न-'अब्द-रब्बिही[1], खलीफा अब्द-अल-रह्मान तृतीय का राजकवि, अग्रणी साहित्यकार हुआ । पूर्वात्य अल-क़ाली[2] खलीफा अल हकम-द्वितीय (९६१-७६) के शासन में कोर्दोवा के विश्वविद्यालय में लब्ध-प्रतिष्ठ हुआ । प्राचीन अरबी साहित्य पर उसने 'अल-अमाली' नामक बहुविषयक ग्रन्थ लिखा । मुसलमानी स्पेन का सबसे मौलिक विचारक और प्रधान मनीषी इब्न-ह्ज़्म[3] हुआ जिसने तुलनात्मक धर्म पर 'अल-फ़स्ल फि अल-मिलाल' (सम्प्रदाय-विभाजन) नामक मौलिक ग्रन्थ लिखा। सेविल, तोलेदो और ग्रानादा में नये मुस्लिम राज्य स्थापित हो जाने के कारण कोर्दोवा की सत्ता ग्रहग्रहीत हो गई परन्तु मोजारबों ने अरबी संस्कृति का विस्तार उत्तर के प्रदेशों में भी करना शुरू किया। कास्तिल और लियोन के राजा अल्फौन्ज़ो (१२५२-८२) के लिये पंचतंत्र की कहानियों का अनुवाद हुआ, जो अन्ततः 'ला' फौन्तेन' का आधार बना । सेविल के कामुक कवि इब्न हानी (९३७-७३) पर ग्रीक रस-शास्त्र की छाप गहरी थी।

सरवैन्टीज़ के डॉनक्विक्ज़ोट का कथा-विस्तार ईरानी अल-हमज़ानी[4] की कृति 'मकामा' (सभा) पर अवलम्बित बताया जाता है । अल-हमज़ानी की कृति तुकान्त गद्य में दार्शनिक और आचार-परक खोज का संगम है । उसका नायक अश्वासीन दार्शनिक है।

इब्न-ज़ैदून[5] कवि और पत्र-लेखक था । सुन्दरी अल-वल्लादाह्[6] स्पेनी साहित्य की सेफो थी और इब्न-कुज़मान[7] कोर्दोवा का भ्रमणशील गायक था । स्पेन के अरबी साहित्यकारों ने स्पेनी साहित्य के निर्माण में भी बड़ी सहायता दी । वहाँ के यूरोपियन साहित्य को प्रेरणा और रूप भी उसने दिये।

विज्ञान

अरबी-साहित्य में अनुवाद-युग (७५०-९००) के बाद वैज्ञानिक सक्रियता का युग (९००-११००) आया । ज्योतिषी अबु-मा'शर[8] ने यूरोप को ज्वार-भाटे का सिद्धान्त सिखाया । लैटिन में उसके चार ग्रन्थों के अनुवाद हुए । धीरे-धीरे अब यूरोप को अरब-विज्ञान-भंडार को जानने की बेचैनी हुई । पर जानकारी का साधन अगाध था । केवल इस्तम्बूल (कॉन्सटैन्टीनोपल-कुस्तुन्तुनिया) की मस्जिदों में दसों हजार हस्तलिपियाँ थीं।

---

१. Ibn-'Abd-Rabbihi (८६०-९४०); २. Al-Qali (९०१-६७); ३. Ibn-Hazm (९९४-१०६४); ४. Al-Hamdhani (९६९-१००८); ५. Ibn Zaydun (१००३-७१); ६. Al-Walladah (मृ० १०८७); ७. Ibn Quzman; ८. Abu-Ma'Shar (मृ० ८८६)

इनके अतिरिक्त कैरो, दमिश्क; मोसुल, बग़दाद, ईरान, भारत और उत्तरी अफ्रीका में बेशुमार साहित्यिक निधि राशिभूत थी। बग़दाद में ऊपर बताये ज्ञानपीठ के अतिरिक्त एक और कॉलेज निजामियम था। जिसे 'उमर-अल-खैयाम के संरक्षक और सल्जूक सुल्तान अलप अर्स्लान तथा मलिकशाह के वजीर ईरानी निज़ामुल्मुल्क ने १०६५-७ में स्थापित किया था। १००५ में फातिमी ख़लीफ़ा, अल हाकिम ने कैरो में विज्ञान-शाला कायम की। जहाँ ज्योतिष और चिकित्सा पढ़ाई जाती थी। मिस्र का सबसे महान् ज्योतिषी अली इब्न यूनुस[१] था।

रोज़र बेकन का 'ऑप्टिक्स' इब्न-अल-हैसाम[२] (अल-हज़ेन) के 'थेसारस ओप्टिको' पर अवलम्बित था। यह हैसाम कैरो के ख़लीफ़ा अल-हाकिम के दरबार में रहनेवाला चक्षु-विशारद और भिषग् था। अरबों के ज्योतिष-ज्ञान ने तो यूरोप को दास बना लिया। कोर्दोवा और तोलेदो (स्पेन) में इसका आरम्भ हुआ। अल-ज़रक़ाली[3] (अर्ज़ाकिल जिसे चॉसर आर्सेकीलेस कहता है) का तोलेदो में १०८० में खींचा गया ज्योतिष-संबंधी तोलेदो-चक्र उसी के नाम से विख्यात हुआ।

दर्शन

अनुवाद के युग में मेधावी मुस्लिम दार्शनिकों का भी प्रादुर्भाव हुआ। अरिस्टॉटल के दार्शनिक परिवार के समुन्नत शीर्ष निम्नलिखित थे:—

अल-किन्दी[४] अल-फाराबी[५], इब्न सीना[६] (अविसेन्ना), इब्न बाज्जाह[७] (आवेन्पेसे) इब्न-तुफैल[८] और इब्न रशद[९] (आवेरोएस)। ये सभी वैज्ञानिक होने के कारण इस्लाम के वस्तुतः विद्रोही थे। वे न तो इस्लाम में पूर्णतः घुलमिल सके, न अपने विचार उसमें प्रविष्ट करा सके, परन्तु उन्हें अन्यत्र उचित आदर मिला, जहाँ वे अमर हो गये।

कोष

दसवीं सदी के गर्वस्वरूप बसरा और बग़दाद के विश्वकोषकारों का पीठ 'इख़्वाँ अल-सफा' (ईमानदारी के बन्धु, ल० ९००) था। उनके ५२ पत्र (रसाएल) समसामयिक समूचे ज्ञान और विचारों के परिचायक हैं। इनके बाद इस दिशा में विश्वकोषकार, शब्द-कोषकार और जीवनचरितकार प्रायः ५०० वर्ष काम करते रहे। दो मिस्री अल-नुवैरी[१०] और अल-कल्कशन्दी[११] ने अपने-अपने विश्वकोष लिखे। दमिश्क की इब्न-अबी-उसैबियाह[१२]

---

१. Ali Ibn-Yunus (मृ० १००९); २. Ibn-Al-Haytham. ३. Al-Zar Qali; ४. Al-Kindi (मृ० ८५०); ५. Al-Farabi (मृ० ९५०); ६. Ibn-Sina (९८०—१०३७); ७. Ibn-Bajjah (मृ० ११३८); ८. Ibn Tufayl (मृ० ११८५); ९. Ibn-Rashad (११२६—९८); १०. Al-Nuwayri (मृ० १३३२); ११. Al-Qalqashandi (मृ० १४१८); १२. Ibn-Abi-Usaybi'ah (१२०३—७०)

ने दार्शनिकों और वैज्ञानिकों के जीवनचरित लिखे। इस प्रकार के चरित अलेप्पो के मिस्री अल-क़िफ़्ती[1] ने भी लिखे।

अल-सफ़दी[2] ने २६ खंडों में वृहद् शब्दकोष प्रस्तुत किया। अल-अस्क़लानी[3] का उद्योग भी इस दिशा में सराहनीय था। तुर्क अबु-नसर अल-जौहरी[4] ने 'अलसिहा' (सच्चे जन) नामक एक कोष रचा जो पश्चात्कालीन कोषकारों के लिए प्रतीक बन गया। इसी प्रकार इब्न-मुक्कर्रम[5] का 'लिसां अल-अरब' (अरबों की जबान) अल-फीरुज़ाबादी[6] रचित 'कामूस' (महापर्व कोष) अरबी के प्रामाणिक लुगद हैं।

राजनीति

इसी प्रकार राजनीतिक साहित्य की भी रचना प्रभूत मात्रा में हुई। हारूँ अल-रशीद का हनीफ़ी प्रधान जज अबु-यूसुफ[7] था, जिसे ख़लीफ़ा ने पहले-पहल 'काज़ी-अल-कज़ा' (प्रधान जज) का ख़िताब दिया। उसने 'किताब अल-खराज़' लिखा। इब्न-अल-तिकतका[8] ने जो शिया था 'किताब अल-फख्री' रचा। जिसका पहला भाग राजनीति पर था। दूसरा मुस्लिम राजकुलों पर। स्पेन में इब्न-अबी-रन्दका अल- तुर्तूशी[9] क़ानून और अनुवृत्त साहित्य पर प्रमाण माना जाता था। उसका 'सिराज-अल-मुलूक' (सुल्तानों का चिराग़) शासन और राजनीति पर ग्रन्थ हिन्दू-फारसी उद्धरणों और संदर्भों से भरा है। सल्जूक सुल्तानों के वजीर निज़ाम-अल-मुल्क (ल० १०२०-९२) का उल्लेख ऊपर हो चुका है। वह ईरानी राजनीतिज्ञ और राजनीति का प्रकांड पंडित था। उसने मलिकशाह के लिये 'सियासत-नामा' लिखा।

सिद्धान्त

परन्तु इस्लाम का मनु वास्तव में अल-मावर्दी[10] था, जो बग़दाद और बसरा के कॉलेजों में पढ़ाता था। उसका प्रधान ग्रन्थ 'अल-अहकाम अल-सुल्तानियाँ' था।

सुन्नी इस्लाम के राजनीतिक सिद्धान्तों का इसमें बड़ा प्रामाणिक प्रतिपादन और व्याख्यान हुआ है। प्रायः चार सौ साल बाद अरबी साहित्य का उच्चतम स्तम्भ दार्शनिक और इतिहासकार इब्न-ख़ल्दून[11] हुआ। राजनीति-शास्त्र पर उसका विवेचन भी असाधारण है।

इसी बीच क़ुरान का अध्ययन भी होता रहा और उसकी व्याख्या में विद्वत्ता-पूर्ण

---

१. Al Qifti (मृ० १२४८); २. Al-Safadi (मृ० १३६३); ३. Al-Asqulani (मृ० १४४९); ४. Abu-Nasar Al-Jawhari (मृ० १००८); ५. Ibn-Mukarram (मृ० १३११); ६. Al-Firuzabadi (मृ० १४१४); ७. Abu-Yusuf (७३१–९८); ८. Ibn-Al-Tiqtaqah (ज० १२६२); ९. Al-Turtushi (१०५९–११२६); १०. Al-Mawardi (मृ० १०५८); ११. Ibn-Khaldun (मृ० १४०६)

ग्रन्थ लिखे जाते रहे। अल-बुख़ारी[१] और मुस्लिम[२] अनुवृत्तों और ख्यातों के शोधक और व्याख्याता थे। उन्होंने अपने-अपने 'सहीह्' (शुद्ध) अर्थात् मुहम्मद साहब और उनके साथियों के कलाम लिखे। अबु-अल-हसन-अल-अशे'अरी[३] ने रूढ़िवादी कट्टरता का पोषण किया। विरोधियों के खंडन आदि पर उसके अनेक ग्रंथ हैं। उसी की भाँति अल-मातुरीदी[४] ने भी सुन्नी रूढ़िवादी धर्मशास्त्र का प्रवर्त्तन किया। उनके विचारों का सिद्धान्तीकरण 'उमर अल-नसफ़ी'[५] ने किया। अतः जमख्शरी[६] और अल-बैजावी[७] ने क़ुरान पर टीकायें कीं। अल-शहरस्तानी[८] ने अपने अद्भुत ग्रन्थ 'अल-मिलाल-व-वा-निहाल' (धर्म और सम्प्रदाय) में संसार के धर्मों और संप्रदायों की इस्लाम के प्रकाश में समीक्षा की।

सूफी-मत

धीरे-धीरे अब सूफी-मत का प्रचार होने लगा था। सुन्नी रहस्यवादी दार्शनिक अल-मुहासिबी[९] चरित्रवादी था। धर्म-दर्शन में निष्णात, जिसने 'रिआयह् लि-हुकूक इलाह' लिखा। आरम्भ के सूफियों में अन्तिम अबु-तालिब अल-मक्की[१०] था। जिसका 'क़ूत अल-कुलूब' (हृदयों का आहार) रहस्यवादी ग्रन्थ है जो आज भी जीवित है। इस क्षेत्र के अन्य उत्साही कार्यकर्त्ता थे—जुनैद[११], शहीद रहस्यवादी अल-हल्लाज[१२] और अब्द अल-कादिरअल-जीलानी[१३], जिसने पहला सूफीबन्धु-संघ कायम किया। परन्तु इस्लाम के रहस्यवादी सम्प्रदाय का सबसे महान् एकेश्वरवादी और वेदान्ती स्पेन का इब्न-'अरबी[१४] था। उसने बहुत भ्रमण किया, बहुत व्याख्यान दिये, बहुत लिखा। दार्शनिक विवेचनों में उसे बड़ी प्रधानता मिली परन्तु उसके ग्रन्थ अभी तक ठीक प्रकाशित नहीं हो सके। उनमें प्रधान सम्भवतः 'अल-फ़ुतूहात अल-मकीयाह' (पक्की घोषणायें) हैं।

जलाल-अल-दीन अल रूमी[१५] प्रधान ईरानी सूफी और कवि ने भ्रमणशील दर-वेशों का दल मौलवी नाम से कायम किया। सूफी धर्म का प्रभाव जितना ईरानियों पर पड़ा उतना अरबों पर न पड़ सका? ईरान में तो उस धर्म-चेतना ने चिन्तकों को दीवाना बना

---

१. Al-Bukhari (मृ० ८७०); २. Muslim (मृ० ८७५); ३. Abu-Al-Hasan Al-Ash'ari (मृ० ९३५); ४. Al-Maturidi (मृ० ९४४); ५. 'Umar Al-Nasafi (मृ० ११४२); ६. Al-Zamakhshri (मृ० ११४३); ७. Al-Baydawi (मृ० १२८६); ८. Al-Shahrastani (१०७६—११५३); ९. Al-Muhasibi (मृ० ८५७); १०. Abu-Talib Al-Makki (मृ० ९९६); ११. Junayd (मृ० ९०९); १२. Al-Hallaj (मृ० ९२२); १३. Abd-Al-Qadir Al-Jilani (१०७७-११६६); १४. Ibn-'Arabi (११६५-१२४०); १५. Jalal-Al-Din Al-Rumi (मृ० १२७३)

डाला। अरबों में बस एक सूफी कवि इब्न-अल-फ़रीद[1] हुआ जो ईरानी आचार्यों के तबके का था। कोर्दोवा के इब्न-मसर्राह्[2] ने इश्राकी (प्रकाशपूर्ण) शाखा कायम की। धीरे-धीरे उसके विचारों का प्रसार बढ़ा और अलेग्ज़ेण्डर हेल्स, डुन्स स्कोट्स, रोज़र बेकन, रेमण्ड लल आदि विद्वान् उनसे प्रभावित हुए। दांते की 'डिवाईन कॉमेडी' पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

अबू-अल-फतूह अल सुहरावर्दी[3] भी उसी वर्ग का सूफी कवि था। ट्यूनिस के अबू-अल-हसन अल-शाजीली[4] ने मोरक्को और ट्यूनिस के शाजीली (सूफियों का एक फिरका) फिरके का प्रचार किया। मिस्र के अबु-अल-मवाहिब-अल-शाजीली[5] की 'कवानीन' में सूफी मत का सार दिया हुआ है।

मंगोल आक्रमण ने १२५८ में बग़दाद को बरबाद कर दिया। सीरिया और मिस्र में कुछ काल फिर भी साहित्य-निर्माण का कार्य हुआ। यद्यपि सीरिया को यूरोपियन क्रूसेडों ने दम न लेने दिया। क्रूसेड-युग के मनोरंजक संस्मरण उसामाह (१०९५-११८८) ने आत्मचरित में दिये हैं। अनेक साहित्यिकों ने सलादीन के चरित लिखे। इन्हीं में उसका सेक्रेटरी इस्पहान का इमाद अल-दीन[6] था। बहा-अल-दीन अल-शद्दाद[7] और पश्चात्कालीन दमिश्की विद्वान् अबु-शामाह्[8] ने भी सलादीन पर ही लिखा।

ईराक़ और ईरान में अल-गज्ज़ाली[9] इस्लाम का प्रकांड पंडित हुआ। 'मकामात' (सभाएँ) लिखकर अल-हरीरी[10] ने ख्याति पाई। नवीं और ग्यारहवीं सदी के बीच सिसिली में भी अरबी साहित्य फला-फूला। इब्न हम्दीस[11] वहाँ का सबसे बड़ा कवि था। नॉरमन आक्रमण के समय वह सेविल भागा। फिर अपने आक़ा अल-मु'तमिद[12] के साथ उसे वहाँ से भी मोरक्को भागना पड़ा। आगे सौ वर्ष सिसिली का ईसाई राजदरबार अरब साहित्यकारों का अखाड़ा रहा। नॉरमन राजदरबार के रत्न इब्न-जफ़र[13] और अल-इद्रीसी[14] थे।

मिस्र में ममलूक सुल्तानों (१२५०-१५१७) ने मंगोलों के धावों को रोका और हुलागू और तैमूर दोनों उसी दिशा में अकृतकार्य रहे। उस काल ऊँचे तबके का कवि केवल

---

१. Ibn-Al-Farid (११८१-१२३५); २. Ibn-Masarrah (८८७-९३१); ३. Abu-Al-Futuh Al-Suhriwardy (मृ० ११९१); ४. Abu-Al-Hasan Al-Shadhili (१२५८); ५. Abu-Al-Muwahib Al-Shadhili (१४०७-७८); ६. Imad-Al-Din (मृ० १२०१); ७. Baha'-Al-Din Al-Shaddad; ८. Abu-Shamah (मृ० १२६८); ९. Al-Ghazzali (मृ० ११११); १०. Al-Hariri (१०५४-११२२); ११. Ibn-Hamdis (१०५५-११३२); १२. Al-Mu'Tamid (१०४०-९५); १३. Ibn-Zafar (मृ० ११६९); १४. Al-Idrisi (मृ० ११६६)

देकर भी दिये गये हैं : वे नाम हैं :—अबु-नुवास, इब्न-अल-मु'ताज़े और इस्हाक अल-मवसिली (७६७-८५०)। गम्भीर अरबी साहित्यकारों ने इस ग्रंथ को फूहड़ और निन्द्य कहा। इनमें प्रधान इतिहासकार अल-मसू'दी (मृ० ९५६), जिसने 'मुरूज़-अल जहब' (सोने के मैदान) लिखा और अल-नदीम (मृ० ९९५), जिसने 'अल-फिहरिस्त' लिखा, थे। अल-कुर्ती, जिसके विचार अल-मक्रीज़ी और अल-मक्करी (१५९१-१६३२) ने अपनी कृतियों में उद्धृत किये हैं, केवल एक ऐसा इतिहासकार था, जिसने अपने मिस्र के इतिहास में फातिमी खलीफ़ा अल-आमिर (११०१-३०) के प्रणय-वृत्तों की इन 'रातों' की कहानियों से उपमा दी। अल्फ-लैला को आज तक अरबी विद्वान् हिकारत की नजर से देखते हैं। कुछ भी हो, उन्हें छिपकर बैरूट, कादिर—बग़दाद, मोरक्को से मध्य एशिया तक सर्वत्र साधु-असाधु, धनी-गरीब, चोरी से या खुले पढ़ते ही हैं। अल्फ-लैला की कहानियों का यूरोपियन साहित्य पर भी खासा असर पड़ा। हारूँ अल-रशीद का नाम तो अधिकतर उन्हीं के जरिये पहुँचा। यद्यपि वह शार्लेमान का मित्र होने के नाते यूरोप में सर्वथा अनजाना न था। फिर चॉसर के 'स्क्वायर्स टेल' अल्फ-लैला की ही एक कहानी है। आन्टवाने गैलोंड (१६४६-१७१५) के इसके फ्रेंच अनुवाद ने यूरोप को प्रायः सौ वर्ष के लिए साहित्य का मसाला दे दिया। सदी भर उसका उपयोग वहाँ होता रहा। हरमन जोहेन्वर्ग के १८३५ के मिस्री हस्तलिपि से प्रस्तुत अनुवाद से ही अधिकतर यूरोपियन भाषाओं के अनुवाद प्रस्तुत हुए। अलाद्दीन और अद्भुत चिराग़, अलीबाबा और चालीस चोर, माँझी सिन्दबाद आदि की कहानियाँ यूरोप में वाल-साहित्य का अनिवार्य अंश बनकर घर-घर की वस्तु बन गई हैं। कुछ अजब नहीं कि कासानोवा के संस्मरणों पर भी अल्फ-लैला की कहानियों का प्रभाव पड़ा हो।

स्पेन पर ईसाई शासन स्थापित होने के बाद अरबी-यहूदी ग्रन्थों का अग्निकांड शुरू हुआ और उनके विरले ही ग्रन्थ इस आसुरी संहार से बच पाये। फ़र्डिनेन्ड की अग्नि-लिप्सा चंगेज़ और तैमूर की बर्बरता से कहीं अधिक थी। उन दिनों के कुछ एक साहित्यिकों का उल्लेख कर देना समीचीन होगा। इब्न अल-ख़तीब[1] शैली का जादूगर था। वह ऊँचे तबके का कवि था। मुवश्शहों का सुन्दर लिखने वाला, जो स्पेन में मरा। उसके बाद 'हिस्पानों' (स्पेनी)—अरबी संस्कृति उत्तर-पश्चिम, अफ्रीका की ओर हिजरत कर गई, जहाँ फैज और त्लेमसेन में उसके केन्द्र कायम हुए। तेरहवीं सदी में पहले फैज़ फिर चौदहवीं में ट्यूनिस उसके दुर्ग बने। तन्जियर प्रसिद्ध पर्यटक इब्न-बत्तूताह[2] का जन्मस्थान था। भारतीय इतिहास पर उसके भ्रमण-वृत्तान्तों से बड़ा प्रकाश पड़ा है। मोरोक्की इतिहासकार अब्द-अल-वाहिद कुछ काल स्पेन में रहा था, जहाँ उसने १२२४ में मुवाहिद

---

१. Ibn-Al-Khatib (१३१३-७४); २. Ibn-Battutah (१३०४-७७)

खान्दान का प्रामाणिक इतिहास लिखा। ट्यूनिस निवासी इब्न-खल्दून[1] ने इतिहास-विज्ञान की नव-पद्धति को जन्म देकर अपना नाम इतिहास-निर्माण के क्षेत्र में अमर कर दिया।

इसी काल कुछ बड़े प्रामाणिक इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थ लिखे। दो अग्रणी अरबी इतिहासकार मिस्री इब्न-अब्द-अल-हाकम[2] और अल-बलाज़री[3] (ईरानी था पर अरबी में लिखता था) थे। पहले का 'फतूह मिस्र' मिस्र, उत्तर अफ्रीका और स्पेन की अरब-विजय पर पहला प्रामाणिक ग्रन्थ है, इसी प्रकार दूसरे का 'फ़ुतूह अल-बुल्दान' मुस्लिम राज्य के मूल का निरूपण पहली बार करता है। अल-तबरी[4] और अल-मस'ऊदी[5] के हाथों इतिहासकारिता चोटी पर पहुँच गई। फिर मिस्कवैह[6] के बाद उसका ह्रास होने लगा। राष्ट्रीय जीवनचरितों का एक कोष सीरिया के एक प्रधान जज इब्न-ख़ल्लिकान[7] ने लिखा। उससे पहले पूर्वी भूगोलकारों में सबसे महान् याकूत[8] ने साहित्यकारों का एक कोष 'म'अजम अल-उदबा' नाम से प्रस्तुत किया था। इसी प्रकार इब्न-असाकिर[9] ने ८० खंडों में दमिश्की प्रसिद्ध पुरुषों का चरित लिखा। मर्व के इब्न-कुतैबाह[10] ने 'अल-शे'र व 'अल-शो'अरा' (कविता और कवि) लिखकर बड़ी ख्याति पाई और उसने गद्य की जो शैली प्रचलित की वह चिरकाल तक चली।

दसवीं सदी में साहित्यिक इतिहास के सिलसिले में आलोचना-विज्ञान ने शैलियों का अध्ययन करते समय भाषा-शास्त्र सम्बन्धी विवेचन भी किया। अल-आमिदी[11] ने कवि अबू-तम्माम[12] और अल-बुहतुरी[13] का इसी प्रकार का अध्ययन किया। कुदामाह इब्न-जा'फर[14] के जरिये इस क्रम में ग्रीक 'र्‌होटोरिक' मानदंडों का उपयोग अरबी साहित्य के मूल्यांकन में भी किया गया। अब्बासी सुल्तान इब्न-अल-मु'ताज़[15] ने इस दिशा में अपनी किताब 'अल-बदी' लिखी। अभागा सुल्तान बस एक ही दिन सल्तनत का भोग कर सका। दूसरे ही दिन उसकी हत्या कर दी गई। काव्यालंकार पर उसकी पुस्तक पहली कृति थी, जिसमें अरबी विचारों और आदर्शों के आधार पर अलंकार के सिद्धान्त रचे गये।

---

१. Ibn-Khaldun (१३३२-१४०६); २. Ibn-'Abd-Al-Hakam (मृ० ८७०); ३. Al-Baladhuri (मृ० ८९२); ४. Al-Tabari (८३८-९२३); ५. Al-Mas'udi (मृ० ९५६); ६. Miskawayh (मृ० १०३०); ७. Ibn-Khallikan (मृ० १२८२); ८. Yaqut (११७९-१२२९); ९. Ibn-'Asakir (मृ० ११७७); १०. Ibn-Qutaybah (मृ० ८८५); ११. Al-Amidi (मृ० ९८७); १२. Abu-Tammam (मृ० ८४६) १३. Al-Buhturi (मृ० ८९७); १४. Qudamah Ibn-Ja'far (मृ० ९२२); १५. Ibn-Al-Mu'tazz (मृ० ९०८)

अबु-हिलाल अल-अस्करी[1] ने अपनी 'किताब-अल-सिना'अर्ते' में गद्य और पद्य दोनों की शैलियों, अलंकार आदि पर विचार किया। इसी प्रकार उसने 'इ'जाज़ अल-कुरान' में अलंकारों आदि पर भी लिखा, जिससे प्रेरणा पाकर अशरी धर्मशास्त्री अल-बाक़िलानी[2] ने अलंकार और आलोचना की समस्याओं पर विचार किया। इसका प्रधान विवेच्य तत्व रसात्मक आलोचना है। अरबी साहित्य के प्रबल स्तम्भ अल-मुतनव्वी[3] और अल-मा'अर्री[4] भी तभी हुए। इनमें से पहला अरबी पद्य का आचार्य माना जाता है। दूसरे ने भी अलंकार आदि पर लिखा परन्तु उसकी ख्याति बौद्धिक, दार्शनिक सत्य की खोज के क्षेत्र में अधिक है। अल-जाहिज़[5] ने साहित्य संबंधी पुराने दृष्टिकोण का प्रतिवाद किया। उसी परंपरा में अबु-मन्सूर अल-सा'आलिवी[6] भी हुआ। जिसने समकालीन कवि-कृतियों का एक संग्रह 'यतीमात-अल-दहर' नाम से निकाला जो विद्वत्ता और साहित्यिक सुरुचि का असामान्य मॉडल है। इब्न राशीक[7] ने 'अल-उम्दाह' में काव्य-कला के विषय में लिखा कि यदि उसके समसामयिक पुरानी काव्य-रूढ़ियों को छोड़ दें, तो सही कविता कर सकेंगे। उसने प्रकृति और यथार्थ के प्रति जागरूक होने के लिए अपने कवियों को प्रेरित किया और पुराने रूपों और टैकनीक की अच्छी खिल्ली उड़ाई। अब्द-अल-कादिर-अल-जुरजानी[8] और ज़िया' अल-दीन-इब्न-अल 'असीर[9] ने भी उसी परंपरा में साहित्य का कल्याण किया।

: ५ :

अंधकार का युग

(१५१७—१८००)

आगे का युग अपेक्षाकृत अन्धकार का था। उसमानी तुर्कों ने बास्फॉरस पर १४५३ में अधिकार और १५१७ में ममलूक सुल्तानों की सत्ता का अन्त कर अरबी साहित्य की धारा कुंठित कर दी। यूरोपियन व्यापारियों को तब अपनी राह दूसरी ओर पश्चिमी समुद्र से बनानी पड़ी और भूमध्यसागर का महत्व घट गया। परन्तु जिस मात्रा में यूरोप जागरूक हुआ, उसी मात्रा में अरबों की कर्मठता मूढ़ होती गई। फिर भी साहित्य चर्चा होती रही।

---

१. Abu-Hilal-Al-'Askari (मृ० १००५); २. Al-Baqillani (मृ० १०१२); ३. Al-Mutanabbi (मृ० ९६५); ४. Al-Ma'arri (९७३-१०५७); ५. Al-Jahiz (मृ० ८६९); ६. Abu-Mansur-Al-Tha'alibi (मृ० १०३८); ७. Ibn-Rashik (मृ० १०७०); ८. 'Abd-Al-Qadir Al-Jurjani (मृ १०७८); ९. Diya'-Al-Din Ibn-Al-Athir (मृ० १२३९)

स्पेनी-युग की अरबी सक्रियता का एक भरापूरा चित्र हमें अल्जियर के अहमद इब्न-मुहम्मद अल-मक्करी[१] के इतिहास-साहित्यपरक ग्रन्थ में मिलता है। पर वस्तुतः सोलहवीं से अठारहवीं सदी का अरब-संसार निद्राग्रस्त है।

विदेशों में

भारत में जहाँ वस्तुतः राजभाषा होने से फ़ारसी का बोलबाला था, अरबी ग्रन्थों की रचना भी प्रचुर मात्रा में हुई। उस काल दो ऐतिहासिक पुस्तकें प्रस्तुत हुईं, जिनमें से पहली 'तुहफत-अल-मुजाहिदीन' मालाबार में इस्लाम के प्रवेश और पुर्तगालियों के साथ युद्धों का विवरण है, और दूसरी गुजरात का इतिहास है। इसी प्रकार कुछ साहित्य-सृजन मलाया में भी हुआ। उस युग की विचारशील परंपरा का उद्घाटन मिस्र के 'अब्द-अल-वहाब-अल-शा'रानी[२] ने अपनी आत्मकथा 'लताएफ़ अल-मिनन' में किया।

अब्द-अल-वहाब इस्लाम का अन्तिम महान् रहस्यवादी था। उसका दूसरा ग्रन्थ 'लवाकीह-अल-अन्वार' (जिसका दूसरा लोकप्रिय नाम 'तबकात अल-कुब्रा' है) सूफी चरितों का प्रधान कोष है। वह धर्मशास्त्र को रहस्यवाद की पहली सीढ़ी मानता था। और उसने कानूनी व्यवस्था की चारों शाखाओं का समन्वय किया। उसने उसमानी सुल्तानों के शासन-काल के किसानों की ग़रीबी की ममलूकों के समय की समृद्धि से तुलना की है।

तुर्क

तुर्कों ने भी पीछे अरबी का अध्ययन शुरू किया। अरबी बोलने वाले प्रान्तों के साम्राज्य में सम्मिलित हो जाने के बाद तो यह अध्ययन अनिवार्य हो गया। कुछ तुर्कों ने अरबी में ग्रन्थ भी लिखे। इनमें प्रधान हाजी खलफाह[३] का ग्रन्थ है, जिसमें अरबी, फारसी और तुर्की ग्रन्थों की तालिका है। वस्तुतः यह ग्रन्थ कोष है। हाजी खलफाह उसमान-साम्राज्य के युद्ध-विभाग में कॉन्सटेन्टीनोपल में सेक्रेटरी था। मध्य-अफ्रीका में भी इस्लाम का प्रवेश होने पर वहाँ अरबी में ग्रन्थ रचना हुई। १५४० के लगभग सोमाली अरब अरबफकीह ने अबीसीनिया में मुसलमानों और ईसाइयों के युद्धों का वर्णन किया। टिम्बक्टू के निवासी अल-सा'दी ने सोगै राज्य का इतिहास 'तारीख़ अल-सूडान' (सूडान का इतिहास) नाम से लिखा।

आन्दोलन

इस युग के बाद अरब में एक धार्मिक राजनीतिक आन्दोलन चला। ईरान के

---

१. Ahmad Ibn-Muhammad Al-Maqqari (१५९१-१६३२); २. 'Abd-Al-Wahhab Al-Sha'rani (मृ० १५६५); ३. Hajji Khalfah (मृ० १६५८)

इब्न-तैमीयाह[१] के उदाहरण से प्रभावित होकर नजद के मुहम्मद इब्न-अब्द-अल-वहाब[२] ने इस्लाम की समसामयिक स्थिति में सुधार करने का प्रयत्न किया। उसकी कुरीतियों को हटाकर पैग़म्बर-कालीन शालीनता प्रतिष्ठित करना उसका ध्येय था। धीरे-धीरे उसका प्रचार दूर-दूर तक हुआ। मध्य अरब की भूमि पर वह विशेष लोकप्रिय हुआ । बहुमुखी प्रतिभा वाला सुल्तान इब्न-सु'अद (जन्म) १८८० इस आन्दोलन का चतुर अग्रणी था। अपनी विशिष्ट स्थिति से वह वहाबी आन्दोलन की ओर संसार की दृष्टि आकर्षित करने में सफल हुआ। इस मूलवादी इस्लामी आन्दोलन से वह रहस्यवादी 'सनूसी' विरादरी निकली, जिसे कायम करने वाला मुहम्मद इब्न-अली-अल-सनूसी[३] था। वह अल्जियर्स में जन्मा और लीबिया में जाग़बूब में मरा। अल-सनूसी के प्रोग्राम की एक योजना पैग़म्बर और उसके शीघ्र पश्चात् काल की परंपरा में अरब में धर्म-प्रधान राज्य स्थापित करने की भी थी। इटली की साम्राज्यनीति ने उसकी रीढ़ तोड़ दी, यद्यपि दूसरे महायुद्ध के अवसर पर ब्रिटिश सरकार ने फिर उसे आश्वस्त किया।

इस युग में फिर भी भाषा-संबंधी विचार होते रहे। दक्षिण अरब में अल-सैयद अल-मुर्तजा[४] ने 'ताज़-अल-'अरूस' लिखकर प्राचीन कोषकारों की परंपरा लौटा ली। वह वर्तमान शिया-युग का अन्तिम स्तम्भ था। अल-यमन की जैदी परंपरा का। उसका प्रधान ग्रन्थ अल-गज़ाली की 'इह्या' पर लिखा भाष्य था। उसमें उसने पुराने मॉडलों को छोड़कर नयों को आधार बनाया और एक नई जागृति उसन उस जरिये सारे अरब और मुस्लिम जगत् में पैदा कर दी।

: ६ :

पुनरुत्कर्ष

(१८००-१९१४)

१८०० से १९१४ ई० तक का युग अरबी साहित्य में पुनरुत्कर्ष का था। समूची उन्नीसवीं सदी में प्रथम महासमर तक टर्की का अधिकार अधिकतर अरब-जगत् पर बना रहा था। अब भी कॉन्स्टैन्टीनोपल एक विशाल साम्राज्य की राजधानी थी, जो साथ ही संसार के मुस्लिमों पर धार्मिक हुकूमत करने वाली ख़िलाफ़त का भी केन्द्र थी, (क्योंकि सुल्तान ही खलीफ़ा भी था)। नील नद की घाटी में तब आजादी की पहली लहर वही,

---

१. Ibn-Taymiyah (१२६३-१३२८); २. Muhammad Ibn-'Abd-Al-Wahhab (ज० १७२०); ३. Muhammad Ibn-'Ali-Al-Sanusi (१७९१-१८५९); ४. Al-Sayyid Al-Murtda (१७३२-९१)

अरब आजादी की पहली लहर, उस काल का मिस्री साहित्य राजनीतिक विद्रोही अल-जबर्ती[१] की नींव पर खड़ा हुआ। अब्दुल्लाह फिक्री[२] अली अल-लैसी[३] और अब्दुल्ला अल-नदीम[४] ने गद्य-पद्य दोनों लिखे। फिर भी ये उसमानी परंपरा के ही कवि थे क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से तुर्की का सुलतान अब भी मुसलमानी-जगत् का नियन्ता था।

उस युग के इस्लाम के अग्रणी जमाल-अल-दीन अल-अफ़ग़ानी[५] और उसका मेधावी शिष्य मुहम्मद 'अब्दू[६] थे। इनमें से पहले ने उसमानी खलीफ़ा के नेतृत्व में मुस्लिम जगत् का संगठन शुरू किया; दूसरे ने धर्मशास्त्र को फिर से सँभाला। अन्य अनेक पंडितों ने भी इस दिशा में कार्य किया और सुल्तान-खलीफा द्वारा वे समादृत हुए। अली अबु-अल-नसर[७] इब्राहीम अल-मुवैलिही[८] और मुस्तफा कामिल[९] खलीफ़ा के आदर के पात्र बने। अहमद शौकी[१०] हाफिज़ इब्राहीम[११] और इस्माइल साबरी[१२] भी इसी परंपरा के लेखक थे। मुस्तफा कामिल ने खुले तौर पर लिखा कि मिस्र की सहानुभूति समूचे मुस्लिम-संसार की एकता के पक्ष में है। उसी उसमानी पक्ष का सीरियक अहमद फ़ारिस अल-शिदयाक़[१३] ने भी समर्थन किया। दूर मोरौक्को के लेखक शिहाब अल-दीन अल-सलावी[१४] ने भी उसी विचार की पुष्टि की। सीरिया और ईराक़ में, जहाँ टर्की की नीति भी अनेक बार साहित्यिक दृष्टिकोणों का कारण बन जाती थी, साहित्यिकों के मत दोनों ओर बँट गये थे। सीरिया में जन्मे, और प्रसिद्ध दैनिक 'अल-अहराम' (पिरैमिड) के प्रतिष्ठाता (१८७५) सलीम तक़ला[१५] ने उसमानी-संघ का पक्ष लिया। इसी प्रकार उस पक्ष का प्रसिद्ध सीरियक-मिस्री कवि खलील मत्रान[१६] ने भी समर्थन किया। परन्तु सीरियक जर्नलिस्ट और साहित्यिक इसके विरुद्ध थे। इन्हीं में 'अल-मुशीर' के प्रतिष्ठाता सलीम सरकीस[१७] भी थे। फरह अन्तून[१८] ने मिस्र में 'जामिया अल-उसमानिया' (उसमानी-संघ) नाम का जर्नल निकाला।

---

१. Al-Jabarti (१७५६-१८२५); २. Abdullah Fikri (१८३४-९०); ३. Ali-Al-Laythi (१८३०-९६); ४. Abdullah Al-Nadim (१८४४-९६); ५. Jamal-Al-Din Al-Afghani (१८३९-९७); ६. Muhammad Abdu (१८४९-१९०५); ७. 'Ali-Abu Al-Nasar (मृ० १८८०); ८. Ibrahim Al-Muwaylih i (१८४६-१९०६); ९. Mustafa Kamil (मृ० १९०८); १०. Ahmed Shawqi (१८६८-१९३२); ११. Hafiz Ibrahim (१८७१-१९३२); १२. Ismail Sabri (१८६१-१९२३); १३. Ahmad Faris Al-Shidyaq (१८०४-८७); १४. Shihab-Al-Din Al-Salawi (१८३५-९७); १५. Salim Taqla (१८४९-९२); १६. Khalil Matran (ज० १८७२); १७. Salim Sarkis (१८६९-१९२६) १८. Farah Antun (१८७२-१९१४);

मुस्लिम धर्मशास्त्री और 'अल-मनार' के सम्पादक रशीद रिज़ा[१] ने इस मिस्र में बसे सीरियक ईसाई अन्तून का उसमान-पक्षीय दृष्टिकोण सराहा । जुर्जी जैदान[२] और अदीब इसहाक़[३] भी उसी विचार के प्रचारक बने। इसी काल प्रतिभाशाली कवि वली-अल दीन यकन[४] हुआ, जो जन्मा कॉन्स्टैन्टीनोपल में था पर पूरा मिस्री हो गया था। उसकी कविता में उसमानों के अनाचारों के विरुद्ध धिक्कार है और अपनी मातृभूमि के लिये मुग्ध उल्लास। वह भी सुधारवादी था।

परन्तु इस काल की अरबी कविता में प्राय: सर्वत्र सुल्तान-ख़लीफ़ा के लिए अकारण अगाध भक्ति है। उनकी कवितायें मूलत: और प्राय: पूर्णत: प्रशस्तिवादी हैं, जिनका केन्द्र ख़लीफ़ा की शालीनता है। इस युग के प्रशस्त कवि और अग्रणी साहित्यकार सीरियक बुत्रुस करामाह[५], ईराकी कवि अब्द-अल-बाक़ी अल-उमरी[६] और लेबनानी कवि नासिफ़ अल-याज़िजी[७] की भी यही प्रशस्तिवादी सरणी है।

तुर्की सुधारों के बाद मिदहत पाशा के प्रान्तीय शासनकाल (१८२२-८४) में सीरिया में एक शक्तिमान साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। कॉन्स्टैन्टीनोपल के निरंकुश शासन के विरुद्ध जोशीले कसीदे लिखकर मस्जिदों और गिरजों के दरवाजों पर चिपका दिये गये। उन साहित्यकारों पर अब्द-अल-हमीद के सुल्तानी शासन में बड़े जुल्म हुए। साहित्यकार बिखर गये, परन्तु सुधारों के बाद लोग शांति की छाया में लौटे और अब नये सिरे से टर्की राष्ट्र के पक्ष में रचना शुरू हुई। रूसी-टर्की-युद्ध, ग्रीक-युद्ध, इटली-टर्की-युद्ध और बाल्कन-युद्धों के अवसरों पर प्रभूत साहित्य की रचना हुई, जो टर्की के समर्थन में थी। ख़लील मत्रान ने बोअर युद्ध के अवसर पर दक्षिणी अफ्रीका वालों के पक्ष में सुन्दर कसीदा लिखा। रूसी-जापानी-युद्ध (१९०४-५) के समय सहानुभूति जापानियों के पक्ष में थी और अनेक कसीदों की रचना रूस के विरुद्ध हुई। इस काल का बहुत-सा साहित्य समसामयिक, निर्यांन और प्रगतिशील है।

नैपोलियन के आक्रमण (१७९८-१८०१) से मिस्र में आधुनिकता का भी साहित्य में बोलबाला हुआ। इस काल जो मध्यपूर्व में एक सांस्कृतिक आन्दोलन हुआ, उसका नेता बुत्रुस अल-बुस्तानी[८] था। उसकी रचनायें अनेक हैं। इस काल पाश्चात्य विज्ञान से प्रभावित कुछ विज्ञानवादी—शिबली शुमाय्यिल[९] भी हुए। मुहम्मद अली[१०] और उनके पौत्र

---

१. Rashid Rida (१८६५-१९३५); २. Jurji Zaydan (१८६१-१९१४); ३. Adib Ishaq (१८५६-८५); ४. Wali-Al-Din-Yakan (१८७३-१९२१); ५. Butrus Karamah (१७७४-१८५७); ६. 'Abd-Al-Baqi Al-'Umri (१७९०-१८६२); ७. Nasif Al-Yaziji (१८००-७१); ८. Butrus Al-Bustani (१८१९-१८८३); ९. Shibli Shumayyil (१८५०-१९१६); १०. Muhammad 'Ali (१८०५-४८);

इस्माइल[१] ने मिस्र में नये युग का आरम्भ किया। मुहम्मदअली द्वारा शिक्षा के लिये पेरिस भेजा रिफाआह अल-तिहतावी[२] पहला मिस्री कवि था, जिसने काव्य में फ्रैंच-रूप और टैकनीक का उपयोग किया। खलील मत्रान ने काव्य के क्षेत्र में प्राचीनतावादी होते हुए भी, नये युग की नींव डाली। उसके दृष्टिकोण का आधार अधिकतर पश्चिमी दर्शन था। अपने काव्य-संग्रह 'अल-खलील' (मित्र) (१९०८) में उसने अपने इन विचारों को परिपुष्ट किया। सीरिया में इस दृष्टिकोण का और भी पोषण हुआ। १९०४ तक अमेरिकन राजनीतिक विचार और साहित्यिक अभिप्राय (मोटिफ) भी अरबी-साहित्य-क्षेत्र में पनप चले। १९१३ की २४ अप्रैल को राष्ट्रीय मिस्री विश्वविद्यालय ने अनेक अरबी कवियों और साहित्यिकों को एक दावत में एकत्र कर एक नई एकता का सूत्रपात किया। इस दावत में शरीक सभी अरबी साहित्यिक थे। (दावत खलील मत्रान को दी गई थी) अहमद शौकी, इस्माइल साबरी, जुर्जी जैदान, शकीब अर्स्लान,[३] अमीन रीहानी[४], जिब्रान खलील जिब्रान[५] हाफिज़ इब्राहीम[६], मेरी-जियादाह्, अल्तून अल-जुनैयिल, मुहम्मद लुत्फी जुमा, अब्बास महमूद अल-अक्काद और मुहम्मद कुर्द अली। इस सम्मेलन से साहित्य में नया उत्साह आया।

: ७ :

वर्तमान युग

(१९१४ से)

१९१४ के युद्ध ने उसमानी टर्की की शक्ति तोड़ दी। साथ ही टर्की के तत्वावधान में अरब संघ की योजनायें भी तीन-तेरह हो गईं। उस युद्ध के बाद अरबी-साहित्य एक नई दिशा में चला, विशेषतः स्थानीय और प्रान्तीय सीमाओं से परिमित होकर। इसके दो महत्वपूर्ण कारण थे, जो उन्नीसवीं सदी में ही उदित हो गये थे। एक तो १८६० के गृह-युद्ध के बाद लेबनान टर्की से स्वतन्त्र हो गया था। दूसरे मिस्र पर १८८२ में ब्रिटिश सरकार ने अधिकार कर लिया था। देश प्रेम और आजादी की लहर ने दोनों देशों को अपनी राजनीतिक स्थिति को और निकट से देखने और उस दिशा में साहित्य-रचना करने को बाध्य किया था। और जब १९१८-१९ में वह युद्ध टर्की का साम्राज्य संहारक सिद्ध हुआ तब तो अरबी एकता की बुनियाद ही बिगड़ गई। फिर उपन्यास, नाटक आदि का उदय पश्चिम

---

१. Isma'il (१८६३-८२); २. Rifa'ah Al-Tihtawi (१८०१-७३); ३. Shakib Arslan (ज० १८६९); ४. Amin Rihani (१८७६-१९४०); ५. Jibrān Khalil Jibran (१८८३-१९३१); ६. Hafiz Ibrahim (१८७१-१९३२);

की ओर अरबों को आकृष्ट करने लगा। इन्हीं दिनों याकूब सर्रूफी[1] ने अपने गद्य की अविरल प्रांजल शैली में एक नये गद्य-टैकनीक को जन्म देकर यह दिखा दिया कि किस प्रकार विज्ञान आदि का वाहन होकर भी गद्य सुन्दर साहित्यिक आकृति धारण कर सकता है।

उपन्यासों की दिशा में पहला कदम सीरिया के साहित्यकारों ने उठाया—घर और बाहर दोनों जगह। सीरियक उपन्यासकारों का अनुसरण करते हुए मिस्री उसमान जलाल[2] ने १८९२ में फ्रेंच ग्रन्थ 'पॉल एट विर्जीनी' का रूपान्तर प्रकाशित किया। यहाँ कहना न होगा कि सीरियक साहित्यकार अधिकतर फ्रेंच आदर्शों के कायल हो चले थे। जुर्जी जैदान की परंपरा के कायल 'मिस्र का कवि' अहमद शौकी ने 'अजर्र अल-हिन्द' (हिन्द की कुमारी) नाम से एक आकर्षक काल्पनिक उपन्यास लिखा। मुहम्मद इब्राहीम अल-मुवैलिही ने 'हदीस ईसा इब्न-हिशाम', हाफिज इब्राहीम ने 'लैलें सतीह' और मुहम्मद लुत्फी जुमा ने 'लैले अल-रूह अल-हैर' लिखकर उपन्यासों के लिए मध्यकालीन 'मकामाह' की परंपरा पुनर्जाग्रत की।

उपन्यास

हुसैन हैकल[3] ने पहला मिस्री उपन्यास 'जैनब' लिखकर नये उपन्यासों का श्रीगणेश किया। इस पर निःसन्देह फ्रेंच मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रभाव है, फिर भी इसका सारा वातावरण मिस्री है। 'अब्द-अल-कादिर अल-माजिनी[4] और मुहम्मद अब्दुल्लाह इनान[5] ने साहित्य को जनता के और निकट लाकर रखा। मुहम्मद तैमूर[6] ने अपने अल्प-कालिक जीवन में अपनी कहानियों में 'अल-शैख जुमा' में आम जबान का प्रयोग किया। फिर भी क्लासिकल अरबी का दबदबा अभी साहित्य से उठा नहीं। अभी उस पर उसका शिकंजा कसा है। अल-माजिनी ने अपने 'इब्राहिम अल-कातिब' (१९३१) में इस दृष्टि-कोण का विरोध करते हुए रोजमर्रा की जबान को 'फूहड़', लचक में कमजोर और साहित्यिक निखार के अनुपयुक्त माना।

नाटक

मध्य उन्नीसवीं सदी के पहले अरबी साहित्य में नाटक नहीं था। अनेकार्थ में नाटक का प्रदर्शन इस्लाम की 'स्पिरिट' के विपरीत पड़ता था। नैपोलियन के साथियों ने सेना के

---

१. Ya'gub Sarrufi (१८५२-१९२७); २. 'Uthman Jalal (१८२९-९८) ३. Husayn Haykal (ज० १८८८); ४. Abd-Al-Qadir Al-Mazini (ज० १८९०); ५. Muhammad 'Abdullah Inan (ज० १८९६); ६. Muhammad Taymur (१८९२-१९२१)

मनोरंजन के लिए मिस्र में एक थ्येटर कायम किया। उसके लौटने के बाद ही वह थ्येटर तो वहाँ की धरा से उठ गया, परन्तु उसका निशान मिटा नहीं, यद्यपि मिस्र के पास खेलने के लिये नाटक-जैसी कोई चीज न थी। पहला अरबी नाटक पचास वर्ष बाद लेबनान में खेला गया। कासिम अमीन[1] ने अपने 'तहरीर अल-मरा'अह' (नारी का उत्थान) और 'अल-मरअह-अल-जदीद' द्वारा जनता को नाटक के स्वागत के लिये तैयार कर दिया था। मारून नक़्क़ाश[2] ने, (जो सिदन का था पर बैरुत में रहने लगा था) मोलिए के नाटक 'ला अवारे' का अनुवाद 'अल-बुखैल' (कंजूस) ईसाई समाज के बीच अपने घर में खेलने का प्रबन्ध किया। धीरे-धीरे प्राइवेट क्लबों और विद्यापीठों में नाटक खेलने की प्रथा चल निकली। नजीब हद्दाद[3] के कोनले ह्यूगो और शेक्सपीयर के अनूदित नाटक काफी लोकप्रिय हुए। वैसे ही नजीब हुबैकाह[4] के नाटक भी खूब खेले गये। अगला कदम काव्य-नाटक ने उठाया। इस क्षेत्र के नेता खलील अल-याज़िजी[5] और प्रसिद्ध कोषकार अब्दुल्लाह अल-बुस्तानी[6] थे। अरबी थ्येटर के क्षेत्र में वास्तविक प्रगति अहमद शौक़ी ने की। 'मसरा' क्लिउबात्रा' (क्लियोपैट्रा की मृत्यु १९२९) 'मजनू-लैला' (१९३१) 'अली बे अल-कबीर' (१९३२) 'अन्तरह' (१९३२) और 'अमीरत अल-अन्दलुस' (अन्डलूसिया की शाहज़ादी, १९३२) नामक शौक़ी के नाटकों ने अपनी सीमाओं के बावजूद थ्येटर का रंग जमा दिया। खलील मत्रान (जिसे 'दो देशों का कवि' मिस्र और सीरिया का, कहते हैं) १९३४ में ड्रैमैटिक पेशे की उन्नति के लिए बने राष्ट्रीय मिस्री संघ का प्रधान चुना गया। उसने अपने मित्र मिस्र के महान् अभिनेता जॉर्ज अबयाज़ के परामर्श से शेक्सपीयर के 'ओथैलो', 'मर्चेन्ट ऑफ़ वेनिस' और 'हैमलेट' का सुन्दर अनुवाद किया। यद्यपि विषय परदेशी था, परन्तु मिस्र थ्येटर के लिए काफी खेल के प्रसंग मिल गये।

शौक़ी की भूमि राष्ट्रीय थी। उसने फैरोहों तक की मिस्री परंपरा की रक्षा में अपनी रचनायें की थीं। सुलेमान अल-बुस्तानी[7] ने होमर की 'ईलियड' का अनुवाद करके अरबी भाषा की प्रबन्ध काव्य के लिए योग्यता स्थापित कर दी। शौक़ी ने अरबी छन्दों को कुछ बिस्तार दे दिया था। जिससे उनकी ग्रहण-शक्ति कुछ बढ़ जाय। उसने छन्द और तुक को केवल साधन माना और उनकी प्राचीन सीमाओं को उसने तोड़ दिया। गद्य की दिशा में भी अपने 'अमीरत-अल अन्दलुस' की सरल भाषा, सहज डायलॉग आदि से अरबी गद्य को एक नया कलेवर दिया। बोझिल भाषा की कृत्रिमता उससे दूर हो गई। अपने प्राचीन

---

१. Qasim Amin (१८६५-१९०८); २. Marun Naqqash (१८१७-५५); ३. Najib Haddad (१८६७-९७); ४. Najib Hubayqah (मृ० १९०६); ५. Khalil Al-Yaziji (१८५६-८९); ६. Abdullah Al-Bustani (१८५०-१९३०); ७. Sulayman Al-Bustani (१८५६-१९२५)

पद्धति के निबन्धों 'अल-शौकीयात' और अगली रचनाओं के बीच एक प्रशस्त साहित्यिक संसार था। मध्यकालीन युग से चलकर उसने वर्तमान युग का द्वार खोल दिया।

सीरिया, मिस्र और ईराक़ में साहित्यिक विचार संकुचित सीमाओं को तोड़कर सार्वभौम रूप लेने लगे। बाहर से आते हुए प्रकाश से वहाँ के अरब-साहित्यकारों ने मुँह नहीं छिपाया। आजादी, सामाजिक प्रगति, आर्थिक चेतना, सबने उन्हें अपनी ओर खींचा। सबकी ओर उनकी गति हुई। समसामयिक काव्यधारा अपनी प्राचीन विपन्नता की अर्गला को तोड़ सीमातीत मैदान में बाहर बह चली। कुछ ने उसका प्रतिरोध भी किया। कुछ ने सावधान करने का भी प्रयत्न किया। इन्हीं में मिस्र का मुस्तफ़ा लुत्फी, अल-मन्फलूती (मृ० १९२४) था, जिसने नई दुनिया की ओर आँख मींचकर चलने वालों को आगाह किया।

ईराक़ ने नयी धारा का स्वागत किया। जमील सिदकी अल-ज़हावी[1] ने अपनी अनूठी गति, रहस्य, हास्य और शालीन स्वर में उमर ख़ैयाम की लौकिकता और अल-मा'अर्री की प्रश्नात्मकता एकत्र कर दी। उसका 'सौरह' फि अल-ज़हीम' (नरक में विद्रोह) ४३० दोहों में प्रस्तुत, उसके भावों की रवानी और दिमागी आजादी प्रकट करता है। वह दांते और अल मा-अरी दोनों को जानता है, परन्तु अनुकरण एक का भी नहीं करता। बहिश्त का वर्णन करता हुआ वह लेबनानी बगीचों का वर्णन करने लगता है, उसके ग्रीष्मकालिक पर्वत-शिखरों का, उसकी नाज़नीनों-शराबों का, श्रीमानों-विलासियों का, यौन कामनाओं का। ईश्वर की बात करता-करता वह ऊपर उड़ जाता है, अल्लाह के अस्तित्व में सन्देह करने लगता है, फिर हिन्दुओं की भाँति सृष्टि का आदिकरण आकाश घोषित करता है; जिसमें सृष्टि फिर समा जायेगी। अल-जहावी के दोजख़ के अंतिम दृश्य में लैला और उसका प्रणयी सामरी आ पहुंचते हैं। फिर कवि, कवियों दार्शनिकों, वैज्ञानिकों आदि की समूची जमात उस नरक में ला बिठाता है, आखिर इनको खुदा पर एतकाद न था। इसी बीच उसके वैज्ञानिकों में से एक आग बुझाने का इंजन ईजाद कर देता है, फिर तो वहाँ वह उपद्रव मचता है कि नरक के शासक हैरान हो जाते हैं। दोजख़ की जब सबसे भयंकर सजा का जरिया, आग ही बुझ जायेगी फिर क्या होगा ? अन्त में दैवी हस्ती के बीच-बचाव से उस नाजुक स्थिति की सँभाल होती है।

अल-रुसाफ़ी[2] (किरकुक में जन्मा), कुर्दिश खान्दान का ईराक़ी है, जो बद्दू परंपरा में पला है। उसकी अरबी में मरु का सम्मोहक स्वर है, अभिराम, मादक। निकट पूर्व में अल रुसाफ़ी खूब घूमा है और उसे अरब और तुर्की जीवन का अन्तरंग-बहिरंग

---

१. Jamil Sidqi Al-Zahawi (ज० १८६३); २. Al-Rusafi. (१८७५-१९४५)

सब मालूम है। ब्रिटिश मैन्डेट का उसने विरोध किया था। ईराक के स्वतन्त्र होने पर वह उसकी लोकसभा का सदस्य चुना गया। वह काव्य की शक्ति के लिये पुंसत्व की शक्ति अनिवार्य मानता है। उसने स्वयं मुहम्मद साहब को न छोड़ा। उसका कहना है कि क़ुरान की आरम्भिक सूराओं में गज़ब की ताकत है, क्योंकि तब तक पैगम्बर एक पत्नी-व्रती है, पर जब उसका पौरुष अनेकधा नारियों में (बहुविवाह द्वारा) बँट जाता है, तब उसकी सूराओं का ओज भी दुर्बल हो जाता है, स्वयं अल-रुसाफ़ी कोई पश्चिमी ज़बान नहीं जानता, पर उसकी अपनी भाषा पर पकड़ काफी मज़बूत है। धार्मिक विश्वासों की दिशा में वह प्रौढ़ और स्वतंत्र है। 'अल्लाह के सिवा दूसरा खुदा नहीं' को बदलकर वह कहता है 'जीव के सिवा दूसरा खुदा नहीं।'

अल नज़फ का रहने वाला मुहम्मद रिज़ा अल-शबीबी[1] ईराक़ की सरकार में लम्बे अरसे तक मिनिस्टर रह चुका है। वह शिया है और अपने विश्वासों में काफी कट्टर है। उसकी कविता आचार-युक्त और भक्तिपरक है। अपने विश्वासों में वह आशावादी है।

१९३० के बाद सीरिया और लेबनान में साहित्य-क्षेत्र में एक नई फ़सल कटी। विशारह अल-खूरी, बैरुत के पत्र 'अल-बर्क़' (विद्युत) का सम्पादक, कवि के रूप में सारे अरब-संसार में विख्यात हुआ। शिबली अल-मलात, अमीन तक़ी-अल-दीन और इल्यास फैयाज़ के कसीदों ने जनता और आलोचकों को अपनी ओर खींचा। इस नई प्रगति में लेबनान का प्रकाशवाहक सलीम अन्हूरी (जन्म, १८५५) रहा था। उसका दीवान 'अल-जौहर अल-फर्द' (अनूठा रत्न, १९०४) ने उसे बड़ी प्रतिष्ठा दी। इस्कन्दर अल-आज़ार, फेलिक्स फ़ारिस दाऊद मजाइस के साथ अन्हूरी ने पुराना पन्थ छोड़कर काव्य में नया मार्ग बनाया। उन्हीं दिनों उमर-फाखूरी का साप्ताहिक पत्र 'अल-म'आरज़' प्रदर्शिका बैरुत से और शाकिर अल-कर्मी का 'अल-ज़मां' दमिश्क से निकला। इन्हीं दिनों साहित्य के इतिहास पर भी कुछ काम हुआ और बुत्रुस अल-बुस्तानी ने 'अल-मराहिल' (मंज़िलें) नाम से तीन खंडों में अरब साहित्य का इतिहास छापा। मिख़ाइल नईमा[2] ने भी अपना इतिहास 'ज़िब्रान' तभी प्रकाशित किया। फ़ुआद अफ़्राम अल-बुस्तानी 'अल-रवा' (आश्चर्य) का लेखक वाचाल और रोमांटिक निक़ूला फैयाज़ विख्यात साहित्यिक और बैरुत की अमेरिकन यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर अनीस अल-मकदीसी और मिस्र के ताहा हुसैन[3] अरब-साहित्य में नई मंज़िलों का निर्माण करते रहे हैं। इनमें ताहा हुसैन 'ज़ाईम अल-मुज़द्दिदीन'

---

१. Muhammad Rida Al-Shabibi (ज० १८९०); २. Mikha'il Na'imah (ज० १८९४) ३. Taha Husayn (ज० १८८९)

(आधुनिक विचारधारा के नेता) करके प्रसिद्ध है और निस्संदेह वर्तमान जाग्रति की सबसे ऊँची आवाज़ है।

लोक-साहित्य

ऊपर लिखे साहित्य के अतिरिक्त अरबी में अलिखित साहित्य का भी एक खासा भंडार है। वह लोक-साहित्य है, मछुओं, कबीलों, खानाबदोशों और अपढ़ अरब जनता का रोज़मर्रा की ज़बान में नित्य कही जाने वाली कहानियाँ 'हद्दूस' (कहानी) कहलाती हैं। 'रिवायह' रावी द्वारा सुनाया जाने वाला पहला प्रबन्धकाव्य था। अब वह कहानी का सामान्य नाम है। उसी से नाटक—कॉमेडी और ट्रैजेडी—दोनों का भी बोध होता है। रात की कहानियाँ 'अस्मार' और प्रहसन पुराण 'खुराफ़त' कहलाते हैं। अल-नदीम (मृ० ९५५) ('अल-फिह्रिस्त' का संकलनकर्ता) के समय से ही लोक-साहित्य का संग्रह शुरू हो गया था। बाद में अज्ञात रचयिताओं की कहानियाँ लोकप्रिय हुईं। 'बत्तालून' 'अनुदात्त नायक की 'जीहा' (दुष्ट नायक) की कहानियाँ हैं। इन लोक-कहानियों का प्रचलन अरब संसार में बहुत है। सदा से अरब कहानियों के कहने-सुनने वाले रहे हैं।

लोक-गीत

अरबों के लोक-गीत भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। अरब स्वभाव से ही गायक होता है। उसके गीतों में धार्मिक अनुवृत्तों की ओर भी संकेत होते हैं। सीरिया-फ़िलिस्तीन में भी 'अताब' (करुण गीत) बद्दू ऊँट-सवारों में 'मव्वाल' देहातों में विवाह के गीत 'लगूता' और 'जलवा' गाये जाते हैं। एक विशेष प्रकार की मौखिक सुनाई जाने वाली कविता 'मतलू' (बहुबचन 'मताली'—मत्त कर देने वाली) कहलाती है। मरण और शोक प्रकट करने वाले गाने 'तनावीह' नाम से विख्यात हैं। 'गिना' और 'मीज़ाना' भी लोकगीतों की ही दो किस्में हैं।

ताज़िया के सिलसिले में भी एक प्रकार के मौखिक अलिखित साहित्य का उपयोग होता है। 'ताज़िया' मरण-गायनों की ही संज्ञा है। शिया-मुस्लिम जगत् में मुहर्रम के अवसर पर इन मरसियों का वाचन होता है। उस काल अनेक मुस्लिम देशों में 'आशूरा' नाम का एक प्रकार का नाटक खेला जाता है। ख़िलाफ़त की लड़ाई में जो गृह-युद्ध हुआ था, उसमें अली के पुत्र अल-हुसैन और अल-हसन करबला के मैदान में मारे गये थे। यह लीला (या लोक नाटक) उसी घटना के स्मारक में की जाती है, जिसमें मरसिया पढ़ा जाता है और अनेक प्रकार से श्रद्धालु शोक प्रकट करते हैं। शोक प्रकट करते हुए ही कागज़ की ताज़िया उठाकर लोग जलूस में करबला के मैदान में (करबला ईराक़ में है, इससे अन्य देशों में स्थान विशेष करबला मान लिया जाता है) पहुँचते हैं। राह में साथ ही साथ कृत्रिम लड़ाई भी होती चलती है।

अरबी साहित्य में इधर बड़ी प्रगति हुई है और उसका भविष्य आशागर्भित है। सारा एशिया आज पश्चिम की शोषक नीति से विद्रोह कर उठा है। अरब देशों—ईराक़, सीरिया, लेबनान, ट्रान्सजार्डन, अरब, यमन, अदन, मिस्र, मोरौक्को, लिबिया, सूडान—सर्वत्र एक नई आज़ादी की आवाज़ उठी है और उसका अनुवर्ती साहित्य उस वातावरण में सतत जागरूक है।

३. अक्क़ादी साहित्य

: १ :

वीर महाकाव्य

अक्क़ादी साहित्य से तात्पर्य उन सारे नगरों के साहित्य से है जो अति प्राचीन काल में (३०००-६०० ई० पू०) मध्य और दक्षिण ईराक़ तथा दक्षिण-पश्चिमी ईरान पर छाये हुए थे और जो सुमेरी-एलामी-बाबुली (अक्क़ादी) —आसुरी सभ्यता के केन्द्र माने जाते हैं।

वह साहित्य बहुत पुराना है, प्रायः उतना जितनी सभ्यता पुरानी है, सुमेरी सभ्यता। सदियों-सहस्राब्दियों दजला-फ़रात के द्वाब के दक्षिणी भाग में, फिर मध्य और उत्तर में, पश्चिम और पूर्व में गीली ईंटों पर कीलनुमा अक्षरों में (जिससे लिपि का नाम 'क्यूनी-फ़ॉर्म' पड़ा) साहित्य लिखा गया। उस अगाध भंडार में सभी सुरक्षित भी न रह सका, अधिकांश नष्ट हो गया; फिर भी बहुत कुछ बच रहा : विशेषतः एक असुर सम्राट् अशुर-बनिपाल (असुर-अवनिपाल) के अध्यवसाय से।

ईसापूर्व तीसरी सहस्राब्दी में ही इस साहित्य का निर्माण शुरू हो गया था परन्तु समय-समय पर मौसम और मनुष्य दोनों उसे नष्ट कर देते थे। सातवीं सदी ई० पू० के इस अशुर-बनिपाल (६६८-२६ ई० पू०) को इसकी रक्षा की ऐसी लगन लगी कि उसने अपने ग्रन्थागार में हज़ारों लिखी ईंटें, खुदे पत्थर एकत्र कर लिये। यदि वे सारे एक ही जगह उस प्राचीनकाल में ही एक भावुक मानव की निष्ठा से संरक्षित न कर लिये गये होते तो संभवतः हमें उस प्राचीन सभ्यता के साहित्य का बोध न होता।

इस संग्रहीत सामग्री में काव्य, कानून, अनुवृत्त, धर्मशास्त्र, सूक्त सभी कुछ था। उस भंडार के कुछ रत्नों का हम यहाँ विवरण देंगे।

सुमेरी साहित्य और इस अर्थ में विश्व-साहित्य का प्राचीनतम ऐतिहासिक वीर-महाकाव्य (एपिक) 'गिल्गमेश' है। यह उस जल-प्लावन की कहानी है जिसका उल्लेख प्रायः सारी सभ्यताओं के साहित्य में मिलता है। उस जल-प्रलय से सृष्टि की रक्षा बाइबिल में नूह करता है, शतपथ ब्राह्मण और मनुस्मृति में मनु। वह जल-प्रलय सुमेर में ई० पू० ३५०० के लगभग हुआ। उसमें पुराविदों ने बाढ़ और वर्षा के जल से लाई पाँच फुट गहरी मिट्टी खोद डाली है। उस जल-प्रपात का पहला लोमहर्षक वर्णन सुमेरी में १५०० ई० पू० के लगभग लिखा गया, शतपथ ब्राह्मण की कथा से प्रायः डेढ़

हजार वर्ष पहले। उसी का महाकाव्य रूप कुछ काल बाद फिर 'गिल्गमेश' नाम से रचा गया जो १२ ईंटों पर खुदा हुआ अशुर-बनिपाल के ग्रन्थ-संग्रह में असुरों की राजधानी निनेवे से मिला।

'गिल्गमेश' काव्य के भीतर काव्य है। काव्य का 'हीरो' गिल्गमेश है परन्तु उसके भीतर आये जल-प्लावन का वर्णन जलप्लावन के हीरो, गिल्गमेश, का पूर्वज जिउ-सुद्दू करता है। वह शुरुप्पक का रहने वाला है, सुमेरी-बाबुली कथाओं का मनु। 'गिल्गमेश' महाकाव्य में वही जिउसुद्दू अपने वंशधर और काव्य के नायक गिल्गमेश से जल-प्रलय की कथा इस प्रकार कहता है—

"मैं तुझसे एक भेद की बात कहूँगा, और तुझसे देवताओं की रहस्य-मंत्रणा तक कह दूँगा। मगर शुरुप्पक को तू जानता है, उसे, जो फरात (फरातू) के तट पर है—वह नगर पुराना हो गया था, और उसमें बसने वाले देवता—महान् देवता के चित्त में हुआ कि जल-प्रलय करें....

"दिव्य स्वामिन्—नेक देवता एंकी—उनके विरुद्ध था। उसने उनकी मंत्रणा एक नरकट की झोंपड़ी को सुनाकर कही—नरकट की झोंपड़ी, नरकट की झोंपड़ी! दीवार, ओ दीवार! सुन, हे नरकट की झोंपड़ी! समझ ओ दीवार!"

यह इस प्रकार झोंपड़ी के बहाने इसलिए कहा गया कि जिउसुद्दू, जो उसी झोंपड़ी में सो रहा था, सुन ले। फिर देवता ने खुलकर उससे कहा—

"शुरुप्पक के मानव, उबर्दुद्दू के पुत्र, घर को गिरा डाल, एक नौका बना, माल-असबाब छोड़ दे, जान की फिक्र कर। जायदाद को तोबा कर और (अचानक मर नहीं) जिन्दगी बचा ले! सारे जीवों के बीज चुन ले और नौका के बीच ला रख!"

जिउसुद्दू ने नौका बनाई और उसे जीव-बीजों से, भोजन आदि से भर लिया और नगरवासियों से वह बोला—"शक्तिमान् पवन देवता एन्लिल उससे घृणा करता है, इससे वह जिउसुद्दू अब उनके बीच नहीं रहेगा। जाते समय उसने झूठ कहा कि देवता उन पर कृपा करेंगे, रहमत बरसायेंगे। उसने अपने परिवार को फिर नाव में चढ़ा उसे सब ओर से बन्द कर लिया। और तब भयानक तूफान आया और काले विकराल मेघों के बीच स्वयं देवताओं को समस्त नागरिकों ने मशाल चमकाते देखा।

"भाई-भाई को न पहचान पाता था। शून्य और आदमी में कोई फर्क नहीं था। (ये लोग दिखाई नहीं पड़ते थे) स्वयं देवताओं को जल-प्लावन से भय हो चला। वे सरके। वे देवता उनके स्वर्ग में जा पहुँचे। देवता कुत्तों की भाँति भय से काँप रहे थे, स्वर्ग की देहली में एक-दूसरे से चिमटे। देवी इनन्ना (सुमेरी मातृदेवी, शेमियों की इश्तर अथवा अस्तार्ते-स्त्री) प्रसवपीड़िता नारी की भाँति चीख उठी। वह मधुभाषिणी देवपत्नी रो-रोकर देवताओं से कहने लगी—'दिन मिट्टी हो जाये क्योंकि मैंने देवसभा

में अनुचित कहा ! भला क्यों देवताओं की सभा में मैंने कुवाच्य कहा ! क्यों अपनी ही प्रजा के लिए तूफान बरपा किया ? मैंने क्या अपनी प्रजा को इसीलिए जना कि उनसे मछलियों के अंडों की तरह समुद्र भर जाये ?"

छह दिन और सात रात तूफान और जल की बाढ़ उमड़ती रही और जल की सतह पर बहता जिउसुद्दू अपने साथियों के लिये ज़ार-ज़ार रोता रहा। पर्वत-श्रृंखला के ऊँचे शिखर मात्र जल के ऊपर थे। इन्हीं में एक से नौका जा लगी और सप्ताह भर वहीं लगी रही। जिउसुद्दू कहता गया—

"सातवें दिन मैंने एक कबूतर निकाला और उड़ा दिया। कबूतर उड़ गया। वह चहुँ ओर उड़ता रहा पर कहीं उतरने को जगह न मिली और वह लौट आया। मैंने एक अबाबील निकाली और उड़ा दी। अबाबील उड़ गई। वह चहुँ ओर उड़ती रही पर कहीं उतरने को जगह न मिली और वह उड़ती हुई लौट आई। मैंने एक काग निकाला और उड़ा दिया। काग उड़ गया और उसने घटते हुए जल को देखा। उसने (दाना), चुगा, जल हेला, डुबकियाँ लगाईं, लौटकर नहीं आया। मैंने (हविष) निकाला और कुर्बानी की (यज्ञ किया) चारों हवाओं के प्रति। पर्वत की उत्तुंग शिला पर मैंने आपान (मदिरा) चढ़ाया, और सात बोतल रख दिये; उनके नीचे बेंत, दारु और धूप-अगुरु बिखेरे। देवताओं ने सुरभि सूँघी, देवताओं ने प्रभूत गंध ली; देवता यज्ञ के स्वामी के चारों ओर इकट्ठे हो गये। अन्त में देवी (इनन्ना) ने पहुँचकर वह ग्रैवेयक (हार) उठाकर, जो देव अन ने उसके कहने से बनाया था, कहा—'देवताओ, जैसे मैं अपने गले की नीलमणियों को नहीं भूलती, उसी प्रकार मैं इन दिनों को नहीं भूल सकती। इन्हें सदा याद रखूँगी। देवता यज्ञ में पधारें, परन्तु एन्लिल न आवे, इस यज्ञ का भाग वह न पावे, क्योंकि उसने कहना न माना, क्योंकि उसने जलप्रलय की सृष्टि की और नाश के लिए मेरी एक-एक प्रजा गिन ली।' तब देवता एन्लिल ने नाव देखी। एन्लिल क्रुद्ध हो उठा। उसने पूछा कि किस प्रकार कोई मर्त्य (उस प्रलय से) बचकर निकल गया। श्रीमान् और शिष्ट भूदेव एंकी ने उससे तर्कपूर्वक कहा—

'देवताओं के देवता, वीर, क्यों, क्यों तूने कहना नहीं माना और बरबस प्रलय की ! पाप पापी के ऊपर डाल, सीमोल्लंघन का अपराध सीमा लाँघने वाले पर। कृपा कर, जिससे वह सर्वथा उच्छिन्न (एकाकी) न हो जाये, नितान्त विभ्रान्त (मूढ़) न हो जाये। तेरे जलप्रलय लाने से अच्छा है कि सिंह भेजकर प्रजा की संख्या कम कर दे। तेरे जलप्रलय लाने से अच्छा है कि भेड़िया भेजकर प्रजा की संख्या कम कर दे।'

"क्रुद देवता शान्त हो चला; एंकी कुछ के किये पापों का दंड बहुतों को देने वाले उस देव की भर्त्सना करता गया। अन्त में एन्लिल नौका के भीतर चला आया। उसने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे बाहर लाया, स्वयं मुझे। वह मेरी पत्नी को भी बाहर निकाल लाया

और मेरी बगल में उससे घुटने झुकवाये (प्रणाम कराया)। उसने हमारे माथे का स्पर्श किया और हमारे बीच खड़े होकर हमें आशीर्वाद दिया। "पहले जिउसुद्दू मनुष्य था। पर अब से जिउसुद्दू और उसकी पत्नी निश्चय ही हमारी तरह देवता होंगे। जिउसुद्दू और उसकी पत्नी दूर नदियों के मुहाने में वास करेंगे।"

परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह कहानी में कहानी है। जलप्रलय की कथा। इस काव्य का अन्तरंग तो है और इसी से वही प्रधान भी है, परन्तु काव्य स्वयं गिल्गमेश के पराक्रमों पर आधारित है जो इस प्रकार है—

(पहली ईंट) गिल्गमेश का पिता आधा अपार्थिव है आधा मानव, और माता देवी निन्सुन (लुगालबन्दा की पत्नी) है। उसका उरुक राज्य का शासन इतना निरंकुश और अत्याचारव्यंजित है कि प्रजा देवताओं से रक्षा के लिए प्रार्थना करती है। देवताओं ने उसका अन्त करने के लिए एक विचित्र बनैला मानव सिरजा। उस एंकिदू का सारा बदन बालों से भरा था (ऋग्वैदिक वृषाकपि) और वह वन के पशुओं के साथ रहता था।

मरु के शिकारियों ने गिल्गमेश से उसकी शिकायत की कि वह अचरज का जीव उन्हें डरा देता है। पशुओं को उनके पाश से छुड़ाकर स्वतन्त्र कर देता है। गिल्गमेश ने उसे रिझाने के लिए सुन्दर देवदासी (मन्दिर की कन्या) भेजी। जिससे एक बार पतन हो जाने पर पशु उससे मुँह फेर लें। वह अपने कार्य में सफल हुई और जब वह उसके आलिंगन से अलग हुआ तब—

"हरिणों ने उसे देखा, उस एंकिदू को, और भाग चले।
खेत के पशु उससे दूर-दूर हो चले।
क्योंकि एंकिदू की पवित्रता नष्ट हो चुकी थी।"

अपने पशु-मित्रों को छोड़ देने पर वह उस नारी के साथ उरुक पहुँचा। नारी ने गिल्गमेश के पराक्रम और शक्ति का वर्णन कर उसकी ईर्ष्या उभाड़ दी थी।

"मुझे उसे ललकारने दो! मैं गर्व से बोलूँगा;
उरुक के नगर में चिल्ला कर कहूँगा।
'शक्तिमान मैं हूँ। मैं, मैं जो प्रारब्ध को बदल सकता हूँ।
निश्चय ही मुझे मरु में जन्मे की कुव्वत बड़ी है।'"

एंकिदू के आने का पता गिल्गमेश को अपने सपने से चल गया था और उसकी माँ ने सपने का अर्थ यह लगाया था कि दोनों वीर मित्र हो जायेंगे।

(दूसरी ईंट) नारी ने एंकिदू को नगर में लाकर उसे रोटी खाना, जौ की शराब पीना, तेल लगाना, नहाना, सभ्यता के सारे तरीके सिखा दिये थे। एंकिदू गिल्गमेश से लड़ा। खूब द्वन्द्व-युद्ध हुआ। दोनों एक दूसरे की शक्ति से परिचित हो उसे सराह कर मित्र हो गये।

(तीसरी ईंट) फिर वे (सीरिया) के दारुवन की ओर चले जिसकी रक्षा हुवावा अथवा हुंबाबा (हव्वा दैत्य––संभवतः जलहीन मरु का रूपक) करता था––

"हुवावा की गरज तूफ़ान है,
उसका मुखगह्वर आग,
उसकी साँस मृत्यु।"

एंकिदू पहले कुछ घबड़ाया परन्तु गिल्गमेश की महत्वाकांक्षा उसे प्रेरित करती रही। यद्यपि उरुक के वृद्धों और सूर्य देवता तक ने उन्हें मना किया, दोनों दारुवन की ओर चल पड़े। माता निन्सुन सूर्यदेव को मनाती रही। (चौथी ईंट टूट गई है पर जान पड़ता है) वे सकुशल दारुवन पहुँच गये। (पाँचवीं ईंट) गिल्गमेश को भयानक स्वप्न आये जिनका अर्थ एंकिदू ने हुवावा का संहार लगाया। दैत्य के मिलने पर गिल्गमेश ने सूर्य को याद किया और देवता ने जब आठ हवायें चला कर हुवावा को विक्षिप्त कर दिया तब गिल्गमेश ने उसका सिर काट लिया। (छठी ईंट) दोनों वीर विजयी होकर उरुक लौटे। अब देवी इनिन्ना, जिसके अनेक प्रिय पात्र थे, उस पर रीझ गई, परन्तु गिल्गमेश ने उसे यह कहकर विमुख कर दिया कि उसके सभी प्रणयियों का भीषण अन्त हुआ।

क्रोधाभिभूत देवी ने अपने पिता अन देवता से उसके संहार के लिए दिव्य वृषभ सिरजने को कहा। देवता ने उत्तर दिया कि इसका परिणाम पृथ्वी पर सात वर्ष तक अकाल होगा। परन्तु वनस्पतियों की स्वामिनी ने प्रत्युत्तर में कहा––

दिव्य वृषभ सिरज दिया गया। पहले सौ आदमी, फिर दो सौ और तब तीन सौ उससे लड़ने भेजे गये। उसने सब को मार डाला। तब एंकिदू ने उसकी सींगें पकड़कर उसे पटक दिया और गिल्गमेश ने उसे मारकर इनिन्ना का घोरतर अपमान किया। वृषभ की सींगों से उन्हें साठ मन तेल मिला जिसे उन्होंने महार्ह-रत्नों के दीप में डाल लुगाल्बन्दा के मन्दिर में जलाया। तब दोनों प्रीतिभोज में बैठे और गिल्गमेश ने पहेली कही––

"वीरों में शालीन कौन है,
वीरों में अप्रतिम कौन है,
गिल्गमेश वीरों में शालीन है,
एंकिदू वीरों में अप्रतिम।"

उस रात एंकिदू ने एक भयानक स्वप्न देखा (सातवीं ईंट टूट गई है परन्तु एशिया माइनर के बोगजक्रोए से मिले महाकाव्य के एक हित्ती अनुवाद से स्पष्ट है कि) उसने देखा कि देवताओं ने अपनी सभा में निश्चित किया कि एंकिदू वृषभ मारने के कारण मरे और गिल्गमेश जीवित रहे। उसने जागकर बुरी तरह उस नारी को कोसना शुरू किया जिसने उसे पशु-जीवन के निश्छल वातावरण से लाकर विपज्जनक मानव-जगत् में पटक दिया।

फिर एंकिदू ने एक और स्वप्न देखा जिसमें यमलोक का वर्णन है––

"उस सदन की ओर जहाँ प्रवेश कर कोई लौटकर नहीं आता,
उस मार्ग से जो फिर लौटता नहीं,
उस सदन की ओर जिसमें बसने वाले प्रकाश नहीं पाते,
जहाँ धूल (खाने के लिए) मांस है, मिट्टी रोटी है,
और जहाँ वे पक्षियों की भाँति परों के वस्त्र पहनते हैं,
और अन्धकार में रहते आलोक से वंचित रहते हैं।"

(आठवीं ईंट) गिल्गमेश अपने मरणासन्न मित्र को धीरज बँधाता है, परन्तु वीर एंकिदू की शक्ति निरन्तर क्षीण होती जाती है—

"कैसे हो, कैसी नींद है यह जिसने तुम्हें जकड़ लिया है ?
तू काला पड़ गया है, मेरी आवाज़ नहीं सुनता !
पर उसने अपनी आँखें नहीं खोलीं।
गिल्गमेश ने उसके हृदय पर हाथ रखा, गति बन्द थी,
उसने (अपने मृत) मित्र को वधू की भाँति ढँक दिया।"

गिल्गमेश उसके लिए कातर विलाप करने लगा, परन्तु तभी स्वयं उसे एक दारुण विचार ने आ घेरा—क्या अपने मित्र की ही भाँति एक दिन वह भी इसी प्रकार मर जायगा, अकड़कर गूँगा हो जायगा? संत्रस्त हो उसने दूर बसने वाले जिउसुद्दू को ढूँढ़ निकालने और उससे उस अमरता का भेद जानने का निश्चय किया जो जल-प्रलय के पश्चात् जिउसुद्दू को देवताओं से प्राप्त हुआ था। (नवीं ईंट में उसकी यात्रा का वर्णन है)। पहले वह भयानक पर्वतों पर चढ़ता है जिनकी रक्षा भीषण वृश्चिक-मानव करते हैं, वृश्चिक-मानव जिनके सिर और धड़ मनुष्य के हैं, टाँगें पक्षियों की, और डंक बिच्छू के। तब उसे मद्यकन्या मिलती है, जो समुद्र की गहराइयों में रहती है और जिससे (दसवीं ईंट में) वह अपनी पिछली साहसपूर्ण यात्रा का वर्णन करता हुआ अमरता प्राप्त करने की अपनी महत्वाकांक्षा घोषित करता है। मधुबाला (उमर खय्याम के स्वर में जैसे) कहती है—

"गिल्गमेश, तू दूर (विदेश) क्यों भाग रहा है ?
जो तू ढूँढ़ रहा है वह (अमर) जीवन तू नहीं पा सकता।
जब देवताओं ने मानव-जाति को सिरजा—
तब उसके लिये मृत्यु की व्यवस्था की।
स्वयं उन्होंने दोनों हाथ जीवन को पकड़ा !
और देख, गिल्गमेश, तू तो अपना पेट भर।
दिन और रात ऐश कर,
यही, यही, आदमी की किस्मत है।"

गिल्गमेश उससे आश्वस्त नहीं होता, चलता चला जाता है जब तक जिउसुद्दू के 'मृत्यु के समुद्र' में नाव चलाने वाले मांझी को नहीं ढूँढ़ निकालता। (यहाँ पाठ टूट गया है, पर टूटी लिपि से ध्वनि निकलती है कि) वह क्रुद्ध होकर नौका की पाल फाड़ देता है, मस्तूल उखाड़ देता है। तब माँझी भी उसे मधुबाला की ही भाँति मरण को जन्म-सिद्ध मान, लौट जाने को कहता है। परन्तु जब वह लौटने को राज़ी नहीं होता तब माँझी उसे इस शर्त पर ले जाने को उद्यत होता है कि नाव को बढ़ाने के लिए वह बाँस काट लिया करे। 'मृत्यु का समुद्र' विषाक्त था। इससे नाव खेने के लिये प्रत्येक चोट के बाद बाँस को फेंक देना पड़ता था। बावन लग्गियों (चोटों) के बाद, अन्त में वह मृत्यु का समुद्र पार कर विस्मित अमर जिउसुद्दू के सामने जा खड़ा हुआ।

गिल्गमेश ने मानव जाति को मरण-भय से मुक्त करने की अपनी उत्कट् महत्वा-कांक्षा घोषित करते हुए जिउसुद्दू से पूछा कि वह किस प्रकार अपने स्वाभाविक मरण-भाग्य से मुक्त हो सका है? (ग्यारहवीं ईंट) तब जिउसुद्दू उससे जल-प्रलय की कथा कहता है। यही जल-प्रलय की कथा 'गिल्गमेश' एपिक का अन्तरंग है। फिर वह कहता है कि "यदि तुम अमर जीवन प्राप्त करना चाहते हो तो पहले सप्ताह भर बिना सोये रहो, जागो।" परन्तु यात्रा के श्रम से थका गिल्गमेश जागने की बजाय सप्ताह भर सोता है। तब जिउसुद्दू उसे मांझी के साथ स्नान करके ताजा हो आने को भेजता है। और लौटने पर उसे बताता है कि अमरता समुद्र-तल में उगने वाली एक औषधि (पौधा) से प्राप्त होती है।

"उसके काँटे तेरे हाथ में गुलाब की भाँति चुभेंगे।
फिर भी यदि तू उस औषधि को पा ले तो जीवन (अमरता) को पालेगा।
गिल्गमेश ने यह सुनकर कमरबन्द कसी—और पैरों में भारी पत्थर बाँधे।
वे उसे गहरे तल में खींच ले गये और उसने वह औषधि देखी।
तब उसने पौधा उखाड़ लिया, और उसके काँटे उसके हाथ में चुभ गये।"

(मोती निकालने वाले पनडुब्बे आज भी फारस की खाड़ी में इसी प्रकार अपने पैरों में पत्थर बाँधते हैं।) अब गिल्गमेश अपने पत्थरों की रस्सी काट मुक्त हो गया। प्रसन्न वदन ऊपर पहुँचने पर मांझी उसे मर्त्य जगत् की ओर लौटा ले चला। साठ घंटे निरन्तर चलते रहने से गिल्गमेश थककर विश्राम और सरोवर में स्नान करने के लिए रुका।

"एक सर्प ने औषधि की गन्ध पा ली।
जल से वह सपद निकला और औषधि लेकर चम्पत हो गया।
(सरोवर) लौटकर सर्प ने अपनी त्वचा (केंचुल) छोड़ दी, पुनर्जन्मा हुआ।
तब गिल्गमेश बैठकर रुदन करने लगा!

उसके गालों पर आँसू बह चले . . . .
'किसके लिये मैंने अपने हृदय का रक्त सुखाया है ?
मैंने अपने लिये कुछ (भला) नहीं किया;
केवल धूल के नृशंस जीव (सर्प) का भला किया।"

(प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं के विश्वास में अमरता का रहस्य सर्प को ज्ञात है। समुद्र तल का पौधा वस्तुतः प्रवाल (मूँगा) है जिसे सभी प्रारंभिक जातियाँ संजीवनी मानती थीं।) काव्य का वस्तुतः यहीं अन्त हो जाता है। उन्नत, उदात्त, श्रमशील मानव ने अपने साहस द्वारा देवताओं के अमृत-रहस्य को ले लेना चाहा परन्तु विफल-मनोरथ अन्ततः मृत्यु का शिकार हो वह उनका हास्यास्पद बना। (बारहवीं ईंट सम्भवतः बाद की है) गिल्गमेश, वृद्ध और व्याकुल, परलोक की व्यवस्था जानने के लिये अपने मित्र के प्रेत से साक्षात्कार के लिये उन सारे 'तपु'ओं (तपस्—विधानों) को तोड़ देता है जो मानव की प्रेत की छाया से रक्षा करते हैं। देव नेर्गल, जो यमलोक पहुँचकर निकल भागा था, भूमि में छेद कर देता है और—

"एंकिदू का प्रेत वायु की भाँति पृथ्वी से निकल पड़ा।
दोनों सपद गले मिले,
क्रन्दन करते वे बात करने लगे।
'बता मेरे मित्र, बता मेरे मित्र,
बता कब्र के विधान, जो तूने देखे हैं !'
'नहीं बताऊँगा मित्र, तुझे नहीं बताऊँगा,
क्योंकि यदि अपने देखे कब्र के विधान तुझे बता दूँ,
तो तू बैठा रोया करेगा !'
तो (कुछ परवाह नहीं) मुझे बैठकर रोया करने दे।"

एंकिदू के प्रेत ने तब बताया कि किस भयानक रीति से वस्त्र की भाँति शरीर को कीट चाट जाते हैं। केवल वही परलोक में शान्ति पाते हैं जिनकी समाधि पर जीवित निरन्तर आहार और पेय भेंट चढ़ाते रहते हैं। अन्यथा प्रेत निरन्तर सड़कों पर घूमते, मल खाते और नालियों का जल पीते रहते हैं। यहीं 'गिल्गमेश' काव्य का नितान्त निराशा में अन्त हो जाता है। हाल के मिले काव्य की एक दूसरी प्रति से ज्ञात होता है कि गिल्गमेश को भी अन्ततः मरना पड़ा और मरकर उसने परलोक के दंडधरों (जजों) में स्थान पाया।

यह काव्य इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके अनुवाद हित्ती, शुबरी आदि भाषाओं में हुए और ग्रीक पुराणों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। अनेक आर्य, अनार्य, चीन आदि के पुराणों में भी जलप्रलय की कथा गाई गई। भारतीय शतपथ ब्राह्मण और मनुस्मृति पर भी उसकी छाया पड़ी।

इर्रा-काव्य : एनुमा-एलिश

अक्कादी का दूसरा काव्य 'इर्रा (इरा, इला-संस्कृत) का काव्य' कहलाता है। इसमें प्रधानतः देवता इर्रा के मानवजाति के प्रति क्रोध का वर्णन है जिसके परिणामस्वरूप निकटपूर्व की सारी जातियों में दारुण युद्ध होता है। अन्त में बाबुली (अक्कादी) उस महासमर में विजयी होते हैं। परन्तु इस काव्य से बड़ा और विशिष्ट महत्व का 'एपिक' काव्य-सृष्टि-सम्बन्धी 'एनुमा एलिश' ('जब ऊपर', काव्य के दो आरम्भिक शब्दों के आधार पर उसका नाम रखा गया है) है। अशुर और बाबुल में सृष्टि और देवतत्व के सम्बन्ध में जो धारणायें प्रचलित थीं, उन्हीं का इस 'एपिक' से आभास मिलता है। काव्य में १००० से ऊपर पंक्तियाँ हैं और अब वे सब की सब मिल गई हैं। इस काव्य की पंक्तियाँ सात पट्टिकाओं पर खुदी हैं। सम्भवतः इस काव्य की रचना ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई यद्यपि उपलब्ध सारी सामग्री पहली सहस्राब्दी (ई० पू०) के लेखों से ही प्रस्तुत हुई है। इसमें उन घटनाओं का सविस्तार वर्णन है जिनसे मार्टुक अक्कादी देवलोक का प्रधान बन गया। आरम्भ में इसमें देवताओं की सृष्टि और उनके पारस्परिक युद्धों का वर्णन है जिनमें अन्ततोगत्वा अशांति की परिचायिका जलदेवी तियामत (अथर्ववेद 'तैमात') पर मार्दुक विजयी होता है। मध्य भाग में, मार्दुक के कार्यों का उल्लेख है—तियामत के शव से विश्व का निर्माण, विश्व की व्यवस्था और मनुष्य की अभिसृष्टि, और अन्त में मार्दुक के पचास नामों की महिमा पर स्तोत्र का उपसंहार है।

अन्य काव्य

इनके अतिरिक्त उस साहित्य में कुछ और काव्य भी मिलते हैं। हाँ, इनके खंडमात्र आज उपलब्ध हैं। एक में दैत्य लब्बू के संहार का वर्णन है। दूसरे में महादेव एन्लिल की भाग्य-पट्टिकाओं के आहर्ता जु-बिर्द के नाश का। एक तीसरे काव्य-खण्ड में दानवों की सेना से लड़ने वाले कुथाह् के राजा का वर्णन है।

पुराण

उस साहित्य में अनेक पौराणिक आख्यानों का वर्णन मिलता है। 'एनुमा एलिश' और 'गिल्गमेश' की पौराणिक कथाओं का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। दो मानव-संहार की आख्यायिकाओं में पौराणिक ऋषि उत्नपिश्तिम का उल्लेख हुआ है। दो ख्यातों में परलोक (पाताल-नरक) का उल्लेख है। इनमें पहले में देवी इश्तर के नरक-अवतरण के कारण पृथ्वी पर सारे यौन कृत्यों के अन्त और परिणाम का विशद वर्णन है। दूसरे में उन घटनाओं का उल्लेख है जिनके फलस्वरूप अक्कादी यम (नरक देवता) नेर्गल की पाताल लोक के शासक के रूप में नियुक्ति होती है।

इनके अतिरिक्त दो और खण्डित ख्यातें मिली हैं जिनका संबंध दो महत्वशाली

व्यक्तियों—अदपा और एतना से है। अदपा वाले प्रसंग में मनुष्य के मरण के कारणों की व्याख्या है। एतना वाले में जन्म संबंधी औषधि की खोज का जिक्र है। दूसरी कथा मनोरंजक है।

एक बार सर्प और गरुड़ ने परस्पर मित्रता की प्रतिज्ञा की, परन्तु गरुड़ ने सर्प के बच्चे को खा लिया। इस पर कातर और क्रुद्ध सर्प ने सूर्य देवता से शिकायत की। सूर्य ने राय दी कि वह बैल का अस्थिपंजर उठा लाये और जब गरुड़ उसे खाने आये तब वह उसे पकड़ ले। सर्प ने ऐसा ही किया और जब गरुड़ आया तब उसने उसे पकड़कर उसके पंख काट लिये और उसे गड्ढे में डाल दिया जहाँ गरुड़ कष्ट में कराहता पड़ा रहा। अब सूर्य से प्रार्थना करने की बारी उसकी थी। परन्तु उचित बदले को भला देवता कैसे विफल कर सकता था और वह सर्प के विरुद्ध कुछ न कर सका यद्यपि गरुड़ पर कृपा वह करना चाहता था। तभी एक घटना घटी। कीश के राजा एतना की पत्नी गर्भवती थी और वह उसकी प्रसव-पीड़ा कम करने के लिए जादू की 'जन्म-औषधि' खोजने लगा। उसके लिये उसने सूर्य से पूछा। सूर्य जानता था कि वह औषधि केवल स्वर्ग में है और उसने उसे गरुड़ की सेवा कर स्वस्थ कर देने को कहा। एतना ने गरुड़ को स्वस्थ कर दिया और कृतज्ञ पक्षिराज उसे स्वर्ग ले जाने को राजी हो गया। दोनों उड़ चले। दो घंटे बाद गरुड़ ने कहा—"देखो मित्र, पृथ्वी कैसी है। उसके चतुर्दिक् सागर देखो, गंभीर अंबुधि। पृथ्वी कैसी पर्वत मात्र-सी दीखती है और समुद्र कुल्या-सा। पहले वह हर दो घंटे बाद इसी प्रकार एतना से पृथ्वी की घटती हुई आकृति का वर्णन करता था। वह अन, एन्लिल और एंकी के स्वर्ग-द्वार लाँघ गया, पर यात्रा का अभी अन्त न हुआ। अभी उन्हें उस देवी के सिंहासन तक पहुँचना था जिसके पास वह 'जन्म-वृक्ष' था। एतना के लिये यह असह्य हो उठा और चीखकर वह दूर नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा।

देवस्तोत्र : सूक्त

अक्क़ादी साहित्य में, देवस्तोत्रों, सूक्तों और राजप्रशस्तियों का अभाव नहीं; विशेषतः स्तोत्र तो उसमें भरे पड़े हैं। इनमें अधिकतर प्रधान देवता मार्दुक के प्रति कहे गये हैं। कुछ युद्ध और प्रेम की देवी इश्तर (सुमेरी इनन्ना) के लिये कहे गये हैं, कुछ सूर्य देवता, शमश (सुमेरी उत्तू) और कुछ ज्ञानदेव इआ (सुमेरी एंकी) के लिये। कुछ गीत तो प्रायश्चित-रूप में पाप के स्वीकरण में गाये गये हैं जो अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है—

"मैं तेरा स्मरण करता हूँ (इश्तर), मैं तेरा अभागा, व्यथित रुग्ण दास !
मेरी ओर देख, मेरी देवी, मेरी विनय स्वीकार कर,
मुझ पर दया की दृष्टि डाल, मेरी प्रार्थना सुन !
मुझे मुक्ति दे, मेरी रूह को राहत दे;

मेरे पतित शरीर की मुक्ति, अशान्त शरीर की,
मेरे रुग्ण हृदय की मुक्ति जो आँसुओं, उच्छ्वासों से भरा है,
मेरी अभागी अंतड़ियों की मुक्ति, अशान्त अंतड़ियों की,
मेरे दुःखी गृह (परिवार) की मुक्ति, जो करुण विलाप कर रहा है,
मेरी आत्मा की मुक्ति जो आँसुओं-उच्छ्वासों से आर्द्र है।"

पाताल के देवता नेर्गल के प्रति एक सूक्त इस प्रकार है—

"स्वामिन्, आपानक में प्रवेश न करो, न मधु बेचती वृद्धा को ही मारो।
स्वामिन्, संसद में प्रवेश न करो, न वहाँ बैठे धीमान् जरठ को मारो।
स्वामिन्, खेल के मैदान में न रुको, न मैदान में खेलते बच्चों को भगाओ।
वहाँ प्रवेश न करो जहाँ तंत्रीनाद गूँजता है, न तरुण को भगाओ जो तंत्रीनाद समझता है।"

सम्राट् हम्मुराबी के संबंध में एक बड़ी ओजस्विनी कविता प्राप्त है। यशस्वी विजेता आक्रमण को उद्यत होकर भी आक्रमण में जैसे देर कर रहा है और अक्कादी कवि ललकार उठता है—

"बाल (एन्लिल) ने तुझे प्रमुखता दी है :
फिर तू प्रतीक्षा किसकी कर रहा है ?
सिन ने तुझे महत्तम बनाया है :
फिर तू प्रतीक्षा किसकी कर रहा है ?
निर्नुता ने तुझे शक्तिम शस्त्र दिया है :
फिर तू प्रतीक्षा किसकी कर रहा है ?
इश्तर ने तुझे युद्ध और समरावसर दिया :
फिर तू प्रतीक्षा किसकी कर रहा है ?
शमश और अदाप तेरे सहायक मित्र हैं ;
फिर तू प्रतीक्षा किसकी कर रहा है ?
चारों दिशाओं में अपनी शक्ति प्रतिष्ठित कर दे !
तेरे नाम की पुकार ऊँची हो, गूँज उठे !
दूर-दूर के लोग तेरी पूजा करें,
तुझे वे अपना सिर झुकायें !

हम्मुराबी, सम्राट्, महावीर,
अमित्रघात, समरझंझावात,
शत्रुजनपदसंहारक, विद्रोहों का आक्रान्ता
विप्लव का शास्ता, सम्मुख समर में खड़े होने वाले को
मिट्टी के पुतले की भाँति चूर कर देने वाला,
अभेद्य पर्वतों की अर्गला तोड़ देने वाला (हम्मुराबी) !

यहाँ हम्मुराबी के शास्त्र (अनुशासन) का उल्लेख समीचीन होगा । जैसे मनु का 'धर्मशास्त्र' महत्व का है उससे प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पूर्व (२००० ई० पू०) का हम्मुराबी का यह विधान वैसे ही प्राचीन है । संसार का वह प्राचीनतम विधान है । जिसमें वादप्रतिवाद, प्रमाण, दंड, वैयक्तिक सम्पति, चौरकर्म, पट्टा-अराजी, कृषि, व्यापार, मदिरा का लाइसेंस, ऋण-उधार, ट्रस्ट, विवाह, दाय, नारी, पुरोहित, दत्तकपुत्र, फौजदारी, वैद्यचिकित्सक, राज, नदी की राह का उपयोग, नहर के जल का सिंचाई के लिये प्रयोग, मवेशी, कृषि, मजूर, दास आदि सभी के लिये अनुशासन हैं । हम्मूराबी के बाद का अनुशासन मूसा (१६वीं सदी ई० पू०) का है, फिर मनु का (पाँचवीं-दूसरी सदी ई० पू०) ।

प्राचीनता को देखते हुए प्रकट है कि सुमेरी, विशेषतः अक्कादी (बाबुली-आसुरी) साहित्य में गजब की मार्मिकता है । बाबुल ने संसार को बहुत कुछ दिया, लिपि, ज्योतिष, गणना और इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण जलप्रलय की कथा 'गिल्गमेश' जो संसार का प्राचीनतम 'एपिक' काव्य है ।

४. इटैलियन साहित्य

: १ :

मध्य युग

(१२००-१४५०)

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद धीरे-धीरे इटली से लैटिन का बोलबाला उठ गया। उसके स्थान पर जन-भाषा इटैलियन प्रतिष्ठित हुई। रोमन सांस्कृतिक परंपरा तो निश्चय ही किसी-न-किसी रूप में बनी रही परन्तु लैटिन का ह्रास स्वाभाविक ही शुरू हो गया। वैसे तो १२०० ई० के लगभग ही इटैलियन का आरम्भ माना जाता है, वस्तुतः उस काल से पर्याप्त पूर्व से ही, परन्तु पहले के इटैलियन साहित्य के उदाहरण आज हमें उपलब्ध नहीं। दसवीं-ग्यारहवीं सदियों के कुछ धार्मिक प्रवचन अथवा गेय छन्द जब-तब मिल जाते हैं, परन्तु उनके आधार पर उस काल के साहित्य की प्रगति को प्रकाश में लाना कठिन है।

तेरहवीं सदी के आरम्भ से ही दक्षिणी फ्रांस की साहित्यिक परंपरा का प्रभाव उत्तरी इटैलियन पर पड़ने लगा था। वस्तुतः उससे भी अधिक सिसिली के दरबारी कवियों ने उस प्रगतिशील साहित्य के प्रति अपनी चेतना प्रकट की। वहाँ फ्रैडरिक द्वितीय (१२२५-५०) के दरबार में दरबारी प्रणय और क्रूसेडों के सम्बन्ध में कविताएँ रची गईं। उन पर लटिन का प्रभाव स्पष्ट था। उत्तरी इटली की अधिकतर कविताएँ उस काल स्थानीय बोलियों में लिखी गई। विषय वही प्रणय आदि थे। तेरहवीं सदी में फ्रांस के वीर-काव्य की शैली का उत्तरी इटली में प्रादुर्भाव हुआ।

मध्य इटली में प्रायः तभी साहित्य में धार्मिक जागरण के नेतृत्व में एक साहित्यिक आन्दोलन चला। जागरण के उस आन्दोलन का नेतृत्व सेन्ट फ्रांसिस ऑफ़ असीसी ने किया। भगवान् के सिरजे सारे प्राणियों के प्रति प्रेम की धारा कविता के माध्यम से अनायास बह चली।

वास्तविक साहित्यिक-आन्दोलन तेरहवीं सदी के मध्य टसकनी में चला। यह प्रोवेन्कल के दरबारी प्रणयवाद और उत्तरी फ्रैंच रहस्यवाद की परस्पर समष्टि का परिणाम था। फ्रैंच रहस्यवाद आदर्श नारीत्व और 'मेरियोलेटरी' अर्थात् मरियम की पूजा लेकर चला था। प्रोवेन्कल का प्रणय एक नितान्त सबल भावधारा थी, जिसमें प्रणयी सर्वथा अकिंचन होकर प्रेमिका की कृपा का इच्छुक हो जाता था। प्रतीकतः वह मानव-प्रणय भगवान् के

प्रति प्रेम-प्रदर्शन था। इस शैली की कविताओं में शब्द बड़ी सावधानी से चुने जाते थे और निखरी टैकनीक में लैटिन तथा मूल प्रोवेन्कल के रहस्यवादी संकेतों का उपयोग होता था। इसकी मधुरता के कारण इस शैली का आरम्भ से ही 'डोल्से स्टिल नुओवो' (मधुर नयी शैली) नाम पड़ गया था।

टस्कनी का पहला महत्वपूर्ण कवि गुइटोने द'अरेज़्ज़ो[1] हुआ। परन्तु वह इस 'मधुर नयी शैली' का अनुयायी न था, यद्यपि उसने प्रोवेन्कल की काव्यधारा का अनुकरण किया। उस शैली का सही अनुयायी गुइडो गुइनीज़ेल्ली[2] बोलोन का रहने वाला था। भाव और शैली दोनों के सौंदर्य में वह गुइटोने तथा सिसिली की दरबारी परंपरा से बढ़ गया। सदी के अन्त में फ्लोरेन्स के अनेक तरुण कवियों ने उसका अनुकरण किया। इनमें प्रधान इटली का प्रसिद्ध कवि दांते आलीघियेरी[3] था। उसी परंपरा में गुइडो कावालकान्टी[4] डीनो फ्रेस्को-बाल्डी[5], सीनो दापिस्टोइया[6] और लोपो जियानी[7] हुए। इनमें प्रणय और धर्म की समष्टि और काव्य-शैली की प्रौढ़ता में सबसे महान् दांते हुआ।

१३वीं सदी के अन्त और १४वीं के आरम्भ में लिखी काव्यधारा उसी 'मधुर नयी शैली' से प्रभावित रही। उस काल लिरिक कविता की रचना काफी हुई, यद्यपि नीति और रूपकपरक कविताओं का भी महत्व कुछ कम न था। उसका उदय विशेषतः फ्रांस और क्लासिकल साहित्य-चेतना के प्रभाव से हुआ। दांते के गुरु ब्रूनैटो लाटिनी[8] ने अपना वृहत् विश्वकोष तो फ्रैंच गद्य में लिखा, परन्तु नीतिपरक 'इल पेसोरेत्तो' (लघु निधि) नामक कविता इटैलियन में लिखी। फ्लोरेन्स के सेर दुरान्ते नामक कवि ने 'रोमन दे ला रोज़' का इटैलियन अनुवाद 'इल फिओरे' (कुसुम, १२९०) नाम से किया। फ्रांसेस्को दा बारबेरिनो[9] ने आचार-संबंधी अनेक कविताएँ लिखीं, परन्तु दांते की कोमेडिया' (ल० १३००-२१,जो बाद में 'डिवाईन' विशेषण से युक्त हुई) इन सारी कृतियोंमें असाधारण थी। दांते का यह प्रयास सर्वथा अनूठा था, उस लोक और काल में नितान्त अनजाना। इस कृति से वह अपने समकालीनों में असाधारण ऊँचा उठ गया। उसकी 'कोमेडिया' में विश्वकोष स्वप्न, भ्रमण, और रूपक—पहले की सारी साहित्य-प्रवृत्तियों का एकत्र समावेश हुआ।

गद्य की दिशा में लोक-कथाओं और ख्यातों के अनेक संग्रह प्रस्तुत हुए। साथ ही लैटिन और फ्रैंच ग्रन्थों के अनुवाद भी हुए। इतिहासकारिता तो अपनी दार्शनिक ऊँचाई को

---

१. Guittone d'Arezzo (१२२५-९३); २. Guido Guinizelli (१२४०-७६); ३. Dante Alighieri (१२६५-१३२१); ४. Guido Cavalcanti (१२६०-१३००); ५. Dino Frescobaldi (मृ० १३१७); ६. Cino da Pistoia (१२७०-१३३६); ७. Lapo Gianni; ८. Brunetto Latini (१२३०-९५); ९. Francesco da Barberino (१२६४-१३४८)

न छू सकी, परन्तु क्रानाका (क्रॉनिकल, तवारीख, १३१०-१२) में डीनो कोम्पाग्नी[१] ने अपने व्यक्तिगत वृत्तान्त को सुन्दर कलेवर दिया। भ्रमण के क्षेत्र में मार्कोपोलो[२] का अत्यन्त सुन्दर वृत्तान्त 'विआज्जी' (यात्राएँ, १२९८) है जिसमें उसकी लोमहर्षिणी यात्राओं का वर्णन हुआ है। उसका मूल उस महान पर्यटक ने फ्रैंच भाषा में लिखाया था, जिसका रुस्तिसियानों दा पीसा ने इटैलियन में अनुवाद किया।

१४वीं सदी में साहित्य का केन्द्र फ्लोरेन्स हुआ और टस्कन भाषा इटली की अन्तः-प्रान्तीय भाषा बनी। धीरे-धीरे स्थानीय बोलियों का विकास सुन्दर साहित्यिक शैली में होने लगा। पहले उसमें लिरिक आये, फिर अन्य कविताएँ और अन्त में गद्य। इसका कारण विशेषतः आर्थिक था। १२५९ और १३४८ के बीच प्रायः ९० वर्ष फ्लोरेन्स इटली की नयी आर्थिक नीति और औद्योगिक सक्रियता का केन्द्र बना रहा। उसके उस साहित्यिक गौरव का निर्माण तीन महाकाय साहित्यकारों ने किया—दांते, पैट्रार्क[३] और बोकाचो[४]।

दांते के युग ने पुरानी 'दोल्से स्तिट नुओवो' की शैली को हटाकर यथार्थ अनुभूति पर अवलम्बित सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को उसका स्थान दिया। इस नयी शैली का प्रधान प्रवर्तक पैट्रार्क था। उसने अपने लिरिकों में अन्तर्निविष्ट दृष्टि के साथ ही बाह्य जगत् के उपमानों को भी चित्रित किया। साथ ही रूप की प्रांजलता की ओर भी उसका ध्यान गया और उसके लिरिक उस दिशा में सौंदर्य के प्रमाण बन गये। पैट्रार्क के बाद बोकाचो ने साहित्य का नेतृत्व किया।

मध्य १४वीं सदी के काव्य-रूपक विशेषतः दांते की 'कोमेडिया' से प्रभावित हुए। शुष्क विश्वकोष की परंपरा में लिखे होने पर भी फाजिओ डेग्ली उबेर्टी[५] को 'दित्तामोन्दो' और फैडेरिगो फ्रेज़्ज़ी[६] का 'क्वाड्रे-रिज़ियो' चार राज्य—(१३९४-१४०३) उस शैली की ऊँची रचनाएँ हैं। विश्वकोष काव्य की परंपरा में ही दांते के प्रबल प्रति-द्वन्द्वी फ्रांसिस्को स्टाबिली[७] की रचना 'ल' असेबि' प्रस्तुत हुई। गद्य की दिशा में उस सदी का सबसे बड़ा लेखक बोकाचो था। आज के समीक्षकों को उसका गद्य कुछ बोझिल लगता है परन्तु इटली में उसके 'देकामेरान' की बड़ी ख्याति हुई और पिछली सदियों में विभिन्न भाषाओं में निरन्तर उसके अनुवाद होते रहे। इटैलियन गद्य में उसकी वह कृति असाधारण महान् मानी जाती है। १४वीं सदी की गद्य-रचनाएँ बहुत सरल होने से आज के पाठकों को अधिकाधिक आकृष्ट करती जा रही हैं। उनकी सादगी और ताजगी रोजमर्रा

---

१. Dino Compagni (१२६०-१३२४); २. Marco Polo (१२४५-१३२४); ३. Francesco Petrarca Petrarch (१३०४-७४); ४. Giovanni Boccacio (१३१३-७५); ५. Fazio Degli Uberti (१३००-६७); ६. Federigo Frezzi (मृ० १४१६); ७. Francesco Stabili

की जबान की शक्ति लिए हुए है। यह दृष्टिकोण उन कृतियों के प्रति केवल कुछ आज का ही नहीं तब का भी है। उन्हीं दिनों उन्हीं के कारण १४वीं सदी को 'भाषा की सुन्दरतम शती' कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस दिशा में संट फ्रांसिस के कार्यों का वृतांत-संग्रह 'फियोरेत्ती दी सेन्ट फ्रांसिस्को', जो किसी अज्ञातनामा लेखक की रचना है, विशेष प्रसिद्ध हो चुका है। तब की अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ डोमेनिको कावाल्का[1], इयाकोपो पासा-वान्टी[2] और जियोवानी विल्लानी[3] की हैं। अनेक लैटिन ग्रन्थों के अनुवाद भी तभी प्रस्तुत हुए।

१४वीं सदी के मध्य (१३४८ के प्लेग के बाद) इटैलियन साहित्य का बड़ा ह्रास हुआ। इसका कारण आर्थिक स्थिति में परिवर्तन था, जिसका परिणाम, अन्य बातों के अतिरिक्त, एक यह हुआ कि आंशिक जनतांत्रिक अथवा अभिजातकुलीय नागरिक शासन के स्थान पर वहाँ उत्तर-मध्यकालीन तानाशाही की प्रतिष्ठा हुई। १४वीं सदी के उत्तरार्द्ध के लेखकों में प्रधान दो मध्यवर्गीय साहित्यिक थे, फ्रांको साकेट्टी[4] और आन्टोनियो पुसी[5]। पुसी ने अपने सॉनेटों और अन्य छन्दों में समसामयिक जीवन को अनायास प्रति-त्रिम्बित किया। रोमांटिक और ख्यातिपरक कथानक उसकी कृतियों के विषय बने। उसकी कृतियाँ 'नोइए', 'ला' रीना द' ओरियन्टे' (पूर्व की रानी), 'गिसमिरान्ते', 'सेन्टिलोकिओ' आदि थीं। गद्य के क्षेत्र में साकेट्टी और जिओवानी विशेष सचेष्ट हुए। साकेट्टी का 'नोवेल' और जिओवानी का 'इल पेकोरोने' (बुढ्ढू १३७८) जानी हुई कृतियाँ हैं। परन्तु इनसे कहीं ऊँचा गद्य सेंट कैथरीन ऑफ़ सियाना[6] का था। उसने इटैलियन भाषा में रहस्य और धार्मिक ओज से भरे कुछ अत्यन्त सुन्दर 'पत्र' लिखे।

ह्रास का काल

१५वीं सदी के आरंभ में आर्थिक निश्चिन्तता ने इटली की सांस्कृतिक चेतना में नया उत्साह भरा। रेनेसांस ने भी साहित्य के क्षेत्र में प्रभूत क्रियाशीलता उत्पन्न की, यद्यपि वह स्वयं इटैलियन भाषा के विकास में कुछ कालघातक भी सिद्ध हुआ। लोगों का उत्साह इटैलियन से हटकर ग्रीक और लैटिन की ओर खिंच गया था। परिणाम यह हुआ कि १५वीं सदी के प्रख्यात मानवतावादी अल्बर्टी[7] ने जब इटैलियन साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए सुन्दरतम कृति पर पुरस्कार की घोषणा की तब १४४० ई० में एक भी रचना विचारार्थ ऐसी न आई जिसमें किसी मात्रा की साहित्यिक शालीनता हो। पैट्रार्क के अनुकरण में कुछ

---

१. Domenico Cavalca (१२७०-१३४२); २. Iacopo Passavanti (१३००-५७); ३. Giovanni Villani (मृ० १३४८); ४. Franco Sacchetti (१३३०-१४००); ५. Antonio Pucci (१३१०-८८); ६. St. Catherine of Siena (१३४७-८०); ७. L. B. Alberti

लिरिक कवितायें लिखी गयीं, परन्तु उनके रचयिताओं में प्रतिभा की नितान्त कमी थी। हाँ, लिओनार्डो जियुस्तीनियन[1] ने निस्संदेह वेनिस के लोकगीतों के आधार पर कुछ हल्की-फुल्की लोकप्रिय कविताएँ लिखीं। १५वीं सदी के उत्तरार्द्ध में नेपल्स के लेखकों और कवियों ने टस्कन मॉडलों की अनुकृति में अपनी रचनाएँ कीं, यद्यपि स्थानीयता उन कृतियों में सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुई। मॉशियो[2] ने सालेर्नो में अपना 'नोवेलीनो' (१४७६) लिखकर भाषा के रूप और विषय की दिशा में कुछ प्रगति की। नेपल्स के कवियों में सबसे मौलिक और प्रतिभावान इयाकोपो सानाजारो[3] था।

: २ :

पुनर्जागरण-युग

(१४५०—१५५०)

१४५० से १५५० तक के १०० वर्ष रेनेसांस सम्बन्धी ज्ञान से व्याप्त रहे। क्लासिक्स के प्रति साहित्यिकों का विशेष आकर्षण हुआ। उससे ज्ञान का क्षेत्र तो निश्चय ही विस्तृत हुआ, परन्तु इटैलियन साहित्य की अपेक्षाकृत तुच्छता भी स्पष्ट हो गई। हाँ, उससे एक लाभ अवश्य हुआ कि नगण्य तथा साधारण की ओर भी लोगों की दृष्टि गई। १५वीं सदी के उत्तरार्द्ध के इटैलियन साहित्य ने मानवतावादी दार्शनिक सिद्धान्तों को जज़्ब कर लिया। फ़्लोरेंस अब भी इटली का साहित्यिक मरकज़ था और उस क्षेत्र का नेतृत्व अब लोरैन्ज़ो द' मैडिसी[4] के हाथ था। वहाँ न्यो-प्लैटोनिक सिद्धान्तों का विशेष प्रतिपादन हुआ। उस दिशा में क्रिस्टोफ़ोरो लैंडिनो[5] और मार्सीलिओ फ़िसिनो[6] विशेष सयत्न हुए। उन्होंने उस 'न्यो-प्लैटोनिक' दर्शन के साथ ईसाई सिद्धान्तों का भी सामंजस्य किया। लोरैंज़ो के ही दल में विख्यात् एन्जलो पोलिज़ियानो[7] भी था और साथ ही लुका पुल्सी[8] और लुइज़ी पुल्सी[9] भी। उसी परंपरा में बर्नार्डो पुल्सी[10] तथा मिरान्डोला[11] ने भी लिखा। यह दल अत्यन्त प्रतिभाशील और बहुमुखी बौद्धिक मेधा वाला था। उसकी काव्य-प्रतिभा नितान्त सरस और असाधारण थी। कम से कम नृत्य-लिरिक और प्रबन्धकाव्य में तो उनकी प्रेरणा

---

१. Leonardo Giustinian (१३८८-१४४६); २. Mauccio of Salerno; ३. Iacopo Sannazaro (१४५६-१५३०); ४. Lorenzo de' Medici (१४४९-९२); ५. Cristoforo Landino (१४२४-१५०४); ६. Marsilio Ficino (१४३३-९९); ७. Angelo Poliziano (१४४५-९४); ८. Luca Pulci (१४३१-७०); ९. Luigi Pulci (१४३२-८४); १०. Bernardo Pulci (१४३८-८८); ११. Giovanni Pico della Mirandola (१४६३-९४)

के आधार लौकिक स्रोत ही थे। उनकी चेतना निस्संदेह अभिजातवर्गीय थी, परन्तु निचले सामाजिक स्तरों पर अपने गायन का आधार रखना उन्हें बुरा न लगा।

साहस के कार्यों और रोमांटिक यूरोप संबंधी दृष्टिकोण इटली की साहित्य-परंपरा में फ्रांस से कुछ काल पहले ही आ चुका था, इसकी ओर अन्यत्र संकेत किया जा चुका है। उसी परंपरा के अनुकूल लौकिक आधार पर खड़े होकर लुइगी पुल्सी (१४३२-८४) ने अपना प्रबन्धकाव्य 'मोरगान्टे माजिओरे' रचा। पुल्सी का यह वीर-काव्य लोक-परंपरा का ही रूमानी शौर्य के माध्यम से विकास करता है। उसमें हास्य और विनोद की भी पर्याप्त मात्रा है। पुल्सी लोकगायकों के प्रहसनों का अनुकरण कर अपनी रचना में स्थान-स्थान पर व्यंग्य और हास्य के स्थल उत्पन्न कर देता है। मैटियो मेरिया बोइआर्डो[1] का काव्य 'ओरलैन्डो इन्नामोरेटो' (प्रणयी रौलेंड) भी उसी परंपरा में है, यद्यपि उसकी टैकनीक पुल्सी की शैली से सर्वथा भिन्न है। साहित्य में एक दूसरी देशी शैली का प्रयोग फ़िओ बेल्कारी,[2] लोरैन्ज़ो, आदि ने किया। ये अपना विषय आरम्भ में ईसा के जीवन-मात्र से चुनते थे। फिर धीरे-धीरे अपने चयन का क्षेत्र और व्यापक बना इन्होंने पूरी बाइबिल से भी कथानक चुनना प्रारम्भ किया। पोलीजियानों ने तो अपने 'ओर्फ़िओ' (१४८०) के लिए प्लॉट सर्वथा लौकिक चुना।

दो धाराएँ

१५वीं सदी के अन्त में इटली की राजनीतिक और सामाजिक दशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, जिससे स्वयं इटैलियन साहित्य वंचित न रह सका। फ्रैंच आक्रमण ने जिस युद्ध का इटली में सूत्रपात किया वह स्पेन और आस्ट्रिया के प्रादुर्भाव से और भी मारक सिद्ध हुआ। १४९४ से १५५९ तक युद्धों की परंपरा किसी न किसी रूप में बनी रही और विदेशी सत्ता ने देश के आर्थिक जीवन को पंगु कर सामाजिक समस्याओं की एक परंपरा उपस्थित कर दी। अभिजात-कुलीय लेखकों का सम्पर्क निम्नवर्गीय स्तरों से सर्वथा टूट गया और दरबारों का जीवन घोर सिद्धान्तवादी वातावरण में कुण्ठित होने लगा। कला की टैकनीक सिद्धांन्त रूप में दर्शन की गंभीरता को पहुँच गई। परिणाम यह हुआ कि मानव अनुभूति की यथार्थवादी प्रेरणाएँ अब रचनाओं का आधार न बन सकीं। १६वीं सदी का दरबारी जीवन नितान्त कृत्रिम हो गया यद्यपि कुछ साहित्यकारों ने दरबारी होते हुए भी जनता की दिशा से अपना मुख सर्वथा न मोड़ा। इसी कारण इटैलियन साहित्य में अब दो धाराओं का प्रारम्भ हुआ, एक विचक्षण बौद्धिक अभिजात-कुलीय और दूसरी लौकिक परंपरा की वाहिका। यह दूसरी निश्चय ही पहली की सत्ता से मुक्त न थी। उस पर उसका रोब ग़ालिब था और ग़ालिब रहा। फिर भी दूसरी परंपरा के साहित्यिक

---

१. Matteo Maria Boiardo (१४४०-९४); २. Feo Belcari (१४१०-८०)

जन-बोलियों से अपनी प्रेरणा लेते हुए उनके माध्यम से अपना कृतीत्व सार्थक करते रहे। १६वीं सदी के मानवतावाद के आन्दोलन की पृष्ठभूमि यही थी। लैटिन साहित्य के मॉडल इटैलियन साहित्य में भी रखे जाने लगे और साहित्य को शुद्ध करने की प्रवृत्ति में भाषा और शैली के क्षेत्र में एक अत्यन्त संकीर्ण मनोवृत्ति का आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन के नेताओं में प्रधान पिएट्रो बैम्बो[1] था, जिसने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव के साथ ही लिरिक काव्य और अन्य क्षेत्रों में अपनी रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत कर उस शुद्ध-शैलीवादी आन्दोलन को शक्ति और संकीर्णता प्रदान की। सरल और अनायास साहित्य-रचना पर यह बुद्धिवाद का फौलादी शिकंजा था।

भाषा

बैम्बो के शुद्ध-शैलीवाद ने जव १४वीं सदी की टस्कन भाषा-परंपरा के अनुकरण पर जोर दिया तो भाषा के प्रश्न पर एक विवाद उठ खड़ा हुआ क्योंकि इधर जो दरबारों के प्रोत्साहन से एक नयी भाषा-शैली का उदय हो गया था, उससे बैम्बो के आन्दोलन में संघर्ष अनिवार्य हो गया। उस काल जो भाषा-संबंधी समस्या सामने आई उसको इटली के साहित्यिक 'क्वेस्टिओने डेला लिंगुआ' (भाषा का प्रश्न) कहते थे भाषा-संबंधी वह विवाद प्राय: ३०० वर्ष तक चलता रहा। उसने स्टैन्डर्ड इटैलियन की सारी समस्याओं और प्रश्नों को खोलकर रख दिया। प्रधान समस्याएँ दो थीं—(१) साहित्य की भाषा प्राचीन (१४वीं सदी की) अथवा समसामयिक हो? (२) वह भाषा टस्कन हो, अथवा टस्कन से भिन्न हो? १६वीं सदी में एक और उदार विचार ने समसामयिक और प्राचीन दृष्टिकोणों के औचित्य को तो स्वीकार किया ही, स्टैन्डर्ड इटैलियन का मूल आधार भी टस्कन को माना। इस उदार-भाषा-सिद्धान्त के प्रवर्तकों में प्रधान प्रसिद्ध राजनीति-दार्शनिक निकोलो मेकिया-वेली[2] था। भाषा-संबंधी इस विवाद में अनेक मेधावी चिन्तकों और साहित्यिकों ने भाग लिया। परिणाम स्वरूप पर्याप्त साहित्य इटैलियन में भाषा के रूप के सम्बन्ध में ही प्रस्तुत हो गया। जिस दिशा में पिएट्रो बैम्बो के शुद्ध शैलीवाद की विजय हुई वह लिरिक काव्य था। उसके अनेक अनुयायियों ने पैट्रार्क के अनुकरण में नितान्त प्रांजल भाषा में लिरिक लिखे यद्यपि उनमें मूल अथवा विषय संबंधी ऊँचाई तनिक न थी। इस प्रकार के लिरिककारों के कुछ नाम यह हैं—फ्रांसिस्को मेरिया मोल्ज़ा[3], एंजलो दि कोंस्टान्ज़ा[4], फ्रांसिस्को कोपेटा दे बेकूटी[5], बेरार्डिनो रोटा[6], लइज़ी टान्सिलो[7], गालेज़ो दि टार्सीआ[8] और कवियित्रियाँ—

१. Pietro Bembo; २. Niccolo Machiavelli; ३. Francesco Maria Molza (१४८९-१५४४); ४. Angelo di Constanza (१५०७-९१); ५. Francesco Coppetta dei Beccuti (१५०९-५३); ६. Berardino Rota (१५०९-७५); ७. Luigi Tansillo (१५१०-६८); ८. Galezzo di Tarsia (१५२०-५३)

वेरोनिका गाम्बारा[१] तथा विट्टोरिया कोलोना[२]। परन्तु १६वीं सदी के वास्तविक प्रधान लिरिक कवि थे माइकेलैंजलो बुओनारोटी[३] और वेनिस की प्रसिद्ध वारांगना गास्पारा स्टैम्पा (ल० १५२३-५४)। इनमें पहले ने अपनी कृतियों में न्यो-प्लैटोनिक सिद्धान्तों का पोषण किया और विट्टोरिया कोलोना के प्रति अपने प्रणय के उद्‌गार मुखरित किये और दूसरी के लिरिकों में काउण्ट कोलालटिनों दि कोलाल्टो के प्रति प्रेम का उद्‌गीरण हुआ।

इतिहास

कहना न होगा कि शुद्ध-शैलीवादी दृष्टिकोण की रचनाएँ भार-बोझिल और कृत्रिम हुईं, क्योंकि उनमें प्रायः प्राचीनों की नकल करने की प्रवृत्ति विशेष आदर पाती थी। इसी परंपरा में बैम्बो ने 'हिस्टोरिया वेनेटा' (वेनिस का इतिहास), जिआम्बु-लारी[४] ने 'स्टोरिया डेल योरपे' (यूरोप का इतिहास) एंज्लो दि कोस्टान्ज़ा ने 'इस्टोरिया डेल रेज़्नो दि नापोली' (नेपल्स के राज्य का इतिहास) आदि लिखे। मेकियावेली की ऐतिसाहिक और राजनीतिक कृतियों में भी क्लासिकल अनुसरण हुआ है परन्तु लेखक की वैयक्तिक शैली और दृष्टिकोण उनमें अनुकरण की प्रवृत्ति के ऊपर उठ गये हैं। यही वक्तव्य फ्रांसेस्को गुइसियाडिनी[५] की रचनाओं 'रिकार्डो पोलिटिसी ए सिविली' राजनीतिक और नागरिक संस्मरण (१५२७-३०) और स्टोरिया द' इटालिया' (१५३७-४०) के संबंध में भी उपयुक्त है।

जीवन-चरित्र

१६वीं सदी में अनेक जीवन-चरित भी लिखे गये, जिनमें सबसे महत्व का ज्यौर्जियो वासारी[६] का चित्रकारों, मूर्तिकारों और वास्तुकारों के चरित (१५४३-५१) है। बेंवेनूटो सेलेनी[७] की 'वीटा' (आत्मकथा) १६वीं सदी के गद्य की एक सुघड़ कृति है। उसमें जीवन की ताज़गी शैली के चातुर्य से सर्वत्र लक्षित होती है। भाषा और शैली का सौंदर्य विशेषतः जेली[८] की कृतियों—'आई० काप्रिसी डेल बोटाइओ' और 'सिर्स'—में भरपूर है। जेली फ्लोरेंस का प्रसिद्ध कलावन्त था।

उपन्यास

१६वीं सदी के उपन्यास अधिकतर बोकाचो की परंपरा और शैली में लिखे गये।

---

१. Veronica Gambara (१४८५-१५५०); २. Vittoria Colonna (१४९२-१५४७); ३. Michaelangelo Buonarroti (१४७५-१५६४); ४. Giambullari; ५. Francesco Guicciadini ; ६. Georgio Vasari (१५११-७४); ७. Benvenuto Cellini (१५००-७१); ८. G. B. Gelli (१४९८-१५६३)

उनका एक संग्रह मैटियो बांडेलो[1] ने प्रस्तुत किया। इन उपन्यासों के कथानक नितान्त यौन हैं, अनेकार्थ में घिनौने भी, परन्तु निस्संदेह वे १६वीं सदी की इटली के अभिजात-कुलीय समाज और दरबारों का रहन-सहन, आचार-आदर्श प्रकट करते हैं। आन्टन फ्रांसिस्को ग्राज़िनी[2] (इललास्का) ने अपनी कृति 'सेने' (१५४०-४७) में फ्लोरेंस के छिछले जीवन का एक चित्र खींचा। वह स्वयं सुन्दर व्यंग्यकार और कॉमेडियों का लेखक था। इनके अतिरिक्त कुछ और भी उपन्यास लिखे गये जो शैली और मौलिकता दोनों दृष्टि से नगण्य थे। बोकाचो की परंपरा से भिन्न कुछ स्वतन्त्र उपन्यास भी तब लिखे गये; उनमें लुइज़ी दा पोर्टो[3] का 'रोमियो ए जूलिएटा' शेक्सपियर के 'रोमियो और जूलियट' के आधार पर बना। मेकियावेली ने भी इस प्रकार का एक स्वतंत्र उपन्यास—'नोवेला दि बैल्फ़ागोर आर्सिडियावोलो'—लिखा। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, १६वीं सदी के उपन्यास सर्वथा दुराचरण और यौन-दृश्यों से भरे थे। जिन थोड़े उपन्यासकारों ने उस प्रवृत्ति से विद्रोह कर लिखने का प्रयत्न किया, उनके उपन्यास अरोचक सिद्ध हुए। इन उपन्यासकारों में प्रधान सेबास्टिआनो एरिज़ो[4] था।

नाटक

१६वीं सदी की नाटक रचना में ट्रैजेडी और कॉमेडी का पुनरावर्तन हुआ। अरिस्ट्रॉटल की 'पोएटिक्स' और होरेस की 'आर्स पोएटिका' उस दिशा में पथ-प्रदर्शक बनीं। इसी प्रकार क्लासिकल दृष्टिकोण के अनुसार नाटक संबंधी काल, स्थानादि की एकाइयाँ भी स्वीकार कर लीं गईं। उस काल की ट्रैजेडी रचनाओं में विशेष गणना ट्रिसीनो[5] की 'सोफ़ोनिस्बा' (१५१५), जिओवानी रुसेलाई[6] की 'रोज़मुन्डा', 'ज़िराल्डी[7] के 'ओरबेके (१५४१), स्पेरोनी[8] के 'कानास' (१५४२) और पिएट्रो आरेटीनो[9] की 'ओराज़िया' (१५४६) की है यह रचनाएँ अपनी बोझिल शैली और बर्बर भाव निदर्शन चरित्र-विश्लेषण की कमी के अतिरिक्त भी १६वीं सदी के तत्संबंधी साहित्य में सारे यूरोप के अनुसरण के लिए मॉडल बन गईं। कॉमेडी रचनाएँ भी साधारणतः क्लासिकल मॉडलों पर ही अव-लंबित हुईं। कथानक तथा शैली की दृष्टि से तो ये ट्रैजेडी कृतियों से कहीं अधिक समसाम-यिक जीवन के निकट थीं। इन्होंने उनकी तरह क्लासिकल अनुसरण के उत्साह में मौलिकता और आविष्कार का गला न घोंटा। कॉमेडी के क्षेत्र में दो कृतियाँ उस काल बड़ी प्रसिद्ध हुईं, एक तो मेकियावेली की 'मान्ड्रागोला' (ल० १५१३), दूसरी जिओरडानो

१. Matteo Bandello (१४८५-१५६१); २. Anton Francesco Grazzini (१५०३-८४); ३. Luigi da Porto (१४८६-१५१९); ४. Sebastiano Erizzo; ५. Trissino; ६. Giovanni Recellai (१४७५-१५२५); ७. Giraldi; ८. Speroni; ९. Pietro Aretino (१४९२-१५६६)

ब्रूनो[1] की 'इल कान्डेलाइओ' (१५८०)। दोनों अश्लील दुराचरण और यौन-दृश्यों के वर्णन में अपना सानी नहीं रखतीं। उनके अतिरिक्त अनेक और भी कॉमेडियाँ लिखी गईं जो तत्कालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करती हैं। स्थानाभाव के कारण हम उनका यहाँ उल्लेख नहीं करेंगे।

जिन नाट्यकृतियों ने क्लासिकल ड्रामा को अपना आदर्श न माना अथवा उनका अनुसरण करने की मात्रा पर संयम रखा, उनमें निस्संदेह मौलिकता तथा आविष्कार की स्वतन्त्रता व्यक्त हुई। यह कृतियाँ अधिकतर पशुचारण संबंधी हैं। इनमें प्रधान टोर्कुआटो टैस्सो[2] और ग्वारिनी[3] ने प्रस्तुत कीं। पहली का नाम 'आमिन्टा' (१५७३) और दूसरी का 'पास्टोर फीडो' (१५८०-९०) है। १६वीं सदी के फार्स अधिकतर रोमनकाल के ही अवशेष थे जो साधारणत: 'बोलियों' में प्रस्तुत होते थे। इन लोकप्रिय नाटकों अथवा भणैती प्रधान फार्सों को खेलने के लिए निम्न वर्ग के लोग अपने क्लब बना लेते थे। यही प्रारंभिक अभिनेता उत्तर काल के अभिनेताओं के पूर्वगामी थे। अभिनेताओं की पहली कम्पनी ने १५६७ में मान्टुआ में अपना रंग-मंच खड़ा किया। अगली सदी का नाट्य आन्दोलन अधिकतर इन्हीं की क्रियाशीलता का परिणाम था।

प्रबंध-काव्य

प्रबन्ध-काव्य की दिशा में बोइयार्डो के 'ओरलैन्डो इनामोराटो' ने उस परंपरा का आरम्भ किया जिसका प्रख्यात अनुयायी व्यंग्य कवि फ्रांसिस्को बर्नी[4] था। उस परंपरा के वाहकों में लोडोविको अरिओस्टो[5] ने अपने 'ओरलान्डो फूरियोसो' द्वारा चिरकालिक यश कमाया। उसकी इस कृति की इतनी ख्याति हुई कि अगली दो सदियों में बराबर उसके अनुकरण होते रहे। इस शैली की १६वीं सदी की रचनाओं में प्रसिद्ध अलामन्नी[6] का 'जिरोने कोर्टेज़े' और 'बर्नार्डो टैस्सो[7] की 'आमाडिगी' (१५६०) थे। अन्य अनेक कवियों ने प्राचीन क्लासिकल-परंपरा में लम्बी कविताएँ लिखीं, जो अधिकतर नीरस थीं। उस काल रोमांटिक और क्लासिकल शैलियों के समन्वय का भी एक आन्दोलन चला, जिसका प्रधान नेता जिराल्डी था, परन्तु उसकी अपनी समन्वित कृति 'एरकोले' (हरकुलीस, १५५७) असफल रही। हाँ, टोरक्वाटो टैस्सो की 'जेरूसेलेमे लिबराटा' (जेरुसेलेम की स्वतन्त्रता) उस दिशा में सफल कृति मानी गई है। मध्यकालीन शौर्य-संबंधी रोमांटिक पैरोडी का आरंभ भी उसी काल हुआ। उस दिशा की प्रारंभिक

---

१. Giordino Bruno (१५४८-१६००); २. Torquato Tasso (१५४४-९५); ३. G. B. Guarini (१५३८-१६१२); ४. Francesco Berni (१४९८-१५३५); ५. Lodovico Ariosto (१४७४-१५३३); ६. L. Alamanni; ७. Bernardo Tasso (१४९३-१५६९)

कृतियाँ पिएट्रो आरेटीनो की 'ओरलान्टीनो' और टिओफिलो फ़ोलेंगो[1] की 'ओरलान्डीनो' (१५२६) थीं। फोलेंगो साधु था, कलम का धनी। सुधार-आन्दोलन में उसने भी परंपरागत चर्च का विरोध किया। उसने अपनी कृति 'बाल्डस' में माकारोनिक-लैटिन का प्रयोग किया, जो स्टैन्डर्ड इटैलियन और जनबोली की मिश्रित भाषा थी। उस माध्यम से उसने निम्न-मध्यवर्ग और नितान्त निचली श्रेणी के लोगों का सुन्दर चित्रण किया।

१६वीं सदी में मुद्रण-यन्त्र का प्रयोग होने लगा। उससे पाठकों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई। उसने लेखकों पर भी प्रभाव डाला और प्रेस में हर प्रकार के कार्य करने वाले, जो सांकेतिक रूप से 'पोलिग्राफ़ी' कहलाते थे, नई लेखक परंपरा के प्रवर्त्तक बने। इनमें प्रधान उल्लेखनीय 'पोलिग्राफ़ी' पिएट्रो आरेटिनो था। प्रतिभा की दृष्टि से तो वह कुछ असाधारण न था, परन्तु लिखा उसने बहुत और उसकी रचनाएँ काफी प्रभावशाली प्रमाणित हुईं। वह द्रव्य लेकर दूसरे व्यक्तियों के विरुद्ध पैनी कलम चलाता था और द्रव्य के ही बदले उनके संबंध में प्रशस्तियाँ भी लिखता था। उसके लेखों से उसे खासी आमदनी हो गई थी।

क्लासिकल पुनर्जागरण की दृष्टि से ग्रीक और लैटिन के सानिध्य के कारण इटली यूरोप के देशों में उनका सबसे पहला वारिस बना। ग्रीक और लैटिन संस्कृति पहले-पहल उसी के माध्यम से पुनः संगठित हुई। इटली की ही तदनुकूल कृतियाँ अन्य यूरोपियन साहित्यिकों की रचनाओं की प्रेरणा और मॉडल बनीं। स्वाभाविक ही उस रैनेसांस के आन्दोलन से पोप का विरोध था और उस विरोध के कारण अनेक प्रसिद्ध कलाकारों तथा रचयिताओं को स्वदेश छोड़ विदेशी दरबारों की शरण लेनी पड़ी। रेनेसांस के आन्दोलन में अग्रणी होने के कारण इन मेधावियों का सर्वत्र असाधारण स्वागत भी हुआ। लिओनार्डो दा विन्सी और अलामन्नी, उदाहरणतः, फ्रांस पहुँचे। कास्टिग्लिओने स्पेन में जा डटा। यूरोप के अनेक देशों से लोग धार्मिक (लूथर आदि) अथवा बौद्धिक (इरैस्मस आदि) कारणों से इटली पहुँचे और उनके माध्यम से इटैलियन साहित्य के ग्रन्थ उन देशों में जा पहुँचे। डू बैले ने जो फ्रेंच भाषा और साहित्य का पुनर्निर्माण आरम्भ किया था, उसके लिए उसे स्पेरोनी के 'डियालोगो डेला लिंगुआ' से सामग्री मिली। स्पेन की लिरिक काव्य-धारा को बैम्बो तथा उसके अनुयायियों के क्लासिकल दृष्टिकोण से प्रेरणा मिली। इसी प्रकार बैम्बो आदि ने फ्रांस और इंग्लैंड के कवियों को प्रेरणा दी। स्पेन के जुआन बोस्कान, गार्सिला-सोद लावेगा आदि, फ्रांस के 'प्लेइयाड' और 'लियोन के साहित्यिकों और इंग्लैंड के एलिजा-बेथ-युगीय कवियों ने बार-बार इटली की इस नव-जागृति की ओर देखा और उसके क्लासिक मॉडलों का अनुकरण किया। स्पैन्सर का 'फेयरी क्वीन' इटली की ही रोमांटिक कृतियों पर

१. Teofilo Folengo

: ३ :

सत्रहवीं-अट्ठारहवीं सदी

१७वीं सदी की ऐपिक काव्य-साधना में १६वीं सदी की परंपरा ही जाग्रत रही। अनुकरण और नीरस प्रयोग चलते रहे। आरिओस्टो और टैस्सो की कृतियों के विशेष अनुकरण हुए। फ्रान्सेस्को ब्रासियोलीनी[१] ने 'क्रोसे राकिस्टाटा' और जिरोलामा ग्राज़ियानी[२] ने 'कांकिस्टो दि ग्रानाटा' टैस्सो के ही अनुकरण में लिखे। व्यंग्य काव्यों का उदय निश्चय ही तत्कालीन मौलिक सूझ का परिणाम था, यद्यपि फोलेंगो ने उस परंपरा का भी १६वीं सदी में ही प्रारम्भ कर दिया था। उसका विकास ब्रासियोलीनी ने अपने 'शेरनो डेग्ली देई' और आलेसांड्रो टासोनी[३] ने अपनी 'सेकिया-रापिटा' (१६२२) में किया।

गद्य की दिशा में भी मारिनी दृष्टिकोण ने अपना प्रभाव डाला। जियान्फ्रांसिस्को लोरेडानो[४] की 'ला डियानी' (१६२७) और जिओवानी आम्ब्रेजियो मारिनी[५] का 'इल कालोआन्ड्रोफडेले' उसके प्रमाण हैं। बोकाचो के भी तब कुछ अनुकरण हुए, जिनमें प्रधान जिओवानी साग्रेद्रो[६] का 'ल' आरकाडिया इन ब्रेन्टा' (१६६७) था। उस काल का दूसरा उल्लेखनीय उपन्यासकार जियाम्बाटिस्टा बासीले[७] था, जिसने 'इल पेन्टामेरोने' लिखा। उसने नेपल्स की बोली में लोक-कथाओं की प्रभूत सामग्री का उपयोग किया, परन्तु उस काल सुन्दरतम गद्य का प्रयोग ललित साहित्य में नहीं, राजनीतिक आदि चिन्तनशील अथवा आलोचना-साहित्य में हुआ। गालीलियो और सार्पी का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अन्य प्रधान लेखक ट्रायानो बोकालीनी[८] और पाओलो सेग्नेरी[९] थे। इनमें पहला बड़ा निर्भीक और शक्तिशाली साहित्यिक तथा राजनीतिक आलोचक था। उसकी 'रागुआग्ली दि पारनासो' और 'पिएट्रा डेल पारागोने पोलीटिको' इस दिशा में प्रमाण हैं। बोकालीनी विशेषत: स्पेनी अत्याचारों पर अपने निर्भीक प्रहार से प्रसिद्ध हुआ। सेग्नेरी धार्मिक उपदेशक था। उसके प्रवचनों और धार्मिक कृतियों में गजब की शक्ति है। एक अज्ञातनामा लेखक ने 'फिलीपिके' नामक ग्रन्थ लिख कर स्पेनी शासकों पर गहरी चोट की। अनेक पर्यटकों के सुन्दर विवरण भी तब प्रकाशित हुए। संस्मरणों के रूप में वे विशेष प्रसिद्ध हुए।

---

१. Francesco Bracciolini (१५६०-१६४५); २. Girolama Graziani (१६०४-७५); ३. Alessandro Tassoni (१५६५-१६३५); ४. Gian Francesco Loredano (१६०७-६१); ५. Giovanni Ambrogio Marini (१५९४-१६५०); ६. Giovanni Sagredo (१६१७-८२); ७. Giam Battista Basile (१५७५-१६३२); ८. Traino Boccalini (१५५६-१६१३); ९. Paolo Segneri (१६२४-९४)

उनमें प्रधान पिएट्रो डेला वाले[1] एनरिको काटेरीनो डाविला[2] और गुइडो बेन्टिओ-ग्लिओ[3] थे।

१७वीं सदी में भी पहले की ही भाँति नाटक क्लासिकल नाटकों के अनुकरण में लिखे गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि रस का परिपाक उनमें न हो सका। कार्लो डोटोरी[4] का 'अरिस्टोडेमो' (१६५७) इसका प्रमाण है। माइकेल एन्जलो बुओनारोटी[5] का 'ला फिएरा' निश्चय ही पाँच एक्टों में फ्लोरेंस के दृश्यों का यथार्थवादी वर्णन हुआ है। स्पेनी कॉमेडी का प्रभाव भी उस सदी में धीरे-धीरे इटली के रंगमंच पर होने लगा और अनेक कृतियाँ उस प्रभाव के अनुकूल भी प्रस्तुत हुईं। जिआसिन्टो आन्ड्रिया सिकोग्नीनी[6] की 'कोन्वीटाटो दि पिएट्रा' उसी अनुकरण में लिखी गई। डॉन जुआन सम्बन्धी कथानकों का प्रारम्भ भी इटैलियन में उसी काल हुआ। उस काल की नीरस रचनाओं में एकमात्र अपवाद गुइडूबाल्डो बोनारेली[7] का 'फिली दि सीरो' है जो पशुचारण परंपरा में प्रस्तुत हुआ। सदी के अन्त में पशुचारण सम्बन्धी शैली 'मैलोड्रामा' अथवा संगीत-प्रधान 'ओप्रा' में घुलमिल गई। मैलोड्रामा का आविष्कार वस्तुतः १७वीं सदी में ही हुआ। १६वीं सदी के अन्त में ही फ्लोरेंस के संगीतकारों के एक गिरोह 'कामेराटा' ने ग्रीक ड्रामा के गायनों के कुछ प्रयोग किये थे। उस दिशा में 'डाफ्ने' (१५९९) और 'यूरीडाइस' (१६००) की रचना में कवि ओटेवियो रिनुसिनी[8] ने गीतकार इयाकोपो पेरी[9] की सहायता की, ओप्रा बड़ी शीघ्रता से लोकप्रिय हो चला। इटली में उस कला के अद्‌भुत प्रचार का श्रेय विशेषतः प्रतिभाशाली गायक क्लाउडिओ मोन्टेवेर्डी[10] को है। इटैलियन ओप्रा अपने आवश्यक परिवर्तनों के साथ १७०० ई० तक सारे यूरोप में फैल गया। १७वीं सदी की एक और रंगमंचीय शैली, जो बड़ी लोकप्रिय हुई, 'कॉमेडिया डेल आर्टे' कहलाती थी। दृश्यों की एक विशेष 'सैटिंग' की वह कॉमेडी होती थी, जिसे कम्पनियाँ खेला करती थीं। उसका प्रत्येक दृश्य अभिनेताओं की प्रत्युत्पन्न-बुद्धि पर निर्भर करता था। ये खेल भारत के गाँवों की भणैती और नकल से मिलते थे। इनका प्रदर्शन सर्वथा आचारहीन और कुरुचिपूर्ण होता था, परन्तु था यह अत्यन्त लोकप्रिय। 'ओप्रा' की ही भाँति इसका प्रचार भी यूरोप में इटली की कम्पनियों ने किया। ये कम्पनियाँ अपना ठाठ-बाट लिए यूरोप के सारे देशों में प्रायः सर्वत्र घूमा करती थीं।

---

१. Pietro Della Valle (१५८६-१६५२); २. Enrico Caterino Davila (१५७६-१६३१); ३. Guido Bentivoglio (१५७९-१६४४); ४. Carlo Dottori (१६१८-८६); ५. Michelangelo Buonarroti (१५६८-१६४०); ६. Giacinto Andrea Cicognini (१६०६-६०); ७. Guidu Baldo Bonarelli (१५६३-१६०८); ८. Ottavio Rinuccini (१५६४-१६२१); ९. Iacopo Peri (१५६१-१६३३); १०. Claudio Monteverdi (१५६७-१६४३)

लिरिक

सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मारिनी शैली का ह्रास हो चला और उत्तरकालीन लिरिक कवियों ने अपनी कुछ सीमाएँ और मर्यादाएँ बाँध लीं। आरेज़ो के फ्रांसिस्को रैडी[१] ने, जो डाक्टर, वैज्ञानिक और आरेटाइन बोली का खोजी था, बीस वर्ष में 'वैको इन टोस्काना' (बैकस टसकनी में) समाप्त किया। उसमें आपान के देवता बैकस के अमित पान का वर्णन है। उसकी शैलो सजीव है। फ्लोरेंस के विन्सेन्जो दा फिलिकाइया[२] और पाविया के आलेसांड्रो गुइडी[३] ने मारिनिज्म के बाहुल्य से तो अपनी कविता स्वतंत्र कर ली, पर वे उसे कृत्रिम अलंकार से मुक्त न रख सके। कार्लो मेरिया माज्जी[४] ने इटैलियन में सुन्दर देश-प्रेम से सनी कविताएँ और मिलानी बोली में कॉमेडी लिखी। सदी के प्रायः अन्त में (१६९०) रोम में एक अकैडेमी—आर्काडिया—की प्रतिष्ठा हुई। इसका प्रधान उद्देश्य इटैलियन कविता को आडम्बर और कुरुचि से मुक्त कर शुद्ध मर्यादा में प्रतिष्ठित करना था। इसके सदस्यों में प्रसिद्ध आलोचक जियान विन्सेन्जो ग्राविना[५] और जियोवान मेरियो क्रेसिम्बेनी[६] भी थे। इस अकैडेमी की बैठकों में भद्र नर और नारी गड़रियों (पशु-पालकों और पशु-पालिकाओं) के वेश में कविताएँ सुनाते थे। इस विधि से थियोक्रीटस, वर्जिल और सानाज़ारो की प्राचीन परंपरा का पुनर्नवीकरण हुआ। अगली सदी में तो इसकी शाखाएँ समूचे इटली में स्थापित हो गईं। मधुर लिरिकों में दैनिक जीवन प्रतिबिंबित हुआ। यद्यपि उनकी साहित्यिक ऊँचाई का दावा नहीं किया जा सकता, फिर भी जेनोआ का कवि और अकैडेमी का सदस्य कार्लो इनोसेन्ज़ो फ्रूगोनी[७] अपने सुन्दर लिरिकों के लिए विख्यात हुआ।

अकैडेमी की क्रियाशीलता का प्रभाव और क्षेत्रों पर भी पड़ा। ओप्रा की हेय दशा को सुधारने का भी प्रयत्न हुआ और कविता तथा गायन में परस्पर निकटतम सामंजस्य स्थापित करने का आयोजन हुआ। वेनिस के एक विद्वान् आलोचक आपोस्टोलो ज़ेनो[८] ने उस दिशा में कुछ अच्छे प्रयोग किये, यद्यपि उसकी कृतियों में कुछ दम न था। प्रसिद्ध ओप्रा कवि पिएट्रो मेटास्टासियो[९] ने भी भावुकता और वीर कृत्यादि के योग से नई शैली को प्रोत्साहन दिया।

---

१. Francesco Redi (१६२८-९८); २. Vincenzo da Filicaia (१६४२-१७०७); ३. Allesandro Guidi (१६५०-१७१२); ४. Carlo Maria Maggi (१६३०-९९); ५. Gian Vincenzo Gravina (१६६४-१७१८); ६. Giovan Mario Crescimbeni (१६६३-१७२८); ७. Carlo Innocenzo Frugoni (१६९२-१७६८); ८. Apostolo Zeno (१६६८-१७५०); ९. Pietro Metastasio (१६९८-१७८२)

गद्य

गद्य के क्षेत्र में सुन्दरतम कृतियाँ शुद्ध साहित्य से इतर थीं। रेडी का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। भौतिक विज्ञान के पण्डित लोरेंजो मागालोट्टी[१] ने अपने ('प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोग') में सुन्दर गद्य रचना की। विज्ञान के क्षेत्र में मार्सेलो माल्पीघी[२] और आन्टोनियो वालिस्नियेरी[३] की रचनाएँ भी प्रांजल थीं। जेसुइट पादरी डानिएलो बर्टोली[४] ने धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त नितान्त सुन्दर गद्य में साहित्य संबंधी आलोचनात्मक रचनाएँ कीं। सामग्री की खोज से सम्पन्न इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ भी अनेक हुईं। इनके प्रणेताओं में प्रधान लुडोविको आन्टोनियो मुराटोरी[५] क्रेसिम्बेनी, पिएट्रो जियानोने[६] और विको थे। मुराटोरी ने मध्यकालीन इटली के इतिहास पर असाधारण प्रकाश डाला। क्रेसिम्बेनी ने साहित्य का वृहद् इतिहास प्रस्तुत किया। जियान ने धार्मिक विश्वास के विपरीत जो वैज्ञानिक पद्धति से नेपल्स के कानून, रहन-सहन, संस्कृति आदि का निर्भीक इतिहास लिखा, उसके बदले उसे ग्यारह वर्ष स्वदेश से निर्वासित रहना पड़ा और जीवन के अन्तिम बारह वर्ष कैद भुगतनी पड़ी। विको ने उससे भी अधिक क्रान्तिकारी विचारों से इतिहास-दर्शन की व्याख्या की, परन्तु कानून का शिकंजा उसे न छू सका।

साहित्यिक विद्रोह

अट्ठारहवीं सदी के मध्य और उत्तर काल में इटली के सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी जागरण हुआ। अनेक राजनीतिक सन्धियों के कारण स्पेन का शिकंजा इटली से हट गया और इटली पर्याप्त मात्रा में स्वतंत्र हो गया। इटली का जीवन अभिजात-कुलीय यातनाओं से आक्रान्त था। साथ ही उस पर पादरियों की सत्ता का राहु भी सवार था। दोनों मरणोन्मुख होते हुए भी नागरिक और ग्राम्य-जीवन पर काफी हावी थे। अब दोनों के विरुद्ध इटली में विद्रोह की लहर उठी। फ्रांस और इंग्लैण्ड की उदारवादी साहित्यिक राजनीतिक-दार्शनिक चेतना से इस विद्रोह को बड़ी शक्ति मिली। फ्रांस की अनेक राजनीतिक-सांस्कृतिक क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों ने इटली को अपना गढ़ बनाया। फिर १७५८-७८ में प्रसिद्ध विश्वकोष के इटैलियन संस्करण ने तो उसको विशेष प्रोत्साहित किया। फ्रांसिस्को अल्गारोट्टी[७] ने विज्ञान आदि की खोजों को लोकप्रिय बनाने में बड़ी सहायता की। वह वोल्टेयर और फ्रेडरिक द्वितीय का मित्र था। वह महान् यात्री भी था और महिलाओं के लिए न्यूटनवाद सम्बन्धी उसका ग्रन्थ (१७३७) गुरुत्वाकर्षण पर

---

१. Lorenzo Magalotti (१६३७-१७१२); २. Marcello Malpighi (१६२८-९४); ३. Antonio Vallisnieri (१६६१-१७३०); ४. Daniello Bartoli (१६०८-८५); ५. Lodovico Antonio Muratori (१६७२-१७५०); ६. Pietro Giannone (१६६८-१७४३); ७. Francesco Algarotti (१७१२-६४)

एक नितान्त सरल और आशुगम्य रचना थी। निर्भीक उदार चेतना के कुछ अन्य अग्रणी नेपल्स में थे। अर्थशास्त्री आंटोनियो जेनोवेसी[1] अर्थशास्त्री, साहित्यिक और कोष-कार फर्डीनान्डो गालियानी[2] कानून के पण्डित फ्रांसिस्को मेरियो पेगानो[3] तथा गीटानो फिलांजेरी[4] के नाम उस दिशा में विख्यात हैं। मिलान में भी तब काफी ज्ञान-विज्ञान की साधना हुई। पिएट्रो वेरी[5] और सेजारे बेकारिया[6] वहाँ उस दल के सदस्य थे, जिनका पत्र 'इल काफे' (१७६४-६६) आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक सुधार का प्रबल पोषक बना। बेकारिया ने अपराध और दण्ड सम्बन्धी अपने ग्रंथ में यातना और प्राण-दण्ड का घोर विरोध किया।

साहित्यिक क्षेत्र में क्लासिक-शैली का प्रबल विरोध हुआ; वैयक्तिक चेतना का विशेष विकास हुआ। सावेरियो बेटिनेली[7] ने वर्जिल सम्बन्धी पत्र (१७५७) और अंग्रेजी पत्र (१७६६) तर्क, रुचि और स्पष्टता के नाम पर दांते और बाद के साहित्य पर प्रबल आघात किया। जिउसेपे बारेट्टी[8] ने अपने साहित्यिक पत्र 'ला फ्रूस्टा लेटेरारिया' (साहित्यिक कोड़ा—१७६३-६४) में क्लासिक परंपरा का विरोध करते हुए विदेशी साहित्यकारों तथा यथार्थ जीवन से अधिकाधिक परिचय का आन्दोलन शुरू किया। निस्सन्देह पुराण-पन्थी साहित्यिक परंपरावादियों ने इस प्रवृत्ति का सबल प्रतिवाद किया। गास्परे गोज़ी[9] ने अपने 'वेनिसियन गजट' और 'वेनिसियन ऑब्जर्वर' में प्राचीनतावाद का समर्थन किया।

सोलहवीं सदी से ही भाषा-सम्बन्धी वाद-विवाद चल रहे थे, सत्रहवीं-अट्ठारहवीं सदियों में भी वे इटली के साहित्यांगन में गूँजते रहे। अब एक और भी समस्या आ प्रस्तुत हुई—विदेशी शब्दों की। अनेक भाषाओं—विशेषतः फ्रेंच—के शब्द इटैलियन में प्रभूत मात्रा में प्रयुक्त होने लगे थे, जिनके पक्ष-विपक्ष दोनों में प्रबल प्रक्रिया हुई। मेल्कयोरे सेजारोट्टी[10] के से प्रगतिशील विचारकों ने उनके उचित मात्रा में अपनी भाषा में प्रवेश का तो स्वागत किया, परन्तु वर्तमान इटैलियन का आधार टसकन ज़बान को ही माना (सेज़ारोट्टी का—'भाषा का दर्शन'—१७८५)। उस दिशा में भी शुद्धिवादी आलोचकों ने अपने गहरे रूढ़िवादी दृष्टिकोण का विकास किया। जियान फ्रांसेस्को गालीनी नापियोने[11] ने इटैलियन भाषा के गुण और प्रयोग सम्बन्धी ग्रन्थ (१७९१) लिखे, जो इस दृष्टिकोण को विशेषतः प्रकट करते हैं।

---

१. Antonio Genovesi (१७१२-६९); २. Ferdinando Galiani (१७२८-८७); ३. Mario Pagano (१७४८-९९); ४. Gaetano Filangeri (१७५२-८८); ५. Pietro Verri (१७२८-९७); ६. Cesare Beccaria (१७३८-९४); ७. Saverio Bettinelli (१७१८-१८०८); ८. Giuseppe Baretti (१७१९-८९); ९. Gaspare Gozzi (१७१३-८६) १०. Melchiorre Cesarotti (१७३०-१८०८) ११. Gian Francesco Galeani Napione (१८वीं सदी)

शुद्ध साहित्य के सुधार में तीन लेखक विशेष प्रयत्नशील थे—कार्लो गोल्डोनी,[१] जिउसेपे पारीनी[२] और विटोरियो आल्फियेरी[३]। इनमें कोई असाधारण प्रतिभा का व्यक्ति न था, परन्तु इनकी कृतियों की आचार-चेतना और यथार्थ निरूपण निश्चय ही तब का अनजाना था। पिछले दोनों रचयिताओं की ट्रैजेडी और पहले की कॉमेडी ने तत्कालीन गिरी और निरन्तर गिरती जाती इटली की साहित्यगत सामाजिक आचार-व्यवस्था को प्रायः सँभाल लिया। उनकी यह प्रवृत्ति राजनीतिक-चेतना के अनुकूल ही थी। वरन् साहित्यिकों की आचार-शिला निरन्तर धसती जा रही थी। उसमें अपवाद केवल सुन्दर हास्यकर कविताओं और लोक-नाटकों के रचयिता कार्लो गोजी[४] तथा 'बोलने वाले पशु' के व्यंग्यकार जी० वी० कास्टी[५] थे।

काव्य

फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति से स्वतंत्रता और एकता की आशा हुई, परन्तु नैपोलियन की विजयों और स्वार्थ-नीति ने इटली को निराश कर दिया। अट्ठारहवीं सदी में उसके साहित्य पर विदेशी साहित्यों का प्रभूत प्रभाव पड़ा। उसमें अनेक अनुवाद भी प्रस्तुत हुए। बेर्टोला ने जैस्नर का अनुवाद किया, सेजारोट्टी ने ओसियन की कविताओं का और आलेसान्ड्रो वेरी[६] ने शेक्सपीयर के 'हैम्लेट' और 'ओथेलो' के। बेरी ने अपनी रोमन रातें सम्बन्धी ग्रंथ में यंग के 'नाइट थॉट्स' का अनुकरण किया। इपोलिटो पिन्डेमोन्टे[७] ने 'ओडिसी' का अनुवाद समाप्त कर टामस ग्रे की 'एलेजी' का अनुकरण अपनी अपूर्व कृति 'सेमैट्रीज' (१८०६) में किया। भग्न मनोरथ अनेक देश-प्रेमी लेखकों ने अपनी चेतना तत्कालीन कृतियों में व्यक्त की। इनमें निरन्तर बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों ने अव्यवस्था उत्पन्न कर दी। इनमें प्रधान 'ला बास्विलियाना', 'प्रोमेटियो', 'ला माशेरोनियाना' और 'इल बार्डो डेला सेल्वा नेरा' का रचयिता विन्सेन्जो मोन्टी[८] था, जिसका दृष्टिकोण सत्ता के अनुकूल कभी फ्रेंचानुगत, कभी फ्रैंच-विरोधी, और कभी आस्ट्रिया-साम्राज्यवादी हो जाता था। सम्भवतः उसकी सुन्दरतम रचना 'इलियड' का अनुवाद थी। ऊगो फोस्कोलो[९] का कवित्व निर्भीक और देश-प्रेमपरक था, यद्यपि इसी कारण उसे अनेक बलिदान करने पड़े। उसका निजी जीवन अत्यन्त संघर्षमय हो गया और उसे निर्वासित भी होना पड़ा।

जन-बोली-साहित्य इस काल पर्याप्त फूला-फला। उस क्षेत्र में अनेक समर्थ कृती

---

१. Carlo Goldoni (१७०७-९३) २. Giuseppe Parini (१७२९-९९) ३. Vittorio Alfieri (१७४९-१८०३) ४. Carlo Gozzi (१७२०-१८०६) ५. G. B. Casti (१७२४-१८०३) ६. Alessandro Verri (१७४१-१८१६) ७. Ippolito Pindemonte (१७५३-१८२८) ८. Vincenzo Monti (१७५४-१८२८) ९. Ugo Foscolo (१७७८-१८२८)

हुए। उनमें प्रधान जियोवानी मेली[1], कार्लो पोर्टा[2] और पिएट्रो बुराट्टी[3] थे। इनमें पहला सिसीलियन में लिखता था। पहले उसने अरकाडिया की परंपरा में रचनाएँ कीं, फिर वह व्यंग्यकार हो गया। उसकी रचनाएँ 'डोन किस्यिोटी' (डॉन क्विक्ज़ोट) संसार का आरम्भ सम्बन्धी ग्रंथ और लोक-जीवन का प्रतीक 'सारुडा' विख्यात हुईं। मिलान का पोर्टा सबसे महान् यथार्थवादी कवियों में है। जीवन से सीधा सम्बन्ध रखने वाली उसकी 'जियोवानिन बोंगी' (१८१८), 'दि नेमिंग ऑफ दि चैप्लेन' (१८१९) आदि कविताएँ बेजोड़ हैं। बुराटी ने वेनिस की बोली में रूमानी कविताएँ लिखीं। उनमें विशेष प्रसिद्ध 'ल' ओमो' (मानव) हुईं।

: ४ :

उन्नीसवीं सदी

उन्नीसवीं सदी में काफी नवीनता आई, यद्यपि उसका आरम्भ अट्ठारहवीं सदी के ही साहित्यिकों ने किया। वस्तुतः उनमें से अनेक साहित्यिकों के दृष्टिकोण में तेजी से बदलती राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों ने प्रभूत अन्तर डाल दिया था। उनमें से कुछ की कृतियों का उल्लेख अभी कर चुके हैं।

फ्रैंच राज्य-क्रान्ति ने जो 'प्राचीन पद्धति' का राजनीति से लोप कर दिया, तो इटली के इतिहास और विज्ञान सम्बन्धी विचारों में भी मूलभूत परिवर्तन हुए बिना न रह सका। वह काल विद्वानों की गम्भीर विपुल कृतियों से भरा है। पैडमौंट के कार्लो बोटा[4] के अनेक इतिहास-ग्रंथ तब प्रकाशित हुए। नेपल्स के दो इतिहासकारों—पिएट्रो कोलेटा[5] और विन्सेन्जो कुओको[6] ने नेपल्स के इतिहास पर अपनी कृतियों द्वारा प्रकाश डाला। कुओको ने तो 'प्लैटो इन इटली' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा।

रोमांटिक—साहित्य

नैपोलियन के पतन और विएना की कांग्रेस ने इटली को फिर आस्ट्रिया का गुलाम बना दिया और इटली में फिर आधी सदी तक स्वतन्त्रता का संघर्ष चला। नैपोलियन के युद्धों ने जो यूरोप भर में एक कुण्ठा उत्पन्न कर दी थी, उसको साहित्यिकों की प्रतिक्रिया ने रोमांटिक भावसत्ता में व्यक्त किया। रोमांटिक साहित्य-धारा यूरोप व्यापी थी। इटली को भी उसने आप्लावित किया। पलायनवाद उसकी रचनाओं में भी विशद रूप से लक्षित हुआ। यथार्थ के संसार पर नितान्त मिथ्या कल्पना-मरीचिका की छाया पड़ी। क्लासिकल मर्यादा से वेष्टित साहित्यिक रचनाओं का स्थान स्वतन्त्र साहित्यिक रचनाओं ने लिया।

---

१. Giovanni Meli (१७४०-१८१५) २. Carlo Porta (१७७५-१८२१)
३. Pietro Buratti (१७७२-१८३२) ४. Carlo Botta (१७६६-१८३७)
५. Pietro Colletta (१७७५-१८३१) ६. Vincenzo Cuoco (१७७०-१८२३)

अट्ठारहवीं सदी के सन्देहवादी बुद्धिवाद के स्थान पर मुक्त भाव-व्यंजना प्रतिष्ठित हुई। परन्तु इटली का तत्कालीन साहित्य नकारात्मक नहीं हुआ। फ्रांस, इंग्लैंड और जर्मनी में रोमांटिक कृतिकारों और जनता में एक खाई पड़ गई थी। इटली का रोमांटिक साहित्य जीवन से इतना निर्वासित न था। वस्तुतः राजनीतिक स्वतन्त्रता और देश की एकता इटली के लेखकों के उपास्य विषय बन गए, यद्यपि कुण्ठा और पलायन उनके गले भी अन्य यूरोपियन लेखकों की ही भाँति पड़े।

रोमांटिक दृष्टिकोण की पहली चुनौती १८१६ में जियोवानी बेरकेट[1] ने दी। उसने 'क्रिसोस्टोम को अर्ध गंभीर पत्र' विषयक ग्रन्थ में कला संबंधी स्वतन्त्रता और लोक-साहित्य तथा राष्ट्रीयता की प्रेरणा संबंधी रोमांटिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। बेरकेट भी अन्य समकालीन साहित्यिकों की ही भाँति राजनीतिक क्षेत्र में भी उदारवादी था। उसने अपने निर्वासन काल में ही पार्गा के शरणार्थी के संबंध में एक प्रसिद्ध कविता लिखी। इटली के रोमांटिक आन्दोलन का केन्द्र मिलान था। बेरकेट भी मिलान का ही था। उसके अतिरिक्त आलेसान्ड्रो मान्ज़ोनी[2], फेडेरिको कान्फालोनिएरी[3], जियोवानी टोर्टी[4] सिल्विओ पेलिको[5] आदि थे। पेलिको प्रसिद्ध रोमांटिक जर्नल 'इल कोन्सिलियाटोरे' का सम्पादक और अत्यन्त लोकप्रिय ट्रैजेडी 'फ्रांसिस्का दा रीमिनी' (१८१५) का रचयिता था। उसकी एक कृति—'ले' मी प्रिज्योनी'—संसार-व्यापी ख्याति प्राप्त कर चुकी है। उसमें उसने अपने अनवरत संघर्ष और यातनाओं का वर्णन किया है, जो उसे आस्ट्रियन साम्राज्यवाद के विरोध के कारण १८२० और १८३० के बीच के युगान्त कैद में भुगतनी पड़ी थी। कार्लोपोर्टा और टोमासो ग्रोसी[6] भी उसी रोमांटिक चेतना के मिलानी कवि थे।

उपन्यास

रोमांटिक साहित्यकार ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में विशेष सफल हुए। मान्ज़ोनी की 'आई प्रोमेस्सी स्पोसी, (वाग्दत्ता) उस परंपरा की पहली और उत्तम कृति है। फ्रांसिस्को डोमेनिको गुएराज्ज़ी[7] का 'ला बटेलिया दि बेनेवैन्टो' ग्रोसी का 'मार्को विस्कौन्टी' मासिमो द' अज़ेलिओ[8] का 'एटोरे फिएरामोस्का', गेराज़ी का 'ल' अस्सेडियो दि फिरैंजे (फ्लोरेंस का घेरा) सिजारेकान्टू[9] का 'मार्घेरिता पुस्टेरला' और ड'अजेलिओका

---

१. Giovanni Berchet (१७८३-१८५१); २. Alessandro Manzoni ३. Federico Confalonieri (१७८५-१८४६); ४. Giovanni Torti (१७७४-१८५२); ५. Silvio Pellico (१७८९-१८५४); ६. Tomasso Grossi (१७९१-१८५३); ७. Francesco Domenico Guerrazzi (१८०४-७३); ८. Massimo d'Azeglio (१७९८-१८६६); ९. Cesare Cantu (१८०४-९५)

'निकोलो दि'लापी' आदि उस दिशा के सुन्दर उपन्यास हैं। इन उपन्यासों ने राष्ट्रीय भावना का इटली में पर्याप्त प्रचार किया।

ड्रामा : लिरिक

रोमांटिक ड्रामा उतना सफल न हो सका, जितना रोमांटिक उपन्यास। उस क्षेत्र के कृतिकारों ने अपनी सामग्री इटली के इतिहास और टैकनीक शेक्सपीयर, गेटे, शीलर आदि से ली। रोमांटिक नाटकों में प्रधान निम्नलिखित थे—मान्जोनी के 'इल कौन्टे दि कारमाग्नोला' और 'आडेल्की' और निकोलिनी[१] के 'आन्टोनिओ फोस्कारीनी', 'जियोवानी दा प्रोसिडा,' 'लोडोविको स्फोर्जा', तथा 'आरनाल्डो दा ब्रेसिया'। लिरिक के क्षेत्र में बड़े तबके का कवि मान्जोनी हुआ। उसका उल्लेख उपन्यास तथा नाटक के संबंध में किया जा चुका है। उसके लिरिक—'इन्नी साकरी' काफी प्रसिद्ध हो गये हैं। उस काल का दूसरा महान् लिरिक-कवि जियाकोमो लियोपार्डी[२] था। वह रोमांटिक सिद्धान्तों का विरोधी था, परन्तु शक्तिम भावावेगों से भरा उसका काव्य रोमांटिक चेतना में ही अनुप्राणित हुआ।

भाषा संबंधी जो विवाद सदियों से चल रहा था, वह १९वीं सदी में भी चलता रहा और अनेक भाषाशास्त्र के आचार्यों ने उसमें अपना योग दिया। इटैलियन स्टैंडर्ड भाषा को उस विचार-विमर्ष से पर्याप्त लाभ भी हुआ। इटली की राजनीतिक एकता के भी पूर्व इस भाषा-संबंधी एकता का वहाँ प्रचार हुआ। साहित्यिक इटैलियन में टसकन बोली का प्रभुत्व साधारणतः स्थापित हो गया। स्वयं मान्जोनी का उसे पढ़ने फ़्लोरेंस जाना इस दिशा में बड़े महत्त्व का कार्य हुआ। जिन लोगों ने टसकन बोली का प्राधान्य अस्वीकार किया था, अब वे भी धीरे-धीरे उस स्थिति को अंगीकार कर चले।

काव्य

१९वीं सदी के मध्य राजनीतिक आन्दोलन की देश में व्यापक सत्ता हुई। साहित्य में भी देश के पुनर्जागरण (रिर्ज़ोगीमेन्टो) का आन्दोलन चला। जिउस्टी[३] की कविताएँ प्रधानतः राजनीतिक चेतना से ही अनुप्राणित थीं। उसकी मानवतावादी जनसत्ता के आदर्शों से भरी कविता देश-प्रेम की प्रेरणा देकर देश के लड़ाकों को जगाती रहीं। उसकी कविताओं में व्यंग्य का प्रचुर पुट था। उस काल का दूसरा महान् व्यंग्यकार जिउसेपे जियोकीनो बेली[४] था, जिसने प्रायः दो हजार सॉनेट लिखे। उसका व्यंग्य जिउस्टी से भी अपनी चुस्ती और नुकीलेपन में बढ़ गया। १९वीं सदी के रोम का भ्रष्टाचार उसने अपनी कविताओं में

---

१. G.B. Niccolini (१७८२-१८६१); २. Giacomo Leopardi (१७९८-१८३७); ३. Giuseppe Giusti (१८०९-५०); ४. Giuseppe Gio Chino (१७९१-१८६३)

खोल कर रख दिया। अन्य राष्ट्रीय कवियों में प्रधान ग्राब्रिएले रोसेट्टी[1], पिएट्रो जिआनोने[2], एन्जलो ब्रोफेरियो[3], आलेसान्ड्रो पोएरिओ[4], लुइजी मर्कान्टीनी[5] और गोफ्रेडो मामेली[6] थे। इनमें से अनेक ने कैद, निर्वासन और मृत्यु को स्वतन्त्रता के अर्थ गले लगाया।

उस काल की सैद्धान्तिक रचनाओं में अत्यन्त प्रभावशाली कृतियाँ कैथोलिक दार्शनिक विन्सेन्जो जिओबर्टी[7] की थीं। उसने पोप के तत्वावधान में व्यापक राष्ट्रीयता का स्वप्न देखा। जिओबर्टी की रचनाएँ उस विचारधारा की प्रारम्भिक प्रतीक थीं, जिनकी पराकाष्ठा फासिज़्म में हुई। सिज़ारे बाल्वो ने भी अपनी ऐतिहासिक कृतियों में आस्ट्रिया के साम्राज्यवाद का विरोध किया। तत्कालीन राजनीति की प्रेरणा से युक्त व्यापक राष्ट्रीयता-भरी रचनाएँ जिउसेपे माज़िनी[8] और मासिमो द'अज़ेलिओ की थीं। समसामयिक कार्यों का साहित्यिक प्रक्षेपण अधिकतर 'संस्मरणों' में हुआ। द'अज़ेलिओ के 'संस्मरण' उसी दिशा में प्रस्तुत हुए। उस काल का सबसे सुन्दर उपन्यास इपोलिटो निएवो[9] ने लिखा—'कोनफ़ेसीओनी दे'उन ओटूआजेन्नेरिओ' (१८५७-५८)। उपन्यास मनोवैज्ञानिक और सामाजिक था और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया गया था।

रोमान्टिक : क्लासिकल

१८६० और ७० के बीच देश का राष्ट्रीय स्वप्न जो चरितार्थ हो गया, तो साहित्य की तत्कालीन सोद्देश्यता कुछ काल के लिए पूरी हो गई। उस क्रान्तिवादी युग की साहित्य-सम्बन्धी सैद्धांतिक एकता अब अनावश्यक होने के कारण लुप्त हो गई। रोमांटिक और क्लासिकल की ओर फिर एक बार प्रत्यागमन हुआ। परन्तु हाँ, यूरोपियन साहित्य की यथार्थवादी धारा से भी इटली तब वंचित न रह सका। रोमांटिक परंपरा में ही एमीलिओ प्रागा[10] था। उसी परंपरा में जिउसेपे रोवानी[11] ने अपना ऐतिहासिक उपन्यास 'आई सैन्टो अन्नी' (सौ वर्ष) और आरिगो बोईटो[12] ने अपने सुन्दरतम ओप्रा 'मेफिस्टफेले' और 'नेरोने' (१९०१) लिखे। तब के रोमांटिक कवि आलीर्डो आलीर्डी[13], जियोवानी प्राटी[14] और जियाकोमो ज़ानेला[15] थे। १८७० के बाद के साहित्यिकों ने रोमांटिक

---

१. Gabriele Rossetti (१७८३-१८५९); २. Pietro Gianonone (१७९२-१८७२); ३. Angelo Brofferio (१८०२-६६); ४. Allessandro Poerio (१८०२-४८); ५. Luigi Mercantini (१८२१-७२); ६. Goffredo Mameli (१८२७-४९); ७. Vincenzo Gioberti (१८०१-५२); ८. Giuseppe Mazzini (१८०३-७२) ९. Ippolito Nievo (१८३२-६१); १०. Emilio Praga (१८३९-७५); ११. Giuseppe Rovani (१८२८-७४); १२. Arrigo Boito (१८४२-१९१८); १३. Aleardo Aleardi (१८१२-७८); १४. Giovanni Prati (१८१४-८४); १५. Giocomo Zanella (१८२०-८८).

परंपरा का विरोध करना शुरू किया। एक नये क्लासिकवाद की प्रेरणा ने कुछ लोगों को प्रोत्साहित किया और वे प्राचीन रोमन मॉडलों और आदर्शों से प्रभावित हुए। इनमें प्रधान जिओसुए कार्डूसी[१] था। उसने अपने मधुर काव्य में रोमन कथानकों और लैटिन छन्दों तक का प्रयोग किया। जियोवानी पास्कोली[२] प्रायः सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से मुक्त था, यद्यपि जीवन के अन्तिमकाल में वह भी कार्डूसी और उसके समानधर्मा माराडी[३], फरारी[४] आदि की चेतना से सजग हुआ।

यथार्थवाद

यथार्थवादी आंदोलन का सिद्धांतकार और प्रवर्त्तक लुइजी कापुआना[५] था, यद्यपि उसके उपन्यास नीरस तथा प्राणहीन थे। सबसे समर्थ यथार्थवादी उपन्यासकार संभवतः आल्फ़ेडो ओरियानी[६] था। उसका उपन्यास 'जैलेसी' (१८९४) उस दिशा में प्रतीक हो गया है। स्थानीय यथार्थवादी निरूपण में जिन उपन्यासकारों ने नाम कमाया, उनमें प्रधान सिसिली का जियोवानी वेरगा[७] था। उस क्षेत्र के अन्य उपन्यासकार रेनाटो फूसीनी, माटिल्डे सेराओ और ग्राजिआ डेलेडा थे। डेलेडा के सबल उपन्यास अधिकतर सार्डीनिया से सम्बन्ध रखते हैं। १९वीं सदी के अन्त का प्रधान उपन्यासकार आनटोनिओ फोगाज़ारो था, जिसकी टैकनीक बड़ी व्यापक थी और जिसने विनोदात्मक वर्णन के साथ मानव सहानुभूति को अपनी प्रेरणा बनाया। चरित्र-चित्रण में भी वह असामान्य कलाकार सिद्ध हुआ।

१९वीं सदी के ड्रामा साहित्य में रोमांटिक परंपरा का विकास पिएट्रो कोसा[८] और जिरोलामो रोवेट्टा[९] ने किया। परन्तु शीघ्र ही फ्रांस नार्वे की यथार्थवादी चेतना सामाजिक और समस्या-सम्बन्धी नाटक के रूप में इटैलियन रंगमंच पर उतरी। पाओलो फ़ेरारी[१०], जिसनेपहले लोक-कॉमेडी और ऐतिहासिक सुखान्त नाटक लिखे, बाद में अपने 'इल डुएलो' और 'टू लेडीज़' लिए उसी रंगमंच पर उतरा। ज्यूसेपे जियाकोजे[११] ने अन्त में इब्सन की परंपरा में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नाटक 'ऐज़ फॉल दि लीव्ज़' आदि लिखे। रोबर्टो ब्राको[१२] ने यथार्थवादी नाटक भी लिखे और इब्सन तथा हाउप्टमन की

---

१. Giosue Carducci (१८३५-१९०७); २. Giovanni Pascoli (१८५५-१९१२); ३. Giovanni Marradi (१८५२-१९२०); ४. Severino Ferrari (१८५६-१९०५); ५. Luigi Capuana (१८३९-१९१५); ६. Alfredo Oriani (१८५२-१९०९); ७. Giovanni Verga (१८४०-१९२२); ८. Pietro Cossa (१८३०-९१); ९. Girolamo Rovetta (१८५४-१९१०); १०. Paolo Ferrari (१८२२-८९); ११. Giuseppe Giacose (१८४७-१९०६); १२. Roberto Bracco (ज० १८६२).

भाँति मनोवैज्ञानिक नाटक भी। पिछली प्रेरणाओं में लिखा, 'इल पिकोलोसांटो' उसी का परिचायक है।

: ५ :

बीसवीं सदी

बीसवीं सदी का आरंभ गाब्रिएले दानुन्ज़िओ द्वारा प्रभावित रहा। यौन और क्रूर की घोर यथार्थवादी टैकनीक के साथ उसने नीत्शे की आपज्जनक प्रवृत्ति जोड़ी। अनेक उपन्यासकारों ने उसके नेतृत्व को मान उसके उपन्यासों का अनुकरण किया। वह फासिस्ट दर्शन की प्रेरणा की पृष्ठभूमि बन गया। जो उसके प्रभाव से वंचित रह गये, उनमें प्रधान इटालो स्वेवो[१] (साहित्य नाम—एटोरे शिमट्स), ऊगो ओजेट्टी[२] ब्रूनो सीकोग्नानी[३] जिउसेपो आन्टोनिओ बोर्जेसे[४] और फडेरिको तोज़ी[५] थे। आल्फ्रेडो पान्जीनी[६] ने अपने उपन्यासों और निबन्धों में विनोद का पर्याप्त पुट दिया।

ड्रामा के क्षेत्र में डारियो निकोडेमी[७] और सेम बेनेली[८] ने क्रमशः भावुक और ऐतिहासिक कृतियाँ प्रस्तुत कीं।

शीघ्र ही शक्तिवादी साहित्यिक सिद्धान्तों का भी इटली में आरंभ हुआ। एक नया दल इटली की शक्ति का स्वप्न देखने वाला मारिनेटी[९] की अध्यक्षता में कला और साहित्य में प्रतिष्ठित हुआ। आंदोलन के रूप में वह सिद्धान्त इटली में व्यापक हो चला। उसी परंपरा के लेखक आर्डेंगो सोफिसी[१०] आल्डो बालाज़ेशी[११] और जियोवानी पापीनी[१२] थे। इनमें अन्तिम ने इटली में बड़ी ख्याति कमाई और साहित्य में स्टूबिन्स्की तथा पिकासो के यश से विभूषित हुआ। उसकी आत्मकथा, 'उन उओमो फिसिटो' काफी प्रसिद्ध हो गयी है। प्रायः उसी काल सेर्जिओ कोराज़ीनी[१३] तथा गुइडो गोजानो के नेतृत्व में क्रेपूस्कोलारी (गोधूली के कवि) अथवा 'इन्टीमिस्टी' नामक आन्दोलन शुरू हुआ। उसमें कल्पना और व्यंग्य विशेष चरितार्थ हुए। साधारण से साधारण स्थिति को लेकर उसे वैयक्तिक

---

१. Italo Svevo (१८६१-१९२८); २. Ugo Ojetti (ज० १८७१); ३. Bruno Cicognani (ज० १८७९); ४. Giuseppe Antonio Borgese (ज० १८८२) ५. Fredrico Tozzi (१८८३-१९२०); ६. Alfredo Panzini (१८६३-१९३९); ७. Dario Niccodemi (१८७७-१९३४); ८. Sem Benelli (ज० १८७७); ९. F. T. Marinetti (ज० १८८१); १०. Ardengo Soffici (ज० १८७९); ११. Aldo Balazzeschi (ज० १८८५); १२. Giovanni Papini (ज० १८८१); १३. Sergio Corazzini (१८८७-१९०७)

विशेषता से अनोखा बना देना, उसकी शैली का मूर्त्त रूप हुआ। उसमें विनोद और व्यंग्य को विशेष प्रश्रय मिला। उसी परंपरा में लुइजी कियारेली[1] ने अपना 'ला मास्केरा इ इल बिसो' (नकाब और चेहरा) (१९१६) और रोसो दि सान सेकोन्डो[2] ने 'मारिओनेत के पैशियाने' प्रस्तुत किया। पहला नाटक कॉमेडी था, दूसरा ट्रैजेडी। लुइजी पिरान्डेलो[3] ने व्यक्तित्व और वैयक्तिकता का विशेष दार्शनिक प्रतिनिधि अपने उपन्यासों और नाटकों में डाला।

१९२२ के फासिस्ट आंदोलन ने दो परस्पर विरोधी साहित्यिक भावधाराओं का सृजन किया। एक तो उसके अनुकूल था और दूसरा उसके प्रतिकूल। पहले ने मुसोलिनी, बाल्बो आदि के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक साहित्य रचा, यद्यपि उसमें साहित्यिक गुरुता न आ सकी। उस दृष्टिकोण के आदर्शवादियों में संभवतः आल्बर्टो मोराविया[4] ही केवल अपवाद था। फासिज्म के विरोध में भी सबल साहित्य रचा गया। ट्रिलूसा[5] की कविताएँ उस दिशा में विशेष प्रसिद्ध हुईं। फासिज़्म विरोधी निर्वासितों में सबसे महान् उपन्यासकार इग्नाजिओ सिलोने[6] है। उसका उपनाम 'सेकोन्डो ट्रांक्वीली' है। उसके दो उपन्यास—'फोन्टामारा' (१९३३) और 'पेने इ विनो' (रोटी और शराब) (१९३७)—विशेष प्रसिद्ध हैं। 'फोन्टामारा' का एकाध भारतीय भाषा में अनुवाद भी हो गया है। द्वितीय महासमर के बाद की साहित्यिक चेतना शांति और संघर्ष की है, जिसम नए हाथों द्वारा सर्वहारा सहानुभूति में पगा साहित्य निरन्तर प्रस्तुत होता जा रहा है।

---

१. Luigi Chiarelli (ज० १८८६); २. R. M. Rosso di Sen Secondo (ज० १८८७); ३. Luigi Pirandello; ४. Alberto Pincherle (Moravia) (ज० १९०७); ५. Carlo Alberto Sallustri, (Trilussa) (ज० १८७३); ६. Ignazio Silone (Secondo Tranquilli) (ज० १९००)

५. इब्रानी (हिब्रू) साहित्य

: १ :

आरम्भ

इब्रानी, अथवा जिसे यूरोपियन 'हिब्रू' कहते हैं, आज केवल यहूदियों की भाषा रह गई है, परन्तु ई० पू० दसवीं-नवीं सदियों के अभिलेखों से पता चलता है कि पहले उसे मध्य-पूर्व की अनेक सैमेटिक जातियाँ बोलती थीं।

इब्रानी साहित्य का आरंभ भी अन्य प्राचीन साहित्यों की ही भाँति पहले पद्यात्मक था, फिर गद्य लिखा गया और उन्हीं की भाँति जो कुछ रचा गया, वह लिखा न जा सका, वरन् मौखिक रूप से ही पिता-पुत्र और गुरु-शिष्य की परंपरा से सांस्कृतिक अथवा धार्मिक दाय के रूप में उत्तरोत्तर प्रवाहित होता रहा। उस प्राचीन काल की अनेक कृतियों के संकेत और उद्धरण 'बाइबिल' के 'ओल्ड टैस्टेमैण्ट' में मिलते हैं। उन प्रारंभिक रचनाओं में ग़ज़ब की ताज़गी है। ये रचनाएँ अधिकतर युद्ध, सृष्टि अथवा जल-सम्बन्धी हैं। उस दुनिया में पानी का बड़ा अभाव था, जिससे कुएँ, नहर आदि द्वारा उसका प्रादुर्भाव बड़े महत्त्व का माना जाता था।

बाइबिल में जो सर्प और ज्ञान-फल, कैन, एबल, नूह की नौका, बाबुल की मीनार, आइज़ेक का बलिदान, लाल सागर का संतरण आदि की कथाएँ दी हुई हैं, वस्तुतः वे उसी प्राचीन इब्रानी लोक-साहित्य के उदाहरण हैं। प्रभु की युद्ध-गाथा वाले डेबोराह के गीत तो अपनी सादगी, ताज़गी, भावुकता, और शब्द-शालीनता में प्राचीन साहित्य में असाधारण हैं।

बाइबिल का 'पैन्टाट्यूक' (पाँच पोथियों का भाग) इब्रानी साहित्य का प्राचीनतम अंग माना जाता है। इनको हज़रत मोज़िज़ (मूसा) की रचना बताया जाता है। सम्भव है इसका अधिकतर भाग उसी आधार से उठा हो, परन्तु निःसंदेह इसके कुछ भाग औरों ने भी रचे।

सम्भवतः ४४० ई० पू० में एज़रा और नेहेमिया आदि ने 'पैन्टाट्यूक' की पाँच पोथियों की संहिता बनाई और उन्हें लिख डाला। मूसा का काल सोलहवीं सदी ई० पू० के आस-पास माना जाता है। उनके और अन्य नबियों के कलाम इन पोथियों में संग्रहीत हैं। नबियों ने यहूदी कुलों को अपने निर्भीक उपदेशों से शक्तिमान् बनाने का प्रयत्न किया

उनके कबीलों को उन्होंने एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया। इन नबियों की आवाज़ बुलंद और जोशीली है, जिनका असर सुनने वालों पर तत्काल पड़ता होगा। उन्होंने पहले-पहल मनुष्य की जन्मजात स्वतन्त्रता, सार्वभौम शांति और शुद्ध न्याय के नारे बुलंद किये, पहली बार मनुष्य को अनेक देवताओं की गुलामी से आजाद कर एक खुदा की आराधना की बुनियाद डाली। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी आवाज़ उनके जनों में गूँजती रही जो बाद में 'पैन्टाट्यूक' में एकत्र कर ली गई। यही पैन्टाट्यूक यहूदियों का शास्त्र, शासन अथवा कानून बना। मूसा का शासन संसार की दूसरी नियम-परंपरा है, पहली परंपरा बाबुली सम्राट हम्मुराबी की है, जो ईसा से प्रायः दो हजार वर्ष पहले उद्घोषित हुई। यही मूसा आदि के नियम-उपदेशों से भरा पैन्टाट्यूक बाइबिल का आधार बना और बाइबिल में उस काल के गीत, कहावतें, नैतिक कहानियाँ, पहेलियाँ, सभी कुछ संग्रहीत हुआ। नबियों की भाषा सरल थी, उनका जोर विचारों पर था, क्रान्तिकारी विचारों पर; साहित्य की दृष्टि से भी उनकी उपमाओं में शक्ति थी।

तुम्हारे पाप लाल हैं तो क्या हुआ वे निःसन्देह हिमश्वेत हो उठेंगे,
वे कितने भी रक्तिम हों, वे ऊन के समान सफेद होकर रहेंगे।

इसाइयाह १, १८।

ई० पू० ११०० के लगभग इब्रानियों का कनानियों और फिलिस्तीनों से संघर्ष हुआ; जिससे उनकी संस्कृति को आघात पहुँचा। हज़रत एलिज़ाह और उसके शिष्य एलिशा ने तत्काल ललकारा—तुम इस्राइल के प्रभु 'यहोवा' को छोड़ मूर्त्तियों के उपासक हो चले! अपनी आचार-पद्धति की रक्षा के लिए वे अपनी जनता को धिक्कार उठे। इसके कुछ ही काल बाद, ८५० ई० पू० के लगभग जजों और सैमुएल प्रथम तथा द्वितीय और पैन्टाट्यूक के कुछ भाग प्रस्तुत हुए। डैविड के गान (सांग्ज़) अपने लिरिक सौन्दर्य, सुकुमारता और भावों की शालीनता में अनुपम माने जाते हैं। उनका रचनाकाल वस्तुतः नौ सौ वर्षों का काल-प्रसार है, जिसमें अनेक रचयिताओं ने भाग लिया। इनमें से कुछ नबियों द्वारा 'बेबीलोनिया की कैद' (छठी सदी ई० पू०) में रचे गये।

'सांग्ज़ ऑफ़ सांग्ज़' ग्रीक-काल (दूसरी सदी ईस्वी के लगभग) में रचे गये। ये विवाह-सम्बन्धी गीत हैं और इन पर ग्रीक-श्रृंगारिकता का प्रभाव स्पष्ट है।

ईसा पूर्व आठवीं सदी का बाइबिल-साहित्य साहित्यिक दृष्टिकोण से भी महत्त्व का है। ओजस्विनी भाव-श्रृंखला के अनुरूप ही वाणी सशक्त हो पुकार उठी, वाक्यावली परागयुक्त पुष्पित हुई। पद क्या थे, फौलादी चोट थे। शब्द-योजना सुनने वालों पर हथौड़े की शक्ति-सी टूटी। वाचालता कम्पित, कठोर, करुण, शालीन प्रसंगानुकूल होती गई।

यह आमोस[1], होसिया[2] और इसाइयाह[3] का रचनाकाल था। होसिया का-सा करुण शब्द-विन्यास तो साहित्य में खोजे न मिलेगा।

सातवीं सदी ई० पू० के उत्तरार्द्ध में ज़ेफानियाह[4] नाहूम[5] और हबक्कुक[6] ने अपनी वाणी दी और उसके बाद ही जेरेमियाह[7] ने। छठी सदी ई० पू० का आरम्भ इस्राइलियों के ह्रास का युग था। उनके नेताओं को धिक्कारती जेरेमियाह की आवाज़ दिगन्त में गूँज उठी। उसने इस्राइलियों के राजा जोसिया और उसके सलाहकारों को पुकार-पुकार धिक्कारा, जिससे उसे उनके अत्याचार का लक्ष्य बनना पड़ा। जीवन के अनेक वर्ष उसे कारागृह में व्यतीत करने पड़े। उसके सामने ही जेरूसेलेम के मन्दिर और नगर का विध्वंस हुआ और स्वयं उसे पकड़कर मिस्र ले जाया गया। बाइबिल का 'लेमैन्टेशन' अंश उसी का रचा बताया जाता है, परन्तु अधिक प्रमाण इस निष्कर्ष के पक्ष में मिलते हैं कि पेशेवर मरसिया रचने वालों ने उन्हें बेबीलोनिया की (६०० ई० पू०) या ईरानी (४०० ई० पू०) क़ैद के समय रचा।

बेबीलोनिया की कैद का नबी इज़ेकील[8] आवाज़ की बुलंदी में इतना महान् न था, जितना साहित्यिक कल्पना और वर्णन-शक्ति में। उसके कुछ ही काल बाद प्रायः ५०० ई० पू० गड़रिया-जीवन की सुन्दर कविता 'रूथ' रची गई। भावावेगों से अनुप्राणित दार्शनिक कविता 'जॉब' उससे प्रायः सौ वर्ष बाद की है। प्रायः साठ वर्ष बाद वह रोमांचक कहानी 'एस्थर' प्रस्तुत हुई, जिसमें राजा का पक्ष रानी के प्रति निवेदित हुआ और रानी का अपनी पीड़ित प्रजा के प्रति। यदि यह कहानी, जैसा कुछ विद्वानों का मत है, आस्टियोकस एपिफ़ानिज़ द्वारा यहूदियों पर अत्याचार का रूपक है, तो इसकी रचना १६५ ई० पू० से पहले नहीं मानी जा सकती। पहली सदी ईस्वी के लगभग राब्बीस ने बाइबिल की संहिता प्रस्तुत की।

बाइबिल के 'ओल्ड टैस्टेमैण्ट' के अतिरिक्त यहूदियों की एक और प्राचीन धर्म-पुस्तक 'ताल्मुद' है। इसमें बाइबिल और उसके पैगम्बरों से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ, गीत और इलहामी और गैर-इल्हामी प्रसंग हैं। इनको सम्भवतः इतना पवित्र नहीं समझा गया, जितना बाइबिल के ज्ञान को। इससे ये पृथक् एकत्र किए गए। ताल्मुद के अनेक अंश यहूदी प्रच्छन्न या बाह्य (बाइबिल से बाहर) नाम से जानते थे। इनका एक ग्रीक अनुवाद सिकंदरिया के यहूदियों के लिए प्रायः २०० ई० पू० 'आपोक्रिफल' नाम से हुआ, जो काएरो

---

१. Amos (७६० ई० पू०); २. Hosea (७५० ई० पू०); ३. Isaiah (७०० ई० पू०); ४. Zephaniah (६३५ ई० पू०); ५. Nahum(६२५ ई० पू०); ६. Habakkuk (६२० ई० पू०); ७. Jeremiah (६२८-५८५ ई० पू०); ८. Ezekiel (६०० ई० पू०)

में १८९७ में मिला। इस ग्रंथ में अनेक स्थल बाद के जोड़े हुए हैं, जो ३०० ई० पू० और १२० ई० के बीच रचे गए। ताल्मुद का मूल इब्रानी में था। इसके अनेक प्रसंग धार्मिक विश्वासों के विकास और पौराणिक कल्पना के अनुपम प्रतीक हैं। 'एनोक' की पोथी में स्वर्ग-नरक का विशद चित्रण है। उस का इटैलियन महाकवि दांते पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'दि विज़न ऑफ़ बारूक' में नदियों और बाढ़ों तथा सात स्वर्गों की कल्पना मूर्तिमती हो उठी है। इन पोथियों में सबसे अधिक प्रशंस्य 'दि विज़न आफ़ एज्रा' है, कल्पना और अपार्थिव दृश्यों से पूरित।

उस प्राचीन काल में लिखे कुछ 'क्रॉनिकल' तो बाइबिल में ही मिला लिए गए हैं, परन्तु कुछ अलग भी बने रहे। 'सेतेर ओलम रबा' इसी प्रकार का एक इतिहास है, जो सृष्टि से आरम्भ होकर तीसरी सदी ईस्वी में खत्म होता है। इसके अतिरिक्त कुछ 'दि फास्ट्स' (व्रत) और 'दि जुबिलीज़' (त्योहार) की पोथियाँ भी हैं। प्रायः इसी काल में बाइबिल की 'न्यू टैस्टेमैन्ट' भी इब्रानी और अरमई में लिख डाली गई, परन्तु इनका इब्रानी-साहित्य पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

: २ :

ताल्मुद-युग

एज्रा के समय से ही यहूदियों में (शास्त्र, शासन, कानून) को पढ़ने की रीति चल पड़ी थी। एज्रा ने उसे और बढ़ाया। वह पैन्टाट्यूक के अंश बाजार में मंडी के दिन और रविवार को पढ़कर सुनाया करता था, साथ ही उन पर टीका-टिप्पणी भी करता जाता था, शब्द-शब्द का रहस्य खोलता। एज्रा की इस रीति का लेखकों और इस्राइली सभा के आलिमों ने भी अनुसरण किया। वे पैन्टाट्यूक के अंशों की परिभाषा और व्याख्या करने लग। इसी विश्लेषणात्मक व्याख्या और खोजपूर्ण रहस्योद्घाटन को 'मिदरश' कहते हैं। यह शब्द इब्रानी 'दरश' (खोजना) से बना है।

मिदरश दो प्रकार के थे। विधि के व्याख्यान 'हलाकोथ' कहलाते थे और आचार संबंधी साहित्य को लोकप्रिय बनाने वाले 'हग्गडोथ'। मिदरश, इस्राइली-सभा और पश्चात्कालीन सन्हेड्रिन के व्यवहार (कानून) संबंधी निर्णय, 'मौखिक' कानून कहलाते थे, क्योंकि अभी वे लिखे नहीं गये थे। लिखी केवल बाइबिल गई थी, जो इसीलिए लिखित अनुशासन कहलाती थी। बाद में मिदरश भी अधिकतर एकत्र कर डाले गए। तीन प्रकार के मिदरश भाष्यों का पता चलता है। १—मेकिल्टा, २—सिफ्रा और ३—सिफ्रेह। इनमें से पहले रब्बी इशमाएल और रब्बी सीमोन बिन योहाई की कृति हैं। और दूसरे और तीसरे अधिकतर सेंट रब्बी अकीबा और उसके शिष्यों की। रब्बी अकीबा ५० ईस्वी

में जन्मा था और बार कोकबा के विद्रोह के समय १३६ में शहीद हुआ। रब्बी इशमाएल पहली सदी ई० में हुआ और रब्बी सीमोन दूसरी में। भाष्यों और टीकाओं की संख्या निरन्तर बढ़ती गई। उन्हें व्यवस्थापूर्वक संग्रहीत करने के अनेक प्रयत्न हुए। इनमें पहला प्रयत्न रब्बी अकीबा का ही था, जिसने हलाकोथ को विषयानुकूल विभक्त कर दिया।

कालान्तर में सन्हेड्रिन का प्रधान रब्बी यहूदा हनसी[1] हुआ। इन भाष्यों और टीकाओं के साहित्य को उचित रूप से विभाजित करने का श्रेय उसी को है। उसने उसे लिपि-बद्ध कराकर व्यवस्थित शास्त्र यहूदा का रूप दिया। यह पुनरुक्त साहित्य 'मिश्ना' कहलाता है। यहूदी कानून-व्यवस्था का यह प्रामाणिक साहित्य है। यहूदा ने एक समिति की सहायता से हलाकोथ की टीकाओं और भाष्यों को एकत्र कर उनका पाठ शुद्ध किया, फिर मिश्ना छह भागों में बाँट दिये गये। 'ज़िराएन' (कृषि), 'मोएद' (त्योहार), 'नशीन' (नारी), 'नज़ीकिन' (कानूने दीवानी और फौजदारी), 'कोदशिम' (यज्ञ-कुरबानियाँ), और 'तोहरोथ' (शौचाचार)—ये मिश्ना के छह भाग बने। फिर इनके भी अनुस्कन्ध बने, कुल तिरेसठ। मिश्ना का ही एक स्कन्ध 'अब्बोथ' कहलाता है, जिसमें मनीषियों के कलाम संग्रहीत हैं। मिश्ना की शैली बाइबिल की भाषा-शैली से भिन्न है। कानूनी पद्धति की स्पष्ट, एकार्थक, संक्षिप्त-हलाकोथ के जो अंश मिश्ना में संग्रहीत न हो सके, वे 'बेरायथोथ', (बहिरंग) कहलाए। कुछ नई सामग्री के संकलन से स्वतन्त्र मिश्ना भी प्रस्तुत हुए; उनमें से एक 'थो साफता' नाम से प्रसिद्ध है।

१३५ ई० में बार कोकबा-विद्रोह के बाद फिलस्तीन के अनेक यहूदी विद्वान् भागकर बेबीलोनिया चले गए। वहाँ उन्होंने सुरा, नेहाद्रिया और पुम्पेडिटा में जो ज्ञान-पीठ स्थापित किये, उनकी प्रतिष्ठा फिलस्तीन के पीठों से भी बढ़ गई। इनमें सुरा के पीठ का प्रतिष्ठाता अब्बा अरेका[2] यहूदा हनसी का शिष्य था। इन पीठों में कानून-संबंधी और धार्मिक साहित्य प्रभूत मात्रा में प्रस्तुत हुआ। सुरा के अध्यक्ष रब्बी अशी[3] ने उसे एकत्र किया।

तालमुद के निर्माण में इन पीठों का बड़ा हाथ था। साल में दो बार वहाँ विद्वानों का अखाड़ा जमता था, जिसे 'कल्ला' कहते थे।

कल्ला (अधिवेशन)

इन कल्ला (अधिवेशन) में मिश्ना के अनुशासनों पर विचार होता था। कानून का कोई प्रसंग पढ़ दिया जाता था और तब उस पर व्याख्या, वाद-विवाद चल पड़ते थे। पीछे वह बहस और व्याख्यान एकत्र कर लिये जाते थे। उनको 'गेमरा' कहते थे। मिश्ना और गेमरा का एकत्र संग्रह 'बेबीलोनियन तालमुद' के नाम से प्रसिद्ध है। जेरुसेलेम का एक

---

१. Rabbi Yahuda Hanasi; २. Abba Areka; ३. Rabbi Ashi;

'फिलिस्तीनी ताल्मुद' भी उपलब्ध है, पर उसका महत्व 'बेबीलोनियन ताल्मुद' की अपेक्षा कुछ नहीं है। गमरा की भाषा प्रायः जन-बोली है, अरमई और इब्रानी का सम्मिश्रण, जिसमें ग्रीक, रोमन और फारसी शब्द भी जहाँ-तहाँ व्यवहृत हुए हैं। इसकी कोई विशेष शैली नहीं और न व्याकरण ही इसका विशेष शुद्ध है। ताल्मुद यहूदियों के लोक-साहित्य-इतिहास, रीति-रिवाज और ज्ञान का भंडार है। उसने भी बाइबिल की ही भाँति उनकी संस्कृति के निर्माण में बड़ी सहायता की है।

'सेफेर येज़िरा' की रचना भी इसी काल हुई। यह दार्शनिक विवेचन की एक कृति है और अब्राहम द्वारा रचित मानी जाती है। पिछले यहूदी तर्क-विन्यास की नींव इसी रचना पर खड़ी है।

पाँचवीं सदी ईस्वी में सन्हेड्रिन की सभा का अन्त कर दिया गया। यहूदी ज्ञान और समाज की बागडोर अब बेबीलोनियन महात्माओं के हाथ में आई, परन्तु, जिस अत्याचार से बाध्य होकर यहूदी नेताओं को फिलस्तीन से भागना पड़ा था, उसका सामना उन्हें बेबीलोनिया में भी करना पड़ा। सुरा, नहाड्रिया और पुम्पेडिटा के पीठ टूट गए। नेता और यहूदी जनता भूमध्य सागर के तटवर्ती देशों की ओर भागी। वैसे १०वीं सदी तक उन पीठों में कुछ न कुछ काम होता रहा, पर उनकी किस्म बड़ी घटिया थी। अगली तीन शताब्दियों में भी मौलिक साहित्य का सृजन विशेष नहीं हुआ।

नया युग संरक्षा का था। बाइबिल की अनेक प्रतियाँ ढूँढ़ निकाली गईं। जिससे मूल पाठ शुद्ध किया जा सके। अरमई-इब्रानी की खिचड़ी भाषा के स्थान पर शुद्ध इब्रानी की प्रतिष्ठा हुई, इब्रानी के पहले वैयाकरण और कोषकार प्रादुर्भूत हुए। महान् 'रेस्पोन्स'-साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ। यह युग उन सारे दर्शनों और विचारों के संघर्ष का था, जो यहूदी-आचार से उठे, ईसाई और इस्लाम धर्मों ने वितरित किये। आठवीं सदी में अनानबेन डैविड[1] ने 'करायट' सम्प्रदाय की नींव डाली। इसके अनुयायी ताल्मुद को प्रमाण न मानकर बाइबिल-मात्र को प्रमाण मानते थे और उसी के अनुशासन पर अक्षरशः चलते थे। उन्होंने अपना साहित्य भी प्रचुर मात्रा में रचा और बाइबिल तथा इब्रानी भाषा के प्रति अपनी निष्ठा से प्राचीन यहूदी-परंपरा के नेताओं को करायटों ने अपनी समान प्रतिष्ठा करने को बाध्य किया।

'पैटनिम' (गीतकार) का उदय इस काल बड़े महत्त्व का हुआ। इसने यहूदी कवियों की परंपरा की बुनियाद डाल दी। जोज़े बेन जोज़े[2] ने सातवीं सदी में अनेक कविताएँ लिखीं, पर इब्रानी भाषा का पहला कवि जानाई[3] था। फिलस्तीन में ६४० ई० में जन्मा,

१. Anan Ben David (८वीं सदी); २. Jose Ben Jose (७वीं सदी) ३. Janai (ज० ६४०);

जिसने पहली बार कविता में तुक का प्रयोग किया। उसके बाद उसी के फिलस्तीनी शिष्य एलिज़ेर-बे-रब्बी कलीर[१] ने प्रतिभा और चमत्कार से युक्त काव्य-रचना की। उसकी शैली तो बाइबिल की ही थी, परन्तु उसने अनेक नये शब्द और पद गढ़े और शैली के कुछ रूप भी स्थिर किये। अनेक पैटनिम पीढ़ियों ने उसे काव्य के क्षेत्र में अपना आदर्श माना।

: ३ :

अरबी-स्पेनी युग

अरबी-स्पेनी काल यहूदी संस्कृति और साहित्य का स्वर्ण-युग है। अरबी मेधा के प्रभाव से इब्रानी साहित्य में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। उसका मध्याह्न तो ग्यारहवीं सदी में हुआ परन्तु आरम्भ नवीं सदी में ही हो गया था।

इस नये युग का प्रारम्भ करने वाला साडिया बेन जोज़ेफ[२] था जो साडिया 'गेओन' नाम से विशेष विख्यात हुआ। अपने पचास वर्ष के अल्प आयु-विस्तार में जितना इस एक व्यक्ति ने किया, उतना सदियों की सम्मिलित मेधा भी न कर सकी। उसकी प्रतिभा बहु-मुखी थी। इक्कीस वर्ष की आयु में उसने इब्रानी का पहला कोष प्रस्तुत किया। यह एक प्रकार का तुकान्त कोष था, जिसके दो भाग थे—एक में वर्ण-क्रम से शब्दार्थ दिया गया था, दूसरे में शब्दान्त द्वारा शब्दों की तालिका थी। उसने व्याकरण पर भी बहुत लिखा। उसका प्रधान ग्रन्थ 'सिड्डूर' है, जिसमें साल-भर की प्रार्थनाओं का संग्रह है। प्रार्थनाएँ कविताओं में है और कविताएँ गज़ब की ताजगी लिये हुए हैं। उसने 'सेफेर येजिरा' पर अपनी अरबी टीका लिखकर भावी इब्रानी-वैयाकरणों को ऋणी बना दिया। उसने करा-यटों को उन्हीं के तर्क से परास्त किया। उसने अरबी में भाष्य के साथ बाइबिल का अनुवाद किया। परन्तु साडिया का यश उसके प्रमुख ग्रन्थ 'एमुनोथ वे-डेओथ' (विश्वास और सिद्धान्त) पर अवलम्बित है। इसका मूल पहले अरबी में लिखा गया था। यहूदी अनुवृत्तों और भगवान्-सबंधी सिद्धान्तों पर दर्शन प्रस्तुत करने वाला पहला विद्वान् साडिया था। उसके पहले आइज़ेक इस्राइली[३] और डैविड बेन मेरवान[४] ने निस्संदेह दार्शनिक विवेचन किये थे, परन्तु उनका विवेचन प्लैटोनिक चिन्तन पर अवलंबित था, यहूदी-दर्शन से उनका कोई सम्पर्क न था। साडिया ने जिस यहूदी दार्शनिक-शृंखला की पहली कड़ी प्रस्तुत की, उसका विस्तार बड़ा था।

---

१. Eliezer Be Rabbi Kalir (ज० ६८०); २. Saadia Ben Joseph (Saadia Gaon) (८९२-९४२); ३. Isaac Israeli; ४. David Ben Merwan.

इस काल के वैज्ञानिक ग्रन्थ अरबी में ही लिखे गये। जैसे मध्य-युगीय यूरोप की भाषा विविध राष्ट्रीयताओं के बावजूद लैटिन थी, वैसे ही इस युग में सर्वत्र वैज्ञानिक ग्रन्थ अरबी में ही लिखे गये। इसका एक कारण अरबों की राजसत्ता भी था। इब्रानी विद्वान् भी अपनी काव्य-रचना तो इब्रानी में ही करते थे, पर वैज्ञानिक ग्रन्थ अरबी में लिखते थे। उनमें से अनेक नष्ट हो गये या संग्रहालयों में आज भी दबे पड़े हैं। कुछ अनूदित भी हुए और काफी ख्याति पाई। इन्हीं में जूडाह हलेवी[१] का 'कुसारी', ममोनाईड्ज[२] का विमूढ़-पथ-प्रदर्शक विषयक ग्रन्थ और बह्या इब्न पकूडाह[3] का हृदय के कर्त्तव्य विषयक ग्रन्थ भी थे, जिनके आज तक अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इनमें अन्तिम बड़ा लोकप्रिय हुआ। वह जज था और स्पेन में ग्यारहवीं या बारहवीं सदी में हुआ था। बह्या का दृष्टिकोण न्यो-प्लैटोनिक दर्शन से प्रभावित था। उसने बुद्धि-श्रुति और अनुवृत्त के आधार पर आचारपरक नैतिक दर्शन प्रस्तुत किया। सभाष्य इब्रानी में अनूदित यह ग्रन्थ 'हृदय के कर्त्तव्य' सैकड़ों संस्करणों में प्रकाशित हुआ। उसका अनुवाद अनेक भाषाओं में हुआ। यहूदी तत्वेक्षण और दार्शनिक विचारों पर इस ग्रंथ ने गहरा प्रभाव डाला।

कवि गेओन की मृत्यु के बाद जब बेबीलोनिया के यहूदी ज्ञान-पीठ बन्द कर दिये गए, तब अनेक इब्रानी और यहूदी पंडित अफ्रीका, दक्षिणी यूरोप, फ्रांस, जर्मनी आदि में जा बसे और वहीं वे साहित्य, दर्शन आदि का मनन करते रहे। वह यूरोप का अन्धयुग था और क्रूसेडी ईसाइयों ने उन पर बड़े जुल्म ढाये। फिर तो वे चुपचाप ताल्मुद और बाइबिल के अध्ययन में जुट गए। उन्होंने 'किनोथ' (मरसिया) और 'सेलिकोथ' (प्रायश्चित्ती प्रार्थना) किस्म की कविताएँ प्रभूत मात्रा में रचीं। रबेनू जेरशोम[४] (दसवीं सदी) फ्रांस में जन्मा। उसने धार्मिक कविताएँ बहुत लिखीं और वह बहु-विवाह के विरुद्ध अपनी व्यवस्था के लिये विशेष प्रसिद्ध हुआ। रब्बी शेलोमो यिजहाकी[५] भी फ्रांस (ट्रोये) में ही १०४० में जन्मा था और 'राशी' नाम से साधारणतः विख्यात हुआ। उसका प्रधान ग्रन्थ ताल्मुद का भाष्य है, जिससे वह संहिता भावी विद्यार्थियों को प्राप्त हुई। उसकी बाइबिल पर सुन्दर सरल टीका तो प्रत्येक यहूदी-गृह की आवश्यकता और शृंगार बन गई। बाइबिल के यूरोपियन अनुवादों में भी ईसाई विद्वानों ने उससे सहायता ली। इटली के यहूदियों ने भी अपने साहित्य के निर्माण में काफी योग दिया। वहाँ नवीं सदी के शेफाथिया बर अमिटाई के जमाने से आज तक इब्रानी-साहित्य के निर्माण की वह धारा अविरल रूप से बहती रही है।

---

१. Judah Halevi (१०८०-११४०); २. Maimonides (Moses Ben Maimon) (११३५-१२०४); ३. Bahya Ibn Pakudah (११वीं, १२वीं सदी); ४. Rabenu Gershom ; ५. Rabbi Shelomo Yishaki (Rashi) (ज० १०४०)

स्वर्ण-युग

परन्तु, इस काल की इब्रानी चेतना, साहित्य-निर्माण, वैज्ञानिक खोज का स्वर्ण-युग वास्तव में स्पेन में विकसित हुआ, जहाँ मूर-शासन की छाया में यहूदियों को तपना न पड़ा। वहाँ वे ईसाई-कट्टरता से परे थे। इस्लाम को सदा मजहबी कट्टरता का कुवाच्य मिलता है, परन्तु ईसाइयों के जुल्म के बढ़ते हुए मरु में स्पेन के अरब-शासन ने यहूदियों के लिए हरी भूमि उपलब्ध कर संरक्षित कर दी और वहाँ इब्रानी-काव्य, दर्शन और विज्ञान के पौधे लहलहा उठे।

साडिया के शिष्य और वैयाकरण डुनाश बेन लबराट[१] ने पहले-पहल कविता में मात्रिक छन्दों का उपयोग किया। परन्तु युग का पहला यथार्थ कवि सैमुएल इब्न नग्डिलाह[२] था। वह कोर्दोवा में जन्मा था। अपने जीवन-काल में उसका बड़ा मान हुआ। उसने तुक और मात्रा का उपयोग किया और सुन्दर प्रवाहमयी इब्रानी शैली में लिखा। उसने बाइबिल के गीतों के अनुकरण में प्रार्थनाओं की एक पुस्तक—'बेन थिलिम' (गीतों का पुत्र) लिखा। 'बेन मिश्ले' (कहावतों का बेटा) उसकी दूसरी कृति थी, और 'बेन कोहेलेथ' (धार्मिकों का पुत्र) तीसरी। यह तीसरी रचना एक प्रकार का दार्शनिक स्वप्न था।

परन्तु, उस मध्य-काल का सबसे महान् और मधुर कवि सोलोमान इब्न गाबिरोल[३] था। वह जन्मा मलागा में और मरा वालेन्शिया में। वह विपत्ति और संघर्ष का मारा था। इसी से वह निराशावादी बन गया। इसी से उसमें अत्यन्त वेदना और करुणा भी भर गई। उसकी कविता गम्भीर और मधुर है। उसकी प्रधान राजमुकुट विषयक कृति पाँच भागों में विभक्त है। वह स्तुति-प्रधान है, दार्शनिक और गंभीर। उसका उपयोग पूजा में भी होता है। उसकी सांसारिक कविताओं में बड़ी वेदना है। इसी प्रकार की करुण कविताएँ उसने अपने मित्र और संरक्षक येकूथील की स्मृति में भी लिखीं। उसने अरबी में तीन दार्शनिक ग्रन्थ लिखे। उसका जीवन-स्रोत विषयक ग्रन्थ तो सदियों ईसाई दार्शनिक द्वारा रचित माना गया था। मध्यकालीन चर्च और राज्य के झगड़ों में टॉमस ऐक्विनस ने उसकी इस पुस्तक के उद्धरण भी दिए। इसका अरबी मूल खोया गया, पर इब्रानी 'म'कोर हायिम' खूब चला। इसी प्रकार उसके 'मिब्बहर हा पेनीनिम' (मोतियों का चुनाव) को भी बड़ी ख्याति मिली।

इब्रानी साहित्य का सबसे बड़ा कवि जूडा हालेवी था। उसका जन्म तोलेडो (स्पेन) में हुआ। वह अविराम गायक था। उसकी कविता मधुर और प्रसाद गुण से ओतप्रोत थी।

---

१. Dunash Ben Labarat (९२०-७०); २. Samuel Ibn Nagdilah (८३३-१०५५); ३. Solomon Ibn Gabirol (१०२०-५२)

वह भाषा और शैली का जादूगर था। उसने सभी विषयों पर कविता लिखी। प्रेम, शादी, मृत्यु, जन्म, प्रार्थना सभी पर उसकी अनेक कविताओं का उपयोग यहूदी पूजा में होने लगा। उसे अपने प्राचीन देश से बड़ा प्रेम था। वह उसके राग में मस्त होकर लिखता और गाता था। यहूदियों के पवित्र पर्वत ज़ायन पर तो उसकी अनेक करुण कविताएँ हैं। इसी से वह 'ज़ायन का गायक' भी कहलाने लगा। उसने अरबी में एक दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखा, पर उसमें भी काव्य अधिक और दर्शन कम है। उसका इब्रानी अनुवाद बड़ा लोकप्रिय हुआ।

अब्राहाम इब्न एज़्रा[1] इब्रानी भाषा का बड़ा गहरा विद्वान् हो गया है। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह ज्योतिष, विज्ञान, व्याकरण, दर्शन सभी का प्रकाण्ड पण्डित था। परन्तु इसके साथ ही वह कवि भी था, यद्यपि वह न तो हालेवी की भाँति मधुर था, न इब्न गाबिरोल-सा गम्भीर। उसे भी जीवन में बड़ा संघर्ष करना पड़ा पर वह गाबिरोल की भाँति न निराश हुआ, न उसने अपने भाग्य को कोसा ही। हाँ, उसका मज़ाक उसने जरूर उड़ाया। इब्रानी भाषा पर उसका इतना अधिकार था कि शैली जैसी चाहता लिख लेता। उसकी भाषा में इसी से जब तब कृत्रिमता भी आ जाती थी। उसने अनेक विषयों पर लिखा। गणित, दर्शन, विज्ञान, व्याकरण आदि। बाइबिल का वह पहला वैज्ञानिक आलोचक था। उसका बाइबिल और पैन्टाट्यूक पर भाष्य बड़ा लोकप्रिय हुआ। उसने ईसाई-यूरोप का भ्रमण किया और चूँकि वहाँ लोग अरबी नहीं समझते थे, उसने अनेक ग्रन्थ इब्रानी में ही लिखे। स्पेनकाल का ऐसा करने वाला वह पहला ग्रन्थकार था।

परन्तु इस युग की मेधा का चूड़ामणि मोजिज बेन मैमोन मैमोनाइड्ज था। उसका प्रताप उस युग के बड़े से बड़े कृतिकार पर भी हावी हुआ। वह बड़ा गहरा विद्वान था, और उसका मस्तिष्क तर्क-सिद्ध था। सर्वथा वैज्ञानिक विश्लेषण में वह असाधारण चतुर था। युवावस्था में ही बड़े-बड़े पण्डित कठिन दार्शनिक विवेचन में उसके मत की अपेक्षा करने लगे थे। 'मिश्ने टोरा' लिखकर उसने तालमुद की अव्यवस्था को व्यवस्था दी। मिदरश, गमेरा आदि से सामग्री एकत्र कर उसने कानून की पद्धति दुरुस्त की। उसका प्रधान दार्शनिक ग्रन्थ विमूढ़ों का पथ-प्रदर्शक था, जिसमें उसने अरिस्टॉटल के मत का पोषण कर उसे यहूदी दर्शन से अभिन्न सिद्ध किया था। इससे वह ईसाइयों में भी लोकप्रिय हो गया। इन दोनों ग्रन्थों के कारण यहूदियों में बड़ा मतभेद हुआ और सैद्धान्तिक वादविवाद पीढ़ियों चलता रहा। उसके 'पथ-प्रदर्शक' के उसके जीवन-काल में ही तीन-तीन इब्रानी अनुवाद हुए। उस पर तीस-तीस टीकाएँ प्रस्तुत हुईं। मोजिज की भाषा चुस्त और सरल थी।

---

१. Abraham Ibn Ezra (१०९२-११६७)

मोजिज के अनेक विद्वान अनुयायी हुए। उनमें एक लेवी बेन जेरसन[1] था। उसने धर्म और दर्शन के उन प्रश्नों पर प्रकाश डाला, जिन्हें मोजिज ने अपूर्ण छोड़ दिया था। जुदाहबेन सालोमॉन अल-हरीजी[2] उस स्वर्ण-युग का अन्तिम महान कवि था। उसका प्रधान काव्य 'मकबरत-तहकीमोनी' व्यंग्य है, जिसमें अनेक अभिराम कविताओं का संकलन है। हरीजी बड़ा सुन्दर और मधुर कवि था। उसे मोजिज ने अपना 'पथ-प्रदर्शक' अनुवाद करने को आमन्त्रित किया। अनुवाद सुन्दर हुआ है। हरीजी इब्रानी भाषा के साहित्य की आय पर ही जीवित रहने वाला पहला कवि था।

गद्य की दिशा में भी इस काल कुछ कार्य हुआ। तुडेला के बेनजामिन ने यात्रा और भूगोल पर एक पुस्तक लिखी और जोसेफ इब्न जबरा[3] ने 'सेफेर शआशुइम' (आनन्द-ग्रन्थ) लिखा।

इटली में इब्रानी-साहित्य

इटली का इब्रानी-साहित्य स्पेनी साहित्यिकों से प्रभावित था, यद्यपि उसके कवि और लेखक उतने ऊँचे न उठ सके। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि जहाँ स्पेनियों की भाषा कृत्रिम थी, वहाँ इनकी सरल और स्वाभाविक थी। इटली के कुछ प्रतिभाशाली कवियों और साहित्यिकों के नाम निम्नलिखित हैं—अमिथाई, सेबाथाई दोनोलो[4] मैशूलूम बेन कालोनिमस,[5] कालोनिमस बेन मैशूलूम[6], अहीमाज बेन पालटील[7] बेन्जामिन डेली मन्सी,[8] सालोमन देल रोस्सी और उसका पुत्र इमानुएल।

इनमें सबसे महान इमानुएल बैन सोलोमॉन, हा-रोमी[9] था। उसकी शैली बहुत-कुछ स्पेनियों के समान थी।

सम्भवतः वह इटली के प्रसिद्ध महाकवि दांते का मित्र था। उसका एक काव्य 'हा-थोफेट वे-हा-एडेन' (नरक और स्वर्ग) दांते की अमर कृति 'डिवाईन कॉमेडी' से बहुत मिलता है। इमानुएल की कविता अधिकतर लौकिक है और उसमें विनोद की मात्रा प्रचुर है। कामिनी और मदिरा-सम्बन्धी उसकी कविताएँ युग के अनुकूल ही अश्लील हैं। वृद्धावस्था में उसने अपनी सारी कविताओं, व्यंग्यों और कहानियों का एकत्र संग्रह किया। इस संग्रह का नाम था 'माहबरोथ इमानुएल'। वह कहा करता था कि काव्य-सौन्दर्य में वह

---

१. Levi Ben Gerson (Gersonides) (१२८८-१३४४); २. Judah Ben Solomon Al-Harizi (११६५-१२२५); ३. Joseph Ibn Zabara (ज. ११५०); ४. Sabathai Donolo (९१३-८२); ५. Meshulam Ben Kalonymus (११वीं सदी); ६. Kalonymus Ben Meshulam; ७. Ahimas Ben Paltiel (१०१७-६०); ८. Benjamin Delli Mansi (१३वीं सदी); ९. Immanuel Ben Solomon Ha-Romi (१२६५-१३३०)

अल-हरीजी को लाँघ गया। उसका यह वक्तव्य बेजा न था। उसने बाइबिल पर एक टीका भी लिखी और एक इब्रानी-व्याकरण भी।

तेरहवीं सदी में मोजिज दि लियोन[१] ने 'जोहार' (ज्वल्यमान) नाम की एक रहस्य-वादी पुस्तक लिखी। इसकी भाषा अरमई-इब्रानी थी और पहले इसे रब्बी सीमोन बर योहाई की कृति कहा गया, परन्तु शीघ्र ही पता चल गया कि इसका रचयिता कौन है। इसका रहस्यवाद 'सेफेर येजीरा' और 'बाहीर' पर अवलम्बित था। 'बाहीर' का लेखक बारहवीं सदी का जन्मान्ध आइजेक था। 'जोहार' का कुछ अंश मिथ्या मसीहा अब्राहम अबुलाफिया (बारहवीं सदी), विद्वान रहस्यवादी कवि, के सिद्धान्तों पर आधारित था। ईसाई दुनिया में इस काल यहूदियों पर भयानक अत्याचार हो रहे थे और यह रहस्यवादी दृष्टिकोण उन्हें बड़ा मुआफिक पड़ा। कबालों का जो नया आन्दोलन चला वह जोहार से ही अनुप्राणित था। 'जोहार' इस नये सम्प्रदाय की बाइबिल बन गया। इस आन्दोलन में गैर-यहूदी भी शामिल थे और इसने प्रभूत साहित्य प्रस्तुत किया। अनेक पीढ़ियों तक इसका बोलबाला रहा और इस आन्दोलन ने अनेक भावी सम्प्रदायों की नींव डाली। पर हाँ, उसने स्पेन के उस स्वर्ण-युग का अन्त भी कर दिया। 'जोहार' शब्द का भारतीय रूपान्तर 'जौहर' है। 'जौहर' राज-पूतनियों के युद्ध-काल में अग्नि-प्रवेश के रूप में एक धर्मानुशासन बन गया।

धर्म के ढोंगियों ने ईसाई शासन का स्पेन पर अधिकार होते ही वहाँ भी मारकाट मचाई और यहूदी विद्वानों को वहाँ से भी भाग कर अन्यत्र शरण लेनी पड़ी। प्रोवेन्स में यहूदियों की एक शाखा कुछ काल से प्रतिष्ठित थी, परन्तु उसका साहित्य कुछ विशिष्ट नहीं था। इसी प्रकार उत्तर जर्मनी की यहूदी शाखा ने भी विशेष प्रतिभा का साहित्य में प्रदर्शन नहीं किया। वहाँ एक अच्छा कवि हुआ—येडाइया बेडेरसी[२] जिसने पुष्पित शैली में कविता लिखी। इसी से वह येडाइया ह-पेनीनी (मुक्तावत) भी कहलाता था। अपने दार्शनिक ग्रन्थ 'बेहिनाथ ओलम' से वह अधिक प्रसिद्ध हुआ। स्पेन में मेशूलम दा पियरा[३] और विशेषतः उसके पुत्र सोलोमन[४] ने मदिरा पर अच्छी कविता की। र्यूबेन बोनफेड[५] उस काल का प्रतिभाशाली कवि था। स्पेन में ही इस गिरी दशा में भी कुछ साहित्यिक कार्य हुआ। वहीं बार्सिलोना में सबसे मौलिक यहूदी दार्शनिक हस्दई बेन अब्राहाम क्रेस्कास[६] का जन्म हुआ। वह अरिस्टॅटल सम्बन्धी मोजिज के दृष्टिकोण का विरोधी था। दोनों के दर्शन में उसे कमजोरी दिखाई पड़ी और अरिस्टॅटल के प्रकृति के शाश्वतवाद का खण्डन कर उसने ईश्वर की अनन्तता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसके ग्रन्थ का नाम था 'ऑर

---

१. Moses de Leon (१२५०-१३०५); २. Yedaiah Bedersi (१२८०-१३४०); ३. Meshulam da Piera; ४. Solomon da Piera (१३४०-१४१७); ५. Reuben Bonfed (१३८०-१४५०); ६. Hasdai Ben Abraham Crescas (१३४०-१४१०)

अडोनाइ'। उसका उत्तर-कालीन दार्शनिकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्पिनोजा ने अपने दर्शन में अब्राहम के 'स्वतन्त्र चेतना' वाले सिद्धान्त का पोषण किया। अब्राहम का ग्रन्थ 'ऑर अडोनाइ' (खुदा का नूर) अनेक भाषाओं में अनूदित हुआ।

जोजेफ अल्बो[१] ने 'सेफेर इक्कारिम' लिखकर काफी नाम कमाया। उसका ग्रन्थ बड़ा-लोकप्रिय हुआ। इसमें मैमोनाइड्ज, जेरसोनाइड्ज, क्रेस्कास आदि के उद्धरण देकर यहूदियों को अपने धर्म और संस्कृति में जमे रहने का प्रोत्साहन था। इसकी भाषा, इब्रानी बड़ी सरल थी। १४९२ में यहूदी स्पेन से अन्ततः निकाल दिये गये। यह फर्डिनेन्ड और इजाबेला के ब्याह और कैस्टिल तथा आरगों के योग से बने नए ईसाई-स्पेन का परिणाम था। इन्हीं निष्कासित यहूदियों में डॉन आइजेक अब्रवानेल[२] और उसका पुत्र जूडाह[३] भी थे। पिता की ख्याति उसके दार्शनिक ग्रन्थ प्रणय सम्बन्धी डायलॉग (इटैलियन में लिखा) पर अवलम्बित है। उसने इब्रानी में सुन्दर कविता भी की। पुत्र जूडा आइजेक बाइबिल का निष्णात पण्डित था। उसने उस धर्म-ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ लिखीं। उसके कई दार्शनिक ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं, परन्तु उनकी विशेष ख्याति नहीं।

आपत्ति-काल

अगला युग, प्रायः ढाई-तीन सौ वर्षों का, यहूदियों के लिये नितान्त भयानक सिद्ध हुआ। ईसाई मिशनरियों और राजकुलों ने उन पर सत्यानाशी प्रहार किए। एक देश से दूसरे देश में वे अपने ग्रन्थ लिये सदियों मारे-मारे फिरते रहे। उन्हें कहीं आश्रय नहीं मिला। अनेक ने तो सभ्य जगत का आसरा छोड़ अपनी धार्मिक और साहित्यिक पूँजी ले वनों और प्राकृतिक कन्दराओं में पनाह ली। सभ्य मानव से बर्बर वातावरण उन्हें कहीं मुआफिक पड़ा और कम से कम उन्होंने अपनी सांस्कृतिक निधि की रक्षा कर ली। सदियों बाइबिल और ताल्मुद पर जो इन एकान्त पनाहों में विचार किया गया तो प्रभूत मात्रा में साहित्य प्रस्तुत हो गया, परन्तु निःसन्देह उसमें न चिन्तन की गहराई थी न साहित्य का माधुर्य।

हाँ, इटली में निश्चय ही कुछ साहित्यिक प्रेरणा रूपायित हुई क्योंकि वहाँ, पोप की सल्तनत के बावजूद, यहूदियों पर जुल्म इतने न हुए जितने अन्यत्र। वहाँ भी उन्हें विशेष अधिकार तो प्राप्त न थे, परन्तु जिया जा सकता था और जीवन की दयनीय स्थिति में भी आखिर वेदना के चीत्कार में भी साहित्य का स्वर बसता ही है। कुछ प्रतिभाशाली कवियों और ग्रन्थकारों के नाम यहाँ दिये जाते हैं—बेन्जामिन बेन अब्राहाम अनवी (मन्सी) (इमानुएल का समकालीन), मोजिज रिएटी[४] जैकब और उसका भाई, इमानुएल फ्रांसिस

१. Joseph Albo (१३८०-१४४०); २. Don Isaac Abrvanel; ३. Judah Abrvanel; ४. Moses Rieti (१३९३-१४६०)

(दार्शनिक और कवि—ऐतिहासिक काव्य 'जेवी मुदाह' मृगयायित मृग) ; इमानुएल[1] दोनों में अधिक प्रतिभावान था; मोजिज ज़ाकूटो[2] जन्मा एम्स्टर्डम में, पर रहता इटली में था; उसमें अद्भुत कवित्व शक्ति थी। उसी ने इब्रानी में पहले-पहल ड्रामा लिखा। लियो मॉडेना[3] की प्रतिभा भी बहुमुखी थी। इटली में इब्रानी का भी पुनरुत्कर्ष हुआ।

: ४ :

वर्तमान-युग

इब्रानी साहित्य का वर्तमान युग मोजिज हायिम लुज्ज़ाटो[4] से शुरू होता है। लुज्ज़ाटो ने इब्रानी काव्य को स्पेनी युग की पुष्पित शैली से मुक्त कर दिया। १७ वर्ष की आयु में उसने अलंकार पर ग्रन्थ लिखकर सहज शैली का गुणगान किया और अपने ही उद्धरणों द्वारा काव्य में 'सत्य और सुन्दर' की प्रतिष्ठा की। चालीस वर्ष के अपने छोटे जीवन में उसने तर्क, आचार, अलंकार आदि पर तीस पुस्तकें लिखीं जिनमें प्रत्येक की शैली सरल और प्रांजल थी।

लुज्ज़ाटो प्रधानतः कवि था। बाइबिल के गीतों के आधार पर उसने गीतों का एक संग्रह लिखा। इब्रानी में उसके तीन सुन्दर नाटक उपलब्ध हैं—'मआसे शिमशोन' (सैमसन और डेलीलाह), 'मिगडाल ओज' (बात्तिटास्टा गुआरीनी के 'पास्टोर फीदो' के आधार पर) और रूपक 'ल-येशरिम थेहिल्लाह' (धार्मिकों की प्रशंसा)। इन सब काव्य और नाट्य कृतियों में गजब की ताजगी थी। भावुकता और प्रेम की तरल धारा इनमें लुज्ज़ाटो ने बहा दी। उसका प्रकृति-वर्णन भी बड़ा आकर्षक था। उसके शिष्य डैविड फ्रांको मेन्डिज ने भी एक रूपक 'जेमुल अथालियाह' लिखा।

बौद्धिक धाराओं ने सर्वत्र अपना प्रभाव डाला। 'हस्कला' (प्रकाश) नाम का एक आन्दोलन चला। इसका केन्द्र 'मिअस्फिम' नाम का जर्नल था, जिसका आरम्भ प्रगति-चेता यहूदी युवकों ने किया था। इसके आरम्भ करने वालों में ख्याति-लब्ध दार्शनिक मोजिज मेन्डेलस्सोन[5] भी था। उसने स्वयं तो इब्रानी में बहुत कम लिखा, परन्तु उसकी संरक्षा से आन्दोलन को बड़ा लाभ हुआ।

मेन्डेलस्सोन ने बाइबिल का जर्मन में अनुवाद किया, जिसके साथ इब्रानी में एक अर्थयुक्त टिप्पणी भी थी। यह इसी दल का कार्य था। मिअस्फिम ने प्रायः २७ वर्ष

---

१. Immanuel (१६१८-१७०३); २. Moses Zacuto (१६२५-९७); ३. Leo Modena; ४. Moses Hayim Luzatto (१७०७-४७); ५. Moses Mendelssohn (१७२९-८६)

यहूदी लौकिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रचार किया। यहूदियों में उसने इब्रानी का विशेष शौक भी पैदा किया। इस जर्नल में अधिकतर लिखने वाले थे—फ्रांको मेन्डीज, आइज़ेक साटोनोव[१], जे. एल. बेन्जेब[२], जोजेफ एफ्राटी[३]। उसका नाटक 'मेलुकाटं सौल' विख्यात है, इटली का सेमुएल रोमानेली[४], एफ्राएम लुज्जाटो[५] और मेन्डेलस्सोन के शिष्यों में सबसे प्रभावशाली नेफटाली हार्टविग वेस्सेली[६] जिसके पैम्फलेट 'डिब्रइ शालोम वो-एमेथ' (शांति और सत्य के शब्द) ने यहूदियों में पार्थिव संस्कृति-प्रचार में बड़ा योग दिया। वेस्सेली का यश उसके प्रसिद्ध वीर-काव्य 'शिरेई टिफेरेथ' पर अवलम्बित है। उसने अनेक कवियों को प्रभावित किया।

आस्ट्रिया और गैलीशिया में भी हस्काला-आन्दोलन बढ़ चला। गैलीशिया और रूस में तब हस्सीडी प्रगतिशील यहूदी आन्दोलन चल रहा था। इसका उद्देश्य यहूदियों को एकांतवासी यहूदियों की बताई हुई विधियों से मुक्त करना था। हस्सीडियों ने सीधी प्रभु की अर्चना स्वीकार की। इस आन्दोलन में कवियों का प्रचुर योग था। इससे प्रभूत लोक-गीत, संगीत, कहानियाँ आदि रचे गए। परन्तु इस आन्दोलन में भी धीरे-धीरे काबाल की ही भाँति अंधविश्वास आदि घुस गए। लेखकों ने उसे शुद्ध करने का प्रचुर प्रयास किया।

आइजेक पर्ल[७] ने अपने 'मेगालेह् ट्मिरिन' (भेद खोलने वाला) में उस आन्दोलन पर गहरा व्यंग्य किया। उसने खेती का विशेष गुण गाया। हस्सीजिज्म पर गहरी व्यंग्य-चोट करने वाला आइजेक एरटर[८] था। गैलीशिया में ही यहूदी-इतिहास लिखने के भी प्रयत्न हुए। सालोमान जुडा रापापोर्ट[९] के इस दिशा में प्रयत्न सराहनीय थे। उसके दिखाए मार्ग से ग्रीट्ज और जुंज ने अनुसंधान किए। इसी प्रकार यहूदी-इतिहास के क्षेत्र में नहमान क्रोकमाल[१०] और उसके पुत्र अब्राहाम[११] ने भी प्रयत्न किए। जकारिया फ्रांकेल[१२] और अब्राहाम जीजर[१३] ने नए मार्गों का अनुसन्धान किया, परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ जर्मन में लिखे। इन सब विद्वानों में प्रधान इटैलियन सैमुएल डैविड लुज्जाटो[१४] था, जिसने विज्ञान और धर्म की एकता की असम्भवता

---

१. Isaac Satonov (१७३२-१८०४); २. J. L. Ben-Zeb (१७६४-१८११); ३. Joseph Ephrati (१७७०-१८०४); ४. Samuel Romanelli (१७५७-१८१४); ५. Ephraim Luzzatto (१७२९-९२); ६. Naphtali Hartwig Wessely (१७२५-१८०५); ७. Isaac Perl (१७७३-१८३९); ८. Isaac Erter (१७९१-१८५१); ९. Salomon Judah Rappaport (१७९०-१८६७); १०. Nahman Krochmal (१७८५-१८४०); ११. Abraham Krochmal (१८१७-८८); १२. Zechariah Frankel (१८०१-७५); १३. Abraham Geiger (१८१०-७४) १४. Samuel David Luzzatto (१८००-६५)

प्रतिष्ठित करते हुए मैमोनाइड्ज और स्पिनोजा का खण्डन किया। उसने पुरातत्व, भाषाशास्त्र, दर्शन, इतिहास सभी दिशाओं में गम्भीर कार्य किए और ग्रन्थ लिखे। उसने कविताओं का भी एक संग्रह छापा, परन्तु इस दिशा में इसी के कुल के राकेल मोरपुरगो[१] की प्रतिभा कहीं अधिक सम्पन्न थी। इस काल के अधिकतर लेखक 'बिकुरेइ ह-इत्तिम' और 'केरेम हेमेड' में लिखा करते थे। दोनों पत्रिकाएँ 'मिआसेफ' का ही प्रसार थीं। सॉलोमॉन लेविसोन[२] ने इसी काल अपनी कविताएँ लिखीं और मीएर लिटेरिस[३] ने अनेक बैलेडों और महाकाव्यों का अनुवाद किया। 'योनाह होमाइयाह' नामक उसका प्रसिद्ध गीत जेरूसेलेम के पवित्र यहूदी पर्वत जायन के सम्बन्ध में है।

रूस में भी अट्ठारहवीं सदी में कुछ यहूदी प्रगतिशील लेखक पैदा हो गये थे। मेनाहेन लेपिन[४] 'एलिजाह'[५], आइजेक बेयर लेविन्सान[६] इन्हीं में थे। इनमें से पिछले ने हस्कला-आन्दोलन का रूस में अच्छा प्रचार किया। अब्राहाम डोव लेबेन्सोन[७] प्रतिभाशाली कवि था, जिसके पुत्र मिका जोजेफ लेबेन्सोन[८] ने पिता की अन्तर्मुखी प्रवृति से ऊपर उठ वर्तमान को पकड़ा। उसकी कविताओं में बड़ा राग, बड़ी भावुकता थी। उसकी कविताएँ इब्रानी-साहित्य में चोटी की मानी जाती हैं। उसने शिलर का अनुवाद किया, छह ऐतिहासिक काव्य लिखे और लिरिक कविताएँ लिखीं, मधुर और अभिराम।

इस काल का सबसे प्रभावशाली कवि जूडाह लोएब गॉर्डन[९] था। उसने अपनी कविताओं में एकांतवासी यहूदियों पर गहरा व्यंग्य किया। उसकी व्यंग्य-कृति 'बे-मेजूलोथ याम' (समुद्र की गहराइयों में) गजब की रचना है। इसमें स्पेन के मारे यहूदियों का जिक्र है। सुन्दरी जहाज के कप्तान से प्रण करती है कि यदि वह यहूदियों को सही सलामत तट पर उतार दे तो वह उसे आत्म-समर्पण कर देगी। फिर उनके तट पर आ जाने पर वह अपनी मा के साथ समुद्र में डूब मरती है। गॉर्डन की प्रधान रचना 'कोजोह शेल यूड' है, जिसमें उस तरुणी की कथा है, जो सभी नैतिक उसूलों के खिलाफ तालमुद के एक विद्यार्थी से विवाहित है और इसी कारण सारे अभाग्य झेलती है।

अब्राहाम मापू[१०] ने इब्रानी उपन्यास का आरम्भ किया। उसका उपन्यास 'अहाबाथ

---

१. Rachel Morpurgo (१७९०-१८७१); २. Solomon Levisohn (१७८९-१८२१); ३. Meir Litteris (१८००-७१); ४. Menahen Lepin (१७४९-१८२६); ५. Elijah, Gaon of Wilna (१७२०-९७); ६. Isaac Bear Levinsohn (१७८८-१८६०); ७. Abraham-Dov Lebensohn (१७९४-१८७८); ८. Micah Joseph Lebenesohn (१८२८-५२); ९. Judah Loeb Gordon (१८३०-९२); १०. Abraham Mapu (१८०८-६७)

जायन' (जायन से प्रेम) प्राचीन इतिहास के पृष्ठ खोलता है। उसी बाइबिल-युग को उसका उपन्यास 'अश्माथ शोमरोन' भी अंकित करता है। इस उपन्यास का अर्थ है, 'समरिया का पाप'। अपने 'आयित जाबुआ' में उसने लिथूनिया के एक छोटे नगर का शुष्क जीवन अंकित करते हुए एकांतवासियों के रूढ़िगत आचरणों पर आघात किया।

उन्नीसवीं सदी के इब्रानी साहित्य में एक नई रवानी आई। १८५७ में एलिजेर सिल्बर-मान[1] ने 'ह्-मगीद' का प्रकाशन आरम्भ किया और तीन वर्ष बाद इतिहासकार फिन ने 'ह्-कारमेल' निकाला। इसी प्रकार 'मेलिट्ज और 'ह्-जेफीरा' का प्रकाशन भी शुरू हुआ।

कलमन शुलमन[2] ने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनमें संसार का इतिहास उल्लेखनीय है। अब्राहाम ए. कोवनेर[3] और जैकब पपेर्ना[4] ने समालोचना-शास्त्र की नींव डाली। मध्य उन्नीसवीं सदी का विशष प्रयास दुनियावी ज्ञान के प्रचार में हुआ। ब्रांडस्टाडटर[5] ने अपनी कहानियों में हस्सीदियों का मजाक उड़ाया। र्यूबेन अशर ब्रोडेस[6] ने 'हा डाथ वेडा हायिम' (धर्म और जीवन) नामक अपना उपन्यास लिखा और अब्रामोविट्स[7] ने सुन्दर कहानियाँ लिखीं, जो इब्रानी में अपनी शैली के लिये विख्यात हुईं। १८६६ में विल्ना के यहूदी समाज का अंकन करने वाला उसका उपन्यास 'हा अब्बोथ वे हा बानिम' (पिता और पुत्र) निकला। पेरेज स्मोलेन्स्किन[8] ने साहित्य की धारा तब एक दूसरी दिशा की ओर फेर दी, सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ, समवेदनायुक्त यहूदी-संस्कृति की आलोचना की ओर। उसने विएना में 'हा-शाहार' नामक मासिक पत्र निकाला, जिसमें सालों नए विचार छपते रहे। उसने बहुत लिखा और सर्वत्र यहूदी प्राचीन संस्कृति की रक्षा का प्रचार किया। उसके छह उपन्यास उपलब्ध हैं। उसका सुन्दरतम उपन्यास 'केबूराट हामोर' है, जिसमें व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करता है। उसके 'जीवन पथ का पथिक' जार के जेल से भागकर लन्दन में शरण लेता है। स्मोलेन्स्किन ने अनेक साहित्यकारों का उत्साह-वर्द्धन किया। उनमें से कुछ थे—पहला समाजवादी पत्र 'हा-एमेथ' निकालने वाला फ्रीमन-लीबरमन[9] लेविन[10] सोलोमान मान्डेल्कर्न[11] एलिजेर शुलमन[12] जिसने हेइन और बर्ने के जीवन

---

१. Eliezer Silberman; २. Kalman Shulman (१८१९-९९); ३. Abraham A. Kovner (१८४२-१९०९); ४. Jacob Paperna (१८४०-१९१९); ५. M. D. Brandstadter (१८४४-१९२८); ६. Reuben Asher Brodes; ७. S. J. Abramowitz (१८३६-१९१८); ८. Perez Smolenskin (१८४०-८५); ९. Freiman Lieberman (१८४५-८०); १०. J. L. Levin (१८४५-१९२५); ११. Solomon Mandelkern (१८५५-१९०२); १२. Eliezer Shulman (१८३७-१९०२)

चरित लिखे, मोरडेकाई बेन हिलेर हाकोहेन[1], डा० सोलोमन रुबिन[2] डेविड कहना[3] और इलियाजर बेन यहूदा[4] जिसने फिलिस्तीन में प्रचार कार्य किया और इब्रानी कोष प्रस्तुत किया। यहूदी-फिलिस्तीनी-राष्ट्रीयता को डेविड गॉर्डन[5] और पाइन्स[6] ने भी सहारा दिया। यह वह जमाना था जब रूस में भी यहूदियों पर अत्याचार होने लगे थे और उनका फिलिस्तीन—अपने मूल देश—लौटने का आन्दोलन सर्वत्र जोर पकड़ चला। जायनिस्ट आन्दोलन की नई आशाओं से यहूदियों का हृदय भर चला।

इस काल इस राष्ट्रीय भावना और आशा से प्रेरित अनेक कवियों ने रचनाएँ कीं। इनमें से कुछ निम्नलिखित थे—

मधुर भावुक कवि शपिरो[7] रूस का डोलिट्सकी[8], यहूदी राष्ट्रीय गान, 'हतिक्वा' का लेखक गैलीशिया का इम्बेर[9]। दोनों न्यूयार्क में रहते थे, वहीं मरे; और अभिराम कवि मानेह[10]। १८९६ में कान्तोर ने पहला यहूदी दैनिक पत्र 'हा-योम' स्थापित किया। प्रसिद्ध डैविड फ्रिशमन[11] उसका सहकारी था जिसने इब्रानी-साहित्य में यूरोपियन साहित्य की आत्मा का प्रवेश कराया। वह जायनिस्ट आन्दोलन के विरुद्ध था, संसारवादी था और डरता था कि यहूदियों की यह राष्ट्रवादिता कहीं जातीय अहमन्यता का रूप धारण न कर ले। उसने काफी लिखा। भाषा-शैली पर उसका अधिकार था और उसकी रचनाओं में सुरुचि अमित मात्रा में थी।

फ्रिशमान की ही परंपरा में इब्रानी का अद्‌भुत कहानीकार और कवि आइजेक लोएब पेरेज[12] हुआ। वह यिद्दिश उपन्यासों का जनक था। उसने हस्सीदी साहित्य से काफी सामग्री ली और अपने लघु उपन्यासों में इस योग्यता से जन-साधारण और बौद्धिक प्रयासियों का अंकन किया कि उसके पाठक स्तब्ध रह गए, मुग्ध हो गये। कवि तो वह असाधारण था ही, उसके गद्य में भी सम्मोहक शैली का जादू उतर आया। उसकी रचनाएँ सौन्दर्य, सत्य, भावुकता, प्रेरणा, सुरुचि और अनुभूति की खान हैं। उसने यहूदियों के संघर्ष का मार्मिक और लोहमर्षक चित्र खींचा है।

इस युग में प्राचीन और अर्वाचीन, यूरोपियन और यहूदी संस्कृतियों के बीच जो जंग छिड़ा, उसमें अनेक साहित्यिकों और चिन्तकों ने भाग लिया। उनमें थे—

---

१. Mordecai ben Hiller ha Kohen; २. Dr. Solomon Rubin (१८२३-१९१०); ३. David Kahana (१८३८-१९१५); ४. Eliazar ben Yahuda (१८५७-१९२२); ५. David Gordon (१८२६-८६); ६. I. M. Pines (१८४३-१९१३); ७. K. A. Shapiro (१८४१-१९००); ८. M. Dolitzki (१८५६-१९३१); ९. N. H. Imber (१८५६-१९१०); १०. M.Z. Maneh (१८००-८७); ११. David Frishman (१८६०-१९२२); १२. Isaac Loeb Perez (१८५१-१९१५)

लिलिएन्ब्लूम[१], हुरविट्स[२], और जीब याबेज[३]। इसी काल आइजेक हिर्शवीस[४], रॉबिनोविट्स[५] हायिम ब्रोडी[६], इस्राइल डेविडसन[७] और सिमियन बैरेन्फेल्ड[८] आदि ने भी लिखा। इसके प्राचीन और नवीन के समन्वय की बात भी उठी और ब्रोड्स ने उसी दृष्टिकोण से अपना उपन्यास 'श्टेई हाक्जोवोथ' (दो छोर) लिखा। रूबेन ब्रेनिन[९] समालोचक और सुन्दर कहानीकार था तथा बेन अविग्डोर[१०] ने प्राचीन और नवीन में एक प्रकार का समझौता करा ही दिया। अविग्डोर प्रसिद्ध प्रकाशक था जिसने अनेक प्रधान साहित्यिकों की कृतियाँ छापीं। १९ वीं सदी के अन्त तक इब्रानी में अनेक प्रबल साहित्यकार तथा मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र के प्रकाशक हो गये थे।

१८९७ में हेर्जल[११] ने जायनिस्ट कांग्रेस बुलाई, जिसमें अनेक विद्वान और साहित्यकार शामिल हुए थे। हेर्जल का प्रधान प्रतिद्वन्द्वी अहद हाआम[१२] (अशर गिन्सबर्ग,) चिन्तक और पण्डित था। उसने फिलिस्तीन को यहूदी सांस्कृतिक केन्द्र मात्र माना। उसके दृष्टिकोण के समर्थक अनेक विख्यात साहित्यकार थे। रॉबिनोविट्स, जिसने अपने यिद्दिश उपन्यासों के सुन्दर इब्रानी रूपान्तर किये, इन्हीं में था। हालेवी के बाद के कवियों में सबसे महान हायिम नहमन बियालिक[१३] हुआ, जो राष्ट्रीय लिरिक कवि था। अपनी शरत् कविताएँ विषयक ग्रन्थ में उसने वातावरण-चित्रण की पराकाष्ठा कर दी। उसकी कविताओं में उसकी जाति के संघर्ष का मार्मिक और हृदयस्पर्शी अंकन है। अपने 'ज्वालाओं के लेख' में उसने ऐसी अद्भुत कविता लिखी कि वह बाइबिल का अंग लगने लगी। जेरूसेलेम के मन्दिर के विध्वंस पर लिखते हुए उसने माँगा—

जाओ वीराने की गहराई से गीत बरबादी का ला दो मझको
हो सियाह फाम तुम्हारी रगेदिल की मानिन्द

अत्यन्त लोमहर्षक हृदय को छू लेने वाली, वह मन्दिर-विध्वंस पर उसकी कविता है। रूस के यहूदियों पर अत्याचार के बाद उसने 'हत्याकांड के नगर में' विषयक कविता लिखकर यहूदियों को अपनी रक्षा न कर सकने के कारण धिक्कारा, हत्याकांड का लोमहर्षक चित्रण कर उसने एक क्रान्ति पैदा कर दी। उसकी भाषा ओजस्विनी थी, शैली शक्तिमती, कल्पना स्वस्थ, अभिराम।

---

१. M. L. Lillienblum; २. S. I. Hurwitz (१८६२-१९२२); ३. Zeeb Yabez (१८४८-१९२४); ४. Isaac Hirsh Weiss (१८१५-१९०५); ५. S. P. Robinowitz (१८४५-१९१०); ६. Hayim Brody; ७. Israel Davidsohn; ८. Simeon Berenfeld (१८६०-१९४०); ९. Ruben Brainin (१८६२-१९३९); १०. A. Ben Avigdor; ११. Herzl; १२. Ahad Ha-Am (१८५६-१९२७); १३. Hayim Nahman Bialik (१८७३-१९३४)

अहद-हा-आम ने १८९७ में जिस पत्र 'ह-शिलोआ' का आरम्भ किया, उसमें अनेक प्रतिभाशाली साहित्यिकों ने लिखा। प्रतिभावान लेविन्स्की[१] और फीन्बर्ग[२] ने भी। अहद हा-आम का प्रधान शिष्य जोजेफ क्लाउज्नेर[३] है, जो आज भी जेरूसेलेम की हिब्रू यूनिवर्सिटी में प्रौफेसर है। क्लाउज्नेर लिथुआनिया में जन्मा था, पर फिलिस्तीन में १९२६ में बस गया। वह सुन्दर आलोचक और इतिहासकार है। दर्शन, भाषाशास्त्र आदि में भी उसकी अद्भुत गति है। उसकी प्रधान रचनाएँ हैं—'ईसा से पाल तक', 'नजरथका ईसा', 'इब्रानी-साहित्य का इतिहास'। अहद हा-आम के बाद क्लाउज्नेर ने ही 'ह-शिलोआ' का सम्पादन भी किया। उसी पत्र में जोशुआ थॉन[४], मोर्देकाई एह्रेन्प्रीस[५] और तीव्रमेधा बर्डिचेव्स्की[६] ने भी लिखा। तीनों पत्र की नीति के प्रबल विरोधी थे, विशेषकर बर्डिचेव्स्की जिसने कहानियों के अतिरिक्त कुछ उपन्यास भी लिखे।

बर्डिचेव्स्की का अनुयायी साउल चेरनिहोव्स्की[७] असाधारण कवि था, भावुक, सुकुमार, मधुर। वनों, पर्वतों, ऋतुओं का उसने अभिराम अंकन किया। उसने भी अपनी जाति के संघर्ष का चित्र खींचा और अन्याय पर रोष प्रकट किया। परन्तु मधुरांकन द्वारा। वह सार्वभौम कवि था। उसके विचार से प्राचीन संस्कृति कुण्ठित हो चुकी थी और अब नई संस्कृति, नए विचारों, नए देवताओं की यहूदियों को आवश्यकता थी। परन्तु वह बियालिक की लोकप्रियता न प्राप्त कर सका। जलमान श्निओर[८] साहित्य में बागी है। उसने अपने यिद्दिश और इब्रानी उपन्यासों में देवताओं और पुरानी परंपराओं को चुनौती दी। उनका लोप ही उसने मानव उदय का जरिया बताया। चेरनिहोव्स्की और बियालिक के प्रभाव ने अनेक सुघड़ कवि उत्पन्न किए। इनमें जेकब कोहन[९] लिरिक और उच्च विचारों का सुन्दर कवि हुआ। उसी की भाँति फिलिस्तीन में डैविड शिमोनोविट्स[१०], जेकब फिकमन[११], जेकब स्टीन्बर्ग[१२], आइजेक काटजेनेलेन्सन[१३], सभी रचनाशील हैं।

डैविड न्यूमार्क[१४] ने इस्राइली दर्शन का इतिहास लिखा। परन्तु दो खण्ड निकालकर ही मर गया। जेकब क्लाटिज्कन मौलिक गम्भीर दार्शनिक है। व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में प्रधान शोफमन[१५] और बेरकोविट्स[१६] हैं। घैटो जीवन के रहस्यभेदी

---

१. E. L. Levinski (१८५३-१९०९); २. M. Z- Feinberg (१८७४-९९); ३. Joseph Klausner (ज. १८७४); ४. Joshua Thon; ५. Mordecai Ehrenpreis; ६. M. J. Berdichewski (१८६५-१९२१); ७. Saul Tchernihowski (१८७३-१९४४); ८. Zalman Shneor (ज. १८८७); ९. Jacob Cohen (ज. १८८१); १०. David Shimonowitz; ११. Jacob Fichman; १२. Jacob Stienberg; १३. Isaac Katzenelenson; १४. David Neumark (१८६६-१९२४); १५. G. Shofman; १६. I. D. Berkowitz

उपन्यासकार ब्रेनेर[१] और बेन जॉयन[२] थे। बेरशाडस्की[३] ने अपन दो उपन्यासों में निम्नमध्यवर्ग का चित्र खींचा। कबक[४] उपन्यासों और अनेक नाटकों का रचयिता हो गया है। ग्नेसिन[५] ने दुरूह छायावादी रचना की। उसकी प्रेरणा सर्वथा अन्तर्मुखी थी।

: ५ :

फ़िलिस्तीनी साहित्य

पिछले पचास वर्षों से फ़िलिस्तीन की भाषा इब्रानी रही है। इससे नई शब्दावली, लाक्षणिक-पारिभाषिक भाषा आदि की आवश्यकता पड़ी और शीघ्र बेन यहूदा[६], येलिन[७], ग्राजॉउस्की[८], ट्रोक्जिनर[९] आदि ने भाषाशास्त्र पर अपने अध्ययन प्रकाशित किए। पिछले महासमर के बीच भी वहाँ दो पुस्तकें प्रतिदिन के हिसाब से निकलती रहीं। आज चिकित्सा, स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग, शिक्षा, कृषि आदि विषयों पर भी सैंकड़ों पुस्तकें हैं। इधर पूर्वात्य यहूदियों के जीवन का भी अध्ययन हुआ है। यहूदा बर्लो[१०] ने फिलिस्तीन में शरण लेने वाले येमन के यहूदियों के जीवन का अपनी कृतियों में बड़ा सफल चित्र खींचा है और इजेक शमी[११] ने उनकी समस्याओं पर अपनी कहानियों में विचार किया है। इसी प्रकार स्मिलान्स्की[१२] (हौजा मूसा) ने अरबी दुनिया की कहानियों से इब्रानी-साहित्य को समृद्ध किया है। कवि और आलोचक जेकब फिकमन ने भी अपनी रचनाओं से फिलिस्तीन के नए साहित्य को सनाथ किया है।

आबिग्डोर हामिइरी[१३] कवि और उपन्यासकार हैं। उसने सम्प्रति जीवन का सुन्दर अंकन किया है। उसकी कहानियाँ प्रथम महासमर की क्रूर घटनाओं से भरी हैं। जूडाह कार्नी[१४] भी समर्थ कवि है। जिसने फिलिस्तीन को अपना घर बना लिया है। वहाँ के अन्य प्रधान कवि हैं, अब्राहाम श्लोम्स्की[१५], ग्रीनबर्ग[१६], आइजेक लम्डन[१७], रूसी ईसाई एलिशेबा[१८], जो यहूदी आदर्शों से प्रभावित होकर फिलिस्तीन में बस गया और आशावादी अन्डा पिंकरफेल्ड[१९]। कवि राकेल[२०] इकतालीस वर्ष की आयु में ही मर गया।

---

१. J. H. Brenner (१८८१-१९२१); २. S. Ben-Zion (१८७०-१९३०); ३. I. Bershadski (१८७०-१९०८); ४. A. A. Kabak (१८८३-१९४५); ५. A. N. Gnessin (१८८०-१९१३); ६. Ben Yahuda; ७. Yellin; ८. Grazowski; ९. Troczyner; १०. Yehuda Burlo; ११. Isaac Shami; १२. M. Smilianski (Hawaja Musah); १३. Abigdor Ha-Meiri; १४. Judah Carni; १५. Abraham Shlomsky; १६. U. Z. Greenberg; १७. Isaac Lamdan; १८. Elisheba; १९. Anda Pinkerfeld; २०. Rachel (१८९०-१९३१)

हजाज[1] ने रूसी क्रान्ति पर अनेक उपन्यास लिखे। स्टाइनमन[2] फ्रायड का अनुयायी मनोवैज्ञानिक है।

फिलिस्तीन के नए साहित्यकारों में प्रधान हैं—डोव किम्ही[3], एबर हडनी[4], जूडायारी[5]। 'आधुनिक इब्रानी साहित्य का इतिहास' लेखक फिशेल लाकोवर[6] विद्वान समालोचक और निबन्धकार है। फिलिस्तीन ने इधर के दिनों में गोर्डन[7] सा दार्शनिक भी उत्पन्न किया, जिसने श्रम को धर्म घोषित किया। एम० एच० एमिशी[8] ने १९४० में अपना चिन्तन ग्रन्थ 'विचार और सत्य' प्रकाशित कर दर्शन के क्षेत्र में नया कदम रखा। इस काल फिलिस्तीन के उस नए इस्राइली राज्य में सर्वत्र नव-निर्माण की धूम है। साहित्य, राजनीति, समाज, सर्वत्र। नित्य दूर देशों के यहूदी अपने पूर्वजों के देश को लौट रहे हैं, रातों-रात बियाबाँ में गाँव उठ खड़े होते हैं। इसी प्रकार साहित्य में भी मौलिक कृतियों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं से अनुवाद की दिशा में वहाँ प्रभूत काम हो रहा है।

: ६ :

अमेरिकन-इब्रानी-साहित्य

उन्नीसवीं सदी के चौथे चरण में ही अमेरिका में इब्रानी पुस्तकों का प्रकाशन शुरू हो गया था। अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी उसी सदी में प्रारम्भ हुआ। रोजेनबर्ग[9] ने 'ओजर ह-शेमोथ' नाम का बाइबिल पर अपना विश्वकोष प्रकाशित किया। आइजेन्स्टा-इन[10] ने भी अनेक कोष और काव्य-संग्रह छापे। गेरशेन रोजनवाइग[11] ने कहावतें और कविताएँ प्रकाशित कीं। जब रूस में यहूदियों का 'पोग्रम' (हत्याकाण्ड) शुरू हुआ तो अमेरिका में विशेष रूप से इब्रानी-साहित्य का प्रकाशन होने लगा।

१९१० तक इब्रानी भाषा और साहित्य के प्रचार के लिये अनेक संस्थाएँ चल निकलीं। इनके प्रधान विद्वान दार्शनिक इस्राइल एफ्रॉस[12] और पण्डित दार्शनिक मेयर वैक्समन[13] थे। १९२० में जब जर्नलिस्ट और आलोचक कर्मठ मेनहेम रिबालो[14] अमेरिका पहुँचा तब इब्रानी-साहित्य का प्रचार वहाँ और जोर पकड़ गया। न्यूयार्क में १९२२ में स्थापित उसका साप्ताहिक 'ह-दोआर' आज भी चल रहा है। उसके सहकारी कालम्निस्ट (पत्रकार)

---

१. Hazaz; २. E. Stienman; ३. Dov Kimhi; ४. Eber Hadani; ५. Juda Yaari; ६. Fishel Lachower; ७. A. D. Gordon (१८५६-१९२२); ८. M. H. Hamshi; ९. A. H. Rosenberg (१८३८-१९२३); १०. J. D. Eisenstein (जन्म १८५४); ११. Gershan Rosenzweig (१८६१-१९१४); १२. Israel Efros; १३. Meyer Waxman; १४. Menahem Ribalow (ज. १८९९)

डैनिएल पर्स्की[1] ने भी इस दिशा में बड़ा काम किया। वहाँ के कवियों में प्रधान हैं— सिल्किनेर,[2] दार्शनिक निबन्धकार मैक्सिमन[3], एफ्रैम लिसिटस्की[4], शालीन कवि हिलेल बाब्ली[5], मधुर कवि फाइन्स्टाइन[6], हाल्कीन[7] (उपन्यासकार भी) और रिजेल्सन[8] (उपन्यासकार भी)। ब्लैंक[9] और टवेर्स्की[10] उपन्यासकार हैं। सैकलर[11] उपन्यासकार और नाटककार दोनों है। वैक्समैन, मलाकी[12], और कदूशिन[13] दार्शनिक और निबन्धकार हैं। उदीयमान कवियों में गेब्रिएल प्राइल[14] है।

हिटलरी प्रलय से भागे हुए विद्वानों और साहित्यिकों में प्रधान हैं—'बित्जारों' के सम्पादक कैम, चेरनोविट्स[15], ताल्मुदके पंडित ऐस. के. मिर्स्की[16], कवि श्निओर[17], दार्शनिक क्लिआल्स्किन[18], अर्थशास्त्री सिमिअन फेदेरबुश[19], प्राच्यविद्या विशारद ए. ऐस. येहुडा.[20], मनोवैज्ञानिक टुरोव[21], निबन्धकार और लेखक जटजर[22] और हिलेल्स[23]।

---

१. Daniel Persky; २. B. N. Silkiner (१८८८-१९३४); ३. S. Maximan (१८८२-१९३३); ४. Ephraim Lisitzki; ५. Hillel Babli; ६. M. Feinstein; ७. S. Halkin; ८. A. Regelson; ९. S. L. Blank; १०. Y. Twersky; ११. H. Sackler; १२. A. L. Malachi; १३. M. Kadushin; १४. Gabriel Preil; १५. Chaim Tchernowitz; १६. S- K. Mirsky; १७. Shneor; १८. Klialzkin; १९. Simeon Federbush; २०. A. S. Yehuda; २१. N. Turov; २२. S. Z.Zetzer; २३. S. Hillels

६. ग्रीक-साहित्य

क्लासिकल-युग
(९००-३२३ ई० पू०)

: १ :

वीरकाव्य

यूरोप के विविध साहित्यों पर जितना प्रभाव ग्रीस के प्राचीन साहित्य का पड़ा उतना और किसी का नहीं। ग्रीक-साहित्य ने संसार को बहुत कुछ दिया—होमर, सौक्रेटीज (सुकरात) एस्चिलस, सोफोक्लीज, युरिपीडीज, एरिस्टोफेनीज, प्लेटो (अफलातून) अरिस्टॉटल (अरस्तू) सोफिस्ट-स्टोइक-एपिक्यूरी दर्शन। यूरोप के ऊपर तो निश्चय ही इनका बड़ा असर पड़ा, उसके दर्शन पर, साहित्य और आलोचना पर, कला और विज्ञान पर।

उस ग्रीक-साहित्य को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। ये तीन भाग ग्रीकों के तीन राजनीतिक काल-प्रसारों पर अवलम्बित हैं। इनमें से पहले को लाक्षणिक रूप में 'क्लासिकल' कहते हैं, जिसे हम सर्वथा वीर-गाथाकाल तो नहीं कह सकते परन्तु निश्चय ही वह उसके बहुत समीप हैं। यह काल-प्रसार ईसा से पूर्व ९०० से ३२३ वर्ष तक है। इस बीच ग्रीकों ने अपने प्रख्यात नगर-राज्यों का विकास किया। यह ग्रीक-इतिहास का प्राचीनतम युग था। इस युग का अन्त पूर्व और मध्यपूर्व में ग्रीकों के साम्राज्य-निर्माण के साथ हुआ।

दूसरा काल-प्रसार चौथी सदी ई० पू० से शुरू होकर ईसा पूर्व दूसरी-पहली सदी तक है, जब व्यक्ति का नगर-राज्यों से सम्बन्ध कमजोर पड़ गया और ग्रीकों की आबादी नये विजित देशों में फैल चली। उस काल साहित्य का एक नया रूप विकसित हुआ, ऐसा रूप जिसमें विश्व-साहित्य के बीज थे, यद्यपि जिसकी साधना एक अत्यन्त छोटे वर्ग को शिक्षित करने के लिए हुई। उसमें निस्सन्देह 'क्लासिकल-युग' की कृतियों की ताजगी नहीं है। वस्तुतः इस काल का आरम्भ ईसा पूर्व ४थी सदी से ही हो जाता है। दूसरी-पहली ईसा पूर्व की सदियाँ उस काल-श्रृंखला की पिछली कड़ियाँ हैं जब रोम के विजेताओं ने ग्रीस की विजय कर उसे विस्तृत-रोमन साम्राज्य का प्रान्त बना लिया। तब से ग्रीक-साहित्य के तीसरे और अन्तिम युग का प्रारम्भ होता है जिसे 'ग्रेसो-रोमन'-युग कहते हैं। इस काल प्राचीन क्लासिकल विभूतियों की ओर ग्रीक और रोमन लेखकों की दृष्टि लौटी। एक प्रकार का पुनर्जागरण हुआ। फिर भी ईसाई-साहित्य धीरे-धीरे उसके ऊपर हावी होता

थे, उसी प्रकार जैसे महाभारत, रामायण के पहले भारत में भी प्राचीन गाथाएँ गायी जाती थीं। आठवीं सदी ईस्वी पूर्व के आसपास ग्रीकों ने अपने पड़ौसी फिनिशियनों से इब्रानी लिपि सीखी और उसके बाद साहित्य लिखा भी जाने लगा, परन्तु लिखी हुई प्राचीनतम कृति भी ५०० ईस्वी पूर्व के पहले की नहीं है। वस्तुतः तभी से 'क्लासिकल' साहित्य-काल का ग्रीस में आरम्भ होता है।

वीर-काव्य-युग या क्लासिकल साहित्य का आरम्भ होमर[1] की रचनाओं—'ईलियड' और 'ओडिसी'—से होता है। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी रचना उनके लिपि-बद्ध होने से बहुत पूर्व हो चुकी थी और वे चारणों द्वारा बराबर गा-गाकर बचा रखी गयी थीं। इनमें 'ईलियड' का स्थान बहुत ऊँचा है। ईलियड में ट्रॉय के नगर के साथ ग्रीकों का दश-वर्षीय युद्ध वर्णित है, यद्यपि इस काव्य में केवल अन्तिम दसवें वर्ष का समर प्रतिबिम्बित है। ट्रॉय का घेरा और युद्ध दोनों का ईलियड में अनुपम चित्रण हुआ है। वह चित्रण आज के अंकनों से सर्वथा भिन्न है। ग्रीक-स्कन्धावरों और शिविरों में घटने वाले प्रसंगों का वर्णन बड़ा सजीव और लोमहर्षक है। युद्ध अधिकतर द्वन्द्व-युद्ध हैं, जिनमें योद्धाओं के जोड़े लड़ते और विनष्ट होते हैं। ईलियड का कथानक बस इतना है कि एकिलिज, जो ग्रीकों का अनुपम और आदर्श वीर है, क्रुद्ध होता है और उस क्रोध का बर्बर बदला लेता है। पहले तो वह ग्रीकों के प्रधान सेनापति अगामेम्नन से बन्दी तरुणियों के बाँट के सम्बन्ध में (अगामेम्नन उसकी वांछित तरुणी को स्वयं ले लेता है) क्षुब्ध होकर युद्ध से हाथ खींच लेता है और ग्रीकों के अनुनय तथा अगामेम्नन की क्षमा-प्रार्थना पर भी कुछ ध्यान नहीं देता। फिर जब उसकी अनुमति और उसका अच्छा कवच लेकर उसका मित्र पाट्रोक्लस युद्ध में शामिल होकर प्रियम के पुत्र हेक्टर द्वारा मारा जाता है तब एकिलिज नितान्त दुःखी और क्रुद्ध हो कर रण-क्षेत्र में झपट पड़ता है। अभिमन्यु-वध से युद्ध में सूर्यास्त तक जयद्रथ के वध का प्रण किये अर्जुन का जो रूप समर-भूमि में महाभारत में मिलता है वही एकिलिज का ईलियड में है। मैदान में उसके सामने लाशें बिछ जाती हैं, जो सामने आता है नष्ट हो जाता है। प्रियम के सभी बेटे बारी-बारी निधन को प्राप्त होते हैं। सम्भ्रान्त नागरिक संत्रस्त हो कर प्रियम के बेटे पैरिस से युद्ध की कारण हेलेन को ग्रीकों को लौटा देने की प्रार्थना करते हैं, परन्तु वह नहीं डिगता और अद्‌भुत पराक्रम दिखा कर रण में स्वयं मारा जाता है। एकिलिज अन्त में ट्रॉय के शालीन पराक्रमी हेक्टर को मार डालता है। हेक्टर ने उसके मित्र का वध किया था इससे वह उसका निजी शत्रु है। उसे मार कर वह उसकी लाश रथ के चक्रों में बाँध ट्रॉय की दीवारों के चारों ओर दौड़ता है और अन्त में उस कुचली लाश के भी टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहता है। 'ईलियड' पढ़ते समय एकिलिज की यह बर्बरता उस

१. Homer (९वीं सदी ई० पू०)

भीम की बर्बरता की याद दिलाती है जो दु:शासन को मार कर ही तृप्त न हो सका था, उसकी छाती फाड़ उसने उसका अंजलियों से रक्त भी पी लिया था। ठीक तभी जब एकिलिज हैक्टर के शव का अंग-विच्छेद करने को उद्यत है, हैक्टर का पिता वृद्ध प्रियम पहुँच कर उस से बेटे की लाश माँगता है और उसके हाथ चूम लेता है। परिस्थिति की करुणा तब साकार हो एकिलिज का हृदय छू लेती है, उसे अपने पिता का स्मरण हो आता है और वह हैक्टर की लाश उसके पिता को लौटा देता है। फिर ट्रॉय का विध्वंस होता है और उसका राजा स्वयं वृद्ध प्रियम तक ग्रीकों की संहार-क्रिया से नहीं बच पाता। यही ईलियड का कथानक है।

युद्ध उसी परंपरा में था जो अक्सर नवागन्तुक ग्रीक्स और ग्रीस के पुरान निवासियों के बीच हुआ करता था। मिकीनी मिट चुका था, ट्रॉय अभी शेष था, दर्रा दानियाल के पास एशिया माइनर (लघु एशिया) में अपने पूर्ववर्ती भग्नावशेषों के ऊपर खड़ा। ग्रीक ट्रॉय को वैसे भी ऐतिहासिक कारणों से नष्ट करना चाहते थे, अब उनकी बर्बर कृति के लिए उन्हें अवसर भी मिल गया। पैरिस प्रियम का पुत्र था, पराक्रम और सौन्दर्य दोनों में अनुपम। सुन्दर तो वह इतना था कि ग्रीक पुराण कथाएँ कहती हैं, देवियाँ तक उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गयीं और उन्होंने अपने रूप की होड़ में पैरिस से निर्णय माँगा। पैरिस ने वह निर्णय प्रेम और काम की देवी अफ्रोडाइटी के पक्ष में दिया। कृतज्ञ अफ्रोडाइटी ने उसे ग्रीकों की सब से सुन्दर नारी हेलेन के प्रणय का वरदान दिया। हेलेन भी पैरिस को देख उसके रूप पर रीझ गई और एक दिन स्पार्टा के राजा मेनेलास की अनुपस्थिति में उसके दरबार में पहुँच पैरिस उसकी पत्नी हेलेन को ट्रॉय ले भागा। उसी हेलेन की प्राप्ति के लिए सम्मिलित ग्रीक सेनाओं ने ट्रॉय पर घेरा डाला। ट्रॉय का विध्वंस कर हेलेन को ले अगामेम्नन का भाई मेनेलास स्पार्टा लौट गया।

ईलियड का कथा-निर्वाह कुछ जटिल है परन्तु उसके अंकन बड़े सजीव, उदात्त और लोमहर्षक हैं। कवि प्राचीन बर्बर युद्धों का जिक्र समसामयिक ग्रीक बर्बरों में करता है जो युद्ध के दाँवपेंच भली भाँति समझते हैं और स्वयं वीर-दर्प से ऊर्जस्वित नित्य लड़ाइयाँ लड़ते रहते हैं। ईलियड के पात्रों का होमर ने बड़ा तेजस्वी और खुला रूप खींचा है। उसके वर्णन में रेखाएँ नहीं तत्क्षण की उभरी आकृतियाँ हैं, स्पष्ट, सबल, कर्मठ। परन्तु उसके चरित्रों में अन्तर है। ग्रीकपक्ष के अनेक चरित्र लोकोत्तर हैं, देव-तुल्य, अर्धदेव। किसी की माता देवी है, किसी का पिता देवता। परन्तु हैक्टर आदि का वर्णन अद्‌भुत मानवीय है। एकिलिज देवोपम है, हैक्टर सर्वथा मनुष्य। हैक्टर मानव होकर भी देवोत्तर एकिलिज से कहीं अधिक हमारी सहानुभूति का पात्र हो उठता है और वह अपनी मृत्यु के कारण नहीं अपनी लोक-चेतना, स्वदेश-प्रेम तथा पराक्रम से। एकिलिज स्वयं कम पराक्रमी नहीं है परन्तु वह अर्धदेव है और देवता का पराक्रम जन्म-सिद्ध होने से महत्व नहीं रखता। खतरे

में साहस के साथ जान को डाल देना मनुष्य की ही अकृत्रिम विशेषता है और हैक्टर उसी का प्रतीक है। होमर के देवता भी प्राचीन कृतियों की तरह मानवीय आचरण करते हैं, मानव-आवेशों से भरे हैं, क्रोध, ईर्ष्या, राग आदि के शिकार हैं। ईलियड अद्भुत कृति है वीर-काव्य जगत् की यह पहली रचना, आठवीं-नवीं ईस्वी पूर्व के लगभग रची गई।

होमर का दूसरा काव्य 'ओडिसी' है, ग्रीस की प्राचीन लोक-कथाओं पर आधारित। ट्रॉय-युद्ध के वीरों में सबसे चतुर इलिसिज युद्ध के बाद जहाज पर द्वीप-द्वीप फिरता रहता है और दस वर्ष उसकी साध्वी पत्नी पेनिलोप उसके आसरे बैठी रहती है। उस बीच उससे विवाह करने के इच्छुक अनेक श्रीमान उसी के यहाँ पड़े रहते और खाते-पीते हैं। उसे विवाह करने के लिए परेशान करते हैं। इलिसिज का पुत्र पिता की खोज में द्वीप-द्वीप जहाज लिए फिरता है जो साहस का काम है और जिसे सहज साहस से महाकवि होमर ने उस वीर-काव्य में अंकित किया है। इलिसिज़ लौटता है और पत्नी के प्रणय-पीड़कों का वध कर डालता है।

होमर की भाषा इओलिक और आयोनिक बोलियों का सम्मिश्रण है, जो वीर-काव्य के लिए बड़ी सशक्त हैं। इन काव्यों में ताम्र और लौह-युग की दोनों भिन्न संस्कृतियों का वर्णन हुआ है। वे संस्कृतियाँ अपने ऐतिहासिक रूप में पुराविदों को अपनी सच्चाई से कम से कम ईलियड के स्तर से, उसके कथानक के ट्रॉय सम्बन्धी ऐतिह्य से, प्रभावित पहले न कर पाई थी पर जब श्लीमान ने ट्रॉय नगर के एक पर एक खड़े ९ भग्नावशेषों को एशिया माइनर में दर्रा दानियाल के पास खोद निकाला तब उन्हें ट्रॉय युद्ध पर विश्वास हुआ। ट्रॉय के भग्नावशेषों की परंपरा में ईलियड वाला नगर छठा है। ट्रॉय युद्ध की तिथि साधारणतः ११८४ ई० पू० मानी जाती है। नवीं सदी ईस्वी पूर्व के लगभग होमर ने गाथाओं को एकत्र किया और उनको एक में घुला-मिला कर अपनी मेधा से नयी अद्भुत काया प्रदान की। उसने उनको अपनी काव्य धारा में उदरस्थ करके भी प्राचीन गाथाओं की अनेक भाषा सम्बन्धी विशेषताएँ, विशेषण आदि वैसे के वैसे प्रयुक्त किये।

होमर कौन था, या कहाँ का था यह कुछ सही-सही ज्ञात नहीं सिवा इसके कि वह, किम्वदन्तियों के अनुसार, जन्मांध था और यह कि ग्रीक-साहित्य का वह पहला वीर-काव्य-कार था। ऊपर कहा जा चुका है कि गाथाएँ पहले से प्रस्तुत थीं जिनका होमर ने उपयोग किया। फिर तो होमर के पूर्ववर्ती गायकों और कवियों का होना भी आवश्यक है और हमें ग्रीक-साहित्य में इस प्रकार के होमर-पूर्व के गड़रिया-गीतों के कवियों का निर्देश मिलता है। उन्हीं में से आरफियस और मूसियस थे पर उनकी कविता का हमें कोई ज्ञान नहीं।

होमर के काव्यों की सफलता इससे प्रकट है कि उसकी कविताओं के गायकों की एक श्रेणी (समुदाय) ही बन गई जिसे 'होमरीडी' कहते थे जिनका काम इजियन सागर

के द्वीपों और ग्रीस की यूरोपियन भूमि पर उन्हें गाते फिरना था। इस प्रकार इन काव्यों का प्रचार पहले गा-गाकर ही हुआ। बाद में, लगभग छठी सदी ईस्वी पूर्व के या सम्भवतः उसके भी बाद, पहली बार वे लिखे गये। ईलियड और ओडिसी के अनेक अनुकरण भी हुए, यद्यपि वे आज उपलब्ध नहीं, उनका केवल संकेत हमें साहित्य में मिलता है।

आठवीं सदी ईस्वी पूर्व तक वीर-काव्यों का लिखना तो जैसे समाप्त हो गया, परंतु उनकी छन्द-परंपरा बनी रही। कुछ सूक्त जो उस शैली में लिखे गए 'होमरीय सूक्त' कहलाते हैं। वे डेमेटेर, अपोलो, पान की प्रार्थना में प्रयुक्त होते थे। वीर छन्द का प्रयोग इसी प्रकार नीति-कविताओं के लिए हेसियऑड[1] ने भी किया। हेसियऑड के कुछ अनुकर्ताओं ने भी इस छन्द का उपयोग किया। दार्शनिक और वैज्ञानिक खोजों के सम्बन्ध में भी इसका व्यवहार हुआ।

धर्म सम्बन्धी विषयों पर दार्शनिक आक्षेप भी इस काल हुए, विशेषतः आठवीं सदी ईस्वी पूर्व में। वस्तुतः अदार्शनिक रूढ़िवादी धर्मान्धता के विरुद्ध लोगों में जिज्ञासा जग गई थी। उस जिज्ञासा और विरोधात्मक चिन्तन का समावेश, हेसियऑड ने अपनी कविता में किया। पहले की कविताओं की भाषा, भाव-विचार सभी कुछ सम्भ्रान्त और उच्चवर्ग के थे, परन्तु हेसियऑड ने अपनी कविताओं द्वारा निम्नवर्ग के पक्ष में विद्रोह किया। वह किसान की ओर से बोला। काम और दिन विषयक ग्रंथ में उसने किसान के भाव प्रकट किये। वह स्वयं भी बोइओटिया का किसान था, किसान था जिसकी भूमि साजिश द्वारा भाई और जजों ने छीन ली थी। इस कविता में उसने बोइओटिया के किसानों के कठिन जीवन का चित्र खींच कर रख दिया और सार्वभौम न्याय के पक्ष में आवाज उठाई। अपनी 'थियोगोनी' में पहली बार उसने ग्रीक पौराणिक विश्वासों का अध्ययन किया। हेसियऑड की कविताओं के भी अनेक अनुकरण हुए जिससे उनकी लोकप्रियता का अन्दाजा लगाया जा सकता है। उसकी कविताओं की ध्वनि भिन्न थी, परन्तु रूप वही वीर छन्द का पुराना ही था।

ई० पू० छठी सदी में वीर छन्द का उपयोग दार्शनिक क्षेत्र में पूर्णतः होने लगा। यवन (आयोनियन) दार्शनिक अपने संसार का जो मनन करने और बौद्धिक व्याख्या ढूंढ़ने लगे तो उन्हें इसी छन्द का उपयोग सुकर जान पड़ा। इसका मुख्य कारण यह था कि गद्य का अभी जन्म नहीं हुआ था। जैसे भारत में वैसे ही ग्रीस में भी साहित्य की पहली कृतियाँ पद्य में ही हुईं। इसके अतिरिक्त ईस्वी पूर्व छठी सदी में ऑर्फिक सम्प्रदाय का भी जन्म हुआ जिसने पहली बार आत्मा के आवागमन और आदि पाप का सिद्धान्त निरूपित किया। दोनों विचार वीर-काव्यों के ओलिम्पियन धर्म-परंपरा की परिधि के बाहर थे।

---

१. Hesiod (८वीं सदी ई० पू०)

इस सम्प्रदाय के दार्शनिकों ने अपने विचारों का वाहन वीर छन्द को ही बनाया। इस प्रकार उस सदी तक पहुँचते-पहुँचते होमर के छन्द का व्यवहार साहित्य में सर्वत्र होने लगा।

: २ :

लिरिक काव्य

ई० पू० सातवीं सदी तक क़बीला और देहाती जीवन का ग्रीस में अन्त हो गया था। उसका स्थान अब इतिहास में सर्वथा नए नगर-राज्य ले चले थे। इस क्रान्ति ने एक नए मध्य-वर्ग को जन्म दिया, जिसकी आर्थिक सत्ता कुछ भूमि पर विशेषतः वाणिज्य पर, अवलंबित हुई। राजनीति में कहीं तो सम्भ्रान्तकुलीय गण-शासन स्थापित हुआ, कहीं व्यक्ति 'टाएरैन्ट' की निःसीम सत्ता और अन्त में जनतन्त्र (डेमोक्रेसी)। इस प्रकार धीरे-धीरे व्यक्ति का महत्व बढ़ा। इस बदली स्थिति में 'लिरिक' काव्य का जन्म हुआ। आज 'लिरिक' की परिभाषा अधिक व्यापक और उसकी परिधि विस्तृत है। ग्रीस में उसका मूल उदय तन्त्री (लीर-लायर) स्वर में हुआ, इससे गेयता उसकी पहली पहचान हुई और यह गायन दोनों प्रकार का था, वैयक्तिक और कोरस रूप में समवेत। शोक विरहादि में भी उस शैली का उपयोग होने लगा और तब उसकी स्वर-संयुक्त गेयता सीमित हो गई, क्योंकि काव्य-वाचन भी अब उसका एक रूप हुआ। शोक-सम्वेदक कविताओं का उदय अधिकतर यवन (आयोनियन) नगरों में हुआ, यद्यपि आज वे प्राप्य नहीं हैं। आज इस प्रकार की जो कविताएँ उपलब्ध हैं वे स्पार्टा, एथेंस, मेगरा के नागरिकों की हैं—टिरटियस[1], सोलोन[2], थियोग्निस[3] की। इन कविताओं की आवाज राजनैतिक है जो उस काल की राजनीतिक और जिज्ञासु चेतना की परिचायक है। टिरटियस ने अपने गीतों में मेसेनिया जीतने में अपने स्पार्टावासियों का उत्साहवर्धन किया, लिकर्गस के नए विधानों की सराहना की। सोलोन ने एथेन्स में किए अनेक राजनीतिक परिवर्तनों को अपने गीतों से लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। उधर थियोग्निस ने अपने मेगारा की जनसत्ता का विरोध किया। इस प्रकार इन लिरिक कविताओं के विषय दुःख-प्रकाशन, प्रणय-निवेदन, मरसिया, सभी हो गए। आरंभिक गेय कविताएँ राजनीति-परक थीं।

यासोस के आर्किलोकस[4] ने 'आइएम्बिक' छन्दों में अपनी कविताएँ लिखीं और इस प्रकार की कविताओं का आदर्श उसी की (७वीं सदी ईस्वी पूर्व की) कविताएँ बनीं जो उसने अपने अपमान करने वाली नारी और उसके पिता के विरुद्ध लिखीं। ख्यातों में प्रसिद्ध है कि परिणामतः दोनों ने आत्महत्या कर ली। आर्किलोकस की कविताओं में चाहे वे राजनीतिक हों या प्रेमविषयक उनकी ध्वनि अपनी थी, वैयक्तिक।

---

१. Tyrtaeus; २. Solon; ३. Theognis; ४. Archilochus (७वीं सदी-ई०पू०)

लिरिक-कविता ने ग्रीस में बराबर अपना गेयस्वरूप कायम रखा। उसकी भाषा सरल और सुगम थी, आम लोगों की। उसका छन्द और उसकी शब्द-योजना, सभी सहज थे और उनमें साधारण जनों के हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग, प्रणय-क्रोध आदि वर्णित होते थे, सर्वथा निजी रूप से और गेयता उनका आवश्यक गुण था। जिन लिरिकों को अकेले गाया जाता था उन्हें 'सोलो' लिरिक कहते थे। उनके प्रारंभिक महत्त्व के कवि अल्किउस[1] और सैफो[2] थे। दोनों ही सम्भ्रान्तकुलीय थे, दोनों में शब्दलालित्य और भावुकता थी। दोनों लेस्बास द्वीप के रहने वाले थे, ईस्वी पूर्व सातवीं सदी के मध्य के। सैफो तो लिरिक की अद्भुत प्रचारिका थी। अफ्रोडाइटी की पूजा के लिए वह नारियों का एक दल साथ ले लेती। उनके सम्पर्क में उसे एक प्रकार का आध्यात्मिक सुख और प्रेरणा मिलती थी। उसके नाम के साथ अनेक कहानियाँ और अनुश्रुतियों का संबंध हो गया है। उसकी बस थोड़ी ही रचनाएँ बच रही हैं, परन्तु उनसे उत्कट नारी-भावुकता का परिचय मिलता है। उसकी सरल, परिमार्जित, स्पष्ट शैली हृदय को छू लेती है। उसकी कविताओं का भाव-प्रवाह सहज है। उसका अनुकरण भी प्राचीन काल में काफी हुआ। मिस्र से कुछ 'पेपिरस' पर लिखी सामग्री मिली है, जिससे पता चलता है कि सातवीं सदी ईस्वी तक उसका यश मलिन नहीं हुआ था। उसके अनुकर्ताओं में प्रधान अनाक्रियन[3] और काटुलस[4] थे। इनमें से पहले ने प्रणय और आपानविषयक अनेक अभिराम कविताएँ लिखीं। आयोनिया से वह एथेन्स आया पर वहाँ के राजनीतिबहुल सामाजिक जीवन से उसे विशेष सहानुभूति न मिली। पाँचवीं सदी ई० पू० में तो 'सोलो' लिरिक का लोप हो ही गया।

डोरियन नगरों में कोरस लिरिकों का प्रचलन हुआ और वही डोरियन बोली की ग्रीक भाषा और साहित्य को देन है। इसका मूल आरम्भ भी सम्भवतः आयोनिया में ही हुआ था, पर विकास डोरियन नगरों में हुआ। इसमें वैयक्तिक उद्गार का इतना महत्त्व न था जितना सामूहिक रूप से धर्म-चेतना का। इनका उपयोग देवपूजा, मरसिया, विवाह, नृत्य आदि के अवसर पर होता था, परन्तु इनका मूल उद्देश्य धर्म से ही अनुप्राणित था। इनकी रचनाएँ पेचीदी थीं, क्योंकि इनका गायन नृत्य-वाद्य के साथ होता था। कोरस लिरिक का पहला जाना हुआ रचयिता अल्कमन[5] है। उसकी लिरिक का खंडमात्र प्राप्य है। यह लड़कियों के लिए कोरस का गान है। छठी सदी ईस्वी पूर्व में इनका प्रयोग विजय-संबंधी रचनाओं में होने लगा। इबिकस[6] और विशेषतः पिण्डार[7] ने इनका विकास किया। इस प्रकार की कवितायें लिखने में पिण्डार बड़ा पारंगत था। खेलों के अवसर पर उसकी कविताएँ गायी जाती थीं। उसकी उपमाएँ, कल्पनाओं की परंपरा असाधारण हैं। उसकी

---

१. Alcaeus; २. Sapho (६५० ई० पू०); ३. Anacreon (६ठी ई० पू०); ४. Catullus; ५. Alcman; ६. Ibycus; ७. Pindar (५१८-४२२ ई० पू०)

भाषा भी उसी प्रकार असामान्य शालीन है। कोरस लिरिकों का व्यवहार इतना बढ़ा कि पिन्डार 'आर्डर' पर रचना करने वाला पेशेवर बन गया। इस प्रकार के पेशेवर कवियों में सिमोनिडीज[१] और बैक्किलिडीज[२] भी थे। पिण्डार का रचनाकाल ५१८-४४२ ई० पू० था। इस प्रकार की लिरिक का स्थान ई० पू० पाँचवीं सदी में 'ट्रैजेडी' ने ले लिया।

: ३ :

नाटक

वीरकाव्य और लिरिक का विकास तो इयोलिक, डोरिक और आयोनिक बोलियों में हुआ परन्तु ईसा पूर्व पाँचवीं और चौथी शताब्दियों में साहित्य-निर्माण विशेषतः एथेन्स में हुआ। एथेन्स छठी सदी से ही राजनीतिक नेतृत्व धारण कर चला था। जितनी राजनीतिक उथल-पुथल वहाँ हुई उतनी और कहीं नहीं हुई। पहले वहाँ व्यक्ति-प्रधान निरंकुश शासन हुआ फिर जनसत्ताक राजनीति की प्रतिष्ठा हुई। ईरानियों के एशिया माइनर की विजय से भी कुछ लेखक और कलाकार भागकर वहाँ पहुँचे और उन्होंने साहित्य में एक क्रांति उपस्थित कर दी, फिर ईरानियों की पराजय ने ग्रीक्स को साहित्य-निर्माण के लिए बड़ी सामग्री दी।

ई० पू० पाँचवीं सदी का सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विकास ड्रामा (नाटक) था। उसके आरम्भ का कुछ पता नहीं चलता। पहले ग्रीस के देहातों में देव-संबंधी कोरस गाये जाते थे, शायद उन्हीं से ग्रीक 'ट्रैजेडी' का विकास हुआ। कोरस के गायन के साथ ही थेस्पिस[३] ने एक अभिनेता का उपयोग करना शुरू किया जिससे एक प्रकार का 'डायलॉग' व्यवहृत होने लगा और नाटक का प्रारंभिक रूप खड़ा हो गया। इसी से थेस्पिस ट्रैजेडी का निर्माता कहलाता है। डायलॉग ने नाटकीय परिस्थितियाँ उपस्थित कर दीं। ई० पू० ५३५ के लगभग पेइसिस्ट्रेटस[४] ने डायोनिसस के राजकीय व्यवहार पर ट्रैजेडी के कुछ तत्व निदर्शित किये। फिर तो एथेन्स के धार्मिक और सार्वजनिक अवसरों पर नाटकीय प्रदर्शन अनिवार्य हो गए। राज्य स्वयं उन प्रदर्शनों का संगठन करता था और स्वयं उनका खर्च भी देता था। ई० पू० पाँचवीं सदी तक जब इस्किलस[५] न लिखना आरम्भ किया, नाटक अपने आवश्यक लक्षण धारण कर चुका था। इस्किलस ही नाटक, ट्रैजेडी, का प्रवर्तक था। उसी ने अपनी सूझ और साहित्यिक सामर्थ्य से ग्रीक-साहित्य को ट्रैजेडी का अनुपम रत्न दिया। उसने प्राचीन पौराणिक आख्यानों को जिउस के सार्वभौम न्याय से समन्वित कर नाटकों की अभिसृष्टि की। उसने पौराणिक आख्यानों के अतिरिक्त

१. Simonides; २. Bacchylides; ३. Thespis; ४. Peisistratus; ५. Aeschylus (५२५-४५५ ई० पू०)

वीर-काव्यों से भी सामग्री ली। उसने शायद ही कभी समसामयिक घटनाओं को अपने नाटकों का आधार बनाया। एक 'पर्शियन' (ईरानी) मात्र उसका अपवाद है। इसमें उसने निःसन्देह ईरानी सम्राट् कसेरेक्स की पराजय को प्लाट बनाया। पहले कोरस का प्राधान्य था और नाटकीय परिस्थितियाँ बहुत न्यून होती थीं, पर इस्किलस ने अपने पिछले नाटकों में यह कमी पूरी कर दी, नाटकीय प्रसंगों का विशेष विकास कर दिया। नाटक तीन-तीन प्लाटों का एकत्र उपयोग करते थे '(इन्हें 'ट्रिलोजी' कहते थे) जिनके अन्त में एक प्रहसन जोड़ दिया जाता था। 'ट्रिलोजी' बाद में एक ही प्लॉट का प्रयोग करने लगी। इस्किलस ने अपने पात्रों को वीरकाव्यों की सरलता दी। उनके कार्य अधिकतर एक ही शक्तिम मनोयोग अथवा एक ही भावावेग से प्रचलित होते हैं। उनमें सम्मिलित उद्देश्यों का अभाव होता है।

ट्रैजेडी का अभिराम रूप सोफ़ोक्लीज[1] ने प्रस्तुत किया। उसने कोरस और नाटकीय स्थितियों में उचित संतुलन रखा। दोनों की मात्राओं की उचित मर्यादा थी। नाटक भी अब ट्रिलोजी के अंग न होकर स्वतन्त्र और सम्पूर्ण रचना बन गए। उसके पात्रों की अनेकता ने विविध भावावेगों का समवेत निदर्शन संभव किया और उसने इस्किलस से सर्वथा भिन्न मानव-प्रकृति और स्थिति-विशेष में उसकी प्रतिक्रिया पर जोर दिया, जहाँ इस्किलस ने सार्वदेशिक नैतिक सिद्धान्त को अपना आदर्श बनाया था। इसी से सोफ़ोक्लीज को उस दिशा में आशातीत सफलता मिली। सोफोक्लीज क्लासिकल ग्रीक ट्रैजेडी का सबसे सच्चा प्रतिनिधि था। उसका समय अधिकतर नाटक लिखने में बीतता रहा होगा, फिर भी वह उस काल के एथेन्स का सही नागरिक था। औरों की भाँति ही वहाँ के राजनीतिक जीवन में वह खुलकर भाग लेता था। बौद्धिक क्षेत्र में अग्रणी था, और उस काल के विलासी जीवन में भी कुछ पीछे न था। उसने नाटक में तीसरे पात्र के अभिनय का आरम्भ किया और 'ट्रिलोजी' की परंपरा को तोड़कर नाटक में विविध भागों की एकता स्थापित की। परन्तु नाटक के क्षेत्र में जो उसका उस काल से आज तक विशेष महत्व माना जाता है, उसके कारण और हैं। भाषा की सूक्ष्मता, प्लॉट की एकता और असाधारण ग्रथन, और नाटकीय कला के स्वरूप पर उसका पूर्ण अधिकार—उसके पाँचवीं सदी ईस्वी पूर्व के ग्रंथ 'क्लासिकल' निरूपण को अभिव्यक्त करते हैं।

इस्किलस और सोफ़ोक्लीज़ दोनों के नाटक उस ग्रीक परंपरा में लिखे गये जिसमें ट्रैजेडी का उपयोग धार्मिक उत्सवों पर हुआ करता था। जनता आशा करती थी कि ट्रैजेडी का उद्देश्य गम्भीर, नैतिक शिक्षा हो। इसी कारण इस्किलस और सोफ़ोक्लीज के प्रभाव से नाटक के स्वरूप में कुछ पारंपरिक परुषता आ गई। जब यूरिपिडीज[2] ने

---

१. Sophocles (४९७-४०५ ई. पू.); २. Euripides (४८५-४०६ ई. पू.)

अपने नाटक लिखने शुरू किये तब उसे भी उसी परंपरा का पहले अवलम्बन करना पड़ा जो उसके लिए बड़ी झल्लाहट की चीज हो गई और नतीजा यह हुआ कि चूंकि वह सर्वथा नये रूप के नाटक न लिख सका, पुराने नाटकों की पद्धति भी पूर्णतः कायम न रख सका और दोनों का सन्तुलन बिगड़ गया। यूरिपिडीज ग्रीक ट्रैजेडीकारों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। उसकी अभिरुचि मानव-विकारों और आवेगों में थी। इसी कारण उसके नाटकों में एक ऐसी ध्वनि उठी जो इस्किलस और सोफ़ोक्लीज की पुरानी पद्धति से भिन्न थी। उसके नाटक वर्तमान काल के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और समस्या नाटकों के अनुकूल थे। उसके प्रधान नाटक शक्तिमान, भावावेगों से प्रेरित सशक्त व्यक्तित्वों के पारस्परिक संघर्ष को केन्द्रित करते हैं। 'मीडिया' घृणा से प्रेरित है, 'फ़ीड्रा' प्रणय से और 'आगावे' धार्मिक कट्टरता से। मानव-स्वभाव के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति ने यूरिपिडीज को नयी 'कॉमेडी' का जनक बना दिया और इसी कारण उसकी कॉमेडी प्राचीनों के बीच सोफोक्लीज की कला की असाधारण कुशलता के बावजूद अधिक लोकप्रिय हो गई। यूरिपिडीज ने १७ ट्रैजेडी (दुःखान्त नाटक) और एक व्यंग नाटक लिखा। वह ग्रीस की पाँचवीं सदी ईस्वी पूर्व के महान् तीन नाटककारों में से है। कोरस-गायनों का चलन अब उठने लग गया और उनको वस्तुतः विष्कम्भक बना दिया गया। यूरिपिडीज़ को भी नाटक को धार्मिक शिक्षण का वाहन बनाने में कुछ विशेष अभिरुचि न थी, यद्यपि उसका उपयोग पारस्परिक धर्म की कमजोरियाँ प्रदर्शित करने में वह न चूका। उसकी विशेष अभिरुचि वस्तुतः, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, पात्रों की पारस्परिक मनोवृत्तिक प्रतिक्रिया के प्रदर्शन में थी। नये प्रसंग, विनोदपरक डायलॉग, करुण, यथार्थ वस्तुतत्व—यूरिपिडीज की भावशृंखला की कड़ियाँ थे। वह नाटक अपनी अनुभूति और समसामयिक जीवन की आलोचना के रूप में लिखना चाहता था जो परंपरागत ट्रैजेडी की शैली द्वारा सम्पन्न करना सम्भव न था। उसकी इस प्रवृत्ति की उसके समकालीनों ने कटु आलोचना भी की और एरिस्टोफ़ेनीज[१] ने तो उस पर गहरी चोट की, परन्तु यूरिपिडीज ने नाटक के आने वाले रूप का आरम्भ कर ही दिया। चौथी सदी ई. पू. में भी ट्रैजेडी लिखी गई, परन्तु वह कमजोर थी और केवल दार्शनिक विचारों अथवा व्याख्यानों का वाहन बन कर ही प्रस्तुत हुई।

पाँचवीं और चौथी सदी ई. पूर्व के प्रारम्भ की पुरानी कॉमेडी ग्रीक ट्रैजेडी की ही भाँति पुरानी परंपरा की एक विशिष्ट साहित्यिक शैली थी। उसके विकास का हमें सही अन्दाज नहीं लग पाता क्योंकि उस प्रकार के केवल एक ही नाटककार, एरिस्टोफ़ेनीज, के ग्यारह नाटक हमें आज उपलब्ध हैं। कॉमेडी भी ट्रैजेडी की ही भाँति दियोनिसस की पूजा में ग्राम्य त्यौहार के प्रदर्शनों के आधार से उठी जान पड़ती है।

१. Aristophanes (४५०-३८५ ई. पू.)

एरिस्टोफ़ेनीज एथेन्स की पुरानी कॉमेडी का सबसे प्रधान लेखक था। उसका रचना काल पेलोपोनेसियन युद्ध काल था और उसने अपने अनेक नाटकों में उस एथेंस स्पार्टा के विध्वंसक युद्ध का अन्त कर शांति की स्थापना के पक्ष में आवाज उठाई। इन नाटकों में युद्धवादी राजनीतिज्ञों और जंगबाजों तथा एथेंस की नीति की खिल्ली उड़ाई गई है। उसने अपने नाटक 'मेघ' तथा साहित्यिक आलोचनाओं और प्रहसनों में सॉक्रेटीज के सोफ़िस्ट दर्शन पर भी प्रहार किया। पुरानी कॉमेडी को आधार बना कर अरिस्टोफ़ेनीज ने बड़ी ईमानदारी के साथ भँड़ैती के माध्यम से ही, सही, लिखा और एथेन्स के सामान्य नागरिक की साधुता में अपनी आस्था प्रकट की।

इस पुरानी 'कॉमेडी शैली' का ग्रथन 'ट्रैजेडी' से सर्वथा भिन्न था। इसमें उसकी 'यूनिटी' (एकता) न थी। अद्भुत और अजब से आरम्भ कर 'कॉमेडी' उत्तरोत्तर भँड़ैती के स्वतंत्र प्रसंग—एक के बाद एक फ़ार्स—अपने सूत में पिरोती जाती थी। इनमें देव-प्रहसन पौराणिक कथानक सभी स्थान पाते थे। धर्म की तो इसमें बड़ी भद्द की जाती थी। सार्वजनिक नेता, संस्थायें, राजनीति सभी कुछ नितान्त बेरहमी से इसकी पैरोडी और व्यंग्य के प्रसंग और शिकार बनते। कहना न होगा कि इस पुरानी कॉमेडी के प्रसंग-प्रहसन अनेक बार काफ़ी भद्दे, भोंड़े, फूहर होते। उनका उदय ही देहाती, सर्वथा ग्राम्य आधारों से हुआ था और चौथी सदी ई. पू. का शिष्ट एथेन्स अब उसे अंगीकार नहीं कर सकता था धीरे-धीरे भँड़ैती का स्थान समूचे समाज की प्रदर्शित आलोचना ने ले लिया और इस समाज का निदर्शन 'स्टॉक' पात्रों के माध्यम से होने लगा। इस नयी साधना के समूचे मॉडल हमें आज उपलब्ध नहीं, उनके खंडमात्र मिले हैं।

इस 'नई कॉमेडी' का रूप यूरिपिडीज की ट्रैजेडी से प्रभावित करुणा, यथार्थ, रागात्मकता आदि के सम्मिश्रण से हुआ। इसका प्रमुख विधायक मिनैण्डर[१] था। उसने अपने आचारवादी नाटकों का सृजन एथेन्स के सामाजिक उपकरणों से किया। उसके नाटकों से समकालीन समाज के अनिश्चय और आध्यात्मिक अशांति का परिचय मिलता है। इनके साथ उसके चरित्र चित्रण और डॉयलाग, करुण व्यंजनाओं तथा वास्तविकता की पकड़ मिल कर जादू का असर पैदा करते हैं। कुछ अजब नहीं कि उस प्राचीन काल में वह साहित्य में स्तुत्य हो गया हो। उसके कुछ नाटक खंड हमें उपलब्ध हैं, इनके विषय हैं: 'सामोस की लड़की', 'कटे बालों वाली लड़की' 'मध्यस्थ'।

मिनैण्डर ने जिस 'नई कॉमेडी' का प्रारम्भ किया, वह वस्तुतः हमारे वर्तमान ड्रामा का आरम्भ था। उसके घटनास्थल ग्रीक जगत के नगर हैं और पात्र काल्पनिक परन्तु समसामयिक समाज के स्पष्ट नागरिक। परिस्थितियाँ तात्कालिक सामाजिक समस्या-प्रश्नों से बनती हैं—प्रणय, संपत्ति, सामाजिक पद संबंधी, जिनके प्रति पात्रों

---

१. Menander; (३४२-२९१ ई. पू.)

की प्रतिक्रिया कथानक क विशिष्ट प्रसंगों का रूप धारण कर लेती है। देव-समाज का अन्त होकर सहज प्रकृत मानव-समाज का उदय होता है। समाज की खामियाँ, उसके गुण-दोष, उपकार-अपकार इन नाटकों में प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। सही उनका स्तर, टैकनीक की दृष्टि से, अनेक आलोचकों की राय में पांचवीं सदी ई. पू. के नाटकों से नीचे है, पर निस्संदेह सावधि समाज और पिछले काल में इनकी लोकप्रियता अक्षुण्ण हुई।

: ४ :

गद्य

वक्तृता

अन्य साहित्यों की ही भाँति ग्रीक-साहित्य में भी गद्य का उदय अपेक्षाकृत पीछे हुआ, पद्य से बहुत पीछे, प्रायः चौथी सदी ई. पू. में, जब तक वीर काव्यों, लिरिकों, और ड्रामा की प्रतिभा वृद्ध हो चली थी। गद्य निबन्ध का प्रारम्भ छठी सदी ई. पू. में आयोनिया में हुआ। इसी आयोनिया नाम से भारतीय ग्रीकों को 'यवन' रूप में जानते थे। उस सदी तक, अथवा उसके प्रसार काल में भी, अधिकतर दार्शनिक विचार, पद्य में ही प्रकट किये जाते थे। परन्तु शीघ्र ही लोगों की समझ में आ गया कि तर्क-युक्त दार्शनिक विवेचन पद्य की भाषा में नहीं हो सकता और उसका समुचित माध्यम गद्य ही होगा। अब तक गद्य का उपयोग कहानियों और सरकारी लेखों में ही होता था, अब दर्शन के क्षेत्र में भी होने लगा। आयोनिया के नगरों के ईरानियों द्वारा विध्वंस हो जाने पर वह परंपरा एथेंन्स में सोफ़िस्टों और वक्ताओं ने विशेषतः विकसित की। उनके प्रतिमान थे अफ़लातूँ (प्लैटो)[१] इसोक्रेटीज़[२] और डैमस्थनीज़[३]। और यह पाँचवीं शती ई. पू. के उत्तरार्द्ध में ही सम्भव हो सका। दार्शनिक विवेचन और ऐतिहासिक साहित्य का निर्माण रैहटॉरिक (वक्तृताओं) के ग्रथन से पूर्व हुआ परन्तु वक्तृताओं की शैली ने साहित्य पर उनसे कहीं गहरी अपनी छाप डाली। वक्तृताओं का प्राचीन ग्रीस में सदा से मान रहा है, होमर के समय से ही। परन्तु पाँचवीं शती ई. पू. से पहले साहित्यिक शैली अथवा कला के रूप में कभी उसका प्रयोग नहीं हुआ था। प्राचीनतम वाचालों की कृतियाँ तो आज प्राप्त नहीं परन्तु उनके कुछ नाम पुरानी परंपरा में आज भी अनजाने नहीं हैं। जिन प्राचीनतम वक्ताओं के नाम जाने हुए हैं, उनमें प्रधान सिसिली के कोरक्स[४] और टीसियस[५] के हैं। ४६५ ई. में निरंकुश शासन का अन्त कर जब जनसत्ताक

१. Plato (४२७-३४७ ई. पू.); २. Isocrates (४३६-३३८ ई. पू.); ३. Demosthenes (३८४-३२२ ई. पू.); ४. Corax; ५. Teisias

राज्य की वहाँ स्थापना हुई, तब स्वाभाविक ही वाक्साधना का उदय हुआ। पेरिक्लियन-युग पर तो उनका प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि असाधारण वक्ता स्वयं पेरिक्लीज[१] का गद्य काव्य की प्रवह शैली से अभिराम बन जाता था और पेलोपोनेसियन युद्ध-काल की उसकी वक्तृतायें अपना आदर्श आप हैं। परन्तु सोफ़िस्ट दार्शनिकों ने जो सिसिली के वक्ताओं को अपने प्रतिमान बना कर गद्य की एक सम्यगधीत वाक्शैली की नींव डाली वह सिसिली की वाक्सत्ता का ही प्रसार था। इन सोफ़िस्टों में इस दिशा में प्रधान था ल्योन्तिनी का गोर्गियस[२] जिसने परस्पर विरोधी पदों और विचारों की शृंखला-शैली का प्रारम्भ किया। साधु और अविकल ग्रीक गद्य सरणी का विकास थ्रैसीमकस[३] ने किया। इनके अतिरिक्त अनेक सोफ़िस्टों ने व्याकरण और भाषा का अध्ययन कर न्यायालयों और जनसत्ताक समितियों में व्यवहृत होने वाली वाक्शक्ति को संपन्न किया।

एथेन्स की 'ऑरेटरी' ग्रीक साहित्य और वक्तृता-साहित्य में अमर हो गई है। तीन प्रकार की वक्तृताओं का उल्लेख हुआ है—न्यायालय-संबंधी, राजनीतिक और श्राद्ध-सम्बन्धी। न्यायालयों में तो अभियुक्त सम्बद्ध सशक्त-भाषा में अपना पक्ष आप प्रस्तुत करते थे। इसीलिये अनेक बार उन्हें समर्थ शैली के लिए दूसरों का मुंह ताकना पड़ता था। इसी कारण अनेक ऐसे वक्तृता लेखक भी एथेंस में थे जो वक्तृता-लेखन का पेशा ही करने लगे थे। अपने इस कार्य से उन्होंने ग्रीक-गद्य की शैली पर बड़ा प्रभाव डाला। न्यायालय में स्वरक्षा में दिये अन्टिफोन[४] का भाषण उस काल की वक्तृताओं में प्रसिद्ध हो गया है। पर अभाग्यवश वह आज हमें उपलब्ध नहीं। उसने अपनी वह वक्तृता ४११ ई. पू. में दी थी। पेशेवर भाषण-लेखकों में पाँचवीं सदी ई. पू. के अन्त काल का लिसियस[५] प्रसिद्ध हो गया है। उसका गद्य सरल और सहज है परन्तु भाषण शैली के विकास से पेचीदी वाक्चातुरी की भी आवश्यकता हुई और फलतः उस दिशा में विशेष कृत्रिम परन्तु सफल अतिरिक्त सरणी का विकास हुआ और कुछ लोगों ने अलग-अलग विषयों को अपना विशेष क्षेत्र बना लिया। डैमस्थनीज का गुरु ईसियस[६] दाय संबंधी वाद-प्रतिवादों के लिए ही भाषण लिखा करता था। राजनीतिक वक्तृताओं के क्षेत्र में डैमस्थनीज विशेष स्मरणीय है। मैसेडोन के फ़िलिप (सिकन्दर के पिता) की ग्रीक-नगर-राज्यों पर चोटों ने उसे बड़ा प्रभावित किया और उसने राष्ट्रीयोज्जागरण में जिस भाषण परंपरा को जन्म दिया वह संसार के वक्तृता क्षेत्र में बेजोड़ है। वह अपने भाषण लिख कर बड़ी योग्यता से तैयार

---

१. Periclese; २. Gorgias; ३ Thrasymachus; ४. Antiphon; ५. Lysias; ६. Isaeus

करता था। डैमस्थनीज़ भी पहले अभियोगों के संबंध में ही भाषण लिखा करता था। उसकी शैली समसामयिक ग्रीक भाषा में प्रस्तुत असाधारण शक्तिशाली है।

परन्तु चौथी सदी ई. पू. का प्रमुख साहित्यिक ईसॉक्रटीज़ है। उसने एथेंस में वक्तृता का एक विद्यापीठ ही खोल लिया। उस पीठ के अपने विद्यार्थी और पैम्फलेटों द्वारा उसने सम सामयिक ग्रीक गद्य और साहित्य को बड़ा प्रभावित किया। उसके लेखों ने ग्रीक शैली को उसका प्रांजल रूप दिया और राजनीतिक पैम्फलेटों ने भावी हैलेनिक संस्कृति की एकता के लिए उचित पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी। उसी की शैली सिसेरो के गद्य में बोली जिसने कालान्तर में यूरोपियन साहित्य पर प्रभूत प्रभाव डाला। नगर-राज्यों के विध्वंस के बाद एथेंस की वाक्प्रणाली का भी अन्त हो गया, यद्यपि उसकी विशेषताओं को वर्ग बद्ध कर अरिस्टॉटल ने अपने 'रहैटॉरिक' में स्थान दिया जिससे वे विधिवत् संरक्षित हुईं।

इतिहास

इतिहास-लेखन का भी प्राचीन ग्रीक-साहित्य पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। पहली बार आयोनिया में ख्यातों और पौराणिक परंपराओं को क्रमबद्ध करने की प्रेरणा उठी। सरल भाषा में स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत छठी शती ई. पू. के एक इतिहास खंड का पता चला है। उस काल में समुद्र-संतरण-संबंधी भौगोलिक विचारों का भी कुछ निदर्शन तत्सामयिक (पाँचवीं सदी ई. पू.) साहित्य से होता है। हैरोडोटस[१] ने वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास लिखने का पहला प्रयत्न किया। वह पाँचवीं शती ई. पू. के तीसरे चरण में हुआ। वह एशिया माइनर का ग्रीक था और उसने दूर-दूर तक यात्रा की। जहाँ-जहाँ वह गया, वहाँ-वहाँ से उसने ऐतिहासिक सामग्री एकत्र कर लिपिबद्ध की। वह ईरानी दरबार में कुछ काल तक ग्रीक दूत के रूप में भी रहा था। यद्यपि पहली बार उसने इतिहास की घटनाओं को कार्य-कारण के रूप में रखा, उसके संकलन में अधिकतर सुनी कहानियों की ही प्रधानता थी। उदाहरणतः उसने भारत के दो पुंछे सिंहों और सोना निकालने वाली लोमड़ी के बराबर ऊँची दीमकों का उल्लेख किया है।

पाँचवीं सदी ई. पू. के अन्त तक एथेंस के गद्य में विश्लेषणात्मक सरणी का आरम्भ हो चला था। इस शैली का प्रधान इतिहासकार थ्यूसी डाइड्ज[२] था। ग्रीक इतिहासकारों में वह सर्वाधिक वैज्ञानिक और गंभीर है। पेलोपोनिसियन युद्ध ने ग्रीक-संस्कृति को झकझोर दिया था। उसी काल होने वाले इस इतिहासकार ने उस संस्कृति की मान्यताओं

---

१. Herodotus (४८५-४२५ ई. पू.); २. Thucydides (४६०-४०० ई. पू.)

को समझने के लिए ग्रीक समाज का इतिहास लिख डाला। उसका विश्लेषण, निष्पक्ष मूल्यांकन, न्याय, संगति और घटनोल्लेख का असाधारण क्रम उस काल की इतिहास-रचना में अद्भुत है। उसका इतिहास निरूपण हैरोडोटस की पद्धति से सर्वथा भिन्न था। उसने उसमें युद्ध नायकों की वक्तृताओं का भी काल्पनिक संकलन किया। फिर भी सूत्र शैली से लिखने वाले उस इतिहासकार की सरणी अनेक बार दुरूह हो गई। उसका महत्त्व वस्तुत: उसके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और कार्य-कारण रूप में घटनाओं के आनुक्रमिक विकास पर अवलम्बित है।

इतिहास परंपरा के ही लेखक क्सैनोफ़ोन[१] और इसॉक्रेटीज़ के शिष्य इफ़ोरस[२] और थ्योपॉम्पस[३] भी थे। क्सैनोफ़ोन ने स्पष्ट और सरल भाषा का निश्चय ही उपयोग किया परन्तु विश्लेषक अथवा समष्टिवादी लेखक के रूप में वह सफल न हो सका। ईसॉक्रेटीज के शिष्यों ने आदर्शवादी नैतिक दृष्टिकोण का इतिहास में सहारा लिया परन्तु प्रतिपाद्य का उचित विश्लेषण और मूल्यांकन उनसे न हो सका। इफोरस ने ग्रीस का एक इतिहास निस्संदेह प्रस्तुत किया।

दर्शन

इतिहास की ही भाँति दार्शनिक गद्य का प्रारम्भ भी छठी सदी ई० पू० के अन्त और पाँचवीं सदी ई० पू० के आरम्भ में आयोनिया में ही हुआ। इसकी भाषा भी साधारणत: नीरस थी। इसी दार्शनिक गद्य की परंपरा में हिपोक्रेटीज[४] की चिकित्सा-संबंधी लेख-शैली भी है। उसने पाँचवीं सदी ई० पू० के तृतीय चरण में लिखा। दार्शनिक विवेचन की गद्य-प्रसूति सौक्रेटीज[५] से हुई। सुकरात ने स्वयं कुछ लिखा नहीं, परन्तु उसके डायलॉग उसके शिष्य प्लैटो ने उसके नाम से पीछे प्रस्तुत किए। प्रश्नोत्तर-रूप में दार्शनिक विवेचन का सुकरात ने जो आरम्भ किया वह पिछले काल में परिपाटी ही बन गया। प्लैटो (अफला-तून) सुकरात का शिष्य था, ग्रीक गद्य के महान निर्माताओं में से एक और ग्रीक दार्श-निकों में सबसे गंभीर। उसके विचार उसके डायलॉगों में सुरक्षित हैं। उसकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'रिपब्लिक' है, एक काल्पनिक जगत् (युटोपिया), जिसमें उसने सामाजिक न्याय पर विचार किया है। 'लाज' उसकी अपेक्षाकृत पार्थिव कृति है। उसकी शैली बड़ी शक्तिम है और इसी कारण उसके सारे ग्रन्थ आज सदियों पार भी सुरक्षित और प्राप्य हैं। प्लैटो की ही भाँति अरिस्टॉटल (अरस्तू[६]) के ग्रन्थ भी व्याख्या-परक ही हैं। अरिस्टॉटल ने सारे ज्ञान को अपना कार्य क्षेत्र बनाया—राजनीति, विज्ञान, दर्शन, वक्तृता-साहित्य, आलोचना। पाश्चात्य यूरोपियन दार्शनिकों पर जितना उसका प्रभाव पड़ा उतना और किसी का

---

१. Xenophon; २. Ephorus; ३ Theopompus; ४. Hyppocrates; ५. Socrates; ६. Aristotle (३८४-३२२ ई० पू०)

नहीं। सभी दिशाओं में वह गुरु माना गया। साहित्य के क्षत्र में उसकी 'पोएटिक्स' ने प्रभूत प्रभाव डाला। ड्रामा का वह ग्रीक साहित्य में पहला अध्ययन था। यूरोपियन आलोचना-शास्त्र का आरम्भ इसी ग्रन्थ से होता है। उसने 'रहैटोरिक' वक्तृता-शैली का निरूपण किया। उसने लिखा बहुत, परन्तु वह सारा साहित्य-क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

: ५ :

हैल्लेनिक-युग

क्लासिकल-युग के साहित्य का निर्माण नगर-राज्यों की वदलती परिस्थितियों का अनुवर्ती है। हैल्लेनिक-युग का साहित्य राजसत्ताक नगरों की अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुकूल विकसित हुआ। यह पिछला साहित्य अपने समाज का प्रतिबिम्ब न बनकर सार्वभौम परंपरा का जनक हुआ। दूर-दूर के देशों में सिकन्दर की विजयों के परिणामस्वरूप ग्रीक-केन्द्र प्रतिष्ठित हो गए थे, जो इस काल साहित्य के भी केन्द्र बने। इनमें प्रधान थे—मिस्र का सिकन्दरिया (अलैग्जैन्ड्रिया), सीरिया का अन्टियोक, एशिया माइनर का परेगामम। इन नगरों के राजकुलों ने विद्वानों और साहित्यिकों का सम्मान और संरक्षा कर ज्ञान की खोज में हाथ बटाया। इनमें प्रमुख सिकन्दरिया का टॉलेमी राजकुल था जिसने वहाँ प्राचीन जगत् का प्रख्यात पुस्तकालय और संग्रहालय स्थापित किया। भोज की ही भाँति इस कुल के राजाओं ने भी साहित्य-पण्डितों और ज्ञान-पिपासुओं की वृत्ति बाँध दी। एथेन्स की परंपरा अपनी प्राचीनता के कारण अक्षुण्ण बनी रही और प्लैटो और अरिस्टॉटल द्वारा स्थापित वहाँ का दार्शनिक पीठ भी चलता रहा। दूर के स्व-तंत्र प्रान्तीय ग्रीक नगरों में क्लासिकल का ही अनेकार्थ में अनुकरण हुआ, यद्यपि विज्ञान के क्षेत्र में 'बर्बर' जगत् की कृतियाँ भी सर्वथा उपेक्षित न हो सकीं।

काव्य

चौथी सदी ई० पू० में जीवन से सम्पर्क छूटते ही ग्रीक काव्यधारा में शिथिलता आने लगी। कुछ कवियों ने जहाँ-तहाँ वीरकाव्य की रूपरेखा बनाए रखी परन्तु लिरिक काव्य की सीमा तो कुछ वैयक्तिक रचनाओं तक ही परिमित हो गई। इनका उपयोग कोरसों में होता था, जहाँ अर्थ-गौरव से कहीं बढ़कर मर्यादा ध्वनि-गौरव की थी। ड्रामा का सम्बन्ध भी जीवित धार्मिक विश्वासों से टूट गया था और अब उनका स्वरूप कृत्रिम हो गया था।

उस काल के कवियों का अखाड़ा सिकन्दरिया था। वे अधिकतर वहाँ के ग्रन्थागार या संग्रहालय के अफसर थे, या टॉलेमी राजकुल के दरबारी। जीवन से सम्पर्क टूट जाने से वे प्राचीन को साध्य मान काव्य-साधना करते थे जिससे उनकी कृतियाँ अस्वाभाविक

और पूर्वपरक हो गई। जो कमी उन्हें समकालीन वर्तमान की अवज्ञा से होती थी उसकी पूर्ति वे अपनी रचना की निखार आदि से करते थे। उनकी रचनाएँ भी साधारणतः इतनी विद्वत्तापूर्ण होतीं कि मजबूर होकर अपने श्रोतावर्ग के लिए उन्हें अपने-से ही लोगों पर निर्भर करना होता था।

इस काल काव्य-क्षेत्र में दो दल हो गए। एक का नेता कालीमेकस[1] था, दूसरे का अपोलोनियस[2]। कालीमेकस सिकन्दरिया-काव्य-प्रकार (स्फुट कविताओं) का प्रवर्तक था और होमर आदि की प्राचीन वीर काव्यधारा का विरोधी। उसका रोड्स के अपोलोनियस से काव्यादर्श के सम्बन्ध में भारी मतभेद रहा। अपोलोनियस वीर काव्यों का हिमायती था। स्वयं अपने काव्य 'आर्गोनौटिका' में उसने प्राचीन देवोत्तर प्रसंगों को काव्याधार बनाया। कालीमेकस का ही दल इस विवाद में विजयी हुआ और तात्कालिक रोमांटिक स्फुट कविताओं का बोलबाला हुआ। उसका अनुगमन अनेक रोमन कवियों ने किया। कालान्तर में उसी माध्यम से इस काव्य-परंपरा का प्रभाव पाश्चात्य यूरोपियन साहित्य पर भी पड़ा। इस परंपरा के सिकन्दरिया के कवियों में विख्यात थियोफ्रास्टस[3] था, जिसने गड़रिया-गानों से ओतप्रोत स्फुट कविताओं का विकास किया। उसकी कविताओं का अनुकरण उसके समय में और पश्चात्काल में काफी हुआ।

इस काल वैज्ञानिक प्रसंगों का भी छन्दोबद्ध निरूपण हुआ। जैसे भारत में भी प्राचीन काल में वैद्यकादि के ग्रन्थ पद्य में लिखे गए। सिकन्दरिया के कवियों ने भी अनेक लोकप्रिय वैज्ञानिक और चिकित्सा-ग्रन्थों को पद्य-रूप दे दिया। पर सारी इस प्रकार की कविताएँ जन-रुचि से दूर थीं, परे।

नकल और अश्लील के प्रति लोगों का आकर्षण अधिक था और जब हैराडास ने समसामयिक जीवन से खींचकर कुछ नाटकीय स्केच चलती भाषा में लिखे तो वह बड़ा लोकप्रिय हो उठा। हैल्लेनिक-युग की सुन्दरतम कविताएँ तीसरी सदी ई० पू० में लिखी गई जो संग्रहों में संग्रहीत हुई। इस प्रकार के एक संग्रह का नाम जिसमें बिजेन्टाइन काल तक की कविताएँ संग्रहीत हैं 'ग्रीक ऐन्थॉलोजी' है।

गद्य

वस्तुतः इस काल का प्रधान साहित्य गद्य में प्रस्तुत हुआ। दार्शनिक व्याख्याओं के इस युग में ऐसा होना स्वाभाविक था। 'स्टोइक', 'सिनिक' और 'एपिक्यूरियन' दर्शनों का आविर्भाव अधिकतर इसी काल हुआ। इनमें से पहले दोनों विचारक प्लैटो के अनु-वर्ती ही थे। एपिक्यूरियन लेखकों ने साहित्यिक शैली को विशेष प्रश्रय नहीं दिया। जो

---

१. Callimachus (३१०-२४० ई० पू०); २. Apolonius (२९५-२१५ ई० पू०); ३. Theophrastus (ज० ३०० ई० पू०)

भी हो, इन दार्शनिक व्याख्याओं का प्रतिपाद्य विषय अधिकतर व्यावहारिक आचार था। इस काल के गद्य-लेखकों में प्रधान थियोफ्रास्टस हुआ। इसी काल जीवन-चरितों का लिखना भी प्रचलित हुआ। जीवन-चरित के लेखकों ने इस वर्ग को 'पेरिपैटेटिक्स' कहते थे। इनके चरित में गप्पों का पुट काफी होता था।

हैल्लेनिक-युग की प्रधान रचनाएँ इतिहास और विज्ञान के क्षेत्र में हुईं। छोटी-छोटी ग्रीक सेनाओं के बल पर सुदूरपूर्व के विस्तृत प्रदेशों पर शासन करने वाले दुर्द्धर्ष सामरिकों की कमी न थी और वे सहज ही इस काल की कृतियों के नायक बन गए। इन देशों में बस जाने वाले ग्रीकों ने इन्हीं देशों का इतिहास लिखा और इसी कारण स्थानीय रीति-रिवाजों का विस्तार भी उनमें प्रचुर हुआ। भारतीय विषयों पर भी अनेक ग्रन्थ तब रचे गए। भारत के पश्चिमी भाग पर अनेक ग्रीक राजाओं ने तब प्रायः दो सदियों तक राज किया। इसी इतिहास परंपरा में मिस्र का इतिहास लिखने वाला मानेथो[१] भी है, और बेबीलोनिया का इतिहास लिखने वाला बेरोसस[२] भी। पर, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इन इतिहासों में अधिकतर मिश्रण दन्तकथाओं और काल्पनिक गद्यों का ही था। सही इतिहासकार पोलीबियस[३] हुआ जिसने चौथी सदी ई० पू० के वक्तृता-प्रधान इतिहास-शैली को छोड़ वैज्ञानिक परंपरा में इतिहास लिखा। रोमन्ज ने दूसरी शती ई० पू० में भूमध्य सागर के पूर्ववर्ती प्रदेश जीतकर ग्रीस आदि पर एक नया साम्राज्य स्थापित किया। पोलीबियस, जो स्वयं सैनिक और राजनीतिज्ञ था, पकड़कर रोम ले जाया गया, जहाँ वह महान् रोमन्ज के संपर्क में आया। वहाँ उसने रोमन साम्राज्य की संभावनाओं पर विचार किया और भूमध्य सागरवर्ती जगत् का २६६ ई० पू० से १४४ ई० पू० तक का इतिहास लिखा।

यहाँ वैज्ञानिक ग्रन्थों का उल्लेख निरर्थक होगा, चूंकि साहित्य के विकास पर उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पर इसी दिशा में भाषाशास्त्र और व्याकरण, तिथिक्रम आदि पर भी काफी कार्य हुआ। यह विशेषतः भाष्यों और टीकाओं का युग था। प्राचीन हस्तलिपियों को मिलाकर पुराने साहित्यकारों की रचनाओं के पाठ शुद्ध किये गए, भाषा को एक नया रूप दिया गया, लेखकों की परिभाषा कर उनको अनेक वर्गों में बाँट दिया गया। होमर से लेकर अरिस्टॉटल तक के लेखकों को हम आज जो 'क्लासिकल' कहते हैं वह नामकरण इसी काल हुआ।

: ६ :

रोमन–साम्राज्य–कालीन साहित्य

दूसरी पहली सदी ई० पू० में निकट पूर्व के ग्रीक राज्य रोमन शक्ति के शिकार हो

१. Manetho २. Berosus ३. Polybius (२०१-१२० ई० पू०)

गए, जिन्हें २७ ई० पू० में अन्ततः सम्राट ऑगस्टस ने रोमन प्रान्त बना लिये। फिर भी पूर्व की ग्रीक संस्कृति मरी नहीं, नया साहित्य नित्य रचा जाता रहा, यद्यपि परापेक्षी होने के कारण उसमें मुटाई तो रही पर ताजगी न आ सकी। पहली सदी ईस्वी में ग्रीक साहित्य में एक प्रकार का पुनर्जागरण हुआ। तभी उस काल के दो प्रधान ग्रीक साहित्यकार हुए—प्ल्यूटार्क[१] और लूसियन[२]। परन्तु शीघ्र ही वह पहली सदी की समृद्धि भी विलुप्त हो गई जब तीसरी सदी ईस्वी में साम्राज्य में गृहयुद्धों का ताँता बँध गया। सम्राट् डायोक्लेशियन और कॉन्स्टैन्टाइन के सुधारों से कुछ सहारा निश्चय ही मिला परन्तु कॉन्स्टैन्टाइन जब ईसाई हो गया तो बहुदेववादी ग्रीक-साहित्य-परंपरा को बड़ी ठेस लगी। यद्यपि इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रीक साहित्य के ह्रास के बावजूद ग्रीक भाषा का दबदबा बना रहा और ईसाई ग्रन्थकार उस भाषा और दार्शनिक परंपरा का उपयोग करते रहे।

रोमन साम्राज्य-काल में भी कविताएँ कम लिखी गईं (उस युग की कविताएँ जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, 'ग्रीक ऐन्थॉलोजी' में संग्रहीत हैं) अधिकतर रचनाएँ गद्य में ही हुईं। पहली ईस्वी पूर्व के उत्तरार्द्ध में जो एक अनुकूल प्रतिक्रिया हुई तो साहित्य पर भी उसका अच्छा प्रभाव पड़ा और साहित्यालोचना पर कुछ ग्रन्थ लिखे गए। इन लेखकों में हैलीकर्नासिस का डायोनीसियस[३] और लॉन्जाइनस[४] प्रधान हुए। डायोनीसियस ने भाषा, शैली आदि के सम्बन्ध में अच्छा विचार किया। साथ ही उसने डैमस्थेनीज की प्रशंसा और थ्यूसीडाइड्ज की खरी आलोचना भी की यद्यपि उसका अपना स्वयं का 'रोमन एण्टिक्विटीज' नामक इतिहास कुछ स्तुत्य नहीं उतरा। हाँ, लान्जॉइनस के लिए निस्संदेह वही बात नहीं कही जा सकती क्योंकि उसने ग्रीक साहित्य में मनोवैज्ञानिक आलोचना की सर्वोत्तम कृति प्रस्तुत की।

---

१. Plutarch (४६-१२७) २. Lucian (१२०-१८०) ३. Dionysius
४. Longinus

७. चीनी साहित्य

: १ :

आरम्भ

चीनी आज संसार की जनता के चौथाई भाग की भाषा है। करोड़ों-करोड़ों चीनी उसे बोलते हैं और प्रायः उसी प्रकार बोलते आते हैं जैसे सहस्राब्दियों पहले उनके पूर्वज बोलते आये थे। इसका अर्थ यह नहीं कि उस भाषा में परिवर्तन नहीं हुए। परिवर्तन हुए और पर्याप्त; जैसा ऐसी भाषा के लिए स्वाभाविक है, जो सहस्राब्दियों से, लाखों वर्ग मील में फैले विस्तृत देश के निवासियों द्वारा बोली जाती रही हो। चीनी भाषा स्वयं चीन में तो बोली ही जाती है, उसका औपनिवेशिक भाषा-साम्राज्य उसके चतुर्दिक् बसने वाले परवर्ती जनसमूहों पर भी फैला हुआ है। वे जनसमूह अपनी भाषा और साहित्य के लिए चीन के किस मात्रा में ऋणी हैं, कहने की आवश्यकता नहीं, उसका अटकल लगाया जा सकता है।

चीन का साहित्य विपुल और विशद है, जिसका विस्तार ताम्रयुग से आज तक है। आज ४,००० वर्षों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस पीली भूमि की संतति ने निरंतर अपना जीवन शब्दों में उतारा है। आरम्भ में ही चीनी जाति अपने हृदगत भावों को गायन का रूप देने लगी थी—

सुबह होती है तो मैं काम में खो जाता हूँ
साँझ होती है तो आराम से सो जाता हूँ
खोदता हूँ मैं कुआँ प्यास बुझाने के लिए
खेत में जोतता हूँ भूख मिटाने के लिए
राजसत्ता को भला मुझसे सरोकार है क्या?

इस गीत का शब्द-शब्द चीनी जीवन का रहस्य खोलता है, जो आज भी उतना ही सत्य है, जितना वह तब था, जब रचा गया था। आज भी चीनी अपनी जमीन का मालिक है और शोषण के अनवरत प्रयत्नों को लाँघ आज फिर उसने अपना यह गान सार्थक किया है। अन्तर बस इतना ही है कि आज उसे उस राजसत्ता को चुनौती नहीं देनी पड़ती, जिसका संकेत इस गीत में है क्योंकि आज चीनी किसान स्वयं एक राजसत्ता है।

जैसे-जैसे जीवन में प्रगति होती गई, चीनी जाति की आत्मा 'ओडों' और 'बैलेडों' में प्रकट होती गई। उन्हें उन्होंने मुरली और तन्त्री के स्वर से साधा और ध्वनित किया।

उनकी आवाज कभी दबाई नहीं जा सकी और उस आवाज की झंकृति अन्तर की प्रेरणा बनकर चीनी आकाश पर छा गई। चाऊ वंश के दसवें राजा लिनवांग (८७८-८४२ ई० पू०) से शाऊ के अमीर ने कहा था—"नदियों की बाढ़ रोकने से कहीं अधिक खतरनाक जनता का मुँह बन्द करना है। नदियों की बाढ़ रोकने का अर्थ है उन्हें फैलने को मजबूर करना और उसका परिणाम होता है उसके स्वाभाविक प्रवाह की अपेक्षा कहीं अधिक हानि। आकाश के पुत्र (राजा) को ज्ञात है कि तब शासन किस प्रकार किया जाता है, जब अफसर और पंडित आजादी से कविता करते हैं, अंधगायक अपने बैलेड गाते हैं, इतिहासकार अपने इतिवृत्त लिखते हैं, जब संगीत के दीवाने सुर और ताल का विस्तार करते हैं और सैकड़ों-सैकड़ों कलावन्त और अन्य जन यथाकाम कथनीय व्यक्त करते हैं।"

काश, शाऊ का यह मन्त्र आज की राजसत्ताओं की बुद्धि को छू पाता !

चाऊ-काल से चली आई वक्तव्य की स्वाधीनता चीनी-इतिहास की बहुमूल्य प्रेरणा है। इसी कारण गद्य और पद्य में, इतिहास, दर्शन और राजनीति में, उपन्यास और नाटक में चीनी साहित्य इस ऊँचाई को पहुँच सका। अस्थियों और अभी हाल के मिले शांग वंश के ताम्रभाण्डों पर खुदे अभिलेखों से प्रकट है कि प्रायः आज से साढ़े तीन हजार वर्ष पहले ही चीनियों ने अपनी लिखित भाषा का साहित्यिक विकास कर लिया था।

चीनी लिपि का प्राचीनतम आविष्कार हुआँग टी (लगभग २६९७-२५९६ ई० पू०) के शासनकाल में हुआ। उसकी राजसभा का विचक्षण लेखक चिएह[१] उस लिपि का अनुसन्धाता माना जाता है। वह लिपि अनेक प्रकार की चित्राकृतियों से युक्त है। और 'टज़ू' (अक्षर) कहलाती है। क्रमशः अक्षरों की संख्या बढ़ती गई और कालान्तर में उनका एक जंगल-सा खड़ा हो गया। यहाँ चीनी लिपि अथवा भाषा के शास्त्रीय निर्माण के सम्बन्ध में लिखना अभीष्ट नहीं। इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि चित्र-वत् होने के कारण चीनी अक्षर भी पहले बाँस और लकड़ी की तख्तियों और रेशमी कपड़ों पर एक प्रकार के फ़ाउन्टेनपैन द्वारा लिखे जाते थे। बाद में प्रायः तीसरी शती ई० पू० में जनरल मेंग ट'ईन ने लेखनी के स्थान पर ऊँट के बालों के बने ब्रुश से लिखने की प्रथा चलाई और १०५ ई० में ट्साईलुन ने कागज का निर्माण कर लेखन-विज्ञान में क्रांति कर दी। चीनी लिखावट ऊपर से नीचे को होती है, यद्यपि आज चीन में भी लिखने का तरीका पड़ी लकीरों में बाएँ से दाहिने को हो गया है।

चीनी साहित्य अपने विकास के कालक्रम के अनुसार अनेक भागों में बाँटा जा सकता है, प्रायः नौ भागों में, जो इस प्रकार हैं—(१) क्लासिकल युग (२) कन्फ़्यू-शस युग, (३) टाओ और बौद्ध युग, (४) स्वर्णयुग, (५) समृद्धि-युग, (६) उप-

---

१. Ts' Ang Chieh

न्यास और नाटक-युग, (७) पुनर्जागरण-युग, (८) आधुनिक युग, (९) समाज-वादी वर्तमान युग। नीचे हम इन विविध काल-प्रसारों में विकसित होने वाले विशद चीनी साहित्य पर प्रकाश डालेंगे।

: २ :

क्लासिकल-युग

(२०००-२०२ ई० पू०)

चीनी सभ्यता का जन्म पीली नदी की घाटी में हुआ। वहीं प्राथमिक ऐतिहासिक राज-वंशों का जन्म हुआ और वहीं चीनी लिपि की कला का भी प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ ई० पू० दूसरी सहस्राब्दि में हसीया राजकुल ने पहले शासन किया फिर शांग राजकुल ने। पहले शासन-काल में नदियों की बाढ़ रोकने के प्रयत्न हुए और उस दिशा में प्रयत्नशील सम्राट् यू के प्रयत्न प्रशस्ति के रूप में लिख डाले गए। हाल के पुरातात्विक प्रयासों ने प्राचीन चीनी नगरों के भग्नावशेष खोद डाले हैं, जिनसे चीनी संस्कृति पर प्रभूत प्रकाश पड़ा है। उस काल की कुछ कविताओं का उल्लेख 'शिह् चिंग' (गीतों की पुस्तक) और 'शू चिंग' (इतिहास के ग्रन्थ) में मिलता है।

शांग वंश के पतन के बाद चाऊ चीन के स्वामी हुए। वैन और वू ने शासन को एक नया रुख दिया और देश के तरुणों को शिक्षित करने के लिए स्थान-स्थान पर स्कूल बने। स्वयं युवराज का शिक्षण इन्हीं स्कूलों में से एक में हुआ। स्कूलों की वह परंपरा संसार की सभ्यताओं में संभवतः सबसे प्राचीन है। चाऊ राजवंश से पूर्वकालीन चीनी साहित्य का ज्ञान, 'शिह् चिंग', 'शू चिंग' और 'यी चिंग' आदि जिन संग्रहों से होता है, उनका संपादन इसी काल हुआ था। ७७१ ई० पू० से चाऊ राजकुल का ह्रास आरम्भ हुआ, यद्यपि तीसरी शती ई० पू० तक किसी न किसी रूप में वह बना रहा।

इस पिछले काल में मध्यदेश का राज्य कई सामन्ती टुकड़ों में बँट गया और जनता की स्थिति निरन्तर खराब होती गई। फिर भी सामन्तों ने दार्शनिकों और साहित्यिक संस्कृति को संरक्षण दिया। कम से कम वाणी की स्वतन्त्रता विद्वानों को पूरी तौर से उन दिनों प्राप्त थी। परिणाम यह हुआ कि वह काल साहित्यिक और दार्शनिक क्रियात्मकता का युग बन गया। उस काल के प्रसिद्ध दार्शनिक लाओ-ट्जू[१], कन्फ़्यूशस[२], मो-ट्जू[३], मेंग-टजू (मैन्सियस[४]) और हसुन-टजू (हसन च'इंग[५]) हुए। लाओ-ट्जू ने अपने गद्यकाव्य

---

१. Lao Tzu २. Confucius (५५१-४७८ ई० पू०); ३. Mo Tzu (५००-४२० ई० पू०); ४. Meng Tzu, (Mencius) (३७२-२८९ ई० पू०); ५. Hsun Tzu, (Hsun Ch'ing) (२८९-२३८ ई० पू०)

'लाओ-ट्जू टाओ-टेह् चिंग' में उपकार का बदला नेकी से देने का उपदेश किया। कन्फ़्यूशस जो उसका कनिष्ठ समकालीन था, परलोक के जीवन को परे रख कर इसी जीवन को उन्नत करने के उपदेश करता रहा और आचार-सम्बन्धी अपने शिक्षण द्वारा उसने न केवल सावधि संसार का बल्कि भावी चीनी सन्तानों का भी भला किया। मो-ट्जू उस काल का धार्मिक समाजवादी था, जो विश्व-प्रेम में विश्वास करता था। उसके उपदेश में आत्मकलह से उठकर शांति और मानव-प्रेम की पुकार है। मेंग-ट्जू, कन्फ़्यूशस का अनुयायी और मो-ट्जू का प्रबल आलोचक था। चीन में उसने पहले-पहल जनतान्त्रिक और जन-सत्ताक प्रवृत्तियों का नारा बुलन्द किया। पहली बार उसने कहा कि जनता-शासनवर्ग और राजा से कहीं महान् है। उसने रूसो की भाँति मनुष्य को स्वभाव-सुन्दर माना है। उसने भी लाओ-ट्जू और मो-ट्जू आदि मानववादियों की ही भाँति युद्ध के विरुद्ध निरन्तर उप-देश किये परन्तु सामन्तों के विरुद्ध जनता के विद्रोह और क्रांति को उसका जन्मसिद्ध अधिकार तथा शांति का ही एक पाया माना। वैसे वह भी अन्य चीनी दार्शनिकों की ही भाँति शांति का प्रबल उपासक और मानवतावादी था। उसी के नाम पर उसके उपदेशों का संग्रह 'मेंग-ट्जू' कहलाया, जो चीन की भावी पीढ़ियों की 'बाइबिल' बन गया। ह्सुन-ट्जू, यथार्थ-वादी था, परन्तु मनुष्य को 'अश्रफुल मखलूकात' मानता हुआ भी होबेंस की भाँति उसे स्वभावतः वह बद मानता है। फिर भी वह निराशावादी नहीं था, शिक्षा तथा आचार को मानव-स्वभाव का उन्नायक मानता था। वह दार्शनिक के अतिरिक्त कवि भी था और संगीत को मानवीय स्वभाव के सौंदर्य का एक अंग समझता था। उसने अपने विचारों को मधुर साहित्यिक शैली में काव्य के पुट द्वारा व्यक्त किया। उसकी कृति भी उसके नाम की संज्ञा से ही प्रसिद्ध हुई।

इसके अतिरिक्त चीन ने अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के परन्तु सशक्त चिन्तक उत्पन्न किये। शांग यांग[1] तानाशाही परंपरा का पोषक था और राजनीति के क्षेत्र में उसने कानूनी परंपरा का श्रीगणेश किया। चिन सामन्ती राज के मंत्री के अधिकार से उसने नये कानूनों को प्रचलित कर उनका कठोरता से प्रयोग किया और लोगों को नयी भूमि जोतने को बाध्य किया। विधान तोड़ने के अपराधी युवराज तक को उसने कानूनी दण्ड से बरी न किया। राजनीति-दर्शन का गंभीर अध्येता और ह्सुन-ट्जू का शिष्य हान फेई[2] उसका प्रशंसक था, स्वयं तत्कालीन चीन का स्थानीय नेता। शांग-यांग की ही भाँति उसका साहित्य भी राजनीतिक चिन्तन में एक मंजिल सिद्ध हुआ। ऊपर के दार्शनिक और विचारक प्रायः सभी पीली नदी की घाटी के निवासी थे। परन्तु यांगट्सी नदी का प्रान्त भी साहित्यिक दृष्टि से सर्वथा अनुर्वर न था। इन दार्शनिकों के युग में ही वहाँ अनेक लिरिक कवि हुए,

---

१. Shang Yang (मृ० ३३८ ई० पू०); २. Han Fei (मृ० २३३ ई० पू०)

जिन्होंने काव्य की एक नयी शैली को जन्म देकर लोकगाथा और गान तथा जनपद संबंधी अनन्त सामग्री की बाढ़ से, साहित्य-भूमि आप्लावित कर दी। काव्य की यह नयी धारा गद्य-काव्य की थी, जो 'फ़ू' कहलाई। इसकी शैली 'शिह' से अनेकधा भिन्न थी। पहले तो यह कविता लम्बी २०० से ४०० असम पंक्तियों की होती थी, जिसका छन्द भी असम होता था ; दूसरे इसमें सन्दर्भों और रूपकों की भरमार होती थी; और तीसरे यह पढ़ने के लिए होती थी, गाने के लिए नहीं।

यांगट्सी प्रान्त के कवियों में सबसे प्रसिद्ध चू यूआन[1] हुआ। कुछ काल तो चू सामन्त राज्य का मंत्री था परन्तु वहाँ के निकृष्ट जीवन से क्षुब्ध होकर वह मिलो नदी में डूब मरा। यह खेदजनक घटना सारे चीन में प्रति वर्ष त्योहार के रूप में मनायी जाती है। चू यूआन मरकर भी साहित्य में अमर हो गया। उसकी कविताएँ आज भी जीवित हैं, विशेषकर सैनिक का मर्सिया संबंधी कृति और 'ली साओ' (शोक अवसर पर मर्सिया)। राजनीति के क्षेत्र में वह काल नितान्त रक्तिम था, जिसके विरुद्ध लाओ-ट्ज़ू के वाचाल अनुयायी चुआंग चाऊ[2] ने अपनी आवाज ऊँची की। उसे उच्चपदीय और अभिजात जनों से स्वाभाविक घृणा थी और उसने उनकी वंचकता का ढूँढ़-ढूँढ़-कर भंडाफोड़ किया। कन्फ़्यूशस और मो-ट्ज़ू के अनुयायियों पर उसने भीषण आघात किये। उसकी कथाएँ और कहानियाँ आत्मसमीक्षा की असाधारण प्रेरक सिद्ध हुईं। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चूआंग ट्ज़ू' कल्पना, विनोद, व्यंग्य और सत्य की खोज का प्रतीक है। उसकी शैली चीनी साहित्य की एक मंजिल उपस्थित करती है।

२२० ई० पू० चिन वंश शक्तिमान होकर चीन में साम्राज्य-पद पर आरूढ़ हुआ। उसके प्रतिष्ठाता शीह वांग टी (प्रथम सम्राट्) ने प्रसिद्ध चीनी दीवार खड़ी की, परन्तु साहित्य का वह शत्रु प्रमाणित हुआ। उसने कन्फ़्यूशस के अनेक विद्वान् अनुयायियों को जीवित जला डाला और बहुमूल्य साहित्यराशि से सम्पन्न हजारों ग्रन्थागारों को अग्नि की भेंट कर दिया। राष्ट्र की आवश्यकताओं से आँख मीचकर निरंतर बाल की खाल निकालने वाले विद्वानों से झल्लाकर उसने इस संहारक नीति का अवलम्बन किया था। २१० ई० पू० में उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य की चूलें हिल गयीं और लिऊ पांग नाम के एक सामान्य व्यक्ति ने निरन्तर वर्षों के संघर्ष के बाद २०२ ई० पू० साम्राज्य के सिंहासन पर आसीन हो प्रसिद्ध हन राजवंश की स्थापना की। एक गौरव-युग का प्रारम्भ हुआ।

---

१. Chu Yuan (३२८-२८५ ई० पू०); २. Chuang Chou, (मृ० २७५ ई० पू०)

: ३ :

कन्फ्यूशस-युग

(२२० ई० पू०—२२० ई०)

हन साम्राज्यकाल अपनी विविध अर्जित ऊँचाइयों के कारण चीनी इतिहास में विख्यात हो गया है। उसका राजनीतिक विस्तार तो बड़ा था ही, सांस्कृतिक, बौद्धिक, साहित्यिक और कला-सम्बन्धी अपनी प्रेरणाओं तथा क्रियाशीलता में भी वह इतिहास में अग्रणी हुआ।

साहित्य के लिए वह काल स्वर्णयुग कहलाया। विध्वंसक चिन सम्राट् के भय से विद्यानुरागियों ने जिन ग्रन्थों को इधर-उधर छिपा दिया था, उनको प्रकाश में लाना और उनके अध्ययन का नये सिरे से प्रबन्ध करना हनों का ही काम था। इसके अतिरिक्त साहित्यिक और ऐतिहासिक सामग्री विपुल मात्रा में उस युग में प्रसूत हुई। साहित्यिक गद्य-पद्य अनेक शैलियों में विविध मात्राओं में भावों से ओतप्रोत रचे गये। १३६ ई० पू० में अनेक विद्वान् खोजे हुए ग्रन्थों के अध्ययन में लगे, जिसका परिणाम पाँच विशिष्ट साहित्य वर्गों का प्रकाशन हुआ—(१) 'यी चिंग' (परिवर्तनों की पुस्तक), (२) 'शू चिंग' (इतिहास के ग्रन्थ), (३) 'शिह चिंग' (गीतों का संग्रह), (४) 'ली ची' (क्रियाओं का ग्रन्थ), और (५) 'चून चीऊ' (वसन्त और पतझड़ के वृत्त)। उस कन्फ्यूशस समुदाय के यह ग्रन्थ धार्मिक सिद्धान्त माने गये, जिसे सम्राट् वू (१४०-८७ ई० पू०) ने राजधर्म बना दिया। १५७ ईस्वी में इन ग्रन्थों को शुद्ध कर ४६ विशाल प्रस्तर पट्टों पर खोद डाला गया। बाद में इन पर अनेक भाष्य प्रस्तुत हुए, जिनकी ज्ञानसम्पदा अपूर्व थी।

जहाँ प्राचीन साहित्य के अध्ययन और संग्रह में अनेक विद्वान् लगे थे, वहाँ कुछ पण्डितों ने इतिहास-निर्माण भी प्रारम्भ किया। हन वंश के इतिहासकारों में सबसे प्रतिभावान् और विचक्षण स्सू-मा चीएन[1] था, जिसने 'शिह ची' नामक विशद ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा। 'शिह-ची' प्राचीनतम काल से लिखा १३० अध्यायों में विभक्त चीन का इतिहास है। पिछले काल के इतिहासकारों के लिए यह ग्रन्थ असाधारण आकर सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध आलोचक-इतिहासकार पान पिआऊ[2] ने उस ग्रन्थ की भरपूर समीक्षा की और स्वयं भी इतिहास की एक विशिष्ट शैली के लिए विख्यात हुआ। उसके पुत्र पान कू[3] ने ईसा की पहली दो शताब्दियों का चीनी इतिहास लिखना प्रारम्भ किया जिसे उसकी मेधाविनी विधवा भगिनी टस' आओ[4] (कुमारी नाम-पान चाओ) ने समाप्त किया। पहली बार

१. Ssu-Ma Chien (१४५-९७ ई० पू०); २. Pan Piao (३-४५ ई०); ३. Pan Ku (३२-९२); ४. Ts' ao, (Pan Chao) (प्रथम सदी ई०)

नारी की मेधा विचक्षण रूप में पुरुष की सहायता को आई। ग्रन्थ 'चिएन हन शू' (पूर्व हन-वंश का इतिहास) के नाम से प्रकाशित हुआ।

उस काल के साहित्यिकों की गणना वस्तुतः कठिन है, यद्यपि कुछ के नाम यहाँ गिना देना समीचीन होगा :—सम्राट् वू के मन्त्री चिया यी[१] ने 'ह्सिन शू' लिखकर राजशास्त्र के क्षेत्र में एक मंजिल तय की। हन राजवंश के प्रतिष्ठाता का पोता लिऊ आन[२] स्वयं पंडित था और उसने टाओ-वाद के दर्शन पर 'हुवाई नान ट्जू' नामक ग्रन्थ लिखकर उसका प्रचार किया। टुंग-चुंग शू'[३] नामक दार्शनिक ने टाओ-वाद और कन्फ्यूशस के ऐतिहासिक सिद्धान्तों को सम्मिलित कर अपने ग्रन्थ 'चून चिऊ फ़ान लू' की रचना की। मनुष्य के स्वभाव को उसने नेक-बद द्विविध और ज्ञान से संयत माना। कन्फ्यूशियन धर्म को राजपदीय बनाने में टुंग का भी हाथ था। सम्राट् वू की सभा के सम्मान्य रोमांटिक कवि स्सू मा ह्सियांग-जू[४] ने अपने प्रसिद्ध गद्यकाव्यों में दरबारी जीवन, आखेटों, जल-विहारों और संसदीय-सुन्दरियों के नृत्यों का अभिराम चित्रण किया। उसके समकालीन मेई-शेंग'[५] ने सप्त प्रेरणाएँ विषयक ग्रंथ लिखकर गद्य काव्यों की एक सुन्दर परंपरा उद्‌घाटित की। इन कविताओं में युवराज च'ऊ के आमोदों का वर्णन है। प्रसिद्ध '१९ प्राचीन कविताएँ' का एक अंश शेंग का भी रचा गया माना जाता है। इन कविताओं ने उत्तर काल की चीनी कविताओं पर बड़ा प्रभाव डाला। उस काल की अत्यन्त सुन्दर अनेक फुटकल कविताएँ अज्ञातनामा कवियों की कृति के रूप में आज भी उपलब्ध हैं।

हन वंश की संरक्षा ने न केवल इतिहास, दर्शन, काव्य-सम्बन्धी रचनाएँ प्रजनित कीं वरन् उसके प्रोत्साहन से चिकित्सा, ज्योतिष, युद्ध-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, गणित, फलित ज्योतिष, स्वप्न-विज्ञान आदि पर भी ग्रन्थों की रचना हुई। इन सारे विविध ग्रन्थों की एक सूची बना ली गई। इस प्रकार की पहली सूची ६ ई० पू० में प्रकाशित हुई। चीन का पहला जीवनीकार ल्यू ह्सियांग[६] हुआ। उसकी दो बड़ी दिलचस्प पुस्तकें 'लिएह नू चुआन' और 'शुओ युआन' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से पहली में सम्भ्रान्त महिलाओं का चरित उद्‌गीरित है; दूसरी में सामन्तों, दार्शनिकों आदि के चरित संग्रहीत हैं। चीन का पहला शब्दकोष 'शुओ-वेन' नाम से १२० ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें १० हजार संकेतों की बड़ी सूक्ष्मता से व्याख्या की गई थी। इसका संग्रहकर्त्ता ह्सू शेन[७] था।

: ४ :

टाओ-युग और बौद्ध-युग

२२० ई० में साम्राज्य तीन राज्यों में विभक्त हो गया। तीनों का इतिहास चेन

१. Chia Yi; २. Liu An; ३. Tung Chung Shu; ४. Ssu-ma Hsiang-ju; ५. Mei Sheng; ६. Liu Hsiang; ७. Hsu Shen

शाऊ[1] ने 'सान कुओ ची' नाम से लिखा। इसमें वर्णित अधिनायकों के चरित इतनी खूबी और स्पष्ट रेखाओं से उभारे गये हैं कि ग्रन्थ पढ़कर प्ल्यूटार्क का स्मरण हो आता है। २६५ ई० में ट्सिन राजवंश ने फिर तीनों राज्यों को जीतकर नये साम्राज्य की नींव डाली। यह साम्राज्य भी बहुत काल न टिक सका और, यद्यपि अन्तर कलह से बाध्य होकर इसने अपनी राजधानी नानकिंग में स्थापित की, ४४० ई० में उसका अन्त हो गया। उस राजधानी में एक के बाद एक चार राजवंश स्थापित हुए। ३९६ और ५५१ के बीच विविध तुर्क जातियों ने चीन पर शासन किया।

इस अधिकार-युग में भी साहित्य का निर्माण अथवा दर्शन का चिन्तन बन्द न हो सका तथा टाओवाद और बौद्ध धर्म अपने ज्ञान की लौ से चीन को तब भी प्रकाशित करते रहे। टाओ-वाद के गहन अध्ययन से उसके उदार दर्शन का आरम्भ हुआ। उसने एलान किया कि प्रकृति और रूप नश्य हैं; उनको छोड़ो, जीवन और मृत्यु को दिन और रात समझो, लाभ और हानि समृद्धि और निर्धनता दोनों को समान जानो, उनसे ऊपर उठो। उस अध्ययन ने टाओवादियों को बौद्ध धर्म की ओर खींचा और उन्होंने उन सूत्रों का अध्ययन आरम्भ किया, जिनका संस्कृत से चीनी अनुवाद कुमार जीव[2] और चिह-ह्सिएन[3] आदि भारतीय तथा मध्य एशियाई विद्वानों ने किया था। बौद्ध दर्शन और साहित्य की सम्पदा ने चीनी पंडितों के विचारों में एक क्रांति उपस्थित कर दी और उसका अध्ययन सरगर्मी से होने लगा। हन काल के अन्तिम युग में ही बौद्ध विचारों की छाया चीनी चिन्तन पर पड़ने लगी थी। अनेक पंडित परिणामतः प्रव्रजित हो गये और बौद्ध धर्म तीव्र गति से चीन में व्यापक हो चला।

इस राजनीतिक अंधयुग में अनेक साहित्य-रत्नों, कई साहित्यिक शैलियों का विकास हुआ। जिन कवियों ने तत्कालीन साहित्य पर अपनी गहरी छाप डाली, उनमें प्रधान प्रकृतिवादी थे। टाओ-चिएन[4] उनमें अग्रणी हुआ। उसका दूसरा नाम टाओ युआन मिंग था। उसने चीनी साहित्य को कुछ अनमोल काव्य-रत्न प्रदान किये। उस महाकवि ने फूलों, वृक्षों, पक्षियों और पर्वतों में जीवन का गहरा अर्थ पाया। प्रकृति-संबंधी उसके उद्गार नितान्त सरल, कोमल, कमनीय और तरल हैं। चीनी काव्य-धारा पर टाओ चिएन की कविता का प्रभाव बहुत गहरा पड़ा।

उस काल साहित्य-समीक्षा भी खूब हुई और निर्भीक आलोचक वांग चुंग[5] ने उस दिशा में एक नया मानदण्ड उपस्थित किया। साहित्यिक सक्रियता के उस युग में कुछ ने दार्शनिक ग्रन्थों पर भाष्य लिखे, कुछ ने ज्ञान-विज्ञान पर नया साहित्य प्रस्तुत किया।

---

१. Chen Shou (२३३-२९७); २. Kumara Jiva; ३. Chih-hsien; ४. Tao Chien, (Tao Yuan-ming) (३७२-४२७); ५. Wang Chung (२७-९७)

वनस्पति-शास्त्र, भूगोल, जल-विज्ञान आदि पर अनेक ग्रन्थ रचे गये, साथ ही प्राचीन और नवीन काव्य-धाराओं पर भी नए ग्रन्थ प्रकाशित हुए। 'चिएन ट्ज़ू वेन' हजार संकेतों की पुस्तक है परन्तु उसके कोई दो संकेत एक से नहीं। उसका रचयिता चाऊ ह्सिंग ट्ज़ू[१] था। एक अद्भुत काव्य कृति 'हुई वेन टू' नाम से चौथी सदी ईस्वी में प्रकाशित हुई, जिसकी रचना सू वेई[२] नाम की महिला ने की थी। ८४१ चित्र-चिह्नों से बनी सैकड़ों कविताएँ इस प्रकार उसमें गूँथी गयी हैं कि उनसे एक वर्ग-चित्र वन गया है, जिसमें कविताएँ ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तथा आगे से पीछे और पीछे से आगे को पढ़ी जा सकती हैं। उस काल के पिछले युग में एक बड़ी संख्या में चौथी सदी ई० पू० से चौथी सदी ई० तक के कवियों और निबन्धकारों की कविताएँ पहली बार संग्रहीत हुईं। संग्रह का सम्पादक नानकिंग के लिआंग राजवंश का एक पंडित राजकुमार ह्सियाओ ट'अंग[३] था। उसने अपने संग्रह को कई भागों में बाँटा और साहित्य के अनेक स्कन्ध बनाये—एक में वर्णनात्मक गद्य-पद्य (फू) थे, दूसरे में प्राचीन कविताएँ, तीसरे में ओड, चौथे में प्रशस्तियाँ, पाँचवें में संस्मरण, छठे में पत्र-व्यवहार, सातवें में निबन्ध आदि। ट'अंग के बाद भी चीनी साहित्य के अनेक संग्रह इसी प्रकार रचे जाते रहे।

: ५ :
स्वर्ण युग

अन्तर कलह के बाद चीनियों में फिर राजनीतिक एकता की प्रेरणा हुई। पहले सुई राजवंश ने वह एकता उपस्थित कर अनेक प्रशंस्य जनकार्य किये। साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भी प्रकाण्ड पंडितों का एक दल कार्य करने लगा, जिसका परिणाम प्रसिद्ध चीनी विश्वकोष का सम्पादन था। अभिजात अफसर-वर्ग के स्थान पर परीक्षा द्वारा चुने गये 'सिविल सर्विस' का आरम्भ हुआ। सुई राजवंश के बाद प्रसिद्ध ट'आंग वंश (६१८-९०६) ने चीनी राजशक्ति की बागडोर सँभाली। साम्राज्य फूला-फला और फैला। सुदूर के राजकुलों के साथ उसकी राजनीतिक मैत्री तथा आदान-प्रदान हुआ। महान् चीनी सम्राट् ट'आई ट्सुंग (६२७-६९४ ई०) ने साहित्य और कला का विशेष संरक्षण किया और कन्फ्यूशियन मत, टाओ मत और बौद्ध मत के सिद्धांतों को एक साथ उदारतापूर्वक उसने स्वीकार किया। साथ ही जरथुश्त, मनी, नस्टोरियस और मुहम्मद की विचारधाराओं के चीन में प्रचार की भी उदार अनुमति दी। संसार का वह तब सबसे अधिक उदारचेता सम्राट् था। अशोक की उदार भावना उसमें सक्रिय रूप से अवतरित हुई। यह कुछ कम

१. Chou Hsing-tzu (मृ० ५५१); २. Su Wei (४थी सदी ई०); ३. Hsiao T'ng (५०१-५३१)

आश्चर्य की बात नहीं कि मुहम्मद का अनुयायी न होने पर भी, आज सम्भवतः उसी के काल में बनी मस्जिद इस्लाम की सबसे प्राचीन मस्जिद है।

ट'आंग संरक्षण में जिस सभ्यता का विकास हुआ वह उस काल की सभ्यताओं में सबसे मंजिलों आगे थी। चीनी जाति ने तब अनेक दिशाओं में अद्भुत सक्रिय क्षमता और क्रियात्मक तत्परता का परिचय दिया। ठप्पों से छपाई का काम, आतशी अस्त्रों के लिए बारूद, 'एयर कण्डीशनिंग' के अनेक उपाय और औद्योगिक तथा ललित कलाओं में अनेक नई टैकनीकों का आविष्कार तब की चीनी मेधा के अद्भुत प्रमाण थे। शिक्षा का तो प्रायः सर्वत्र प्रचार था। चीनियों के लिए यह कुछ कम गौरव की बात नहीं कि संसार को उन्होंने ही पहला समाचारपत्र दिया। चीनी सभ्यता कोरिया और जापान तक फैल गई। पूर्व में उसकी साहित्यिक सुरुचि और सामाजिक आचार ने वही पद प्राप्त किया जो पिछले काल के यूरोप में फ्रांस ने किया। अन्तर फिर भी एक महत्त्व का था, और वह यह कि जहाँ फ्रांस और समकालीन यूरोप का ज्ञान दसों सदियों बाद पुरुष-परक था, चीन में अनेक विचक्षणबुद्धि नारी-मेधाओं का उदय हो चुका था। ज्ञान और साहित्य के अनेक क्षेत्रों में महिलाएँ अग्रणी बन गई थीं।

ट'आंग-युग का सबसे अधिक विस्मयजनक साहित्यिक विकास काव्य के क्षेत्र में हुआ। उस युग के पहले ही सैकड़ों उत्कृष्ट कवियों का प्रादुर्भाव हो चुका था। उनके अध्ययन से ट'आंग कवियों ने अपनी विशिष्ट और स्वतन्त्र शैली का आरम्भ किया। उनकी गाई आनन्द और विषाद की कविताएँ नवीन ध्वनि से नादवती हुईं, मेधा और अनुभूति, ओज और शक्ति से समृद्ध हो सुकुमार व्यंजना से मुखरित हो उठीं। तब की साहित्य-चेतना में चीनियों ने जो साका चलाया, कालिदास के बाद सदियों वह जातियों के साहित्य के इतिहास में चलता रहा। अपनी कल्पना, व्यंजना, शब्द-लालित्य और अर्थभावना के कारण वह काल चीनी साहित्य का सत्य ही स्वर्ण-युग कहलाता है। उस काल के कवियों में न केवल साहित्यिक शैलियों के विभिन्न टैकनीक उभर पड़े वरन् उनकी मानववादी क्षितिजगामी पुकार में सहवेदना सचेत हुई। परिणामतः लिरिक काव्य अनेक रूप में मुखरित हुआ।

लिरिक काव्य के अनेक प्रकार तब के चीन में सिरजे गये। इनमें एक में चार पंक्तियाँ होती थीं, पंक्ति में पाँच शब्द होते थे; दूसरे में पाँच शब्दों की पंक्ति और आठ पंक्तियाँ होती थीं, तीसरे में सात शब्द और चार पंक्तियाँ और चौथे में सात शब्द और आठ पंक्तियाँ।

स्वर्ण-युग के उन छोटे-बड़े कवियों की संख्या, जिन्होंने उस काल के अद्भुत काव्य का सृजन किया, दो हजार से ऊपर है, और उनकी कविताओं की संख्या प्रायः ४८ हजार है। १८वीं सदी में उनकी कृतियाँ संग्रहीत कर प्रकाशित कर दी गईं। उस संग्रह से सुन्दरतम ७७ कवियों की ३११ कवितायें एकत्र कर बालकों की पुस्तक में

प्रकाशित हुई। यह पुस्तक आज तक चीन में अद्भुत प्रेरणा की आधार बनी हुई है। 'रामचरितमानस' की भाँति विद्वान् और अपढ़, दोनों की जबान पर इसकी पंक्तियाँ रहती हैं। वांग वेई[1], ली पो[2], टू फ़ू[3] और पो चू यी[4] जो उस साहित्य के महारथी हो गये हैं, चीन की जनता की आज संपदा बन गये हैं और उनका यहाँ कुछ विस्तार से उल्लेख अनुचित न होगा।

वांग वेई धार्मिक और चिन्तनशील था। शिष्ट और भावुक। उसमें कन्फ्यूशस, टाओ और बौद्ध तीनों संपदाएँ सूक्ष्म रूप से प्रवेश पा चुकी थीं, यद्यपि इस अर्थ में अपने काल में वह अकेला न था। वस्तुतः वह उस युग का समुचित प्रतिनिधि था। तरुणाई में उसे दर-दर की ठोकर खानी पड़ी थी और दरिद्रता उसकी सहचरी थी। वह सरकारी नौकर था परन्तु अपने कार्यभार को ईमानदारी से निभाता हुआ भी कविता करने और चित्र लिखने से न चूकता था। उसकी कविताएँ और चित्र प्रकृति के अंकनों से मुखरित होते। दोनों में भौतिक और आध्यात्मिक, स्थूल और सूक्ष्म का अद्भुत समन्वय होता।

ली पो रोमाण्टिक कवि था। सौंदर्य और प्रकृति के प्रसंग उसके पदों में अनायास अभिराम उतर आते थे। वह जन्मसिद्ध कवि था। उसका जीवन लेखक का जीवन था, वह किसी का नौकर न था और कन्फ्यूशियन सिद्धांतों का पंडित होते हुए भी उसके भावों का उद्गम टाओवाद था। प्राचीन टैकनीक का आचार्य होते हुए भी उसने अपने को उनके बन्धन में न रखा। उसके लिरिक भाव और व्यंजना के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके रूप की रमणीयता और ध्वनि का माधुर्य बेजोड़ है। ली पो पर्यटक था और उसकी अनेक काव्य-कृतियाँ रात्रि के एकाकी पर्यटन के आनन्द को उद्-बुद्ध करती हैं। वह चीन का महान् गायक था।

टू फ़ू यथार्थवादी था। उसने विषाद की धारा अपने काव्य स्रोत से बहाई। समाज टूक-टूक हो रहा था, किसान कंगाल हो चुके थे, देश संहारक युद्ध की चोटों से बेदम पड़ा था—टू फ़ू का काव्य-स्वर इनके विषाद से मुखरित हुआ। साहस और निर्भीकतापूर्वक उसने अपने देश की स्थिति पर अपनी कविताओं में प्रकाश डाला और आज जब हम उसकी कविताएँ पढ़ते हैं, तब तत्कालीन चीनी जगत् का विषादबोझिल चित्र आँखों के सामने घूम जाता है। गिरे, व्यापक कष्ट से जर्जर, नंगे-भूखों के प्रति उसकी एकान्त संवेदना उसकी कविताओं के शब्द-शब्द से पुकार उठती है। उसकी सहानुभूतिभरी कविताओं ने चीनियों का हृदय छू लिया और उन्होंने अपनी

---

१. Wang Wei (६९९-७५९); २. Li Po (७०१-६२); ३. Tu Fu (७१२-७०); ४. Po Chu-yi (७७२-८४८)

कृतज्ञता में उसे 'मनीषी कवि' कह कर पुकारा। स्वयं टू फ़ू स्वभावतः असाधारण भावुक था। उसे अपनी कविता की शक्ति पर इतना भरोसा था कि उसने उसे ज्वर की औषधि तक बना डाला। न उसने टाओ धर्म की ओर देखा न बौद्ध धर्म की ओर। वह कन्फ्यूशियन विचार का कवि था और अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं से विमुख न हो पाता था। आत्मावलंबन, आत्मसंयम, और आत्मानुभूति पर वह निर्भर करता था। शांति उसकी शाश्वत चेतना थी।

पो च-यी राजनीतिज्ञ था, परन्तु उसकी राजनीतिज्ञता उसे लोकप्रिय बनने से न रोक सकी। उसकी ख्याति उसके जीवन-काल में ही चीन की सीमाओं को पार कर कोरिया और जापान तक जा पहुँची और उसकी कविताएँ जितनी ही राजकुमारों तथा महिलाओं की जबान पर थीं, उतनी ही किसानों और सईसों की जबान पर, उतनी ही बूढ़ों और बच्चों की जिह्वा पर। उसकी कविता में प्रसाद का सौरभ था और भावों की सूक्ष्मता में गजब की ताजगी थी। परन्तु इन दोनों से बढ़ कर उनके प्रति लोगों के आकर्षण का कारण था कवि के विषयों का साधारणीकरण। उसके काव्यों के विषय घर के, गाँव के, नगर के थे, जो बरबस अपनी व्यावहारिक नित्यता द्वारा पढ़ने और सुनने वालों को अपनी ओर खींच लेते थे। उसकी वर्णनात्मक शैली असामान्य थी और उसकी रूमानी कविताओं के शब्द-चित्र लोगों के अंतर में पैठ जाते थे। इन्हीं द्वारा वह नित्य की सांसारिक मूर्खताओं और रोजमर्रा के पाप-पुण्य, काव्य की अभिराम आकृति में सिरज कर रख देता है। उसके अपने ही सम्पादन से पता चलता है कि उसने ७० खंडों में प्रायः तीन हजार विषयों का चित्रण किया।

यह बात बराबर याद रखने की है कि इन ट'आंग कवियों की अद्भुत रचनाओं का आधार तत्कालीन और प्राचीन लोकगीत थे। चाऊ-शासन काल से ही ग्रामीण और गाँव के प्रेमी, अपने हर्ष-विषाद, प्रणय-विरह, आदि का गान करने लगे थे। यद्यपि उनकी कृतियों में संस्कृत काव्य की शिष्टता न होती थी, निस्संदेह जीवन उनमें अँगड़ाता था और उनकी सादगी अपनी अकृत्रिम सुघराई में हृदय पर चोट करती थी। उस सम्पदा की कवि अवहेलना न कर सकता था और हन कुल के गायकों ने 'योफ़ू' नाम से उस लोक-संगीत-संपत्ति का संग्रह और चयन कर लिया था। उन लोकगीतों के ऊपर वे पिछले लोकगीत बने, जिन पर ट'आंग कवियों ने अपने-अपने काव्य का निर्माण किया।

ट'आंग काल के काव्य के अनुकूल ही उस काल का गद्य और अन्य गद्यात्मक साहित्य भी था। तब प'इन टी शैली का गद्य प्रचलित था जो गानमधुर था और जिसकी इबारत कानों और नेत्रों दोनों को सुख देती थी। परन्तु निःसंदेह उसमें शैली की शक्ति नहीं आ सकती थी, उसके लिए दूसरे टैकनीक की आवश्यकता थी। उस टैकनीक का

गठन आठवीं और नवीं सदियों में हुआ। नई शैली के प्रवर्तक हान-यू[1] और ल्यू-ट्सूंग-युआन[2] थे। दोनों कवि निबन्धकार, और दार्शनिक थे, जो विशेषतया दार्शनिक विषयों पर भी लिखते थे। हान-यू तो बौद्ध संप्रदाय की पश्चातकालीन नीचता का प्रहर्त्ता भी हो गया है। ल्यू-युआन उसका मित्र और सुन्दर लिपिकार था। दोनों की गद्य-शैली शक्तिमती, स्पष्ट और व्यंग्यात्मक थी। उनकी कृतियों में रूप की सादगी और भावों की संपदा अक्षुण्ण है। हान-यू ने लाओ ट्ज़ू और बुद्ध के संप्रदायों के अन्ध-विश्वासों पर प्रहार किया और ल्यू-ट्सूंग ने बौद्ध धर्म के मूल तथा अविकृत सिद्धांतों का प्रकाश किया। ट'आंग काल के गद्य के एक रूप में दार्शनिक टीकाओं और भाष्यों का विकास हुआ और दूसरे में इतिहासों का प्रकाशन। उस काल का सबसे महान् इतिहासकार ल्यू-चिह्-ची[3] था, जो अपनी ऐतिहासिक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध हुआ। अपने 'इतिहास की समझ' में उसने प्राचीन इतिहासकारों को कमजोरी और राजनीतिक पक्षपात के लिए धिक्कारते हुए इतिहास-दर्शन का एक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। साथ ही उसने ज्योतिष, गणित, चिकित्सा-शास्त्र आदि पर भी ग्रन्थ लिखे। परन्तु उस काल का सबसे महान् ज्योतिषी और गणितज्ञ ली-चुन-फेंग[4] है। ली-चुन-फेंग जिसने गणित पर अनेक ग्रंथ लिखने के अतिरिक्त नक्षत्रों और ग्रहों को पहचानने का यन्त्र बनाया। तब का प्रसिद्ध चिकित्सक सुन-स्सु-माओ[5] था। उसके सहस्र-स्वर्ण-निदान आज भी चीन में प्राचीन पद्धति के चिकित्सकों द्वारा काम में लाये जाते हैं। उसी काल लू यू[6] ने चाय पीने की कला और उसमें प्रयुक्त होने वाली विविध प्यालियों का सविस्तार उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'च'आ-चिंग' में किया। प्रायः तभी कहानी का नया साहित्य भी उस देश में लिखा गया। इनमें से कुछ गद्य में हैं, कुछ पद्य में और कुछ दोनों की मिली-जुली शैली में। भारत में उस काल के बहुत पहले ही कहानी-शैली का विकास हो चुका था। जातकों, अवदानों और पंचतंत्र आदि की सैकड़ों कहानियाँ तब तक पहलवी और अरबी में अनूदित हो चुकी थीं। कुछ आश्चर्य नहीं कि चीनी कहानियों का अध्ययन, जो अब तक नहीं हुआ है, भारत और चीन के तत्संबंधी कहानी साहित्य के आदान-प्रदान पर प्रकाश डाले।

: ६ :

समृद्धि-युग

(९६०-११८० ई०)

८०६ ई० में ट'आंग शासन का अन्त हो गया। अगली आधी शती में पीली

---

१. Han Yu (७६८-८२४); २. Liu Tsung-yuan (७७३-८१९); ३. Liu--chih-chi (६६१-७१२); ४. Li Chun-feng (६०२-६७०); ५. Sun Ssu-mao (मृ. ६८२); ६. Lu Yu (मृ० ८०४)

नदी की घाटी में अनेक राजकुलों ने राज्य किया। ९६० में सुंग राजकुल न एक नये साम्राज्य की बुनियाद डाली, जिसकी राजधानी आज के होनान प्रांत की राजधानी काइफेंग थी। प्रचुर शक्तिमान् न होता हुआ भी सुंगकुल लोकप्रिय था। तातार आदि जातियों ने अपने आक्रमणों से चीन को भू-लुण्ठित कर दिया, परन्तु चीनी संस्कृति धीरे-धीरे उन्हें निगल गई और वे पीपिंग (पेकिंग) में बस गये। सुंग शासकों ने कुछ काल बाद अपनी राजधानी हांगचोव में स्थापित की, परन्तु वे तातारों को परास्त न कर सके।

राज्यशक्ति में क्षीण होता हुआ भी सुंग-काल सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र में शक्तिमान प्रमाणित हुआ। तब अनेक विशाल विश्व-कोषों और ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना हुई। अनेक पांडित्यपूर्ण गद्य ग्रंथ लिखे गये और अनेक असाधारण काव्य कृतियाँ प्रसूत हुईं। तभी 'क्लासिकल' ज्ञान के अध्ययन के लिए अध्ययन-पीठ स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त चित्रकला की एक राष्ट्रीय संस्था स्थापित हुई और स्थापत्य पर एक विशाल ग्रंथ लिखा गया। इसी काल विविध विषयों पर हजारों पुस्तकों की रचना हुई और इसी काल ठप्पों से छापने का भी श्रीगणेश हुआ। मुद्रण के निर्माण के अतिरिक्त उस काल ही कम्पास का भी आविष्कार हुआ और तभी संख्या जोड़ने वाली एक मशीन भी चीनी मेधा द्वारा आविष्कृत हुई। सुंगों का काल वांग आन शिह[१] के राजकीय समाजवाद, चूह् सी[२] के नये-कन्फ्यूशियन दर्शन और ल्यू च्यू युआन[३] के चित्रों के लिए भी बड़ा प्रसिद्ध हुआ और साथ ही अत्यन्त सुकुमार और सुन्दर चीनी भाण्डों के लिए भी। वांग अपने समय का प्रख्यात राजनीतिज्ञ, निबन्धकार और कवि भी था। कला, दर्शन और साहित्य, मेधावियों की प्रतिभा से प्रभूत मात्रा में सेवित हुए। साहित्य के तत्कालीन दिग्गजों में अग्रणी कवि, निबंधकार, इतिहासकार और राजनीतिज्ञ आऊ-यांग हि सऊ[४] था। उसने ट्'आंग राजवंश का एक नया इतिहास लिखा। सु-मा कुआंग[५] प्रख्यात इतिहासकार ने चाऊ राज वंश से लेकर ट्'आंग वंश तक देश का इतिहास लिखा 'जो टजू ची ट' उँग चिएन' नाम से प्रसिद्ध आ। इसका अर्थ है, इतिहास-दर्पण राजकीय शासन का सहायक ग्रंथ। इसी इतिहास के क्षेत्र में प्रधान निर्माता वस्तुतः मा टुआन-लिन[६] हुआ, जिसने तेरहवीं सदी में अपना प्रसिद्ध 'वेन हिसियेन ट'उँग काओ' (ऐतिहासिक अभिलेख और संख्यायें) लिख कर चीन के सर्वतोमुखी सामाजिक जीवन पर प्रभूत प्रकाश डाला। यह महान् ग्रंथ १६२१ में प्रकाशित हुआ।

सू शिह अथवा सू टुंग पो[७] विपुल निबन्धकार, लिरिक कवि, और अद्भूत लिपिकार

---

१. Wang An Shih (१०२१-८६); २. Chu Hsi (११२९-१२००); ३. Lu Chiu Y'uan (११३९-९२); ४. Ou-yang Hsiu (१००-७२) ५. Ssuma Kuâng (१०१९-८६) ६. MaTuan-lin ७. SuTung-po (Su Shih) (१०३६-११०१)

हुआ। वह राजनीतिज्ञ भी था और कवि तथा कलाकार के रूप में उसने टाओइज्म और बौद्ध धर्म से प्रेरणा पाई। उन दोनों के साथ कन्फ्यूशियन सिद्धांतों की समष्टि कर उसने एक प्रख्यात ग्रंथ लिखा। बारहवीं सदी का सबसे महान कवि लू यौ[1] हुआ। वह असाधारण देशभक्त था। तातारों की चोट से कराहती पीली नदी की घाटी उसके तरल स्वरों में उतर पड़ी। उसने उनको धिक्कारा जिन्होंने तातारों के प्रति आत्म-समर्पण कर दिया था, पर जो देश के शासक थे। ली-यी-आन[2] (ली चिंग-चाऊ) वह चीनी महिला थी जो प्रख्यात कवियित्री और विदुषी के रूप में चीनी साहित्य में अमर होगई। काव्य क्षेत्र में उसकी प्रतिभा प्रथम श्रेणी की मानी जाती है। अपने पति चाओ-मिंग-चेंग की उसने चीनी पुरातत्व पर ग्रंथ लिखने में सहायता की और उस ग्रंथ की भूमिका भी स्वयं उसी ने लिखी। ट्जू छंद में उसने अनेक कवितायें लिखीं, परन्तु आज उसकी कविताओं का केवल एक खंड उपलब्ध है।

: ७ :

उपन्यास और नाटक-युग

(१२८०-१३६८)

सुंग शासन का अन्त मंगोलों ने किया, जब १२७७ में कुबले खाँ ने अपने को चीन का सम्राट् घोषित कर अपनी राजधानी पीकिंग में स्थापित की और युआन नाम के नये राजकुल का आरम्भ किया। चीनी ज्ञान और संस्थाओं में उसकी अतीव श्रद्धा थी और उसकी उदारता की छाया में अनेक यूरोपियन पर्यटकों ने भ्रमण किया। वेनिस का मार्कोपोलो भी उन्हीं में था।

परन्तु अनेक आत्माभिमानी चीनी पण्डित एकान्तवास करने लगे और अपने उस एकान्तवास में उन्होंने उपन्यास लिखना आरम्भ किया। उपन्यास लेखन का आरम्भ ट'आंग काल में ही हो गया था, जब पो चू-यी के अभिन्न मित्र यू आन चिंग ने 'सूई पिंग यिंग की कहानी' और पो चू यी के अनुज पो हि संग चिएन ने 'सुन्दर तरुणी की कहानी' लिखी। ट'आंग काल के बाद सुंग युग में भी कहानियाँ लिखी जाती रहीं परन्तु युआन काल की कहानियों का एक उद्देश्य था—अपना सुख और मित्रों का मनोरंजन। उस क्षेत्र में भी काव्य की ही भाँति लोक साहित्य ही आधार बना। लोक कथाओं को कुशल साहित्यिक माँज कर अपनी प्रतिभा से साहित्य के ज्वलंत रत्न बना देते। उस काल के प्रधान उपन्यासों में 'सान कुओ ची' (तीन राज्यों की कहानी) और शुई हु चुआन (मनुष्य मात्र परस्पर भाई हैं),

---

१. Lu you (११२५-१२१०); २. Li Yi-an (Li Ching-chao) (ज. १०८१)

प्रधान थे। उपन्यासों की भाषा सरल थी और उनका उद्देश्य लोककल्याण था। प्रत्येक अध्याय छंद से आरम्भ होकर छंद ही से समाप्त होता था और अनेक बार उसका वर्णन भी छन्दप्राय होता। भारतीय साहित्यकारों की भाँति चीन की अधिकतर उपन्यासकृतियाँ अज्ञातनामा हैं। उनके रचयिताओं का पता नहीं। उपन्यासों और कहानियों को चीन के साहित्य में हेय समझा भी जाता था।

मंगोल शासनकाल में नाट्य-लेखन का भी प्रचलन हुआ। सुंग काल से ही चीन में कठपुतलियों के खेल का प्रचलन था। परन्तु खानों को उससे संतोष न हुआ और उनकी संरक्षा में ५० वर्ष के भीतर ५०० से ऊपर नाटक लिखे गये। इनमें प्राय: १०० की गणना अव्वल दर्जे की साहित्यिक कृतियों में है। वोल्तेयर ने इनमें से एक पर अपनी एक रचना अवलम्बित की। वांग शिह फू का 'ह्र सियांग ची' (पश्चिमी कक्ष का रोमान्स) विशेष विख्यात है। इसमें एक तरुण विद्वान और सुन्दर तरुणी का प्रणय निरूपित है। इसमें संदेह नहीं कि उस काल के चीनी नाटकों में आज की शैली प्रस्फुटित न हुई, परन्तु भाषा की दृष्टि से वे फिर भी बेजोड़ हैं।

युआन के काल के बाद प्राय: ४ सदियों में उपन्यास और नाट्य साहित्य न अपेक्षाकृत आधुनिक रूप धारण किया। तब के उपन्यासों को हम पाँच निम्न प्रकारों में बाँट सकते हैं—(१) ऐतिहासिक उपन्यास, (२) धार्मिक और दार्शनिक उपन्यास, (३) शिष्टता संबंधी उपन्यास, (४) प्रणय संबंधी उपन्यास और वीरता संबंधी उपन्यास।

इसी प्रकार ११वीं और १८वीं सदी के बीच लिखे नाटक भी दो भागों में विभक्त हो सकते हैं—उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी नाटकों के विषय ऐतिहासिक और अलौकिक हैं और दक्षिणी नाटकों के रोमाण्टिक। दोनों में लिरिक कविता का बाहुल्य है। कुछ समीक्षकों का विश्वास है कि अपनी लिरिक शक्ति और सौंदर्य में यह ट'आंग काल के लिरिकों से कहीं बढ़ कर हैं।

: ८ :

पुनर्जीवन काल

(१३६८-१८८०)

मिंग ने १३६८ में मंगोलों को भगा कर चीन में मिंग साम्राज्य (१३६८–१६४४) का आरम्भ किया। बीच में राजधानी नानकिंग चली गई थी, १४०९ में वह फिर पेकिंग आई। यह काल उत्तर व दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व के देशों के साथ चीन के समृद्ध व्यापार का था। पाश्चात्य नाविक भी यूरोप से चीन पहुँचे और उस दिशा से

ज्योतिष, गणित, भूगोल तथा यन्त्राविष्कार के ज्ञान पर काफी प्रकाश पड़ा। देश में धातु और चीनी मिट्टी के सुन्दर भाण्डे बने और कसीदे तथा जड़ाई का काम मिंग काल के अभिमान बन गये। साहित्य की दिशा में निस्संदेह नव-निर्माण की प्रेरणा न हुई, यद्यपि पुराने 'क्लासिक्स' को फिर से मनन करने में उस काल की चीनी मेधा निश्चय ही प्रवीण सिद्ध हुई। १४०३ ई० में दो हजार विद्वानों ने विश्वकोष प्रस्तुत किया, जिस में चीन का समस्त क्लासिकल, ऐतिहासिक और दार्शनिक साहित्य संग्रहीत हुआ। पाँच वर्ष के निरन्तर साहित्यिक श्रम के परिणाम स्वरूप 'युंग लो ट टिएन' प्रस्तुत हुआ, जो संसार का आज भी प्राचीनता संबंधी सबसे बड़ा विश्वकोष है। इसमें २२,८०० चीनी ग्रंथों का संग्रह है। द्रव्याभाव के कारण इतना बड़ा ग्रंथ उस काल प्रकाशित न हो सका और बाद की शताब्दियों में उसके अधिकतर खंड अग्नि में नष्ट हो गये अथवा काल की क्रूरता से लुप्त।

उस काल के दो महापुरुष वांग-यांग-मिंग[1] (वांग-शाऊ-जेन) और हू सु क्वांग चि[2] थे। इनमें से पहला सैनिक, राजनीतिज्ञ, मनीषी, दार्शनिक और कवि था, जिसका जापान के साहित्य पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने मानव-चित्त को सर्वोपरि माना, विश्व से भिन्न और स्वतंत्र, इसी से उसने उसे अपने मूल रूप में सर्वथा निर्दोष स्वीकार किया। हू सू क्वांग-ची १६०३ ई. में ईसाई हो गया और उसके धर्म, भूगोल, ज्योतिष तथा गणित संबंधी विचारों की सहायता से प्रसिद्ध जेसुइट पादरी माटिओ रिकी[3] ने अपने तत्संबंधी ग्रंथ लिखे। क्वांग-ची का ६० खंडों में प्रस्तुत कृषि संबंधी ग्रंथ विख्यात है। यह पहले-पहल १६४० में अनेक अद्भुत उत्कट उदाहरणों के साथ प्रकाशित हुआ।

मांचूरिया के मांचुओं ने चार वर्ष बाद मिंग वंशका अन्तकर चिंग (ट्सिंग) राजकुल का चीन में आरम्भ किया। चीनियों ने अपने नये शासकों के विरुद्ध १५ वर्ष तक निरन्तर संघर्ष किया, परन्तु अन्त में इन्हें उनकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ी। धीरे-धीरे मांचुओं की शक्ति मांचुरिया से तिब्बत तथा मंगोलिया से फारमोसा और हेनान द्वीप तक प्रतिष्ठित हुई। अनाम, स्याम, बर्मा, नेपाल, भूटान और सिक्कम तक उस सत्ता की गहरी छाया पड़ी और यूरोप तक चीन की सभ्यता का प्रभाव पहुँचा। जेसुइट पादरियों ने चीन के साहित्य का जो यूरोपियन भाषाओं में अनुवाद किया तो वहाँ के साहित्यिकों ने उनका सहृदय स्वागत किया। लीबिनिज़, वोल्तेयर, गेटे और क्वेज़्ने ने उस चीनी साहित्य की प्रेरणा को माना। साथ ही चीनी पोर्सलेन, और अन्य कलाकृतियों ने १७वीं-१८वीं सदी के यूरोपियन 'रोकोको' को क्षति पहुँचाई।

---

१. Wang Yang-Ming (१४७२-१८२८); २. Hsu-Kuang-Chi (१५६२-१६३३); ३. Mateo Ricci

क'आंग ह्सी और चियेन लुङ्ग सम्राटों के शासन-काल में चीनी विद्वानों ने शब्द-शास्त्र, इतिहास और साहित्य के क्षेत्र में प्रभूत श्रम कर प्राचीन कृतियों को नष्ट होने से बचाया और उनके पाठों को सही किया। क्लासिकल साहित्य के ऊपर अनेक विशद ग्रन्थ लिखे गये, अनेक विपुल संग्रह प्रस्तुत हुए। इन ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण 'टू शू ट्सी चेङ्ग' नामक सचित्र विश्वकोष था, जिसके १६२८ खंड थे और प्रत्येक खंड २०० पृष्ठों का था। 'चुआन ट'आङ्ग शिह्' इसी प्रकार २२०० ट'आंग कालीन कवियों की कविताओं का संग्रह था, उस पर भी भाष्य बना। १८०० पृष्ठों में समूचे साहित्य की अनुक्रमणिका 'पेई वेन यून फ़ू' पर भी तभी अनेक ग्रन्थ लिखे गये और साथ ही चीनी भाषा के प्रसिद्ध कोष 'क'आंग' ह्सी टज़ू टिएन' पर भी। इसी प्रकार ७७१ खंडों में १७४० में प्रकाशित चीन के २४ राजवंशों का इतिहास 'एर्ह शिह् श्ज़े शिह्' भी विशद ग्रन्थों का आधार बना। १०२२३ खंडों में तीन सौ विद्वानों ने चीनी साहित्य का सबसे बड़ा संग्रह 'श्ज़े कु चुआन शू' नाम से १७७३-१७८२ के बीच प्रस्तुत किया था, उसे भी अब नये सिरे से सँभाला गया और उसकी सामग्री को क्लासिक साहित्य, इतिहास, दर्शन और अन्य साहित्य में बाँट लिया गया।

सम्राट वाङ्ग ह्सी के शासन काल के कुछ महान् लेखकों का उल्लेख यहाँ समीचीन होगा—हुआंग ट्सुंग ह्सी[1] इतिहासकार और दार्शनिक था। उसने अपने एक ग्रंथ में मिङ्ग काल की दर्शन शाखाओं का ऐतिहासिक विवरण लिखा। कु-येन-वू[2] की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और प्राचीन साहित्य इतिहास, भूगोल, पुरातत्त्व, शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र और कविता सबमें उसकी गति समान थी। उसके ग्रन्थ अनेक विषयों पर हैं और सर्वथा प्रथम कोटि के। वाङ्ग-फु-चिह (१६१९-९२) गम्भीर दार्शनिक और उच्चकोटि का कवि था। उसने निर्भीकता के साथ अपने ग्रंथों में यह प्रतिपादित किया कि वही शासन सबसे सुन्दर होगा जो जनता की अधिक से अधिक सेवा कर सके।

जिन विद्वानों ने सर्वथा वैज्ञानिक दृष्टि से सत्य का विवेचन किया, और परंपरा के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया, वे अधिकतर चिएन-लुंग काल में हुए। इनमें अग्रणी पाँच थे—(१) यूआन मेई[3] (२) टाई चेन, (३) च्यांग-शिह-चुआन, (४) टसाओ-सुएह-चिन और (५) लींहु-चेन, इनमें मेई १८वीं सदी के चीन का सबसे बड़ा कवि था। साथ ही वह समीक्षक और निबन्धकार भी पहले तबके का था। उसने काव्य के रूप से कहीं अधिक महत्व कवि के ज्ञान, उसकी प्रतिभा और उसके व्यक्तित्व को दिया। नारियों की साहित्यिक प्रतिभा पर उसे बड़ा विश्वास था और उसने अनेक नारी

---

१. Huang-Tsung-Hsi (१६१०-९५); २. Ku-Yen-Wu (१६१३-९५); ३. Yuan-Mei (१७१६-९८)

शिष्याएँ बनाईं, जिनमें से १८ प्रसिद्ध कवियित्रियाँ हुईं। उसकी कविताओं के साथ ही उसके भाई और शिष्याओं की कवितायें भी 'सुई-युआन-सान शिह् चुंग' नाम से संग्रहीत हुईं। टाई चेन[1] १८वीं सदी का सबसे बड़ा दार्शनिक था। च्यांग महान्[2] नाटककार और तीन प्रमुख कवियों में से था। उसने अनेक नाटक लिखे जिनमें से ९ सर्वोत्कृष्ट मान कर विविध शीर्षकों से छापे गये। उसकी कवितायें ३१ खंडों में प्रकाशित हुईं। ट'साओ[3] १८वीं सदी का प्रख्यात चीनी उपन्यासकार था जिसका उच्चकोटि का प्रसिद्ध 'हुंग लाऊ मेंग' नाम का उपन्यास अनेक भाषाओं में अनूदित हुआ। इसकी भाषा सरल है और घटना रोजमर्रा की है। बीच-बीच में छोटी-छोटी कवितायें भी गुँथी हुई हैं। ली हु-चेन[4] ने १०० अध्यायों में समाप्त 'चिन हुआ युआन' (दर्पण का कुसुम) नाम का अद्भुत उपन्यास लिखा। उसने भी मेई की भाँति नारी के प्रति बड़ी समवेदना प्रकट की और अपने उपन्यास में बड़ी कर्मठता और प्रतिभा का बखान किया।

१८०० और १८९० के बीच का चीन प्रायः निष्क्रिय रहा। कम से कम जगत विख्यात चीनी साहित्यकार प्रसव करने का श्रेय तब के चीन को नहीं है। हाँ, दो कवियों के नाम निश्चय ही फिर भी लिये जा सकते हैं, जिनमें एक तो चिन ह्ओ[5] था और दूसरा हुआंग टसुन ह्सीयेन।[6] १९वीं सदी में लिखे चीनी उपन्यासों में सबसे अधिक लोकप्रिय वेन कांग[7] का वीर बालक विषयक उपन्यास था। तभी का लिखा ली पो युआन[8] का चीनी अफसर विषयक उपन्यास भी काफी ख्याति पा चुका है।

: ९ :

आधुनिक युग

१९वीं सदी के अन्त में चीन में एक नई क्रांति की लहर उठी। वह क्रांति जितनी ही राजनीतिक थी, उतनी ही सामाजिक भी थी। विविध पश्चिमी राजशक्तियों ने एशिया के अन्य देशों के साथ ही चीन पर भी साम्राज्यवादी छापा मारा था। १९वीं सदी के अन्तिम दशक में चीन में एक सुधारवादी आन्दोलन चल पड़ा। इसने साहित्य पर भी स्वाभाविक ही गहरा प्रभाव डाला। सुधारवादी आन्दोलन के विशिष्ट निर्माताओं में

---

१. Tai Chen (१७२४–७७); २. Chiang Shih-Chuan (१७२५–८५); ३. Tsao Hsuen-Chin (१७१९–६६); ४. Li Hu-Chen (१७६२-१८३०); ५. Chin Huo (१८१८-८५); ६. Huang Tsun Hsien (१८४१-१९०५); ७. Wan Kang; ८. Li Po Yuan

उनमें चाऊ श-जेन[१] कुओ मो-जो[२] हू शिह[३], लिन युतांग[४], और लाओ शेह[५], अग्रणी थे। चाऊ श-जेन का दूसरा नाम लू हुसुन[६] (लूसिन) था। वह चीन का मैक्सिम गोर्की और बर्नार्ड शॉ दोनों कहा जाता है। उसमें गोर्की की समवेदनशील मानववादिता और शॉ के जीवन के प्रति व्यंग्य, समान रूप से विद्यमान हैं। उसके प्रधान ग्रंथ 'आह-कू की आत्मकथा' और 'चीनी उपन्यासों का एक संक्षिप्त इतिहास' हैं। मो-जो ने दस सुन्दर उपन्यास, प्रायः एक दर्जन अद्भुत नाटक, पाँच खंड कविता और छह खंड निबन्ध लिखे हैं। इनके अतिरिक्त जर्मन और रूसी साहित्य की अनेक कृतियों के चीनी अनुवाद भी उसने किये हैं। मो-जो वर्तमान चीन के महान् ग्रंथकारों में हैं जिसकी रचनाओं का विस्तार बड़ा व्यापक है, हू शिह दार्शनिक निबन्धकार, कवि और पंडित है, जिसने चीनी और अंग्रेजी दोनों में लिखा है। उसकी साहित्यिक ईमानदारी की विशेष प्रशंसा की गई है। लिन-युतांग ने विदेशों में भी बड़ा नाम कमाया है। इस देश में भी उसका प्रसिद्ध ग्रंथ 'चीन और भारत का ज्ञान' पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका है। पाश्चात्य देशों में उसकी जिन कृतियों ने उसके लिए ख्याति अर्जित की उनमें विशिष्ट 'मेरा देश मेरे लोग' और 'जीवन का महत्त्व' हैं। चीनी में उसकी महत्त्व की रचना 'वो ती हुआ' (मेरे वचन) हैं। लिन युतांग समर्थ कृतिकार होता हुआ भी आज के क्रांतिकारी निर्माता अभिनव चीन से अभाग्यवश दूर है, फ्रांस में। लाओ शेह (लाओ शा) की प्रतिभा भी बहुमुखी है और उसने अनेक व्यंग्य नाटक लिखे हैं। उपन्यास और कविताओं में प्रयुक्त उसकी बुद्धि चातुरी की तुलना मार्क ट्वेन से और साफ सुथरी भाषा की अर्नेस्ट हेमिंग्वे से की जाती है।

१९३७ से चीनियों का जापानियों के विरुद्ध जीवन-मरण का संघर्ष शुरू हुआ और उसके बाद का साहित्य कम से कम युद्धकालीन उपन्यास, नाटक, कवितायें, निबन्ध और लेख सभी उस संघर्ष को ही रूपायित करते रहे। उनमें सबसे महत्त्व का उपन्यास चेन शाऊ-चू[७] का 'वसन्त की गरज' है जिसमें आक्रांताओं के विरुद्ध किसानों के संगठन और संघर्ष का अद्भुत चित्रण किया गया है। इसी प्रकार याओ ह् सुएह्यिंग[८] का 'लाल शलजम' भी किसानों की निर्भीकता और उनकी निरीह स्थिति से संघर्षशील सैनिक वन जाना निरूपित करता है। उस काल जो कवितायें लिखी गईं उनमें त्सांग केह् चिआ[९] की 'प्राचीन वृक्ष की कलियाँ' पाँच हजार पंक्तियों में संपन्न हुईं और काव्योचित उपकरणों द्वारा शानतुंग के गोरिल्ला युद्ध और वहाँ के एक नगर की रक्षा का वर्णन करती है। उसी काल त्साओ-

---

१. Chou Shu-jen (१८८१-१९३६); २. Kuo Mo-jo (जन्म १८९२); ३. Hu Shih (जन्म १८९१); ४. Lin Yutang (जन्म १८९५); ५. Lao Sheh ६. Lu Hsun; ७. Chen Shou-Chu; ८. Yao Hsueh-Ying; ९. Tsang Keh-Chia

यू[1] ने 'शुक्लवसना महिला' नामक नाटक लिख कर उस नारी डाक्टर का अभिराम चित्रण किया जो अनुपम लगन से घायल सैनिकों की सेवा करती रही थी।

: १० :

समाजवादी (कम्यूनिस्त) वर्तमान काल

१९१९ में 'चौथी मई का आन्दोलन' चला था। तब से आज ३२ वर्ष हुए, चीनी प्रगतिशील लेखक 'कला के लिए कला' का दृष्टिकोण छोड़ 'जीवन के लिए कला' अपनाकर निरन्तर सृजन करते रहे हैं। इस साहित्यिक क्रांति का अग्रदूत महान् कृतिकार लू ह्सुन था[2]। उस आन्दोलन के बाद से साहित्यकार वहाँ साम्राज्यवादी, सामन्तवादी और थैलीशाही शक्तियों और प्रवृत्तियों से लड़ते रहे हैं। जापानी युद्धकाल (१९३७-४५) और मुक्ति-युग में उन्होंने प्रचार और शिक्षण आदि में प्रभूत योग दिया है। उनमें से अनेक बारी-बारी कलम और हथियार धारण करते रहे हैं। अनेक उस संघर्ष में शांति लाभ कर चुके हैं। उस दिशा में विशेष प्रयत्नशील कुओ मो-जो[3] (विख्यात लेखक और इतिहासकार) माओ तुन[4] (प्रसिद्ध उपन्यासकार) और चाऊ यांग[5] (मतिमान साहित्य-समीक्षक) रहे हैं। आज भी चीन के प्रगतिशील साहित्य की बागडोर इन्हीं के हाथ है।

१९४२ की येनान साहित्यिक कान्फ्रेन्स के बाद साहित्य के रूप और विषय के दृष्टिकोण में विशेष परिवर्तन हुआ। साहित्य जन-प्रसार की पृष्ठभूमि पर खड़ा हुआ। उसका कर्त्तव्य किसान, मजदूर और सैनिक का हित चिन्तन मानागया। साहित्य इसी दृष्टिसे प्रस्तुत होने लगा। उस दिशा में निम्न लिखित कृतियाँ उल्लेखनीय हैं:—माफ़ेंग[6] और ह्सी जुंग[7] का 'लु लियांग के वीरों के वृत्तांत' चाओ शूली[8] का 'ली चिया गाँव में परिवर्तन', युआन चिंग[9] और कुंग चुएह[10] का 'नये वीरों के वृत्तांत', शाओ त्जून्नान[11] का 'बारूदी खेत' (उपन्यास), हु तान-फू[12] का 'अपनी दृष्टि को उदार करो' (ड्रामा), मा चिएन-लिंग[13] के 'प्रतिशोध के रक्ताश्रु' और 'कंगाल की घृणा' (नया शेंसी ड्रामा), के चुंग-

१. Tsao Yu; २. Lu Hsun; ३. Kuo Mo Jo; ४. Mao Tun; ५. Chou Yang; ६. Mafeng; ७. Hsi Jung; ८. Chao Shuli; ९. Yuan Ching; १०. Kung Chueh; ११. Shao Tjunnan; १२. Hu Tan Fu; १३. Machien Ling

पिंग[1] का 'अनुपम सेना' (संगीत नाट्य), 'हिरोइन लिउ हु-लान' (संगीत नाट्य) आदि। ये सभी सेना, किसानों अथवा लेखकों का संघर्ष चित्रित करते हैं।

इसी प्रकार लिउ पाइ-यू[2] का 'तीन बाँके सिपाही' और 'राजनीति-कमिसर' हुआ-शान[3] का 'वीर अक्तूबर', ली-वेन-पो[4] का 'आस्तीन पर लहू', हान ह्सी-लियांग[5] का 'यिमेंग पहाड़ों का उड़ाकू बेड़ा' (उपन्यास और रिपोर्ताज) आदि भी सेना के वीर कृत्यों को साहित्य में प्रतिबिम्बित करते हैं। किसानों के संघर्ष को व्यक्त करने वाली कुछ कृतियाँ ये हैं :—चाओ-शू लो[6] का 'ली यु-त्साई की पंक्तियाँ', वांगली[7] का 'उज्ज्वल दिवस', वांग ह्सी-चिएन[8] की 'विपत्ति', तिंग लिंग[9] का 'सांगकांग नद पर सूरज चमकता है', ली-पो[10] का 'तूफान', मा चिया[11] का 'चियांग शान गाँव में दस दिन' (उपन्यास), और ली चिह्-हुआ[12] का 'प्रतिक्रियावादी संघर्ष का प्रति संघर्ष' (नाटक)।

उस काल के लिखे संगीत नाट्य 'शुक्ल केशा नारी' की बड़ी ख्याति हुई। युवान चांग-चिंग[13] का 'जाल', चाओ शू-लो[14] का 'हिसआओ एर-हेइ का विवाह', हान त्सू[15] का 'घबड़ाहट', कुंग चु-एह[16] का 'नारी के मोक्ष की कहानी', हुंग लिन[17] का 'लीह्सऊ लान', और कांग चाओ[18] का 'मेरे दो मालिक' (उपन्यास) नारी का संघर्ष व्यक्त करते हैं।

श्रमिकों के जीवन को व्यक्त करने में संगीत नाट्य 'भाई बहन', 'वांग हिसउ लुआन' सफल हुए। काओ कान-ता[19] 'बावग की कहानी', 'प्रेरक शक्ति' आदि उपन्यास भी उसी क्षेत्र के हैं। 'लाल झंडे का गान' भी शक्तिम् नाट्य कृति है। ऐतिहासिक विषयों की कृतियाँ 'वांगक्वेइ और ली हिसयांग-हिसयांग' (काव्य) और 'चाऊ त्जू शान' हैं जो उत्तरी शेंसी के भू-सुधार आन्दोलन को प्रतिबिम्बित करते हैं।

चीनी साहित्य की वर्तमान प्रेरक शक्ति वहाँ की निर्माण योजनाएँ हैं। जनता और जनाध्यवसाय वहाँ के साहित्य और कला के आराध्य बन गए हैं। साहित्य का योग मानव को उसके उत्कर्ष-प्रयास में वहाँ मिला है। प्रमादजन्य शृंगारिक घिनौनी चेतना चीन के साहित्यकारों की कल्पना को अब दूषित नहीं करती।

---

१. Chung Ping; २. Liu PaiYu; ३. Hung Sheng; ४. LieWan Po; ५. Han his Livang; ६. Chao Shu Lie; ७. Wang Li; ८. Wang His Chien; ९. Ting Ling; १०. Li Po·; ११. Ma Chia; १२. Li Chih Hua; १३. Juan Chang Ching; १४. Chao Shuli; १५. Han Tsu; १६. Kung Chu-Eah; १७. Hung Lin.; १८. Kang Cho; १९. Kao Kanta

८. चेक साहित्य

चेक और स्लावों का देश चैकोस्लोवेकिया बड़ा अभागा रहा है। सदियों उस पर विदेशी हुकूमत रही है और बराबर उसे अपनी आजादी के लिए संघर्ष करना पड़ा है। परन्तु जब-जब उसने आजादी हासिल की है और उसे शांतिपूर्ण अवकाश मिला है, तब-तब उसने साहित्य में प्रगति की है। चेक साहित्य का इतिहास यहाँ दिया जा रहा है। स्लाव साहित्य वहाँ उतना विकसित नहीं हुआ जितना अन्यत्र। रूस, पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, बल्गेरिया, रूमानिया, सर्वत्र उसकी बेलें अनश्वर रूप धारण कर चुकी हैं। इससे स्लाव साहित्य का जहाँ सर्वोत्कृष्ट रूप निखरा है, वहीं उस पर विचार समीचीन होगा।

११वीं सदी के पहले का चेक साहित्य नहीं के बराबर है। एक-आध गीत के सिवा और कुछ वहाँ नहीं मिलता। हाँ, लैटिन में निश्चय ही कुछ धार्मिक साहित्य प्रस्तुत हुआ। चेक भाषा का विकास १४वीं सदी में शुरू हुआ। कुछ वीर चरित्र वर्णन (Epics) कुछ लोक साहित्य तब लिख डाले गये। उस सदी के सारे साहित्य का कुछ अनुमान दालिमिल का इतिहास[1] जो चेक पद्य में है, लगाया जा सकता है। उस काल रोजमबर्क के पीटर[2] की 'रोजमबर्क की पुस्तक' लिखी गई जिसमें तत्कालीन बोहेमिया की सामाजिक दशा और कानूनों पर प्रकाश डाला गया है। उस काल के एक-आध नाटकीय दृश्यों का भी पता चलता है।

१३४८ में प्राग में चार्ल्स यूनीवर्सिटी की स्थापना के बाद पद्य से अधिक गद्य में रचनायें होने लगीं और उसी माध्यम से समसामयिक समाज तथा राजनीति की आलोचना शुरू हुई। बाइबिल के चेक अनुवाद हुए और तोमास[3] ने ईसाई विषयों पर अपनी पुस्तक लिखी, जिसमें ईसाइयों के दुराचरण की शिकायत की।

यूनीवर्सिटी के 'रेक्टर' मिस्टर जान हस[4] ने एक प्रबल राष्ट्रीय आन्दोलन का आरम्भ प्राग में किया। उसने चेक भाषा को बहुत कुछ सुधार कर साहित्यिक बनाया। हस का प्रधान शिष्य पीटर चेचिकी[5] था, जिसने चेक में कई धार्मिक निबन्ध लिखे। अनेक बार तो उसने टॉल्स्टॉय[6] के विचार उसके जन्म से सदियों पहले अपने निबन्धों में उतार कर रख दिये। उसने चर्च के संगठन की कड़ी आलोचना की।

---

१. Chronicle of Dalimil; २. Petr of Rozmberk (१३१२-४६); ३. Tomás of Stítné (१३३१-१४०१); ४. Mistr Jan Hus (१३६४-१४१५); ५. Petr Checicky (१३९०-१४६०); ६. Leo Tolstoy

चेक साहित्य के अगले डेढ़ सौ वर्ष धार्मिक कृतियों का युग उपस्थित करते हैं। कैथोलिक नेताओं में प्रसिद्ध ब्लाहोस्लाव[1] था, जिसने शिक्षा पर विशेष जोर दिया। उसने बाइबिल की नई पोथी का अनुवाद किया जो सदियों चेक प्रोटेस्टैण्टों का स्टैण्डर्ड धर्म-ग्रंथ बना रहा। मार्टिन कबातनिक[2] ने अपनी यात्राओं का विवरण भी चेक में उसी काल प्रकाशित किया। वाक्लाव हाजेक[3] का इतिहास और दानिएल आदम (१५४५-९९) का 'ऐतिहासिक कलैंडर' उस काल की रचनाओं में उल्लेखनीय है।

तीस वर्षीय युद्ध बोहेमिया के लिए नितान्त मारक सिद्ध हुआ। कैथोलिकों ने चेक साहित्य की बहुत सी कृतियाँ जला कर भस्म कर डालीं। चेक-चिन्तक देश से निर्वासित कर दिये गये। प्रमुख चेक-चिन्तक जान आमोस कोमेन्स्की[4] (कोमेनियस) को अपना जीवन पोलैण्ड, हालैण्ड, और स्वीडन के प्रवास में बिताना पड़ा। उसने अनेक काव्य-रूपक लिखे और पहली सचित्र 'टेक्स्ट बुक' प्रस्तुत की। वह उस काल का सबसे बड़ा शिक्षा प्रचारक था और उसने उस सम्बन्ध में लिखा भी काफी। इसके बाद चेक साहित्य पर जैसे पाला पड़ गया। १८वीं सदी तक कोई महत्वपूर्ण कार्य उस देश के साहित्य की दिशा में नहीं किया जा सका। प्राग की यूनीवर्सिटी जेसुइट एकेडेमी में बदल दी गई। ऑस्ट्रिया नरेशों ने चेक का तो अपकार किया ही, लैटिन को भी हटा कर वहाँ जर्मन भाषा प्रतिष्ठित की।

जोसेफ दोब्रोव्स्की[5] स्लाव भाषाशास्त्र का प्रवर्त्तक था। उसने एक नये आन्दोलन का आरम्भ किया, जिसके परिणामस्वरूप चेक भाषा अपने वर्तमान-भविष्य के मार्ग पर जा खड़ी हुई। दोब्रोब्स्की का काम रोमाण्टिक तरुणों ने अपने हाथ में ले लिया। अगली पीढ़ी का नेता जोसेफ जेकब जंगमान[6] रोमाण्टिक प्रवृत्ति से सराबोर था और उसने उस धारा को चेक साहित्य में बहाया। मिल्टन और अन्य विदेशी साहित्यरथियों की रचनाओं का उसने चेक में अनुवाद किया। उसने अपनी भाषा के व्याकरण और कोष भी प्रस्तुत किये। चेक भाषा अब सर्वथा साहित्यिक हो चली। जंगमान के उत्साह ने अनेक साहित्यकारों को उत्साहित किया। वाक्लाव हांका[7] ने शीघ्र ही दो प्राचीन हस्तलिपियों—'क्र लूव द्वर' और 'जेलेना होरा'—को शुद्ध कर प्रकाशित किया। रोमाण्टिकों ने उन्हें प्राचीन चेक काव्यधारा का शुद्ध नमूना माना। कुछ लोगों ने उनकी वास्तविकता में शंका भी की। स्वयं टामस मजारिक[8] ने १९वीं सदी के अन्त में उन पर शंका प्रकट की।

---

१. Jan Blahoslav (१५२३-७१); २. Mártin Kabatnik; ३. Václav Hájek of Libocane (मृत्यु १५५८); ४. Jan Amos Komensky (१५९२-१६७०); ५. Josef Dobrovsky (१७५५-१८२९); ६. Josef Jakob Jungmann (१७७५-१८४७); ७. Václav Hanka (१७९१-१८६१); ८. Thomas G. Masaryk

चेक भाषा का पहला विशिष्ट कवि जान कोलार[१] था। जना की यूनीवर्सिटी में पढ़ते समय ही रोमाण्टिक आन्दोलन से प्रभावित होकर उसने उसी प्रकार का आन्दोलन स्लावों में भी शुरू किया। अपने सॉनेटों—'स्लाव कन्या'—में स्लावों का प्राचीन गौरव प्रकट किया। उसने अपनी कविताओं में स्लावों की पुरानी परंपराओं को फिर से रूपायित किया। उसकी शैली आज भी उस देश में जीती है। पावेल जोसेफ सफरिक[२] ने भी उसी पथ का अनुसरण किया। उसके विशिष्ट ग्रंथ विज्ञान-संबंधी थे और अधिकतर जर्मन में लिखे गये, परन्तु 'स्लाव पुरातत्त्व' उसने चेक में लिखा। उसका मित्र फ्रांतिसेक पालाकी[३] चेक इतिहास का पण्डित था। उसने अपनी जनता का प्रायः आधी सदी तक नेतृत्त्व किया। दोनों का प्रभाव देश की जनता और साहित्य दोनों पर पड़ा।

लोकगीतों के संग्रह फ्रान्तिसेक लादिस्लाव चेलाकोव्स्की[४] और कारेल जारोमीर एरबेन[५] ने किया।

रोमान्टिक स्कूल का विशिष्ट कवि कारेल हीनेक माचा[६] था। वह बड़ी कम आयु में मरा परन्तु उसने साहित्य पर अपनी कविताओं से गहरा प्रभाव डाला। उसने काव्य-क्षेत्र में एक नया पथ खोज निकाला, जिसका महत्त्व लोगों ने तब पूरा-पूरा न समझा। उसकी कविता 'मई' मानवीय प्रारब्ध और पाप से सम्बन्ध रखती है। उसमें प्रकृति का वर्णन अद्‌भुत हुआ है बोजेना निम्कोवा[७] ने लोक-कथाओं के अतिरिक्त चेक-किसान जीवन पर अपना सुन्दर उपन्यास 'बाबिच्का' लिखा। उसी पीढ़ी का व्यंग्यकार जर्नलिस्ट कारेल हेवलीचेक बोरोव्स्की[८] भी था जिसने डेढ़ साल रूस में बिताया था और जिसे वहाँ की निरंकुश व्यवस्था असह्य हो गयी थी। गोगोल का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा था और स्वदेश लौट कर उसने नितान्त निर्भीकता से अपने विचार प्रकाशित करना शुरू किया। वह शीघ्र निर्वासित कर दिया गया परन्तु उसकी कविताओं ने उसका नाम देश में अमर कर दिया।

अगली पीढ़ी के साहित्य का नेतृत्त्व जान नेरूदा[९] के हाथ में आया। उसने चेक साहित्य को भली प्रकार संगठित किया। अपनी कविताओं और कहानियों में प्राग के पुराने मुहल्लों का जीवन खोल कर उसने रख दिया। उसकी कृतियाँ अपनी सादगी और स्पष्टता के कारण विशेष लोकप्रिय हुईं। वितेज्स्लाव हालेक[१०] ने 'सांध्य-गीत' और एडोल्फ हेदुक[११]

---

१. Slovak Jan Kollar (१७९३-१८५२); २. Pavel Josef Safarik (१७९५-१८६१); ३. Frantisek Palack'y (१७९८-१८७६); ४. Frantisek Ladislav Celakovsky (१७९९-१८५२); ५. Karel Jaromir Erben (१८११-७०); ६. Karel Hynek Mácha (१८१०-३६); ७. Bozena Nemcov'a (१८२०-६४); ८. Karel Havlicek Borovsky (१८२१-५६); ९. Jan Neruda (१८३४-९१); १०. Víte Zslav Hálek (१८३५-७४); ११. Adolf Heyduk (१८३५-१९२३)

ने लिरिक तथा एपिक लिखे। करोलिना स्वेत्ला का जन्म नाम जोहाना मुजाकोवा[1] था। उसने भी चेक साहित्य में अच्छी रचनायें कीं।

१८७० के बाद चेक साहित्य में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दो परस्पर विरोधी चेतनाओं का विकास हुआ। दूसरी चेतना का माना हुआ नेता जारोस्लाव ब्रचलिकी (एमिल फ्रीदा)[2] था। जारोस्लाव संसार के विशिष्ट लेखकों में गिना जाता है। उसने अनेक भाषाओं की प्रधान कृतियों का चेक में अनुवाद किया और काव्य के क्षेत्र में अनेक मौलिक रचनायें कीं। जूलियस जेयर[3] भी अधिकतर उसी के विचारों का था। वह जीवन और रचना दोनों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि का पालन करता था। जोसेफ वी. स्लादेक[4] भी उसी दल का था। वह अमेरिका में कुछ काल रहा और उसने शेक्सपियर के नाटकों के चेक-रूपान्तर किये।

राष्ट्रीय दल की सहानुभूति अपने स्लाव देशों से थी, विशेषकर रूस से। स्वातोप्लुक चेक[5] ने चेक और स्लाव विषयों को अपनी कृतियों का आधार बनाया। उसने अपने 'गुलाम के गीत' में जर्मनों का विरोध किया। उसकी अनेक कवितायें, व्यंग्य, कहानियाँ बड़ी लोकिप्रिय हुईं। उसी दल में चेकों की प्रधान कवियित्री एलिस्का क्रास्नोहोर्स्का (एलिस्का पेचोवा)[6] भी थी और फ्रान्तिसेक प्रोचाज्का[7] भी। उसी दल के कुछ साहित्यकारों ने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। इसमें प्रधान वाक्लाव वेनिस त्रेविज्स्की[8] और ज़िकमुन्द विन्टर[9] थे। उस दल का सबसे बड़ा नेता आलोइस जिरासेक[10] था जिसकी रचनाओं ने सारे चेक इतिहास का स्पर्श किया। उसके उपन्यासों ने चेक राष्ट्रीय भावना को पहले महा-समर के समय बहुत जाग्रत किया और वे बड़े लोकप्रिय हुए। किसान जनता का चित्रण उस दल के कारेल रईस[11], कारेल क्लोस्टरमान[12], जान हर्बेन[13] और जोसेफ होलचेक[14] ने किये। इग्नात हर्मान[15] ने प्राग जीवन संबंधी अपनी कहानियों द्वारा नरूदा की परंपरा कायम रखी। १८८० के बाद चेकोस्लोवक प्रजातंत्र के प्रथम राष्ट्रपति टामस मजारिक[16]

---

१. Karolina Svétla Johanna Muzáková (१८३०-९९); २. Jaroslav Vrchlicky' (Emil Frida १८५३-१९१२); ३. Julius Zeyer (१८४१-१९०१); ४. Josef V. Sládek (१८४५-१९१२); ५. Svatopluk Cech (१८४६-१९०८); ६. Eliska Kr'asnohorsk'a (Eliska Pechov'á) (जन्म १८४७); ७. Frantisek S. Procházká (जन्म १८६१); ८. Vaclav Benes Trebizsky (१८४९-८४); ९. Zikmund Winter (१८४६-१९१२); १०. Alois Jirásek (१८५१-१९३०); ११. Karel V. Rais (जन्म १८५९); १२. Karel Klostermann (१८४८-१९२३); १३. Jan Herben (१८५७-१९३६); १४. Josef Holecek (१८५३-१९२९); १५. Ignát Herrmann (जन्म १८५४); १६. Thomas G. Masaryk (१८५०-१९३७)

का प्रभाव साहित्य पर वेग से पड़ने लगा। उसने नई जनसत्ता की प्रवृत्तियों का तरुणों में प्रचार किया। फ्रान्तिसेक जेवियर साल्दा[1] आलोचक था और उसने स्वतंत्र् आलोचनाओं द्वारा कला सम्बन्धी चेतना जगायी। रूसी और फ्रेंच प्रकृतिवादियों और यथार्थवादियों का देश में अध्ययन शुरू हुआ। रूजेना स्वोवोदोवा[2] ने नारियों और तरुणियों का प्रभाववादी चित्रण किया। मातेज अनास्तासिया सिमाचेक[3] ने कारखानों पर अपनी कृतियों में प्रकाश डाला और कारेल चापेक चोड[4] ने प्राग के मध्यवर्गियों का ह्रासोन्मुख चित्र खींचा। फ्राना स्रामेक[5] ने भावनाओं के संघर्ष का विश्लेषण किया और अपने 'रजत पंख' तथा 'तीलो' (शरीर) में प्रभाववादी प्रकृति को रूपायित किया। अन्ना मेरी तिल्शोवा[6] ने अच्छे सामाजिक उपन्यास लिखे।

जोसेफ स्वातोप्लुक माचर[7] पिछली १९वीं और २०वीं सदी के विशिष्ट सामाजिक कवियों और लेखकों में से है। उसने अपने 'युगों की प्रेरणा' में धर्म और परंपराओं की कड़ी आलोचना की। इस 'एपिक' के अतिरिक्त भी उसने अनेक रचनाएँ कीं। पीटर बैजरुच[8] ने साइलेशिया के चेकों का उनके संघर्ष में अपनी कृतियों द्वारा योग दिया। अन्तोनिन सोवा[9] भी उसी काल का साहित्यकार था। ओताकार ब्रेजिना[10] विशिष्ट रहस्यवादी कवि था। और उसने सारे जगत को मानवीयता के दृष्टिकोण से अपना माना।

उस काल के लिरिक कवियों में प्रधान ओतोकर[11] थीर और कारेल तोमान[12] थे। जिरी कारासेक[13] नव-रोमान्टिक प्रवृत्तियों से प्रभावित था। विक्टर डीक[14] व्यंग्यकार राष्ट्रीयतावादी था। उस प्रवृत्ति के अन्य लेखक स्तानीस्लाव न्यूमान[15] और फ्रान्तिसेक गेलनर[16] हैं।

वर्तमान चेक साहित्य का सबसे महान् व्यक्ति कारेल चापेक[17] था। उसने विदेश संबंधी अपने स्केचों में सुन्दर व्यंग्य चित्र उपस्थित किये हैं। उसने मशीनों के विरोध में लिखे

---

१. Frantisek Xavier Salda (१८६७-१९३६); २. Ruzena Svobodov'a (१८६८-१९२०); ३. Matej Anastasia Sim'acek (१८६०-१९१३); ४. Karel Capek-Chod (१८६०-१९२७); ५. Frana Sramek (जन्म १८७७); ६. Anna Marie Tilschov'a (ज० १८७३); ७. Josef Svatopluk Machar (१८६४-१९४०); ८. Petr Bezruc (जन्म १८६७); ९. Antonin Sova (१८६४-१९२८); १०. Otakar Brezina (१८६८-१९२९); ११. Otokar Theer (१८८०-१९१७); १२. Karel Toman (जन्म १८७७); १३. Jiri Karasekze Lvovic (जन्म १८७१); १४. Viktor Dyk (१८७७-१९३१); १५. Stanislav K. Neumann (जन्म १८७५); १६ Frantisek Gellner (१८८०-१९१४); १७. Karel Capek (१८९०-१९३८);

अपने नाटकों और उपन्यासों से विदेशों में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। उसकी कृतियों में प्रसिद्ध निम्नलिखित हैं:—'स्रष्टा आदम', 'माक्रोपुलोस रहस्य', 'सर्वशक्तिमान का कारखाना', 'सफेद कोड़ा'। अपने भाई जोसेफ के सहयोग से उसने 'कीड़ों का जीवन' लिखा। मजारिक से उसकी 'बातचीत' राष्ट्रपति के व्यक्तित्व को खोल कर रख देती है।

उस काल का प्रतिभाशाली नाट्यकार फ्रान्तिसेक लाँगर[१] है। उसने 'सुई के सुराख से'—लिखा। प्रथम महासमर के बाद के साहित्यिकों में प्रधान रूडोल्फ मादेक[२], जोसेफ कोप्ता[३] और फ्रांन्तिसेक कुबका[४] हैं। उस काल की सुन्दरतम कृति 'नेक सैनिक स्वेजक' है, जिसे जारोस्लाव हासेक[५] ने रचा। उस उपन्यास का, उसकी खामियों के बावजूद वर्तमान चेक साहित्य में अपना स्थान है। उस युद्ध के बाद सामाजिक और आचार संबंधी प्रश्नों पर विचार करने का भी साहित्य में प्रयत्न हुआ। जोसेफ होरा[६] और जीरी वोल्कर[७] ने उस दिशा में प्रयत्न किये। वितेस्लाव[८] ने काव्य में अमूर्त्त शैली का विकास किया। नये उपन्यासकारों में व्लादिस्लाव वंचुरा[९] हैं, जिसने नई शैली का प्रयोग किया है। इधर के तरुण लेखकों में प्रधान जान वाइस[१०] इगोन होस्तोव्स्की[११] और वाल्दिमीर नेफ[१२] हैं।

१९३९ में दूसरा महासमर शुरू हुआ और नात्सी साम्राज्यवादी क्रूरता का पहला शिकार चैकोस्लोवाकिया हुआ। कारेल चापेक का निधन म्यूनिख सुलहनामे के समय ही हो गया था और अब सहसा शत्रु के घर पर सर्वथा अधिकार कर लेने पर साहित्य की धारा रुक गई। अधिकतर राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, प्रगतिशील साहित्यकार तलवार के घाट उतार दिये गये, अथवा आक्रमण की अन्य क्रूरताओं के परिणाम-स्वरूप विनष्ट हो गये। कुछ जो स्वदेश से भाग कर विदेशों में पहुँचे, उन्होंने अपने साहित्य का अध्ययन और विकास जारी रखा। युद्धोत्तर की नई सरकार ने चेक और स्लोवक साहित्यकारों को नया जीवन प्रदान किया है और उस संरक्षा से चेक-भारती एक बार फिर चमक उठी है। अभी हाल में अनेक भारतीय कृतियों के अनुवाद चेक में प्रस्तुत हुए हैं। कई हिन्दी रचनायें भी चेक में अनूदित हुई हैं। वस्तुतः भारतीय कृतियों के जितने अनुवाद चेक भाषा में हुए हैं, उतने रूसी को छोड़ और किसी विदेशी भाषा में नहीं हुए।

---

१. Frantiser Langer (जन्म १८८७); २. Rudolf Medek (१८९०-१९३८); ३. Josef Kopta (जन्म १८९४); ४. Frantisek Kubka (जन्म १८९४); ५. Jaroslav Hásek (१८८४-१९२३); ६. Josef Hora (जन्म १८९१); ७. Jiri Wolker (१९००-२४); ८. Vitezslav Nezval (जन्म १९००); ९. Vladislav Vancura (१८९१-१९४३); १०. Jan Weiss; ११. Egon Hostovsky; १२. Vladimir Neff;

९. जर्मन साहित्य

जर्मन-साहित्य संसार के प्रौढ़तम साहित्यों में गिना जाता है। उसकी वैज्ञानिकता तो सिद्ध है ही, विज्ञान संबंधी चर्चा भी उस साहित्य में काफी हुई है। वस्तुतः विज्ञान-साहित्य जितना जर्मन भाषा में है, उतना संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं।

जर्मन-साहित्य के अध्ययन के लिए हमें उसे अनेक काल स्तरों में बाँटना होगा। इनमें पहला प्राचीन काल ८०० ई. के लगभग प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ, दूसरा मध्यकाल प्रायः १२०० के लगभग। तीसरा, वर्तमान युग, गेटे के जीवन काल में १८०० के लगभग शुरू हुआ, जो अपनी विविध साहित्यिक चेतनाओं द्वारा स्वयं अनेक स्कंधों में बँट गया है।

: १ :

प्राचीन-युग

प्राचीन जर्मन-साहित्य निस्संदेह अंग्रेजी समसामयिक साहित्य की अपेक्षा कम और निःसत्त्व है। वीर बैलेडों का अभाव तो उस काल जर्मन में नहीं था परन्तु निश्चय आंगल सैक्सन 'बोवुल्फ' की सी कोई कृति तब नहीं रची गई। 'डास हिल्डेब्रान्डस्लिड' निश्चय ही उस महान् अंग्रेजी कृति की समता नहीं कर सकता। फिर भी यह जर्मन कृति उस काल के बैलेड-साहित्य की एक मंजिल प्रस्तुत करती है। उसकी कहानी पिता-पुत्र के बीच मरणान्तक युद्ध की है। उपलब्ध खण्ड कहानी को अपूर्ण प्रस्तुत करता है, जिसमें युद्ध मात्र प्रदर्शित है, यद्यपि उसके प्रमाणों से सिद्ध है कि पिता विजयी हुआ और उसे अपने मान की रक्षा के लिए पुत्र का वध करना पड़ा। सोहराब और रुस्तम की कहानी जैसे जर्मन आधार से फिर उठ खड़ी हुई है।

जर्मनी में वीर-बैलेडों का जनता में उस काल पर्याप्त प्रचार था। फ्रेंच 'त्रूबेदूरों' की तरह वहाँ भी पेशेवर गायक वीर-कृत्यों से मुखरित बैलेड नगर-नगर, गाँव-गाँव जाकर गाया करते थे। जर्मन कबीलों का निरन्तर इधर-उधर भटकते फिरना, राज्यों का उत्थान-पतन, राजाओं के परस्पर संघर्ष, निस्संदेह अत्यन्त शक्तिम् बैलेड रचनाओं के आधार बन सकते थे और बने। आस्त्रोगोथ जाति के राजा थियोडोरिक (डीत्रीच फ़ान बेर्न)[१] हूणों के राजा अत्तिला (एतजेल)[२] और बरगंडी के राजा गुन्थर[३] के वीर कृत्यों पर अनेक बैलेड रचे गये, जिनका प्रभाव उस काल के जर्मन साहित्य पर

१. Dietrich Von Bern—Theodoric; २. Etzel (Attila); ३. Gunther

गहरा पड़ा। फिर धीरे-धीरे जब अनेक बैलेड एक साथ मिल कर आकृति को विस्तार देने लगे तब वीर-काव्य[१] का बोध भी लोगों को होने लगा और लोकप्रिय वीरकाव्य की रचना शुरू हुई।

: २ :

मध्य-युग

लोक-काव्य

वीरकाव्यों का उदय मध्य काल का अग्रदूत है। तेरहवीं सदी ईस्वी के आरम्भ में रचित 'निबेलुँगेनलीड'[२] '(निबेलुगों का गीत) वीर-काव्यों में प्रधान है। इसकी रचना अनेक स्रोतों से सामग्री एकत्र कर दक्षिण जर्मनी अथवा आस्ट्रिया के किसी चारण ने की। इस काव्य के कथानक राजा गुन्थर और एतजेल (अत्तिला) के दरबार से सम्बन्धित हैं। आरम्भ के सर्गों में हागेन और सीगफ्रिड प्रतिद्वन्द्वी हैं और पिछले सर्गों में हागेन और क्रीमहिल्ड। गुन्थर का सामन्त हागेन त्यूतन स्वामिभक्ति का आदर्श उपस्थित करता है। सीगफ्रिड क्रीमहिल्ड के भाई गुन्थर की सहायता कर उसके प्रेम को जीत लेता है और साथ ही वीर नायिका ब्रूनहिल्ड के विरोध पर भी हावी हो जाता है। दोनों पत्नियाँ जब एक दूसरे से अपने पतियों के गुणों का बखान करती हैं, तब पति से सहायता का रहस्य जान लेने के कारण क्रीमहिल्ड ब्रूनहिल्ड पर वास्तविक सत्य का व्यंग्य करती है। ब्रूनहिल्ड को जब पता चलता है कि सीगफ्रिड वस्तुतः उसका विजेता है, तब वह क्रोध से जल उठती है और उस वीर की मृत्यु को अपनी लज्जा और मान की रक्षा का एकमात्र साधन मान लेती है। यह अनीति दरबार के और वीरों को स्वीकार नहीं होती परन्तु हागेन जो जर्मन शौर्य और स्वामिभक्ति का मूर्तिमान प्रतीक है, रानी की मान-रक्षा के लिए सीगफ्रिड से संघर्ष करने को उद्यत हो जाता है और शिकार के समय उसे छुरा भोंक देता है। विधवा क्रीमहिल्ड का मधुर सौंदर्य अब प्रतिशोध की भावना से विकृत हो उटता है और वह पथ के हन्ताओं के नाश में संलग्न हो जाती है। इस अर्थ वह हूणों के राजा एतजेल से विवाह तक कर लेती है और उसकी रानी के अधिकार से अपने दरबार में बरगण्डी से अपने बन्धुओं को आमन्त्रित करती है। हागेन गुन्थर को अनागत भय की ओर संकेत कर आमन्त्रण के संबंध में सचेत कर देता है परन्तु जब गुन्थर जाना निश्चय ही कर लेता है तब हागेन भी स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर अवश्य मरण परिणामतः जानता हुआ भी उसका अनुकरण करता है। परिणाम वही होता है, जिसका

१. Epics; २. Das Nibelungenlied

भय था और कष्टमय संघर्ष के बाद वह स्वयं मारा जाता है यद्यपि वह क्रीमहिल्ड के सामने सिर नहीं झुकाता ।

दरबारी वीर-काव्य

इस प्रकार के काव्य वस्तुतः लोक-काव्य थे जिनके रचयिताओं का सही पता नहीं चलता यद्यपि यह संदेह रहित है कि इनकी रचना चारणों ने ही की । भारत में भी चारण-साहित्य की कमी नहीं; राजस्थानीय डिंगल उससे भरा पड़ा है । जगनिक का 'आल्हा' उसी प्रकार का एक चारण काव्य है, यद्यपि उसके साथ एक दरबारी कवि का नाम जुड़ा हुआ है । अति प्राचीन काल में भारत में भी संस्कृत महाकाव्यों के उदय के पहले चारण ही रामायण-महाभारत आदि की कथाएँ सर्वत्र फिर-फिर कर सस्वर गाया करते थे । पश्चात्, वाल्मीकि, व्यास आदि से समर्थ कवियों ने रामायण-महाभारत के से वीर-काव्यों की रचना की । यद्यपि वाल्मीकि और व्यास को दरबार विशेष से सम्बन्धित करना आसान न होगा, उनकी कृतियों को दरबारी वीर-काव्य की संज्ञा देना शायद अनुचित न होगा । उसी परंपरा में पिछले काल कवि चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की । जर्मनी में भी मध्यकाल के अज्ञातनामा शिथिलबन्ध लोक-वीर-काव्यों की रचना के बाद दरबारी वीर-काव्यों की रचना हुई ।

१२वीं सदी के प्रायः अन्त में दरबारी चारणों ने लोकप्रिय वीर-गाथाओं के आधार पर फ्रेंच त्रूबेदूर परंपरा से प्रभावित 'एपिक-काव्यों' की रचना प्रारम्भ की । इनमें जर्मन कुलों के पारस्परिक संघर्ष, खूनी बदलों और शौर्य-कृत्यों का अभिनिवेश हुआ । इस प्रकार के जर्मन काव्यों की रचना मध्यकाल में होहेन्स्टाफेन[१] सम्राटों के शासनकाल में हुई । उस काल के तीन विशिष्ट कवि हार्तमान फॉन ओई[२] वुलफ्राम फॉन एशेनबाख[३] और गॉटफ्रीड फॉन स्ट्रासबुर्ग[४] थे । हार्तमान आर्थर सम्बन्धी अपनी कथाओं से काफी विख्यात हो गया है परन्तु उसकी उस काल की विशिष्ट रचना 'डेर आर्म हीनरिख' (अभागा हेनरी) थी । उसमें एक पवित्र हृदया कुमारी के त्यागशील प्रणय के प्रभाव से महाकाय वीर का कुष्ठ दूर हो जाता है । मध्यकालीन जर्मनी की सबसे महान् काव्य-कृति 'पार्जीवाल' वुलफ्राम ने प्रस्तुत की । 'पार्जीवाल' धार्मिक वीर है, आर्थर के वीरों में से एक, और सर्वथा सरल होने के कारण उसे निरन्तर अनृत से संघर्ष कर बार-बार पराजित होना पड़ता है । परन्तु अन्त में वह विजयी होकर शांति लाभ करता है । गॉटफ्रीड 'त्रिस्तान उन्ड इसोल्ड' का रचयिता है । इस काव्य में

---

१. Hohenstaufen; २. Hartmann Von Aue; ३. Wolfram Von Eschenbach; ४. Gottfried Von Strassburg

वीर नायक और नायिका एक दूसरे के प्रति प्रणय से प्रेरित अपने जीवन की प्रेम पर आहुति चढ़ा देते हैं।

प्रणय-काव्य

वीर-काव्यों के अतिरिक्त उस मध्यकाल में वीरों और उनकी नायिकाओं के परस्पर प्रणय पर भी एक प्रकार की पृथक् काव्य-रचना हुई, जिसे जर्मन में 'मिनेसांगर'[१] साहित्य की संज्ञा मिली। इस पद्धति का आरम्भ वस्तुतः प्रोवांस में हुआ था परन्तु उसकी सीमा का प्रसार जर्मन साहित्यिक प्रवृत्तियों को भी प्रभावित किये बिना न रहा। वस्तुतः उसकी प्रेरणा सारे मध्य-यूरोपीय साहित्य के मधुर रूपायन का आधार बनी। उस प्रणय की सामग्री पर जर्मनी के देहातों में असंख्य लिरिक लिखे गये और इन्हीं लिरिकों के रचयिताओं का नाम 'मिनेसांगर' पड़ा। उनका प्रधान प्रतिनिधि वाल्थर फॉन डेर फोगलवाइड[२] था। इस महान् गायक ने वियना के दरबार में राइनमार से अपनी कला सीखी। राइनमार फॉन हागेनो[३] तब के गायकों का नेता था। वाल्थर अन्य चारणों की ही भाँति दरबार-दरबार घूमा करता था। जिन दरबारों को उसने अपनी उपस्थिति से सनाथ किया, उनमें प्रधान थुरिंगिया के लैंडग्रेव हरमान[४] और होहेनस्टाफेन राजकुल के सम्राट् फ्रेडरिक द्वितीय के थे। वाल्थर ने होहेनस्टाफेन सम्राट् के पक्ष का पोप के विरुद्ध समर्थन किया और उस निमित्त हृदयग्राही उद्देश्य-परक कविताएँ रचीं। उसके 'मिनेसांग' अत्यन्त सरल और शालीन हैं। उसने भी त्रूबेदूर परंपरा में लिरिक लिखे परन्तु उनकी ताजगी आज भी पूर्ववत् बनी है। जिस प्रकार विद्यापति की वाग्धारा अपने संरक्षक राजा शिवसिंह की रानी लखिमादेई सम्बन्धी अभिराम पदों में फूट पड़ी थी, उसी प्रकार प्रायः उन्हीं दिनों जर्मनी के उस प्रधान गायक के गीत गढ़ की रानी के प्रति बह चले यद्यपि वाल्थर विद्यापति के समान प्रणय में कृतार्थ न हो सका। तब उसकी स्वर-लहरी भोली ग्रामीण कुमारियों के लावण्य के बखान में गूँज उठी। उसने दरबारी लिरिक को चरम प्रौढ़ता प्रदान की।

मध्कालीन दरबारी कवियों में एक प्रसिद्ध गायक तानहाउसेर[५] हो गया है। उसके सम्बन्ध में यह पुराण-प्रसिद्ध हो गया था कि वह प्रणय की देवी वीनस के दरबार में भी रह चुका था। १५वीं सदी के एक लोकगीत का कथन है कि साल भर वीनस के साथ विलास कर लेने के बाद एक दिन तानहाउसेर की ज्ञान-चेतना सहसा जाग्रत हो उठी और वह अनुशोचना का शिकार हुआ। अपनी आत्मा की नरक से

---

१. Minnesanger; २. Walther Von der Vogelweide; . Reinmar Von Hagenau; ४. Landgrave Hermann; ५. Tannhauser

रक्षा के लिए तब वह पोप के पास रोम भागा। परन्तु जब वहाँ उसे निराशा के सिवा कुछ हाथ न लगा, तब वह फिर वीनस के दरबार को लौट गया। भगवान् के चमत्कार से उसे सद्गति की भी सूचना दी गई परन्तु प्रायश्चित के बदले उसने अब तक वीनस के साथ विलास ही स्वीकार कर लिया था। तानहाउसेर को अपने गायनों की प्रेरणा वाल्थर से मिली थी और उसके लिरिकों में ग्रामीण किसान तरुणियों का अधिकाधिक चित्रण मिलता है। अधिकतर उन्हीं के प्रति नाइडहार्ट की ही भाँति उसका स्वर भी ध्वनित हुआ है।

लोक-गीत

१५वीं सदी को तानहाउसेर ने अपनी कृतियों से सनाथ किया। उसके अतिरिक्त भी लोक-गीतों का प्राबल्य रहा। असंख्य लोक-गीत उस काल में रचे गये। उनकी गेयता और माधुर्य इतने आकर्षक हैं कि आज भी वे बासी न पड़ सके और उसी प्राचीन उत्साह से गाये जाते हैं। मानव-जाति के हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, मैत्री-वैर आदि उन गीतों के आधार बने। साहस के कार्य, संयोग-वियोग की अनुभूतियाँ, ऋतुओं के विविध व्यापार उन गीतों के स्वर में मूर्त्त हुए। भाषा वस्तुतः जनबोली थी परन्तु उसके गीतों का स्वर व्यापक सिद्ध हुआ। दो राजसन्तानों का प्रणय एक प्रसिद्ध गीत में अभिराम मुखरित हुआ है। दूसरे में प्रेमी अपनी समाधि से, रात में उठ कर प्रेयसी को खोजने निकल पड़ता है। इसी गीत ने गॉटफ्रीड ओगुस्ट बीरगर[1] को उसके सुन्दरतम बैलेड 'लेनोरे' (१७७४) लिखने को प्रेरित किया। स्कॉट[2] और रोसेट्टी[3] दोनों ने 'लेनोरे' का अनुवाद अंग्रेजी में किया। अज्ञातनामा अनेक कवियों के अनेक अन्य गीत माँझियों, पहाड़ के निवासियों और छात्रों के संबंध में लिखे गये, अनेक निम्नवर्गीय शठों के सम्बन्ध में भी।

मिनेसांगेर का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उस परंपरा के गीत लोकगीत थे, चारणों द्वारा गाये और लिखे गये। गीतों की एक और परंपरा १५वीं १६वीं सदी में जगी, जिसका नाम उसके गीतों और कविताओं की अलंकृत तथा पेचीदी शैली के कारण 'माइस्तेरसिंगेर' साहित्य पड़ा। माइस्तेरसिंगेर उन गीतों का नाम नहीं, उनके गायकों और रचयिताओं की संज्ञा है। नगरों के उदय से शिल्पाचार्यों और सौदागरों में प्राचीन लोक-गीतों की परंपरा को बचा रखने और जीवित रखने की प्रेरणा हुई। नूर्नवर्ग, मेन्त्स और स्ट्रासबुर्ग में काव्यकला के शिक्षण के लिए अनेक पीठ स्थापित हो गये। कवि बनने की इच्छा करने वाला व्यक्ति अपरेन्टिस के रूप में वहाँ पहले भर्ती होता था। यदि उसने छन्दों की रचना में कुछ प्रतिभा दिखाई तो

---

१. Gottfried August Beirger; २. Scott; ३. Dante Gabriel Rossetti

उसकी संज्ञा 'काव्यपथिक' (जर्नीमैन) होती थी और यदि उसने एक नया स्वर, ध्वनि अथवा छन्द गढ़ डाला तब वह गायनाचार्य अथवा 'माइस्तेरसिंगेर' कहलाता था। १५वीं-१६वीं सदियों में नगरों में श्रेणीबद्ध सौदागरों का प्राधान्य था। श्रेणी अथवा 'गिल्ड' जीवन में सर्वत्र प्राधान्य धारण कर चुके थे। यहाँ तक कि छात्रों और आचार्यों तक के अपने-अपने गिल्ड बन गये थे। स्वयं वहाँ की यूनीवर्सिटियों का आरम्भ भी 'यूनीवर्सिटास' के जरिये उसी 'गिल्ड' के आधार पर हुआ। नूर्नबर्ग में माइस्तेरसिंगेर अर्थात् मास्टर गायकों की एक श्रेणी ही बन गयी। उस दल का मुख्य, पेशे से मोची, कवि हान्स साख्स[1] था। साख्स ने चार हजार से ऊपर पूर्ण-गीत लिखे। स्वयं उसे अपने इन गीतों पर बड़ा अभिमान था परन्तु उत्तरकालीन पीढ़ियों ने उसे बहुत महत्त्व न दिया। हाँ, अपने गीतों के अतिरिक्त उसने जो प्रहसन और नाटक लिखे, उनका आदर निश्चय ही पीछे भी काफी हुआ। उसके हास्यमय नाटक सांकेतिक रूप से 'फास्तनाक्तस्पीले'[2] कहलाते हैं। हान्स प्रसिद्ध प्रोटेस्टेंट धार्मिक नेता मार्टिन लूथर[3] का समकालीन था और सुधारवादी आन्दोलन में भाग लेने वाले पहले कवियों में से था।

यहाँ पर उस महान् सुधारवादी नेता मार्टिन लूथर का भी उल्लेख कर देना समीचीन होगा। लूथर स्वयं कोई विशिष्ट साहित्यिक न था परन्तु 'बाइबिल' के उसके अद्भुत अनुवाद ने निश्चय ही जर्मन-साहित्य के इतिहास में एक मंजिल स्थापित कर दी। उस साहित्य के लिए यह अनुवाद अत्यन्त महत्त्व का था। इस अनुवाद से जर्मन भाषा को अपनी सीमाओं में व्यापक बनने में बड़ी सहायता मिली। कारण यह था कि उसे वृद्ध और तरुण, पुरुष और नारी, धनी और कंगाल सभी पढ़ते थे। आगे की अनेक पीढ़ियों में लेखकों ने अपनी शब्द-योजना उसी अनुवाद के आधार पर प्रस्तुत की। सुधारवादी आन्दोलन ने जर्मन इतिहास के मध्ययुग का अन्त कर दिया और वर्तमान युग का वह अग्रदूत बन कर आया। उस आन्दोलन के परिणामस्वरूप जो सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल हुई, उसने अगली दो सदियों के साहित्य को गति, चेतना और दिशा दी।

: ३ :

पुनर्जागरण और सुधार-आन्दोलन

जर्मन इतिहास में पुनर्जागरण और धार्मिक सुधार के आन्दोलन बड़ी महत्व-पूर्ण और दूरगामी प्रेरणाएँ सिद्ध हुए। १६वीं सदी में इन दोनों प्रेरणाओं ने जर्मन

१. Hans Sachs (१४९४-१५७६); २. Fastnachtspiele; ३. Martin Luther

इतिहास और साहित्य में विशेष प्रगति पाई। कैथोलिक चर्च की प्रभुता के विरुद्ध संघर्ष और प्राचीन क्लासिकल ग्रीक और लैटिन साहित्य तथा ज्ञान का पुनरुज्जीवन जर्मन साहित्य के ऊपर अपनी अमिट छाप छोड़े बिना न रह सके। रेनेसां और सुधारवादी आन्दोलन को कुछ लोगों ने दो विरोधी विचारधारायें माना है। इनमें पहली वैयक्तिक स्वाधीनता और स्वतंत्र चिन्तन तथा निर्बाध जीवन की प्रेरक है और दूसरी प्रायः प्रतिक्रियावादी है जिसने व्यक्ति को पोप की सत्ता से हटा कर बाइबिल की शृंखला में बाँधा और जो इस प्रकार चर्च संबंधी उन धार्मिक प्रेरणाओं से व्यक्ति को स्वतन्त्र न कर सकी। मूलतः वास्तव में वह रूढ़िवादी ही थी। फिर भी दोनों का जर्मन इतिहास और साहित्य के निर्माण में जोरदार हाथ रहा है। जहाँ एक ने जर्मनी के मानव को एक नया दृष्टिकोण तथा जीवन और साहित्य के मूल्यांकन के लिए एक नया मानदण्ड दिया, दूसरी ने एक प्राचीन रूढ़िवादी अप्रगतिशील तथा प्रतिगामी संस्था के विरुद्ध विद्रोह कर एक नई चेतना को जन्म दिया। लोगों को ऐसा लगा कि उनको प्रतिगामी असमाजवादी सत्ता के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार है। और यह प्रवृत्ति तब केवल धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित न रह सकी, ऐसा संभव भी न था। नई चेतना पुराने मूल्यों को पुराने रूप और परिमाण में अंगीकार करने को प्रस्तुत न थी। विद्रोह की भावना ने जो भित्ति के सहारे नींव तक पहुँच कर रूढ़ियों की अट्टालिका को हिला दिया तो उसने अपनी शक्ति पहचानी और वह सर्वत्र सामाजिक औचित्य के नाम पर संघर्ष करने लगी। इस दिशा में समाज और साहित्य की दृष्टि से अग्रगामी जर्मन मानवतावादियों का एक दल था।

मानवतावादी

जर्मन मानवतावादी—जोहान्स रूखलिन[१], डेसिडेरियस इरेस्मस[२] और उलरिख फॉन हुट्टेन[3] —यद्यपि जर्मनी में उत्पन्न जर्मन थे, परन्तु उनके ज्ञान का विस्तार यूरोपव्यापी था। उन्होंने शीघ्र यूरोप की प्रगतिशील विचारधारा का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। इरैस्मस ऑक्सफोर्ड में ग्रीक का प्रोफेसर था। उसकी प्रतिभा का बड़ा गहरा प्रभाव इंग्लैण्ड की तत्कालीन चेतना पर पड़ा। मानवतावादी नेताओं के आन्दोलन की पद्धति पुरानी रूढ़िगत संस्थाओं पर लेखनी से प्रबल प्रहार थी। पादरियों, मठों, चर्च और उसके विशेषाधिकारों पर उन्होंने प्रबल आघात किया और चर्च के अधिकारियों तथा उनके हथकंडों की शिकार जनता दोनों को उन्होंने 'मूर्ख' कह कर पुकारा। मूर्खों और मूर्खता के ऊपर उन्होंने जो विशद साहित्य रचा, उसकी मात्रा और शैली दोनों असाधारण थे। सुधारवादी आन्दोलन के प्रवर्तक लूथर को अधिकतर उस दिशा

१. Johannes Reuchlin; २. Desiderius Erasmus; ३. Ulrich von Hutten

में प्रगति का नेता कहा जाता है, परन्तु वस्तुतः और मूलतः लूथर प्रतिगामी ही था। उसने पोप की सत्ता पर कुछ आघात तो किया, परन्तु किसी मात्रा में उसका उच्छेद उसे सह्य न था। हमारा मन्तव्य यहाँ लूथर के आन्दोलन को नगण्य करार देना नहीं, केवल इतना कहना अभीष्ट है कि स्वतंत्र और आलोचक—चेतना में प्राण फूंकने वाले दूसरे थे—वे प्राचीन क्लासिक पण्डित जो पुनर्जागरण के पुजारी थे और जिनके पास तर्क की शक्ति तथा मानवता की प्रेरणा थी—इरैस्मस, आदि।

स्वयं लूथर ने मानवतावादियों के प्रयास का विरोध नहीं किया। उसने रोमन कॅमेडियों का अध्ययन और रंगमंच पर अभिनय सराहा भी यद्यपि उसकी व्यक्तिगत अभिरुचि धार्मिक क्षेत्र में थी। लूथर के आन्दोलन के प्रायः साथ ही जर्मनी में राजनीतिक उथल-पुथल भी मच गई और उसने देश को, उसके नगर-नगर, गाँव-गाँव को बरबाद कर दिया। जर्मन जनसंख्या का एक बड़ा अंश नष्ट हो गया। परिणाम यह हुआ कि वहाँ साहित्य और कला के क्षेत्र में पुनर्जागरण का आन्दोलन उस मात्रा में सफल न हो सका जिस मात्रा में वह यूरोप के अन्य देशों—इटली, फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड और इंग्लैण्ड—में हुआ था।

जर्मन मानवतावादियों ने सिद्धांतों द्वारा आन्दोलन के रूप में तो निश्चय ही काफी प्रगति की और उस दिशा में विपुल मात्रा में साहित्य रचा। परन्तु जर्मन साहित्य और भाषा का कल्याण वे तत्काल न कर सके क्योंकि उस साहित्य और भाषा को उन्होंने अपनी लेखनी से सनाथ न किया। वे अपने विचार लैटिन (लातिनी) में ही प्रकट करते रहे। उनका लिखना-पढ़ना तो लैटिन में होता ही था, उनके व्याख्यान भी सदा उसी जबान में होते थे। हाँ, उलिरख फॉन हुट्टन और टॉमस मूरनेर[1] के-से कुछ मानवतावादी पण्डित इसके अपवाद भी थे। उन्होंने यूनीवर्सिटियों का आरम्भ किया, और वहाँ क्लासिकल ज्ञान का गढ़ कायम कर दिया परन्तु उनकी धारा बराबर ग्रीक और लैटिन में ही बहती रही। एकाध ग्रन्थ जो आम जनता के लिए जर्मन में लिखे भी गये उनका भी प्रचार के अर्थ शीघ्र लैटिन में अनुवाद कर लिया गया क्योंकि तभी उनमें प्रकटित विचारों का प्रचार हो सकता था और हो सका। उदाहरणतः सेबैस्टियन ब्रैन्ट[2] की पुस्तक 'नारेन्शिफ'[3] (मूर्खों की नौका, १४९४) जो इस दिशा में जर्मन भाषा की पहली पुस्तक थी, यूरोप-व्यापी ख्याति तभी प्राप्त कर सकी जब उसका लैटिन संस्करण प्रकाशित हुआ। यह जर्मन काव्य १५वीं सदी के अन्तिम चरण के साहित्य पर एक रत्न है, जिसमें तात्कालिक जीवन व्यंग्य के रूप में चित्रित हुआ है। अनेक मूर्ख एक साथ नौका-विहार करते हैं, प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में पारं-

---

१. Thomas Murner; २. Sebastian Brant ; ३. Narrenschiff

गत है और उस दिशा में अपनी विशेष मूर्खता का प्रदर्शन करता है। इस व्यंग्य काव्य का अनुकरण, इरैस्मस, मूरनेर तथा अन्य मानवतावादियों ने किया। काव्य अनेक बार अंग्रेजी और फ्रेंच में अनूदित हुआ।

१६वीं सदी जर्मन साहित्य के लिए कुछ अच्छी न सिद्ध हुई क्योंकि जहाँ लैटिन ड्रामा, गद्य और पद्य का एक नये सिरे से विकास हुआ, वहाँ जर्मन साहित्य उन पण्डितों की मेधा से सर्वथा अछूता रहा। कुछ काल पहले, १९वीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के आरम्भ में, जैसे हिन्दुस्तान में भी विद्वानों और साहित्यकारों को अपनी भाषा के प्रति उदासीनता थी, वैसे ही जर्मनी में भी तब जन साधारण, साहित्यिक और पण्डित सभी अपनी भाषा से उदासीन थे और निरन्तर लैटिन का उपयोग करते थे। यह स्थिति वस्तुतः इतनी भयानक हो उठी कि जो लोग जर्मन के सिवा और कोई भाषा नहीं जानते थे, वे तक विदेशी शब्द और मुहावरे सीख अपनी भाषा उनके योग से सुधारने और बढ़ाने का प्रयास करने लगे थे। १७वीं सदी के आरम्भ में तो जर्मन भाषा के प्रति यह घृणा इतनी बढ़ी और सारे देश में इस कदर व्यापक हो गई कि जब साइलेशिया के कवि और विद्वान मार्टिन ओपित्स[१] ने १६१७ में मातृभाषा के पक्ष में आन्दोलन आरम्भ किया, तब उसे अपना सारा प्रचार-साहित्य लैटिन में ही प्रस्तुत करना पड़ा, व्याख्यान तक। इस प्रकार जर्मन भाषा के पक्ष में एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर चुकने पर उसने उसमें अपनी कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया। उसके भी सात वर्ष बाद उस सदी की आलोचना संबंधी सर्वोत्तम पुस्तक 'बुख फॉन डेर डूत्शेन पोएतरी'[२] (जर्मन कविता का ग्रंथ) उसने प्रकाशित की। यद्यपि वह ग्रंथ सर्वथा मौलिक न था परन्तु जर्मन भाषा में साहित्य प्रस्तुत करने की प्रेरणा देने और उस भाषा को शुद्ध करने की आवाज उठाने के कारण उस ग्रंथ का महत्त्व कल्पनातीत हुआ। उसकी प्रधान पुकार भाषा को विदेशी शब्दों के भार और यातना से मुक्त करने की थी। परन्तु खेद कि निरन्तर होते रहने वाले धार्मिक संघर्षों ने उस दिशा में विशेष प्रगति न होने दी और ३० वर्षीय युद्ध (१६१८-४८) ने तो देश को सर्वथा वीरान ही बना दिया। १७वीं सदी के पूरे दौरान में बस एक ही साहित्यिक 'मास्टर पीस' प्रस्तुत हो सकी—ग्रीमेल्सहाउसेन[३] का युद्ध-उपन्यास 'सिम्पलीसिसिमस'।[४]

'सिम्प्लीसिसिमस' के रचयिता ग्रिमेल्सहाउसेन का चरित्र स्वयं एक रोचक रोमांस है। वह भी साधारण जर्मन जनता की ही भाँति जमाने के तूफान का निरन्तर शिकार होता रहा। १३-१४ साल की आयु में ही हस्सी लुटेरे उसे पकड़ ले गये थे।

---

१. Martin Opitz; २. Buch Von der deutschen Poeterey; ३. Grimmelshausen; ४. Simplicissimus

सैनिक के रूप में फिर वह गाँव-गाँव, नगर-नगर फिरता और लोगों के भयंकर अभाग्य को अपनी आँखों सालों देखता रहा। शांति स्थापित होने पर 'श्यामवन' में जाकर एक छोटे कस्बे में रहने लगा। वहाँ उसने अपने झेले संस्मरणों को ही कहानियों के रूप में लिखना शुरू किया। १६६८ में उसकी प्रसिद्ध कृति 'सिम्पलीसिसिमस' जो उसकी अपनी ही अनुभूतियों की परिचायक थी, प्रस्तुत हुई। स्पेन से एक प्रकार के रोमांस उपन्यासों का जर्मनी में अवतरण हुआ था। 'सिम्पलीसिसिमस' उन्हीं की परंपरा में लिखा उपन्यास था जिसमें चरित्रों का विकास पुण्य से पाप की ओर और पाप से पुण्य की ओर हुआ। उस क्रम में समसामयिक समाज अपने विविध चित्रों के साथ उपन्यास में उतर पड़ा। ३० वर्षीय युद्ध के भयंकर रक्तपात, बरबादी और अमानुषिकता का जितना सच्चा और विस्तृत विवरण ग्रिमेल्स हाउसेन की इस कृति में मिलता है, उतना किसी अन्य रचना में नहीं। समाज की अयथार्थ, अनुचित वर्ग-सम्मत व्यवस्था से भाग किसी दूर के द्वीप में अपने मनचीते वर्गहीन और पुण्य-प्राण समाज की प्रतिष्ठा उस काल अपनी काल्पनिक चेतना में प्रायः 'युटोपिया' के रूप में उपन्यासों में कलेवर धारण कर चली थी। ग्रिमेल्सहाउसेन की प्रेरणा उससे भिन्न न थी, यद्यपि उसका विशेष रूप प्रायः आधी सदी बाद जर्मन साहित्य में प्रकट हुआ। डिफो[१] के 'रोबिन्सन क्रूसो' के आधार पर जर्मन में 'रोबिन्सोनोडेन' नामधारी अनेक तदनुकूल रचनायें हुईं जिन्हें जनता ने अपने चतुर्दिक घटने वाली असह्य परिस्थितियों से पलायन की चेष्टा में, अत्यन्त उत्साह से स्वीकार किया। वेस्टफालिया की सन्धि ने जर्मनी को खंड-खंड कर दिया और स्वयं पवित्र रोमन साम्राज्य की सत्ता प्रायः नहीं के बराबर थी। उधर फ्रांस में चौदहवें लुई का सूर्य प्रखर तेज से तप रहा था। जर्मनों के लिए स्वभावतः ही फ्रेंच आचार, वेषभूषा और साहित्य मॉडल बन गये, उसी मात्रा में जिस मात्रा में यूरोप के छोटे-बड़े राज्यों में अनुकूल दरबारों की अभिसृष्टि हो चली थी। वर्साई सब प्रकार से यूरोप का आलोक-केन्द्र बन गया था और यह सम्भव न था कि जर्मनी पर उसका प्रकाश न पड़े। जर्मन शिष्ट समुदाय पर तो फ्रेंच साहित्य ने ही नहीं, भाषा तक ने अपना जादू फेंका। जर्मन शासक, प्रशा का फ्रेडरिक महान् तक, फ्रेंच बोलते थे। १८वीं सदी में जो लाइजिग जर्मन साहित्य का सबसे बड़ा केन्द्र बना, वह तब छोटा-बड़ा पेरिस ही था, और वह अपनी उस निष्ठा पर कुछ कम अभिमान भी न करता था।

---

१. Defoe

: ४ :

अठारहवीं सदी

१८वीं सदी का आरम्भ जर्मन साहित्य में गॉटशेड के आविर्भाव से होता है। जोहान क्रिस्टोफ गॉटशेड[१] सदी के प्रारम्भिक वर्ष १७०० में ही पैदा हुआ था और एक जमाने तक वह लाइजिग में साहित्य के क्षेत्र में सर्वसत्ता का अग्रणी बना रहा। उसने फ्रेंच लेखकों के अनुकरण करने की अपने साहित्यिकों को सम्मति दी। उसका कहना था कि उसके साहित्य में न तो मोलिए[२] के-से कॉमेडीकार हैं और न कारनेल[3] अथवा रसीन[४] के-से ट्रेजेडीकार। फिर वह ब्वालो[५] का भी अनुयायी था और जर्मन साहित्य क्षेत्र में फ्रेंच क्लासिक धारा का उसी की भाँति प्रवाह पसंद करता था। ब्वालो के अनुकरण की ही उसने अपने समकालीनों में प्रवृति भरी। गॉटशेड ने साहित्य-साधना में मर्यादा को बहुत महत्त्व दिया और रचना के प्रयोगों में कुछ नियमों को नितान्त अनुल्लंघनीय माना। साथ ही उसने जर्मन रंगमंच और नाट्यलेखन में भी अनेक आवश्यक परिवर्तन किये। पहले ट्रैजेडी-नाटकों में भी बीच-बीच में प्रहसन और भणैती के प्रसंग गुँथे रहते थे, उनको उसने सर्वथा गम्भीर ट्रैजेडी नाटकों से अलग कर दिया। उसने काव्य की कला में तर्कपूर्ण बौद्धिकता का उपयोग आवश्यक समझा और इस दिशा में लाइबनित्स[६] तथा क्रिश्चियन वुल्फ[७] के सिद्धांतों को अपना आदर्श बनाया। ओपित्स[८] के बाद जर्मन साहित्य पर किसी ने इतना गहरा प्रभाव न डाला। था जितना गॉटशेड ने डाला। उसके समालोचनात्मक सिद्धांतों ने जर्मन साहित्यिक कृ यों का स्तर तो निश्चय ही पर्याप्त ऊँचा उठा दिया, परन्तु अपने स्वाभाविक दोष से भी वे उस साहित्य को मुक्त न रख सके। इस प्रकार के सिद्धांतों का साहित्य में उपयोग एक प्रकार की यान्त्रिक चेतना अथवा टेकनीक उत्पन्न करता है जो प्रतिभा को ग्रस लेती है। जर्मनी में भी उसका परिणाम वही हुआ और सदी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते साहित्य के आलोचना क्षेत्र में गॉटशेड के सिद्धांतों के विरुद्ध देशव्यापी विद्रोह शुरू हो गया। प्रधान विद्रोही क्लापस्टॉक[९] था।

फ्रीड्रिख गॉटलिव क्लापस्टॉक[९] ने गॉटशेड के काव्य-सिद्धांतों की आवश्यकता न समझी और अपना एपिक 'मेसिया'[१०] (मसीहा) उन सिद्धांतों की अवहेलना करते हुए रचा। अपन आवेगों और भावनाओं के अविरल प्रवाह तथा शालीन 'ओडों'

---

१. Johann Christoph Gottsched (१७००-६६); २. Moliere; ३. Corneille; ४. Racine; ५ Boileau; ६. Leibnitz; ७. Christian Wolff; ८. Opitz; ९. Friedri h Gottlieb Klopstock; (१७२४-१८०३); १०. 'Messias' (Messiah)

की निरर्गल कल्पनाओं से उसने अपने पाठकों को चकित कर दिया। जन-साधारण उसके उन्मादक काव्य-रस से उन्मत्त हो उठा। आज भी उसकी कृति बड़े सम्मान और स्नेह से जर्मनी में पढ़ी जाती है। परन्तु गॉटशेड के सिद्धांतों का सबसे प्रबल प्रतिवादी लेसिंग हुआ।

गॉटहोल्ड एफ्रैम लेसिंग[१] ने जर्मन साहित्यिक रंगमंच पर उतरते ही देखा कि वह फ्रेंच संस्कारों से सर्वथा बोझिल हो गया है और उसे उनसे मुक्त करना आवश्यक ही नहीं; उसका पहला काम होगा। उसने तत्काल शेक्सपियर और ग्रीकों की ओर संकेत कर जर्मन नाट्यकारों को फ्रेंच प्रेरणा से मुक्त हो उनको अपना आदर्श बनाने के लिए उत्साहित किया। अपने 'हाम्बुर्गिशे ड्रामाटुर्गी'[२] में उसने जर्मन साहित्य के आलोचन-सिद्धांत के वास्तविक पाये खड़े किये। १७६७ और '६९ के बीच उसने अपना ग्रंथ रचा था। उससे भी पहले १७६६ में ही उसने 'लाओकून' में उन सिद्धान्तों का विवेचन किया था, जो गेटे[३] और शिलर[४] के जर्मनी के साहित्यिक सिद्धांतों का मूल आधार बने। जार्ज लिलो[५] के 'दि लंडन मर्चेण्ट' के आधार पर उसने 'मिस सारा सैम्पसन' नाम की पहली जर्मन घरेलू ट्रैजेडी लिखी (१७५५)। बारह वर्ष बाद १८वीं सदी की सबसे महान् कॉमेडी 'मिना फॉन बार्नहेल्म' (१७६७) प्रस्तुत हुई। १७७२ में लेसिंग ने अपनी प्रसिद्ध सामाजिक ट्रैजेडी 'एमीलिया गालोटी' और १७७९ में पहला आध्यात्मिक ड्रामा 'नाथान डेर वाइज' लिखा। यह ड्रामा धार्मिक सहिष्णुता और विश्वबन्धुत्व के समर्थन में लिखा गया था। यह एक प्रकार का रूपक है, जिसे सुल्तान सालादीन को यहूदी नाथान सुनाता है—किसी आदमी के पास एक अमूल्य अँगूठी थी। अँगूठी जादू की थी जिसे पहनने वाला भगवान् और मनुष्य दोनों का प्रिय बन जाता था। मरने के समय अँगूठी का स्वामी अपने सबसे प्यारे बेटे को जब वह अँगूठी देता तब बेटा परिवार का प्रधान बन जाता। पीढ़ी दर पीढ़ी इसी तरह फिरती हुई अँगूठी एक बार ऐसे पिता के पास पहुँची जिसके तीन बेटे थे और तीनों जिसे अत्यन्त तथा समान रूप से प्यारे थे। एक दिन उसने सुनार को बुला कर उसी की भाँति की दो अँगूठियाँ और बनवा लीं और प्रत्येक पुत्र को एक-एक अँगूठी दे दी। पिता के मरने पर परिवार की प्रधानता के लिए बेटों में लड़ाई हुई और मामला न्यायालय में पहुँचा। जज ने मामले की बात अलग कर उनको सलाह देते हुए कहा कि तुममें से प्रत्येक अपने को अँगूठी का स्वामी माने और उसकी परंपरा के अनुकूल आचरण करता हुआ भगवान् और मनुष्य का प्रिय पात्र बनने का प्रयत्न करे। फिर

---

१. Gotthold Ephraim Lessing; २. 'Hamburgische Dramaturgie; ३. Goethe; ४. Schiller; ५. George Lillo

लाख वर्ष बाद एक महान् जज पृथ्वी पर अवतार लेगा, जो अँगूठी के स्वामित्व का निर्णय करेगा। भावार्थ यह है कि धर्म अँगूठियों की ही भाँति विविध है और प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म के अनुकूल सुन्दर आचरण करना चाहिए। लेसिंग का यह दृष्टिकोण उस काल का महान् उदारवादी दृष्टिकोण था और जर्मन सांस्कृतिक आन्दोलनों पर उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा। जिन उदारवादी यूरोपीय चेतनाओं ने मध्यकालीन रूढ़ियों का अन्त किया, उन्हीं में लेसिंग का यह जर्मन दृष्टिकोण भी था। आधुनिक युग की प्रवर्त्तक प्रवृत्तियों में वह भी एक है।

: ५ :

आधुनिक युग

१८वीं सदी के ही तीसरे चरण से जर्मन-साहित्य में आधुनिक युग का आरम्भ होता है। चारों ओर जो तर्क की प्रतिष्ठा हो गई थी, उसने साहित्य की सुकुमार प्रेरणाओं पर गहरा आघात किया। भावुकता, कल्पना, मानव व्यक्तित्व सबके ऊपर उसने साहित्य की दृष्टि से घातक प्रभाव डाला था। अब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया ने एक नया रूप धारण किया, तर्क रहित भावुकता का। इस तर्क-विरोधी प्रतिक्रिया का विद्रोह १८वीं सदी के सातवें-आठवें दशकों में विशेषतः दृष्टिगोचर हुआ। एक प्रबल साहित्यिक आन्दोलन ही तब चल पड़ा, जो 'स्तूर्म उण्ड ड्रांग'[१] (तूफान और आग्रह) कहलाया। उस आन्दोलन का प्रधान प्रेरक जोहान गॉटफ्रीड हर्डर[२] था। तरुण गेटे और तरुणतर शिलर उसके मुख्य स्तम्भ बने।

हर्डर ने बुद्धिवादी यांत्रिक दृष्टिकोण पर प्रबल आघात किया। उसका कहना था कि विश्व सर्वदा विकसित होता रहा है और उसके विकास के साथ ही उसमें संहार की भी आग छिपी रही है। बुद्धिवादी विश्व को स्थिर मान कर उसे एक बौद्धिक चेतना तथा व्यवस्था के अधीन मानते हैं जो गलत है। निरन्तर परिवर्तनशील विश्व की इस प्रेरणा से सचेत हर्डर जर्मनी का रूसो[३] बन गया और डार्विन के विकासवादी सिद्धांत तथा रोमाण्टिक दृष्टिकोण दोनों का वह अग्रदूत बना। उसने राष्ट्रों के अपने-अपने लोक-गीतों के खरे सौंदर्य की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट किया। साथ ही उसने विदेशी साहित्य के अनेक रत्नों का जर्मन में अनुवाद और व्याख्या भी की। उसका प्रभाव जर्मनी के साहित्य पर अत्यन्त दूरगामी सिद्ध हुआ। जर्मन साहित्य की अप्रतिम प्रतिभा गेटे स्वयं उसका असाधारण ऋणी था।

जर्मनी के साहित्याकाश में सबसे देदीप्यमान नक्षत्र गेटे[४]. हैं—जोहान वोलगेंग

---

१. 'Sturm Und Drang ; २. Johann Gottfried Herder; ३. Rousseau; ४. Goethe

गेटे[१] । १७४९ में उसका जन्म हुआ । १८३२ में वह मरा । कानून के विद्यार्थी के रूप में लाइजिग में वह हर्डर से मिला । हर्डर था तो उससे केवल पाँच वर्ष बड़ा परन्तु उसकी मेधा जर्मनी के आकाश पर घनी छा गई थी और साहित्य के क्षेत्र में वह एकाधिराट् माना जाने लगा था। हर्डर के संपर्क में आकर गेटे ने 'तूफान और आग्रह' के साहित्यिक नारे सीखे और उसी आन्दोलन की दिशा में डग भरे । सारे परंपरागत साहित्यिक बन्धनों को तोड़ उसने अपने आन्तरिक भावुक वेदनाजन्य काव्य-स्रोत को खोल दिया । कविता की अविरल मधुर धारा बह चली, जैसी जर्मन जनता ने कभी न सुनी थी । एक ओर तो उसने लोक-गीतों की परंपरा में, परन्तु एकाकी भावोद्गम से ऋद्ध, अपना प्रसिद्ध लिरिक 'हाइडेन रोस्लाइन' लिखा जो आज भी प्रायः प्रत्येक जर्मन की जबान पर है, और दूसरी ओर 'प्रोमेथियस' द्वारा अपने उद्गार को वाणी दी । इनमें पहला १७७१ में प्रकाशित हुआ, दूसरा तीन वर्ष बाद, १७७४ में । 'प्रोमेथियस' वैयक्तिक चेतना का, ग्रीक प्रोमेथियस की ही भाँति, प्रतीक था और उसी की भाँति गेटे भी, अपने विचारों अथवा व्यक्तित्व के प्रसार में किसी का अनुशासन नहीं मानता था । शृंखला की कड़ियाँ उसने साहित्य की दिशा में तोड़ दीं जैसे प्रोमेथियस ने अपने ऊपर कोई सीमा स्वीकृत न की थी, गेटे ने भी किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार न किया । होमर[२], शेक्सपियर[३], ओसियन[४] अब उसके आदर्श बने । वस्तुतः यह आदर्श-सम्पदा हर्डर की ही देन थी । होमर और ओसियन का प्रभाव १७७४ के उसके उपन्यास 'तरुण वर्दर के विषाद' (डी लाइडेन डेस जुँगैन वर्दर्स) पर पड़ा और शेक्सपियर का उसके प्रारम्भिक ड्रामा 'गोन्स फॉन बर्लिखिंगेन' (१७७३) पर । उपन्यास के माध्यम से उसने अपनी वैयक्तिक विच्छृं-खलता प्रकट की । नायक वर्दर अपनी एकान्न भावुकता के कारण अपने को यथार्थ की दुनिया में घुला-मिला नहीं पाता । जीवन को वह यथार्थ रूप में देख ही नहीं पाता। उसमें संतोष की सर्वथा कमी है । संसार को या तो वह नितान्त भय से भरा हुआ देखता है अथवा स्वर्ग का पृथ्वी पर अवतरण के रूप में । उसे मध्यम मार्ग अथवा व्यावहारिक जगत् से उदासीनता है । उसे निरंकुश स्वतंत्रता और उन्माद चाहिए। ऋतुओं के साथ उसके मन को भावनायें बदलती रहती हैं । वसन्त में उसके आनन्दाश्रु निकल पड़ते हैं और होमर की मधुसिंचित पंक्तियाँ वह गुनगुना उठता है । बच्चों के साथ तब वह खेलता है, साधारण जनों से मैत्री करता है । फिर नृत्य के समय जब वह लोट्टी से मिलता है, तब उसकी भावधारा का बाँध टूट जाता है। और वह उसके प्रति सर्वथा विजित हो जाता है । वह कुमारी दूसरे की वाग्दत्ता हो चुकी है

---

१. Johann Wolegang Goethe; २. Homer; ३. Shakespeare; ४. Ossian

परन्तु उपन्यास का तरुण नायक उसकी परवाह न कर निरन्तर उससे मिलता रहता है। फिर उसके प्रणयी अल्बर्ट से मिलने पर धीरे-धीरे जब यथार्थ की भयावह स्थिति उसके सामने स्पष्ट हो उठती है, वह सर्वथा उद्विग्न हो उठता है और भाग चलता है। फिर विविध स्थितियों में मानसिक संघर्ष के बाद लोट्टी की ओर लौट पड़ता है। पर अल्बर्ट और लोट्टी का तब तक विवाह हो चुका होता है। अल्बर्ट व्यावहारिक जगत् की यथार्थता से अभिज्ञ है और वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारियों को समझता है। है भी वह व्यवहार चतुर, शांत और यथार्थवादी। लोट्टी उसमें वर्दर की आत्मा की ऊँचाई तो नहीं पाती, परन्तु उसके प्रति सच्ची बनी रहती है। वर्दर की मनःस्थिति ऋतुओं के परिवर्तन के अनुकूल बदल चलती है। पतझड़ के बाद जाड़ा आता है और होमर उसका चित्त हल्का नहीं कर पाता, हाँ, ओसियन निश्चय उसके घाव पर कुछ मरहम करता है। दिल निरन्तर बैठता जाता है और एक दिन कुछ ऐसा लगता है कि उसके मर्ज़ की एकमात्र दवा आत्महत्या है। आत्महत्या वह कर भी लेता है। गेटे का यह उपन्यास स्वयं उसके एक असफल प्रणय का परिणाम था। साहित्य के क्षेत्र में उसकी यह कृति अनोखी थी और उसने अनेक हृदयों को अभितृप्ति प्रदान की। उसके अनेक अनुवाद और अनुकरण विविध साहित्यों में शीघ्र प्रकाशित हुए। तूफान और आग्रह के आन्दोलन को एक और अस्त्र मिला, उसकी प्रगति में एक और मंजिल तय हुई। इस कृति ने गेटे को उसकी प्रौढ़ साहित्यिकता के राजमार्ग पर ला खड़ा किया।

१७७५ में वह तरुण ड्यूक कार्ल ऑगस्ट[1] का वाइमर में मेहमान बना। प्रायः आधी सदी बाद वह अपने व्यक्तित्व से वहाँ की राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना की प्रतिमा बना रहा। कुछ काल बाद इटली का भ्रमण कर उसने प्राचीन क्लासिकल कला के प्रतिमानों से साक्षात्कार किया और १७८७ में अपने काव्यपरक नाटक 'टारिस में इफीजेनी' और 'एग्मांट' लिखे। एक साल बाद उसका 'तारक्वातो तास्सो' प्रकाशित हुआ। इटली से लौटने के दो वर्ष बाद उसने अपने उस विश्वविश्रुत नाटक 'फॉस्ट'[2] को पूरा किया जिसका आरम्भ वह युवावस्था में ही कर चुका था। ऐतिहासिक फास्ट १६वीं सदी का भाण और रासायनिक था। उसके समसामयिक उसे नट और शैतान को इष्ट किया हुआ जादूगर मानते थे। कुछ काल बाद उसके सम्बन्ध में अनेक जादूभरी कहानियाँ प्रचलित हो गईं। १५८९ में उन्हीं कहानियों के ऊपर क्रिस्टोफर मार्लो[3] ने अंग्रेजी में अपना प्रसिद्ध नाटक 'डाक्टर फॉस्टस' लिखा। यह नाटक जर्मनी में भी अनेक बार खेला गया। गेटे पर उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा और उसने फॉस्ट को अपने ही असंतोष के प्रतीक के रूप में देखा। फॉस्ट ज्ञान और

---

१. Duke Karl August; २. Faust; ३. Christopher Marlowe.

अनुभव के अतृप्त पिपासु के रूप में दानव का व्यक्तित्व लिये उसके मानसचक्षु के सम्मुख उतरा। पहले उसने उसे उस प्रोमेथियस के रूप में सिरजा जो व्यवस्था और विधान का विरोधी था, अपराध और पाप करने में हिचकता न था। नितान्त संघर्ष का भी वह शिकार था, फिर भी वह गेटे की दृष्टि में मोक्ष का अधिकारी था। १७९० में गेटे ने 'फॉस्ट' के केवल कुछ दृश्य प्रकाशित किये। उसके बाद कुछ काल वह उस कृति के प्रति निश्चेष्ट रहा, फिर १७९७ में उसने 'फॉस्ट' को पूरा करना शुरू किया। अब तक जीवन में काफी परिवर्तन हो जाने के कारण नायक के प्रति उसके दृष्टिकोण में भी सापेक्ष्य परिवर्तन हो चुका था। अब उसका फॉस्ट ज्ञान से निराश होकर पाप को गले लगाने वाला फॉस्ट न था, वरन् श्रद्धालु फॉस्ट था; जो अपने साधारण काम से संतोष करता हुआ जन-साधारण का हितू हो गया था। इस फॉस्ट' के आध्यात्मिक दृष्टि-कोण का जर्मन जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह अपने को फॉस्ट की जनता मानने लगी। 'फॉस्ट' पर, गेटे ने स्वयं स्वीकार किया है, कालिदास की 'शकुन्तला' का गहरा प्रभाव पड़ा था। कुछ ही साल पहले सर विलियम जोन्स ने 'शकुन्तला' का एक अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था, जिसने यूरोप के साहित्यिकों में उथल-पुथल मचा दी थी। गेटे की जागरूकता उस अद्‌भुत भारतीय कृति के प्रभाव से वंचित न रह सकी।

गेटे का प्रसिद्ध उपन्यास 'विलहेम मेइस्तर' १७९७ और १८२९ के बीच लिखा गया, जिसमें उसने एक भावुक रसज्ञ को यथार्थवादी, व्यावहारिक, सक्रिय व्यक्तित्व में बदला। उपन्यास के क्षेत्र में 'विलहेम मेइस्तर' का वही स्थान है जो ड्रामा के क्षेत्र में 'फॉस्ट' का। १८३२ के पहले के ५० वर्ष गेटे के नेतृत्व, प्रेरणाओं, कृतियों से इतने प्रभावित रहे कि उन्हें उचित ही गेटे का काल कहा जाता है। परन्तु निश्चय ही जर्मनी में उसकी यह सत्ता केवल उस देश की सीमाओं तक ही परिमित न रह सकी और शीघ्र ही उसने विश्व के समर्थ कृतिकारों दांते और शेक्सपियर की पंक्ति में स्थान पाया।

कार्ल ऑगस्ट का वह नगर वाइमर तब के जर्मनी का एथेन्स था। कला और संस्कृति अपने प्रतीकों के साथ वहीं उदय और विकसित होती रही। हर्डर, गेटे, शिलर ने वहीं अपने साहित्यिक प्रयोग किये; वहीं उनकी कृतियों ने प्रौढ़ता पायी। क्रिस्टोफ मार्टिन व्हीलैण्ड[1] उस काल का बड़ा प्रतिभाशील साहित्यिक था। वह ड्यूक का शिक्षक भी रह चुका था और स्वयं हर्डर पर उसकी मेधा का प्रभाव पड़ा था। उसकी सुनहरी धूप में स्वयं गेटे का साहित्य भी सिका था। वह स्वयं उच्च कोटि का उपन्यासकार

---

१. Christoph Martin Wieland

और कवि था। उसका उपन्यास 'आगाथान' १७६७ और रोमांटिक कविता 'ओवेरान' (१७८०) जानी हुई कृतियाँ हैं।

वाइमर के उसी नगर में, प्रगतिशील और तरुण उसी ड्यूक कार्ल ऑगस्ट की संरक्षा में, हर्डर और गेटे की प्रेरणा की छाया में जर्मनी की एक और असाधारण मेधा, जिसने संसार के साहित्य पर अपना प्रभाव डाला, धीरे-धीरे उभरती आ रही थी। वह मेधा शिलर की थी। हर्डर और गेटे की ही भाँति फ्रीड्रिख शिलर[1] 'तूफान और आग्रह' की मान्यताओं का कायल था। गेटे का 'तूफान और आग्रह' अब कुछ नरम पड़ने लगा था, जब क्षितिज पर उस दिशा में नये तेज के साथ शिलर रूपी नक्षत्र का उदय हुआ। अनेकों ने उस दिशा में साभिमान दृष्टि-विक्षेप किया। स्वयं गेटे ने बरबस उधर अपनी दृष्टि डाली। परन्तु शीघ्र ही उस नक्षत्र का प्रताप प्रखर किरणों से फूट पड़ा और अब वह आँखों के लिए असह्य हो चला।

१७८० में शिलर ने अपना पहला प्रसिद्ध ड्रामा 'डी राउबर' (डाकू) लिखा। कृति पर रूसो का प्रभाव स्पष्ट था, विशेषत: उसकी सभ्यता के ऊपर चोट में शिलर भी रूसो की ही भाँति प्रकृतिवादिता का कायल था। उसकी इस रचना का नायक कार्लमूर अपने आचारभ्रष्ट समाज को चुनौती देकर बोहेमिया के जंगलों में चला जाता है और वहाँ डाकुओं का सरदार बन निरंकुश जमींदारों और समृद्ध घृणित पादरियों-मठाधीशों का भय बन जाता है। धीरे-धीरे उसे लगता है कि आखिर पाप का प्रतिशोध पाप द्वारा नहीं होना चाहिए और वह आत्मबलिदान के लिए प्रस्तुत हो जाता है। १७८३ में शिलर का दूसरा नाटक 'फिएस्को' प्रकाशित हुआ जो ट्रैजेडी था। वह भी 'डी राउबर' की ही भाँति अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का परिचायक था। 'काबाले उण्ड लीबे' (षड्यन्त्र और प्रणय) (१७८४) में उसने वैयक्तिक स्वाधीनता का नारा बुलन्द किया। इसमें उसने उस बुर्जुआ परंपरा का निर्वाह किया था, जिसकी चेतना १८वीं सदी में लिलो[2] ने इंग्लैण्ड में, दिदरो[3] ने फ्रांस में और लेसिंग[4] ने स्वयं जर्मनी में स्थापित की थी। हाँ, उस दिशा में यह ट्रैजेडी और आगे बढ़ जाती है। उसमें अभिजात और मध्य वर्ग के बीच की गहरी खाई स्पष्ट की गई है। प्रेसिडेण्ट जालसाजी, झूठ आदि से अपना पद प्राप्त करता है और धोखे तथा षड्यन्त्र से अपनी सत्ता कायम रखता है। वह शासक वर्ग का प्रतिनिधि है। गायक शिलर की वाग्धारा में 'पॉलिश' नहीं परन्तु उसकी ईमानदारी कभी शंकित नहीं होती। वह जनता का प्रतिनिधि है जो शासित होती है। दोनों की सन्तानें उस खाई को पाटना चाहती हैं, परन्तु स्वेच्छाचारिता और स्वार्थ का वातावरण उन्हें सफल नहीं होने देता। प्रणय

---

१. Friedrich Schiller (१७५९-१८०५); २. Lillo; ३. Diderot; ४. Lessing

और बलिदान ही उस दिशा म विजय प्राप्त कर सकते हैं। १७८७ तक शिलर गेटे की ही भाँति 'तूफान और आग्रह' की दिशा से हट कर शुद्ध साहित्यिक प्रौढ़ता की ओर बढ़ गया था। 'डान कार्ल्स' उसकी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है, जिसमें उसकी आस्था चित्त-शक्ति में हो आती है। यह रचना स्पेन के फिलिप द्वितीय और उसके पुत्र डॉन कार्ल्स के परस्पर संघर्ष के रूप में वस्तुतः दो युगों के संघर्ष को रूपायित करती है। दो युग—राजनीतिक स्वेच्छाचारिता और धार्मिक असहिष्णुता का परिचायक एक युग, राजनैतिक उदारता और धार्मिक स्वतंत्रता का दूसरा। नायक मार्क्विस पोजा, डॉन कार्ल्स का मित्र, उस आरमाडा के युग में मानवता का मित्र सिद्ध होता है। अपने मित्र के लिए जीवन को उत्सर्ग कर वह जर्मन तरुणों का आदर्श बन जाता है। जिस फ्रांसीसी राज्यक्रांति ने स्वाधीनता, भ्रातृभाव और समता के पायों पर शृंखलाओं को तोड़ मानवशालीनता को आरूढ़ किया, उसके दो वर्ष ही पहले शिलर की यह अद्भुत कृति प्रकाशित हुई थी।

शिलर केवल नाट्यकार ही न था, वह इतिहासकार भी था। १७८८ में जेना यूनीवर्सिटी में वह इतिहास का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। गेटे तूफानी और क्रांतिकारी जीवन से अलग अभिजात राजनीतिज्ञ का रूप धारण कर चुका था। पर शिलर उस तूफानी आन्दोलन का केन्द्र बना। अपनी रचनाओं और व्याख्यानों से तरुणों में वह उत्साह भर रहा था। गेटे ने स्वयं अपना तारुण्य शिलर में पुनर्जाग्रत होते देखा और उधर से मुँह फेर लिया। परन्तु शिलर की वेगवान चेतना तब उसकी प्रतिभा का संचालन कर रही थी और शीघ्र ही वह फ्रांसीसी राज्यक्रांति का मित्र तथा अग्रदूत घोषित हुआ। जो आन्दोलन फ्रांस में राजा की सत्ता पर आघात कर रहा था, उसका अग्ररूप तरुण शिलर के हृदय में भी उठकर उसकी रचनाओं का आकाश विस्तृत कर संहारक चोट का रूप धारण करता जा रहा था। गेटे ने उसे भली प्रकार देखा और अपने स्वामी ड्यूक के मूलाधिकारों का उसे प्रहर्त्ता समझ उसकी रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गया। ऐसी स्थिति में यह सम्भव न था कि दोनों प्रतिभाओं में किसी प्रकार का एका हो सके। यही कारण था कि एक जमाने तक नितान्त निकट रहते हुए भी गेटे और शिलर १७९४ में एक दूसरे से घने परिचित हुए। तब तक स्वयं शिलर का तरुण आग्रह नरम पड़ गया था और दोनों एक दूसरे की ओर खिंचे यद्यपि अन्त तक उन्होंने जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में अपनी परस्पर विरोधी मान्यताओं को न छोड़ा। गेटे और शिलर का यह परस्पर मित्रभाव जर्मन-साहित्य के लिए निस्संदेह बड़े काम का सिद्ध हुआ। शिलर की प्रेरणा से गेटे ने 'फॉस्ट' को पूरा किया और गेटे की प्रेरणा से तीस वर्षीय युद्ध सम्बन्धी 'वालेन्स्टाइन' नामक नाटक शिलर ने १७९९ में प्रस्तुत किया। १८०० ई. में उसने 'मार्या स्टूअर्ट' लिखा और साल भर बाद

आर्क की जोन पर 'डि जुंगफ्राउ फॉन आरलीन्स'। १८०३ में 'डि ब्राऊट फॉन मेसिना' (मेसिना की वधू) लिखकर उसने ग्रीक परंपरा के कोरस का विकास किया और साल भर बाद 'विलहेम टेल' नामक ड्रामा की रचना कर ऑस्ट्रिया के शासन से स्विट्ज़रलैण्ड की स्वाधीनता के संघर्ष के परिचायक साहित्य का अग्रदूत बना।

: ६ :

रोमांटिक युग

१९वीं सदी में 'रोमांटिक' और'यथार्थवादी' दो परस्परविरोधी चेतनाओं का जर्मन-साहित्य में विकास हुआ। रोमांटिक चेतना भावावेगों और कल्पना के पक्ष में अधिक प्रयत्नशील थी। मानव व्यक्तित्व उस प्रेरणा में बौद्धिक यथार्थता से मुक्त भावुकता और भाव-संपदा को अपना आधार बनाता था। कालक्रम में वह रोमान्टिक चेतना, धार्मिक रहस्यमय और उन्मादी भावनाओं का भी गढ़ बन गई। फिर धीरे-धीरे उस चेतना ने सर्वथा रूमानी प्रेरणा को अपना आदर्श बना डाला। यथार्थ से अपनी इन्द्रियों को खींच वह अन्तर्निविष्ट हुई। सर्वथा काल्पनिक, स्वप्निल, मायाविनी, आभासगर्भित परिस्थितियाँ विगत अतीत अथवा सुदूर भविष्य के धूमिल वातावरण निर्मित करने लगीं। अलौकिक में उसकी आस्था जगी, अप्रत्याशित निर्जन एकान्त और वैयक्तिक कुण्ठा, अभिराम अनस्तित्व भी उसके आधार बने। उस प्रेरणा का एक कारण और था। जर्मनी में फ्रांसीसी राज्यक्रांति को रूप देने की शक्ति न थी और यथार्थ उस प्रकार के आन्दोलन के लिए चीख रहा था। जब चतुर्दिक् का बर्बर सत्य बर्दाश्त के बाहर हो उठा और निष्क्रियता संघर्ष से विमुख होकर बौद्धिक प्रतिभाओं को कुण्ठा से भरने लगी, तब कुण्ठित मेधा अलौकिक और असत्य को महाकाय कर उसका भीतर ही भीतर एक स्वप्निल संसार रचने लगी। वह कुण्ठा स्वाभाविक ही पहले दर्शन के क्षेत्र में उतरी। जोहान गोटलिब फिख्ते[१], शेलिंग[२] और विलहेम श्लेगेल[३] तथा फ्रीड्रिख श्लेगेल[४] उसके अग्रणी हुए। उस रोमाण्टिक आन्दोलन ने फ्रीड्रिख श्लाइएरमार खर[५] और कवि विलहेम वाकेन रोडर[६] लुडविक टीक[७] तथा नोवालिस[८] को आकृष्ट किया। यह उस दिशा के प्रारम्भिक रोमाण्टिक कृतिकार थे। आन्दोलन के आरम्भ होने के पहले जर्मनी में दो साहित्यिकों का प्रादुर्भाव हुआ—जीन पॉल फ्रीड्रिख रीख्तर[९] और फ्रीड्रिख होल्डरलिन[१०] का। इनमें पहले ने जीन पॉल के नाम से

१. Johann Gottlieb Fichte; २. F. W. J. Schelling; ३. August Wilhelm Schlegel; ४. Friedrich Schlegel ; ५. Friedrich Schleiermacher; ६. Wilhelm Wackenroder; ७. Ludwig Tieck; ८. Novalis; ९. Jean Paul Friedrich Richter; १०. Friedrich Holderlin

लिखा। 'हेस्पेरस' (१७९४) और 'तीतन' (१८००) उसके प्रसिद्ध उपन्यास थे, जिनमें उसने रूसो की भावुकता और व्यंग्य का अनुकरण किया। परन्तु वह सर्वथा रोमाण्टिक नहीं था। जनसाधारण की कष्ट-चेतना भी काफी मात्रा में उसकी कृतियों में उतरी, जिससे उसको यथार्थवादियों का भी आदर मिला, होल्डरलिन नितान्त निर्धनता में जन्मा था और वह उसकी सारी चोटों और साथ ही निराशा का भी शिकार हुआ था। चालीस वर्ष तक वह अज्ञात पागल के रूप में सभ्यता से अलग पड़ा रहा परन्तु उसी बीच उसने कुछ ऐसे 'ओड' लिखे, जो उनके आचार्य क्लापस्टॉक की कृतियों को भी लाँघ गये। लिरिक के क्षेत्र में स्वयं गेटे की सर्वोत्तम रचनाओं से होल्डर लिन के लिरिकों ने लोहा लिया। उसने अपने 'हाइपीरियन' नामक नाटक में भावों की गहरी व्यंजना की और 'इम्पेडोक्लीज' (१७९९) में प्राचीन ग्रीकों को पुकारा। यह पुकार वस्तुतः १८वीं सदी की आवाज थी।

विलहेम श्लेगेल और फ्रीड्रिख श्लेगेल भाई-भाई थे। उन्होंने रोमान्टिक आन्दोलन का मुख्य तत्त्व 'आथेनाउम' १७९८ में निकाला। उस नये आन्दोलन की प्रेरणाएँ उसी पत्र के कॉलमों में रूप धारण करने लगीं। ऑगस्ट विलहेम श्लेगेल आज अपने शेक्सपियर के अनुवादों के लिए विशेष विख्यात है। उसका उपन्यास 'लुकिन्दे' (१७९९) प्रणय, कला, बौद्धिक निष्क्रियता से पूर्ण कृति है जिसमें एकाग्रता का सर्वथा अभाव है। परन्तु उसने जो उच्छृंखलता, स्वतंत्र प्रेम, प्रमाद आदि का गुण गाया तो अपने से साहित्यिकों का वह वन्द्य हो गया। नोवालिस, फ्रीड्रिख फ़ॉन हार्डेन-बर्ग[१] का साहित्यनाम था। नोवालिस संभ्रांतकुलीय था और जर्मन रोमांटिक आन्दोलन का शुद्ध प्रतिनिधि माना जाता है। २९ वर्ष की उम्र में ही वह मर गया। इसी बीच उसका तेरह वर्ष की एक कुमारी के साथ प्रेम हो गया पर उस कुमारी को उसने नारी के सारे आदर्शों का प्रतीक माना। लड़की भी जल्दी ही मर गई और उसके मरने पर विषाद ने जो नोवालिस को सर्वथा आक्रांत कर लिया, तो उसने अन्धकार और मृत्यु की प्रशंसा में अपना शालीन गद्य-काव्य 'हिम्नेन आन डी नाख्त' (रात्रि के प्रति सूक्त) रचा। भगवान् में शान्ति खोजता हुआ नोवालिस अब धार्मिक गीत रचने लगा जिसमें रूमानी रहस्य और आन्तरिक भक्ति पंक्ति-पंक्ति में उतरी। उन गीतों ने १९वीं सदी के जर्मन धार्मिक लिरिकों को बड़ा प्रभावित किया। उसका अपूर्ण उपन्यास 'हाइन्रिख फॉन ओफ़्टरडिंगेन (१७९९-१८००) गेटे के 'विलहेम मेइस्तर' का विरोधाभास माना जाता है। वह उपन्यास रूमानी कविता की प्रशंसा में लिखा गया है। उसका हीरो काल्पनिक 'मिनेसिंगर' था, जो रूमानी आदर्श के गुह्य प्रतीक नील कुसुम की खोज़ में निकल पड़ता

---

१. Friedrich Von Hardenberg

है। लुडविग टीक प्रारम्भिक रोमान्टिकों में असाधारण था। उसकी रचना का विस्तार बड़ा था। उसने लिरिक, उपन्यास, ड्रामा आदि सभी लिखे और विदेशी भाषाओं से अनुवाद भी अनेक किये। उसकी विख्यात लघुकथा 'डेर ब्लोन्द एकबर्ट' (१७९७) थी जिसमें असत्य और अर्द्ध-काल्पनिक संसार की एक अद्भुत गोधूलि सिरजी गई। उसमें भय, अन्धकार, रहस्य, जादू, नीरवता, स्वप्न और अनोखी ध्वनियों का वातावरण प्रस्तुत है। रोमान्टिक व्यंग्य का एक असामान्य उदाहरण उसकी कॉमेडी 'डेर गेस्टिफेल्टे कार्टर' (१७९७) है।

रूमानी व्यंग्य और उच्छृंखलता अपने अशेष रूप में हाफमान की कृतियों में फूटी। अर्नस्ट थिओडोर अमाडियस हॉफमान[1] गायक, गीतकार, कलाकार और इन सबसे बढ़कर कहानीकार था। उसकी कहानियों की एडगर एलन पो[2] की कहानियों से अक्सर तुलना की जाती है। हॉफमान का उपन्यास 'डी एलेग्जीर डेस तुफेल्स' (१८१५-१६) में भयानक आकृतियों, छायाओं, भीषण स्वप्नों और समान शक्लवाले व्यक्तियों की भरमार है। उसकी दूसरी कहानी 'सुनहरा बर्तन' (डरे गोल्डने तोफ—१८१३) पहले उपन्यास से कम भीषण है। हॉफमान का रोमान्टिक कवियों ने काफी अनुकरण किया है। मानव-योनियों का जो उसने अपनी कृतियों में विकास किया उनका अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में काफी उपयोग किया। अनेक अप्सराओं, भूत-प्रेतों, आदि के जो नाम उसने रखे वे अपूर्व थे। उससे नाटकीय बैलेड में हॉफमान के अपार्थिव चरित्रों का विकास हुआ। स्वयं हाइन्रिरिख हाइने[3] को अपने लिरिकों में उससे प्रेरणा मिली। हाइने का वह लिरिक जिसमें उसने लोरेली नामक हॉफमान द्वारा प्रयुक्त यक्षिणी को अमर किया वह आज लाखों जर्मनों की जबान पर है। जेकब ग्रिम[4] और विलहेम ग्रिम[5] दोनों भाइयों की कहानियों में वह अलौकिक और अपार्थिव जगत् विशेष विकसित हुआ। १८१२ का उनका कहानी-संग्रह 'किन्डर-उन्ड हाउस-मार्खेन' (घरेलू कहानियाँ) शीघ्र ही जर्मन बच्चों का उपास्य बन गया।

इस प्रकार की रूमानी रचनाओं के लिए लोक-गीत और कहानियाँ स्वाभाविक ही ऋद्ध आकर सिद्ध हुईं। जर्मनी के लोक-गीतों का सुन्दरतम संग्रह तरुण रोमान्टिक आखिम फॉन आर्निम[6] और क्लेमेन्स ब्रेन्टानो[7] ने दिया। संग्रह का नाम था 'बालकों का जादू-बिगुल'। कहानियाँ छन्दोबद्ध थीं और एक अद्भुत सम्मोहक जादूभरे संसार का निर्माण करती थीं। उस दिशा के लिरिककारों में प्रधान जोजेफ फॉन आइखेनडोर्फ[8] और लुडविग

---

१. Ernst Theodor Amadeus Hoffmann; २. Edgar Allan Poe; ३. Heinrich Heine; ४. Jakob Grimm; ५. Wilhelm Grimm; ६. Achim Von Arnim; ७. Klemens Brentano; ८. Josef Von Eichenborff

ओहलांड[1] थे। पहले ने जर्मन वन-प्रान्तर, ग्राम, नदियों आदि के सम्बन्ध के लिरिक लिखे, दूसरे ने ऐतिहासिक बैलेड। इस प्राचीन की पुनरावृत्ति ने जर्मन-चेतना को भी कुछ कम उद्बुद्ध किया। अर्नस्ट मोरिट्स आर्न्ट[2] तथा थियोडोर कोरनेर[3] ने अपनी कविताओं द्वारा नेपोलियन-विरोधी जर्मन संघर्ष को प्रचुर शक्ति दी। परन्तु धीरे-धीरे अतीत की पूजा रोमान्टिक कवियों की चेतना का आधार बन गई जो उनकी प्रतिगामिता का कारण बनीं। शीघ्र ही नेपोलियन के पतन के बाद गृह-संघर्ष से जब एक दिशा में निष्क्रियता और पलायन का विकास हुआ तब नितान्त निराशावादी धारा साहित्य में फूट पड़ी। उस निराशावादी वातावरण की संज्ञा 'वेल्शमेर्त्स' पड़ी। ग्राफ फॉन प्लातेन[4], निकोलॉस लेनो[5] और अदाल्बर्ट फान चामिस्सो[6] उसी रोमान्टिक प्रवृत्ति के लिरिककार थे। हाँ, उन्होंने एक उदारवादी दृष्टिकोण का जो अपने सम्भ्रान्त वर्ग के विरुद्ध विकास किया तो मेटरनिक विरोधी संघर्ष को उससे पर्याप्त बल भी मिला। शीघ्र ही मध्यवर्गीय क्रान्तिकारियों ने उस संघर्ष की बागडोर अपने हाथ में ले ली और साहित्य को समाज तथा राजनीति सम्बन्धी विचारों का प्रकाशन-आधार बनाया। यह एक नये जर्मनी का आरम्भ था। जो जितना मेटरनिक का विरोधी था उतना ही अपने विकास के अन्त में रोमान्टिक परंपरा का भी विरोधी था। यथार्थवाद उसका आधार बना, भविष्य और वर्तमान को बदल देने की आशा उसकी प्रेरणा बनी और कालान्तर में मार्क्स उसका पथप्रदर्शक हुआ। जर्मनी के क्षुद्र वातावरण में मार्क्स के आने के पहले ही वहाँ 'तरुण जर्मन' आन्दोलन आरम्भ हो गया था। १८३० को दूसरी फ्रांसीसी राज्य-क्रांति से प्रेरणा पाकर जर्मनी के लेखकों के एक दल ने मध्य यूरोप को जनतन्त्र बनाने का बीड़ा उठाया। उस दल का नाम 'तरुण जर्मन' पड़ा। अभी वह अपने आदर्श की ओर बढ़ ही रहा था कि जर्मन फैडरल डीट (पार्लमेन्ट) ने उस दल के सदस्यों की भूत, वर्तमान और भविष्य की सारी रचनाओं को जब्त कर लिया (१८३५)। मेटरनिक का शासन चल रहा था। ऐलान कर दिया गया कि लेखकों का वह दल समाज और धर्म विरोधी साहित्य प्रस्तुत कर रहा है। हाइनृख हाइने[7], कार्ल गुत्सको[8], हाइनृख लाउबे[9], लुडोल्फ विन्बार्ज[10] और थ्योडोर मुन्ट[11] की सारी रचनाएँ जब्त कर पुलिस ने उनका प्रकाशन और प्रचार बन्द कर दिया। जनतान्त्रिक शासन, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समता, नारी के अधिकारों आदि उदारवादी उसूलों के लिए साहित्य के माध्यम से लड़ने वाले इन साहित्य-सेवियों की

---

१. Ludwig Uhland; २. Ernst Moritz Arndt; ३. Theodor Korner; ४. Graf Von Platen; ५. Nikolaus Lenau; ६. Adalbert Von Chamisso; ७. Heinrich Heine; ८. Carl Gutzkow; ९. Heinrich Laube; १०. Ludolf Wienbarg; ११. Theodor Mundt

रचनाओं को खतरनाक करार दे दिया गया; फिर भी कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना के माध्यम से अधिकारों की माँग होती ही रही, उदारवादी आन्दोलन का प्रचार होता ही रहा, साहित्यिकों की प्रतिभा संघर्ष करती ही रही। इस दिशा में लुडविग बोर्न[१] और हाइनृख हाइने विशेष प्रयत्नशील हुए। १८३० और '३२ के बीच लिखे बोर्न के 'पेरिस के पत्र' (बीफ़े औस पेरिस) जर्मनी की सीमा में गोलों की भाँति गिरने और पाठकों को स्थानीय विषमताओं के विरुद्ध उभाड़ने लगे। कार्ल गुत्सको उस आन्दोलन का केन्द्र बन गया। उसके ड्रामा 'उरिएल अकोस्ता' (१८४७) ने वैयक्तिक अधिकारों, धार्मिक-सहिष्णुता और विचारों की स्वतन्त्रता की माँग अपने प्रत्येक पाठक के हृदय से उठाई। हाइनृख हाइने जर्मनी के सबसे महान् कवियों में हो गया है। पहले उसने अत्यन्त मधुर प्रणय-लिरिक लिखे, रूमानी और भावुक। परन्तु शीघ्र ही उसकी मेधा उस सीमा को पार कर संघर्ष के क्षेत्र में अग्रसर हो गई। उसका 'बुख डर लीडर' (गीतों का संग्रह, १८२७) शीघ्र तरुण-प्रेम की मूर्खता का उपहास कर उठा। प्रकृति के अवयव उसकी मन:स्थितियों का उसकी कृतियों में अनुकरण करने लगे। हाइने अपने को रोमान्टिक साहित्यिकों में अन्तिम मानता है। वह अपनी शैली में निस्सन्देह रोमान्टिक था परन्तु यथार्थवादी साहित्यकारों में भी वह पहला था और इस प्रकार उस वर्ग की रचनाओं का जर्मनी में वह प्रवर्तक था। वह पहला जर्मन कवि था जिसने देश में नित्य उठते हुए कारखानों में झाँक कर समाज की भावी विषमता को देखा और शीघ्र ही गहरी-चौड़ी होती धनी-गरीब के बीच की खाई की ओर उँगली उठाई। कुछ आश्चर्य नहीं कि मार्क्स उसकी कविताएँ पढ़कर आनन्द से नाच उठा हो। अपनी इंग्लैण्ड की यात्रा में उसने पूँजीवाद की बढ़ती हुई सीमाओं को देखा और यूरोप के आकाश में तूफान के मेघों को उमड़ते देख भावी संघर्ष का अनुमान किया। अपनी कृति 'एंग्लिशे फ्रागमेण्टे' (१८२८) में उसने थैलीशाहों और धनियों के विरुद्ध तथा भरे जीवन के मुकाबले कंगाल मजूरों के रिक्त और आवश्यकताओं भरे जीवन का चित्र खींचा। लन्दन का जीवन कंगाल के लिए उसे असह्य जान पड़ा। फिर हाइने पेरिस पहुँचा और वहाँ से समाजवादी दार्शनिक सेन्ट-सिमों[२] के राजनीतिक सिद्धान्तों का वह जर्मनी में प्रचार करने लगा। उसने कंगालों की पूजा की पर कंगालपन की नहीं। दरिद्रनारायण का देवत्व उसके लिए पैशाचिकता से बढ़ कर था। उसने जनसत्ता के समाज में मानव के देवता बनकर साधनसर्वस्व होने की कल्पना की और उसे महान् तथा शालीन बनते देखा। अपने 'ड्रायत्श्लैंड—आइन विन्टरमार्खेन' ('जर्मनी—जाड़ों की एक कहानी' १८४४)

१. Ludwig Börne; २. Saint-Simon

में उसने स्वर्ग को पृथ्वी पर उतारने का स्वप्न देखा। उसका वह गीत एक प्रकार का 'युटोपिया' था, जिसमें अनुकूल भावी समाज का रेखाचित्र था। १८४८ की क्रान्ति से उसके विचारों को बड़ा धक्का लगा। उसने समाजवादी क्रान्तियों विश्वप्रभुता, के लिए जर्मन प्रयास और देश-देश में साम्यवादी प्रयोगों की भविष्यवाणी की, जिससे वह परस्पर विरोधी आलोचकों का आलोच्य बन गया। स्वयं वह अपने को मानवता के पक्ष में संघर्ष करने वाला सैनिक मानता था।

राजनीतिक कविताएँ

हाइने ने कवियों की उस श्रृंखला का आरम्भ किया, जिसके कवि केवल अपनी गय भावुकता के लिए ही नहीं विशेषतः अपने राजनीतिक दृष्टिकोण और संघर्षात्मक साहित्य के लिए विख्यात हुए। कवि की वाणी अब राजस्थान के चारणों की भाँति संघर्षशील समाज की शक्ति-सम्पदा बनी। पैंफ्लेटों अथवा एकाकी पत्रों पर कविताओं के माध्यम से कवि नए युग के सन्देश भेजता और जनता उसे शीघ्र ही पी जाती। उस काल के कवियों में प्रधान जार्ज हर्वे[1], फर्डिनेन्ड फ्रालीग्राथ[2] (वाल्ट ह्विटमान का पहला जर्मनी अनुवादक) और होफमान फॉन फालेर्स्लेबेन[3] थे। होफमान की कविता 'द्रायत्स्लैंड, द्रायत्स्लैंड ऊबेर अलेस' तब के जर्मनी में देशद्रोही समझी गई पर एक ही पीढ़ी बाद राष्ट्रीय गान बन गई। ग्राव और बुखनेर[4] ने उसी परंपरा का नाटक द्वारा विकास किया। क्रिश्चियन दीत्रिख ग्राबे[5] ने अपनी ट्रैजेडी नेपोलियन, (१८३१) द्वारा सर्वहारा जनता की शक्ति का निदर्शन किया। वह नाटक नेपोलियन के एल्बा से लौटने के बाद के सौ दिनों का चित्र, जिसमें निम्नतम स्तर की जनता का स्रोत बार-बार फूट पड़ता है, खींचा है। उसका कथानक सर्वथा समसामयिक है। बुखनेर ने अपने 'दांतोंज तोद' (दांतों की मृत्यु, १८३५) में पहली राज्यक्रान्ति की एक घटना को अपना कथानक बनाया जिसमें जनता की शीघ्र परिवर्तनशील प्रवृत्ति व्यक्त हुई है। दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। जहाँ ग्राबे निम्नवर्गीय जनता पर निम्न व्यंग्य करते नहीं चूकता, बुखनेर उसके प्रति सहृदय है।

हेनृख फॉन क्लाइस्त[6] क्लासिकल परंपरा का एकान्त विरोधी था। उसने गेटे की स्पर्धा में अपनी ट्रैजेडी 'रॉबर्ट गिस्कार्ड' लिखी, परन्तु असफल होने के कारण ही उसने अपनी यह रचना जला डाली। उसका प्रारम्भिक अंश ही केवल बच रहा। उससे पता चलता है कि क्लाइस्त ने ग्रीक और शेक्सपियर दोनों की नाटकीय पद्धति

---

१. Georg Herwegh; २. Ferdinand Freiligrath; ३. Hoffmann Von Fallersleben; ४. Büchner; ५. Christian Dietrich Grabbe; ६. Heinrich Von Kleist

अपनी शैली में एकत्र करनी चाही थी। उसके नाटकों में प्रधान 'पेन्थेसीलिया' (१८०८), 'काथखेन फॉन हाइलब्रान' (१८१०), और 'डेर प्रिन्स फॉन हाम्बुर्ग' (१८१०) थे। इन सभी में हीरो साधारण सीमाओं को लाँघ जाते हैं। क्लाइस्त प्रज्ञा की अनुपम प्रतिभा था। उसकी वह प्रतिभा सक्रिय थी। उसके विपरीत ग्रिलपार्त्सेर[1] की निष्क्रिय थी यद्यपि उसके विषाद का स्वाद बड़ा मधुर था। क्लाइस्त शक्तिम जनता का प्रतिनिधि है, ग्रिलपार्त्सेर अधोमुखी साम्राज्य का। ग्रिलपार्त्सेर की 'डी आन्फ्राउ' (पूर्वजा—१८१७) रोमान्टिक शैली की रचना मानी गई है परन्तु 'सैफो' (१८१८) के प्रकाशन ने उसे क्लासिकल कवियों की पंक्ति में ला खड़ा किया। उसकी कृति 'डास गेल्डेन फ्लीस' भी उसी परंपरा में प्रस्तुत हुई। अपने 'सागर और प्रणय की वीचियाँ' (१८३१) में उसने एक ग्रीक कथानक (हीरो और लीन्डर) का निर्वाह किया। उसका 'राजा ओत्तोकार का उत्थान-पतन' (१८२५) ऐतिहासिक नाटक था। कॉमेडी उसने केवल एक 'झूठे को अभिशाप' लिखी (१८३८), जिसमें दिखाया कि सत्य कभी-कभी कितना भयानक हो सकता है। ग्रिलपार्त्सेर आस्ट्रिया का रहने वाला था और एक अंश में यथार्थवादी था।

ग्रिलपार्त्सेर की भाँति फ्रीड्रिख हेबेल[2] भी पारस्परिक सामाजिक मूल्यों का विरोधी था। अपने नाट्य सिद्धान्त में उसने सिद्ध किया कि ये मूल्य अथवा आदर्श केवल सामयिक हैं और निरन्तर प्रगतिशील और परिवर्तनशील जगत में प्राचीन से जकड़े रहने से ही मनुष्य मारा जाता है। इसी प्रकार उदीयमान परंपरा के पेशवा भी अपनी नवीनता के शिकार होते हैं, क्योंकि दोनों ही समसामयिक के विपरीत होते हैं। उनमें आचार या व्यवस्था की कमी नहीं होती केवल परिस्थिति के प्रति उनकी प्रतिकूलता खतरनाक हो जाती है। उसकी सुन्दर कृति 'गीगेस एण्ड साइन रिंग' (गीगस और उसकी अँगूठी—१८५४) में लीडिया का राजा अपनी अन्धविश्वासी प्रजा को ग्रीक आदर्शों के अनुकूल ले चलना चाहता है और परिणाम-स्वरूप प्राण खो बैठता है। नाटककार के अनुसार सोते जगत् को छेड़ना, सोते सिंह को छेड़ना है, जिसका दण्ड भोगना पड़ता है। वैसे सोता जगत् भी अपने आप अपनी सुषुप्तावस्था में भी पौष्टिक आहार निरन्तर खाता रहता है। 'मारिया मादालेना' (१८४४) हेबेल ने पहले लिखा। उसमें उसने परिवार के भीतर ही युग-परिवर्तन के कारण पुराने और नए के संघर्ष को व्यक्त किया। 'हिरोदिज उण्ड मारियाम्ने' (१८४८) में नाटककार ने उसी विरोध का परिचय दिया। यहूदी रानी अपने व्यक्तित्व के गौरव का अधिकार माँगती है, पर नारी को केवल गुड़िया और गुलाम समझने वाला प्राचीन जगत् उसे मार डालता है।

इस प्रकार क्लाइस्त के समय से ही नाटक में यथार्थवाद की ओर प्रगति हो

---

१. Franz Grillparzer; २. Fried ich Hebbe l

चली थी। रिचार्ड वागनर[1] ने निश्चयपूर्वक इस यथार्थवादी प्रगति का विरोध किया क्योंकि उसने साहित्य को मानव-आचार तथा शालीनता का निर्माता माना। वागनर ने अपने नाटकों और ओपेरों (गायनों में नाटक) में प्राचीन जर्मनी का गौरव बखान राष्ट्रीयता का प्रचार किया। इस दिशा में उसका 'डर फ्लिगेन्डे हालैण्डर' (उड़ाकू डचमैन—१८४१) प्रमाण है। अपने रोमान्टिक ओपेरा 'तानहाउसेर' (१८४५) में उसने अपने उस मिनेसिंगर का वीनस के दरबार में आचरण प्रदर्शित करते हुए प्राचीन कवियों के दंगलों के भी दृश्य उपस्थित किये। 'लोहैंग्रिन' (१८४७) में एक मध्यकालीन ख्यात-कथानक नाट्यांकित हुआ। 'त्रीस्तन उण्ड इसोल्डे' (१८५९) गॉटफ्रीड[2] के १३ वीं सदी के एपिक 'डी मेइस्तर सिंगेर फॉन नूरेम्बर्ग' पर अवलम्बित था। उसने १६वीं सदी के कवियों पर प्रकाश डाला। १८७७ में वागनर ने 'पार्सीफाल' लिखा। उसे उसने वोल्फ्राम[3] के एपिक के आधार पर रचा था। उसने अपना डेररिंग डेस निबेलुंगेन' (निबेलुंग की अँगूठी) १८५३ और १८७६ के बीच प्राय: २३ वर्षों में समाप्त किया। उसमें उसने उत्तरी देवताओं और जननायकों— सीगफ्रिड,[4] गुन्थर[5] और हागेन[6]— को अमर कर दिया। वागनर नाटक को समाज को बेहतर बनाने का एक जरिया समझता था। शोपेनहावर[7] के दार्शनिक विचारों का अनुयायी होने के कारण उसने संसार की विपत्तियों से छुटकारे के लिए कला के क्षेत्र में शरण लेना आवश्यक समझा। कला की दिशा में वह नोवालिस[8] और श्लेगेल[9] का समर्थक था। १९वीं सदी के मध्य वागनर रोमान्टिक आन्दोलन का सबसे बड़ा समर्थक था परन्तु परिस्थिति बदल चुकी थी और यथार्थवादी साहित्य की ओर उसकी प्रगति निरन्तर होती जा रही थी। उस प्रगति को स्वयं वागनर का विशाल व्यक्तित्व भी न रोक सका।

यथार्थवादी उपन्यास

जब साहित्य-क्षेत्र में परिवर्तन होता है तब उसकी सीमाएँ उसके अंग विशेषों तक ही परिमित न रहकर सारे क्षेत्र में फैल जाती हैं। नाटक के क्षेत्र में रोमान्टिक चेतना से यथार्थवादी दृष्टिकोण की ओर जो प्रगति हुई तो वह उपन्यास, लिरिक आदि की दिशा में भी समान चेतना की पोषिका हुई। कार्ल इमरमान[10] और गुस्ताफ फ्रेताग[11] ने अपने उपन्यासों से, जरेमिया गॉटहेल्फ[12] और बर्थोल्ड आवरबाख[13] ने अपनी ग्रामीण कहानियों द्वारा, तथा फ्रीड्रिख स्पीलहॉगेन[14] ओटो लुडविग[15] और विलेह्म-

---

१. Richard Wagner; २. Gottfried Von Strassburg; ३. Wolfram Von Eschenbach; ४. Siegfried; ५. Gunther; ६. Hagen; ७. Sehopenhauer; ८. Novalis; ९. Schlegal; १०. Karl Immermann; ११. Gustav Freytag; १२. Jeremias Gotthelf; १३. Berthold Auerbach; १४. Friedrich Spielhagen; १५. Otto Ludwig

रॉबे[१] ने अपने गद्य-काव्यों के जरिये उस दिशा में नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये। उनकी कृतियों में सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ उत्तरोत्तर स्पष्ट होती गईं।

पिछली शताब्दी के मध्य उपन्यासकारों में सबसे मेधावी स्विस लेखक गॉटफ्रीड केलर[२] हुआ। अपने सुन्दरतम कहानी-संग्रह 'डि ल्यूते फॉन सेल्डवीला' (१८५६) में उसने एक छोटे नगर के निवासियों के द्वारा प्रगतिशील चेतना का निरन्तर समर्थन करना चित्रित किया है। केलर का दृष्टिकोण जीवन के प्रति मध्यवर्गीय जनता का है। केलर को लुडविग फूअरबाख[३] के परलोक विरोधी इहलौकिक आनन्द के खोजी दार्शनिक सिद्धान्त से बड़ी प्रेरणा मिली। उस प्रेरणा को उसने विशेषतः अपने शिक्षा-सम्बन्धी उपन्यास 'डेर ग्रीन हेनरिख' (हरा हेनरी—१८७९) में अंकन किया। उसमें चित्रकार के अयथार्थवादी दृष्टिकोण का उपहास था। व्यक्ति का समसामयिक समाज से सम्बन्ध केलर को अधिकाधिक अपनी ओर खींचने लगा और उसने अपनी कृतियों में अधिकतर समाज के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्य का निरूपण किया। उसका हृदय विनोदी और सम्वेदनशील था। अपने विनोद की लपेट में वह सन्तों और शहीदों तक को नहीं छोड़ता जैसा कि उसके 'सीबेन लिगेंडेन' (सात ख्यातें, १८७२) से प्रमाणित है।

यथार्थवादी उपन्यासकारों में थ्योडोर फोन्तां[४] का स्थान काफी ऊँचा है। उपन्यास-लेखन उसने अपने जीवन के पिछले काल में शुरू किया। अपनी कृतियों में उसने प्रशा के उच्चवर्गीय समाज के चित्र अंकित किये। उसके चरित्र अनोखे न होकर समाज के ही चलते-फिरते व्यक्ति हैं। उसकी रचनाओं में बड़ी सादगी है और वे विवाहित जीवन की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं।

लिरिक काव्य

लिरिक के क्षेत्र में १८४८ की क्रान्ति ने अद्भुत प्रगतिशील मान्यताओं को जन्म दिया था। कुछ काल सामाजिक परिवर्तन के स्वप्न देखने वाले कवियों ने क्रान्ति के गीत भी गाये परन्तु शीघ्र उस दिशा में एक अप्रत्याशित उदासीनता दृष्टिगोचर हुई। यथार्थ जीवन और धुएँ भरे कारखाने वाले नगरों से भागने का नारा बुलन्द किया गया। हाइने आदि ने कहाँ तो कर्मशील मानवता के पक्ष में उनको जीतकर उन पर अधिकार कर लेने की पुकार की थी और कहाँ ये उत्तरकालीन कवि उन नये नगरों और उनके मिलों के विरोध में उनकी ओर पीठ कर निष्क्रिय हो चले। म्यूनिख के लिरिककारों ने काव्य के रूप पर अधिक जोर दिया; 'कला कला के लिए' की आवाज़ उठाई। एमानुएल गीबेल[५] उस दल का नेता था और

---

१. Wilhelm Raabe; २. Gottfried Keller; ३. Ludwig Feuerbach; ४. Theodor Fontane; ५. Emanuel Geibel

उसमें उसने मजदूर की आत्मा को समझने का अच्छा प्रयत्न किया, जिससे जर्मनी के समाजवादियों ने उसे अपने पक्ष का गायक माना।

प्रकृतिवादी साहित्य

कला और साहित्य के क्षेत्र में १९ वीं सदी के अन्तिम चरण में एक प्रकृतिवादी आन्दोलन का आरम्भ हुआ। इसका अभिप्राय इस सिद्धान्त का प्रचार करना था कि कला और साहित्य का उद्देश्य केवल प्रकृति का पुनर्जनन है। उनकी सीमाएँ प्राकृतिक वस्तुओं के यथातथ्य निरूपण तक ही परिमित रहेंगी। आर्नोहोल्त्स[1] उस विचारधारा का अग्रणी था। होल्त्स ने स्वयं अपनी एक कविता में वर्षाजल की बूँदों का एक पत्ती से दूसरी पर गिरना प्रदर्शित किया। 'पापा हामलेत' (१८८९) और 'डी फामिली सेलिके' (१८९०) में उसने बर्लिन के झोंपड़ों की ध्वनियों और श्रमिकों के चेहरों के भावों तक को प्रतिबिम्बित किया। जोहान्स श्लाफ[2] और गेरहार्ट हाउप्तमान[3] उसके अनुयायी बने।

हाउप्तमान उस काल मानवता का सबसे बड़ा समर्थक हुआ। उसने अपनी सुन्दरतम प्रकृतिवादी ट्रैजेडी 'डि वेबर' (जुलाहे, १८९२) में साइलेशिया के जुलाहों का संघर्ष अमर कर दिया। वह स्वयं एक श्रमिक का पोता था। बचपन से ही मजदूरों की कठिनाइयों और संघर्षों की कहानियाँ वह सुनता आया था और स्वयं उसने अपने चारों ओर पिचके गालों वाले कमजोर श्रमिकों को देखा था। उनकी शहादत उसके लिए असह्य हो उठी और उसने अपनी कृतियों को उनके जीवन पर साधना शुरू किया। उसकी ट्रैजेडी में एकान्त हीरो का प्रदर्शन नहीं है, अनेक स्वर एक साथ प्रायः एक ही ऊँचाई में हीरो का स्थान ग्रहण करते हैं और वे स्वर जुलाहों के हैं। व्यक्तियों की एक बड़ी परंपरा, समाज का एक बड़ा स्तर, सामाजिक अन्याय का शिकार है और उसका परिणाम स्वयं असामाजिक रूप धारण कर लेता है। हाउप्तमान अक्सर अपने चरित्रों को कठिन परिस्थितियों में डालकर नियति का शिकार बना देता है। उसके 'आइन्सामे मेन्शेन' (एकाकी जीवन—१८९१) में हीरो पत्नी के प्रेम और एक अन्य कुमारी की कृपा के बीच घुटता जाता है क्योंकि वह एक को स्वीकार कर दूसरी का परित्याग नहीं कर पाता। इसी प्रकार उसके 'डी वर्संकेन ब्लोके' (पिचकी घण्टी—१८९६) में हीरो विरोधी कर्त्तव्यों के बीच कुचला जा रहा है। 'फुहूमान हेन्शेल' (१८९८) में ईमानदार व्यक्ति निराशा से प्रेरित होकर अपने ही अंध विश्वासों के कारण आत्महत्या को प्रस्तुत होता है। हाउप्तमान की सहृदयता चोरों पर भी समान रूप से मुस्कराती है, जैसा उसकी सुन्दरतम कॉमेडी 'डेर बीवेरपेल्त्स' (१८९३)

---

१. Arno Holz; २. Johannes Schlaf; ३. Gerhart Hauptmann

से प्रमाणित है। हाउप्तमान की ही भान्ति हरमान सुडरमान[१] भी प्रकृतिवादी था। उसने प्रकृतिवादी सिद्धान्त का पोषण अपने उपन्यास और नाटकों में किया। 'फ्राऊ सोर्गे' (१८८७) उसका जाना हुआ उपन्यास है। 'इज्जत' (डी एह्रे—१८८९) भी उसकी सुन्दर नाटक कृति है, यद्यपि नाटक के क्षेत्र में 'हाईमात' (१८९३) में उसने विशेष सफलता पाई। उसकी इस कृति के अनेक अनुवाद हुए, और यह रंगमंच पर प्रदर्शित भी बार-बार होती रही।

रसवादी परंपरा

बर्लिन में जिस प्रकार प्रकृतिवाद का बोलबाला था उसी प्रकार वियना में कलात्मक रसवादिता का महत्व बढ़ा। वियेनी लेखकों का एक दल प्रथम महायुद्ध के पहले ही उस क्षेत्र में सक्रिय हो चला था। उसके अग्रणी हरमान बाह्र,[२] आर्थर श्नित्स्लर[3], ह्यूगो फान हाफमान्स्थल[४] और रिचार्ड वीर हॉफमान[५] थे। श्नित्स्लर प्राचीन वियना का समृद्ध गायक था। उसने उसके गौरव की बेल को अपनी कला से सींचा। वियना का अनिवार्य पतन उसके चरित्रों के आचरण में भी स्वाभाविक ही प्रतिबिम्बित हुआ। उसके पतन की अनिवार्यता उसके प्रत्येक विचार और कार्य में दृष्टिगोचर हुई। चरित्र रसवादी थे और जीवन के बचे क्षणों को आनन्द की अनुभूति से सार्थक कर लेना चाहते थे। श्नित्स्लर के नायक नारी को भी अपनी उसी आनन्द परक प्रवृत्ति से केवल भोग्य और कामसाधन की वस्तु मात्र मानते थे। नाटककार ने अपने नाटकों, विशेषत: 'मार्शेन' (१८९१) और 'लिवेलाइ' (१८९४) में नारी की ओर से प्रणय की क्रीड़ा अभिव्यक्त की; और पुरुष की आनन्द-चेतना में नारी के बलिदान का भीषण विरोधाभास प्रस्तुत किया। जीवन की समस्याओं पर विचार उसके 'पारासेल्सस, (१८९७), 'डेर आइन्सामेवेग' (१९०३), 'ज्विशेनस्पील' (१९०४) और 'डास वाइड लैण्ड' (१९०८) में हुआ। नये आचारों की खोज करता हुआ नाटककार इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आचार की व्यवस्था ही, चाहे वह पुरानी हो चाहे नई, अपूर्ण है।

ह्यूगो फॉन हॉफमान्स्थल वियना के आनन्दवादियों में शुद्धतम प्रभाववादी था। उसके लिरिक और नाटक-कहानियाँ सभी प्रभावों की चेतना प्रदर्शित करते थे। ह्यूगो अत्यन्त अल्पायु में प्रायः २० वर्ष से भी कम अवस्था में, अपने यश की चोटी पर

---

१. Hermann Suderman; २. Hnrmann Bahr; ३. Arthur Schnitzler; ४. Hugo Von Hofmannsthal; ५. Richard Beer Hofmann

पहुँच गया। १८ वर्ष की आयु में उसने 'टीटियन की मृत्यु' लिखा और १९ वर्ष की आयु में 'मृत्यु और मूर्ख'।

इन लिरिक-दृश्यों में हॉफमॉन्स्थल ने मृत्यु और पतन के उन्मादक गीत गाये। वह रंजीदा, पीला, सुकुमार और सौन्दर्य के प्रति शीघ्र आकृष्ट होने वाला व्यक्ति था। ऐतिहासिक और साहित्यिक संस्मरण उसकी चेतना को बरबस आक्रान्त कर लेते थे और वह अनुभव की ओर यथार्थवादी रूप से कभी झुक न पाता था। उसकी अनेक नाट्य-कृतियाँ रिचर्ड स्ट्रास के ओपेरा का आधार बनीं। इन कृतियों में सबसे लोकप्रिय 'रोजेनकावालिर' (१९११), 'एलेक्त्रा' (१९०३) और 'मिस्री हेलेन' (१९२८) थीं। आस्ट्रिया के कवियों में रेनर मार्या रिल्के[१] हाफमान्स्थल से बहुत मिलता है। पतन के प्रति उसीका-सा-मोह, कला के प्रति उसी-की-सी संवेदना, अर्धलुप्त परंपरा के प्रति उसी-का-सा ही आकर्षण रिल्के में भी था। रिल्के प्राग का रहने वाला था परन्तु परिवारहीन, पेशाहीन, शब्द, विचार और प्रभाव की पूजा में वह जीवन भर इधर-उधर घूमता फिरा। 'माल्ते लौन्दिज-ब्रिगे' (१९१०) में उसकी कला विशेष विकसित हुई। स्विट्ज़रलैण्ड में १९२६ में दरवेश की दशा में रिल्के की मृत्यु हुई। ऑर्फियस के प्रति उसके सॉनेट और दुइनीज की एलेजी में उसने अपने गम्भीरतम रहस्यवादी दृष्टिकोण को प्रकाशित किया। रिल्के की ही धर्मदृष्टि रिचार्ड बीर हॉफमान[२] की कविताओं में भी विकसित हुई। 'श्लाफ लीड फीर मिरियम' (१८९७) उस दार्शनिक दृष्टिकोण की सुन्दरतम कविता है। बीर हॉफमान की ख्याति उसकी ट्रैजेडी 'डेर ग्राफ फॉन चारोलेस' (१९०४) और धार्मिक नाटक 'याकोव त्राउम' (१९१८) तथा 'डेर जुंग डाविड' से हुई। स्टीफेन ज़्वाइग[३] आस्ट्रिया के प्रभाववादियों में सबसे अल्पायु था। उसकी कहानियाँ सुन्दर हैं और मर्म को छू लेती हैं यद्यपि उनमें अवचेतन की संज्ञा भी अधिक होती है। वह भावुक आलोचक और निबन्धकार भी है। चरित्रकार भी वह काफी ऊँचा है।

टॉमस मान[४] जर्मन मध्यवर्ग का सबसे महान् व्याख्याता था। वह भी आस्ट्रिया का ही साहित्यकार था। उस शासन के पतन की छाया उसकी कृतियों पर भी पड़ी। वह लीबेक का निवासी था और साहित्य के क्षेत्र में तब उतरा जब मध्यवर्ग शक्ति और प्रभाव की चरम चोटी पर पहुँच एक ओर थैलीशाहों और दूसरी ओर राजनीति में सचेत और सक्रिय मजदूरों से संघर्ष कर रहा था। मान ने अपना साहित्यिक जीवन लघु कथाओं से आरम्भ किया। उसके प्रारम्भिक उपन्यास 'बूडेनब्रुक्स्' (१९०१)

---

१. Rainer Maria Rilke; २. Richard Beer-Hofmann; ३. Stefan Zweig; ४. Thomas Mann.

में उसने अपने ही वणिक् परिवार के अधोपतन का चित्र खींचा। मान स्वयं अपने को पतन के युग का इतिहासकार कहता है। अपने 'डर जौबर्बर्ग' (जादू का पहाड़—१९२४) में उसने युद्ध और पतन की ओर उन्मुख यूरोपीय समाज का अंकन किया। यह कृति एक प्रकार का रूपक है जिसमें आल्प्स पहाड़ के एक सेनेटोरियम में यूरोप के सारे देशों से आने वाले रोगियों का रोग अंकित हुआ है। स्पष्टतः संकेत यूरोप के देशों के पतनोन्मुख युद्धवादी प्रवृत्ति की ओर है। मान शोपेनहॉवर, नीत्शे और वागनर के विचारों से बड़ा प्रभावित हुआ। मृत्यु के प्रति उसका आकर्षण शोपेन हॉवर से मिला। नीत्शे ने उसे पतन सम्बन्धी मनोवृत्ति की गहरी चेतना दी। वागनर की शैली ने उसे साहित्यिक टेकनीक दी जिसमें यथार्थ के विषाद से भागकर संगीत के स्वरों में शरण देने की प्रवृत्ति थी। 'जोजेफ और उसके भाई' (१९३३-४४) नाम से कई खण्डों में मान ने एक उपन्यास लिखा जिसमें शोक की छाया कम है प्रसन्नता की अधिक। उसमें बाइबिल की पुरानी पोथी का परिवार फिर से मनोवैज्ञानिक रीति से रूप धारण करता है।

: ७ :

वर्तमान युग

जर्मन-साहित्य के वर्तमान युग का आरम्भ, जैसा पिछले प्रसंगों से प्रकट है सदी के आरम्भ के काफी पहले से हो जाता है। प्रथम महायुद्ध के काफी पूर्व ही साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रारम्भ हो चुका था। इससे अनेक साहित्यकार जो पिछली सदी से ही उन प्रवृत्तियों से प्रभावित रचनाएँ करते रहे हैं वर्तमान काल के ही निर्माता हैं। टॉमस मान स्वयं वर्तमान युग की प्रेरक शक्तियों में था। इस कारण यदि कुछ साहित्यिकों का उल्लेख पहले हो जाने के कारण इस प्रसंग में नहीं हुआ तो उन्हें अनाधुनिक नहीं मानना चाहिए। स्वयं प्रभाववादी (इम्प्रेशनिस्ट) प्रवृत्ति आधुनिक साहित्य-चेतना की ही एक मंजिल है जैसे अभिव्यंजनावाद उससे कुछ पीछे की। प्रभाववाद प्रथम महासमर के पहले साहित्य में पूजा गया और अभिव्यंजनावाद (एक्सप्रैशनिज़्म) उसके बाद के दशकों में।

अभिव्यंजनावाद

वस्तुतः अभिव्यंजनावाद का आरम्भ साहित्यिक सिद्धान्त और टेकनीक के रूप में प्रथम महासमर के पहले ही हो चुका था। हाउप्तमान[1], श्नित्सलर[2] और टॉमस मान[3] के प्रकृतिवाद और नवरोमान्टिकवाद उसी परंपरा की कड़ियाँ निर्मित करते हैं। परन्तु शुद्ध साहित्यिक सिद्धान्त और शैली के रूप में अभिव्यंजनावाद उस महासमर के बाद के

१. Hauptmann ; २. Schnitzler ; ३. Thomas Mann.

दशकों म ही विकसित हुआ। इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने अपने वातावरण के प्रभाव का अंकन करने से इन्कार कर दिया। उनके विचारानुसार कवि का कार्य, अन्तःसत्य को प्रकाशित करना था, सत्य जो उसकी अन्तश्चेतना और अन्तर की प्रेरणा का प्रतीक था। उसे अपने वातावरण को भी बदल कर अन्तर की रहस्य दृष्टि के अनुकूल बना लेना था। उसे काव्य के रूप पर भी अधिक ध्यान नहीं देना था क्योंकि सत्य का सरल पंक्तियों, विद्रूप अथवा अरूप शब्दावली में भी उतर पड़ना स्वाभाविक है। बाह्य वस्तुओं के निरीक्षण और सविस्तार वर्णन को त्याग कवि उस मूल सत्य का उद्‌घाटन करे जो सामग्री की बहुलता से विकृत और आच्छन्न हो जाता है। यह विचार-धारा स्वाभाविक ही पर्याप्त विपज्जनक थी। खूनखराबी के उन दिनों में इसका सहारा प्रतिभाशील मनीषियों ने भी लिया और भांडों ने भी। अनेक प्रकार के स्वप्निल 'युटोपिया' संसार फिर से सिरज दिए गए। यद्यपि अभि-व्यंजनावाद के समर्थन में अनेक घोषणाएँ हुईं वस्तुतः स्थायी मूल्य की साहित्य रचना स्वल्प ही हुई। इन स्वल्प रचनाओं में ही फ्रांत्स बेर्फेल[१] के लिरिक, फ्रांक वेडेकिंड[२], जॉर्ज कैसर[३] और अर्नस्ट टॉलर[४] के नाटक तथा हाइन्रिख मान[५], जाकोब वासरमान[६] और आल्फ्रेड दोब्लिन[७] के उपन्यास थे।

वासरमान जर्मन साहित्य का दोस्त्वाएव्स्की[८] था। उसने पतनोन्मुख जगत् और उदीयमान मानव आत्मा दोनों का द्रष्टा होना चाहा। उसने गद्य-एपिकों की एक परंपरा ही सिरज दी। इनमें सब से सुन्दर उसका 'क्रिश्चियन वानशाफे' (जगत् की माया, १९१९) था। इसके सभी चरित्र जीवन में आधार खोए हुए थे। ऐसे मानव, नर, नारी, बालक, जो भीषण परिस्थितियों और मनोवैज्ञानिक भय से त्रस्त भगवान् को खोजते और अविराम गति से चलते रहने के कारण शिथिल होकर ही उसे पाते हैं। वेडेकिंड का इस दिशा में बड़ा नाम हुआ, नाम दोनों प्रकार का, घृणा से तिरस्कृत और साथ ही अभि-राम सृष्टा के रूप में। आलोचकों के एक दल ने उसे भाँड और अतृप्त कामुक कहा, दूसरे ने उसे स्वतन्त्र जगत का निर्माता जिसमें रूढ़ियों और परंपराओं के आघात से सौन्दर्य विकृत नहीं हो जाता, जहाँ शरीर और आत्मा की सर्जनशील सक्रियता सामाजिक आचरण के व्याघात से कुण्ठित नहीं हो जाती। वेडेकिंड ने गतिमान भाषा में जीवन के तूफानी आवेगों और अदम्य भूखों की अभिव्यक्ति की। उसके चरित्र जैसे ज्वालामुखी गर्त की ढाल पर खड़े हैं, स्वयं जैसे ज्वालामुखी हैं और आन्तरिक प्रेरणा के वशीभूत बाह्य की तात्विक शक्ति के स्पर्शमात्र से फट पड़ते हैं। इस प्रकार के विस्फोट परिस्थिति के अनुकूल सर्वत्र और सर्वदा होते हैं। उसके 'इर्दगाइस्त' (पृथ्वी—१८९५) तथा 'डी बिख्से डेर पंडोरा' (१९०१) की

---

१. Franz Werfel; २. Frank Wedekind; ३. Georg Kaiser; ४. Ernst Toller; ५. Heinrich Mann; ६. Jakob Wassermann; ७. Alfred Doblin; ८. Dostoevsky.

'लूलू' कन्या विशेष नहीं वरन् नारी जाति की प्रतीक ह। स्वयं सेक्स की भूख जो अभितृप्ति माँगती है, उसकी अभिव्यक्ति की बस वही एक मात्र प्रेरणा है। अभिव्यंजनावाद की टेकनीक और समस्या का रूप उसने १८९१ में ही अपने नाटक 'फ्रुहलिंग्स एरवाखेन' (वसंत का जागरण) में रख दिया था। उस नाटक में उन किशोर-किशोरियों के आनन्द-विषाद का अंकन है जिनको प्रौढ़ों के आचार-बन्ध से मजबूर होकर जीवन की पुकार को तृप्त करने के लिए प्राकृतिक राहों को छोड़ बाध्यतः अस्वाभाविक उपायों का सहारा लेना पड़ता है।

प्रेम, बलिदान और व्यापक भ्रातृभाव द्वारा यूरोप को पुनः सज्जीवित करने का प्रयास फ्रान्त्स वेर्फेल[1] ने अपनी कला कृतियों द्वारा किया। उसने बौद्धिक सत्ता से आत्मा को मुक्त करने का नारा उठाया। १९१४ के पहले के ही उसके लिरिकों में तर्क और दर्शन को फेंक चैतन्यवत् धार्मिक उन्माद ग्रस्त हो जाने की भावना थी। १९१४ के बाद के उसके लिरिकों में व्यापक वेदान्त की प्रेरणा पुकार उठी है। मृत्यु, और पुनर्जन्म, प्रलय और मोक्ष उसकी वाणी की सतत प्रेरणा बन जाते हैं। चराचर जगत् में ब्रह्म (गॉड) का निवास मान उसके कण-कण से मैत्री भाव स्थापित करने को वह कहता है। उसके 'बर्नादेत्ते का गीत' (१९४३) में भगवान् की ओर लौट चलने की प्रेरणा उपन्यास-कला में उभर पड़ी है। अपनी प्रौढ़तर कृतियों में वेर्फेल अभिव्यंजनावादी शैली से विरत हो जाता है जिससे उसकी दृष्टि अम्लान हो जाती है और अभिव्यक्ति में यथार्थ रूप धारण कर लेता है। फिर वह अपने कथानकों के लिए इतिहास की ओर देखता है। वहाँ विजेता और संभ्रान्तकुलीय उसे आकृष्ट नहीं करते, उसके आकर्षण का केन्द्र सर्वहारा और निःसत्व बनते हैं। 'वर्दी' (१९२४) उसका इसी प्रकार का उपन्यास है। इसी प्रकार 'मूसा दाग के चालीस 'दिन' (डी वीरत्सिग तागे डेस मूसा दाग, १९३३) में तुर्की सत्ता से संघर्ष करते आर्मेनियनों के लिए उसका हृदय रो पड़ता है।

नव-यथार्थवाद

यह सर्वथा अमूर्त दर्शन स्वाभाविक ही साहित्य में चिरकाल तक नहीं चल सकता था। अभिव्यंजनावाद के अग्रणी आखिर अहंकार की सत्ता से भी विरत हो गए, थक गए। बाह्य-दर्शन साहित्य को आलम्बन और टिकाव देता है। अन्तः की प्रेरणा साधक को थकाती मात्र है। अभिव्यंजनावाद के अग्रदूत और पेशवा भी उस परा-कल्पना से थक गए। वेर्फेल की उससे विरक्ति की बात ऊपर लिखी जा चुकी है। जो उसकी दशा हुई वही उसके अन्य अनुयायियों की भी हुई। इस शती के दूसरे दशक के अन्त में एक नई यथार्थ प्रेरणा साहित्यिकों में मूर्त्तिमही हुई। उनकी गति अब सूक्ष्म से स्थूल की ओर, अमूर्त्त से मूर्त्त की ओर, अव्यक्त से व्यक्त की ओर हुई। इस नव-यथार्थवाद का नाम जर्मनी में 'निवे-साख्लिख्काइत'

१. Franz Werfel.

पड़ा और नात्सी जर्मनी की सांस्कृतिक तानाशाही के आरम्भ काल में यही जर्मन-साहित्य का आलोक बिन्दु बना। इस दिशा के लेखकों ने भारी-भरकम शब्दों को त्याग दिया। शांत उत्पादन, सक्रिय उद्योग, उत्तरदायित्व का चुपचाप निर्वाह उनके आलोक शब्द बने। क्रान्ति और पुनरुज्जीवन के नारे अब निरस्त हो गए। सामान्य मानव पर उनकी दृष्टि, केन्द्रित हुई। कुछ अकारण न था कि १९३२ में हान्स फलादा[१] ने अपना 'क्लाइनेर मान, वास नुन ?'(लघु मानव, आगे क्या ?) लिखा। इसी प्रकार हान्स कारोसा[२] ने अपने उपन्यास में जन साधारण, पशु आदि का सविस्तार चित्रण किया। आर्नाल्ड ज्वाइग[३] के उपन्यास 'डेर स्ट्राइट उम डेन सेरग्यान्टेन ग्रीशा' (१९२८) में कथानक का केन्द्र वह अकेला रूसी सैनिक है जिसका नगण्य जीवन प्रशा की सारी शासन तथा न्याय-सत्ता को चुनौती देता है। एरिख मारिया रैमार्क[४] अपने उपन्यास 'इम वेस्टेन निख्त्स निवेस' (पश्चिमी मोर्चे की शान्ति–१९२९) में प्रथम महासमर के भीषण परिणाम का यथार्थ रूप से आकलन करता है। परन्तु यह साहित्यिक प्रवृत्ति भी जर्मनी में दीर्घकाल तक न चल सकी। उसका स्थान नात्सी रोमान्टिकवाद ने लिया।

नात्सी-रोमान्टिकवाद

जर्मनी म १९३३ में राष्ट्रीय-समाजवाद की विजय हुई और वहाँ तत्काल नात्सी नादिरशाही का बोलबाला हुआ। साहित्य के प्रोपेगैण्डा का साधन बनते ही नव-यथार्थवादी दृष्टिकोण का स्थान नात्सी-रोमान्टिकवाद ने लिया। नीत्शे[५] और स्तेफान जॉर्ज[६] के अनुयायी इस नई साहित्य चेतना के नेता बने। नीत्शे को नात्सी जर्मनी ने जर्मन सत्ता और संस्कृति का प्रतिनिधि माना। नीत्शे अभिजातीय व्यक्तिवाद का प्रवर्त्तक था। तृतीय राइख उसे अपना पैगम्बर मानने लगा। जर्मनी की दृष्टि में वह एक नई राजनीतिक और सामाजिक सत्ता का प्रचेतक था जिसकी बागडोर सेठों-साहूकारों के हाथ में न होकर अतिमानवों के हाथ में होगी। उदात्त 'सुपरमैन' राज्य संस्था का संचालन करेगा। नीत्शे मानव जाति में भी महान् से महत्तर के विकास में विश्वास रखता था। जीवन कष्टप्रद है पर उसे स्वीकार कर सक्रिय बने रहना आवश्यक है। उसने ईसाई धर्म का विरोध इसलिए किया कि उसमें कमजोर और निराश की सराहना है, सबल और विजयी की नहीं, क्योंकि वह शरीर की आवश्यकताओं को हटा कर एक काल्पनिक मरीचिका का विधान करता है। नीत्शे के विचार से पाप, अन्तर-प्रेरणा और विनय गुलामों और अकिंचनों की पतनोन्मुख आचार सम्पदा है। उसका आदर्श वह महामानव है जो पाप-पुण्य से परे है और जिसके कार्यों की प्रेरणा आचारावस्था से नहीं शक्ति-संचार के आग्रह से होती है। इन विचारों को नीत्शे ने अपने निबंधों

---

१. Hans Fallada; २. Hans Carossa; ३. Arnold Zweig; ४. Erich Maria Remarque; ५. Nietzsche; ६. Stefan George.

में प्रकट किया। 'जेन्साइत्स फान गुत उण्ड बोस' (पुण्य और पाप से परे–१८८५), 'डेर विले-जुर माख्त' (शक्ति के लिए आग्रह–१८८६), और 'आल्सो सप्नाख जरथुस्त्र (जरथुश्त ने ऐसा कहा–१८८३-९१) में नीत्शे के वे उद्‌गार भरे हैं जिनसे नात्सी जर्मनी ने अपनी प्रेरणा पाई। स्टेफ़ान जॉर्ज आदि ने नीत्शे के दार्शनिक आदर्शों को साहित्य के क्षेत्र में भी घसीट लिया। इनका कहना है कि भगवान् असाधारण शक्तिम महापुरुषों में साकार होता है। वे पूजनीय हैं और वे ही मानव जाति को मानवता का सही मूल्य प्रदान करते हैं। उन्हें शंका या शोच नहीं होता, न उन्हें मोक्ष की आवश्यकता होती है। उनमें बस एक भावना होती है, अपने अनुरूप संसार के पुनर्निर्माण की। वे शब्द और कर्म दोनों रूप से श्रेष्ठ होते हैं। दांते और शेक्सपियर, गेटे और होल्डरलिन, सीजर और नेपोलियन उन्हीं की परंपरा में हैं। उसी महान् को जीवन में खोजना है। नीत्शे ने उसके आगमन की घोषणा भी कर दी थी। स्टेफान जॉर्ज आदि के विचारों ने एक धार्मिक सम्प्रदाय को जन्म दिया। भारत में भी इस चेतना का अभाव नहीं है। अरविन्द के 'सुपरमाइण्ड' (महापुरुष) की स्थापना बहुत कुछ ऐसी ही है। स्टेफान के सम्प्रदाय में काव्यकारिता सर्वोत्तम प्रकार की आध्यात्मिक सक्रियता है और कवि आत्मा को स्थूल रूप देता है। जार्ज की कविताओं के संग्रह १८९० से ही प्रकाशित होते रहे हैं। लिरिक सुन्दर हैं पर उनमें समझी-बूझी अस्पष्टता सिरजी गई है। 'डेर सिवेन्ते रिंग' (१९०७) और 'डास निवे राइख' (१९२८) में भी नीत्शे का वही दृष्टिकोण व्यवस्थित है। जार्ज ने उस साम्राज्य के गीत गाए हैं जहाँ 'फीरर' (नेता) का शब्द अनुल्लंघनीय शासन (कानून) होगा और जहाँ उसके निर्देश का असंयत पालन होगा। यह सममानवों की सत्ता का परिचायक या बौद्धिकों के तर्क का प्रतीक न होकर उन तरुणों का गढ़ होगा—चुने असामान्य तरुणों का—जो अपनी प्रेरणा उस महानेता से पाएँगे। और वह महानेता भाग्य के विधान से प्रतिष्ठित होगा। उसके अनुशासन के प्रति उसके सभी अनुयायी सानन्द नत शिर होंगे। वे उससे प्रेम करेंगे इससे उसकी आज्ञा का जूआ वहन करने में न हिचकेंगे। जॉर्ज के विचार से यह फीरर साधारण राजनीतिज्ञ न होकर विराट और प्रेरित महाकवि होगा। फिर स्वयं जॉर्ज ने अपने को वह फीरर एक बार घोषित किया जिससे उसके अनुयायी उसे शासक, मास्टर, पैगम्बर आदि नामों से पुकारने लगे। उसके इन अनुयायियों में लिरिककार कार्ल उल्फस्केल[1] चरितकार फ्रीड्रिख वोल्टर्स[2] साहित्य इतिहासकार अर्नस्ट बर्ट्राम[3] और इन सबसे प्रभावशाली, फ्रीड्रिख गुन्डोल्फ[4] थे। गुन्डोल्फ हिटलर-कालीन जर्मनी के प्रख्यात प्रचार मन्त्री जोजेफ गोबेल्स[5] का गुरु था।

इस फीररवाद का सबसे बड़ा सांस्कृतिक पुजारी सम्भवतः गोबेल्स था। सारे साहित्य

---

१. Karl Wolfskehl; २. Friedrich Wolters; ३. Ernst Bertram; ४. Friedrich Gundolf; ५. Josef Goebbels.

को इस दृष्टिकोण के अनुकूल राष्ट्र की तानाशाही वृत्ति का एकान्त उपासक होना चाहिए। नात्सी जर्मनी में शीघ्र ही ऐसे साहित्यिकों की कृतियाँ जला दी गईं जिन्होंने उस भावधारा के विरुद्ध कलम उठाई। नात्सीवाद के समर्थक साहित्यिकों में प्रधान थे। पाल अर्न्स्ट[१], हान्स ग्रिम[२], अर्विन गीदो कोल्बेन्हेयर[३], हरमान स्तेह्र[४], विल वेस्पर[५], हान्स फ्रीड्रिख ब्लुक[६], जोजेफ़ पोन्तेन[७] और हान्स जोस्त[८]। १९३३ और ४५ के बीच जर्मन-साहित्य इसी दृष्टिकोण का पोषक रहा। शक्ति और युद्धवाद ने साहित्य का गला घोंट दिया। फिर भी जर्मन सीमाओं के बाहर नात्सी विरोधी विचारों का आकलन जर्मन साहित्यकार करते रहे। पेरिस, एम्स्टर्डम, स्टाक होल्म और प्राग नात्सी विरोधी साहित्य के केन्द्र बन गए, फिर इन स्थानों के नात्सी सेनाओं द्वारा आक्रान्त हो जाने पर लन्दन और न्यूयार्क निर्वासित जर्मन-साहित्य के केन्द्र बने। स्वयं जर्मनी में चुपके-चुपके नात्सी विरोधी साहित्य बनता रहा और सन् ४५ में उसके स्वतंत्र होने पर तो एक बार फिर जर्मन साहित्यिक मेधा जगी, विशेष कर पूर्वी भाग में जहाँ जन-सत्ता का दृष्टिकोण उसकी प्रेरणा बना।

---

१. Paul Ernst; २. Hans Grimm ; ३. Erwin Guido Kolbenheyer; ४. Hermann Stehr ; ५. Will Vesper; ६. Hans Friedrich Blunck; ७. Josef Ponten; ८. Hans Johst.

१० जापानी-साहित्य

जापानी-साहित्य का काल प्रसार काफी बड़ा है, प्रायः १५०० वर्षों का। उसका आरम्भ पाँचवीं सदी ईस्वी के पहले से ही हो जाता है। उस साहित्य का अध्ययन युगतः करना होगा। प्रायः सात युगों के क्रम में उस साहित्य की प्रगति अद्यावधि हुई है। उन्हीं युगों के अनुकूल जापानी-साहित्य का अध्ययन समीचीन होगा। उनका साधारणतः नामकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

१. आरम्भ युग (७०० ई० पू०)
२. नारा युग (७०० -७९४)
३. हेइयन युग (७९४-११९२)
४. कामाकुरा युग (११९२-१३३२)
५. नान्बोकुचों और मुरोमाची युग (१३३२-१६०३)
६. इदो युग (१६०३-१८६८)
७. वर्तमान युग (१८६८-१९४१)

: १ :

आरम्भ युग (७०० ई० के पूर्व)

प्राचीनकालीन विनोदप्रिय भावुक और सरल जापानियों का प्रारंभिक साहित्य उनके सृष्टि सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों से होता है। जापान प्रकृति का क्रीड़ा-स्थल रहा है। वहाँ उसके सृजन और संहार दोनों रूपों का खुलकर प्रकाश हुआ है। प्रकृति के सम्पर्क से ही जापानियों ने अपने "शिन्तो" धर्म का प्रारम्भ किया। पाँचवीं सदी में चीनियों ने जापान में लिपि का प्रचार किया। उसके पहले जापानी साहित्य, कहानी, गीतों और धार्मिक मन्त्रों के रूप में केवल अलिखित था जो कानों-कान प्रवाहित होता रहता था। उस साहित्य के प्रवक्ता को "कातारिबे" कहते थे। वे बहुत कुछ भारतीय पुराण कथावाचक "सूतों" से मिलते हैं।

उस प्रारम्भिक काल के जापानी साहित्य के तीन अंगों की ओर ऊपर संकेत किया गया है। वे अंग थे, कथाएँ, गीत और नोरिती (मंत्र)। पाँचवीं सदी के आरम्भ (४०५ ई०) में चीनी लिपि का प्रचार पहले-पहल एक चीनी राजकुमार के कोरियन शिक्षक वांगिन[1]

१. Wangin ;

(जापानी में वानी) ने किया। उसका स्वभाविक ही साहित्य के समुदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ५५२ ई० में जो जापान में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, उससे भी वहाँ के साहित्य को बड़ा बल मिला। इन दो घटनाओं ने जापानी-साहित्य में दूरगामी परिवर्तन किये।

: २ :

नारा-युग (७००-७९४)

इस काल का सम्बन्ध नारा में जापानी राजधानी की स्थापना से है। यह सारा काल-प्रसार वस्तुतः नारा की राजकीय स्थिति से सम्पर्क रखता है। नारा ७१० ई० में राजधानी बनी और ७९४ में वर्तमान क्योटो को हटा दी गई। क्योटो का प्राचीन नाम हेइयन-क्यो था। ७०० ई० के आसपास काकिनोमोतो नो हितोमारो[1] की काव्य-कृतियाँ रूपायित हुईं। साथ ही जापानी चिन्तकों ने चीनी भाषा और साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार पहले ही हो चुका था और उस दिशा से साहित्य और कला का भी प्रादुर्भाव हुआ जिसने जापानी विचारों तथा कला आदि में आधारभूत परिवर्तन किये। चीनी लिपि जापानियों के अनुकूल तो न पड़ी किन्तु लिपि के अभाव में उन्हें उसी को स्वीकार करना पड़ा। परन्तु अपनी भाषा चीनी लिपि में लिखने में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। धीरे-धीरे "काना" नाम की एक व्यवस्था हुई जिससे जापानी शब्दों का उस लिपि में उल्लेख होने लगा। "काना" पद्धति का प्रयोग वस्तुतः अगले युग में हुआ।

नारा-युग की साहित्यिक अभिव्यक्ति विशेषतः कविता में हुई। प्राचीनतम काल से प्रान्जल शैली में काव्य-रचना होती आई थी। नारा-युग का काव्य अनेक अधिकारी समीक्षकों के मतानुसार अप्रतिम है। विशेषतः तांका (वाका) शैली (छोटी कविता) का प्रयोग उस काल की कविता में हुआ। उसमें १२ से २० तक के शब्दों का प्रयोग होता था। उस कविता में तुकों की आवश्यकता नहीं होती थी। कारण यह है कि प्रत्येक जापानी शब्द स्वरान्त होता है। इससे पिंगल की टेकनीकों के प्रयोग बिना ही काव्य में गेय ध्वनियों का विस्तार हो जाता है। तांका शैली की कविताएँ संक्षिप्त होती थीं। कवि का काम शब्दों द्वारा दृश्य को प्रस्तुत मात्र कर देना था, अलिखित को मूर्तिमान कर लेना पाठकों की कल्पना पर निर्भर करता था। तब की कविताएँ प्रायः सभी लिरिक हैं जो भावों की अभिव्यक्ति करती हैं। मनुष्य, प्रकृति, मरण, जीवन, दर्शन उसके विषय हैं।

जापानी भाषा में लिपि का प्रयोग होने के बाद ही अलिखित कविताओं का संग्रह आरम्भ हो गया था। प्राचीनतम संग्रह ८वीं सदी के प्रायः अन्त में प्रस्तुत हुआ। उसमें लगभग ४५० कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हुईं। कवियों में प्रधान काकिनोमोतो

१. Kakinomoto No Hitomaro.

नो हितोमारो और यामाबे नो अकाहितो[1] थे। इस संग्रह की लिपि चीनी थी, 'काना' लिपि व्यवस्था अभी भविष्य के गर्भ में थी अथवा कम से कम अभी विकसित हो रही थी। कहना न होगा कि यह संग्रह चीन के साहित्यिक स्वर्ण-युग, तांगकाल (६१८-९०६) की समान कृतियों का परिणाम था। यद्यपि उस संग्रह की नब्बे प्रतिशत कविताएँ तांका शैली में हैं, अनेक 'चोका' (लम्बी कविताएँ) शैली में भी लिखी गई हैं। उस काल के बाद 'चोका' प्रकार की कविताएँ देश में अप्रिय हो गईं और फिर वे जापानी काव्य क्षेत्र में न लौट सकीं। 'मान्यो' पद्धति में कविताओं के लिखे होने के कारण वह संग्रह 'मान्योशू' कहलाया।

नारा-युग का साहित्य यद्यपि साधारणतः काव्य में है, कुछ कृतियाँ गद्य में भी रची गईं। 'कोजिकी' (प्राचीन विषयों का रेकॉर्ड) पहला जापानी इतिहास है जो ७१२ ई० में प्रायः तभी समाप्त हुआ जब अरबों ने सिन्ध और स्पेन में अपनी शक्ति के नये पाये खड़े किये। जापान के इतिहास 'निहोन्शोकी' की रचना ७२० में समाप्त हुई। इसे जिन अनेक लेखकों ने रचा उनमें राजकुमार तोनेरी[2] और यासुमारो[3] भी थे। संग्रह चीनी में लिखे अनेक इतिहासों का है। उसमें पुराणों, ख्यातों, कविताओं और सातवीं सदी तक के इतिहास का संग्रह हुआ है। उस कृति का साहित्यिक मूल्य तो अधिक नहीं है परन्तु जापानी जीवन और धार्मिक विश्वास ख्यातों और भाषा आदि के अध्ययन के लिए निश्चय ही वह अनुपम ग्रन्थ है। ७३३ में मियाके नो ओमी कानातारी[4] और इजुमो नोओमी हिरोशिमा[5] द्वारा संगृहीत जापान का सबसे पहला भौगोलिक ग्रन्थ 'इजुमोफूदौकी' है।

: ३ :

हेइयन-युग (७९४-११९२)

हेइयन-युग हेइयन-क्यो में ७९४ में राजधानी स्थापित होने से लेकर ११९२ में कामाकुरा सैनिक सरकार कायम होने तक है। इस बीच यह राजधानी जापानी अभिजातीय संस्कृति का केन्द्र थी।

हेइयन-युग जापानी साहित्य का 'क्लासिकल' युग है। आरम्भ में तो जापानी साहित्य की प्रगति चीनी परंपरा के अनुसार हुई फिर देशी रचनाओं का आरम्भ हुआ। चीनी भाषा के बोझिल होते हुए भी जापानियों ने उसे सीखा और पढ़ा। ८९४ में विद्वान राजनीतिज्ञ सुगावारा नो मिचिज़ाने[6] ने सरकार से कहकर जापानी-दूत-मण्डलों का चीन

---

१. Yamabe no Akahito; २. Toneri; ३. Yasumaro; ४. Miyake no Omi Kanatari; ५. Izumo no Omi Hiroshima; ६. Sugawara no Michizane.

जाना रोक दिया जिससे चीन से विमुख होकर जापानी अपनी भाषा और साहित्य का स्वतंत्र विकास करने लगे ।

नारा-युग से शक्तिमान फुजिवारा कुल के हाथ में धीरे-धीरे सारी राजशक्ति केन्द्रित होती आई थी । सम्राट् बरायनाम जापान का स्वामी था । इसी फुजिवारा कुल ने हेइयन-काल का प्राय: सारा साहित्य प्रस्तुत किया । आश्चर्य की बात तो यह है कि उस प्राचीन काल में भी जापानी नारी का साहित्य निर्माण असाधारण था । दरबारियों का एक नारी दल उस दिशा में विशेष सयत्न था । उसमें एक का नाम मुरासाकी शिकिबू[१] था । उसने 'गेंजी की कथा' नाम की एक कहानी लिखी जिसे अनेक समालोचक जापानी-साहित्य की एक अनुपम कृति मानते हैं । सम्भवत: किसी देशी की नारी को इतने अधिकार इतने प्राचीन काल में नहीं मिले जितने जापानी नारी को उपलब्ध थे । वह शिक्षा और आजादी की अधिकारिणी तो थी ही, साहित्य-सृजन की भी उसमें योग्यता थी और अक्सर उसने शासन के कार्य में योग भी दिया ।

जापानी जनता स्वभाव से ही कलाप्रिय है । जीवन के प्रति उसका आकर्षण ही उसी माध्यम से होता है । रसप्रिय होने के कारण उनके सामाजिक जीवन में भी कुछ आचरण का ढीलापन है । जो भी हो जापानी जाति सदा कला की उपासिका रही है । यह उसके इतिहास की प्रगति से प्रकट है । इसी कारण उसने अपनी लिपि अत्यन्त सुन्दर बना ली । लिखावट तो एक धार्मिक क्रिया बन गई । स्वयं पद्य ने वह शक्ति धारण कर ली कि उसका उपयोग किसी स्थिति अथवा भाव के प्रकाशन में हो सकता था ।

मुरासाकी शिकिबू ने अपना 'गेंजी मोनोगातारी' ग्यारहवीं सदी में कभी लिखा । यह कृति उपन्यास है जिसमें राजकुमार गेंजी, उसके पुत्र और पौत्र का जीवन चित्रित हुआ है । काना शैली में लिखी यह रचना जापानी भाषा का पहला उपन्यास है । साथ ही यह संसार का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी है जो यूरोपीय तत्सम उपन्यासों के सदियों पहले लिखा गया । उसकी शैली कुछ अलंकार बोझिल जरूर है परन्तु मुरासाकी अपने भावों को बड़ी खूबी और सरलता से व्यक्त करती है । उसकी शैली में प्रवाह है और उसका वर्णन हृदयग्राही है । हेइयन-युग के जापानी दरबार का चित्र उसने इस सच्चाई से खींचा है कि विगत भूत एक बार फिर सजीव हो उठा है । मुरासाकी ने जमाने की यौन आजादी तक को नहीं छिपाया है । इस कृति ने स्वयं प्राचीन कृतियों की विशेषताएँ अंगीकृत कीं और अपना प्रभाव उत्तरकालीन रचनाओं पर गहरा डाला ।

उस काल की अनेक अन्य रचनाओं में प्रधान 'ताकेतोरी मोनोगातारी' (बंसफोड़ की कहानी) थी । उसे भी कुछ लोगों ने जापान का पहला उपन्यास कहा है । इसी प्रकार की

---

१. Murasaki Shikibu.

एक दूसरी कृति ईसे की कहानी (ईसे मोनोगातारी) है। परन्तु वस्तुतः ये अप्सरालोक की कहानियाँ-मात्र हैं।

मुरासाकी की समकालीना एक और प्रतिभाशालिनी नारी थी सेई शोनागोन[१] जिसने दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपना 'माकरा नो सोशी' (तकिया-स्केच) लिखा। इस प्रकार के स्केच को जापानी 'जुइहित्सु' कहते थे। उसमें शोनागोन ने दरबारी जीवन का प्रत्यक्ष चित्र खींचा। 'तकिया-स्केच' उसकी इस कृति को इसलिए कहते थे कि लेखिका अपनी हस्तलिपि तकिए के नीचे रखती थी और विचार सोने के पहले या बाद में लिख लिया करती थी।

प्राचीन और समकालीन (अर्वाचीन) कविताओं का संग्रह 'कोकिंशू' ९२२ के लगभग प्रस्तुत हुआ। उसे तत्कालीन चार महान् कवियों—कि नो त्सुरायुकी,[२] कि नो तोमोनारी,[३] ओचीकोची नो मित्सूने[४] और मीबू नो तादामीने[५]—ने संगृहीत किया। संग्रहकर्ताओं में प्रधान कि नो त्सुरायुकी था। 'मान्योशू' के बाद उस प्रकार के संग्रहों में यह सबसे उत्तम था। उसमें बांका (छोटी कविताएँ) शैली की प्रायः १००० कविताएँ हैं। लम्बी कविताएँ उसमें कुल पाँच हैं। उसमें पिछली दो सदियों की कविताएँ संगृहीत हुईं।

त्सुरायुकी ही "तोसा-निक्की" (तोसा-डायरी) ९३५ का भी रचयिता था; वह तोसा का शासक था और यह रचना उसने क्योटो लौटते समय राह में की थी। उस काल के पर्यटकों का जीवन उस कृति में सरल विनोदप्रिय शैली में अंकित हुआ है। सम्राट् के दरबार में स्वाभाविक ही विविध रस्म-रिवाजों का प्रचलन था। उसकी एक अपनी आचार-व्यवस्था थी, अपने कानून-कायदे थे। वे एकत्र कर "ऐंनिशिया" (एंगी की व्यवस्था, ९०५-२७) नाम से संगृहीत हुए। उसमें दरबार, शासन उसके विविध विभागों के नियमों-उपनियमों का संग्रह हुआ। ग्रन्थ चीनी में था।

: ४ :

कामाकुरा-युग (११९२-१३३२)

गृहयुद्ध में मीनामोतो विजयी हुए। उनके नेता मीनामोतो नो योरितोमो[६] ने अपनी राजधानी क्योटो से प्रायः ३०० मील पूरब कामाकुरा में स्थापित की। अगले डेढ़ सौ वर्ष उसी के नाम पर कामाकुरा-युग कहलाए। उसी युगदेश में सैनिकों आदि के रूप में मध्यवर्ग का उदय हुआ। साथ ही सामन्तवादी परंपरा का जो विकास हुआ तो सम्राट

१. Sei Shonagon; २. Ki no Tsurayuki; ३. Ki no Tomonari; ४. Ochikochi no Mitsune; ५. Mibu no Tadamine; ६. Minamoto no Yoritomo

का वैभव और दरबार के अमीरों का दबदबा कम हो चला। सैनिक-सत्ता की अब प्रतिष्ठा हुई। साम्राज्य का दरबार अब भी क्योटो में लगता था। परन्तु स्थिति निरन्तर नाजुक होती जा रही थी, शक्ति के साथ ही उत्साह क्षीण होता जा रहा था और मन का विषाद बढ़ता जा रहा था। दरबारी कृतियों पर उस विषाद की छाया पड़ी और काव्यधारा में करुणा उमड़ पड़ी।

परन्तु कामाकुरा में वैभव लहरें ले रहा था; मन्दिर बन रहे थे, धार्मिक सम्प्रदाय खड़े हो रहे थे, धार्मिक व्याख्यान और रचनाएँ प्रस्तुत होने लगीं। चीनी बौद्ध सम्प्रदाय "जैन दर्शन" के रूप में जापानी सेनानायकों और उनके अनुयायियों को बहुत प्रिय हो चला। फिर धीरे-धीरे यही सम्प्रदाय जापान में सांस्कृतिक-शक्ति बन गया और साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला सभी क्षेत्रों में मूलभूत प्रेरणा बना। अभिव्यक्ति के सारे साधन उसी आधार से मुखरित हुए।

अब तक संस्कृत समाज का जीवन स्वच्छन्द रोमांटिक और दार्शनिक था। फिर वही आन्तर्निविष्ट, यथार्थवादी और सीमाबद्ध हो गया। कामाकुरा युग में कई प्रकार की रचनाएँ हुईं—प्रबन्ध काव्य, तांका-कविताएँ, जुनहित्सु, बौद्ध निबन्ध, सूक्त। देशी विदेशी समन्वय से उसी काल एक राष्ट्रीय लिपिबद्ध भाषा का भी उदय हुआ जिससे साहित्य के विकास में आसानी हुई। प्राचीन कृतियों और "क्लासिक" पढ़ने की भी लोगों में प्रवृत्ति हुई। काव्य-संग्रहों की अनेक नकल प्रस्तुत हुईं। उत्तरकालीन विद्वानों को अपनी खोज में इनसे बड़ी सहायता मिली। "क्लासिक" में लोगों की रुचि ने "शिन्ती" धर्म के प्रति आसक्ति उत्पन्न की, फिर राष्ट्रीय राज्य की चेतना हुई। कामाकुरा साहित्य मूलतः अनुकरणशील और नीतिपरक था, व्यक्तित्वहीन मौलिकता रहित। वातावरण विषादपूर्ण था। विषाद का कारण अन्य घटनाओं के अतिरिक्त बौद्ध-धर्म की करुण पुकार थी। उसके अनुसार यह युग भी विषाद का था।

कामाकुरा युग की दो प्रसिद्ध कृतियाँ "हेइके मोनोगातारी" और "गेनपेई सेइ-सुइकी" (गेंजी और हेइके का उत्थान-पतन) हैं। दोनों संभवतः समान आधार से उठीं। पहले के निर्माण काल अथवा रचयिता का पता नहीं। रचना युद्ध संबंधी है, जापानी साहित्य में असाधारण। इसका गायन 'बीवा' के तारों के स्वर के साथ होता था। उस काल की अन्य कृतियों में बौद्ध नैराश्य की धारा प्रवाहित है। उस युग की अन्य महत्वपूर्ण कहानियाँ निम्नलिखित थीं—हामुरो तोकीनागा[१] की 'हेइजी मोनोगातारी' और 'होगेन मोनोगातारी" तथा अज्ञातनामा रचयिता की "मीजू कागामी" (जल-दर्पण)। तांका कविताओं की रचना क्योटो में जारी रही यद्यपि उनमें मौलिकता का अभाव पर्याप्त मात्रा

---

१. Hamuro Tokinaga

में था। "ह्यकुनिन इस्शू" (सौ कवियों की एक-एक कविताओं का संग्रह) क्योटो का प्रतिनिधि संग्रह है। इसे फूजीवारा नो सदाइए[1] नामा एक पंडित कवि ने १२३५ के लगभग प्रस्तुत किया।

उस काल की करुण चेतना का नैराश्यपूर्ण चित्र "होजोकी" (दस वर्ग फुट झोंपड़ी के नोट) में मिलता है। उसे कामो नो चोमेई[2] ने १२१२ में लिखा था। यह भी वैयक्तिक अनुभूति का निबन्ध स्केच है जिसमें उस युद्धकालीन जगत में बौद्धधर्म का आकर्षण निरूपित हुआ है। कामो की अन्य रचनाएँ 'मुक्योशो' (अज्ञात चयन) और शीकी मोनोगातारी (चार ऋतुओं की कहानी)। "तन्नीशो" सम्भवतः यूइन-बो[3] की कृति है। यह बौद्धधर्म के शिन सम्प्रदाय के प्रवर्तक शिनरन शोनिन[4] का शिष्य था। इस ग्रन्थ में दार्शनिक विवेचन और शंका-समाधान है। १२६० में बौद्ध निचिरेन सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता निचिरेन शोनिन[5] ने "रिस्शो अंकोक रोन" (राष्ट्रीय रक्षा) की रचना की। उसमें होजनो सरकार की आलोचना और धार्मिक अनुराग की प्रशंसा है।

: ५ :

नाम्बोकुचो और मुरोमाचीयुग (१३३२-१६०३)

१३३२ से १३९२ तक का काल नान्बोकुचो-युग कहलाता था। इस बीच दो साम्राज्य कुलों ने जापान पर शासन किया। साठ वर्ष बाद फिर क्योटो में एकान्त साम्राज्य की स्थापना हुई और अगला युग मुरोमाची कहलाया। गृहयुद्धों का अभाग्य काफी अरसे तक देश को घेरे रहा। किसानों की स्थिति दिन-ब-दिन खराब होती गई, उनके विद्रोह भी चलते रहे। मुरोमाची युग तो इसी कारण जापान का अन्धकार-युग कहलाता है।

नाम्बोकुचो युग की प्रायः आधी सदी कला और साहित्य की दृष्टि से काफी सम्पन्न हुई। चित्रकला तो अपने चरम विकास को पहुँच गई। लिरिक ड्रामा (नो) अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ। देश की अराजक दशा का प्रतिबिम्ब समसामयिक साहित्य पर पड़ा। अन्धकार युग होते हुए भी जिस सामन्त परंपरा का जापान में विकास हुआ, उससे सांस्कृतिक चेतना केवल साम्राज्य दरबार में केन्द्रित न रह कर देश के अनेक स्थानों में फैली, अनेक केन्द्र उठ खड़े हुए। वस्तुतः उसी संघर्ष का परिणाम था, पुराने रेकॅर्ड, ख्यातें आदि पढ़े जाने लगे और उन पर भाष्य लिखे जाने लगे।

---

१. Fujiwara no Sadaie; २. Kamo no Chomei; (११५४-१२१६)
३. Yuien-Bo; ४. Shinran Shonin (११७३-१२६२); ५. Nichiren Shonin

किताबाता के चिकाफुसा[१] ने "जिन्नो शोता-की" (दैवी राजाओं के सही उत्तराधिकार का इतिहास) गो-मुराकामी[२] के शासन-काल में लिखा। उसने दक्षिणी साम्राज्य के पक्ष का समर्थन किया। साथ ही उसने आरम्भ से लेकर १२८८ तक जापानी इतिहास पर राजनीतिक विचार प्रकट किये। यह मूलतः राष्ट्रीय ग्रंथ है, जिसमें ग्रंथकार ने सारे विदेशी प्रभावों से जापान की सांस्कृतिक चेतना को अपने मूल्यांकन से पृथक् रखने का प्रयत्न किया है। स्वाभाविक ही इसका साहित्यिक महत्त्व इतना नहीं, जितना ऐतिहासिक है। अक्षरकालीन लेखकों को इस ग्रंथ ने बड़ा प्रभावित किया।

"ताइहेइकी" (शांति का रेकॉर्ड) ल. १३६९ कोजिमा[३] एक पुरोहित की रचना बताई जाती है। उसमें ११९२ और १३६८ के बीच की देश की अराजक स्थिति और सामन्ती सरकारों के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इसकी भाषा बड़ी सरल और चीनी मिश्रित है। वस्तुतः इसी से आधुनिक साहित्यिक शैली का जापान में आरम्भ होता है। पुरोहित केंको[४] ने नाम्बोकुचो-युग में "त्सरेजरे-गुस्सा" की रचना की। इसमें जीवन के विविध २४० विषयों पर विचार एकत्र किये गये हैं। विचार एक ही व्यक्ति के हैं। यह भी जुईहित्सू परंपरा की ही कृति है, इसे अप्रयास पढ़ा जा सकता है।

लिरिकल ड्रामा को जापानी में "नो" कहते थे। उसका विशेष विकास १४वीं सदी में हुआ। प्राचीन ड्रामा का धर्म से अविच्छिन्न संबंध था। उसमें अधिकतर नृत्यों का संगम होता था। कागुरा, बुगाक, देंगाक् और सारूगाकू नाम के नृत्य उस ड्रामा के विशिष्ट अंग थे। 'नो' किस्म का ड्रामा उनके समन्वय से प्रस्तुत हुआ। उसमें अब आत्मगत भाव प्रकाशन और डायलैगों का भी समावेश हुआ। पहले यह शिन्तो त्योहारों पर ही खेला जाता था, परन्तु धीरे-धीरे उसने लौकिक रूप भी धारण किया। कानामी[५] और सियामी[६] पिता-पुत्र ने उसे पूर्ण बनाया। ड्रामा के चार मूल सिद्धांत कान्जे, कोन्याकू, कोंगो और होशो थे। ये नो' ड्रामा संबंधी विरोधी विचार प्रस्तुत करते हैं। विशेषतः उसके साहित्यिक मूल्यांकन पर।

नो के गीतों को 'यौक्योकू' कहते थे। वे गद्य मिश्रित पद्य हैं। गद्य भाग में कामाकुरा की दरबारी भाषा में प्रशस्तिवादी शब्दावली का जो उपयोग हुआ है, उससे शैली बोझिल हो गई है। पद्य भाग में प्राचीन सुभाषित-संग्रहों की तांका कवितायें अंगीकृत कर ली गई हैं। नौ प्रकार के नाटकों को खेलते समय चेहरों का इस्तेमाल किया जाता था। १३ प्रायः १४ विविध प्रकार के चेहरे रंगमंच पर प्रदर्शित होते थे। ये विभिन्न भावों के प्रतीक माने जाते

---

१. Kitabatake Chikafusa (१२९३-१३५४); २. Go-Murakami (१३२८-६८); ३. Kojima; ४. Priest Kenko; ५. Kan'ami (१३३३-८४); ६. Seam (१३६३-१४४३)

थे। इस प्रकार के नाटकों के कुछ नाम ये हैं :—

ताकासागो, ओइमात्सू, नानिवा, दोजोजी और तोसेन।

"नो" ड्रामा खेलते समय बीच-बीच में विनोद के लिए फार्स होता था। उसे "क्योगेन" कहते थे। हलके-फुलके वजन पर बोलचाल की भाषा अथवा सर्वथा जन-बोली में ये प्रस्तुत किये जाते थे। इनमें कोरस आदि की व्यवस्था नहीं थी। पिछले जापानी ड्रामा का विकास "नो" और "क्योगेन" के समन्वय से हुआ।

: ६ :

इदो-युग

(१६०३-१८६८)

सोलहवीं सदी के अन्त में गृह-युद्धों का अन्त हुआ और शोगुल राजकुल इदो (टोकियो) में प्रतिष्ठित हुआ। यद्यपि क्योटो में सम्राट् का दरबार किसी-न-किसी रूप में बना रहा। १६वीं सदी के मध्य जापान का संबंध पश्चिम से हुआ। पुर्तगाली, डच और अंग्रेज सौदागर पादरियों के साथ-साथ वहाँ जा पहुँचे। ईसाई धर्म का प्रचार हो चला। परन्तु सत्रहवीं सदी के मध्य तक फिर जापान का संबंध उधर से टूट गया क्योंकि नई नीति ने विदेशियों को देश से सर्वथा बाहर किया था। ईसाई धर्म पर भी गहरे आघात हुए। तोकूगावा सामन्तवादिता १९वीं सदी के मध्य त— देश को अपने फौलादी शिकंजे से जकड़े रही। उसी बीच सौदागरों का एक नया वर्ग उठ खड़ा हुआ—जिसने राष्ट्र का बाजार अपने हाथ में कर लिया। अपेक्षाकृत शांति के कारण इदो-काल में संस्कृति का विकास हुआ और इदो साहित्य का केन्द्र बन गया।

इदो-काल में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार हुआ। पुरोहित चीनी और जापानी ग्रन्थों की नकल के लिए नियुक्त हुए और शिक्षा के धनी प्रेमियों ने बहुत से स्कूल खोले। अब जापानी इतिहास में पहली बार सैनिक के गुणों में साहित्यिक ज्ञान भी गिना जाने लगा। मुद्रण का आरम्भ नारा-काल में ही हो चुका था, परन्तु उसका भी विशेष व्यवहार इसी काल में हुआ जिससे साहित्य के प्रचार में विशेष सहायता मिली। इदो साहित्यिक विषयों की विविधता में पिछले युगों की अपेक्षा अधिक समृद्ध हो गया। जापानी भाषा में फिर एक बार मूलभूत परिवर्तन हुआ। अनेक सांस्कृतिक प्रवृत्तियों की आवश्यकता के लिए चीनी शब्द बड़ी संख्या में ले लिये गये, जिससे जापानी भाषा की लाक्षणिक निधि बढ़ी। व्याकरण की व्यवस्था और सरल कर ली गई और साहित्यिक शैलियों का अभूतपूर्व गठन हुआ।

इदो-काल में चीनी ज्ञान के प्रति भी लोगों का विशेष आकर्षण हुआ। उसने धीरे-धीरे आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। उस आन्दोलन का प्रारम्भ करनेवाला-

फूजीवारा सेईका[1] था जिसने कन्फ्यूशस संबंधी नई चेतना का देश में प्रचार किया। उसके ग्रंथों ने इदो के साहित्यिक और राजनीतिक आदर्श निश्चित कर दिये। कामाकुरा काल से ही जनता के ऊपर एक कठोर आचार-व्यवस्था लग चली थी। उसकी परंपरा इदो-काल तक अपनी चरम पूर्णता को प्राप्त हो गई और स्वाभाविक तथा कृत्रिम जीवन के पारस्परिक संघर्ष शुरू हो गये। इसी संघर्ष ने अनेक करुण नाटक, यौन उपन्यास और अन्य विविध साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं, जो इतिहास, कल्पना, हास्य और भावकता का अद्भुत मिश्रण थीं। इदो-काल का सबसे महान् चीनी ज्ञान का विद्वान आराई हाकुसेकी[2] था। उसने १७वीं सदी के सामन्तों पर एक वृहद् ग्रन्थ "हांकान्यू" (१७०१) रचा। उसमें उसने उस सामन्ती युग का खासा भण्डाफोड़ किया। सेईका के शिष्य हयाशी राजान[3] ने अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखे और चीनी कवितायें रचीं। नाकाइ तोजू[4] भी उस काल में अच्छा पंडित हुआ। तब का एक प्रकाण्ड पंडित कैबारा एक्किन[5] था। जिसने प्रायः १०० ग्रन्थ लिखे। किनोशिता जुनान[6] उस काल के 'चू हसी' परंपरा के विद्वानों में सबसे महान् था और उसके पास सबसे अधिक संख्या में विद्यार्थी थे। उस काल के अन्य चीनी ज्ञान के पंडित कुमाजावा बान्जान,[7] यामागा सोका,[8] इतो जिन्साई[9] और ओग्यू सोराई[10] थे। चीनी ज्ञान का आंदोलन निश्चय ही दीर्घकालीन नहीं हो सकता था और शीघ्र ही उसके विरुद्ध एक आंदोलन उठ खड़ा हुआ। उस आन्दोलन का प्रधान उद्देश्य जापानी-साहित्य का अध्ययन था।

इस नये जापानी दृष्टिकोण का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जापान का इतिहास 'दाई-निहोन-शी' था जिसे तोकूगावा मित्सुकुनी[11] ने शुरू किया था। १६५७ में प्रारम्भ होकर यह ग्रंथ उसके जीवन-काल में ही प्रायः समाप्त हो गया था। परन्तु उसके अंतिम भाग मेइजी-काल (१८६८-१९१२) में लिखे गये। ग्रन्थ प्राचीनतम काल्पनिक जिन्मू के शासनकाल से १४१३ में सम्राट गो-कोमात्सू के राज्यकाल तक है। भाषा उसकी चीनी है। इधर के जापानी इतिहास में इतिहासकार, कवि और भाषा शास्त्री मोतूरी नोरिनागा[12] एक महान् व्यक्ति हो गया है। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'कोजिकी देन' (कोजिकी का भाष्य) है जो ४९ खंडों में १७९८ में समाप्त हुआ। उसमें चीनी आचार और दर्शन के विपरीत प्रतिक्रिया स्पष्टतः प्रकट की गई है। उस परम्परा के अन्य विद्वानों में कामो नो माबूची[13]

---

१. Fujiwara Seika (१५६१-१६१९); २. Arai Hakuseki (१६५७-१७२५); ३. Hayashi Razan (१५८३-१६५७); ४. Nakae Toju (१६०८-१६४८); ५. Kaibara Ekken (१६३०-१७१४); ६. Kinoshita Jun'an (१६२२-९८); ७. Kumazawa Banzan; ८. Yamaga Soko; ९. Ito Jinsai; १०. Ogyu Sorai; ११. Tokugawa Mitsukuni (१६२८-१७००); १२. Motoori Norinaga (१७३०-१८०१); १३. Kamo No Mabuchi (१६९७-१७६९)

हिराता आत्सूताने[१] और 'निहोन गाइशी' का रचयिता राय सान्यो[२]।

चीनी पाण्डित्य और विचारधारा के विपरीत इस प्रतिक्रिया ने एक बड़े राष्ट्रीय सांस्कृतिक आन्दोलन का रूप धारण किया, जिसका एक परिणाम १८६८ में मेइजी कुल की प्रतिष्ठा हुई। उस काल की साहित्यिक रचनाओं में विशेष विकास 'काबुकी' ऐतिहासिक ड्रामा का हुआ। उसने अपना रूप केइचो-युग (१५९६-१६१४) में पाया। वह जापान का लोकप्रिय ड्रामा था। मजे की बात तो उस सम्बन्ध में यह है कि यद्यपि उसके सारे पात्र पुरुष होते हैं, उस प्रकार के नाटकों का आरम्भ एक नारी ने किया। वह शिन्तो मन्दिर की नर्तकी ओकूनी[३] थी जिसने १५९६ में क्योटो में उसका पहला अभिनय किया। उस ड्रामा का विकास तीन ऐतिहासिक कालों में हुआ (१) ओन्ना काबुकी (नारी रंगमंच), (२) वाकाशू काबुकी (तरुण रंगमंच) और (३) यारो-काबुकी (पुरुष रंगमंच)। नारी रंगमंच काल में, जैसा नाम से ही प्रकट है, केवल नारियाँ ही अभिनय करती थीं। रंगमंच का प्रबन्ध तब नितान्त साधारण था। उसके संगीत, अभिनय आदि सभी कुछ साधारण थे। शोगुनी शासन ने 'अभिनेत्रियों का भावुक जीवन सार्वजनिक सदाचार के विपरीत समझ एक घोषणा द्वारा नारी रंगमंच का १६२९ में अन्त कर दिया। इसका परिणाम एक तो यह हुआ कि अभिनेत्रियाँ रंगमंच से प्रायः सर्वथा अलग कर दी गई, और दूसरा यह कि नारी पात्र का पार्ट अल्पायु तरुण करने लगे। इस नई योजना को 'अन्नागाता' कहते थे। तरुण रंगमंच जो १६१७ से ही चला आ रहा था, अब पृष्ठभूमि से सामने आ गया और जनता का प्रिय पात्र बना। सुन्दर अल्पायु युवक उसमें नारी का पार्ट अदा करते थे। १६५२ में एक दूसरी शोगुनी घोषणा से यह रंगमंच भी बन्द कर दिया गया। कारण यह बताया गया कि उसके अभिनेताओं का नारी दर्शकों और संरक्षिकाओं से अनुचित संबंध होने लगा है। इसके बाद पुरुष रंगमंच का आरम्भ हुआ। जिसमें नारी पार्ट का ही लोप कर दिया गया। धीरे-धीरे इस पिछले रंगमंच की परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हुए और यद्यपि तोकुगावा शासन के बाद नाटकीय रंगमंच का जापान में पर्याप्त ह्रास हो चला।

साहित्य की शुद्धवादी दृष्टि से काबुकी ड्रामा को विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता यद्यपि उसमें कुछ अपवाद भी थे। साहित्यिक गुणों की इस कमी के प्रभाव का कारण यह था कि उन नाटकों में प्रदर्शन को जितना महत्त्व दिया जाता था, उतना विषय तथा प्लाट को नहीं। धीरे-धीरे जब उस परंपरा का और विकास हुआ तो यथार्थवाद के स्थान पर प्रतीकवाद प्रतिष्ठित हो गया जिसमें मुद्राओं का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। इस प्रकार के नाटकों की उत्तरोत्तर रचना हुई।

---

१. Hirata Atsutane (१७७६-१८४३); २. Rai Sanyo (१७८०-१८३२);
३. Okuni

इदो-काल का सबसे बड़ा नाटककार चिकामात्सू मोन्जाएमोन था।[१] उसने ऐतिहासिक और गार्हस्थ्य दो प्रकार के पाँच-पाँच अंकों वाले बड़े-बड़े नाटक लिखे। मनोरंजन को उसने नाटकीयता की रीढ़ मानी। उसके नाटकों में प्रधान थे—'कोक्कुसेन्या कास्सेन, (कोकुसेन्या के युद्ध), 'सोनेजाकी शिन्जू' (सोनेजाकी का दोहरा आत्मघात), 'मेइदो नो हिक्याकू' और 'हाकाता कोजोरो नामोमाकूरा'। तब के अन्य जाने हुए नाटककार ताकेदा एजुमो[२] नामिकी शोजो[३] और कावाताके मोकुआमी[४] थे।

इदो-युग की काव्यधारा में तांका से भी छोटी कविताओं का विकास हुआ। उनका नाम 'हाइकू' अथवा 'होक्कू' था। पिछले ही काल में उस काव्य-रूप का प्रारम्भ हो गया था और धीरे-धीरे उसका विकास होने लगा था। इनमें ऋतु की ओर कवि का संकेत करना आवश्यक था। वर्णन वस्तुवादी था परन्तु कवि से आशा की जाती थी कि वह अपने चित्रों द्वारा पाठकों के मन में आत्मानुभूति के समानान्तर चित्र उत्पन्न कर दे। अन्य बातों में ये अधिकतर 'तांका' के अनुरूप थीं। इन कविताओं में प्रकृति का वर्णन खासा रहता था। इनमें और तांका कविताओं में जापानी-साहित्य का सौंदर्य निखर आया। हाइकू कविताओं को विशेषकर मात्सूओ-बाशो[५] और उसके शिष्यों ने अपने प्रचार द्वारा लोकप्रिय बनाया। उस परंपरा के अन्य कवि एनीमोतो कीकाकू[६] कागा नो चिओ,[७] तानीगुची बुसोन[८], कोबायाशी इस्सा[९] थे।

इदो-युग में पहली बार जनता का दृष्टिकोण उपस्थित करने वाले उपन्यासकार हुए। ईबारा सैकाकू[१०] ने समकालिक जीवन संबंधी उपन्यासों का आरम्भ किया। उसके उपन्यासों में यौन आनन्द का चित्रण नितान्त अमर्यादित मात्रा में हुआ। इसी से उसकी कई रचनायें सेंसर के क्रोध का भी शिकार हुईं, यद्यपि उसके यथार्थवाद में इधर फिर बड़ी रुचि दिखाई जाने लगी है। उसकी कुछ कृतियों के नाम हैं 'फूदोकोरो नां सुजूरो', 'कोशोकू इचिदाई ओतोको' (एक कामुक का जीवन), 'कोशोकू इचिदाई ओन्ना' (एक कामुकी का जीवन), 'कोशोकू गोनिन ओन्ना' (कामुकी नारियों की पाँच कहानियाँ)।

जिपेन्शा इक्कू[११] ने पर्यटन संबंधी हास्यपरक उपन्यास 'हिजा कुरीगे' लिखा जो जापानी-साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। जन-जीवन का यथार्थवादी चित्रण शिकितेई सान्बा[१२] की कृतियों में हुआ है। 'उकियो बूरो' (संसार का स्नान गृह) 'उकियोदेको' (संसार

१. Chikamatsu Monzaemon (१६५३-१७२४); २. Takeda Izumo (१६९१-१७५६); ३. Namiki Shozo (१६३०-९३); ४. Kawatake Mokuami (१८१६-९३); ५. Matsuo Basho (१६४४-१६९४); ६. Enomoto Kikaku (१६६१-१७०७); ७. Kaga no Chiyo (१७०३-७५); ८. Taniguchi Buson (१७१६-८३); ९. Kobayashi Issa (१७६३-१८२८); १०. Ibara Saikaku (१६४२-९३); ११. Jippensha Ikku (१७६६-१८३१); १२. Shikitei Sanba (१७७५-१८२२)

की नाई की दूकान), 'शिजहानी कसे' (४८ आदतें), और 'कोकोन हियाकुनिन वाका' (प्राचीन और अर्वाचीन १०० मूर्ख) इसी प्रकार की उसकी यथार्थवादी कृतियाँ हैं। उस काल का एक प्रकाण्ड लेखक क्योकुतेई बाकिन[१] था जिसने चीनी परंपरा के रोमाण्टिक उपन्यास लिखे। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

'यूमीबारा जुकी' (नया चाँद), 'सेइयू की' (पश्चिम की यात्रा) 'सातोमी हाकेन्देन' (आठ कुत्तों की कहानी) और 'सुइको देन'। अन्तिम कृति चीनी 'शुई हू चुआन' का अनुवाद था।

: ७ :

वर्तमान-युग

(१८६८-१९४१)

वर्तमान काल के वस्तुतः दो भाग हैं, एक १८६८ से १९१२ तक मेइजी युग और दूसरा १९१२ से १९४१ तक का ताइशो-शोवा युग।

१८६८ में तोकुगावा शोगुन काल के बाद देश की राजनीतिक व्यवस्था फिर से हुई। जब राजधानी क्योटो से हटाकर इदो में स्थापित की गई। बाद में इदो का नाम टोकियो पड़ा। सम्राट् फिर से अभिषिक्त हुआ। व्यवसाय और शिक्षा के क्षेत्र में एक नया प्रगतिशील युग आया। विज्ञान, राष्ट्रीयता और मानवतावादी सिद्धांन्तों का प्रचार हुआ। पश्चिम ने इस बार जापान पर गहरा प्रभाव डाला। साहित्यिक दृष्टिकोण से इदोकाल की परंपरा कुछ हद तक बनी रही। उसी परंपरा में कानाजावा रोबुन[२] ने १५ खंडों में अपना ग्रन्थ 'सेइयो हिजाकुरीगे' लिखा।

इन दिनों पश्चिमी भाषाओं का अध्ययन शुरू हुआ और उनके ग्रन्थों के अनुवाद प्रभूत मात्रा में प्रस्तुत हुए। राजनीति के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण का और अधिक विकास हुआ और पश्चिमी 'आइडियोलॉजी' के अनुकूल ही शासन की नई व्यवस्था सोची जाने लगी। रूसो[३], वोल्तेयर[४], मोन्तेस्क[५] और मिल[६] की रचनाओं ने जापानी पाठकों पर गहरा प्रभाव डाला। जनसाधारण के लिए फिर राजनीतिक उपन्यासों की रचना शुरू हुई। यानो फूमिओ[७] ने १८८३ में अपना राजनीतिक उपन्यास 'केइकोकू विदान' लिखा। फुकुजावा युकीची[८] ने भी स्वतन्त्र रचनाओं और विदेशी ग्रन्थ रत्नों के अनुवाद से जापानी भाषा का भंडार भरा।

---

१. Kyokutei Bakin (१७६७-१८४८); २. Kanazawa Robun (१८२९-९४); ३. Rousseau; ४. Voltaire; ५. Montesquieu; ६. Mill; ७. Yano Fumio (१८५०-१९३१); ८. Fukuzawa Yukichi (१८३४-१९०१)

१८८५ से राष्ट्रीय चेतना ने जोर पकड़ा और पश्चिमी प्रभाव के विरुद्ध जोरदार प्रतिक्रिया हुई। प्राचीन साहित्य और कला विशेष आदर के पात्र बने। समीक्षा-शास्त्र का भी उदय हुआ। त्सूबूची शोयो[१] ने 'शोसेत्सू शिन्जुई' लिखकर उपन्यास के तत्व पर प्रकाश डाला। १८८६ का यह प्रकाशन मेइजी-साहित्य के इतिहास में बड़े महत्व का था। उसने साहित्य और कला को अपने ही स्तर पर अपने ही लिए विशिष्ट माना। उसने कला को आचार के बन्धन से नितान्त मुक्त कर दिया। उस दिशा में यह दृष्टिकोण जापान के लिए नया था और उसका जापानी संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। त्सूबूची ने उपन्यास और नाटक दोनों लिखे। नाटक उसके काफी प्रसिद्ध हुए। उनमें प्रधान 'किरीहितोहा, 'होतोतोगीसू कोजो राकूगेत्सू, (उषाकाल का अंधकार) और 'माकिनोकाता' (महिला माकी) हैं। उसने काबूकी को सर्वथा काल्पनिक और नये युग के अनुपयुक्त कह उस पर कठोर आघात किया और उसके स्थान पर ऐतिहासिक नाटकों को प्रतिष्ठित किया। उसने चरित्र को विशेष महत्व दिया। शेक्सपियर का उस पर काफी प्रभाव पड़ा था। जापानी रंगमंच उसके सहयोग से बदल चला।

अन्य यथार्थवादी साहित्यकारों में अग्रणी फूताबातेई शिमेई[२], यामादा बिम्यो[३] ने और औज़ाकी कोयो[४] थे। इनकी कृतियों ने बोलचाल की भाषा को साहित्य में विशेष महत्व दिया।

मेइजी-युग की सबसे महान् लेखिका हिगूची इचियो[५] थी। उसका उपन्यास "ताकेकुरावे" काफी प्रसिद्ध हो गया है। तोकुतोमी रोका[६] ने आत्मकथा परक ग्रन्थ लिखे। उस दिशा में 'शिजेन तो जिन्सेई' (प्रकृति और मानव) उसकी सुघढ़ कृति थी। उसके उपन्यासों में सर्वोत्तम "हतोतोगीसू" है। यथार्थवादी आन्दोलन के विरुद्ध तभी एक आदर्शवादी तथा रोमांटिक प्रतिक्रिया भी हुई। कोदा रोहान[७], आदर्शवाद का प्रमुख व्याख्याता था। उसने "गोज नो तो" की रचना की। रोमांटिक कृतिकारों में उल्लेखनीय मोरी ओगाई[८], कितामूरा तोकोकू[९] और इज़ूमी क्योका[१०] हैं।

मेइजी-युग के प्रायः अन्त में प्रकृतिवाद पराकाष्ठा को पहुँच गया और शीघ्र ही उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। इसका एक कारण तो (१८९४-९५) का चीन-जापानी युद्ध था

---

१. Tsubouchi Shoyo (१८५९-१९३५); २. Futabatei Shimei (१८६४-१९०८); ३. Yamada Bimyo (१८६८-१९१०); ४. Ozaki Koyo (१८६७-१९०३); ५. Higuchi Ichiyo (१८७२-९६); ६. Tokutomi Roka (१८६८-१९२७); ७. Koda Rohan (जन्म १८६७); ८. Mori Ogai (१८६२-१९२२); ९. Kitamura Tokoku (१८६८-९४); १०. Izumi Kyoka (जन्म १८७३)

जिसके परिणामस्वरूप जापानियों न अपनी परंपरागत सामाजिक व्यवस्था और रहने के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन आवश्यक समझा। दूसरा कारण स्वयं यूरोपीय प्रकृतिवाद का प्रभाव था। टॉल्सटॉय[१], इब्सन[२], जोला[३], मोपसां[४] और अन्य प्रकृतिवादी बड़ी रुचि से पढ़े जाने लगे और देश में उनकी सी कृतियों की माँग हुई। यथार्थवादी उपन्यासों की आलोचना काफी सख्त होने लगी। तीसरा कारण नीत्शे[५] के प्रभाव से व्यक्तिवाद का उदय था। प्रकृतिवादियों ने रोमांटिकों की "कला के लिए कला" का आदर्श छोड़ दिया और वे जीवन की ओर झुके। उनके लिए नर-नारी का पारस्परिक प्रेम सेक्स प्रवृत्ति की अभिव्यंजना-मात्र था। उनकी कृतियों में यौन-जीवन खुले रूप से चित्रित हुआ। प्रकृतिवादी क्षेत्र में शिमामुरा होगेत्सु[६] और हासेगावा तिनकेई[७] का योग खूब मिला। दोनों उच्च कोटि के समीक्षक थे। जापान के अन्य प्रकृतिवादी निम्नलिखित थे—कोसुगी तेंगाई[८], कुनिकीता दोप्पो[९] शीमाजाकी तोसोन[१०] तायामा काताई[११]। इनमें शीमाजाकी का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। इस युग में साहित्य के क्षेत्र में जितना काम उसने किया उतना किसी और ने नहीं। उसके प्रधान प्रकृतिवादी उपन्यास "हाकाई" (धर्मद्रोहिता) 'हारू' (वसन्त) और "इए" है। "हाकाई" में उसने जापान की वर्ग-व्यवस्था पर गहरी चोट की। 'हारू' का तरुणों पर गहरा प्रभाव पड़ा। शीमाजाकी ने डेढ़ हजार पृष्ठ के दो खंडों में अपना महान् उपन्यास "योआके माए" (प्रभात के पूर्व—१९३५) लिखा जो जापानी साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। वह कृति निश्चय ही बड़ी प्रौढ़ है। उसमें लेखक का व्यक्तित्व और उसकी कला बहुत ऊँचे उठ गये हैं। साधारण सजीव शैली में जनता के जीवन का चित्रण हुआ है। यह कृति वस्तुतः तत्कालीन जापानी समाज का प्रतिबिम्ब है।

नात्सूमे सोसेकी[१२] ने प्रकृतिवाद के विरुद्ध पहली आवाज उठाई। उसने अपने नये आन्दोलन (अवकाश-आन्दोलन) द्वारा लोगों को बताया कि यदि अवकाश का आनन्द वे ले सकें तो उनका जीवन सुखी और उज्ज्वल हो सकता है। रुचि और आचार उसके दर्शन के मूल आधार थे। उन्हें उसने अपनी अनेक कृतियों में प्रदर्शित किया। "मैं बिल्ली हूँ" और 'बोटचान' उसकी दो कृतियाँ हैं जिनका जापान में बड़ा आदर हुआ है। आज के अनेक जापानी साहित्यकार नात्सूमे के ऋणी हैं। प्रथम महासमर के लगभग जापान में धार्मिक

---

१. Tolstoy; २. Ibsen; ३. Zola ४. Maupassant; ५. Nietzsche; ६. Shimamura Hogetsu (१८७१-१९१९); ७. Hasegawa Tenkei (जन्म १८७६); ८. Kosugi Tengai (जन्म १८६५); ९. Kunikita Doppo (१८७१-१९०८); १०. Shimazaki Toson (जन्म १८७२); ११. Tayama Katai (१८७१-१९३०); १२. Natsume Soseki (१८६७-१९१६)

साहित्य सहसा लोकप्रिय हो उठा । कागावा तोयोहीको[1] के दो उपन्यास 'मृत्यु के बाद' और 'सूर्य का निशानाबाज'—काफी पढ़े गये। वे धार्मिक दृष्टिकोण से ही लिखे गये थे। कुराता मोमोजा[2] उस क्षेत्र का सबसे बड़ा नाटककार है। "पुरोहित और उसके चेले" (१९१७) उसकी सुन्दरतम कृति है।

नव-रोमांटिक तानिजाकी जुनिचिरो[3] और नागाई काफू[4] ने भी प्रकृतिवाद पर बड़ी चोटें कीं और सौंदर्यवाद का एक नया रूप अपनी रचनाओं में रखा। उस दिशा के अन्य लेखक योशी ईसामू[5] नागाता मिकिहीको[6] और तामूरा तोशीको[7] हैं। नव रोमांटिकों से कहीं अधिक प्रकृतिवाद को व्याघात नव-आदर्शवादियों से पहुँचा। इनमें प्रधान मुशाकोजी सानेआत्सू[8] आरिशीमा ताकेओ[9] और सातोमी तोन[10] हैं। मानवतावाद के विशेष निरूपण का भी उदय हुआ। इसके प्रवर्तकों ने प्रकृतिवादी यथार्थवाद पर विशेष जोर दिया। किकुची कान[11] आकुतागावा राइनोसूके[12] और कूमे मासाओ[13] इस दष्टिकोण के हैं।

किकुची कान ताइशो-युग के प्रधान साहित्यिकों में है। उसने लोकप्रियता को साहित्यिक रचनात्मक सफलता का प्रमाण माना है। पहले तो उसने एकांकी लिखे, पीछे उपन्यास। वर्तमान लोकप्रिय शैली के उपन्यासों की नींव वस्तुतः उसी ने डाली। वह जापान के सर्वोत्तम साहित्यिक मासिक पत्र 'बुंगेई शुंजू' का प्रकाशक और सम्पादक है। उसके प्रधान उपन्यास 'शिन्जू फूजिन', 'सान कातेई' और 'शोहाई' हैं। आकुतागावा ने वर्तमान जापान की संभवतः सर्वोत्तम कहानियाँ लिखी हैं। 'राशोमोन और हाना' उसकी इस दिशा की सुन्दरतम कृतियाँ हैं।

ताइशो-युग के उत्तरार्द्ध में जनवादी-साहित्य का उदय हुआ। जनवादी साहित्य से तात्पर्य सर्वहारा साहित्य से है। इस क्षेत्र के साहित्यिकों को अपने सिद्धान्त के प्रचार के कारण जिस अत्याचार और अप्रतिष्ठा का सर्वत्र शिकार होना पड़ा है, जापानी कृतिकार भी उसके शिकार हैं। सर्वहारा साहित्य के कुछ नमूने निम्नलिखित हैं: 'कानीकोसेन' (लेखक, कोबायासी ताकिजी[14]) 'तेस्सो नो हाना' और 'तोकाई सोक्योकुसेन' (ले०, हायाशी

---

१. Kagawa Toyohiko (जन्म १८८८); २. Kurata Momozo (जन्म १८९१); ३. Tanizaki Junichiro (जन्म १८८६); ४. Nagai Kafu (जन्म १८७९); ५. Yoshii Isamu (जन्म १८८६); ६. Nagata Mikihiko (जन्म १८९०); ७. Tamura Toshiko (जन्म १८८४); ८. Mushakoji Saneatsu; ९. Arishima Takeo; १०. Satomi Ton; ११. Kikuchi Kan; १२. Akutagawa Ryunosuke; १३. Kume Masao; १४. Kobayashi Takiji (१९०३-३३)

फ़ूसाओ[१]) और 'दोशीभाई' (ले० किशी सान्जी[२])। इस क्षत्र के कुछ और अग्रणी ताकेदा रिन्तारो[३] तोकुनागा नाओशी[४] हायामा योशिकी[५] और माएदाको कोई-चीरो[६] हैं।

उसी काल 'अल्ट्रा' प्रभाववादी प्रवृत्ति का भी विकास हुआ। उसका जापानी नाम 'शिव-कांकाकू-हा' है। उसमें टेकनीक अनोखे प्रकार से प्रभाव का विकास करती है। उस दिशा की एक कृति योकोमित्सू रिईची[७] की "काकई" (यन्त्र) है। मेइजी-युग में तांका परंपरा के कवि निम्नलिखित हुए:—सम्राट मेइजी[८], सासाकी[९], योसानो[१०], वाकायामा[११], इशिकावा[१२], कीताहारा[१३] और कूजोताकेको[१४]। हाइकू परंपरा के कवि थे—मासाओका[१५], नात्सूमे[१६], ताकाहामा[१७], ओगिवारा[१८], मूराकामी[१९], ओनो[२०] और शिमादा[२१]। यूरोपीय परंपरा की कविताएँ "शिन्ताईशी" कहलाती हैं। इस दृष्टिकोण के कवि निम्नलिखित हैं:—

कुनीकीता[२२], मासाओका[२३], शिमाजाकी[२४], दोई[२५], मिकी[२६], किताहारा[२७], साइजो[२८] और नोगूची[२९]।

नाटकों के क्षेत्र में प्रधान कावाताके[३०], फ़ुकूची[३१], त्सुबूची[३२], ओकामातो[३३], यामामोतो[३४] और कुराता[३५] हुए। "नो" के अतिरिक्त तीन और प्रकार के नाटक भी

---

१. Hayashi Fusao (जन्म १९०६); २. Kishi Sanji (जन्म १८९९); ३. Takeda Rintaro (जन्म १९०४); ४. Tokunaga Naoshi (जन्म १८९९); ५. Hayama Yoshiki (जन्म १८९४); ६. Maedako Koichiro (जन्म १८८८); ७. Yokomitsu Riichi (जन्म १८९८); ८. Emperor Meiji (१८५२-१९१२); ९. Sasaki Nobutsuna (जन्म १८७२); १०. Yosano Hiroshi (१८७३-१९३५); ११. Wakayama Bokushi (१८८५-१९२८); १२. Ishikawa Takuboku (१८८६-१९१४); १३. Kitahara Hakushu (जन्म १८८६); १४. Kujo Takeko (१८८७-१९२८); १५. Masaoka Shiki (१८६६--१९०२); १६. Natsume Soseki (१८६७-१९१६); १७. Takahama Kyoshi (जन्म १८७४); १८. Ogiwara Seisensui (जन्म १८८४); १९. Murakami Kijo (जन्म १८७०); २०. Ono Bushi (जन्म १८८८); २१. Shimada Seiho (जन्म १८८२); २२. Kunikita Doppo (१८७१-१९०८); २३. Masaoka Shiki (१८६६-१९०२); २४. Shimazaki Toson (जन्म १८७२); २५. Doi Bansui (जन्म १८७१); २६. Miki Rofu (जन्म १८८९); २७. Kitahara Hakushu (जन्म १८८६); २८. Saijo Yaso (जन्म १८९२); २९. Noguchi Yonejiro (जन्म १८७५); ३०. Kawatake Mokuami (१८१६-१८९३); ३१. Fukuchi Ochi (१८४१-१९०६); ३२. Tsubouchi Shoyo (१८५९-१९३५); ३३. Okamoto Kido (जन्म १८७३); ३४. Yamamoto Yuzo (जन्म १८८७); ३५. Kurata Momozo (जन्म १८९१)

जापान में प्रचलित हैं—'शिन्पा, जिसका आरम्भ मेइजा-युग में हुआ, सामाजिक जीवन प्रस्तुत करता है। उसी युग के अन्त में 'शिंगेकी' नाट्य-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसने पश्चिमी ढंग के नाटकों का जापानी रंगमंच पर प्रादुर्भाव किया। "काबुकी" प्रकार के नाटकों का उल्लेख पहले किया ही जा चुका है। वह भी आज अपने भाव व आकार में काफी बदला जा चुका है। फिर भी जापान में जीवित है और राष्ट्रीयता के योग से जीवित रहेगा।

१९३७ में चीन के साथ युद्ध छिड़ने के बाद युद्ध संबंधी साहित्य का प्रकाशन अमित मात्रा में हुआ और युद्धवादी उपन्यास, नाटक तथा कविताएँ लिखी जाने लगीं। दूसरे महा-समर के मध्य तक निरन्तर उस साहित्य की आकृति और शक्ति बढ़ती रही। शीघ्र ही जापान की पराजय ने सिद्ध कर दिया कि साम्राज्यवादी साहित्य, जनवाद का विरोधी है। आज के जापानी साहित्यकारों में काफी कुण्ठा है यद्यपि आशावादी जनहितैषी साहित्य का निर्माण भी सतत गति से वहाँ, अमरीकी सत्ता के बावजूद भी होता जा रहा है।

११. डच-साहित्य

डच संस्कृति की परंपरा डच साहित्य का आरम्भ अन्धकवि बर्नलेफ[1] से मानती है। परन्तु लिखित अथवा अलिखित किसी प्रकार का उससे सम्पर्क रखने वाला साहित्य आज उपलब्ध नहीं। इससे डच साहित्य का इतिहास लिखते समय उस आकर्षक प्रसंग को हमें छोड़ ही देना पड़ता है।

डच-साहित्य का पहला ऐतिहासिक कवि हेनरिक वॉन वेल्देके[2] था जो बारहवीं सदी के अन्त में हुआ। उसने उस मध्यकाल (गोथिक) का आरम्भ किया जो नेदरलैण्ड्स के साहित्यिक इतिहास में समृद्धतम युग है। मध्यकाल का साहित्य एपिक, लिरिक, नीति-परक, वर्णनात्मक, नाटकीय सभी प्रकार की कृतियों से सम्पन्न है।

'वान डेन वोस राइनार्डे' नेदरलैण्ड्स में गोथिक साहित्य की चोटी का काव्य माना जाता है। उस काल की कुछ और कृतियाँ लिरिक 'बटिस' नाटकीय काव्य 'लान्सेलाट वान डेनेमार्केन' और नाट्य रूपक 'एल्कर्लिक' हैं। उस काल की लिरिक सम्पदा असीम और विशेष ऋद्ध है। उसमें अलंकारों का भी इतना उपयोग होने लगता है कि अगली 'बारोक' परंपरा की प्रायः तभी बुनियाद पड़ जाती है। पन्द्रहवीं सदी में डच साहित्य में एक प्रकार की अस्पष्टता दिखाई पड़ने लगी परन्तु अलंकार-शास्त्रियों के साथ ही उन सुन्दर कवियों का भी प्रादुर्भाव हुआ जो स्वर्णयुग के अग्रदूत बने। १६वीं सदी के अन्त में नेदर-लैण्ड्स पृथक हो गया जिससे उसके साहित्य पर भी राजनीति की ही भाँति गहरा प्रभाव पड़ा। उत्तर और दक्षिण का विभाजन भी उस दिशा में गहरा अर्थ रखता था। दक्षिण में 'गोथिक' परंपरा का विकास हुआ और उत्तर में 'बारोक' का और अन्त में दोनों का सामंजस्य और समन्वय रोमांटिक आधार से हुआ। रोमांटिकवाद ने उत्तर और दक्षिण दोनों की 'बारोक' और 'गोथिक' परंपराओं को एकत्र कर दिया। पहले तो इसमें कठि-नाइयाँ हुईं परन्तु धीरे-धीरे भाषा और साहित्य दोनों की एक प्रकार से एकता स्थापित हो गई। नेदरलैण्ड्स 'नीचे की भूमि' का नाम है। नीचे की भूमि से तात्पर्य समुद्र के धरातल के नीचे से है। उस भूमि के दो भाग थे, उत्तर और दक्षिण और दोनों का एकत्र नाम नेदर-लैंड्स पड़ा।

गोथिक परंपरा में चार विशिष्ट डच कवि हुए—हूफ्ट[3] गरब्रान्ड एड्रियान्सून ब्रेदेरो[4],

---

१. Bernlef; २. Henric Von Veldeke; ३. P. C. Hooft (१५८१-१६४७); ४. Gerbrand Adriaanszoon Bredero (१५८५-१६१८)

जुस्टवान डेन वोन्डेल[1] और कान्स्टेन्टिन हुइगन्स[2] चारों प्रायः समकालीन थे। उनमें सबसे महान् वोन्डेल था। यद्यपि उसमें न तो हूफ्ट की सी लिरिक-प्रतिभा थी और न हुइगेन्स की सी मेधा। परन्तु उसमें एक बौद्धिक तत्परता थी और निस्सीम आविष्कार प्रेरणा, और इन दोनों से बढ़कर असीम कल्पना। उसकी कला नितान्त स्वाभाविक, सर्वथा अकृत्रिम, बिल्कुल सरल और सीधी थी। वह अपने विचारों के लिए देश की बड़ी से बड़ी शक्ति से लोहा लेने को तत्पर रहता था। इस रूप में वह केवल विशिष्ट कवि ही न था बल्कि एक बहुमुखी सबल व्यक्तित्व था जिसकी निर्भीकता और साहस सन्देह के परे थे। लगता है उसमें 'गोथिक' और 'बारोक' दोनों एकत्र हो उठे थे। वह अपने सिद्धान्तों और विचारों का इतना कायल था कि आदर्शों के संबंध में कभी समझौता नहीं कर सकता था। हूफ्ट और हुइगेन्स, इसके विपरीत, दुनियादार थे और साथ ही असाधारण आकर्षण के केन्द्र थे। वोन्डेल के लिरिक नेदरलैंड्स के साहित्य के सुन्दरतम लिरिकों में हैं। उनका रूप तो सुन्दर है ही, सत्य और मानवीय भावनाओं की गहरायी भी उनमें खासी है। चाहे जितना भी पुराना उसका लिरिक-साहित्य होता जाय वह कभी उपेक्षित नहीं हो सकता। साथ ही वह डच-साहित्य का पहला गद्य कलाकार भी है। हुइगेन्स और हूफ्ट दोनों शासकवर्ग के थे और इनमें पहला तो प्रतिभाशाली कवि और असाधारण बुद्धि का व्यक्ति था।

ब्रेदेरो, वोन्डेल के निकट औरों से अधिक था। उसकी शैली स्वाभाविक सद्योजात और सीधी है। वह किसी प्रकार की परंपरा को स्वीकार नहीं करता था और आचारों तक के प्रतिबन्ध उसने न माने यद्यपि जब-तब वह अनुशोचना का शिकार निःसंदेह हो जाया करता था। यही कारण है कि उसके गीतों में दोनों छोर मिलते हैं—प्रेम-प्रजनित आनन्द के और साथ ही अत्यन्त भावुक धर्म-प्रेरणा के। इन चारों कवियों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक छोटे-बड़े कवि नेदरलैंड्स में उस काल हुए जिनका उल्लेख यहाँ समीचीन न होगा। केवल एक जैकब कैट्स[3] की ओर संकेत कर देना काफी होगा। कैट्स जनता का कवि था और वह उसमें इतना लोकप्रिय हुआ कि लोग उसे 'पिता कैट्स' कहने लगे थे। १९वीं सदी तक 'बाइबल' के साथ-साथ उसकी कविताओं के संग्रह भी लोग पास रखते थे।

जान लुइकेन[4] पिछले युग और १८वीं सदी की संधि पर खड़ा है। वह उच्चकोटि का कवि था। पार्थिव प्रेम की प्रशंसा में उसने तरुणावस्था में अपने 'जर्मन लिरिक' लिखे। जर्मन रहस्यवादियों के प्रभाव से वह बाद में विशेष धार्मिक भी हो गया। परिणामस्वरूप उसने डच-साहित्य की उच्चतम और सुन्दरतम कविताएँ लिखीं। उसने अपनी कविताओं के संग्रहों को अपनी ही कला से चित्रित भी किया। उस काल के तीन और कवि उल्लेखनीय

---

१. Joost Van den Vondel (१५८७-१६७९); २. Constantijn Huygens. (१५९६-१६८७); ३. Jacob Cats; ४. Jan Luiken (१६४९-१७१२);

हैं—जान वॉन ब्रोइखुइजन[१], जान बैप्टिस्टा वेलेकेन्स[२] और ह्यूबर्ट कार्नोलिस पूट[३]।

१८वीं सदी के विशिष्ट साहित्यकार नाटक और गद्य के क्षेत्र में हुए। पीटर लागेन्डिक[४] ने आचार संबंधी नाटक और कॉमेडियाँ लिखीं जो आज भी खली जाती हैं। उसके प्रधान नाटक निम्नलिखित थे—'पारस्परिक वैवाहिक कपट' 'राष्ट्रीय साहित्य का दर्पण' 'कामाचो के विवाह में डॉन क्विकजोट' और 'क्रेलिस लाउरेन'।

१८वीं सदी का पहला डच निबंधकार जुस्टस वान एफेन[५] था। उसने कुछ अत्यंत सुन्दर वर्णनात्मक और नैतिक निबन्ध लिखे। उसकी मृत्यु के क्रमश: तीन और छह वर्ष बाद साहित्य के पहले उपन्यासकार बेत्जे उल्फ[६] और आग्ये डेकेन[७] हुए। उन्होंने दो अलंकृत उपन्यास पत्रों के रूप में लिखे—'सारा बरगेरहार्ट' और 'लेम लीवेन्ड'।

उस काल के अन्य गद्यकारों में कुछ दार्शनिक भी थे, जैसे हिरोनिमस वान आल्फेन[८] जिसने 'ईस्थेटिका' लिखी और फ्रांस हेमस्टरहिस[९] जिसने दर्शन और कला पर फ्रैंच भाषा में लिखा। इनके अतिरिक्त पॉलस वॉन हेमर्ट[१०] और जोहानिज किंकर[११] भी गद्य के क्षेत्र में काफी प्रसिद्ध हुए।

लिरिक-कविता का उदय एक बार फिर विलेम बिल्डरडिक[१२] के हाथों हुआ। रोमांटिक परंपरा ने नेदरलैंड्स के बौद्धिक जीवन को एक नयी शक्ति दी। जर्मन फ्रेंच और अंग्रेजी रोमांटिक परंपरा उस देश पर भी हावी हुई, फिर १८३० के बाद बाइरन[१३] का वहाँ प्रभाव पड़ा। विलेम बिल्डरडिक की कविताओं में, कुछ आलोचकों का विचार है, बहुत कुछ ऐसा है जो हमें सन्तुष्ट करता है, परन्तु शायद कुछ भी ऐसा नहीं जो हमें हिला सके। कुछ थोड़े लिरिक जो निश्चय ही छोटे और हल्के हैं परन्तु अधिकतर अलंकार से बोझिल होकर हास्यास्पद हो गये हैं। फिर भी उन कविताओं का महत्त्व दूसरी दिशा में है। उसकी कविताएँ तत्कालीन घटनाओं का दर्पण हैं। १७९५ के फ्रेंच आक्रमण के बाद वह देश छोड़कर बाहर चला गया और १८०६ में लंदन आदि घूमकर स्वदेश लौटा। विजेताओं के प्रति आत्मसमर्पण करने से उसकी कमजोरी का पता चलता है। स्वदेश लौटने पर उसे स्वतन्त्रता के बाद नये शासन ने पेंशन दी जिसे स्वीकार करते उसे तनिक भी आपत्ति नहीं हुई। तब वह लाइडेन में रहकर अपने चतुर्दिक एकत्र हुए तरुणों के हृदय

---

१. Jan von Broekhuizen; २. Jan Baptista Wellekens; ३. Hubert Cornelis Poot; ४. Pieter Langendijk (१६८३-१७५६); ५. Justus von Effen (१६८४-१७३५); ६. Betje Wolff (१७३८-१८०४); ७. Aagje Deken (१७४१-१८०४); ८. Hieronymus von Alphen (१७४६-१८०३); ९. Frans Hemsterhuis (१७२१-९०); १०. Paulus von Hemert; ११. Johannes Kinker; १२. Willem Bilderdijk (१७५६-१८३१); १३. Byron

में प्रतिक्रियावादी ईसाई विचारों को भरने लगा। नेदरलैंडस की राजनीति में क्रांतिविरोधी दल का बीज उसी की अध्यक्षता में लाइडेन में ही वृक्षाकार हुआ। बिल्डरडिक कवि से अधिक नैतिक-व्यक्तित्व था। उससे सुन्दर लिरिक कविताएँ शुद्ध काव्य शैली में उसके समकालीन स्टारिंग[१] ने लिखीं।

रोमांटिक उपन्यास उस काल जेकब वान लेनेप[२] और गीरट्रीडा बोस्बूम-टू सेन्ट[३] ने लिखे। पहला स्कॉट से प्रभावित था और यद्यपि उसमें भाषा का सौंदर्य अथवा चरित्र-चित्रण विशेष न था फिर भी अपनी वर्णनात्मक शक्ति के कारण वह काफी लोकप्रिय हुआ। गीरट्रीडा की शैली बहुत अच्छी मानी जाती है। फिर भी उसमें विचारों की परंपरा घटना के क्रम को बोझिल और अस्पष्ट कर देती है, यद्यपि वह मानव प्रकृति और ऐतिहासिक घटनाओं की अच्छी अध्येता है। रोमांटिक परंपरा का नेदरलैंड्स में विकास विशेषत: मासिक पत्र 'ड़ि गिड्स्' के १८३७ में प्रकाशन से हुआ। वह पत्र आज भी जीवित है। उसे तीन तरुणों—ईनीउट ड्रोस्ट,[४] राईनीर बाखीजन वॉन डेन ब्रिंक[५] और ई० जे० पोटगीटर[६] ने निकाला था। पोटगीटर डच-साहित्य का पहला विशिष्ट आलोचक था। उसने कुछ कहानियाँ और दार्शनिक तथा ऐतिहासिक कविताएँ भी लिखीं परन्तु इनसे ऊपर वह उस काल का बौद्धिक नेता था। प्राय: १९वीं सदी के समूचे बौद्धिक जीवन पर पोटगीटर छाया रहा। वह पेशे से सौदागर था और कला और जीवन के प्रति अपने ऊँचे विचारों द्वारा उसने उस साहित्य में अपने लिए ऊँचा स्थान बना लिया। उसमें कल्पना और उत्साह की कमी थी परन्तु सन्तुलन सौर मर्यादा का उसे गहरा बोध था तथा पुराने और नये साहित्यों का उसे असामान्य ज्ञान था। उसके बाद आलोचना के क्षेत्र में विशिष्ट कोनराड बुस्केन हुएट[७] हुआ। वह पादरी था और जावा आदि की यात्रा करने के बाद लेखक के रूप में पेरिस में प्रतिष्ठित हुआ। उसने अनेक निबन्ध और आलोचनात्मक लेख लिखे और साथ ही कई सांस्कृतिक इतिहास संबंधी बड़े ग्रन्थ भी, जिनमें 'हेट लांड वान रेम्ब्रान्ट' अधिक महत्वपूर्ण है। उस काल का तीसरा प्रसिद्ध समीक्षक जैकब गील[८] था जिसने डच गद्य को रोमांटिक अलंकृत लफ्फाजी से मुक्त कर प्रसाद गुण से विभूषित किया।

निकोलस बीट्स[९] लाइडेन में धर्मशास्त्र का अध्यापक था। पता चलता है कि उसने हजारों कविताएँ लिखीं यद्यपि उसकी केवल एक कविता सुभाषितों में संग्रहीत है। कवि के

---

१. A.C.W. Staring; २. Jacob von Lennep (१८०२-६८); ३. Geertruida Bosboom-Toussaint (१८१२-८६); ४. Aernout Drost; ५. Reinier Bakhuizen van den Brink; ६. E. J. Potgieter (१८०८-७५); ७. Conrad Busken Huet (१८२६-८६); ८. Jacob Geel (१७८९-१८६२); ९. Nicolaas Beets (१८१४-१९०३)

रूप में तो इस प्रकार बीट्स उपेक्षणीय हो गया परन्तु मध्यवर्गीय जीवन पर स्केच-लेखक के रूप में वह काफी प्रसिद्ध है। उस दिशा में उसका 'कामेरा ऑब्सक्यूरा' आज भी लोकप्रिय है जो यथार्थवादी साहित्य का पहला डच नमूना माना जाता है। पोटगीटर ने अपनी रोमांटिक प्रवृत्तियों के वशीभूत उन स्केचों के प्रति 'रोजमर्रा जीवन की नकल की तृष्णा' कह कर घृणा प्रगट की थी, परन्तु बीट्स के स्केच इतने यथार्थवादी हास्यपरक शैली पर अवलंबित हैं कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हाँ, उस यथार्थवाद का विस्तार प्रतिभा की दृष्टि से उस काल विशेष न हो सका और उसे शक्तिम कृतिकारिता का योग १९०० के बाद ही मिला।

१९वीं सदी का न केवल डच साहित्य का वरन् सारे यूरोप का एक महान् साहित्यकार एडूअर्ड डूबेस डेक्कर[१] था जो अधिकतर अपने उपनाम 'मुल्तातूली' से जाना जाता है। उसके जीवनकाल में और बाद में भी उस पर विचार होते रहे और उसकी कृतियों को गहरी चोटें सहनी पड़ीं। १९३० और ४० के बीच नात्सी आक्रमण के पहले तो उसके विचार डच तरुणों का बौद्धिक केन्द्र ही बन गये थे। उसके दो प्रधान अनुयायी मेनो टेर ब्राक[२] और ई० डू० पेरोन[३] थे। डेकर पहले १८३८ में सिविल सर्विस का अफसर होकर "इण्डीज" (इण्डोनेशिया) गया। परन्तु कुछ काल बाद शासन से उसका विरोध हो जाने के कारण वह बर्खास्त कर दिया गया। फिर वह ब्रसेल्स में रहकर उपन्यास लिखने लगा। उसकी पहली कृति 'मैक्स हावेलार' डच साहित्य और गद्य की चोटी की रचना मानी जाती है। उसमें मानव-आवेगों का बड़ा ऋद्ध चित्रण हुआ है। उसका दूसरा उपन्यास 'वूतरत्जे पीटर्स' बाल-मनोविज्ञान का असामान्य परिचायक है। मुल्तातूली का प्रभाव कई दिशाओं में बड़ा गहरा पड़ा। उसने डच गद्य शैली का बोझिलपन हटाकर उसे सजीवता और प्रवाह से मुक्त किया। उसने साधारण से साधारण शब्दों का स्वाभाविक रूप में प्रयोग किया। साथ ही उसने सत्य और स्वाधीनता के पक्ष में सर्वत्र लड़ाई ठान ली। उसके समकालीन उसे उदारता और सहिष्णुता का मूर्तिमान आदर्श मानते थे। यह मुल्तातूली के ही विचारों का प्रभाव था कि इण्डोनेशियनों की शिक्षा उनकी अपनी सांस्कृतिक परंपरा में होने लगी और वे शासन के क्षेत्र में नियुक्त किये जाने लगे। डेक्कर बीच-बीच में स्वदेश लौटकर व्याख्यान दिया करता था। उसमें गजब की वाग्मिता थी और वह डच जीवन में महान् प्रेरणाओं के साथ प्रादुर्भूत हुआ। १९वीं सदी के चौथे चरण में जिस आन्दोलन का आरम्भ हुआ वह '८० वर्षों का आन्दोलन' कहलाता है। उसका प्रवर्तक तरुणों का एक दल था। जिसका मुख पत्र 'ढि नूबे गिड्स' (१८८५) था। यह बौद्धिक

---

१. Eduard Douwes Dekker (Multatuli) (१८२०-८७); २. Menno ter Braak; ३. E. du Perron

जीवन, चित्रकला, वास्तुकला, संगीत और राजनीति में एक प्रकार का पुनर्जागरण-आन्दोलन था। उसी काल समाजवाद का भी उस देश में विशेष प्रचार हुआ। साहित्य में उस विचार के अग्रणी विशेषतः विलेम क्लूस[१] वास्तुकला में बर्लाज,[२] चित्रकला में ब्राइट्नर[३] संगीत में अल्फोन्ज डिपेनब्रॉक[४] दर्शन में बोलान्ड[५] और राजनीति में डोमेला निबेनहिस[६] थे।

नेदरलैण्डस के इतिहास के १८७० और १९०० के बीच के ३० साल साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में विशेष महत्त्व के थे। उस बीच उस देश के विविध क्षेत्रों में कल्पनातीत उन्नति हुई। जिन लोगों ने 'डि नूबे गिड्स' की क्रियाशीलता को सफल बनाया, अथवा उसके लिए ृष्ठभमि प्रस्तुत कर दी, उनमें प्रधान थे—विलेम वार्नर वान लेनेप[७] कारेल वोज्मीर[८] सीमन गोर्टर[९] जैकब विंक्लर प्रिन्स[१०] पेनिंग[११] मार्सेलस इमान्ट्स[१२] जैक्स पर्क[१३]। इनमें से जैक पर्क का प्रभाव बड़े काम का हुआ। मरा तो वह केवल २२ वर्ष की अल्पायु में परन्तु इसी बीच कुछ असाधारण कवितायें छोड़ गया, जिनकी उस काल के समीक्षकों ने बहुत सराहना की। इमान्ट्स ने दो एपिक-दार्शनिक कविताओं के संग्रह—'लिलिथ' और 'देवताओं की गोधूलि' प्रकाशित किये। उसकी विचार-पद्धति, कवित्व शक्ति और रूप ने साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। उसने उपन्यास, नाटक और यात्रा वृत्तान्त भी लिखे। मुल्तातूली को छोड़ उस समय के सारे साहित्यिक व्यक्तियों से वह ऊँचा था। उसकी समाज और मनुष्य की आलोचना ने वस्तुतः प्रकृतिवाद को सफल बनाया।

पेनिंग[१४] बड़ा मौलिक है। उसने उच्चकोटि के प्रबन्ध और लिरिक काव्य लिखे। उसकी बड़ी कवितायें 'बेंजामिन बर्टेलिंगेन' और छोटी 'कामेरमुजीक' और 'लेबेन्साबोन्द' हैं। पिछले काल की उसकी कविताओं में बड़ी गहराई है। वह काफी कम आयु में ही अन्धा हो गया था। उस काल विलेमक्लूज तो ऊँचा साहित्यकार था ही, अल्बर्ट वर्वी[१५] भी उससे कुछ कम न था। पर दोनों स्तरों पर थे। एक ज्वालामुखी था तो दूसरा जीवन गर्भित प्रशान्त झील, एक योगी था तो दूसरा सांसारिक। दोनों समसामयिक तो थे ही, प्रायः एक ही बौद्धिक और सामाजिक वृत्त से उठे थे। इन दोनों के अतिरिक्त उस काल एक और विशिष्ट

---

१. Willem Kloos (१८५९-१९३०); २. H. P. Berlage; ३. W. Breitner; ४. Alphons Diepenbrock; ५. G. T. P. J. Bolland; ६. Domela Nieuwenhuis; ७. Willem Warner Van Lennep; ८. Carel Vosmaer; ९. Simon Gorter; १०. Jacob Winkler Prins; ११. W. L. Penning; १२. Marcellus Emants (१८४८-१९२३); १३. Jacques Perk (१८५९-८१); १४. W. L. Penning (१८४०-१९२४); १५. Albert Verwey (१८६५-१९३६)

साहित्यकार भी था जिसकी प्रेरणा साम्यवादी थी। हरमान गोर्टर[1] इन्हीं की भाँति साहित्य में स्तम्भाकार यद्यपि दृष्टिकोण में इनसे सर्वथा भिन्न कम्युनिज्म का पुजारी था। इसी प्रकार गद्यकार लोडविक वान दीसेल[2] और जैकोबस वान लुई भी एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न हैं।

"अस्सी का आन्दोलन" साहित्य में मिथ्या अलंकरण, आचार तथा रस के सिद्धांतों के अस्पष्ट उलझनों आदि के विरुद्ध लड़ा और अनुभूति की ईमानदारी, भावों की गहराई, विचारों की स्पष्टता और रूप तथा उद्देश्य की एकता की मांग की। क्लूज उस आन्दोलन के प्रवल प्रवर्त्तकों में था, वर्वी उसका सबसे ऊँचा साहित्यकार। परन्तु उस दल का सबसे महान लिरिककार और समूचे डच साहित्य के चोटी के कवियों में एक गोर्टर था। उसका लिरिक 'माई' प्रतीक काव्य है और डच साहित्य की उच्चतम चोटियों में है। जैकोबस वान लूई[3] उस काल का सबसे महत्वपूर्ण गद्य-लेखक है। वह शब्दों का अद्‌भुत चित्रकार है। अन्त में उसने यथार्थवादी दृष्टिकोण छोड़ व्यंग्यात्मक कल्पना को अपनी रचनाओं का प्रेरक आधार बनाया। फ्रेडरिकवान ईडेन[4] वैद्य, सुधारक, कवि, नाट्यकार, उपन्यासकार, आलोचक और जर्नलिस्ट था। नीवे गिड्स के किसी सदस्य ने इतना कथोपकथन नहीं किया, और न इतने विवादास्पद विषयों को उठाया। स्वयं उसके पुराने साहित्यिक मित्र उसके विरुद्ध हो गये। तरुण और प्रौढ़ सभी उसके दुश्मन हो गये। फिर भी ईडेन साधारण कोटि का साहित्यकार न था। उसकी अनेक कृतियों का डच साहित्य में चिरकालिक स्थान रहेगा। उनमें प्रधान हैं—लिरिक—दार्शनिक नाटक 'डि ब्रीडर्स' मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'वान ड केले मीरेन डे डूड्स' गद्य-रूपक 'ड क्लाइने जोहानिज़।'

यथार्थवाद की चरम परिणति प्रकृतिवाद में होती है। वस्तुतः दोनों का एकत्र विकास नेदरलैण्ड्स के कृतिकारों में हुआ है। डच-साहित्यकार रोजमर्रा के जीवन के अद्‌भुत चित्रकार रहे हैं। नीवे गिड्स के समकालीन और शीघ्र बाद के उस दृष्टिकोण के उपन्यासकार फ्रांस कोनेन[5] हरमान राबर्स[6] जेरार्डवान इकेरेन[7] और तीन प्रतिभाशालिनी महिलायें—टापनीफ[8] मार्गोट शार्तेन अन्टिक[9] और कारीवान ब्रुगेन[10]—थीं। युग का विशिष्टतम उपन्यासकार लुइस काउपेरस[11] प्रायः स्वतंत्र कृतिकार था। उसके कुछ उपन्यास यथार्थवादी भी हैं, जैसे 'एलिने वेरे'। उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'वान ऊडे मेन्शेन'

---

१. Herman Gorter (१८६४-१९२७); २. Lodewijk Van Deyssel; ३. Jacobus Van Looy (१८५५-१९३०); ४. Frederik Van Eeden (१८६०-१९३२); ५. Frans Coenen; ६. Herman Robbers; ७. Gerard Van Eckeren; ८. Top Naeff; ९. Margot Scharten-Antink; १०. Carry Van Bruggen; ११. Louis Couperus (१८६३-१९२३);

डे डिन्जेन डी वूर विगान" है। जिसमें अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण हुआ है और जो यथार्थवादी नहीं कही जा सकती। काउपेरस ने अनेक ऐतिहासिक और घोर काल्पनिक उपन्यास लिखे। उसकी कहानियों और काल्पनिक स्वप्नों की संख्या भी कुछ कम नहीं।

१९०० के बाद नीवे गिड्स का महत्त्व कम हो गया था, अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी नेदरलैण्ड्स में प्रसार हुआ, तभी तीन महत्त्व के कवि और एक विशिष्ट गद्यकार हुए। उनके नाम थे—हेनरिएट रोलाण्ड[१] पी० सी० बाउटेन्स[२] टी० एच० लियोपोल्ड[३] और उपन्यासकार आर्थर वान शेन्डेल[४]। गोर्टर के प्रभाव से होल्स्ट प्रारम्भ में ही समाजवादी हो गई थी और उसने अनेक ग्रन्थ समाज-शास्त्र पर लिखे। परन्तु उनसे कहीं बढ़कर उसकी कविताएँ थीं। मुक्त और उद्दाम काव्य-धारा से उसने जनवादी आन्दोलन का हित किया। करोड़ों सर्वहाराओं की आशाओं को उसने अपनी कविताओं में रूपायित किया। उसकी प्रत्येक रचना के पीछे मानव-हित और सुख की कामना छिपी है। सारे डच साहित्य में कहीं इतनी भावुकता से विश्वबन्धुत्व के आदर्शों का आकलन नहीं हुआ है। उसके संग्रह—'ड ब्राउ इन हैट वूड' में साम्यवाद का समुन्दर लहराता है, "वर्जोकिन ग्रेन्जेन" में भी उसी प्रकार मानवीय चेतनाओं का विकास हुआ है, यद्यपि इस पिछली कृति में उसकी कमजोर आत्मा भगवान की ओर भी हाथ उठा देती है। उसकी कविताएँ—राजनीतिक और धार्मिक दोनों—प्रणय-लिरिक हैं। बाउटेन्स उसके सामने अभिजात रूपवादी लगता है। परन्तु गहरे अध्ययन से उसकी गहराइयों की थाह मिलती है। जहाँ हेनरिएट समाज को अपना इष्ट मानती है, बाउटेन्स आंशिक रहस्यवाद को। उसकी कविताओं का संग्रह 'स्टेमेन' सम्भवतः उसकी रचनाओं में विशिष्ट है। इन कविताओं में 'वर्गेटेन लीड्येस' सर्वोत्तम है। नात्सी-शासनकाल में वह मरा। लियोपोल्ड का पहला कविता-संग्रह १९१३ में निकला। उसकी अन्य कविताएँ उसकी मृत्यु के बाद वानआइक ने छपवाईं।

आर्थरवान शेन्डेल केवल उसी युग का नहीं सम्भवतः समूचे डच साहित्य का सर्वोत्तम गद्यकार है। उसने प्रभाववाद और प्रकृतिवाद दोनों प्रवृत्तियों के विरुद्ध लिखा। १९०० और १९३० तक की कृतियों के लिए तो उसने काल्पनिक इटालियन रेनेसाँ से सामग्री चुनी। प्रारब्ध और एकान्त उसकी दो प्रधान समस्याएँ थीं। उसकी मुख्य रचना 'ईन ज्वर्वर' (दो खण्डों में) है। बाद की रचनाओं के लिए उसने नेदरलैंडस के जीवन और इतिहास से अपने कथानक और विषय चुने। उसका उत्कृष्ट उपन्यास— ट्रिलोजी 'ईन हालैण्ड्श ड्रामा' डि रिजकेमान 'ग्रावे फोगेल्स' हैं। उसने प्रायः तीस उपन्यास लिखे जिनमें से एक भी साधारण कोटि का नहीं है। उसने अनेक कहानियाँ भी लिखीं।

---

१. Henriette Roland Holst (जन्म १८६९); २. P. C. Boutens (१८७०-१९४३); ३. T. H.Leopold (१८६५-१९२५); ४. Arthur Van Schendel (जन्म १८७२)

उसकी दो कृतियाँ अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। एक तो "ईन ज्वर्वर" और दूसरी "ड वाटर-मान।" यह दूसरी डच-गद्य में अनुपम रचना है।

१९०५ और १९०८ के बीच एक नई पीढ़ी के लिरिक कवियों का उदय हुआ जिनमें प्रधान निम्न तीन हैं :—ए. रोलाण्ड हॉल्स्ट[१] जे. सी. ब्लोम[२] और पी. एन. वान. आइक[३]। होल्स्ट की कविताएँ पहले-पहल १९११ में प्रकाशित हुईं, जिनसे शीघ्र पता चल गया कि उनका रचयिता साधारण ऊँचाई का व्यक्ति नहीं। वह समुद्र, वायु, स्वप्न दीपों और वाय-वीय भावों का कवि है। परन्तु उनमें भी मानवता के प्रति आग्रह छिपा है। ब्लोम की कविताओं की संख्या अत्यन्त न्यून है परन्तु उसकी एक-एक कविता सुथरी-निखरी सर्वथा दोषरहित है। उसकी कविताओं में करुणा और निराशा है। पराजय की अनुशोचना है। उसके चार संग्रह हैं—'हेट वेर्लंगेन' 'मेडिया वीटा' 'ड निडरलाग' 'सिन्टेल्स'। मानवीय कमजोरियों की ये कविताएँ प्रतिबिम्ब हैं। आइक लाइडन में वर्वी के स्थान पर अध्यापक नियुक्त हो चुका था। उसने नात्सी आक्रमण के कुछ ही पूर्व कुछ अत्यन्त विचार-प्रधान निबन्ध लिखे। उसकी कविताओं का संग्रह कर्मठ जीवन और हृदय तथा मेधा का एकत्र प्रकाश करता है। कविताएँ दार्शनिक काव्य-कला और बौद्धिक भावनाओं की प्रतीक हैं।

उत्कृष्ट गद्यकार जे० ग्रोन्लोह[४] और राइनीर वान गेन्डेरेन स्टोर्ट[५] हैं। पहले ने तीन उपन्यास लिखे जिनमें दो ऊँची कोटि के हैं। दूसरे ने भी 'क्लाइने ईनेज' नाम का एक सुन्दर उपन्यास लिखा, फिर वह प्रतीकों में फँस गया।

वर्तमानवादी और अभिव्यंजनावादी साहित्यकारों के शीघ्र पूर्व के कवियों में प्रमुख हैं—वेरूमियस बूनिंग[६] विक्टरवान व्रीसलेन्ड[७] हरमान वान डेन बर्ग[८] और एम० निझोफ[९]। इनमें निझोफ विशिष्ट है। उसने डच लिरिकों में एक नये स्वर, नयी भावना का योग दिया, आनन्दपरक वस्तुवाद का। उसके तरुण समसामयिकों पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा और आज भी वह नेदरलैंड्स के युद्धोत्तर साहित्य में एक हस्ती है।

दोनों महायुद्धों के बीच का युग ऋद्ध बौद्धिक जीवन का है। उसकी पहली दशाब्दी लिरिक कवि एच० मार्समान[१०] द्वारा अभिभूत रही और दूसरी समीक्षक मेनो तेर ब्राक[११] द्वारा। उसके बाद सुरियलिज्म (कल्पनात्मक स्वप्निल सत्य) का महत्व बढ़ा। यह

---

१. A. Roland Holst (जन्म १८८८); २. J. C. Bloem (जन्म १८८७); ३. P. N. Von Eyck (जन्म १८८७); ४. J. Gronloh; ५. Reinier Van Genderen Stort; ६. J. W. F. Werumeus Buning (जन्म १८९१); ७. Victor Van Vriesland (जन्म १८९२); ८. Herman Van den Bergh (जन्म १८९७); ९. M. Nijhoff (जन्म १८९९); १०. H. Mars-man (१८९९-१९४०); ११. Menno Ter Braak (१९०२-४०)

में डुबा दिया गया। तेरब्राक ने आत्महत्या कर ली। दु पेरों आक्रमण के परिणाम-स्वरूप ही मरा। ओटेन मार डाला गया। जॉन कैम्पर्ट[1], वाल्टर ब्रांडलाइट, विलेम आरोन्दियस और अनेक-अनेक शत्रु की गोली के शिकार हुए। नेदरलैंड्स के साहित्यकारों का यह संघर्ष, त्याग और बलिदान निस्संदेह उसके साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

उससे एक लाभ हुआ—साहित्यकार अपने दायित्व की ओर विशेषतः आकृष्ट तो हुए ही, काल्पनिक स्वप्रदेश से लौटकर उनकी प्रतिभा यथार्थ की ओर लगी। उपचेतन की व्याख्या करने वाला सुरियलिज्म वहाँ अब प्रायः समाप्त हो गया और उसके स्थान पर स्वस्थ मौर सद्यः का यथार्थ प्रतिष्ठित हो गया है। इस अग्निस्नान से काव्यक्षेत्र में एक नए प्रकार का आरम्भ हुआ—युद्ध काव्य का। और इसी बीच एक नए कवि बर्तुस आफ्येज[2] ने अपनी शक्ति और मेधा लिए साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया। नेदरलैंड्स का साहित्य समाजवादी यथार्थवाद की ओर इधर पर्याप्त अग्रसर हुआ है।

---

१. Jan Campert; २. Bertus Aafjes

१२. डेनी साहित्य

डेन्मार्क का प्राचीनतम साहित्य अभिलेखों के रूप में चट्टानों पर खुदा मिलता है। उसका अधिक भाग लोक-साहित्य है जो उस काल की पौराणिक ख्यातों, जन्तर-मन्तर, ऐतिहासिक घटनाओं और वीर-कृत्यों पर प्रकाश डालता है। कुछ चट्टानों पर तत्कालीन कानूनों का उल्लेख भी मिलता है।

डेन्मार्क का बहुत-सा साहित्य मध्य-युग में लैटिन में लिखा गया। लैटिन का सांस्कृतिक भाषा के रूप में वहाँ १२ वीं सदी में प्रवेश हुआ था। उस काल का सबसे बड़ा लैटिन-ग्रन्थ "'गेस्तादानीरुम' (डेनों के वीर कृत्य) १६ खण्डों में साक्से[१] ने लिखा था। उसका डैनी भाषा में शीघ्र अनुवाद हो गया।

सुधारवादी प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय के देश में प्रवेश से डेनी भाषा और साहित्य दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा। भाषा प्राचीन 'नौर्दिक' से बदल कर वर्तमान डैनी हो ही चली थी अब उसे लिखने में लैटिन अक्षरों का भी उपयोग होने लगा। स्वाभाविक ही उस काल की रचनाएँ धर्म-प्रधान हैं और अनेक लैटिन भाषा में ही लिखी गयी हैं। क्रिस्तियर्न पैडरसन[२] ने अधिकतर डेनी भाषा में ही अपने ग्रन्थ लिखे जिनमें 'डेन्मार्क का इतिहास' विशिष्ट था। बाइबिल के उसके आंशिक अनुवाद ने डेनी भाषा पर दूरगामी प्रभाव डाला। पैडरसन का समसामयिक ही वाइवोर्ग का प्रभावशाली विषप हान्स ताउसेन[३] था जिसने इब्रानी से "पेन्तातुख" का अनुवाद किया और काव्य रूपक की शैली में 'झूठ और सच' लिखा। पेडर प्लादे[४] नील्स हेमिंग्सन[५] और जैस्पर ब्रौकमाण्ड[६] ने भी अपनी कृतियों से उस काल का प्रारंभिक डेनी साहित्य भरा। नील्स असाधारण पण्डित था। वह डेन्मार्क का गुरु कहलाता है। 'जीवन की राह' उसकी सुन्दरतम कृति है जिसका डेनी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा। एन्डर्स सौरेन्सन वैडैल[७] जैस्पर का समकालीन और बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह उपदेशक, कवि, वैज्ञानिक पुराविद् और इतिहासकार था। उसने नौर्दिक लोक-गीतों का संग्रह किया। उसी ने साक्से के वृहद् ग्रन्थ "गेस्ता दानोरम" का डैनी में अनुवाद भी किया। डेन्मार्क के राजा क्रिश्चियन चतुर्थ की पुत्री लियोनोरा क्रिस्टाइन[८] का देशद्रोह के लिए

---

१. Sakse (११६०–१२२०); २. Christiern Pedersen (१४८०-१५५४); ३. Hans Tausen (१४९४-१५५४); ४. Peder Plade (Petrus Pladius) (१५०५–६०); ५. Niels Hemmingsen (१५१३–१६००); ६. Jesper Brochmand (१५८५–१६५२); ७. Anders Sorensen Vedel (१५४२–१६१६); ८. Leonora Christine (१६२१–९८)

पति के साथ ही १७वीं सदी में विचार हुआ था। फलतः वह २२ वर्ष तक कैद में रखी गयी थी। उसी बीच उसने यातना और धीरज पर अत्यन्त 'करुण-संस्मरण' लिखे।

१५६९ के बाद डेनी भाषा में प्रार्थना के लिए स्तोत्र लिखे जाने लगे। १७वीं सदी का प्रधान स्तोत्रकार टाम्स किंगो[1] था। उसके स्तोत्रों में सबसे प्रसिद्ध 'संसार के अहंकार से विदा' था। उसके अनेक स्तोत्र आज भी डेनमार्क के गिरजाघरों में गाये जाते हैं। वह डेनी भाषा का पहला लिरिक कवि था।

१७वीं सदी में ही धर्मेतर साहित्य का भी आरम्भ हो गया था। काउन्ट मोगेन्स स्कील[2] पहला डैनी नाटककार था। उसने मोलिए[3] से प्रेरणा ली और अपने नाटकों में दरबार के अभिजात-वर्गीय कुलों पर व्यंग्य किया। उस काल का सबसे बड़ा नाट्यकार होलबर्ग[4] था। उसकी कॉमेडियों ने जनता का मर्म छू लिया। लुडविग होल्बर्ग बर्गिन में पैदा हुआ था और कोपेनहागेन में पढ़ा-लिखा था। उसने यूरोप का भ्रमण भी खूब किया। पहले उसने यूरोप और डेनमार्क के इतिहास पर ग्रन्थ लिखे जिसके परिणामस्वरूप वह यूनीवर्सिटी का असाधारण प्रौफेसर नियुक्त हुआ। फिर उसने अपनी कॉमेडियों में व्यंग्यकार की असामान्य प्रतिभा विकसित की। उन दिनों डेनमार्क में होमर[5] और वर्जिल[6] की बड़ी धूम थी। होल्बर्ग ने अपना 'पेडरपार्स' लिखकर उन पर गहरे व्यंग्य किये। उसी की प्रेरणा और योग से १७२२ में 'राजकीय थियेटर' का कोपेनहागेन में आरम्भ हुआ। होमर और वर्जिल के साथ ही होलबर्ग ने उन सारी विदेशी प्रवृत्तियों और प्रभावों पर अपनी कॉमेडियों में मार्मिक व्यंग्य किये जो डेनी संस्कृति और साहित्य में घुन की तरह लगते आ रहे थे। होल्बर्ग की सुन्दरतम कॉमेडियाँ निम्नलिखित हैं:—'राजनीतिक भूत', 'प्रहसन', 'लड़खड़ानेवाला' 'जांद-फ्रांस' 'गर्ट वैस्टफालेर', 'जैकब वान थीबी', 'सूम'।

हान्स अडोल्फे ब्रोर्सन[7] किंगो के बाद दूसरा प्रसिद्ध स्तोत्रकार था। उसके स्तोत्रों में बड़ी सादगी और सौंदर्य था। वह व्यक्तिगत भावनाओं, अनुभूतियों तथा प्रतिक्रियाओं का उद्बोधक था। फिर भी उसके स्तोत्रों में करुणा, विषाद और निराशा का स्वर मुखरित हुआ। उसके जीवनकाल में 'धर्म की 'असाधारण निधि' (१७३९) में और मृत्यु के बाद 'हंस-गान' (१७६५) प्रकाशित हुए।

डेन्मार्क का एक किसान एम्ब्रोसियस स्टब[8] की कविताएँ बड़ी मधुर मानी जाती हैं। उसने भी अनेक स्तोत्र लिखे। जोहान हर्मान वैसेल[9] भी होल्बर्ग की ही भाँति विदेशी प्रभावों

---

१. Thomas Kingo (१६३४–१७०३); २. Count Mogens Skeel (मृत्यु—१६९४); ३. Moliere; ४. Holberg (Ludvig) (१६८४–१७५४); ५. Homer; ६. Virgil; ७. Hans Adolphe Brorson (१६९४–१७६४); ८. Ambrosius Stub (१७०५—५८); ९. Johan Herman Wessel (१७४२–८५)

का विरोधी था। उसने फ्रेंच और इटैलियन प्रभावों का प्रबल विरोध किया। १७७२ में उसने फ्रेंच ट्रैजेडी की "पैरोडी" में अपनी पहली और सर्वोत्कृष्ट रचना 'मौजें बिना मुहब्बत' प्रकाशित की। जोहान्स इवाल्ड[1] वैसेल का गहरा दोस्त था और दोनों का जीवन सर्वथा अभिन्न था। इवाल्ड के असफल प्रणय ने उसे अत्यन्त विषण्ण बना दिया जिससे उसकी कविता अत्यन्त मार्मिक हो उठी। परन्तु उसमें उसने दुःख की छाया न पड़ने दी। उसकी अनेक कविताएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। यद्यपि ख्याति उसे फ्रैडरिक पंचम की मृत्यु सम्बन्धी कविता से ही मिली। 'बाल्डर की मृत्यु' लिखकर उसने नाट्यकला की चोटी छू ली। उसकी माली हालत बड़ी खराब थी। प्रेम और निर्धनता का मारा वह अक्सर चुपचाप फिरा करता था। परन्तु उसकी सहृदयता बड़ी आकर्षक थी और उसने उसे काफी लोकप्रिय बनाया। बाद में भी उसने अनेक रचनाएँ कीं जिनमें सबसे सुन्दर 'मछुआ' थी।

उस काल के दूसरे साहित्यकार ओले जोहान साम्से[2] और टॉमस थारूप[3] थे। इनमें से पहले की प्रसिद्ध कृति 'दिवेकी' और दूसरे की 'कटिया मंडली' थी।

उस काल डेन्मार्क में दो आन्दोलन प्रकट हुए। एक तो फ्रेंच राज्य-क्रांति ने जीवन के आधार को हिला दिया, दूसरे जर्मन और अंग्रेजी रहन-सहन के विरुद्ध एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। दोनों आन्दोलनों का नेता पीटर-एन्ड्रीज हाइबर्ग[4] था। अपनी अनेक कृतियों द्वारा उसने देश की संस्थाओं पर उत्कट व्यंग्य किये। स्वतन्त्र कृतियों के अतिरिक्त हाइबर्ग ने राहबैक[5] द्वारा प्रकाशित 'दर्शक' को अपने व्यंग्यों का साधन बनाया। उसने उसमें लगातार अंग्रेज राजदूत पर प्रहार किये। उसकी राजनीतिक वामपक्षीय रचनाओं के कारण उसे स्वदेश छोड़ना पड़ा (१८००)। शेष जीवन उसने पेरिस में बिताया। राहबैक का उल्लेख ऊपर हो चुका है। क्नुड लिन राहबैक का उसके मौलिक प्रकाशनों के कारण इतना नहीं, जितना पुरानी लुप्त कृतियों के अनुसंधान और आलोचनात्मक प्रकाशन से डेनी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसका घर, जिसका नाम पर्वत का गृह पड़ गया था, डेनी चिन्तन साहित्य और कला के उदीयमान कृतिकारों का गढ़ बन गया। वहीं नये विचारों पर कथोपकथन होते। वहीं नयी प्रवृत्तियों को रूप मिलता। राहबैक 'दर्शक' नामक साहित्यिक पत्र का प्रकाशक और संपादक था और उसी में उसकी आलोचनाएँ रूप धारण करतीं थीं। उसके संस्मरण १८०० ई. पूर्व के डेनी साहित्य और संस्कृति पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं।

---

१. Johannes Ewald (१७४३–८१); २. Ole Johan Samsoe (१७५९–९६); ३. Thomas Thaarup (१७४८–१८२१); ४. Peter Andreas Heiberg (१७५८–१८४१); ५. Rahbeck (Knud Lyne Rahbeck) (१७६०–१८३०)

जेन्स बागेसन[1] स्वाभाविक कवि था और साथ ही नितान्त भावुक भी। उसके ओप्रा 'होल्गर दान्स्के' की जब कटु आलोचना हुई, तब वह खिन्न होकर देश से बाहर चला गया और जब लौटा तो उसने अपनी यात्राओं के सुन्दर संस्मरण प्रकाशित किये। उसने कवितायें भी काफी लिखीं।

जैकब पीटर मीन्स्टर[2] विशप था और उसने अपनी गंभीर रचनाओं द्वारा देश में बढ़ते बुद्धिवाद का विरोध किया। राजनैतिक और राष्ट्रीय तथा धार्मिक क्षेत्रों में उसकी रचनाओं का खासा प्रभाव पड़ा। हान्स क्रिश्चियन ऑर्स्टेड[3] एलेक्ट्रो-चुम्बक के अनुसंधान से विज्ञान के क्षेत्र में काफी प्रसिद्ध हो चुका है। उसकी वैज्ञानिक रचनाओं में साहित्यिक शैली का विकास हुआ। वह अपने देश, इतिहास और भाषा से बड़ा प्रेम करता था और उसने अनेक सांस्कृतिक विषयों पर भी लगातार व्याख्यान दिये। उसके भाई एण्डर्स सैण्डो ऑर्स्टेड[4] ने 'मेरा जीवन' और 'मेरा युग' लिख कर डेनी साहित्य का भंडार भरा।

एडम गोटलाव इहलेन्स्लीगर[5] डेनमार्क के साहित्य और संस्कृति का शेक्सपीयर है। नौ वर्ष की आयु में ही उसने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय 'प्रभात का स्तोत्र' लिख कर दिया। स्कूल में उसकी शिक्षा तो नहीं हुई, परन्तु निजी तौर पर उसने प्राचीन नॉर्दिक पुराणों तथा अन्य साहित्य का बड़ा गहरा और विस्तृत अध्ययन किया। वह भी राह-बैंक के मित्रों में से था और उसके घर में निरन्तर चलने वाले विचारों में बराबर भाग लेता था। उसकी पहली काव्य कृति 'सुनहरे सींग' थी जिसके क्रांतिकारी स्वर ने देश में राष्ट्रीयता की एक लहर बहा दी। फिर तो वह लगातार अपने नये दृष्टिकोण की कवितायें लिखता ही गया। 'सिंहवीर', 'हाकोन जार्ल की मृत्यु', 'सन्त जान की संध्या', 'लांग द्वीप की यात्रा', 'साल का गीत' आदि एक के बाद एक प्रकाशित हुए। 'अलाद्दीन' उसकी सर्वोत्तम कृति है। जिस पर उसकी आत्मकथा की छाप है। उसने अनेक देशों की यात्रा भी की। गेटे आदि से मिला। उस यात्रा के क्रम में उसकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुईं। स्वदेश लौटने पर उसकी बड़ी इज्जत हुई। पिछले काल की उसकी कृतियों में महान् 'हेल्गे (१८१४) और दीना' (१८४२) हैं। हेल्गे 'ट्रिलोजी' है और काफी ख्याति पा चुका है। ऐडम साहित्य की अनेक दिशाओं में स्तम्भाकार ऊँचा था।

स्टीन स्टीन्सन ब्लिखेर[6] डेनमार्क का पहला यथार्थवादी था। उसने अपने उपन्यासों में जटलेण्ड के लोक जीवन के विविध चित्र खींचे। उसके अनेक उपन्यासों में किसान जीवन

---

१. Jens Baggesen (१७६४-१८२६); २. Jakob Peter Mynster (१७७५-१८५४); ३. Hans Christian Orsted (१७७७-१८५१); ४. Anders Sando Orsted; ५. Adam Gottlob Oehlenslaeger (१७७९-१८५०); ६. Steen Steensen Blicher (१७८२-१८४८)

अंकित हुआ। उसमें उसने जटलैण्ड की किसानी बोली का भी जहाँ-तहाँ उपयोग किया। उसके कुछ उपन्यासों के आधार पर अतीत के चित्र भी हैं। स्टीन कवि भी था। उसके अनेक लिरिक जाने हुए हैं। वह "उत्तरी प्रकाश" नामक पत्र का संपादन भी करता था।

इहलेन्स्लीगर ने जिस राष्ट्रीय भावना से प्रेरित पुरानी ख्यातों का पुनरुद्धार किया था उसकी परिणति निकोलाज फ्रैडरिक सेवरिन ग्रुन्ट्विग[1] की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कृतियों में हुई। ग्रुन्ट्विग डेनमार्क का महान् लेखक हो गया है। उसने इतिहास के क्षेत्र में नितान्त नयी भावनाओं से प्रेरित अनेक ग्रंथ प्रकाशित किये जिनकी घटनाओं और नायकों के प्रति उसके दृष्टिकोण का रूढ़िवादी विद्वानों द्वारा प्रतिवाद भी हुआ। धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी उसने अनेक रचनायें कीं। साथ ही उसकी राष्ट्रीय कवितायें और गान भी लोगों की नजरों में ऊँचे-उठने लगे। उसका प्रभाव इतना बहुमुखी था कि उसने देश के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया। लोकवादी हाई स्कूल का देश में जो आन्दोलन चला, वह भी बहुत कुछ उसी के प्रभाव और सहयोग का परिणाम था। कहते हैं कि विद्वता के क्षेत्र में तो उसके ग्रंथों की उत्तमता प्रमाणित ही है, यदि उसके स्तोत्रों और धार्मिक गीतों का सही अनुवाद हो तो वे संसार की तद्विषयक सुन्दरतम रचनाओं में गिने जायेंगे।

ग्रुन्ट्विग के अनेक समकालीन, साहित्य और दूसरे क्षेत्रों में प्रसिद्ध हो चुके हैं। क्रिश्चियन मॉलबैख[2] ने पुरानी साहित्य-कृतियों को ढूँढ़ कर प्रकाशित किया। वह उच्चकोटि का आलोचक और कोषकार था। क्रिश्चियन ह्विग ब्रेदाल[3] ने गाँव में रह कर अपना प्रसिद्ध नाटकीय दृश्य छह भागों में लिखा। रास्मस क्रिश्चियन रास्क[4] संसार का सबसे बड़ा भाषा-शास्त्री माना जाता है। अपने अध्ययन द्वारा उसने डेनमार्क की भाषा और साहित्य का बड़ा उपकार किया। उसने आइसलैण्ड के 'हेम्सक्रिंगला' का अनुवाद किया और साथ ही उसके लिए एक व्याकरण और कोष भी रचा। लैटिन, ग्रीक, इब्रानी, और संस्कृत का वह पंडित था। साथ ही उसने नोर्दिक, रूनिक, स्लाव और सारी यूरोपीय भाषाओं पर अधिकार कर लिया था। अरबी और तिब्बती, चीनी और हिन्द चीनी तथा हिन्दुस्तान की अनेक भाषायें उसने भली प्रकार सीख ली थीं। प्रायः ५५ भाषायें वह मादरी जबान की तरह बोल सकता था। साथ ही उनके इतिहास और विकास का भी उसने अध्ययन किया। अनेक भाषाओं के व्याकरण भी उसने प्रस्तुत किये। उसके दृष्टिकोण ने भाषा विज्ञान के सिद्धांतों में आमूल

---

१. Nikolaj Frederik Severin Grundtvig (१७८३-१८७२); २. Christian Molbech (१७८३-१८५७); ३. Christian Hvid Bredahl (१७८४-१८६०); ४. Rasmus Kristian Rask (१७८७-१८३२)

क्रांति उपस्थित कर दी। वह स्वयं भाषा-विज्ञान का जनक था। संस्कृत और लिथुएनियन का अन्यतम साम्य प्रायः उसी ने पहले-पहल प्रमाणित किया।

बर्नहार्ड सेवेरिन इंगमान[१] रोमाण्टिक आन्दोलन का नेता और प्रकाण्ड साहित्यकार था। उसने १८११ में अपना 'एपिक' और 'लिरिक' कविता में प्रकाशित किया। उनका दूसरा भाग अगले वर्ष में निकला। परन्तु उसकी प्रतिभा का सिक्का उसकी विशिष्ट कृति 'कृष्णवीर' से जमा। उसके बाद उसने अनेक नाटक लिखे। 'मासिनिएलो', 'ब्लांका' 'पूरब की आवाज', 'अनोखा शिशु राइनाल्ड' 'सिंहवीर' 'तोलोसा का गडरिया' 'तासों की मुक्ति।'। फिर भी उसने लिरिकों का लिखना बन्द न किया। उसके राष्ट्रीय गीत और स्तोत्र अन्यन्त सुन्दर माने जाते हैं। इंगमान ने पुराने राष्ट्रीय नायकों की घटनाओं पर कुछ सुन्दर उपन्यास भी लिखे।

जोहान्स कार्स्टेन होख[३] वैज्ञानिक और कवि था। उसने कविता में 'हामाद्रियाद' और मेलोड्रामा 'बाराजत' लिखा। रोम में उसने 'टाइबेरियस' और 'ग्रेगोरियस' सप्तम, नामक नाटक लिखे। रोम से लौटने पर उसने कुछ और नाटक लिखे और कुछ उपन्यास भी। जोहान लुडविग हाइबर्ग[४] का प्रसिद्ध पिता पी. ए. हाइबर्ग[५] अपनी साहित्यिक व्यंग्य रचनाओं के कारण देश से निकाल दिया गया था। उसकी माँ भी साहित्यकार थी। जोहान्स स्वाभाविक ही साहित्यिक दाय का अधिकारी हुआ और राहबैक के साहित्यिक और सांस्कृतिक परिवार में उसकी खूब रसाई भी थी। उसे अपने नाना काउण्ट गिलेन बोर्ग[६] के घर विदेशी राजनीतिज्ञों से मिलने का भी संयोग मिला। इससे उसे स्वतंत्र व्यक्तित्त्व मिला। उसकी यात्राओं ने भी उसे अनुभूति प्रदान की। उसकी प्रारम्भिक कृतियाँ 'मार्योनेत थियेटर' आदि थीं। जर्मनी में उसने हीगेल के दर्शन का अध्ययन किया जिससे उसने स्वदेश लौट कर 'मानव स्वाधीनता' पर अपने विचार प्रकट किये। उसकी अनेक रचनाओं में प्रधान 'सोलोमन और जोगैन', 'अभिन्न', 'अप्रैल का मूर्ख' आदि हैं। क्रिश्चियन चतुर्थ संबंधी राष्ट्रीय नाटक 'एल्फ हिल' (१८२८) उसकी सर्वोत्तम रचना है। अगले बीस वर्ष वह डेनी साहित्य का एकमात्र नेता रहा। उसने अपनी माँ थामसिन क्रिस्टाइन गिलेन बोर्ग[७] के भी अनेक उपन्यास प्रकाशित किये जिनमें 'रोजमर्रा की कहानियां' प्रसिद्ध हैं। १९वीं सदी के अन्य कवियों में पौल मार्टिन मोलर[८] एस. एस. ब्लिखर[९] और क्रिश्चियन विन्थर[१०]

---

१. Bernhard Severin Ingemann (१७८९-१८६२); २. 'Black Knights'; ३. Johannes Carsten Hauch (१७९०-१८७२); ४. Johan Ludvig Heiberg (१७९१-१८६०); ५. P. A. Heiberg; ६. Count Gyllenborg; ७. Thomasine Christine Gyllenborg (१७७३-१८५६); ८. Poul Martin Moller (१७९४-१८३८); ९. S. S. Blicher; १०. Christian Winther (१७९६-१८७६)

थे। ब्लिखर जटलैण्ड का कवि था और विन्थर जीलैण्ड का। विन्थर का प्रसिद्ध कविता संग्रह 'काष्ठ तक्षण' प्रसिद्ध कृति है। उसने उसके अतिरिक्त उत्तरी जीलैण्ड के प्राकृतिक सौंदर्य को भी अनेक कविताओं और गीतों में प्रतिबिम्बित किया। उसकी सर्वोत्तम रचना 'मृग का पलायन' है।

हाइबर्ग का प्रधान शिष्य हेन्रिक हर्त्स[1] था जिसने रोमांटिक प्रवृत्तियों से यथार्थवाद की ओर प्रगति पूरी कर दी। उसे उसके 'प्रेत पत्र' से ख्याति मिली। उसने अनेक नाटक लिखे, 'स्वेन्द्र डीरिंग का घर', 'राजा रेनी की पुत्री', 'निनोन' 'सेविंग्स बैंक', 'कोपेनहागेन की यादगार', और 'चंगा होने का तरीका'। उसके लिरिकों में सबसे सुन्दर 'तट का युद्ध' और 'हिरशोल्म' कविताएँ हैं। कार्ल बर्नहार्ड[2] का जन्म नाम एन्डर्स निकोलाई द सेन्त आबेन था। उसकी कृतियाँ डेनमार्क के लोक साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनमें प्रसिद्ध निम्नलिखित कहानियाँ हैं—'कमिश्नर', 'बच्चों का नृत्य', 'भाग्य का प्रिय', 'संस्मरण' आदि। एमिल अरस्ट्रुप[3] और लुडविग बोडखर[4] ने भी सुन्दर कवितायें प्रकाशित कीं। पहला पेशे से डाक्टर था, दूसरे ने इटली से अपनी प्रेरणा पाई।

फ्रेडरिक पालुदान-मुलर[5] को ख्याति अपनी कविता 'नर्तकी' से मिली। उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'एडेमहोमो' है जिसमें समकालीन मानव पर व्यंग्य है। उसने कुछ धार्मिक कवितायें भी लिखीं। उसकी कुछ कविताओं के विषय ग्रीक कथानक हैं। उसकी कृति 'कलानस' भारतीय आधार पर आधारित है। उसने कुछ उपन्यास भी लिखे। उसका एक उपन्यास 'यौवन का स्रोत' है।

हान्स क्रिस्टियन ऐन्डर्सन[6] का जीवन जादू की कहानी है। ओडेन्स से वह कोपेनहागेन पहुँचा। कालिन[7] की सहायता से उसने अपनी पहली कविता "मरणासन्न शिशु" प्रकाशित की। इसके बाद ही उसकी पहली पुस्तक 'पैदल यात्रा' (१८२९) निकली। उसे आरम्भ में भी असफल नहीं कहा जा सकता किन्तु उसकी कृतियों की बड़ी खरी और हृदयहीन आलोचना हुई। वह इटली चला गया और जब लौटा तो देखा कि लोगों की सहानुभूति उसकी ओर हो गई है। उसके 'गायक' का परिणामतः डेनमार्क और जर्मनी दोनों देशों में बड़ा स्वागत हुआ। उसी साल उसने बच्चों लिए 'परियों की कहानियां' लिखीं और सालों साल क्रिसमस के अवसर पर लिखता गया।

---

१. Henrik Hertz (१७९७-१८७०); २. Carl Bernhard (Anders Nicolai de Saint-Aubain (१७९८-१८६५); ३. Emil Aarestrup (१८००-५६); ४. Ludvig Boedtcher (१७९३-१८७४); ५. Frederik Paludan-Muller (१८०९-७६); ६. Hans Christian Andersen (१८०५-७५); ७. Collin (Well known Philanthropist)

एन्डर्सन ने अनेक उपन्यास भी लिखे। परन्तु विशेष सफल उसकी कॉमेडियाँ हुईं। 'बालू का आदमी', 'मोती और सोने से भी बढ़ कर' आदि। होल्बर्ग ने 'सोने का स्थान' लिखा। परियों की कहानियों से मिलती-जुलती ही उसकी 'बिना चित्रों की सचित्र पुस्तक' है। उसने अनेक गीत भी लिखे जो सारे डेनमार्क में आज भी गाये जाते हैं। उसकी 'लोरी' तो उस देश के साहित्य में अमर हो गयी है। उसने अनेक यात्राएँ कीं और उन यात्राओं के सुन्दर वृत्तांत प्रकाशित किये। ऐन्डर्सन ने सारे यूरोप के रंगमंच पर प्रभाव डाला और उसकी रचनायें शीघ्र ही डेनमार्क की सीमाएँ पार कर गयीं। उसका स्थान संसार के सुन्दरतम साहित्यकारों में है।

पार्मो काल प्लूग[1] असाधारण वाग्मी और राजनीतिक था। उसने विद्यार्थियों के लिए अनेक गीत लिखे जिनका संग्रह प्रकाशित हुआ। अपने सॉनेटों में उसने पारिवारिक चित्र खींचे। जर्मन युद्ध ने उसे दुःखी कर दिया। उसकी कविताएं समसामयिक घटनाओं की ही अधिकतर प्रतिबिम्ब हैं। उसी काल का कवि जेन्स क्रिस्टियन हास्ट्रुप[2] भी था जिसके गीत पर्याप्त लोकप्रिय हुए। उसने विद्यार्थियों के लिए कुछ कॉमेडियाँ भी लिखीं। माइर आरों गोल्डश्मिट[3] रूढ़ियों का स्वाभाविक शत्रु था। आरम्भ में ही उसने सरकार और रूढ़िवादी राष्ट्रीय संस्थाओं की सख्त आलोचना की। उसने अनेक उपन्यास लिखे। उनकी शैली भाषा की दृष्टि से अप्रतिम है। उनमें कुछ हैं—'यहूदी', 'वारिस', 'गृहहीन', 'काग', 'चाचा के घर की कहानियाँ', 'कहानियाँ और यथार्थ'।

क्रिश्चियन रिचर्ड[4] अत्यन्त मधुर लिरिककार था। 'घोषणाएँ' उसने अपने विद्यार्थी जीवन में ही लिखा था। शीघ्र उसने "संक्षिप्त कविताएं" प्रकाशित कीं और तदनन्तर अनेक कविता संग्रह। उनमें से कुछ 'कोलंबस', 'बोनेवाला', 'नजरथ' थे। उसकी विशिष्ट कृतियों में एक ओप्रा 'द्रोत और मास्कें' और दूसरी भौगोलिक कविता "हमारा देश" है। उसने अनेक सुन्दर गीत और स्तोत्र भी लिखे। हान्स विलहेल्म कालून्ड[5] ने भी कुछ कवितायें और एक 'एपिक' लिखा। उसे ख्याति उसके 'बसन्त और पतझड़' से मिली। उसका नाटक "फुल्विया" बड़ी सफलतापूर्वक खेला गया। आदर्शवाद और यथार्थवाद की कशमकश में वह यथार्थवाद के पक्ष में था और अपनी सुन्दरतम कविताएँ उसने उसी पक्ष में लिखीं।

क्रिस्टियन क्नुड फ्रेडरिक मोल्बेक[6] ने अनेक कविताएँ लिखीं पर सफलता नहीं मिली।

---

१. Parmo Carl Ploug (१८१३-९४); २. Jans Christian Hostrup (१८१८-९२); ३. Meir Aaron Goldschmidt (१८१९-८७); ४. Christian Richardt (१८३१-९२); ५. Hans Vilhelm Kaalund (१८१८-८५); ६. Christian Knud Frederik Molbech (१८२१-८८)

तब उसने अपना नाटक 'अम्ब्रोसियस' लिखा। वह उसी नाम के डेनी कवि के जीवन के आधार पर था। उसका वह नाटक बड़ा सफल हुआ। हान्स पीटर होल्स[१] ने कुछ अत्यन्त मधुर कविताएँ छोड़ी हैं। उसने कुछ नाटक भी लिखे, पर वे असफल रहे। जोर्गेन विलहेल्म ओटो बर्गसी[२] प्राणि-विज्ञान का पंडित था परन्तु आँखें खराब हो जाने के कारण वह साहित्य में आया। उसन कुछ उपन्यास और लिरिक लिखे। कई खंडों में प्रकाशित उसके संस्मरण सुन्दर हैं।

जोहान क्रिस्टियन ब्रास्बोल[३] ने अपनी सारी कृतियाँ कारित एटलर[४] नाम से प्रकाशित कीं। उसने बड़े लोकप्रिय उपन्यास लिखे। उसने ऐतिहासिक उपन्यासों में विशेष सफलता पाई। उसकी वर्णन शक्ति बड़ी ही प्रभावोत्पादक थी। उसके कुछ उपन्यास निम्न-लिखित हैं—'कबीले का सरदार', 'क्वीन्स गार्ड का नायक', 'गढ़ों की कहानियाँ', 'काले का कैदी'। इनके अतिरिक्त उसने कुछ कॉमेडी नाटक भी लिखे। हरमान फ्रेडरिक इवाल्ड[५] अपने पहले ही उपन्यास से विख्यात हो गया। उसने भी अधिकतर एतिहासिक उपन्यास लिखे। उनमें मुख्य ये थे —'वाल्डेमार का हमला', 'क्राम्बोर्ग में स्वीड', 'क्रुड गिल्डेन्स्ट्यर्न,' 'नील्स ब्राहे।'

क्रिस्टियन लुडविग एडवर्ड लेम्बके[६] लिरिककार था और उसने कुछ सुन्दर राष्ट्रीय गीत लिखे। परन्तु वह प्रसिद्ध शेक्सपियर के नाटकों के अपने अनुवाद से हुआ। एरिक बोग[७] नाटककार था। १८५० में उसने अपना पहला नाटक 'नये दिन की रात' प्रकाशित किया। 'जनता का पत्र' में उसने सशक्त सम्पादकीय लिखा जिनका प्रकाशन 'यह और वह' नाम से हुआ। उसके नाटकों में प्रसिद्ध 'लैन्टेन पार्टी' है। उस ने अनेक हास्य कहानियाँ लिखीं, जिनमें 'बेर्तेल और गधा' बड़ी सुन्दर है। उसने उपन्यास और संस्मरण भी लिखे।

हान्स इगेड शैक[८] राष्ट्रवादी था और डेन्मार्क के राजनीतिक संघर्ष में भाग ले चुका था। बहुत दिनों तक उसके विचार कल्पना और यथार्थ के बीच मँडराते रहे। अन्त में उसने यथार्थ को स्वीकार किया और अध्यात्म का खोखलापन प्रमाणित करने के लिए अपना उपन्यास 'काल्पनिक' लिखा। यह डेन साहित्य का संभवतः पहला यथार्थवादी उपन्यास था। निकोलाज के नाम से कार्ल हेन्रिक शार्लिंग[९] ने भी हास्यात्मक उपन्यास लिखे।

---

१. Hans Peter Holst (१८११-९३); २. Jorgen Vilhelm Otto Bergsoe (१८३५-१९११); ३. Johan Christian Brosboll (१८१६-१९००); ४. Carit Etlar; ५. Herman Frederik Ewald (१८२१-१९०८); ६. Christian Ludvig Edward Lembeke (१८१५-९७); ७. Erik Bogh (१८२२-९९); ८. Hans Egede Schack (१८२०-५९); ९. Carl Henrik Scharling (जन्म १८३६)

विलहेल्म टोप्सो[1] पत्र सम्पादक था। उसकी कलम में बड़ा तीखापन था। वह असाधारण शैलीकार माना जाता है। उस देश के साहित्य में वही यथार्थवाद का प्रचारक हुआ। उसकी कहानियों के पाँच संग्रह उसकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए।

कुछ काल से डैनी साहित्य में शिथिलता आ गई थी। जार्ज ब्रेंडिज[2] ने उसे पुनरुज्जीवित करने का प्रण कर लिया। भावों की स्वतंत्रता की प्रेरणा उसे दार्शनिक ब्रोखनर[3] से मिली थी। डेन्मार्क में उस काल हीगल आदि दार्शनिकों के दृष्टिकोण के अनुकूल और प्रतिकूल अनेक विचारधाराएँ एक दूसरे के विरुद्ध टकरा रही थीं। ब्रेंडिज को भी पहले उस कशमकश में पड़ना पड़ा। अन्त में उसने केवल तर्क और बुद्धि को स्वीकार किया। हाइबर्ग, पालुदान-मीलर, इबसन सभी पर उसने आघात किया। इन विचारों के परिणामस्वरूप उसकी दो प्रखर कृतियों का प्रकाशन हुआ—'रसों का अध्ययन', 'आलोचनाएं और चित्र' (१८७०)। उसने अपने यूरोपीय भ्रमण में जर्मनी के रोमाण्टिक आन्दोलन, फ्रांस की प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति और इंग्लैण्ड के प्रकृतिवाद का सैद्धांतिक विस्तृत विवेचन अपने विशद ग्रंथ 'उन्नीसवीं सदी की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्तियों' में किया। उसके आलोचना चित्र 'सोरेन की एर्कणर्द' डेन्मार्क के कवि, इसाइया तेग्नर, डिजरेली, लासाल आदि पर प्रस्तुत हुए। अनेक साहित्यिक विषयों पर दिये उसके व्याख्यानों के संग्रह पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। ब्रेंडिज ने तत्काल अपने साहित्य और समाज पर अपने विचारों का प्रभाव डाला और अनेक युवा चिंतक और साहित्यकार और आलोचक उसके इर्द गिर्द जमा हो गए। उसने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। परन्तु उसका कार्य उसके अनुय यियों की शक्ति के परे था।

होल्गर हेन्रिक हरहोल्ट द्राकमान[4] चित्रकला के क्षेत्र से साहित्य में आया। उसने पहले अपनी कवितायें प्रकाशित कीं। जिनकी ब्रेंडिज ने प्रशंसा की। उसने साहित्य के सभी अंगों का अपनी प्रतिभा से गठन किया। उसकी कृतियों में प्रधान थे—'तानहाउसेर' (उपन्यास), 'सीमा के दक्षिण से' (स्कैच), और 'सागर के गीत'। उसकी रचनाओं का विस्तार बहुत बड़ा है। उसके नाटकों में मुख्य 'एक समय' है। भाषा पर उसका असाधारण अधिकार था। वह उन्नीसवीं सदी के पिछले काल के प्रधान कवियों में है।

लियोपोल्ड बुडे[5] जनता का साहित्यकार था। उसने जन हिताय लिखा। जन विषयक लिखा। 'क्रिस्मस की शाम के चित्र' और 'तरुण काल से' की शैली बड़ी सुघड़ है। जकारिया निलसन[6] ने भी अपनी स्वतंत्र शैली विकसित कर ली थी। वह मुदर्रिस था

---

१. Vilhelm Topsoe (१८४०-८१); २. Georg (Morris Cohen Brandes (१८४२-१९२७); ३. Brochner; ४. Holger Henrik Herholt Drachmann (१८४६-१९०८); ५. Leopold Budde (१८३६-१९०२); ६. Zakarias Nielsen (जन्म १८४४)

और उसकी कविताएँ आज भी स्कूलों में पढ़ी जाती हैं। 'मिलन' उसका ऐसा ही लिरिक है। उसकी कविताएँ बड़ी ही सरस होती थीं। वह स्वयं बड़ा सहृदय था।

रोजेन्बर्ग[1] मुख्यतः साहित्यिक और नाटकीय आलोचक था। अपने लेखों और 'नई सदी' द्वारा उसने ब्रेंडिज और उसके क्रांतिकारी विचारों का विरोध किया। 'नई सदी' नाट्य कृति थी। उसके अन्य नाटक थे—'हनिंग तोन्डोर्फ, 'समुद्री नगर' आदि। उसने दर्शन और जीवन चरित संबंधी पुस्तकें भी लिखीं। वह कोपेनहागेन के राजकीय थियेटर का डायरेक्टर था। उस अधिकार से और नाट्यालोचक के नाते उसने डेन्मार्क के नाटकों और नाट्यकारों पर पर्याप्त अनुशासन रखा। अल्फ्रेड इप्सेन[2] पहले ब्रेंडिज के शिष्यों में था फिर उनसे अलग होकर उसने अपने गुरु पर ही प्रहार किया। वह कवि था और उसका 'हरे पथ के बराबर' कविताओं का संग्रह था। उसका दूसरा संग्रह 'सॉनेट और गीत' था। उसका नाटक 'मैफिस्टोफेलिज' नितान्त गम्भीर कृति है। 'कल्पना देश की कहानियां' भी उसकी बड़ी उत्कृष्ट रचना है। और यात्रा वृत्तांत के क्षेत्र में उसका "हालैण्ड" अनुपम है।

जाकःसन[3] वनस्पति-शास्त्र का विद्वान था और डारविन का शिष्य था। उसने उसके ग्रंथों का डेनी भाषा में अनुवाद किया। वह भाषा का जादूगर था और ब्रेंडिज के अनुयायियों में था। उसके उपन्यासों—'मारी ग्रुबे' और 'नील्स लिहने' में उसकी भाषा खुल पड़ी है। उसने कहानियाँ और सुन्दर कविताएँ भी लिखीं। कार्ल ग्येलेरुप[4] भी ब्रेंडिज के शिष्यों में था। उसकी पहली कृति 'आदर्शवादी' थी। डार्विन की मृत्यु पर उसने एक अतीव सुन्दर कविता (मरसिया) लिखी। ग्रीस से लौट कर वह ब्रेंडिज के दल का विरोधी हो गया। धीरे-धीरे वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुआ और उसकी पिछली रचनाओं पर इस नई चेतना का खासा असर पड़ा। उसकी सुन्दरतम कृतियों के विषय नोर्दिक कथानकों से चुने गये थे। जैसे 'ब्रिनहिल्ड' 'हागबार्ट' और 'सिगने वुथहोर्न'। 'वुथहोर्न' उसका उत्कृष्ट नाटक था।

हेन्रिकपोन्टोपिदान[5] सर्वथा डेनी है। उसकी प्रधान कृतियों के नाम हैं—'संस्मरण' 'पृथ्वी', 'प्रतिश्रुत देश', 'कयामत का दिन', 'भाग्यवान पर'। सोफस शैन्डोर्फ[6] ब्रेंडिज के शिष्यों में था और खरा यथार्थवादी था। उसने उपन्यास और कहानियाँ लिखीं। सोफस बॉदित्स[7] ने भी सुन्दर कहानियाँ लिखीं। हरमान जोखिम बांग[8] कोपेनहागेन के

---

१. P.A. Rosenberg (जन्म १८५८); २. Alfred Ipsen (जन्म १८५२); ३. I. P. Jacobsen (१८४७-८५); ४. Karl A. Gjellerup (जन्म १८५७); ५. Henrik Pontoppidan (जन्म १८५७); ६. Sophus Schandorph (१८३६-१९०१); ७. Sophus Bauditz (जन्म १८५०); ८. Herman Joachim Bang (जन्म १८५७)

अनेक दैनिक पत्रों में लिखता था जिससे उसकी शैली मँज गई थी। उसके पहले नाटक 'निराश पीढ़ियां' ने लोगों में उथल-पुथल मचा दी। उसने अनेक कहानियाँ और उपन्यास लिखे। उनमें प्रधान हैं—'एकाकी निवासी', 'जुए के नीचे', वह रोजमर्रा का जीवन बिना छिपाये खोल कर रख देता था जिससे समाज में हलचल मच जाती थी। उसने वह देखा जो किसी ने न देखा था। उसने वह कहा जो किसी ने नहीं कहा था उस पर बाल्जाक[1] जोला[2] और ब्रेंडिज[3] के प्रकृतिवाद का गहरा प्रभाव पड़ा था।

कार्ल ईवाल्ड[4] ने अनेक कहानियाँ, यात्रा-वृत्तान्त आदि लिखे। उसकी सुन्दरतम कृतियाँ 'परियों की कहानियाँ' हैं। कार्ल-लार्सेन[5] की आरम्भिक कृतियाँ दो नाटक—'इज्जत' और 'नारियाँ' थीं। फिर उसने कहानियाँ और ख्यातें लिखीं। उसने विवाह संबंधी कहानियाँ भी लिखीं। वह भाषा और मनोवैज्ञानिक चित्रण का माहिर था। गुस्ताव जोहान्स वीड[6] की पहली ही पुस्तक 'छाया चित्र' काफी सफल हुई। फिर तो उसने अनेक कहानियाँ, उपन्यास और नाटक लिखे। उसका उत्कृष्ट उपन्यास 'बालवत् आत्मायें' हैं। और सफल नाटक 'पीढ़ी' और 'जीवन की शठता'। उसने अभिजातकुलियों, पादरियों, मध्यवर्गियों और किसानों पर चार 'व्यंग्य' लिखे। वीड हास्यकार है, समर्थ और प्रखर व्यंग्यकार।

जोहान्स जोर्गेन्सन[7] ने 'कविताएँ' प्रकाशित कर उनके अभिराम सौंदर्य द्वारा लोगों का ध्यान तत्काल आकृष्ट किया। उसने अपनी कहानियाँ 'ग्रीष्म' और 'जीवन तरु' में फ्रेंच प्रतीकवाद की शैली प्रस्तुत की। प्रतीकवाद की परिणति उसके कविता संग्रह 'भाव' और पत्रिका "स्तम्भ" में हुई। बाद में वह रोमन कैथोलिक हो गया और उस चेतना से अनुप्राणित कविताएँ लिखने लगा। 'जीवन का झूठ-सच', 'आखिरी दिन' 'कविताएँ', 'आसमान का सूत' 'कवि' आदि उसी दिशा में रचे गये। जेपे आकजीर[8] जटलैण्ड के विशिष्ट कवियों में था। उसने लिखा भी अनेक बार जूटों की ही भाषा में। वह ब्लिखर और राबर्ट बर्न्स से प्रभावित है। उसकी कविताएँ प्रकृतिपरक हैं। उसने कुछ उपन्यास भी लिखे।

जोहान्स क्नुडसेन[9] ने अधिकतर उपन्यास लिखे। उसके उपन्यास 'बूढ़ा पादरी' को समाज विरोधी कह कर कटु आलोचना की गई। इससे उसने और प्रौढ़ कृतियाँ प्रस्तुत कीं। 'बोना', 'काटना', 'मन', 'उरूप' 'शिक्षक'। वह डेनी साहित्य में अपना स्थान रखता है। उसने समाज की रूढ़ियों और परम्परागत आचारों का अपनी कृतियों में भंडाफोड़

---

१. Balzac; २. Zola; ३. Brandes; ४. Carl Ewald (१८५६-१९०८); ५. Karl Larsen (जन्म १८६०); ६. Gustav Johannes Wied (जन्म १८५८); ७. Johannes Jorgensen (जन्म १८६६); ८. Jeppe Aakjaer (जन्म १८६६); ९. Johannes Knudsen (जन्म १८५८)

किया। उसकी भाषा सुन्दर और शैली शक्तिम है। जोहान्स वी. जेन्सेन[1] साहित्य के क्षेत्र में अपना उपन्यास 'डेन' लेकर उतरा। परन्तु आलोचकों का ध्यान आकृष्ट न कर सका। फिर उसने अन्य उपन्यास लिखे—'आइनर एल्कजीर', 'हिमरलैण्ड के लोग', फिर ऐतिहासिक उपन्यास—तीन एक ही जिल्द में—'बादशाह का पतन', (क्रिश्चियन द्वितीय संबंधी)। फिर उसने हिमरलैण्ड की 'नई कहानियां', 'पहिया' आदि लिखे। उसके 'अमरीकी महाद्वीप' और उसका 'उपनिवेशीकरण' पर उसे नोबुल पुरस्कार मिला। डेनी साहित्य के अपने युग का वह विशिष्ट प्रतिनिधि माना जाता है।

हान्स लासेन मार्तेन्सन[2] न केवल धर्म के क्षेत्र में प्रत्युत विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में भी असामान्य कोटि का रचयिता हो गया है। वह पहले हीगेल आदि जर्मन दार्शनिकों के प्रभाव में आया। उसका नाम सुन कर यूरोप के दूर देशों से विद्यार्थी कोपेनहागेन आने लगे। जहाँ मार्तेन्सन धर्म का दर्शन पढ़ाता था। उसका ग्रन्थ 'एथिक्स' उसके पाण्डित्य का प्रमाण है। उसकी अन्तिम कृति उसके संस्मरण 'मेरे जीवन से' थी। विल्हेल्म बैक[3] ने भी अपने संस्मरण लिखे। उसके उपदेश और प्रवचन उसके काल के धार्मिक आन्दोलन के प्राण बन गये। वे अत्यन्त लोकप्रिय हुए। ऑल्फर्ड रेकार्ड[4] के प्रकाशन भी उसी दिशा में हुए। उसके राष्ट्रीय और आध्यात्मिक गीत कविता की दृष्टि से बड़े मधुर और प्रभावोत्पादक हैं। उसकी विशिष्ट कृति 'शंका और श्रद्धा' है।

बीसवीं सदी में मार्क्सवादी प्रेरणा से प्रभावित अनेक साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा से डेनी साहित्य का नया विकास किया है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:—मार्टिन एण्डर्सन निकसो, हान्स कर्क, हान्स शेरफिग, ओटो गेल्स्टेड, हिल्मर वुल्फ विलियम हाइनेसेन। ये सभी पिछले युद्ध काल में हिटलर के बन्दी रहे हैं। पर नात्सी इनका स्पिरिट तोड़ न सके। इन्होंने निरन्तर यातनाएँ सहीं परन्तु उनकी आवाज उनके ऊपर उठ उठ कर आक्रान्ताओं को धिक्कारती ही रही। ये विदेशी सत्ता से अपनी आजादी के लिए संघर्ष करते रहे। इनमें सबसे महान ८४ वर्ष का निकसो है। शांति के पक्ष में उसकी आवाज यूरोप में सबसे ऊँची उभर रही है। वह विश्वशांति काउन्सिल का सदस्य है, स्तालिन पुरस्कार की 'जूरी' का भी सदस्य है, निकसो डेनी साहित्य का आज प्रधान व्यक्ति है। नात्सी शासन में उसे भी 'कान्सेन्ट्रेशन कैम्प' में रहना पड़ा था। वह उस देश का आज सर्वप्रिय साहित्यकार है। वह मजूरवर्ग से उठा है, उसने कारखानों में काम किया है। उसका वृहद् उपन्यास 'जीवन के गान' अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। वह लिखता है कि 'मेरे उप-

---

१. Johannes V. Jensen (जन्म १८७३); २. Hans Lassen Martensen (१८०८-८४); ३. Vilhelm Beck (१८२९-१९०१); ४. Olfert Ricard (जन्म १८७२)

न्यास का उद्देश्य, आजादी, शांति और जनतंत्र के लिए संघर्ष करने वाली जनता का चित्रण करना है।"

हान्स कर्क ने अपना बड़ा उपन्यास 'गुलाम' द्वितीय महा समर के पहले लिखा था। उसे नात्सियों ने पाण्डु लिपि की अवस्था में पाकर जला डाला। कर्क 'कन्सेन्ट्रेशन कैम्प' में डाल दिया गया। उसने वह उपन्यास फिर लिख डाला। फिर हस्तलिपि नात्सियों ने नष्ट कर दी। उसने उसे फिर लिखा। वह उस साहित्य का प्रधान यथार्थवादी है। वह अपनी कैद से निकल भागा था। हान्स शेरफिग ने अपना उपन्यास 'अफसर जो अन्तर्ध्यान हो गया' लिख कर निम्न मध्य वर्ग पर गहरा व्यंग्य किया। उसका दूसरा उपन्यास 'आदर्शवादी' आदर्शवादियों का कच्चा चिट्ठा उपस्थित करता है। ऑटो गेल्स्टेड बड़ा समर्थ कवि है। उसकी अत्यन्त शक्तिम कविताओं का संग्रह 'उठो दीप जला दो' है। उसने अपनी कविता 'हमारी चेतना का चोर नात्सीवाद' लिख कर अनेक डेनी फासिस्टों का चोर बाहर निकाल कर रख दिया। हिल्मर वुल्फ सुन्दर प्रगतिशील कहानियाँ लिखता है। उसकी एक कहानी 'तुम भूले नहीं जा सकते' अत्यन्त मार्मिक है। विलियम हाइनेसेन उपन्यासकार है। उसका उपन्यास "काली कढ़ाई" मध्यवर्गीय समाज के आचारों पर उत्कट व्यंग्य है। वह युद्ध विरोधी है। उसका यह उपन्यास भी युद्धवाद के विरुद्ध अपना नारा बुलन्द करता है।

उपरोक्त दो पैरों में उल्लिखित साहित्यकार सभी जीवित हैं। सभी प्रगतिशील। इनसे डेनी साहित्य का क्षेत्र प्रकाशित है।

१३. तुर्की-साहित्य

भाषा की दृष्टि से तुर्की अल्ताई विभाग का अंग है और उसकी गणना मंगोली तथा तुंगुसी जबानों के साथ होती है। तुर्की का उल्लेख पाँचवीं सदी के चीनी साहित्य में मिलता है। तब से तुर्की भाषा की अनेक बोलियाँ मध्य एशिया और बाल्कन के देशों में बोली जाती रही हैं।

प्राचीनतम तुर्की-साहित्य का उदाहरण मध्य एशिया के कुछ अभिलेखों से मिलता है। उनमें से एक संस्मराणात्मक है जो खान बिल्गा[१] के भाई शाहजादा कुल तेगिन[२] की यादगार में ७३२ ई. में चीनी सम्राट द्वारा खुदवाया गया था। मध्य एशिया के तुर्की साहित्य की एक मंजिल महमूद काशगरी[२] के कोष 'दीवाने लुगति-त-तुर्क' (१०७३) है। उस कोष में शब्दों के अर्थ के साथ ही अरबी में उनकी परिभाषा और उनके प्रयोग के उदाहरण दिये गये हैं।

उस काल की साहित्यिक भाषा 'उइगुर' तुर्कों की भाषा है। और उसका विशिष्ट उदाहरण यूसुफ खास हाजिब[३] का ग्रन्थ 'कुदात्कू बिलिक' है। ग्रन्थ १०७० में लिखा गया था और ६५०० पंक्तियों के काव्य रूपक में आचार और राजनीति का विवेचन करता है। उस पर फारसी का प्रभाव स्पष्ट है। उइगुर साहित्य का दूसरा उदाहरण 'बहतियार-नामा' (बख्तियार चरित) है। उसमें १० वजीरों की कहानियाँ संगृहीत हैं जिनका उद्गम हिन्दुस्तान है। 'मीराजनामा' उसी प्रकार की एक अन्य कृति है, जिसमें मुहम्मद की सातवें बहिश्त की यात्रा का वर्णन हुआ है।

तुर्की की चगतई बोली में 'बाबरनामा' और 'शेजेरेई-तुर्क' जाने हुए ग्रन्थ हैं। इनमें पहला तो मुगल विजेता बाबर के अपने संस्मरण प्रस्तुत करता है और दूसरा अबुल गाजी बहादुर खां[४] का लिखा तुर्कों का इतिहास है।

पश्चिमी तुर्की साहित्य 'उस्मानली' अथवा 'उत्तमान' तुर्कों से संबन्ध रखता है। उसका पहला युग १३०० ई. से १४५० ई. तक है। इस बीच उस्मानली राष्ट्र की शक्ति बढ़ी और प्रतिष्ठित हुई थी। सेल्जुक तुर्कों के साहित्य पर फार्सी की गहरी छाया पड़ी थी। इसी से जलालुद्दीन रूमी तक ने अपना 'मस्नवी' फारसी में लिखा। उसके बाद उस्मानली

---

१. Khan Bilga ; २. Kul Tegin ; ३. Mahmud Kashgari; ४. Yusuf Has Hajib (Khass Hadjib) ; ५. Abul Gazi Behadur Han (Aboul-Ghazi Behadour Khan.)

तुर्कों ने जनता की बोली तुर्की में लिखना शुरू कर दिया था। यूनुस एम्रे[१] ने अपना 'मस्नवी'' तुर्की में ही लिखा। वह आज तुर्की का पहला महान् राष्ट्रीय कवि माना जाता है। उस भाषा में दूसरा महत्त्व का ग्रन्थ सुलेमान चेलेबी[२] ने लिखा। ग्रन्थ हज़रत मुहम्मद की प्रशस्ति के रूप में है और 'मौलीदी-शरीफ' कहलाता है। इसकी लोकप्रियता रचना के दिन ही प्रतिष्ठित हो गई थी —जो आजतक अक्षुण्ण बनी है।

इन दो विशिष्ट कृतियों के बावजूद भी तुर्की के साहित्यकार बराबर अपने मॉडलों के लिए फारसी और अरबी की ओर देखा करते थे। तुर्की साहित्य का सबसे सक्रिय युग मुराद द्वितीय का शासनकाल (१४२१-५१) है। मनीसा के अपने दरबार में मुराद ने दूर-दूर के कवियों, दार्शनिकों और विद्वानों को एकत्र कर लिया था। अपनी अध्यक्षता में ही उसने तुर्की में अनेक अरबी और फारसी ग्रन्थों का अनुवाद कराया। वस्तुत: यही कारण था कि तुर्की प्राय: चार सदियों तक फारसी और अरबी की चेरी बनी रही।

१४५० और १८५९ का काल तुर्की साहित्य का दूसरा युग है। १४५३ में फतह मुहम्मद ने कुस्तुन्तुनिया जीत कर पूर्वी रोमन साम्राज्य का अंत कर दिया। तबसे तुर्की साहित्य विशेषत: काव्य के रूप में विकसित हुआ और फारसी की मदद से जनबोली को साहित्यिक अलंकृत भाषा की प्रतिष्ठा मिली। इस काल चार कवि विशेष विख्यात हुए—फ़ज़ूली[३] बाकी[४], नफ़ी[५] और नदीम[६]।

अपनी शायरी में इन कवियों ने अधिकतर 'गजल' का प्रयोग किया है। 'कसीदा' का उपयोग भी उसी मात्रा में हुआ है जिस मात्रा में 'गजल' का। 'मस्नवी' वस्तुत: प्रबन्ध अथवा वीर-काव्य (एपिक) का नाम है।

उस युग का सबसे बड़ा कवि शेख़ ग़ालिब[७] था जिसने' हुस्नो इश्क' (सौन्दर्य और प्रणय) लिखा। वह कविता खुदा की मुहब्बत का रूपक है जिसमें मानव प्रेम को अन्तत: उद्देश्य माना गया है। गालिब ने यह मस्नवी केवल २१ वर्ष की आयु में लिखा था।

उस युग का साहित्य विशेषत: काव्य में है फिर भी इतिहासों का उसमें काफी निर्माण हुआ है। सैदुद्दीन[८] ने अपने ग्रन्थ 'ताकूत तवारीख' में उत्तमन तुर्कों का इतिहास प्राचीनतम काल से १७वीं सदी के अपने युग तक लिखा है। उसमें तवारीख-नवीसों की एक सूची दी गई है। नाइमा[९] उस काल का सबसे बड़ा इतिहासकार है जिसने अपना इतिहास 'तवारीख' कई खंडों में लिखा था। फिर भी वह केवल १५९१ और १६५९ के बीच की घटनाएँ ही व्यक्त कर सका। जेवदेत[१०] का 'तवारीख' जो १२ खंडों में प्रस्तुत

---

१. Yunus Emre; २. Syleyman Chelebi. ३. Fuzuli (मृ. ल. १५६२); ४. Baki (१५२६–१६००); ५. Nefi (मृ. ल. १६३५); ६. Nedim (मृ. १७३०); ७. Sheyh Galib (१७५७-९९); ८. Saduddin; ९. Naima; १०. Jevdet

हुआ, १९वीं सदी के केवल २६ वर्षों की घटनाएँ क्रमबद्ध कर सका। इन तवारीखों के गद्य की एक अपनी शैली है और अधिकतर वह उसी 'सैज' शैली में लिखे गये हैं।

१९वीं सदी के मध्य तुर्की में नई क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का उदय हुआ। तुर्की साम्राज्य तेजी से लुप्त हो चला। फ्रेंच साहित्यिक प्रभाव भी तुर्की-साहित्य पर पड़ा। उस प्रभाव के प्रवर्तक विशेषत: शिनासी एफेंदी[१] जिया पाशा[२] और नामिक कमाल[३] थे। फ्रेंच क्रान्तिकारी भावनाएँ धीरे-धीरे तुर्की में भी राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और आजादी की प्रेरक बनीं। नये लेखकों में विशिष्ट नामिक कमाल था। उसने 'वतन' नाम का नाटक लिखा। जब वह स्तम्बूल के थियेटर में खेला गया तब सुल्तान को उसके दृश्यों से इतना डर लगा कि उसने अपनी रक्षा के लिए थियेटर बंद करवा दिया। नाटक जब्त कर लिया और उसके रचयिता कमाल को निर्वासित कर दिया। अब तुर्की-साहित्य अपने को फारसी और अरबी की शृंखला से मुक्त कर चला था और यूरोपीय विद्रोही विचारों का अनुगत हो चला था।

ओत्तमान साम्राज्य के उस अंतिम युग के तुर्की साहित्य में उपन्यास, आधुनिक ड्रामा, निबन्ध और अन्य विविध यूरोपीय साहित्यिक रूपों की रचना हुई। नामिक कमाल विद्रोही कवि था और जब उसकी कविताएँ जब्त कर ली गयीं तब सालों लोग हाथ से उनकी नकल कर छिपे तौर से उनका प्रचार करते रहे। अहमद मिथात[४] का प्रभाव भी तुर्की-साहित्य पर बड़ा था परन्तु उसने सुलतान से राजनीतिक समझौता कर लिया। इससे एक लाभ जरूर हुआ कि उसकी बीसियों कृतियाँ आम जनता में चलती रहीं और उदीयमान लेखक उनसे अपनी प्रेरणा जन साधारण की भांति ही लेते रहे।

'नया साहित्य' (अदीबियाते जदीद) आन्दोलन उस युग के महत्त्वपूर्ण अदबी-आन्दोलनों में था। उसका नेता तौफीक फिकरत[५] था। वह असाधारण देशभक्त और आदर्शवादी था। उसने तुर्की में अनेक शैलियों का प्रयोग किया। उसने फारसी से लेकर असामान्य शब्दों का इस्तेमाल किया है। उसकी कविताओं के संग्रह का नाम 'रुबाबे शिकस्त' (टूटी तंत्री) है। उस युग का दूसरा कवि प्रसिद्ध अब्दुलहक हमीद[६] था जिसकी पत्नी की स्मृति में लिखी कविता 'मकबर', तुर्की साहित्य में 'क्लासिक' मानी जाती है।

हालिद जिया[७] तुर्की का पहला विशिष्ट उपन्यासकार है। उसकी कृति 'मैं वे सियाह' के कई संस्करण हो चुके हैं।

पहले-पहल उसी युग में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। जिया गोक आल्प[८] ने अपने अध्ययन और सूझ से देश की शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। प्राचीन तुर्की

---

१. Shinasi Efendi; २. Ziya Pasha; ३. Namik Kemal; ४. Ahmed Midhat; ५. Tevfik Fikret (१८६७-१९१५); ६. Abdul Hak Hamid; ७. Halid Ziya; ८. Ziya Gok Alp

समाज का उसका अध्ययन अप्रतिम था। इसी काल जाति का पुराना नाम 'ओस्मानली' बदल कर तुर्क कर दिया गया। पहले 'तुर्क' शब्द का उपयोग अशिष्ट खानाबदोश के अर्थ में होता था। उसका अच्छे अर्थ में प्रयोग पहली बार १८७५ के लगभग सुलेमान पाशा[१] ने अपने संसार के इतिहास (तारीख-ए-आलम) में किया।

१९२३ से तुर्की-साहित्य में वर्तमान काल का आरंभ होता है। उस काल 'खिलाफत' का अंत कर तुर्की-प्रजातन्त्र का सूत्रपात हुआ, और एक नई राष्ट्रीयता का श्रीगणेश हुआ। इस युग में दो आन्दोलन चले। एक तो तुर्क जाति की महत्ता में विश्वास था, दूसरे संसार के क्लासिकल साहित्य में विशेष रुचि का आविर्भाव। मुस्तफा कमाल अतातुर्क[२] के नेतृत्व में तुर्कों ने अपने प्रागिस्लामी इतिहास का सिंहावलोकन किया और तुर्की भाषा को सारी भाषाओं का मूल तथा तुर्की सभ्यता को सारी सभ्यताओं का आधार माना। इस अर्थ एक संस्था 'तुर्कियात एन्स्तितूसू' कायम हुई और मुहम्मद फ़ुआद कोपरूलू[३] की अध्यक्षता में तुर्की संस्कृति पर अनेक जिल्दें प्रकाशित हुईं। साथ ही लोक साहित्य में भी लोगों की रुचि बढ़ी। उस दिशा में भी पर्याप्त कार्य हो चुका है। साथ ही संसार के सारे साहित्यों से उत्कृष्ट ग्रन्थों के अनुवाद भी हो रहे हैं।

तुर्की के वर्तमान साहित्य में उपन्यास ने विशेष प्रगति की है। जीवन को प्रति-बिंबित करने और विचारों का प्रचार करने वाले दोनों प्रकार के उपन्यास वहाँ लिखे गये हैं। आधुनिक उपन्यास का उदाहरण हलीदा अदीब का 'विदूषक' और 'उसकी कन्या' हैं।

इधर हाल में लोक-साहित्य को एकत्र और प्रकाशित करने का प्रयत्न हो रहा है। इस दिशा में काम हुआ भी पर्याप्त है। लोगों ने उस काम में रुचि भी काफी दिखाई है। उस साहित्य का प्रधान अंग उसकी कथाएँ (मसल) हैं। ये दो प्रकार की हैं—एक तो वो जो हजरत अली और सैयदगाजी बत्ताल[४] के बीर कृत्य प्रगट करती हैं। दूसरी वो जो काव्यबद्ध हैं और अनेक प्रकार से 'कौर ओग्लू' (अन्धे के बेटे) की कहानी प्रस्तुत करते हैं। जनसाधारण को इन कहानियों से इतना प्रेम है कि इनके संस्करण उस देश के उपन्यासों से संख्या में प्रायः दस गुना होते हैं। तुर्की में ये कथाएँ सदियों लोकप्रिय रही हैं, पर इनका लोप होता गया है। अब प्रकाशन के कार्य ने फिर इन्हें लम्बी आयु दी है।

तुर्की साहित्य में विनोद और हास्य भी पर्याप्त है, अनेक कहानियों में मर्द और औरत की बुद्धिमानी या धूर्तता का चित्र खींचा गया है। हास्य का बहुत-सा जाना हुआ साहित्य तो गाँव के मौलवी नासिरुद्दीन खोजा[५] के नाम से संबद्ध है। वह इतना लोकप्रिय है कि लेखों

१. Suleyman Pasha; २. President Mustafa Kemal Ataturk; ३. Mehmed Fuad Koprulu; ४. Seyid Gazi Battal; ५. Nasreddin Hoja

और व्याख्यानों को स्पष्ट करने के लिए अक्सर लोग उसकी 'मसलों' से मिसाल दिया करते हैं। एक मजे की कहानी यह है कि नासिरुद्दीन खोजा को हर जुम्मा को मस्जिद में व्याख्यान देना पड़ता था। वह उससे बचना चाहता था। उसने एक उपाय ढूंढ़ निकाला। अपने सुनने वालों से वह पूछता—क्या तुम्हें मालूम है मैं किस विषय पर आज उपदेश दूंगा ? उनके 'नहीं' कहने पर वह कहता—फिर उस विषय पर क्या बोलना जिसे तुम-हम जानते ही नहीं ! और चला जाता। दूसरी बार वह वही प्रश्न करता और स्वाभाविक ही उत्तर मिलता—हां ! तब वह कहता—फिर ऐसे विषय पर क्या उपदेश देना जो तुम जानते ही हो ! अब उसके सुनने वालों (उसे परास्त करने के विचार से तीसरी बार जब प्रश्न करता) में से उत्तर में कुछ कहते हाँ और कुछ कहते न—तब वह कहता—फिर उसके कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। बस जो जानते हैं वे नहीं जानने वालों को बता दें।

ड्रामा में आज के तुर्की ने खास दिलचस्पी दिखाई है। पिछली सदी में मोलिए[1], शेक्सपियर आदि के नाटकों के तुर्की भाषा में अनुवाद हो गये थे। धीरे-धीरे अन्य भाषाओं से भी नाटकों के अनुवाद हुए और अब प्रायः संसार के सभी साहित्यों के प्रधान नाटक वहाँ के रंगमंच पर खेले जाते हैं, कम से कम पढ़े तो जाते ही हैं।

तुर्की-साहित्य को समृद्ध नहीं कहा जा सकता। उसमें न तो अरबी फारसी की काव्य-संपदा या दार्शनिक चिन्तन राशि है न यूरोपीय साहित्यों की विचार-प्रतीकता। उसका जो कुछ दार्शनिक साहित्य है अधिकतर अरबी-फारसी से आया है। यूरोपीय दृष्टिकोण का वितत्वन पश्चिमी आधार से उठा है। इन क्षेत्रों में तुर्की साहित्य की अपनी देन नहीं के बराबर है। परन्तु उसका लोकसाहित्य विशेषतः हास्यपरक, असाधारण है और कम से कम हास्यपरक लोक-साहित्य के क्षेत्र में तो एक मात्रा में अरबी और फारसी भी उसके ऋणी हैं।

---

१. Moliere

१४. नार्वे का साहित्य

नार्वे को प्रकृति ने अपने हाथों सँवारा है। यूरोप का वह प्रायः उत्तरतम देश है। आधी रात को वहाँ सूर्य चमकता है और उषाकाल उत्तरी क्षितिज पर लघुतम अग्नि-पिण्ड उछलते हैं, अनन्त तारिकाएँ ज्वलन्त स्वर्णमयी नीहारिकाओं के रूप में निरन्तर उछलती, टूटकर बिखरती रहती हैं। ऐसा नार्वे स्वाभाविक ही कवि की चेतना को जागृत करेगा। नार्वे के साहित्य का प्रारंभिक काल इसी कारण अपने अनूठे प्राकृतिक वातावरण में गायन का अभिराम स्वर लिये उतरा।

३३० ई० पू० जब ग्रीक पीथियस् इंग्लैंड और स्कॉटलैंड के समुद्रतट से नार्वे पहुँचा तब उस देश में आबादी का नाम न था। बर्फीले प्रसार पर प्रकृति जैसे सोती थी, जो जब-तब बनैले जानवरों की उछल-कूद से अँगड़ाती, फिर सो जाती। नार्वे में मनुष्य की बस्तियों का विशेष विकास ईसा की प्रारंभिक सदियों में हुआ, और तब से उसकी आबादी निरन्तर बढ़ती गई, यद्यपि जीने के साधन नार्वे के उन निवासियों के पास कम थे। यही कारण है कि उन्होंने आसपास के देशों पर हमले शुरू किये। पास कुछ खाने को न था और समुद्र-तट का जीवन उनके लिए ऐसा स्वाभाविक था जैसा मछलियों का होता है। इससे माँझी बनने में उन्हें किसी प्रकार की अड़चन न पड़ी।

नार्वे का आकार-प्रकार बड़ा है पर आबादी थोड़ी है। वह आबादी भी अन्य देशों में एक बड़ी संख्या में बिखरी हुई है। इंग्लैंड और अमेरिका में उसकी एक पर्याप्त संख्या है, और प्रचुर संख्या समुद्र पर है। समुद्र-पर्वत और 'फ्योर्द' नार्वे-निवासियों के जीवन में रम गये हैं 'स्कीइंग और स्केटिंग' के लिए जितना नार्वे के बर्फ से ढके पहाड़ और जमे पानी से दर्पण की भाँति चमकती झीलें उपयुक्त हैं उतना दुनिया का कोई स्थल नहीं। सौंदर्य वहाँ सर्वत्र लहराता है और वह न केवल मानवेतर प्राकृतिक विभूतियों का ही एकान्त रूप है वरन् स्वयं मानव का भी। और मानव तथा प्रकृति की यह अनन्य एकता मानव में एकान्त गायन की रति अनायास भर देती है।

ईसा की दूसरी और छठी सदियों के बीच मनुष्य ने वहाँ अपने सांस्कृतिक जीवन का आरंभ किया। १५ सदियों तक फिर लगातार, वहाँ, वह अपने विविध स्वरों में संगीत भरता रहा जिसका एक भाग 'वाइकिंग' कहलाता है। दूसरा अभिजातवर्गीय अमर कृतियों का गान है और तीसरा 'एद्दा' नाम की धार्मिक कविताएँ। इनमें अधिकतर संभ्रान्त जमींदारों का ही संगीत मुखरित हुआ।

वाइकिंग काव्य

'वाइकिंग' कविता का युग साधारणतः दूसरी से सातवीं सदी के बीच माना जाता है। वह साहित्य अधिकतर हमलावर अभिजात कुलों का था, प्रायः सारा का सारा अलिखित, जिसे लोग गा-सुनाकर सुरक्षित रखते थे। वाइकिंग-काव्य स्वाभाविक ही चारण-काव्य है, जो लाक्षणिक रूप से 'स्काल्दिक' कहलाता है। त्योहारों के अवसर पर मंत्र के रूप में यह गाये जाते थे और इनको गाने तथा गाकर सुरक्षित रखने वाले चारण सरदारों के दरबार में रहते थे। वे दरबार-दरबार घूमते रहते थे। उनके प्रति लोगों की श्रद्धा थी और स्केण्डिनेविया (नार्वे, स्विडन और डेनमार्क) तथा ब्रिटिश द्वीपों में जहाँ भी वे पहुँच जाते उनको आदर और सत्कार की कमी न रहती। वाइकिंग-अभिजात कुलों का जीवन आक्रान्ता का जीवन था, निरन्तर हमलों और युद्धों का जीवन, जिससे उनके संबंध की कविताओं का भी ओजस्वी होना स्वाभाविक ही था, यद्यपि इसी कारण उनमें करुणा और दया का भी प्रायः अभाव है। वाइकिंग काव्य गर्वीले मानव की गर्वोक्ति है। सेनाओं के अभियान की धमक और अस्त्रों की झंकार उनका प्राण है। उस काव्यधारा में वीरों की हुंकार देवताओं के साहचर्य की निष्ठा रखती है और पूजा में भी दासत्व-प्रकाश का कहीं नाम नहीं होता। स्वयं चारण सरदारों के प्रसाद पर जीने वाले अकिंचन गायक नहीं, अनेक बार तो स्वयं हमलावर कबीलों के सरदार थे और सदा अभिजात वंशधर। वे उन प्रशस्तियों को उद्गीरित करते थे जिनके भौतिक निर्माण में स्वयं उनका भी हाथ रहा था। प्रगट है कि उन काव्यों की ओजस्विता सार्थक होगी, क्योंकि उनके गायक स्वयं उनके निर्माता भी थे। नार्वे के साहित्य के इस प्रारंभिक काव्य का यह रूप संभवतः संसार के साहित्य में अनूठा है। यह 'स्काल्दिक' काव्य अलंकरण में बड़ा ऋद्ध है। उसकी प्रभूत उपमाएँ दृश्य के साक्षात्करण में अत्यन्त सहायक होती हैं, और उसकी सादगी स्थिति को स्पष्ट करने में शक्तिम। अलंकार के होते हुए भी उसमें कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। जीवन जैसे उसमें उबला पड़ता है।

अनेक बार उस 'स्काल्दिक' काव्य में वंशावलियों का उल्लेख हुआ है। क्वाइन के कवि त्योदोल्फ[१] ने इस प्रकार की एक 'इंगलिंग की वंशावली' रची जिसमें उसके राजा सुकेशी हेराल्द के 'जन' का कुर्सीनामा प्रस्तुत हुआ। 'हालोगालैंड के श्रीमानों की वंशावलि' गाकर आइविन्द स्काल्दास्पिलिर[२] ने भी उसी प्रकार प्रशस्तियों को इतिहासपरक बनाया। इन प्रशस्तियों से नार्वे के इतिहास लेखन को बड़ी सहायता मिली है।

उस काल के विख्यात चारण कवि त्योदोल्फ और आइविन्द थे जिन्होंने क्रमशः हेराल्द और हाकन के दरबारों और सुकृत्यों का बखान किया। त्योदोल्फ की कविता

---

१. Agder poet Tjodolf of Kvine. २. Eyvind Skaldaspillir

'पतझड़ का गान' जितनी मधुर थी, आइविन्द की 'राजा-हाकन की स्मृति' उतनी ही शालीन। उनके समकालीन चारण कवि थोर ब्योर्न हॉर्नक्लोवी[1] ने भी कल्पना और ओज से प्रौढ़ काव्य रचा। वाइकिंग के जमाने में ही नार्वे निवासियों ने जो आइसलैंड को जीत कर वहाँ अपनी बस्तियाँ बसा ली थीं उससे वहाँ के दसवीं-ग्यारहवीं सदियों के कवियों ने भी नार्वे के दृश्यों को ही अपनी कविता में चित्रित किया।

वाइकिंग-काल में अनन्त ख्यातों और पौराणिक आख्यानों का भी एक विपुल समुदाय प्रस्तुत हुआ। लोक-साहित्य खूब फूला-फला जिसमें पहाड़ और समुद्र, परियों और दानवों की कहानियाँ असीम मात्रा में प्रस्तुत हुईं। उस काल का धर्म वह अभिजात्य धर्म था जो बाहर के आक्रमणों, समुद्र के वीर-कृत्यों तथा भू-स्वामिता से संबंध रखता है। समुद्री राजाओं की कमी न थी और न उत्तरी तथा बाल्टिक समुद्रों की सतह पर वीर-कृत्यों की कमी थी। काव्य एक नयी दिशा की ओर चल पड़ा, धार्मिक गायन की ओर। परिणाम हुआ 'एद्दा' काव्यधारा का उदय। 'एद्दा' कविताओं का स्वर बहुत कुछ होमर के स्वर से मिलता-जुलता है और राइनलैंड तथा बर्गण्डी जीतने वाले वीर-कृत्यों से अनुप्राणित है। 'एद्दा' कविताओं का एक दल 'वीरों के गीत' नाम से संगृहीत है जिसका एक भाग 'देवताओं के गान' है। 'देवताओं के गान' का आधार 'वोलुस्पो' नवीं या दसवीं सदी में लिखा वह सबल काव्य है जिसमें भविष्यवादिनी, 'वोल्वेन', सृष्टि की कहानी कहती है। कहानी व्याख्यात्मक है। उसमें सृष्टि का उदय, देवासुर संग्राम, मानव जाति के मूल और भाग्यों का बखान है। इनके बाद वह दैवी भविष्य के उन दिनों का काल्पनिक रूप अंकित करती है जब अनाचार और क्रूरता, भ्रातृ-विनाश और नर-संहार संसार की एकमात्र क्रिया-शक्ति हो जायेंगे और पाप और पुण्य की शक्तियों के अंतिम संघर्ष में उसका विराम होगा। उस संघर्ष का नाम भविष्यवादिनी ने 'राग्नारोक' दिया है। उस संघर्ष के बाद उसका कहना है, 'एक नये और सुन्दर संसार की अभिसृष्टि होगी।' 'एद्दा' के गीतों में देवताओं के कृत्य और समस्याएँ भी अपना भाग पाती हैं। उनकी रचना ७०० से ११०० ई० के बीच हुई और उनका संग्रह १२०० ई० के लगभग हुआ। इन कविताओं का नाम तेरहवीं सदी में "एद्दा" पड़ा जिसका अर्थ है "ओद्दी"—पुस्तक। ओद्दी आइसलैंड में एक स्थान का नाम था जहाँ यह कविताएँ नाव से ले जाकर एकत्र की गईं। 'एद्दा' कविताओं का प्रवाह और सादगी वाइकिंग चारणों की कविताओं से कहीं अधिक हैं। विशेष कर 'वोलुस्पो' के दृश्य बड़े शालीन हैं और उनके वर्णन दृश्यों को मूर्तिमान कर देने में नितान्त समर्थ।

---

१. Thobjorn Hornklovi

यहां पर 'एद्दा' और 'स्काल्दिक' गीतों को स्पष्ट कर देना समीचीन होगा। 'एद्दा' कविताएँ वाइकिंग-काल की सर्वोत्तम साहित्य-कृतियाँ हैं। नार्वे के मानुषिक जीवन के कल्पना-चित्र, उनके पुराणों, देवताओं, वीरों और तत्संबंधी आख्यानों के साथ उनमें काव्यबद्ध हुए। उनकी शैली संक्षिप्त और मंत्रवत् है; उनमें नाटकीय शक्ति है और असाधारण सादगी। सुननेवालों पर निस्संदेह उनका प्रभाव गहरा पड़ता होगा। उनके विपरीत "स्काल्दिक" गीत जो राजाओं-सरदारों के संस्मरण अथवा प्रशस्तियों का अंकन करते हैं, जाने हुए कवियों की रचनाएं हैं। यह कवि नार्वे के प्राचीनतम काल के कवि हैं, इनमें से कुछ आइसलैंड के भी हैं, बारहवीं-तेरहवीं सदियों के। स्काल्दिक कविताओं की शैली अलंकार-बोझिल और उपमाओं के पेच से कसी है।

आइसलैंड के साहित्यिकों में सबसे महान् स्नोरे स्तर्लासोन[१] था जो १२४१ में मरा। उसका प्रधान ग्रन्थ 'हाइम्स्क्रिंग्ला' है। उसमें ११७७ तक के नार्वे के राजाओं का इतिहास अद्‌भुत क्षमता से अंकित हुआ है। नार्वे की साधारण जनता उसे आज भी बड़े चाव से पढ़ती है। जब-जब नार्वे की राष्ट्रीयता को चोट पहुँची है तब-तब इसी ग्रन्थ के स्वर जनता की आवाज में बुलन्द हुए हैं। १८१४, १९०५ और १९४० का राजनीतिक इतिहास इस नार्वेई ग्रन्थ का दम भरता है।

तेरहवीं सदी में नाव का संबंध यूरोप के इंग्लैंड और फ्रांस आदि देशों से सांस्कृतिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र में पर्याप्त घना हुआ। उससे उन देशों के साहित्य का नार्वे पर छाया पड़नी अनिवार्य थी। 'कांगेस्पाइलेत' (राजा का दर्पण), जो एक सुन्दर सांस्कृतिक संग्रह है, अनूदित साहित्य के रूप में इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है। इस संग्रह में पश्चिमी यूरोप के वीर-काल की कविताएँ नार्वे की भाषा में संगृहीत हुईं। नार्वे की १४वीं सदी साहित्य निर्माण की दिशा में कंगाल सिद्ध हुई। इसका कारण काल-मृत्यु का वह परिणाम था जिसने यूरोप के अनेक भू-भागों को वीरान कर दिया। उसमें अधिक क्षति उस काल की संस्कृति के अग्रणी पादरियों को हुई जिससे साहित्य के क्षेत्र पर तुषारापात हो गया। हाँ, मध्ययुग की पिछली सदियों में निश्चय ही नार्वे में पर्याप्त काव्य-रचना हुई, यद्यपि मौलिक कविताओं का ही साहित्य में प्राधान्य रहा। उनका लिखित संग्रह १९वीं सदी के मध्य पहली बार प्रस्तुत हुआ।

नार्वे के उत्तर-मध्यकालीन लोकगीतों का संबंध डेनी, अंग्रेजी और स्काटी 'बैलेड' कविता से है। इससे यह ध्वनि निकालने की आवश्यकता नहीं कि नार्वे के अपने 'बैलेडों' की कोई अपनी सत्ता नहीं। वस्तुतः उनका अपना सौंदर्य है और उनकी शक्ति लिरिक अथवा वीर-काव्यों में कम ही पायी जाती है। उनकी मनोवैज्ञानिक और नाटकीय प्रौढ़ता

---

१. Snore Sturlason

वैयक्तिक दृश्यों में उन कविताओं में प्राय: सर्वत्र लक्षित होती है। उन लोकप्रिय काव्य-कृतियों में मूल रूप से उन पौराणिक आख्यानों, विश्वासों और कथाओं का समावेश है जो नार्वे के पर्वत और समुद्र-प्रधान जीवन को व्यक्त करती हैं। नार्वे के बौद्धिक इतिहास की १४वीं, १५वीं और १६वीं सदियां साहित्य की दृष्टि से अनुर्वर कही गई हैं। परन्तु यह न भूलना चाहिए कि उसी काल उन लोक-कहानियों, का विशेषत: साहित्य में आरम्भ हुआ था जो उस काल के लोक-विश्वास को प्रगट करती है। वे कथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी १८४० तक कही जाती रहीं और तब उनको संग्रह के रूप में एकत्र कर लिया गया। उस पर्वतीय देश में घाटियों का बाहुल्य है और इन्हीं घाटियों में नार्वे की किसान जनता एक लंबे काल तक अपना अविकृत जीवन बिताती रही थी, जब धीरे-धीरे यूरोपीय बौद्धिक धारा और साहित्यिक शैलियों का आन्दोलन वहाँ पहुंचा। परन्तु यद्यपि, यूरोपीय साहित्य-चेतना ने नार्वे की भाषा तथा साहित्य को समृद्ध किया, वह उसकी मुलभूत प्रेरणाओं को विकृत न कर सकी। इसी कारण नार्वे की कला और साहित्य दोनों स्थानीय विशेषताओं से युक्त और अपनी आधारभूत प्रेरणाओं से अनुप्राणित हुए। उस साहित्य की लोक-कथाओं में जब एरिक बेरेन्सिक ओल्ड[1] और थ्योडोर किटल्सन[2] ने उनको चित्रांकित कर दिया तब वे नार्वे में घर-घर की निधि बन गईं। तब उनका अनुवाद अंग्रेजी और फ्रेंच में भी हुआ और लोक-साहित्य के अध्येताओं की वे मनन की वस्तु बन गई।

धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन ने नॉर्वे के इतिहास को भी प्रगति दी। वहाँ उसके प्रभाव से साहित्यिक चेतना सजग हो उठी। उस देश के पादरियों ने बौद्धिक जीवन की बागडोर तब अपने हाथ में ली। उनमें से अनेक कोपेनहागेन के विश्वविद्यालय के विद्यार्थी रह चुके थे और वहाँ वे नये विचारों और विदेशी बौद्धिक प्रवृत्तियों के सम्पर्क में आये थे। १६वीं और १७वीं सदियों से उनके द्वारा नार्वे के साहित्य में मानवतावादी ज्ञान था रंजित काव्यधारा का प्रवेश हुआ। फिर भी १८वीं सदी में ही आधुनिक परंपरा की प्रतिभा का उस देश में विकास हुआ। उसकी पहली मंजिल लुडविग होल्वर्ग[3] ने तय की। उसके प्रादुर्भाव से देश के साहित्य में एक नयी चेतना का आरंभ हुआ। उसका स्थान समसामयिक यूरोप के प्रधान मेधावियों में था। होल्वर्ग का जन्म बर्लिन में हुआ था। और अपनी तरुणावस्था में उसने हालैंड, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस तथा इटली का भ्रमण किया था। इंग्लैंड के अपने ढाई वर्ष के प्रवास में उसने क्वीन ऐन-कालीन बौद्धिक वातावरण से गहरा सम्पर्क स्थापित किया। परिणामस्वरूप जो उसने कॉमेडी नाटकों की एक लम्बी परंपरा रच दी वह डेनी और नार्वे साहित्य के प्रबल पाये सिद्ध हुए। जीवन के

---

१. Erik Werenskiold; २. Theodore Kittelsen; ३. Ludvig Holberg (१६८४-१७५४)

उत्तरकाल में होल्बर्ग ने आचारवादी और दार्शनिक निबन्धकार के रूप में देश के साहित्य पर अपना प्रभाव डाला। उसमें वोल्तेयर, मोलिए और एडिसन की विविध प्रतिभाएँ अपने-अपने अंश और मात्रा में एकत्र हुईं। इसी कारण डेन्मार्क और नार्वे दोनों के साहित्यिक समान रूप से उसे अपने साहित्य का जनक मानते हैं। होल्बर्ग अपने काल का केवल सबसे बड़ा नाटककार ही न था, उस युग का प्रधान प्रतिनिधि भी था।

डेन्मार्क और नार्वे दोनों देश पहले सदियों में समान शासन में रहे। एक राजा दोनों का स्वामी था। और होल्बर्ग समान रूप से दोनों जातियों का प्रतिनिधि था। उसकी मृत्यु के बाद ही नार्वे और डेनमार्क के निवासियों में खटक शुरू हुई और नार्वे की जनता डैनी प्रतियोगिता में अपना विकास कुंठित मान एक नयी राष्ट्रीय चेतना से गतिमति हुई। यह चेतना राजनीति की ही भाँति साहित्य के क्षेत्र में भी फूली फली। छन्द में नार्वे के नैसर्गिक दृश्यों का 'रोमांटिक सौंदर्य' मुखरित हो उठा। पोप, टामसन और यंग* का अनुकरण होने लगा। १७७० के बाद ही साहित्य में जिस विद्रोह और क्रांति ने रूप धारण किया १८१४ के आन्दोलन में वही राजनीतिक सक्रियता में रूपायित हुए और तब नार्वे डेन्मार्क का पिछलग्गू न रह सका। उसने अपने को डेन्मार्क की छाया से स्वतंत्र कर लिया। एक संविधान-सभा का निर्माण कर उसने स्वतन्त्र संविधान अपनी जनता को दिया।

यह राजनीतिक परिवर्तन सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति में अलक्षित न रह सका। उस पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। परिवर्तन भी असाधारण था और शीघ्र उससे प्रेरणा पाकर नार्वे के सबसे महान् लिरिक कवि हेन्रिक वर्गलेण्ड[१] ने अपनी रचनाएं शुरू कीं।

वर्गलैंड केवल ३७ वर्ष जीवित रहा परन्तु उसने उसी अल्पकाल में महती प्रतिभा का विकास किया। वह लार्ड बाइरन का भक्त था यद्यपि अपने विचारों और शैली में वह शेली के अधिक निकट था। उसकी कल्पना का संसार तो अनेक बार शेक्सपियर की ऊँचाइयों को छू लेता है। वह फूलों और तितलियों से, तरुओं और शशकों से नितान्त स्वाभाविक आत्मीयता से बात कर सकता था और उसकी कल्पना मेघों के परीदेश तथा आकाश-गंगा की नीहारिकाओं में रम जाती थी। उसने विचारों के क्षेत्र में तो काव्यबद्ध गीत गाये ही, राजनीति के क्षेत्र में भी उसकी काव्य-कल्पना पर्याप्त गतिमती हुई। घर और बाहर दोनों के स्वाधीनता के लड़ाकों के पक्ष में उसकी वाणी मुखरित हुई और उसने यहूदियों तथा अन्य अत्याचार पीड़ित मानवों की रक्षा में अपना काव्य-कवच प्रस्तुत किया। वर्गलैंड मध्यममार्गीय चेतना का व्यक्ति न था। संसार की वर्तमान वर्ग-परम्परा में सही और ईमानदारी के साथ सोचने वाला कर्मठ व्यक्ति मध्यमपदीय हो भी नहीं सकता।

---

१. Henrik Wergeland (१८०८-४५)

यदि वह आत्मरत नहीं तो निश्चय ही अन्यायपूर्ण परिस्थितियाँ उसे उसकी शांत पृष्ठभूमि से विप्रस्थित कर देंगी और वह एकान्तिक शक्तिम शब्दों में स्थिति-विशेष के पक्ष अथवा विरोध में बोल उठेगा। वर्गलैंड भी उसी प्रकार सबल और स्पष्ट विचारों का प्रतिपादक था। अनेक बार तो उसकी वाणी ऐसा रूप और आवाज धारण कर लेती थी कि लोगों को उससे घबड़ाहट हो जाती थी। वर्गलैंड सब प्रकार से अतिकाय था। विचारों में, साहित्य की शैली में, शब्दों के चयन और प्रयोग में, और वैसे ही शरीर के आकार में भी। उसका विशाल शरीर अन्त में राजयक्ष्मा का शिकार हो गया, फिर भी अपनी रोग-शय्या से वह मधुर काव्यधारा प्रवाहित करता रहा यद्यपि उसके शब्दों में अब अधिक संयम आ गया था। उसकी भावनिधि तथा काव्य-सम्पदा ने साहित्य की दिशा में उसे राष्ट्रीय सन्त का पद प्रदान किया।

वेल्हावेन[1] वर्गलैंड का साहित्य में प्रधान प्रतिद्वन्द्वी था। उसके साथ ही उसने कोपेनहागेन की यूनिवर्सिटी में शिक्षा पाई थी। जान सेबेस्टियन वेल्हावेन की प्रतिभा कुछ खास क्रियात्मक न थी, परन्तु उसके व्यक्तित्व में अद्भुत शिष्टता थी और कला के मूल्यांकन में उसकी गति बड़ी सूक्ष्म थी। शैली में वह नितान्त सूत्रवादी था। काव्य की रचना में वह अन्तर्निविष्ट चेतना से क्रियाशील होता था। समसामयिक बाह्य वातावरण से उसकी कविता को कोई सरोकार न था परन्तु स्वभाव की करुणा जैसे उसकी काव्य-चेतना में नितान्त मार्मिक आवाज उठाती थी। वर्गलैंड के जीवन को झकझोर देने वाली और नार्वे के साहित्य में अनुपम गति उत्पन्न करने वाली एक घटना वेल्हावेन के जीवन से घना संबंध रखती है। वर्गलैंड की नितान्त भावुक असाधारण मेधाविनी और मधुर अनुरागिणी भगिनी कामिला कोलेट युवावस्था में वेल्हावेन के प्रति आकृष्ट हुई। आकर्षण उस प्रेम का था जो भाई और पिता के मित्र अथवा शत्रु का विचार नहीं करता। वर्गलैंड कामिला के भाई और पिता दोनों का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था। शेक्सपियर की जूलियट की भाँति वह अपने रोमियो की ओर तीव्र गति से आकृष्ट हुई। परन्तु रोमियो की भाँति उसका इष्ट वेल्हावेन उसके प्रति प्रेमासक्त न हुआ। सात वर्ष तक निरन्तर प्रणय की आग में जलते रहने के बाद कामिला ने अनुराग के सफल होने की आशा छोड़ दी। परन्तु उसका इस प्रकार घुलना बेकार न हुआ। ऋग्वेद की शशीयसी की भाँति उसकी वाणी ने कम्पन और कराह धारण की जिससे करुणा का प्रवाह प्रसूत हो कर चराचर को सींच चला। उसकी डायरी और संस्मरण करुणा के सतत् उद्‌गम प्रमाणित हुए। उसका उपन्यास 'अम्त्मान्देन्स् दोत्रे' (देहाती सर्राफ की कन्याएँ) उस काल की अत्यन्त सफल कृति थी। उसने साहित्य में नारी की स्वतन्त्रता का भी अपने निबन्धों द्वारा आन्दोलन शुरू कर दिया। उस आन्दोलन का मूल उसकी अन्य

---

१. John Sebastian Welhaven.

कृतियों के आधार की ही भाँति उसके विजित अनुराग में ही ढूँढ़ा जाता है।

कामिला कोलेट ने सुन्दर निसर्ग-वर्णन में भी पर्याप्त साहित्य रचा है। १८५० के लगभग नार्वे के प्राकृतिक सौन्दर्य ने अनेक साहित्यकारों को आकृष्ट किया था, और उस दिशा में उन्होंने प्रचुर काव्य-रचना की थी। इन प्रकृतिवादी रचयिताओं में अधिकतर कामिला के मित्र थे। उन्हीं दिनों लोक-कथाएँ, लोक-गीत आदि एकत्र कर प्रकाशित किए गए थे। उन्हीं दिनों जनता के इतिहास, भाषा और सांस्कृतिक गवेषणा को नयी प्रेरणा मिली थी। किसानों के प्रति तब एक नये उत्साह का जन्म हुआ था। प्रकृति-संबंधी लिरिक और विनोदशील व्यंग्य का ऋद्ध विकास विन्ये की कृतियों में हुआ। ए० ओ० विन्ये बोलियों पर अवलंबित भाषा का १८५० और ६० के बीच नार्वे का सबसे महान् कृतिकार था। उन्हीं दिनों विन्ये के दो सहपाठियों—हेन्रिक इब्सेन[१] और ब्योर्नस्त्येर्ने ब्योर्न्सन[२] ने साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। होल्बर्ग के बाद इन्हीं दोनों ने साहित्य में विश्व-व्यापी यश लाभ किया।

युवावस्था में इब्सेन और ब्योर्न्सन दोनों राष्ट्रीय आन्दोलन में बहे थे। और दोनों ने नार्वे के इतिहास और लोकप्रिय काव्यधारा से प्रेरणा पाई थी। परन्तु जैसे-जैसे वे आयु में बढ़ते गए उनकी पारस्परिक रुचियों की दिशा भी बदलती गयी। उनमें अन्तर भी बढ़ता गया। प्रायः आधी सदी तक उन्होंने अपनी साहित्यिक सक्रियता जारी रखी और पिछली सदी के अन्त तक वे दोनों नार्वे के साहित्य और बौद्धिक जीवन में अग्रणी बने रहे। आरंभ में हेन्रिक इब्सेन ने अनेक लिरिक कविताएँ लिखीं जिनकी प्रान्जल शैली और विचार-सौन्दर्य ने अधिकारी आलोचकों को मोह लिया। परन्तु इब्सेन प्रथमतः और मूलतः नाटककार था उस दिशा में उसकी प्रतिभा धीरे-ही-धीरे निखरी और १८५०-६० के बीच इतिहास और लोक-गीतों पर लिखे उसके नाटक नाटकीय लेखन में अभ्यास मात्र हैं। पर कुछ ही काल बाद उसने अपने रुचि-वैचित्र्य और प्रेरक सिद्धान्तों—लेखक का दृष्टिकोण—को पकड़ लिया। शीघ्र ही उसकी प्रक्रिया—शैली बदल गई।

शेक्सपियर से इब्सेन की अपनी प्रथम उज्ज्वल कृति 'कोंग्सेन्मेर्ने' के लिए आकृति मिली। यह रचना संदेहवादी स्कूल बार्दसोन के ऊपर एक ऐतिहासिक नाटक थी जो १८६३ में प्रकाशित हुई। उसके उपरान्त उसने छन्द में अपने दो काव्य-दर्शन प्रौढ़ नाटक 'ब्रान्ड' और 'पियर गिन्ट' लिखे। इनमें दो विरोधी विचारों का रूपायन हुआ। पहले का हीरो पादरी विचारों और दृढ़ता का प्रतीक है। उन्हीं कारणों से वह सबसे, अपने परिवार से भी, अकृत्रिम आचरण चाहता है और अपने सिद्धान्तों के व्यावहारिक आचरण में अपनी माता, पत्नी और पुत्र की दशा तक का विचार नहीं करता। अन्त में उसका एकान्त आदर्शवाद

---

१. Henrik Ibsen (१८२८-१९०६); २. Björnson (१८३२-१९१०)

ही उसका सर्वनाश कर डालता है। मानवजीवन की सीमाओं को वह तोड़ देता है। उसकी निष्ठा असाधारण है परन्तु उसके आदर्श की एकदेशीयता इतनी आंशिक है कि वह स्नेह के अधिकारों की भी परवाह नहीं करती। 'पियर गिन्ट' का प्रधान प्रसंग नार्वेई लोक-कथा से लिया गया है। परन्तु उसके हीरो का आचरण सर्वथा अपना है। उसका अहं अपनी सीमाएँ आप बनाता है। वह अपनी कायरता के कारण सारे विघ्नों से मुँह मोड़ लेता है और सिवा एक अन्त काल के, जीवन में कभी कोई स्पष्ट निर्णय नहीं कर पाता, कोई दृष्टिकोण निश्चय नहीं कर पाता। परन्तु अपनी अनेक नीचताओं के बावजूद भी पियरगिन्ट कल्पना, विनोद, और मानवीय आकर्षण में असाधारण है। वस्तुतः इतना असाधारण कि पाठक की सहानुभूति सदा उसके साथ रहती है। 'पियर गिन्ट' आज यूरोप और अमेरिका के देशों में अपनी रंगमंचीय सफलता में बेजोड़ है। साथ ही 'हेम्लेट' की ही भाँति वह भी रंगमंच से पृथक अपना साहित्यिक मूल्य भी पर्याप्त रखता है। वस्तुतः उसके हास्य और विनोद, मानवीयता और कमजोरी, विचार-गांभीर्य और कल्पना-वैभव का पता तो अध्ययन से ही लगता है। जिस मात्रा में कवि अथवा कृतिकार अपनी शब्दावली को अपनी भाषा में चलाता है, उसी मात्रा में वह साहित्य में महान् होता है। हिन्दी में तुलसीदास और अंग्रेजी में शेक्सपियर इस दृष्टि से असाधारण महान् हैं। हिन्दी और अंग्रेजी में इन महाकवियों को जो स्थान प्राप्त है वही इब्सेन को नार्वे की भाषा और साहित्य में प्राप्त है। यदि सारे नार्वेई-साहित्य की सर्वोत्तम काव्यकृति का उल्लेख करना हो तो किसी को 'पियर गिन्ट' का नाम लेने में प्रयास न करना होगा। यह नाम लेखनी अनायास ही लिख जाएगी।

स्वयं इब्सेन "सम्राट और गैलीलियन" (१८७३) को अपनी रचनाओं में सबसे सुन्दर मानता था। परन्तु धर्म विद्रोही जूलियन और ग्रीक-रोमन तथा ईसाई धर्मों के संघर्ष पर अवलंबित वह विश्व-इतिहास का नाटक दार्शनिक रूप से महान् होता हुआ भी 'ब्रान्ड' अथवा 'पियर गिन्ट' की बराबरी नहीं कर सकता। पिछले दोनों नाटक, प्रयुक्त दृश्य अथवा मनोवैज्ञानिक अध्ययन दोनों दृष्टियों से 'सम्राट् और गैलीलियन' से सुन्दर हैं। "सम्राट् और गैलीलियन" के प्रकाशन के बाद चार वर्ष इब्सेन चुप रहा, चुपचाप एक नई दिशा में प्रयोग की तैयारी करता रहा—गद्य में यथार्थवादी, घरेलू, आधुनिक ड्रामा की दिशा में। १८७७ और ९९ के बीच प्रायः २२ वर्षों में उसने बारह नाटक लिखे। इन नाटकों ने विश्व-साहित्य में इब्सेन का नाम अमर कर दिया। अब वह केवल नार्वे का ही न था, संसार के अनेक तरुण और प्रौढ़ साहित्यिक अपनी अगली रचनाओं की टेकनीक इब्सेन के आधार पर टेकने लगे थे। इन बारह नाटकों में से पहले चार उद्देश्यपरक थे। सामाजिक समस्याओं पर अवलंबित। दूसरे चार शुद्ध मनोवैज्ञानिक अध्ययन थे। और अंतिम चार एक प्रकार के आत्मस्वीकरण-से थे जिनमें 'स्फिक्स' प्रायः 'ब्रांड' और 'पियर गिन्ट'

की परंपरा में है। 'गुड़िए का घर', 'भूत', 'जनता का शत्रु', 'वन्य हंस' और 'रोस्मरशोल्म' एक के बाद एक प्रकाशित हुए और नाटकीय तथा मानव-अध्ययन के दृष्टिकोण से अत्युत्तम हैं। परन्तु जिन समीक्षकों और सहृदयों ने इब्सेन की कविताओं को जीवन का अंश बना लिया है। वे उसकी अन्तिम कृति 'जब हम मर कर जी उठते हैं' में एक अद्भुत आकर्षण पाते हैं। उसमें कवि जैसे पीछे देखते हुए पूछता है, क्या जीवन के बदले कला का चुनना उचित हुआ ?

जीवन भर इब्सेन आदर्शों के निर्वाह के लिए आवश्यकताओं से संघर्ष करता रहा था। एक बार उसने अपने प्रतिस्पर्धी और मित्र ब्योन्स्टेर्ने ब्योर्न्सन को कृतज्ञता के एक क्षण में लिखा कि ब्योर्न्सन के स्मारक-पट का उचित अभिलेख होगा—"उसका जीवन ही उसकी सुन्दरतम कविता थी।" व्यक्तिगत व्याख्या के रूप में इब्सेन ने कुछ और लिखा—"नित्य के आचरण में अपने आदर्शों की परिणति—बस यही, मेरे विचार से, मानव का अनन्यतम इष्ट है।"

इब्सेन के एकांगी-केन्द्रीकरण के सामने ब्योर्न्सन की बहुमुखी प्रतिभा असाधारण लगती है। उसका कृतित्व इब्सेन से नितान्त भिन्न है, असम, ऊबड़-खाबड़। परन्तु निस्संदेह उसके कवि रूप में प्रथम दर्शन से ही उसकी अप्रतिम मेधा का प्रमाण मिल गया था। ड्रामा और कहानी दोनों क्षेत्रों में ब्योर्न्सन ने अनुपम रत्न उत्पन्न किये हैं। लिरिक काव्य की तो उसने एक अभिराम राशि अपने देशवासियों को भेंट दी है। इसके अतिरिक्त वह अनुपम वाग्मी था, अद्भुत रंगमंचीय सूत्रधार, मधुर और आकर्षक पत्र-लेखक, और इन सबसे ऊपर पत्र-पत्रिकाओं में अनन्त-विविध विषयों पर जीवन भर लेख लिखते रहने वाला अथक और अप्रतिम निबंधकार। कितने प्रश्न, कितनी समस्याएँ उसकी लेखनी के नीचे थीं—कला और राजनीति, धर्म और शिक्षा, सामाजिक और सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय। उसका स्थान वस्तुतः दिदरो, आदि विश्वकोष-प्रणेताओं की पंक्ति में है। कालान्तर में उसके विचार संसार के सुदूर प्रदेशों तक जा पहुँचे और वृद्धावस्था में वह आक्रान्त राष्ट्रों का 'चैम्पियन' बन गया। दक्षिण जटलैंड के निवासी, चेक और स्लोवक, फिन, पोल, रूथेनी, सभी उसकी ओर प्रेरणा के लिये देखने लगे। व्यक्ति के रूप में इतनी महान् विभूति नार्वे ने अपने इतिहास में दूसरी नहीं उत्पन्न की।

तरुणावस्था में ब्योर्न्सन ने लिरिक, कहानियाँ और ऐतिहासिक नाटक लिखे। इनसे राष्ट्रीय आन्दोलन से उसका संपर्क व्यक्त होता है। नाटकों में उसकी 'ट्रिलोजी' 'सिगुर्द स्लोम्बे' विशेष मनोरम है, शेक्सपियर की परंपरा में प्रस्तुत बाद में उसी ने स्कैंडिनेविया के देशों में पहले-पहल आधुनिक यथार्थवादी नाटकों का प्रचलन किया। उसी के बनाए मार्ग पर इब्सेन और स्ट्रिन्डबर्ग आरुढ़ हुए। रंगमंच के लिए प्रस्तुत उसकी रचनाओं में प्रधान 'पाल लांगे' और तोरा पार्सबर्ग है। 'ओवेर ईव्ने' नाम के दो

नाटकों में से प्रथम यह नाटक संसार के साहित्य में अपना असाधारण स्थान रखता है।

उपन्यासकार और नाट्यकार के रूप में ब्योर्न्सन ने संसार में बड़ी ख्याति पाई। उसके पाठकों की एक बड़ी संख्या यूरोप और अमेरिका दोनों महाद्वीपों में थी। अनेक स्कैंडिनेविया निवासी कवियों को उसकी कविताओं ने प्रेरणा और दृष्टि दी है। कन्सर्ट-हाल उसके गीतों की ध्वनि से गूँजते रहते हैं। साथ ही जनसाधारण में भी उनका असीम राज है। आज भी उसके व्यक्तित्व की याद नार्वे निवासियों में उत्साह का संचार करती है।

इब्सेन की कृतियों—'ब्रांड' 'भूत' 'रोस्मर्शोल्म' की पृष्ठभूमि में नार्वे की प्रकृति अँगड़ाती है। उसके जंगल और पहाड़ी पठार अपनी लम्बी छाया फेंकते हैं। झरने गरजते हैं, बर्फीली चोटियाँ निस्पन्द खड़ी हैं। ब्योर्न्सन की कला भिन्न है—उसकी प्रकृति के विस्तार में मानव क्रियाशील है, घने जंगलों से ढके देहात—हजार घरों के प्रदेश—जागते सोते हैं, विस्तृत फ़्योर्द (समुद्र के थल से घिरे भाग) मानव-चित्त के विकारों को प्रतिबिंबित करते हैं। दोनों के लिए प्रकृति और मानव की यह अविराम लुका-छिपी निरन्तर अंकन का केन्द्र है।

यह प्रवृत्ति १८७० के बाद वाले उपन्यासकारों में भी लक्षित होती है। नार्वे के साहित्य-प्रकाशन पर भी यूरोपीय साहित्यिक आन्दोलनों का प्रभाव निरन्तर पड़ता जा रहा था। धीरे-धीरे यथार्थवादी उपन्यासों का स्थान १८८० के बाद, एकान्ततः प्रकृतिवादी उपन्यास ले लेते हैं जिनमें घटनाएँ साधारणतः बड़े नगर में घटती हैं और लिरिक के प्रति सारी चेतना दबा दी जाती है। कारण कि मनुष्य, परवश मानव गा नहीं पाता, केवल चीत्कार करता है और उसको विश्रृंखलित करने के लिए साहित्य भी अब कटिबद्ध होता है। स्वाभाविक ही तब सामाजिक और राजनीतिक उपन्यास समस्याओं के समाधान में लिखे जाते हैं और अनेकधा क्रान्ति के गीत गाते हैं, इन्कलाब के नारे बुलन्द करते हैं।

इस पिछली परंपरा में अधिकतर तरुण साहित्यकार दीक्षित हुए। उससे पहले की पीढ़ी—इब्सेन और ब्योर्न्सन के मित्रों—ने यह प्रतिबन्ध न माना और योनास ली[१] तथा अलेक्जान्डर कीलान्ड[२] पुराने सिद्धान्तों का ही साहित्य में निर्वाह करते रहे। १८८० के बाद अनेक उपन्यासों की रचना हुई। इनमें समसामयिक समाज लहरें मारता था और सम-कालीन साहित्यिक सिद्धान्त रूपायित होते थे। ड्रामा के क्षेत्र में तो नार्वे इब्सेन तथा ब्योर्न्सन के नेतृत्व में संसार में कब का अग्रणी हो चुका था, उपन्यास की दिशा में भी वह अब देशों की अगली पंक्ति में जा खड़ा हुआ।

---

१. Jonas Lie; २. Alexander Kielland

उस काल ही फ्रांस और जर्मनी में नव-रोमांटिक प्रतिक्रिया ने यथार्थवादी साहित्य का प्रतिवाद करना आरंभ किया था। नार्वे में भी १८९० के लगभग उसकी लहर उठी। उद्देश्यवादी उपन्यासों पर गहरा आघात हुआ। व्यक्तियों के महान् यथार्थवादी चित्रकार योनास ली ने कुछ काल उपन्यास लिखना छोड़कर परियों की कहानियाँ लिखनी शुरू कीं। उसकी मेधा कुछ काल प्रकृति की शक्ति, चन्द्रिका के सम्मोहन और रहस्यवाद के पेंच में पड़ी ऐंठती रही। गर्बोर्ग[1] उस काल प्रादिशिक बोलियों के क्षेत्र में सबसे महान् लेखक था। उसने आन्दोलन प्रेरित प्रतिबन्धों को अस्वीकार कर काव्य को अपनी मधुर्वर्षिणी मेधा का चमत्कार अर्पित किया। वह अब अपने मूलस्थान को लौट गया था और बचपन के दृश्य उसकी स्मृतियों में उभर-उभर कर रूप धारण करने लगे। लिरिक और प्रबन्ध-काव्य उसकी राष्ट्रीय-भावनाओं और धार्मिक प्रेरणाओं के वाहन बने। काव्य की सीमाएँ अधिकाधिक व्यापक होती गईं। काव्य-कली देहात के सौरभ से मत्त होकर चिटक रही थी। उसी देहाती काव्यबन्ध की परंपरा आज भी नार्वे में पूर्ववत् जाग रही है। विविध साहित्यिकों ने नार्वे के विविध प्रदेशों और मंडलों को उनकी निसर्ग-विभूति और किसान-जीवन को अपनी लेखनी से चित्रित किया है और आज भौगोलिक मानचित्र की ही भाँति नार्वे का एक साहित्यिक मानचित्र भी अपने विभिन्न धरातलों और दृश्य परंपराओं के साथ प्रस्तुत हो गया है।

बीसवीं सदी के प्रायः आरंभ में ही इब्सेन, ब्योर्न्सन और उनके अनेक समकालीनों का निधन हो गया। उनकी मृत्यु से एक युग का अन्त हो गया। परन्तु नए युग के आने में देर न लगी। क्नुत हाम्सुन[2] और योहन बोयेर[3] अब यूरोपीय यश के भागी हुए। उपन्यास के क्षेत्र में फिर नार्वे का साहित्य एक बार यूरोप की दृष्टि में चमका। १९०७ के साल में अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हीं में सीग्रिद उन्डसेत[4] भी थी जिसका प्रभाव युगप्रवर्तक प्रमाणित हुआ।

श्रीमती सीग्रिद उन्डसेत की ख्याति विशेषतः अपने वर्तमान युगीय उपन्यासों से हुई परन्तु अपने ऐतिहासिक ज्ञान और कल्पना के वैभव के लिए वह स्वदेश में बहुत पहले से ही विख्यात थी। क्रिस्तिन लाव्रान्स्दातेर पर उसकी ट्रिलोजी (१९२०-२२) बीसवीं सदी के नार्वे की सबसे महान् साहित्यिक कृति है। इस कृति से अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से, ऐतिहासिक उपन्यासों का साहित्य में पुनरागमन भी होता है। कुछ काल से उनका नार्वे के साहित्य में अभाव हो गया था। अब जो सीग्रिद की प्रेरणा और कृतिमत्ता से जो उनका पुनरावर्त्तन हुआ तो ऐतिहासिक उपन्यास लिखना फैशन ही हो गया। श्रीमती उन्डसेत (जन्म १८८२)

---

१. Arne Garborg; २. Knut Hamsun; ३. Johan Bojer; ४. Sigrid Undset

नार्वे के एक अत्यन्त प्रतिभाशील पुराविद् की कन्या हैं। पिता की अकाल-मृत्यु हो गई पर उसके गम्भीर ज्ञान की विरासत पुत्री को मिली। वह विरासत इतनी ज्ञानसम्पन्न है कि पण्डितों की पैनी खोज के बावजूद भी सीग्रिद के चौदहवीं सदी सम्बन्धी उपन्यास में एक दोष भी न मिला। क्रिस्तिन वस्तुतः १४वीं सदी की होकर भी आज की नारी है। सीग्रिद अपने ज्ञान और व्यक्तित्व दोनों अधिकार से आज "नार्वे की माता" है। देश उसकी कृतियों में साँस लेता है। उसकी जनता, उसके नगर-देहात, जंगल-पहाड़, ऋतु-वर्ष सभी उनमें अमर हो गए हैं। इस कथन की सार्थकता सीग्रिद के दो समकालीन साहित्यिकों के उपन्यासों में भी है। ओलाव दून[1], और जोहान फ़ाल्कबेर्गेत[2] इस युग के दो ख्यातिलब्ध कृतिकार हैं।

१९२० से आरम्भ होने वाला दशक उपन्यास लेखन में काफी सफल सिद्ध हुआ। पिछली पीढ़ी के साहित्यिक नार्वे का साहित्य भण्डार भरते रहे हैं। नाटकों का सृजन इतनी मात्रा में निस्सन्देह नहीं हुआ जितनी मात्रा में उपन्यासों का। परन्तु केवल यही दो क्षेत्र साहित्यक सक्रियता से सनाथ न हुए। वैज्ञानिक विषयों पर भी ऊँचे तबके के निबन्धकारों ने प्रभूत साहित्य रचा। उनसे बौद्धिक जीवन पर्याप्त समृद्ध हुआ।

नार्वे के साहित्यिकों ने भी डेनमार्क आदि के साहित्यिकों की भाँति नात्सी ताना-शाही का साहित्यतः विरोध किया। नात्सी शासन-काल में ऋद्ध लिरिक कविता की धारा वह चली और वह समर्थ कवियों के साथ स्वाधीनता के संघर्ष में अमोघ अस्त्र बन गए। वह सोद्देश्य काव्य साधना सफल हुई। उन अगणित कवियों में, जो देश के लिए तपे, दो विशेष उल्लेखनीय हैं। आर्नूल्फ़ ओवरलैंड[3] और नार्दाह्ल ग्रिग[4]। आर्नूल्फ़ जर्मन कैद में चार साल रहा। उसने अपनी अमर कृति—'वी ओवर्लिवर आल्त' (सबके बावजूद हम जीवित हैं) में बर्दाश्त और दृढ़ता को क्लासिकल मूर्तिकारों के जादू से रूपायित किया। कितनी साधना और तप उस काल क्रूर संहर्ता से संघर्ष में अपेक्षित थी। यह आर्नूल्फ़ का जीवन प्रमाणित करता है और वह जीवन इस कृति की पंक्तियों से साकार हो उठा है, जीवन जो मृत्यु को ललकार उठा है। ग्रिग ने बर्लिन की गोलाबारी में वीरगति पाई। परन्तु उसकी अमर पुकार आज भी उसकी ओजस्वी कविता संग्रह 'फ्रिहेतेन' (स्वाधीनता) में गूँज रही है। नार्वे के स्वतंत्र होने के शीघ्र ही बाद वह संग्रह प्रकाशित हुआ और देखते ही देखते उसकी ७०,००० प्रतियों का संस्करण बिक गया जो नार्वे की तीस लाख की आबादी को देखते हुए निस्सन्देह विस्मयकारक है।

---

१. Olaf duun; २. Johan Falkberget; ३. Arnulf Overland; ४. Nordahl Grieg

१५. पोल-साहित्य

पोल-साहित्य भी रूसी साहित्य की ही भाँति स्लाव साहित्य है। परन्तु यद्यपि वह अन्य स्लाव साहित्यों में सबसे महत्वपूर्ण है, रूसी की अपेक्षा वह साधारण है। उसमें उस पूर्वी साहित्य की न तो ताजगी है, न उसका साहस, न सौन्दर्य। उसका सम्बन्ध पूर्व की अपेक्षा पश्चिम से अधिक रहा है। इसी से उसके साहित्य की परंपराएँ भी पश्चिमी यूरोप के साहित्यों की रही हैं।

पोलैंड का दसवीं सदी में ईसाई हो जाना उसकी संस्कृति में बड़ा महत्व रखता है। वह इससे यकायक पश्चिमी देशों की पंक्तियों में जा खड़ा होता है। उसकी भाषा और साहित्य लैटिन प्रवृत्तियों और रूपों में प्रभावित होते हैं और उन्हीं की प्रवृत्तियाँ सोतों की तरह उनमें फूटती हैं। यही कारण है कि उसका पहला लिखित साहित्य लैटिन में मिलता है और उसका पहला लेखक लैटिन का प्रयोग करता है।

१३वीं सदी में पहली बार पोल भाषा साहित्य में प्रयुक्त हुई जब उसमें 'बुगुरो-द्जिका' (खुदा की माँ) लिखी गई। वह पोलैंड का पहला राष्ट्रीय स्तोत्र था जिसका गिरजाघर में और युद्धभूमि दोनों में समान रूप से व्यवहार हुआ। १४वीं सदी में उस भाषा में काफी लिखा गया। बाइबिल का एक अनुवाद हुआ और कुछ अन्य प्रयोग भी हुए। उसी सदी में (१३६४) क्रैको यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई और लिथुएनिया के मिला लिए जाने से पोलैंड की सांस्कृतिक चेतना में तो अभिवृद्धि हुई ही साहित्यिक प्रयास को भी शक्ति मिली। उस काल का सबसे महान् नाम निकोलस कोपरनिकस[1] का है जिसने आधुनिक ज्योतिष-विज्ञान की नींव डाली, यद्यपि उसकी रचनाएँ भी अधिकतर लैटिन में ही हुईं।

क्रैको यूनिवर्सिटी के रेक्टर जैकब पारकोज[2] ने १५वीं सदी के आरंभ में लिपि का सुधार किया और उसी की बनाई मात्राओं का प्रयोग आज की पोली में भी होता है। उससे भाषा के प्रयोग में कुछ सुविधा तो हुई परन्तु लिखने का प्रायः सारा कार्य लैटिन में ही होता रहा। फिर भी १६वीं सदी के आरम्भ में ही इटैलियन रेनेसांस का प्रभाव पोली साहित्य पर भी गहरा पड़ा।

पोलैंड शीघ्र ही सुधारवादी धार्मिक प्रेरणाओं से भी प्रभावित हुआ। उस आन्दोलन का वहाँ समर्थक नाग्लोविस का मिकोलज रेज[3] था जिसने भाषा में प्रभूत सुधार कर

---

१. Nicholas Copernicus (१४७३–१५४३); २. Jako'b Parkosz;
३. Mikolaj Rej (१५०५-६९)

देश और साहित्य का पुनरुदय स्तानिस्ला कोनार्स्की[1] ने किया। इटली और फ्रांस से पढ़ कर लौटने के बाद ही उसने स्वदेश की स्थिति सम्हालनी शुरू की। नये स्कूल खोले और उनमें प्राकृतिक विज्ञानों को पढ़ाने का प्रवन्ध किया। साथ ही उसने 'सफल शासन का रूप' लिखकर राजनीति पर भी अपना प्रभाव डाला। राजा स्तानिस्ला आगुस्त पोनियातोव्स्की[2] के अनेक साहित्यिक तरुण दरबारियों में कोनार्स्की के विचारों की प्रतिध्वनि उठी। स्तानिस्ला रूसी साम्राज्य का कमजोर अनुचर था, परन्तु उसकी सांस्कृतिक चेतना और उदारता ने देश में साहित्य और कला का सम्मान किया। ह्यूगो कोलाताज[3] ने शिक्षा कमीशन द्वारा कोनार्स्की के विचारों का प्रसार किया और स्तानिस्ला स्ताज़िक[4] ने अपनी योजनाओं—'वक्तव्य' और 'नसीहत' द्वारा देश का कल्याण किया। आदम नारूज़ेविक्ज[5] ने उसी काल अपना 'पोल जाति का इतिहास' लिखा।

इग्नासी क्रासिकी[6] भी स्तानिस्ला का समसामयिक था जिसने लिरिक कविताएँ और एक वीरकाव्य 'चोकिम का युद्ध' लिखे। उसकी 'मोनाचोमाचिया' और 'आन्ती-मोनाचोमाचिया' पोली भाषा की स्पष्टाकृति कृतियाँ हैं। निस्सन्देह तब का पोली साहित्य फ्रेंच क्लासिकल प्रवृत्तियों का शिकार था। उसी काल स्तानिस्ला त्रेम्बकी[7] और तोमास काजेतन वेगिएर्स्की[8] ने अपनी कथाएँ, फ्रांसिज़ेक कार्पिन्स्की[9] ने अपने लिरिक और कथाएँ तथा फ्रांसिज़ेक दियोनिज विनयाज्निन[10] ने अपनी कथाएँ लिखीं।

शीघ्र ही अभागा पोलैंड यूरोपीय साम्राज्यवादी लोलुपता का शिकार हो गया। रूस, प्रशा और ऑस्ट्रिया ने उसका बन्दर-बाँट कर लिया। इससे पोली साहित्य की बड़ी हानि हुई। जो कुछ साहित्य प्रस्तुत हुआ वह अधिकतर उन्हीं की लेखनी से जो उस उथल-पुथल के समय पोलैंड से भाग गए थे। ऐसा एक सिपाही जोज़ेफ़ विबिकी[11] था जो नेपोलियन की नौकरी में था और जिसने १७९८ में पोली राष्ट्रीय गीत 'जेज़ेजे पोल्स्का निए ज्गिनेला' लिखा। इसी प्रकार पश्चिमी यूरोप में अनेक पोल कवि यकायक प्रादुर्भूत हुए।

परन्तु वास्तविक साहित्यिक प्रगति देश में ही हुई जब पोलैंड के साहित्यकारों ने फ्रेंच 'क्लासिकल' प्रवृत्ति को त्याग अंग्रेजी या जर्मन प्रकार की रोमान्टिक परंपरा को अप-

---

१. Stanislaw Konarski (१७००-७३); २. Stanislaw August Poniatowski. ३. Hugo Kollataj (१७५०-१८१२); ४. Stanislaw Staszic (१७५५-१८२६); ५. Adam Naruszewicz (१७३३-९६); ६. Ignacy Krasicki (१७३५-१८०१); ७. Stanislaw Trembecki (१७३५-१८१२); ८. Tomasz Kajetan Wegierski (१७५५-८७); ९. Franciszek Karpinski (१७४१-१८२५); १०. Franciszek Dionyz Kniaznin (१७५०-१८०७); ११. Jozef Wybicki.

नाया। जुलियन उर्सिन-नीमसीविक्स[1] ने अपने लम्बे अमरीकी प्रवास से लौट कर अपनी कॉमेडी 'दूत का प्रत्यागमन' लिखी। फिर स्कॉट द्वारा प्रभावित होकर उसने ऐतिहासिक उपन्यास और रोमान्टिक बैलेड भी लिखे। जॉन पावेल वोरोनिक्ज[2] ने देश प्रेम की कविताएँ लिखकर राष्ट्रीय चेतना जगाई। कुछ पोल साहित्यकार अब भी ग्रीस और रोम की विगत सत्ता की ओर देख रहे थे। इनमें उल्लेखनीय काजेतन कोज्मिया[3] है।

युग रोमान्टिक प्रवृत्तियों का था। नए युग का आरम्भ काजिमिर्ज ब्रोदजिन्स्की[4] ने किया। उसने हर्डर[5], गेटे,[6] और शिलर[7] के बैलेडों का पोली में अनुवाद किया। वह जर्मन विचारधारा से काफी प्रभावित था और उसके आलोचनात्मक ग्रन्थ उसी प्रेरणा में लिखे गए। उसने फिर भी अपनी स्वतंत्र चेतना को विस्मृत न होने दिया। रोमान्टिक चेतना ने पोलों को उनके गौरवमय अतीत की ओर आकृष्ट किया और उनमें राष्ट्रीय भावना जगाई। १८०० में वारसा में 'विज्ञान के मित्रों का संघ' बना। विल्नो का विश्व-विद्यालय राष्ट्र-प्रेमी युवकों का केन्द्र बन गया। अनेक साहित्यिक संस्थाओं का आरम्भ हुआ जिनका उद्देश्य गुप्त रूप से राष्ट्रीयता का प्रतिपादन करना भी था। इन संस्थाओं में मुख्य 'फ़िलोमाती' और 'फिलारेती' थे। उसी काल दक्षिण पूर्व में एक रोमान्टिक पोली-उक्रेनी लेखक दल का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं में रोमान्टिक कवि आन्तोनी माल्चेव्स्की[8] भी था। उसने तुर्कों के विरुद्ध पोलों और उक्रेनियों के सम्मिलित संघर्ष को अपने काव्य 'मार्जा' का विषय बनाया। उसमें सारी उदात्त भावनाएँ, प्रेम और घृणा के आदर्श, राष्ट्री-यता की समग्र सक्रियता, अतीत का गौरव, शील और वीरता रूपायित हुई। उसी काव्य परंपरा के उपासक कवि जोजेफ बोह्दान जालेस्की[9] और सेवेरिन गोज़्ज़िन्स्की[10] हुए।

उस आन्दोलन और साहित्यिक पुनर्जागरण को विशेष बल विल्नो के विश्वविद्यालय से मिला। वहीं नए कवियों और लेखकों के दल साहित्य और राष्ट्र के नवनिर्माण में दीक्षित होते थे। आदम मिकीविक्स[11] सबसे महान् पोली रोमान्टिक कवि था। विल्नो यूनिवर्सिटी में उसने बड़ी तत्परता से साहित्य का अध्ययन किया था और आरम्भ में कलास्किल परंपरा का भक्त था। परन्तु शीघ्र ही कोनों में प्रोफेसर होने के बाद उसकी विचारधारा बदल गई और जर्मन रोमान्टिक कवि उसे रुचने लगे। १८२२ और २३ में उसने अपनी कविताओं की पहली दो जिल्दें प्रकाशित कीं। साथ ही 'पूर्वज' नाम के बैलेडों के भी अनेक

---

१. Juljan Ursyn Niemciewicz (१७५७-१८४१); २. Jan Pawel Woronicz (१७५७-१८२९); ३. Kajetan Kozmian (१७७१-१८५६); ४. Kazimierz Brodzinski (१७९१-१८३५); ५. Herder; ६. Goethe; ७. Schiller; ८. Antoni Malczewski (१७९३-१८२६); ९. Jozef Bohdan Zaleski (१८०२-८६); १०. Seweryn Goszczozynski (१८०१-७६); ११. Adam Mickiewicz (१७८८-१८५६)

खण्ड प्रकाशित हुए। १८२४ में वह कैद कर रूस निर्वासित कर दिया गया। पीटर्सबर्ग, ओदेसा और मॉस्को का उसका प्रवास उसके लिये बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ। वह तत्कालीन रूसी साहित्य के प्रमुख निर्माताओं से मिला। पुश्किन से भी उसकी मैत्री हुई। उस काल की उसकी रचनाएँ 'क्रीमिया के सॅनेट' 'कोन्राद वालेन्रोद' और 'फ़ारिज़' हैं।

सरकार से अनुमति लेकर मिकीविक्स स्विट्ज़रलैंड और पेरिस गया, जहाँ वह ज़िग्मुन्ट क्रासिन्स्की[1] और जूलियस स्लोवाकी[2] से मिला। पोली विद्रोह तभी भड़का और उसने स्वदेश लौट कर विप्लव में हाथ बँटाना चाहा पर लौट न सका। फिर उसने आत्म वृत्तान्तात्मक 'पूर्वज' के कुछ खण्ड लिख डाले। उसमें उसने अपने समसामयिक क्रान्ति-कारियों का बड़ा सजीव वर्णन किया। विल्नो में क्रान्तिकारियों का विचार हो रहा था। उसने उस मुकदमे का कच्चा चिट्ठा खोलकर अपनी इस अमर कृति में रख दिया। इसी काल उसने अपना 'पोल राष्ट्र और तीर्थ-यात्रा' प्रस्तुत किया जिसमें सदियों पहले का पोलैंड अपने संघर्षों और अविजित पौरुष के साथ उभर आया। १८३४ में उसने अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना 'पान ताद्युज़' (लिथुएनिया का अन्तिम मोर्चा)—प्रकाशित की जिसमें नेपोलियन पूर्व का पौलैंड, अपने राजनीतिक—सामाजिक रूप में, मूर्तिमान हुआ। यह कृति जितनी राष्ट्रीय वीरकाव्य के रूप में पोलैंड की परिचायक है उतनी ही अपने रचयिता मिकीविक्स की। कुछ काल वह रोमन कैथोलिक पादरी आन्द्रेज तोवि-आन्स्की[3] के प्रभाव में रहा और परिणामस्वरूप उसे पेरिस के कॉलेज व फ्रांस की प्रोफेसरी छोड़नी पड़ी। परन्तु शीघ्र ही वह प्रकृतिस्थ हो गया, क्रीमिया के युद्ध में उसने पोलों की एक सेना प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, कुस्तुन्तुनिया गया और वहीं बीमार होकर १८५६ में मर गया।

जूलियस स्लोवाकी का उल्लेख ऊपर हो चुका है। मिकीविक्स उससे पेरिस में में मिला था। दोनों के विचारों में प्रभूत अन्तर था। स्लोवाकी[4] को अनेक मिकीविक्स से भी महान् मानते हैं पर साधारणतया वह पोली रोमान्टिक कवियों में दूसरा महान् कवि समझा जाता है। विल्नो में असफल प्रणय के बाद वह वारसॉ और तदुपरान्त फ्रांस चला गया था। वह अधिकतर स्विट्ज़रलैंड और फ्रांस में ही रहा। वह मिकीविक्स का मित्र और आलोचक दोनों था। उसने पहले 'मिन्दोवे' और 'मार्जा स्तुअर्त' के से नाटक लिखे। शीघ्र ही उसकी कविता 'जान बिलेकी' और 'लिरिक' 'भगवान की माता का स्तोत्र' और 'स्वाधीनता-गान' प्रकाशित हुए। 'कोर्जान' में उसने आत्मकथात्मक सामग्री का उपयोग किया और आन्हेली में प्रवासियों के चरित पर प्रकाश डाला। 'बेनिऔस्की'

---

१. Zygmunt Krasinski; २. Juljusz Slowacki; ३. Andrzej Towianski; ४. Julijusz Slowacki (१८०९-४९)

में अट्ठारहवीं सदी की एक कथा है। 'बालादिना' और' लिलावेनेदा' प्रागैतिहासकालीन स्लावों की कथाएँ नाटक के रूप में आई हैं। 'प्लेगपीड़ितों का पिता' भी पूर्वात्यकथानक का एक नाटक ही है। वह भी एक बार मिकीविक्स की ही भाँति तोविआन्स्की के चक्कर में पड़ गया था और तब नितान्त दार्शनिक कविताएँ लिखने लगा था। 'आत्मा की उत्पत्ति' और विशेषत: 'क्रोल दूच' उसी संबन्ध के द्योतक हैं। स्लोवाकी अल्पायु में ही मर गया।

उस दल का तीसरा विशिष्ट कवि जिगमुन्ट क्रासिन्स्की[१] था। वह भी प्रवासी पोल था। पेरिस में पैदा हुआ था, वारसॉ में बड़ा हुआ और पोली विप्लव के पहले स्विट्-जरलैंड भेज दिया गया यद्यपि वह आन्दोलन में भाग लेना चाहता था। उसने 'अदैवी कॉमेडी' (१८३५) द्वारा ख्याति अर्जित की। उसमें उसने आन्दोलन के कुछ पहलुओं पर साहित्य के माध्यम से प्रकाश डाला। 'इरीडियन' में ग्रीक कथानक का उपयोग हुआ। इन दोनों कृतियों में पोलैंड के सम्बन्ध में उसने निराशाजनक भावनाएँ चित्रित की हैं। आशात्मक संभावनाओं का उद्रेक उसकी अन्य कविताओं—जैसे, 'उषा' 'भविष्य के स्तोत्र' और 'सहानुभूति के स्तोत्र'—में हुआ है।

पोली अभिनिष्क्रमण ने छोटे बड़े अनेक अन्य कवि उत्पन्न किये। इनमें प्रधान सिप्रियन कामिल नॉर्विद[२] और अलेक्सान्दर चोदस्को[३] थे। इनके अतिरिक्त कुछ दार्शनिक विवेचक भी थे जिन्होंने साहित्य को अपने दर्शन का आधार बनाया, उनमें प्रधान जोजेफ होइने रोन्स्की[४] जोजेफ क्रेमर[५] कारोल लीबेल्त[६] ब्रोनिस्ला फर्दिनान्द त्रेन्तावस्की[७] और आगुस्त सीजकाउस्की[८] थे।

पोलैंड पर विदेशी सत्ता का अधिकार हो तो गया था पर वहाँ भी साहित्य-निर्माण का कार्य किसी न किसी रूप और मात्रा में चलता रहा। स्तेफाँ जेरोम्स्की[९] ने निराशात्मक प्रवृत्ति का अपने 'गृहविहीन लोग' और 'भस्म' में परिचय दिया। उसने प्रणय और मानवी समस्याओं पर "पाप का इतिहास" में अपने विचार प्रगट किये। उसके उपन्यास और नाटक दोनों में उसी निराशावादी प्रवृत्ति का अंकन हुआ परन्तु प्रथम महायुद्ध और पोलैंड की स्वतन्त्रता ने उसे अपना 'समुद्र की हवा' लिखने को प्रोत्साहित किया।

१९वीं सदी के अन्त में पोलैंड में 'तरुण पोलैंड' नाम का एक आन्दोलन शुरू हुआ। मिकीविक्स को आदर्श मानकर पोली-कला को पुनरुज्जीवित करना ही उसका

---

१. Zygmunt Krasinski (१८१२-५९); २. Cyprjan Kamil Norwid (१८२१-८३); ३. Aleksander Chodzko (१८०४-९१); ४. Jozef Hoehne Wronski (१७७८-१८५३); ५. Jozef Kremer (१८०६-७५); ६. Karol Libelt (१८०७-७५); ७. Bronislaw Ferdynand Trentowski (१८०७-६९); ८. August Cieszkowski (१८१४-९४); ९. Stefan Zeromski (१८६४-१९२५)

उद्देश्य था। पोलैंड का साहित्य भी उस नये मूल्यांकन का लक्ष्य बना। उस दल का सबसे विशिष्ट लेखक स्तानिस्लॉ विस्पियान्स्की[१] चित्रकार, कवि और नाट्यकार था। उसके विचारों में न्यायप्रियता और आजादी का प्राधान्य था। वह पोली दृष्टिकोण रखता हुआ भी मानव दृष्टिकोण का पक्षपाती था और सर्वत्र उसने उसे अपने विचारों का आधार बनाया। 'विवाह' 'और 'वारसा' की लड़की' (१८३१ का एक गीत) दोनों में उसका यह दृष्टिकोण समुचित रूप से स्थापित हुआ है। प्रथम महायुद्ध के साथ ही पोल साहित्य का सभी दिशाओं में विकास हुआ। ल्योपोल्ड स्टाफ[२] ने काव्य में रसवाद का प्रसार किया, जोजेफ वेसेनहाफ[३] ने भावुक कृतियाँ प्रस्तुत कीं, जाफ्जा रिगीर-नाल्कोवस्का[४] ने 'नारी दर्शन' का चिन्तन किया, स्तानिस्ला ब्राजोजुस्की[५] ने क्रान्तिकारी आलोचना का सूत्रपात किया और स्त्रुग (तादुस गालेकी)[६] ने रोमान्टिक प्रवृत्तियों को सँभाला। इस प्रकार चेतना चाहे जैसी रही हो, थी वह प्रायः सर्वतोमुखी।

राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त हो जाने पर, आजाद विचारों का प्रकाशन बड़ी तन्मयता और आसानी से होने लगा। 'स्कामान्दर' प्रधान साहित्यिक पत्र था जिसके कॉलम जूलियन तूविम[७] के लेखों से भरे रहते थे। उसने शब्द की व्याख्या विशेष रूप से करनी शुरू की और अन्तोनी स्लोनिम्स्की[८] तथा जान लेचोन[९] ने अलंकारों का विशेष उपयोग किया। इनके योग से पोली भाषा और काव्य-शैली निखर चली। इला काजीमीरा इलाकोविचोवना (इलाकोविच)[१०] ने मानवी हृदय की यातनाओं को व्यक्त किया और मार्जा पोलिकोव्स्का[११] ने संक्षिप्त शैली का अपनी कृतियों में विकास किया। व्लादिस्लाव ब्रोन्यूवस्की[१२] इनके विपरीत, जनता का साहित्यकार था और उसने अपनी रचनाओं में सर्वहारा वर्ग के पक्ष का समर्थन किया।

गद्य के क्षेत्र में पुराने लेखकों को भी युद्धोत्तर संसार ने एक नयी दृष्टि दी। रेमोन्ट,[१३] कासप्रोविक्स[१४] और जेरोम्स्की[१५] तो बहुत दिनों जिन्दा न रहे परन्तु व्लोदीमीर्ज परजिस्की[१६] वाकला बेरेन्ट[१७] आदि ने अपने उपन्यासों में विविध विचारों का प्रकाश किया।

---

१. Stanislaw Wxspianski (१८६९-१९०७); २. Leopold Staff; ३. Jozef Wejssenhaf (१८६०-१९३२); ४. Zafja Rigier Nalkowska (जन्म १८८५); ५. Stanislaw Brzozowski (१८७८-१९११); ६. Strug TSadeusz Galecki) (जन्म १८७३); ७. Juljan Tuwim (जन्म १८९४); ८. Antoni Slonimski (जन्म १८९५); ९. Jan Lechon (जन्म १८९९); १०. Illa Kazimiera Illakowiczowna (Illakowicz) (जन्म १८९२); ११. Maraja Pawlikowska १२. WladyslawBroniewski (जन्म १८९८); १३. Reymont, १४. Kasprowicz; १५. Zeromski १६. Wlodzimierz Perzynski (१८७८-१९३०); १७. Waclaw Berent (१८७३-१९४०)

तरुण लेखकों ने उनसे अधिक अपनी प्रवृत्तियों को रूपायित किया। उगेन्जुज कोरिविन-माल्कचेव्स्की[१] ने अपने उपन्यासों का आधार युद्ध की अनुभूतियों को बनाया। फर्दिनान्द गेतेल[२] ने अपने उपन्यास 'दिन ब दिन' में तुर्किस्तान का जीवन अंकित किया। जोफिया कोसाकजुका[३] ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे।

कम्युनिस्ट लेखकों में सबसे महत्त्व का संभवत: वान्दा वासिलेव्स्का[४] है। उसी प्रकार के विचारों का लिओन क्रुस्काव्स्की[५] भी है। जूलियस काद्रेन बन्द्रॉवस्की[६] मार्शल पिल्सुदस्की[७] का प्रबल अनुयायी है और उसी की भाँति उसने भी पोल जीवन की आलोचना की है। जारोस्ला इवास्कीविक्स[८] और मिचाल चोरोमान्स्की[९] वातावरण का सुन्दरतम अंकन करते हैं। जोजेफ विटलिन[१०] ने प्रथम महायुद्ध पर सुन्दर उपन्यास 'जमीन का नमक' लिखा। साहित्यालोचना के क्षेत्र में तादूज ब्वाय-जेलेन्स्की[११] प्रधान हैं।

दूसरे महायुद्ध में पोलैंड चेकोस्लोवेकिया के बाद ही नात्सी साम्राज्यवाद का शिकार हुआ था। अत्यन्त क्रूरता से उस देश की आजादी का गला घोंट डाला गया। लाखों की तादाद में लोग वहाँ मारे गये। पोलैंड सदा का अभागा देश रहा है परन्तु जिस निष्ठा से नात्सीवाद ने उस युद्ध के आरंभ में पोलैंड की जनता का संहार किया वह इतिहास में अन्यत्र उपलब्ध नहीं। वहाँ के 'कन्सेन्ट्रेशन कैम्प' नरक की नितान्त काल्पनिक यातनाओं को भी अपनी यथार्थता से सच कर देते हैं। 'पोग्रम' (जनदल का आयोजित संहार) इतने भयंकर उदाहरण और कहीं नहीं मिलते जितने नात्सी अधिकृत तब के पोलैंड में। यहूदियों की वहाँ संख्या अधिक होने के कारण उनका विनाश भी उसी मात्रा में हुआ। उसी मात्रा मे पोलैंड के साहित्यकारों का भी संहार हुआ। अनेक मार डाले गये। अनेक आक्रमण के शिकार हो गये, अनेक निर्वासित कर दिये गये, अनेक अपने आप बड़ी कठिनाई से देश छोड़ कर बाहर चले गये। अब नात्सियों से आजाद होने के बाद फिर पोलैंड की भारती एक बार फिर मुखरित हुई है और साहित्य का निर्माण जनहिताय होने लगा है। अपने बलिदानों और साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा का आहार बनने की भयंकर अनुभूति से पोलैंड का साहित्यकार भावों का सबसे बड़ा धनी है, निस्सन्देह उसकी अनुभूति-सम्पदा उसके साहित्य का प्रशंस्य विषय बनेगी।

---

१. Eugenjusz Korwin-Malaczewski (१८९५-१९२२); २. Ferdynand Goetel (जन्म १८९०); ३. Zofja Kossak-Szczucka; ४. Wanda Wasilewska; ५. Leon Kruczkowski; ६. Juljusz Kadren-Bandrowski (जन्म १८८५); ७. Marshal Pilsudski; ८. Jaroslaw Iwaskiewicz (जन्म १८९४); ९. Michal Choromanski (जन्म १९०४); १०. Jozef Wittlin (जन्म १८९६); ११. Tadeusz Boy-Zelenski (जन्म १८७४)

१६. फ़ारसी-साहित्य

: १ :

इस्लाम से पूर्व

ईरानी हिन्द-यूरोपीय आर्यों की ही एक शाखा माने जाते हैं। "ईरानी" शब्द भी व्युत्पत्तिक रूप में 'आर्य' शब्द के बहुत पास है। फ़ारस या पार्स ईरान के एक विशिष्ट प्रान्त का नाम था जिससे वह फ़ारस, पार्स या फ़ार्स कहलाया। संस्कृत में ईरानियों को "पारसीक" कहा गया है। फ़ारसी भाषा का संबंध एक ओर तो प्राचीन भारतीय संस्कृत से है दूसरी ओर यूरोप की "क्लासिकल" भाषाओं से। प्राचीन काल में ईरानी मूल आर्य जाति से संभवतः कास्पियन सागर के समीप पृथक हुए और दक्षिण-पूर्व की ओर घूमते हुए ईरानी, मीडी आदि अनेक नामों से सीर, आमू (वक्षु) आदि नदियों की घाटी में बस गए। इन्हीं दिनों वे ईरान में भी बसे और अपनी भाषा का विकास किया।

ईरानी जाति का उत्कर्ष नवीं सदी ई० पू० के मध्य में हुआ। तब उस दिशा में और पश्चिमी एशिया में, मिश्र तक, असुरों का प्रभुत्व था। कुरुष् महान् के राज्यकाल (५५८-५३०) ई० पू० में ईरान अपनी शक्ति के लिए विख्यात हुआ। कुरूष् (साइरस) ने मीडी कुल को उखाड़ फेंका और बाबुल (बावेरू) तथा उसके अनुवर्ती देशों को जीतकर इतिहास प्रसिद्ध हख़मनी वंश की नींव डाली। इस वंश का उत्कर्ष पहले पार्स प्रांत में ही हुआ और जैसे-जैसे समूचे ईरान पर उस राज वंश का प्रभुत्व फैला पार्स भी वैसे ही वैसे उस देश की संज्ञा बन गया। ग्रीकों ने उसे "पर्सिस" कहा जिसका लेटिन रूप "पर्जिया" या पर्शिया" आज भी प्रचलित है।

कुरूष् के बाद उसके राज्य का स्वामी उसका पुत्र काम्बुजीय हुआ। उसने मिश्र तक भूमि जीत ली। परन्तु घर का विद्रोह दबाने जब वह शीघ्रता से लौटा तो सीरिया में राह में ही उसकी मृत्यु हो गई (५२१ ई० पू०)। उसके बाद हख़मनी राजकुल की गद्दी का हिस्तास्प हक़दार हुआ परन्तु वह काम्बुजीय के शत्रु से राजदण्ड न छीन सका। वह कार्य उसके पुत्र दारायवौष प्रथम (दारा) ने किया। दारा ने ५२१ ई० पू० में ही राज्य शत्रु से छीन लिया और अपने शासन की सीमाएँ दूर दूर तक फैला दीं। फ़ारसी साहित्य का आरम्भ उसी नृपति के शासन काल में हुआ। उसके अनेक विजयलेख आज भी चट्टानों और प्रस्तर पट्टों पर सुरक्षित हैं। इनमें प्रसिद्ध बहिस्तून और नक्श-ए-रुस्तम के अभिलेख हैं। पिछले अभिलेख से, जो उस शक्तिशाली सम्राट् की क़ब्र पर खुदा है,

स्पष्ट है कि उसने सिन्ध और पश्चिमी पंजाब जीतकर बीसवीं क्षत्रपी (सूबा) अपने साम्राज्य में मिला लिया था। उसी लेख में पहले-पहल हिन्दू (हिंदु) शब्द का प्रयोग हुआ। जिससे कालान्तर में हिन्दी भाषा का नाम पड़ा। बहिस्तून खुरासान-वणिक्पथ पर किरमानशाह से पन्द्रह कोस पूर्व है। इस लेख में सम्राट ने अपने पूर्वजों, विरुदों और विजयों का उल्लेख किया है और उस आहूरमज्दा का भी जिसकी कृपा से उसे युद्धों में विजय मिली। उसके अभिलेखों का भारतीय लेख-प्रथा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मौर्य-कला ने तो उसकी कला-कृतियों को अपना प्रतीक बनाया ही, अशोक ने उसी के अभिलेखों को सामने रख भारत में पहली बार विस्तृत रूप से चट्टानों और स्तम्भों पर अपने विचार खुदवाए। पश्चिमी पंजाब में तो उसने हख़मनी लिपि (दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जानेवाली खरोष्टी) में ही अपने अभिलेख खुदवाए और खोदने वाले को ईरानी भाषा की ही "दिबिर" (लेखक) संज्ञा मिली।

लेख गद्य की एक शैली प्रस्तुत करते हैं। भाषा संस्कृत से मिलती है। दारायवौष् अपने को "आर्यों" में आर्य (आर्याणां आर्य:) क्षत्रियों में 'क्षत्रिय' (क्षत्रियाणाम् क्षत्रिय:) कहता है। दारायवौष और उसके उत्तराधिकारी क्षयाषी (४८५-४६५ ई. पू.) (ज़रक्सीज़) और आर्तक्षयाषी (ऋतज्ञ-याषी-४६५-२४) के नक्शा-ए-रुस्तम और पर्सिपोलिस के लेख ईरानी राष्ट्रीय साहित्य का आरंभ करते हैं। क्षयाषी का उल्लेख ग्रीक-साहित्य में प्रचुर हुआ है क्योंकि उसने अपनी राज्यसीमा भूमध्य सागर तक बढ़ाकर एथेन्स को जला डाला था। उसकी ओर से भारतीय भी ग्रीस में लड़े थे। इन लेखों में जो आहूरमज़्दा का उल्लेख हुआ है उससे प्रगट है कि छठी सदी ई.पू. तक जरतुश्ती (पारसी) धर्म ईरानी में पूर्णतया प्रचलित हो चुका था।

जरतुश्त (जरथुश्थ) के काल के संबंध में विद्वानों में बड़ा विरोध है। उसका जीवन काल ६००० से ६०० ई० पू० तक रखा गया है। वैज्ञानिक विद्वानों ने उस महापुरुष का समय सातवीं सदी ई० पू० का उत्तरार्द्ध माना है। वह सम्भवत: अजरबैजान का रहने वाला था। पारसियों का होमपरक धर्म ग्रंथ "अवेस्ता" उसी की कृति माना जाता है। कम से कम उस ग्रंथ का गाथा भाग ज़रतुश्त द्वारा प्रस्तुत मानने में कम विद्वानों को आपत्ति है। "अवेस्ता" में स्थान-स्थान पर सुन्दर कविता का परिचय मिलता है। "अवेस्ता" प्राचीन ईरानियों (भारतीय पारसियों) का धर्मग्रंथ तो है ही, उस काल की बोली का भी नाम है। उसकी भाषा अभिलेखों की भाषा से अनेकार्थ में भिन्न और वैदिक संस्कृत के अनुरूप है। कुछ ध्वनियों को बदल कर पढ़ने से लगता है कि हम ऋग्वेद के उच्चरित मंत्र सुन रहे हों। वर्तमान "अवेस्ता" केवल खंड रूप में ही उपलब्ध है। पारसियों का कहना है कि ससानी काल (छठी सदी ईस्वी) में उसके इक्कीस खंड थे। उसके दो भाग हैं—अवेस्ता और प्रार्थनाओं का खुर्द अवेस्ता। अवेस्ता तीन भागों में विभक्त है—(१) गाथापरक

"वेन्दीदाद" (२) यज्ञमंत्रों का संग्रह "विस्पेरद और पूजापरक" "यस्त"। अवेस्ता का महत्व वस्तुतः साहित्य के क्षेत्र में इतना नहीं जितना भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में है।

चौथी सदी ईस्वी पूर्व में ईरान का स्वामी दारायवौष तृतीय था। उसी को मकदूनिया के सिकन्दर ने ३३१ ई० पू० में गागामेला में परास्त किया। उस पराजय से जो ईरानी साम्राज्य का पतन हुआ तो सदियों ईरान की सत्ता भूलुण्ठित रही। फिर २२४ ईस्वी में ससानी राजकुल का आरम्भ हुआ और एक बार फिर धर्म और साहित्य का उत्कर्ष हुआ। इन पाँच सौ वर्षों के अन्धकार-युग में ईरान पर पहले ग्रीक सेल्यूकस के राजवंश का, फिर अर्सक राजकुल का शासन रहा। अर्सक ने सेल्यूकस के साम्राज्य से विद्रोह कर जिस शासन का आरंभ किया था वह भी ईरानी ही था, परन्तु ज़रतुश्ती धर्म वास्तविक राष्ट्रीय आंदोलन के साथ फिर से ईरानी धरा पर ससानी राजकुल के साथ ही आविर्भूत हुआ। इसका पहला राजा आर्दशीर अथवा आर्दक्षीर (ऋतक्षीर) था जो अपने को हख़मनी कुल का ही वंशधर मानता था।

उस काल ईरान में जिस भाषा का प्रचलन हुआ वह पहलवी थी, "पार्थवी"। पहलवी का पूर्वतम रूप हमें प्राचीनतम ससानी अभिलेखों में मिलता है। इस भाषा में जरतुश्ती धर्म के ऊपर इस्लाम की विजय के पहले काफी साहित्य प्रस्तुत हुआ होगा। परन्तु इस्लाम की संहारक चोट ने प्रायः सबका अन्त कर दिया। पहलवी के स्थान पर अरबी लिपि का व्यवहार आरम्भ हुआ और पहलवी जरतुश्ती पुरोहितों मात्र की भाषा रह गई। नवीं सदी ईस्वी के बाद तो पहलवी का सर्वथा अन्त ही हो गया और उस काल की जो कुछ रचना बच रही है उसकी रक्षा का श्रेय बम्बई के पारसियों को है जिनके पूर्वज धार्मिक असहिष्णुता के कारण ईरान छोड़ कर आठवीं सदी में हिन्दुस्तान चले आए थे।

जो कुछ बच रहा है वह सारा धार्मिक साहित्य है, अवेस्ता से सम्बन्धित। अवेस्ता की व्याख्या को जन्द कहते हैं और प्रायः दोनों का एक साथ जन्दावेस्ता नाम लिया जाता है। जन्द साहित्य की भाषा पहलवी है। अवेस्ता सम्बन्धी अन्य धार्मिक रचनाओं के नाम हैं "बुन्दहिश" "दीन्कर्त" "मैन्यो इ खिरद्"। इन्हीं के साथ कुछ लौकिक साहित्य का भी प्रादुभाव हुआ जिसमें ऐतिहासिक ख्यातें, कथाएँ आदि सुरक्षित हुईं। ये ही ख्यातें मुस्लिम ईरान के कवियों के लिए विचार भण्डार सिद्ध हुईं। इस दृष्टि से इस काल की लौकिक रचनाएँ बड़े महत्त्व की हैं। उनमें बड़ी विविधता है। इनमें ससानी काल का पारसियों के सामाजिक आचार का एक शास्त्र भी है जिसमें विवाह, सम्पत्ति, गुलामों आदि के सम्बन्ध में विधान दिए हुए हैं। इसी प्रकार पत्र-लेखन की कुछ शैलियाँ भी एक संग्रह में प्रस्तुत हैं जिनमें पत्रों के आरम्भ-अन्त करने की पद्धति दी हुई है, साथ ही उसमें प्राचीन पहलवी की एक शब्दावली भी पाज़न्द जबान में दी हुई है। उस साहित्य की एक रचना शतरंज सम्बन्धी एक काल्पनिक कहानी है, दूसरी खुसरो-ए-कवातान् और उसके अनुचर

की कथा है। परन्तु साहित्य की सबसे महत्व की कृतियाँ हैं—"यात्कार-ए जरीरान" (जरीरों के संस्मरण) जिसका दूसरा नाम "शाहना-ए-गुश्तास्प" (गुश्तास्प का वीर काव्य) है, और "कार-नामक-ए-अर्तख्शीर-ए-पापकान" (बाबकपुत्र अर्दशीर के वीर-कृत्यों की पुस्तक)। इनमें पौराणिक और अर्धैतिहासिक व्यक्तियों की कथाएँ हैं और इनकी सामग्री बहुत कुछ फिरदौसी के शाहनामा से मिलती है।

"यात्कार" में अर्जास्प और गुश्तास्प नामक दो राजाओं के युद्ध का वर्णन है। अर्जास्प के दूत गुश्तास्प को अपना ज़रतुश्ती धर्म छोड़ देने को कहते हैं और उसके इन्कार करने पर लड़ाई छिड़ जाती है। गुश्तास्प का भाई जरीर बड़े पराक्रम के बाद वीरगति को प्राप्त होता है। कार-नामक-ए-अर्तख्शीर में अर्दशीर की कथा है जो वस्तुतः दारा का वंशधर है, पर अनजान में भेड़ चराता है। बड़े होने पर उसे ईरान का बादशाह बुला लेता है पर शाह-जादे से लड़ने के कारण वह महल से निकाल दिया जाता है। वह फिर लौटता है और बाद-शाह को हरा कर उसकी कन्या से विवाह करता है। इन कृतियों का सही रचना-काल तो ज्ञात नहीं परन्तु निःसंदेह वे किसी पश्चात्कालीन ससानी राजा की संरक्षा में प्रस्तुत हुई। फिरदौसी को अपने शाहनामा के लिए इससे बड़ी सामग्री मिली।

उस काल के काव्य का कोई रूप हमें आज उपलब्ध नहीं, यद्यपि यह विश्वास करना कठिन है कि नौशेरवाँ और खुसरो परवेज के से बादशाहों के अपने कवि और गायक न थे। अरबों ने यज़्दगिर्द को परास्त कर ससानी राजकुल का अन्त कर दिया। इस्लाम ने ज़रतुश्ती धर्म का स्थान लिया और ईरान विशाल अरब साम्राज्य का एक प्रांत बन गया। इस्लाम अपने विचार और जीवन के प्रति अपना दर्शन लेकर आया था, नित्य के आचार तक, और उसने ईरानी आचार-विचारों, धर्म-विश्वासों में आमूल परिवर्तन कर दिये।

साहित्य के क्षेत्र में भी उसका दूरगामी प्रभाव पड़ा। पहलवी लिपि के स्थान पर अरबी प्रतिष्ठित हुई और प्रत्येक नव-मुस्लिम का अरबी ज़ुबान जानना अनिवार्य हो गया क्योंकि उसके बिना नमाज़ या क़ुरान पढ़ना सम्भव न था। जरतुश्ती धर्म का सर्वथा नाश न हुआ और उस काल की ख्यातें, कथाएँ और लोक-साहित्य निश्चय ही बचे रहे जो भावी साहित्य का आधार बने। स्वयं इस्लाम को ईरानियों ने अपने रंग में रँग दिया, जिससे अली की हत्या के बाद शिया सम्प्रदाय का आरंभ हुआ। जिस कट्टरता से ईरानियों की रहन-सहनपर अरबों ने शासन रखा उससे सम्भव न था कि वहाँ किसी प्रकार के इस्लाम-विरोधी जातीय साहित्य का निर्माण हो। ईरान के पतन के सौ-दो सौ वर्षों बाद का काल साहित्य की दिशा में प्रायः सर्वथा अनुर्वर सिद्ध हुआ।

: २ :

अब्बासी ख़िलाफ़त-काल

(७५०–१२५८ ई०)

धीरे-धीरे रूढ़िवादी इस्लाम का पलड़ा भारी होता गया, उसकी शक्ति बढ़ती गई। उसके नेताओं ने ईरानी असंतोष से लाभ उठा ईरानियों में बग़ावत फैला दी। बग़ावत सफल हुई और खलीफों की परंपरा शक्तिमती हुई। तब मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी दमिश्क से उठकर बगदाद चली गई और तब ईरानियों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिला। उनकी सूझ और शासन-कुशलता का अरबों की दुनिया में साका चलता था। शीघ्र वे खलीफों के साम्राज्य में सर्वत्र ऊँचे अफसर नियुक्त होने लगे।

'अरबी' धर्म, विज्ञान और राजकीय पत्रव्यवहार की भाषा बनी रही जिसका नतीजा यह हुआ कि यद्यपि इस काल के विख्यात धर्मशास्त्री और वैज्ञानिक ईरानी थे, उनकी कृतियाँ अरबी में प्रस्तुत हुईं और अरबी साहित्य की निधि बनीं। इस प्रकार के प्रधान लेखकों में अग्रणी इतिहासकार तबरी, चिकित्सक और दार्शनिक अविचेन्ना, तवारीखनवीस अल्बेरूनी, और कुरान का व्याख्याता अल्बेजावी थे। ईरानी इब्न खुर्दादबिह ने अरबी का प्राचीनतम भूगोल–किताबुल मसालिक व ममालिक (सड़कों और मुल्कों की किताब) लिखी (८४४ ई०)। अपनी भाषा में ईरानी केवल कविता करते रहे। इस दिशा में भी पहले उन्होंने अरबी पद्य की शैलियाँ अपनाईं। आधुनिक फ़ारसी साहित्य के उद्‌गम खुरासान और ट्रान्साक्सियाना के अरबों द्वारा प्रायः तीन सदियों तक शासित होने से ऐसा होना स्वाभाविक ही था। परन्तु ईरानियों ने अरबों से जो-जो लिया पचा डाला और शीघ्र ही उनकी काव्य-प्रतिभा अरबों को लाँघ चली।

परन्तु फ़ारस में काव्य परंपरा का विस्तार तब हुआ जब बगदाद के खलीफों की दुर्बलता का लाभ उठा, साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों ने अपने-अपने स्वतन्त्र राजवंश खड़े कर लिये, ईरान में भी ऐसा ही हुआ और ८२० ई० में ताहिर इब्नहुसैन ने वहाँ स्वतन्त्र शासन की बुनियाद डाली। उसने हारूँ अलरशीद के बेटे की लड़ाई में मदद की थी और बदले में खुरासान की गवर्नरी मिली थी। अपने आचार-विचारों में सर्वथा अरबी होने के कारण इस राजकुल के राजाओं से स्थानीय कवियों के प्रति हमदर्दी विशेष तो नहीं हो सकती थी, फिर भी प्रमाणतः उस काल कुछ फ़ारसी साहित्य प्रस्तुत हुआ। उस काल के दो फ़ारसी कवियों के नाम सुरक्षित हैं जिन्होंने उस सफ्फारी राजकुल के शासनकाल में कविताएँ लिखीं जो ताहिरियों के बाद ईरान का स्वामी बना (८६७-९०३ ई०)। ये थे बगदाद का हन्जला और हेरात के महमूदी वर्राक।

इस दिशा में वास्तविक प्रगति सामानी राजाओं के शासन (८७४-९९९ ई०) में हुई। ये सम्भवतः सासानी राजाओं के ही वंशधर थे। उन्होंने सफ्फारियों को परास्त कर ट्रान्सा-क्सियाना, खुरासान और उत्तरपूर्वी फ़ारस का एक बड़ा भाग जीत लिया (९०० ई०)। युद्धकाल में भी वे कवियों और इतिहासकारों से घिरे रहते थे। इनमें एक बलख का अबूशकूर[४] था जिसने पहले-पहल रुबाइयाँ लिखीं। रूबाइयों की शैली आगे आने वाली सदियों में रहस्यवादी क्षेत्र में विशेष रुचिकर हुई। कोषों में उसकी कविताओं की सादगी आज भी सुरक्षित है। फ़ारसी साहित्य का प्रारम्भिक इतिहास लिखने में इनकी सामग्री अमूल्य सिद्ध होगी। जीवनचरितों में कवियों की कविताओं के उद्धरण दिये गये। उसी प्रकार कोषों में भी शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए काव्य कृतियों से उदाहरण दिए गए हैं।

फ़ारस का पहला महान् "क्लासिकल" कवि रूदागी था। ईरान की दरबारी कविता का आरम्भ उसी से हुआ। रूदागी प्रशस्तिकार था। प्रशस्तियों की तब परिपाटी चल पड़ी और कवियों को दरबार में संरक्षा मिलने लगी। 'रूदागी' कवि का तखल्लुस मात्र है। उसका असल नाम अबू अब्दुल्ला जाफर इब्न मुहम्मद था। वह खुरासानी था। कहते हैं कि रूदागी जन्मान्ध था फिर भी अपनी प्रतिभा के बल पर वह सामानी नृपति नस्र इब्न अहमद (९१४-४३ ई०) का दरबारी कवि बन गया। उसका वर्णन अतिरंजित है, शैली भी कृत्रिम है पर काव्य उसका सुगम है। उसमें प्रसाद गुण की कमी नहीं। उसकी कविता में ही पिछली काव्य-धारा का अन्तर्विरोध प्रगट हो गया है। ईरानी जीवन में निसर्ग की प्रेरणा बड़ी थी, उससे जनित आनन्द का उल्लास भी अदम्य था पर इनसे कहीं बढ़कर इस्लाम के तपाचरण का भय भी उस पर हावी था। नारी, मदिरा और संगीत का आकर्षण धर्म के अनुशासन से नहीं दबाया जा सकता था और उन तीनों की प्रशंसा में धर्मानुशासन के बावजूद भी ईरानी कवियों का भावस्रोत उमड़ पड़ा। स्वयं रूदागी इस प्रभाव से वंचित न रह सका और उसका भावोद्रेक धर्म की प्राचीरें तोड़ अनिर्वचनीय की स्तुति में बह चला। उसने तीन ऐतिहासिक काव्य लिखे जिनमें प्रधान "वामिक और अज्रा" पहलवी सामग्री से प्रस्तुत हैं। उसके ये काव्य तो अब नहीं मिलते परन्तु जीवनचरितों और दीवानों में उसकी अनेक प्रशस्तियाँ और कविताए सुरक्षित हैं।

सामानियों की ही संरक्षा में दक़ीक़ी भी फूला-फला। दक़ीक़ी का उल्लेख पहलवी "यात्कार" (यादगार) के सम्बन्ध में किया जा चुका है। उसने संसार की चार-नियामतें—रक्ताधर, तन्त्रीनाद, जरतुश्त के प्रवचन और लाल मदिरा-मानी हैं जिससे कुछ विद्वानों ने उसे जरतुश्ती धर्म का अनुयायी भी माना है। प्राचीन पह्लवी सामग्री के आधार पर फिरदौसी का प्रसिद्ध "शाहनामा" उसी ने आरम्भ किया। वह उसके हजार शेर लिख चुका था कि एक गुलाम ने उसकी हत्या कर दी। उस "शाहनामा" को फिर फिरदौसी ने पूरा किया।

शाहनामा फिरदौसी की कृति के नाम से ही विख्यात है। फिरदौसी की प्रतिभा उसका वर्णन-चातुर्य, उसके मनोरम दृश्यांकन इस अद्भुत रचना का कवि होने का उसका दावा अंगीकार करते हैं। उसकी और दक़ीक़ी की शैली तथा शब्दचयन में कोई अन्तर नहीं। यदि उसने दक़ीक़ी की रचना अपने "शाहनामा" में मिला लेने की बात न लिख दी होती तो हमें उसका गुमान भी न होता और न दक़ीक़ी की हत्या का ही। शाहनामा सामानी राजाओं की संरक्षा का ही परिणाम था। परन्तु इन राजाओं की संरक्षा कवियों तक ही सीमित न थी। सामानी राजा मन्सूर इब्न नूह के वजीर अल् बलामी ने तबरी के "विश्व इतिहास" का अरबी से फारसीमें अनुवाद किया। यह संक्षिप्त अनुवाद फारसी गद्य का प्रायः पहला रूप है। दो ईरानी चिकित्सकों और दार्शनिकों——राजिस और अविचेन्ना——ने भी सामानी राजाओं के तत्वा-वधान में ही अपने कृतियाँ प्रस्तुत कीं। राजिस ने अपना चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ "किताब-ए-मन्सूरी" ख़ुरासान के सामानी गवर्नर अबू सालिह मन्सूर को समर्पित की।

अली (८६४-९२० ई०) और जियारी (९२८-१०४२ ई०) घरानों ने भी उस काल में साहित्य की काफी उन्नति की। जियारियों में से एक काबूस इब्न वश्मगीर (१०१२ ई०) कवियों का मित्र और स्वयं असामान्य कवि था। उसकी प्रसिद्धि इस कारण भी हुई कि गजनी के सुलतान महमूद के क्रोध से भागे विख्यात अविचेन्ना को उसने शरण दी थी। महमूद का नाम भारत के इतिहास में अपनी धार्मिक कट्टरता और लूटों से अमर हो गया है। महमूद का साम्राज्य लाहौर से बगदाद तक फैला हुआ था और लूटमार तो उसने सोमनाथ और बनारस से बगदाद और पश्चिमी ईरान तक की।

महमूद ने गजनी में उन कवियों लेखकों और वैज्ञानिकों को एकत्र किया जो फ़ारसी साहित्य के इतिहास में विख्यात हो गए हैं। उसके राजकवि बलख के उन्सूरी (ल० १०५०) का दीवान आज भी उपलब्ध है। उसकी कविताएँ सुलतान की विजयों की प्रशस्ति में लिखी गई हैं, शैली से शब्दबहुल और बोझिल हैं। प्रगटतः उस पर भी औरों की ही भाँति रूदागी की शैली की छाप है। उसके अतिरिक्त मसूद के दरबार में अन्य कवि भी थे। फरूखी और आजादी दोनों उसी परंपरा के कवि थे यद्यपि फरूखी की काव्यप्रतिभा उससे अधिक मुख-रित है। मिनुचिही मसूद के अतिरिक्त उसके उत्तराधिकारियों का भी राजकवि रहा था। १०४१ ई० के शीघ्र ही बाद वह मरा। उसका "दीवान", प्रशस्तिवाचक सीधी और फुटकर कविताओं से भरा है। ईरानी काव्य परंपरा के अनुसार सी उसमें ही मदिरा और शृंगार की प्रभूत स्तुति है।

ऊपर लिखे कवियों की विशेषता काव्यसौन्दर्य का अंकन नहीं वरन् सामन्ती परंपरा का प्रशस्तिमय निर्वाह है। परन्तु महमूद की सभा में कुछ ऐसे कवि भी थे जिनकी भारती आज भी काव्य-क्षेत्र में प्रतीक मानी जाती है और जो इन कवियों से अपनी काव्यमेधा में सर्वथा भिन्न थे। वे हैं असदी और उसका शिष्य फिरदौसी। असदी, जो अपने शिष्य की

मृत्यु के बाद १०३० और १०४१ ई० के बीच कभी मरा, 'मुनाजरा' नाम की एक प्रकार की कविताओं का स्रष्टा है। इस प्रकार की कविताएँ प्रशस्तियों की भूमिका के रूप में प्रयुक्त होती हैं जिनमें काल्पनिक पात्र नायक के गुणगायन में एक दूसरे से होड़ करते हैं। इस प्रकार की कविताओं में पीछे रहस्यवादी विषय भी अंकित होने लगे। आरिफी की "गूय उ चौगान" (गेंद और पोलो का डंडा) उसी प्रकार की कविता है।

फिरदौसी का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। वह फारसी साहित्याकाश का उज्ज्वलतम नक्षत्र है। मुस्लिम संसार के सबसे महान् बादशाह महमूद के पास वह पैंतीस वर्षों के परिश्रम से प्रसूत अपना शाहनामा लेकर पुरस्कार की आशा से गया। उसकी निराशा, महमूद पर व्यंग्य और अन्त में पलायन की कहानी बार-बार कही गई है। महमूद ने शायद उसको नियत संख्या में अशर्फियाँ भेज दीं, पर कहते हैं, वे उसके पास तब पहुँचीं जब उसका शरीर कब्र में डाला जा रहा था। शाहनामा की काव्यधारा से उसका प्रतिपाद्य विषय फिर भी महत्तर है। उसमें जो प्राचीनतम काल के ईरानी पराक्रम का वर्णन है, उससे वह कृति ईरानी जाति की राष्ट्रीय रचना हो गई है। पचास राजाओं की यह कीर्तिगाथा अद्भुत क्षमता से प्रस्तुत हुई है। इसी में सुहराब और रुस्तम का साहित्य-प्रसिद्ध द्वन्द्वयुद्ध है। फिरदौसी अपने प्राचीन ईरानी गौरव के चित्रण के लिए समसामयिकों में निन्दा का पात्र भी बना और यदि उसने अली की प्रशस्ति लिखकर उसमें जोड़ दी होती तो उसकी कृति मुस्लिम जगत् में इतनी लोकप्रिय न हो पाती। शाहनामा में ऐतिहासिक भ्रान्तियाँ हैं, पर वह अपनी विषय गरिमा से पिछले कवियों की प्रतीक बन गई।

फिरदौसी ने मस्नवी शैली में "यूसुफ और जुलेखा" नाम का एक और खण्ड काव्य लिखा। इसमें सौन्दर्यादि के प्रतीक यूसुफ और जुलेखा के पारस्परिक सम्बन्ध का चित्रण है। काव्य सौन्दर्य में यह कृति शाहनामा से बहुत घटकर है। फिर भी फ़ारसी साहित्य में इसके अनेक अनुकरण हुए।

महमूद के दरबारियों में विख्यात तवारीखनवीस अलबेरूनी भी था जिसकी अरबी की कृतियों में प्रधान "असरुल बाकिया" (अवशिष्ट-इमारतें) और "तारीखुल हिन्द" हैं। महमूद ने प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री और दार्शनिक अविचेन्ना (अबू अलि इब्न सिना) को भी बलपूर्वक अपने दरबार में लाना चाहा पर वह भाग कर जियारी राजा काबूस इब्न वश्मगीर की शरण में चला गया। अविचेन्ना ने अरबी में कसीदे लिखे। उसके फ़ारसी के अनेक कसीदे और ग़ज़ल उमर खय्याम के मान लिए गए हैं। उसने 'दानिशनाम-ए-अलाई' नाम से विज्ञान का एक विश्वकोष तैयार किया। ग्रन्थ इस्फहान के अलाउद्दौला के लिये लिखा गया था और ग्रन्थ के नाम में "अला" उसी की संज्ञा है। उसका यश अरबीगद्य में लिखे चिकित्सा और दर्शन ग्रन्थों पर अवलम्बित है। इनमें अरस्तू आदि यूनानी दार्शनिकों का ज्ञान संग्रहीत है। ईरानी चिकित्सा का भी उनमें समावेश है। उसकी पुस्तकों ने यूरोपीय

सभ्यता को प्रभावित किया है। जिन पुस्तकों ने ग्रीकज्ञान की रक्षा की है अविचेन्ना की कृतियाँ उन्हीं में से हैं। यूरोप में मुद्रणयंत्र का प्रयोग होते ही अविचेन्ना की पुस्तकों की धूम मच गई थी। वह १०३७ में हमदान में मरा और उसकी कब्र ज्वरपीड़ितों के लिए तीर्थ बन गई है।

फ़ारसी पद्य का धरातल तो ऊँचा था पर उसके गद्य की मात्रा थोड़ी थी। महमूद के ही दरबार में रहकर उतबी ने अपना प्रसिद्ध इतिहास "तारीखे यमीनी" (अरबी में) लिखा। उसी दरबार के अबुल फज्ल अहमद (बदी अलजमान-जमाने का अचरज) ने अरबी पद्य-गद्य की सम्मिलित शैली की 'मकामात' नाम की एक नई रीति चलाई। वह भी प्रशस्तिकार था।

ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में सेल्जुक तुर्कों ने एशिया में अपना आतंक जमाया और तुगरिलबेग ने ईरान, एक ओर भारत की सीमा और दूसरी ओर बग़दाद तक जीत लिया। वह साम्राज्य फ़िर मिस्र तक जा पहुँचा। उन दिनों विद्वान दरबार-दरबार फिरा करते थे। सेल्जुक तुर्कों के दरबार में भी उनकी रसाई थी। उनके दरबार का प्रधान साहित्यकार निजामुल मुल्क अबू अली अल हसन था। वह तुगरिल के भतीजे अल्प अस्लनि का वजीर था। वह बग़दाद के प्रसिद्ध निजामिया कॉलेज का निर्माता था। उसने "सियासतनामा" नाम का राजनीतिक ग्रन्थ लिखा। १०९३ में उस गिरोह के एक व्यक्ति ने उसकी हत्या कर दी जिसको अपने ग्रन्थ में उसने राज्य-शत्रु-संस्थाओं में गणना की थी।

इस काल कुछ रहस्यवादी कवियों का भी प्रादुर्भाव हुआ जो तत्सामयिक धार्मिक प्रेरणा का परिणाम था। शिया सम्प्रदाय की एक शाखा इस्माइलिया ने इस दिशा में विशेष प्रगति की। इस काल के कवियों में नासिर का स्थान काफी ऊँचा है। उसने अपने "सआदतनामा" में राजाओं की कमजोरियों को धिक्कारा। "जादुल मुसाफिरीन" में उसके दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण है। नासिर ने अपनी कविता में व्यावहारिक और रहस्यमय सत्य का समन्वय किया है। वास्तव में वह परचात्कालीन नीतिपरक कविता का आरम्भ करने वाला है। उसका "रौशना-ए-नामा" भी उसके रहस्यवाद को ही प्रस्तुत करता है।

इस्माइली सिद्धान्तों से कहीं अधिक प्रबल सूफीवाद का आन्दोलन था। इसका उदय इस्लाम द्वारा ईरान की विजय के प्रायः साथ ही हुआ। सम्भवतः इस रहस्यवादी आंदोलन का कारण इस्लाम की कट्टरता के विरुद्ध आर्य विद्रोह था। परन्तु यह महत्व की बात है कि इसके प्रारम्भिक प्रवर्तक अरब और दरवेश थे जो ऊन के कपड़े पहनते थे। अरबी में उनको सूफ़ कहते थे जिससे उन्हें पहनने वालों का नाम सूफ़ी पड़ा। इस आन्दोलन का आरम्भ चाहे जसे हुआ हो, इसमें सन्देह नहीं कि इसका विकास और विस्तार ईरान में विशेषतः तब हुआ जब अब्बासी खलीफाओं के शासन काल में ईरान अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हुआ और उसने दिमागी आजादी का आनन्द फिर से पाया। इसके सिद्धान्तों पर अफलातूं के साथ-साथ ही भारतीय विचारों का भी प्रभाव था। इस्माइलियन सम्प्रदाय ने तो अवतारों की सत्ता

स्वीकार की ही, सूफ़ीवाद ने वेदान्त का देशव्यापी प्रचार किया था। वस्तुतः रहस्यवाद केवल ईरान की ही दार्शनिक खोज या सम्पत्ति न थी। मध्ययुग में सर्वत्र अज्ञात के भीतर झाँककर देखने की प्रवृत्ति हो गई थी, भारत में तो उससे भी बहुत पहले।

ईरान में इस रहस्यवाद को इस्लाम से समझौता करना पड़ा। सूफ़ी सिद्धान्तानुसार खुदा बस एक सत्य है। इस सिद्धान्त को मानने में भला किसी मुसलमान को क्या आपत्ति हो सकती थी। खुदा और उसके बन्दे आदमी में एक छिपा प्रेम है और चूंकि खुदामात्र यथार्थ है, प्रत्येक मनष्य में उसका एक अंश होना आवश्यक है जो पूर्ण (खुदा) से मिलने को सदा लालायित रहता है। आनन्द क्षणभर जब तक पुनर्मिलन का सुख प्राप्त कर लेता है परन्तु अनन्त मिलन के लिए शरीर रूपी अवगुंठन और बाधा का नष्ट हो जाना आवश्यक है। अनन्त मिलन के लिए शरीर का अन्त करने के पीरों ने अनेक मार्ग बताए। खुदा और मानव की प्राकृत एकता के सिद्धान्त ने स्वाभाविक ही इस्लाम के प्रति सूफ़ियों के मन में शंका उपस्थित कर दी। इस सिद्धान्त की अद्‌भुत उपज सूफ़ीवाद का परम साधु मन्सूरी हलाज था जिसने उपनिषदों की "सोऽहम" भाषा में नारा बुलन्द किया—मैं ही सत्य हूँ—"मैं ही ख़ुदा हूँ "और फलतः प्राणदण्ड पाया।

जलालुद्दीन रूमी का "मस्नवी-ए-मानवी भी" सूफीवादी कविता की एक सुघड़ कृति है। फ़ारसी साहित्य में सूफ़ीवाद का महत्त्व यह है कि उसने समूची काव्यधारा को अपनी प्रेरणा दी। फिरदौसी को छोड़ सभी बड़े कवियों ने अपने विचारों में सूफ़ीवाद का ही सहारा लिया। अधिकतर लिरिक-कवियों ने सूफ़ीवाद की उपमाओं से अपनी कृतियों को सनाथ किया। अनेक ने तो अपनी कविताओं में सूफ़ीवाद को ही साध्य बनाया जिससे हमें उसके सिद्धांतों के अध्ययन के लिए इन कविताओं का ही अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है। गद्यकृतियाँ इसका विश्लेषण तो करती हैं पर भेद नहीं खोल पातीं।

सूफ़ी आन्दोलन का पहला समर्थ कवि अबूसैद इब्न अबुल खैर (९६८-१०४९ ई.) था जिसने शैली के रूप में रुबाइयों को लोकप्रिय बनाया। फिर तो रहस्यवादी विचारों के वाहक रूप में एक मात्र रुबाई ही प्रचलित हुई। भगवान के प्रेम के सम्बन्ध में शारीरिक और पार्थिक भोगों की उपमाएँ भी सूफ़ी साहित्य में पहले-पहल उसने ही प्रचलित कीं। सूफ़ीवादी काव्यधारा में प्रतीक रूप से सौन्दर्य, प्रणय, मदिरा, सभी प्रयुक्त हुए हैं। अबूसैद के बाद ही हेरात का अन्सारी हुआ। वह नासिर खुसरो का समकालीन था। उसने भी नासिर की ही भाँति अपनी गद्य-पद्य दोनों कृतियों में पार्थिव आचार और सार्वभौमिकता का सम्मिलित उपयोग किया। उसने 'रुबाइयों' और 'मुनाजात' का प्रचुर व्यवहार किया। मुनाजात खुदा के प्रति प्रार्थनाएँ दुआएँ और सूफ़ीवाद के पक्ष में प्रचारक कविताएँ हैं। सनाई ने सूफी कविता में मस्नवी शैली का व्यवहार सबसे पहले किया। हदीकलुल हकीका उसका प्रसिद्ध मस्नवी है। यह मस्नवी फरीदुद्दीन अत्तार के रूपक काव्य "मन्तिकुल तैर"

और जलालुद्दीन रूमी के रहस्यपरक "मस्नवी" का प्रेरक पूर्ववर्ती माना जाता है। "हदीक" में सिद्धांत अधिक है, काव्यत्व कम, पर सनाई के "दीवान" से वह कमी पूरी हो जाती है।

सूफ़ीवाद के आनन्दपरक अध्यात्म के साथ ही उमर खैयाम के निराशावादी राग का उल्लेख उचित होगा। उमर इब्न-इब्राहीम अल-खैयाम नैशापुर के एक खेमा बनाने वाले का पुत्र था। अपने देश में वह ज्योतिषी, गणितज्ञ और स्वतन्त्र विचारक के रूप में कवि से अधिक विख्यात है। निस्संदेह वह निर्भीक स्वतन्त्र विचारक था। उसकी कविता में कहीं प्रशस्ति, वाचन या चाटुकारिता का नाम तक नहीं है। अपनी कविता की प्रेरणा में वह निःसन्देह सर्वथा ईरानी है। वह उन लोगों में अग्रणी था जिन्होंने सिद्धांतवाद की संकीर्णता और पुण्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई, उन पर व्यंग्य किए। उस वर्ग के कवियों का विश्वास था कि खुदा सारी मानवीय मुसीबतों का कारण है और भाग्य ही संसार का विधायक है। दर्शन और ज्ञान रिक्त हैं, कोरी जल्पना; जीवन का क्षणिक आनन्द भी सार्थक है। प्रकट है कि उमर संकीर्ण विचार पन्थियों को प्रिय नहीं हो सकता था। उसे अपने विचारों के कारण बड़ा संघर्ष भी करना पड़ा। उसकी रुबाइयों में से अधिकांश तो उसकी हैं पर उसके नाम से चलने वाली सभी नहीं। उसने मदिरा की प्रभूत स्तुति की है।

उमरखैयाम ने अरबी में एक बीजगणित और यूक्लिद की कुछ परिभाषाएँ भी प्रस्तुत कीं। ज्योतिष ग्रंथ जीफ़-ए-मलिकशाही के एक भाग का वह रचयिता माना जाता है। उसका मृत्युकाल ११२३ ई० बताया जाता है पर तिथि संदिग्ध है।

सूफ़ीवाद ने साहित्य को विशेष प्रभावित किया, परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि दूसरे प्रकार की कृतियों का सर्वथा अभाव था। काल्पनिक रोमानी कहानियाँ भी बराबर लिखी जाती रहीं। इसी प्रकार की एक कृति "वीस और रामिन" है जिसे तुगरिल बेग के दरबारी अल जुरजानी ने लिखा। फिर भी साधारणतः पद्य की अपेक्षा गद्य का सृजन उस काल बहुत कम हुआ। अधिकतर गद्यात्मक कृतियाँ विज्ञान के क्षेत्र में ही प्रसूत हुईं। इस प्रकार की चिकित्सा सम्बन्धी एक रचना—"जखीर-ए-ख्वारज्मशाही"—जैनुद्दीन अल-जुरजानी ने बारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत की। तभी जियारी राज काबूस के पौत्र कै-कौस इब्न इस्कन्दर ने राजनीति सम्बन्धी अपना "काबूस-नामा" लिखा। इसमें ईरान के पौराणिक महात्माओं हुशंग, जमशेद और लुकमान आदि का हवाला देकर ग्रन्थकार ने अपने पुत्र और भावी सुल्तान को नीति समझाई है।

बारहवीं सदी में ही (सम्भवतः पूर्वार्द्ध में) प्रसिद्ध महात्मा अल गजाली हुआ। उसने अधिकतर अरबी में लिखा परन्तु अल्केमी के अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "इह्या उलूमुल्दीन" का उसने फ़ारसी में एक संक्षिप्त रूपान्तर रचा जो "कीमिया-ए-सआदत" नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह इस्लाम धर्म का सूफीपरक विवेचन है। उसी ने सूफी कवियों के प्रतीकों, प्रव-

चनों और रूपकों की व्याख्या की। फिर भी रूढ़िवादी इस्लाम के अनुयायियों पर उसका इतना प्रभाव था कि उसे "हुज्जातुल इस्लाम" का खिताब मिला।

इस काल फारसी में कुछ अनुवाद भी हुए। बिदपाई की कहानियों का अनुवाद नसरुल्ला इब्नुल हमीद ने किया। इन कहानियों का मूल संस्कृत पन्चतन्त्र में था जिसका पहला अनुवाद ससानी नृपति खुसरो नौशेरवाँ (५३१-७९ ई.) की संरक्षा में बरजुए नामक वैद्य ने "करटक दमनक" नाम से पह्लवी में किया था। यह पह्लवी मूल अनुवाद तो लुप्त हो गया परन्तु उसका पता हमें दो सीरियक और अरबी अनुवादों से चलता है। ५७० ई० में बूद ने एक अनुवाद प्राचीन सीरियक भाषा में प्रस्तुत किया था, दूसरा ७५० ई० के लगभग अरबी में अब्दुल्ला इब्न मुकफ्फा ने "कलीला वा दम्ना" नाम से किया। इसी पाठ से नसरुल्ला ने भी अपना अनुवाद किया और उससे पहले पद्य में रूदागी ने "मस्नवी" अनुवाद किया था जो आज उपलब्ध नहीं। पंचतंत्र की कहानियों का सोलहवीं सदी में प्रस्तुत हुसेन वैज काशिफी का अनुवाद "अनवारे सुहेली" बड़ा लोकप्रिय हुआ।

सेल्जुक सुल्तानों के मध्यकाल में लिखे "चहारमकाल" की फ़ारसी में बड़ी प्रतिष्ठा है। इसका लेखक निजामी-ए-अरूज़ी-ए-समरकन्दी बदख्शा में गूर के सुल्तानों का दरबारी कवि था। "चहारमकाल" में चार स्कन्ध हैं, साम्प्रदायिक, काव्य, ज्योतिष, और चिकित्सा पर। इसमें इतने उदाहरण हैं कि ग्रंथ कोष का रूप धारण कर लेता है। जहाँ तहाँ प्रशस्तिवादी चाटुकारिता का भी पुट है। जीवनचरितों के लिए इसमें बड़ी सामग्री है।

सेल्जुक काल की प्रशस्तियाँ और कशीदे फ़ारसी साहित्य में अपना सानी नहीं रखते। इस प्रकार के कवियों में अनवरी अग्रणी हैं। मालिकशाह के पौत्र खुरासान के सुल्तान सन्जर (१११७-५७) का प्रिय प्रशस्तिकार अनवरी फ़ारसी साहित्य में सबसे प्रवीण कशीदाकार हो गया है। उसके कशीदों में प्रचुर व्यंग्य भी हैं। ११५४ के खुरासन के संहार पर उसने "खुरासान के आँसू" लिखा जो अपने करुण राग के लिए विख्यात है।

अनवरी की ही भाँति खाकानी भी प्रशस्ति-लेखन में प्रसिद्ध हो गया है। परन्तु उसके कशीदों की शैली अनवरी की शैली से भी अधिक बोझिल और दुरूह है। उसका शब्दजाल उसकी ख़ूबियों को कमजोर कर देता है। उसकी एक जानी हुई मस्नवी कविता "तुहफोतुल इरा कैन" है। मक्का की यात्रा करते समय उसने ईरानी और अरबी दोनों ईराकों पर यह कविता लिखी। अपने स्वामी के सामने अहंकार प्रदर्शित करने के कारण वह कैद में डाल दिया गया जहाँ उसे अपनी कविता "हबाशिया" (जेल की कविता) की सामग्री मिली।

वह युग वस्तुतः प्रशस्तियों का था। उस असाधारण सामन्ती युग ने दरबारी परंपरा बाँध दी। सभी दरबारों में कवि और लेखक होते थे और उनका काम अपने स्वामियों की

कृपा और इनाम के बदले उनकी प्रशस्ति लिखना था। वह परंपरा निश्चय ही जीवन की आलोचना के रूप में काव्य-रचना का पोषक नहीं हो सकती थी। जीवन की आलोचना में काव्यांकन रहस्यवादी और लिरिक कवियों ने ही किया। जमाने का कुछ हाल फिर भी इन प्रशस्तियों में मिल जाता है जहाँ हम प्रशंसात्मक वाग्जाल के भीतर झाँक पाते हैं। कुछ अपेक्षाकृत साधारण कवियों ने भी इस काल कशीदे लिखे। असीरुद्दीन अख्सीकती इन्हीं में से थे - उसके कशीदे अनवरी के कशीदों की ही भाँति विख्यात हैं। संजर के राजकवि अमीर मुइज्जी (११४७-४८) ने भी पठनीय कविताओं का एक दीवान छोड़ा है। रशीदी वतवात विशेषतः अपनी सुन्दर कृति "हदाकुल-सिहर" (सम्मोहन की वाटिका) से प्रसिद्ध हुआ। सूजनी ने उस काल के सिद्धान्तवादी कवियों का बड़ा मजाक उड़ाया। उसके व्यंग्य ने किसी को न छोड़ा। बाद में रहस्यवादी सनाई का शिष्य होकर उसने इमामों की प्रशस्ति में कशीदे लिखे। पर वह अपनी व्यंग्यात्मक कविताओं के लिए विख्यात है। उसने समकालीन कवियों की अच्छी पैरोडी की। इन्हीं दिनों तिरमिज के अदीब साबिर ने अपनी कविताएँ लिखीं। संजर ने उसे अपना भेदिया बनाकर अपने बागी सामन्त अत्सिज के पास भेजा। भेद खुल गया और साबिर वक्षुनद में डुबा दिया गया।

सेल्जुक काल में भी प्राचीन ईरानी ख्यातों पर आधारित प्रणय सम्बन्धी रोमैंटिक कविताएँ लिखी गईं। इस दिशा में गंजा के निजामी ने पहला डग भरा। वह विशेषतः शृंगारिक कवि है। निजामी ११४१ के लगभग कुम में जन्मा। उसका शिक्षण सुन्नी सम्प्रदाय के आधार पर हुआ था जिससे उसका कवि हृदय दीर्घकाल तक निस्पन्द पड़ा रहा। चालीस वर्ष की आयु में उसने अपना "मखजनुल असार" (रहस्यों का कोष) लिखा। धार्मिक प्रसंगों से भरा यह ग्रंथ मस्नवी शैली में लिखा गया था, परन्तु इसकी आख्यानराशि ने अगले रोमान्सों के लिए प्रचुर सामग्री उपस्थित कर दी। अपने साहित्यिक गुणों से उचित ही निज़ामी फ़ारसी भाषा का प्रसिद्ध कवि माना गया है। उस साहित्य में उसका स्थान कवियों में दूसरा है। "खुसले उशिरीं" उसका पहला रोमांस है। उसमें ससानी राजा खुसरो परवेज का अर्मिनी शाहजादी शीरीं के प्रति प्रणय वर्णित है। फरहाद का प्रसंग उसी कृति में आया है जिससे शीरीं-फरहाद का जोड़ा अमर हो गया है। निजामी की दूसरी प्रसिद्ध रचना "लैला-उ-मजनूं" है। घटना अरब की है। जहाँ शत्रु घरानों के तरुण-तरुणियों का परस्पर प्रेम अनेक साहित्यकारों का आधार बना। निजामी का "हफ्त पैकर" मस्नवी शैली में लिखा सात कहानियों का संग्रह है। ससानी सुल्तान बहराम की सातों रानियों में से प्रत्येक एक कहानी सुल्तान से कहती है। कवि का अन्तिम मस्नवी "इस्कंदुरनामा" है, सिकन्दर के जीवन से सम्बद्ध। निजामी की पाँचों कृतियाँ एकत्र 'खम्स या पंजगंज" कहलाती हैं। उन्होंने पश्चात्कालीन साहित्य पर प्रभूत प्रभाव डाला। निजामी १२०३के लगभग मरा। उसकी रचनाएँ बड़ी मधुर हैं और ईरान में वे बहुत लोकप्रिय हुईं

सूफी परंपरा को फारसी के एक असामान्य कवि फरीदुद्दीन अत्तार (१११९-१२३०) ने जारी रखा। वह इत्र बेचने वाला था। उसने दरवेश के रूप में काफी भ्रमण किया और उस बीच अनेक सूफी नेताओं से मिला। उसने सूफी सिद्धांतों को अपने चिन्तनका योग दिया। प्रसिद्ध है कि जब चंगेज खां ने नैशापुर का विध्वंस किया तब यह फ़ारसी का निष्णात कवि भी मार डाला गया। मस्नवी शैली में लिखे सुन्दर रूपक ग्रंथ "मन्तिकुल तैर" (पक्षियों की वाणी) में उसने पक्षियों (सूफ़ियों) के सातमंजिलों से होकर सुल्तान सीमुर्ग (सत्य) तक पहुँचने का रूपक बाँधा है। सूफी सिद्धान्त की तीन मंजिलों में उसने चार और जोड़ीं। अत्तार की रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध "मन्तिकुल तैर" है, परन्तु ईरान में उसकी सबसे अधिक लोकप्रिय कृति "पन्दनामा" है। उसके "तज्किरातुल औलिया" में सूफ़ी सन्तों के चरित हैं जिससे सूफ़ी सम्प्रदाय के अध्ययन में उससे बड़ी सहायता मिलती है। अत्तार की अनेक प्रकाशित रहस्यवादी रचनाएँ ऑक्सफोर्ड के बोडलेन पुस्तकालय में और अन्यत्र सुरक्षित हैं। "गुल उ हुरमुज़" "मुसीबतनामा" शुतुरनामा", बुलबुलनामा", इसी प्रकार की अप्रकाशित रहस्यवादी कृतियाँ हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अत्तार की हत्या सम्भवत: चिंगेजखां के हमले में हुई थी। तब मध्य एशिया में मंगोलों का उदय हो रहा था जो पूर्व में प्रबल होकर सहसा पश्चिम की ओर दौड़ पड़े थे। चिंगेज खां ने प्रशान्त सागर से डैन्यूब नद तक सारा महाद्वीप जीत लिया और वह जहाँ जहाँ गया विध्वंस मूर्तिमान हो उठा। ईरान में ख्वरिज्म शाहों के खीव के प्रांतों और खुरासान पर चिंगेज ने पहली चोट की। उनके निवासी तलवार के घाट उतार दिए गए। उनके नगर लूटकर जला दिए गए, उनकी सभ्यता विनष्ट हो गईं। १२२७ में चिंगेज तो मर गया पर उसके क्रूर हमलों की परंपरा उसके उत्तराधिकारियों ने जीवित रखी। १२५१ में मंगोल सरदारों ने दो आक्रमण किए। एक कुबले खाँ के नेतृत्व में चीन पर हुआ, दूसरा हुलागू खाँ के नेतृत्व में ईरान, मेसोपोतामिया, लघु एशिया और सीरिया पर। सीरिया ने कुछ काल लड़ाई जारी रखी पर फारस और मेसोपोतामिया तो कुचल गए। पश्चिम की अपनी चढ़ाई में हुलागू ने इस्मायली-हशीशियों के गढ़ अलामूत को बरबाद कर दिया, फिर १२५८ में बगदाद का सत्यानाश कर उसने उस अब्बासी खिलाफत का अन्त कर दिया जिसने फारस पर प्राय: पाँच सौ वर्ष अपना दबदबा रखा था।

: ३ :

मंगोल-युग

मंगोल हमलों का एक प्रबल प्रभाव तो यह हुआ कि कुछ समय के लिए मुस्लिम-संसार का कोई सरपरस्त न रहा और फारस से अरबों की सत्ता उठ जाने से वहाँ की राज-

कीय भाषा बजाय अरबी के अब फ़ारसी हो गई। इसके अतिरिक्त हुलागू खाँ ने ईरान की वंश-बहुल सत्ता का अन्त कर सारे देश को एकाधिकार में रखा। धीरे-धीरे उसके खानों ने चीन की सत्ता से भी स्वतन्त्र होकर अपना सम्बन्ध ईरानी जनता के साथ अधिकाधिक जोड़ा। और जब ग़ाज़ा खां ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तब तो उसके ईरानी बनने में कोई कोर कसर न रही। खानों ने फारस में अपनी शक्ति प्रतिष्ठित कर शान्ति स्थापित की यद्यपि यह शान्ति भीतरी न थी। देश में आन्तरिक युद्ध फिर भी होते रहे। खानों के बाद ईरान पचास वर्ष तक अराजकता का केन्द्र बना रहा। अन्त में ततारी की शक्ति बढ़ी और समरकन्द से निकल कर तैमूर लंग ने भारत के गंगातट से भूमध्य सागर तक के सारे देश-फारस, मेसोपोतामिया, तुर्किस्तान, लघुएशिया (एशिया माइनर) सब जीत लिए। चिंगेज की भाँति तैमूर भी विध्वंसक था। (१४०५) में चीन विजय को जाते समय राहै में ही उसकी मृत्यु हो गई।

तैमूर के बाद भी कुछ काल तक मार-काट मची रही। उस बरबादी से दो सूफ़ी-कवि, जिनकी रचनाएँ हम तक पहुँची हैं, बच रहे, एक तो जलालुद्दीन रूमी दूसरा सादी। जलालुद्दीन रूमी का जन्म १२०७ ई० में बलख में हुआ। उसके पैदा होते ही उसके पिता को मालिक के भय से भागना पड़ा और अन्त में एशिया माइनर कोनिया में उसने पनाह ली। स्थान रूम कहलाता था जिससे वह स्वयं रूमी कहलाया।

जलालुद्दीन विज्ञान का पंडित था। उसकी शुष्कता से ऊबकर उसने सूफी रहस्य-वाद का अध्ययन किया जिसमें उसे बुरहानुद्दीन तिरमीजी और शम्श-ए-तब्रीज से बड़ी सहायता मिली। शम्श का उस पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसकी लिरिक कविताओं का संग्रह सदियों "दीवान-ए-शम्श-ए-तब्रीज" नाम से प्रसिद्ध रहा। अपने इस गुरु के मरने पर जलालुद्दीन ने दरवेशों की एक नई जमात मौलवी (मेवलेवी) चलाई। ये मौलवी नाचते रहते हैं और इनका नाचना रहस्यवादी अर्थ में ब्रह्माण्डों का नाचना है। उस नाच को लाक्ष-णिक रूप से समा कहते हैं।

जलालुद्दीन ने जमाने के अनुसार अपने ग़ज़लों, रूबाइयों और तर्जीविन्दों का एक दीवान प्रस्तुत किया। उसकी कविताओं में "सत्य" में लय हो जाने की उत्कट इच्छा दरशाई गई है। उसके बाद उसने अपना प्रसिद्ध "मस्नवी-ए-मानवी" लिखा जो "पह्लवी जबान का कुरान" माना जाता है। मस्नवी बड़ी कृति है जिसमें सूफी सिद्धांतों, परंपरा, ख्यातों आदि का रूपक उपमाओं में काव्यबद्ध संग्रह है। भगवान का मनुष्य पर अटूट प्रेम है और मनुष्य को उसमें मिल जाने के लिए अपने को नष्ट कर देना चाहिये यही अधिकतर उसका मन्तव्य है। उसकी अरबी भूमिका में कवि ने उसे "कुरान की व्याख्या" और "फकीरों का मार्ग" कहा है। रूमी १२७३ में कोनिया में मरा।

शीराज का सादी (लगभग ११८४-१२९१) जलालुद्दीन से सर्वथा भिन्न था।

उसका दर्शन आम फहम था। उसने आचार के मूल सहज सिद्धांतों-नम्रता, विनय, दान—का प्रचार किया। वह पार्थिव भोगों को त्याज्य नहीं बताता था। और सम्भवतः स्वयं उनसे दूर न था। शीराज में जन्म लेकर फार्स के अपाबेग साद इब्न जंगी की कृपा से उसने बगदाद के निजामियाँ कालेज में शिक्षा पाई। उसने भारत, अरब और उत्तरी अफ्रीका का भ्रमण किया। कुछ काल वह सन्त की भाँति जेरूसेलम में भी रहा जहाँ से उसे कैदकर सीरिया ले गए और त्रिपोली के गढ़-निर्माण में मजूर बना दिया। वहाँ स्वामी की कन्या से विवाह करने पर छुटकारा मिला परन्तु वह सम्बन्ध इतना कष्टकर हुआ कि वह फिर यात्रा के लिए निकल पड़ा। घूम फिर कर जब वह शीराज पहुँचा तो मालूम हुआ कि दक्षिणी ईरान मंगोलों के विध्वंस से बच गया है। उसने अपने पुराने संरक्षक के पुत्र के दरबार में शरण ली और जगत में शेखसादी नाम से विख्यात हुआ। वहीं उसने अपनी प्रसिद्ध रचनाएँ कीं जो फारसी साहित्य की निधि हैं। सादी की विख्यात रचनाएँ "बूस्तां (बाग) और गुलिस्तां (गुलाब वाटिका) है। दोनों नीति प्रधान कृतियाँ हैं, पहली पद्य में है दूसरी गद्य-पद्य दोनों में। बूस्तां (बोस्तां) गुलिस्तां से कुछ अधिक गम्भीर है। गुलिस्तां सरल और मधुर है। उसमें विनोद का भी पुट प्रचुर है। व्यवहार कुशलता उन दोनों का प्रिय विपय है। उनकी भाषा में गजब की मिठास है, अनूठी सादगी और भावों में अनोखी ताजगी। उसके "दीवान" से प्रमाणित है कि मधुरतम शैली में वह "लिरिक" आदि लिख सकता था। उसके कुछ लिरिक तो हाफिज के लिरिकों के बराबर माने गए हैं। हाफिज फारसी जुबान का सुन्दरतम लिरिकार है।

सादी ने यात्रायें भी लम्बी कीं। वह दरवेश के वेश में भ्रमण करता था। वह दरवेश भी हो गया था। उसकी कृतियाँ संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित हो गई हैं और रहस्यवाद की शैली से मुक्त होने के कारण सुगम हैं। उसने अपनी रचनाएँ वृद्धावस्था में कीं जिससे उनमें उसकी परिक्व मेधा झलक पड़ी। अपने संरक्षकों के लिए सादी ने कशीदे और मुतायबात (मजाक) भी लिखे। "मुतायबात" "खबीसात" (अनिर्वचनीय शृंगार) भी कहलाते हैं। इन कृतियों का तथ्य इनके नाम से ही प्रकट है। सादी ने अपने संरक्षकों के प्रसादन के लिए इन्हें लिखा था परन्तु शुक्र है कि उसका यश इन पर नहीं उसकी अन्य रचनाओं पर अवलम्वित है।

मंगोलों के आक्रमण के पहले जिनकी ख्याति स्थापित हो चुकी थी उन्हीं में तूस का नसीरुद्दीन (१२७४) था। वह दार्शनिक, ज्योतिपी और गणितज्ञ था। जब हूलागू ने अलमूत का विध्वंस किया तब उसके ज्योतिष से लाभ उठाने की आशा से उसे छोड़ दिया। बगदाद के विध्वंस में वह हुलागू के साथ था। जब विजेता ने आजरबैजान के नगर मरागा में अपनी अल्पकालीन राजधानी कायम की तो नसीरुद्दीन के कहने से उसने वहाँ एक वेधशाला बनवाई। कालान्तर में उसकी बड़ी ख्याति हुई। उसकी अधिकतर रचनाएँ

अरबी में हैं। परन्तु अपनी प्रसिद्ध कृति "अख़लाक-ए-नासिर" उसने फारसी में लिखी। हुलागू के लिए उसने "जीजी ईलखानी" (ज्योतिष की पट्टिकाएँ) मरागा में लिखीं। "मियारूल अशआर" (काव्य का पारस) भी उसी की रचना मानी जाती है। नसीरुद्दीन ने अपनी कौम के साथ स्वार्थ के लिए दगा किया। अलमूत में अपने हशीशी स्वामी को तो उसने पकड़वा ही दिया, खलीफा भी उसी की वंचकता से मंगोलों की नृशंसता का शिकार हुआ। अखलाक-ए-नसिरी इस्लाम-साहित्य में आचार के क्षेत्र में सुन्दरतम ग्रन्थ है। ग्रन्थ की शैली दुरूह है। यह तीन भागों में विभक्त है। इसका अन्तिम भाग राजनीति पर है।

कुतुबुद्दीन (१३१०) नसीरुद्दीन का शिष्य था, शीराज के वैद्यकुल में जन्मा था। वह भी मंगोलों के ही दरबारों में रहा और अपने गुरु की ही भाँति उसने भी दर्शन, चिकित्सा और ज्योतिष पर अरबी में अनेक ग्रन्थ लिखे। परन्तु उसका यश विज्ञानों के एक विश्वकोष पर अवलम्बित है। हुलागू ने नासिरुद्दीन के साथ ही शामपुर से इतिहासकार अतामलिक (१२८३) को भी अपने साथ ले लिया था। वह हुलागू का सेक्रेटरी बन गया और उसकी कृपा से फिर बगदाद का गवर्नर हुआ। अपने "तारीख-ए-जहांगुशा" (दिग्विजयी का इतिहास) में उसने प्राचीन मंगोल इतिहास, चिंगेज और हुलागू की विजयों और शासन का इस्माइलियों की बरबादी तक इतिहास लिखा है जो तत्कालीन घटनाओं का समसामयिक होने से विशेष महत्त्व का है। अतामलिक ने राजनीति में अपना दबदबा बना लिया था और बगदाद की राजनीतिक बागडोर उसी के हाथ में थी।

हुलागू के बाद सालों साहित्यिक क्षेत्र अनुर्वर रहा परन्तु उसके प्रपौत्र गाजान खां के वजीर रशीदुद्दीन फजलुल्ला ने जो असामान्य राजनीतिज्ञ और इतिहासकार था, "जामिउल तवारीख" लिखकर उस दिशा में कुछ प्रयत्न किये। यह संसार का इतिहास दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में तुर्कों और मंगोलों का इतिहास है, दूसरे में सृष्टि के आरम्भ से गजानखां के भाई उल्जैतू खां के शासन के पहले वर्ष की घटनाओं तक। साथ ही इसमें खलीफों, सल्जकों, गजनवियों, ख्वारिज्मशाहों और इस्माइलियों के भी वृत्तान्त हैं, फिर चीनियों, इस्रायलियों, फ्रैंकों और हिन्दुस्तानियों के भी। अपनी भूमिका में ही इतिहासकार स्पष्ट लिख देता है कि उसके इतिहास उसकी दृष्टिकोण से नहीं देश विशेष के दृष्टिकोण से लिखा गया है जिससे वह दोषी न ठहराया जाय। यह इतिहास १३०५ में समाप्त होता है यद्यपि ग्रन्थकार १३१८ तक जीवित रहा। उस वर्ष उसके स्वामी उल्जैतू खां का पुत्र अबू सैद गद्दी पर बैठा और उसने रशीदुद्दीन को अपने पिता का हत्यारा घोषित कर उसे बर्खास्त कर दिया और उसकी जायदाद जब्त कर उसे मरवा डाला। रशीदुद्दीन के इतिहास का एक संक्षिप्त रूप फख्री बनाकिती ने "तारीखे बनाकिती" नाम से लिखा जिसमें घटनाएँ अबूसैद के शासनकाल तक की शामिल करली गई थीं। फख्री शायर भी था पर उसका पद्य उपलब्ध नहीं है। उसी काल वस्साफ ने "तारीखे वस्साफ"

लिखा । उसमें मंगोलों का इहिास है पर भाषा इसकी प्रशस्तिवाचक और शब्द बहुल है, जिससे इतिहास का विषय गौण हो गया है । ग्रन्थ का दूसरा नाम "तज्जियतुल अम्सार" है । रशीदुद्दीन की प्रेरणा से ही अपना इतिहास 'तारीख-ए-गुजीद" लिखकर हमदुल्लाह मुस्तोफी ने उसे रशीदुद्दीन के बेटे गियासुद्दीन को समर्पित किया । उसमें सृष्टि से लेकर १३३० ई० तक के ईरानी राजकुलों, इस्लाम, उसके प्रचारकों आदि का इतिहास है । जफरनामा में उसने "शाह-नामा" के ही अनुकरण में तुकान्त पद्य में मुहम्मद से अपने काल तक की घटनाएँ लिखीं । हम-दुल्लाह का "नुज्हातुल कुलाब" (हृदयों का आनन्द) विश्व के निर्माण और फ़ारस तथा पड़ोसी देशों के भूगोल पर समसामयिक परंपरा के अनुसार प्रकाश डालता है । "शाहनामा" का एक और अनुकरण चिंगेज खां और उसके उत्तराधिकारियों के इतिहास पर "शाहन्शाहनाम" नाम से अहमद तब्रीजी ने प्रस्तुत किया । इस प्रकार के छन्दबद्ध अनुकरणों में यह कृति काफी सुन्दर है । फ़ारसी कृतियों का हिन्दुस्तानी मुसलमान कवियों पर भी प्रभाव पड़ा । अमीर खुसरो ने निजामी की प्रेरणा से निजामी की ही भाँति सुन्दर रोमांटिक कविताओं का "खम्स" लिखा । वह वीर काव्य और लिरिक का समर्थ कवि था । वह भारत में ही जन्मा और मरा (१३२५ई०) था । उसने हिन्दी में भी रचनाएँ कीं और खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवियों में से है । निजामी का अनुकरण करने वालों में सबसे सफल किरमान का ख्वाज् (१२८१-१३५२) हुआ उसका खम्स निजामी की असामान्य अनुकृति है । उसमें कुछ प्रेम-कहानियाँ भी छन्दबद्ध की हैं, जैसे "हुमै और हुमायूँ" "गुल और नौरोज" "रोजतुल अनवार" । अपने आकाओं के प्रसादन में उसने कुछ प्रशस्तियाँ और कशीदे भी लिखे । उसके दीवान में अनेक अच्छी कविताओं का संग्रह है ।

तैमूर लंग के शीघ्र पहले के दो सूफी कवि ईराकी (मृत्यु ल० १२८८) और महमूद (मृ० १३२०) हैं । पहले ने "लमआत" लिखा, दूसरे ने "गुलशने राज" । इसमें रहस्यवादी प्रेम की मंजिलों का वर्णन है । डेढ़ सौ वर्षों बाद इस पर प्रसिद्ध फारसी कवि ने एक भाष्य लिखा । इसके कवि ने सुन्दर गजल और दूसरी कविताएँ भी कीं जो उसके दीवान में संग्रहीत हुईं । ईराकी अपने रहस्यवादी प्रणय में काफी शृंगारिक हो गया है । सूफ़ी कवियों की यह प्रणय-लिप्सा भारत के कृष्णभक्त सूर, वेनीमाधव आदि कवियों में भी जगी । ईराकी ने भारत, एशिया माइनर, सीरिया, मिस्र आदि भी भ्रमण किया था । सूफ़ियों में सिद्धांत परिचायक ग्रन्थ के रूप में "गुलशने राज" का बड़ा मान है । यह मस्नवी शैली में प्रश्नोत्तरी है । एक रहस्यवादी काव्य "जामेजम" "सनाई के" "हदीकतुल हकीक" के अनुकरण में मराग के ओहदी (मृ० १३३७) द्वारा लिखा गया । इसके बाद ईराक में जलाइर और शीराज में मुजफ्फरी राजकुलों का दबदबा हुआ जिन्होंने फारसी के तीन महान् कवियों को संरक्षण दिया ।

जलाइर खानदान की नींव डालने वाले शेख हसनी बुज़ुग के पुत्र शेख उबेस ने उबदीं जाकानी (मृ० १३७०–१) को आश्रय दिया। जाकानी व्यंग्य पद्य रचना में सूजनी का उत्तराधिकारी था। उसने अपने "अखलाकुल अशराफ" में "अखलाके नासिरी" के से नीति काव्यों की पैरीडी की। "तारीफात" में उसने समसामयिक आचार-विचार धर्मादि का खूब मजाक उड़ाया। उसके "रिसाल-ए-रीश" में दाढ़ी आदि के प्रसंगों पर व्यंग्यात्मक रचनाएँ हैं। उसका "हजलियात", अरबी-फारसी में गद्य-पद्य दोनों में लिखा, अश्लील विनोद का प्रतीक है। वह सर्वथा मौलिक है। और जहाँ उसे विषय के लिए प्राचीनों से लेना पड़ता है, वहाँ भी वह विषय का नितान्त मौलिक रूप में निर्वाह करता है। उसका "मूश उगुर्बा" इसी प्रकार का चूहे और बिल्ली की कहानी पर अवलम्बित व्यंग्यात्मक विनोद है।

जिस मात्रा में उबैद को व्यंग्यात्मक साहित्य में ख्याति मिली, उसी मात्रा में प्रशस्ति के क्षेत्र में साव के सलमान (मृ० १३७६-७७) को मिली। वह पिता-पुत्र दोनों शेखों का दरबारी कवि था। उसने उबैद के लिए फिराकनामा लिखा और अपना "जय-शीद-खुर्शीद" नामक मस्नवी भी उसी को समर्पित किया। कशीदे लिखने में वह बड़ा कुशल था परन्तु इनकी शैली में बड़ी कृत्रिमता थी। फिर भी उसकी कविता में माधुर्य और प्रवाह है।

हाफिज फ़ारसी का सबसे महान् कवि था। उसका पूरा नाम था मुहम्मद शम्सु-द्दीन हाफिज। कुछ काल उसका संरक्षक राजकुल का शाहशुजा था। उसके जीवन सम्बन्धी घटनाएँ बहुत कम जानी हुई हैं। उसके "हाफिज" नाम से ज्ञात होता है कि क़ुरान का वह पण्डित था जो उसकी कृतियों से भी प्रमाणित है। जीवन का अधिकतर काल उसने अपनी जन्मभूमि शीराज में ही बिताया और अपने खुतबे के अनुसार वह १३८९ या १३९० में मरा। उसकी मृत्यु के दो वर्ष पहले तैमूर ने शीराज जीता और तभी, किम्बदन्ती है, वह उस विख्यात कवि से मिला भी। सूफ़ की गहराई, जबान के बहार, कल्पना की सुघ-राई और ध्वनि के माधुर्य में हाफिज सर्वथा बेजोड़ है। उसने कशीदे और रुबैयात दोनों लिखे। पर रुबैयात लिखने में तो उसे कमाल हासिल है। उसकी रचनाओं के विषय पुराने ही हैं—शराब, प्रेम, प्राकृतिक सौन्दर्य—परन्तु उनका रूपायन, वर्णाङ्कन, ताजगी सर्वथा नई हैं। प्रेम का आधार सुन्दर तरुण युवा है। उसने प्रशस्तिवाचन या समसामयिक को त्याग दिया है। हाफिज महान सूफी कवि-शृंखला की अन्तिम कड़ी है। उसकी नितान्त भावुक और शृंगारिक कविताओं में भी लोगों ने रहस्य का ही स्वाद पाया है और फलतः उसे "लिसानुल गैब" (प्रच्छन्न की जिह्वा) की उपाधि दी है। उमर खैयाम की ही भाँति हाफिज ने भी अपनी प्रणय-कल्पनाओं और परिस्थितियों का अंकन सूफी उपमाओं से ही किया है। उसकी मृत्यु के बाद उसकी कविताओं का संग्रह उसके मित्र मुहम्मद गुलन्दाम

ने किया और तत्काल उसकी कविताओं का फारसी साहित्य पर साका चल गया। इनमें दो तो "साकीनाम" नाम के मस्नवी हैं, बाकी लघु कविताएँ हैं।

इसके बाद तैमूरिया जमाना आया, जब लोगों ने अधिकतर इतिहास ही लिखे यद्यपि काफी घटिया। तैमूर और उसके बेटे शाहरुख के दरबारी कवि हाफिजी अब्रू ने "जुब्दतुल तवारीख" नामक एक विश्व-इतिहास और फ़ारस का एक भूगोल लिखा, इनमें से आज कोई समूचा उपलब्ध नहीं है। उस काल के अन्य इतिहासकार निजामि शामी और शर्फुद्दीन अली यज्दी थे। दोनों ने "जफरनामा" लिखा। शर्फुद्दीन ने शामी का प्रचुर अनुकरण किया। कवि की मेधा में समरकन्द का अब्दुल रज़्ज़ाक (मृ० १४८२) और हैरात का मीरख्वांद (मृ० १४९८) इनसे कहीं ऊँचे थे। रज़्ज़ाक का "मतलउल सादैन" (दो मंगलग्रहों का उदय) हाफिजी अब्रू के "जुब्दातुल तवारीख" पर आधारित है। इसमें हूलागू के प्रपौत्र अबू सैद से लेकर तैमूर के उत्तराधिकारियों का १४७० ई० तक का इतिहास दिया हुआ है। मीरख्वांद का "राजतुल सफा" विश्व का इतिहास है। अपनी बोझिल शैली के बावजूद भी यह ग्रन्थ फारसी साहित्य में अत्यधिक उद्धृत हुआ है। तैमूरिया काल के भी अपने रहस्यवादी कवि थे यद्यपि जामी को छोड़कर उनमें कोई अव्वल दर्जे का कवि नहीं था। खुजाँद के कमाल (मृ० १४००) और तब्रीज़ के मुल्ला मुहम्मद शिरीं मग़रिबी (मृ० १४०६ या ७) लिरिक कविता में हाफिज के अनुयायी थे। कातिबी तैमूर और शाहरूख के शासन-काल में प्रशस्तिकार के रूप में हरात में रहा था। उसे ख्याति शीरवां और अस्तराबाद के दरबारों में मिली। उसने वहाँ कशीदों के अलावा मस्नवी भी लिखे जो निजामी परंपरा के खम्स के अपूर्ण भाग थे। उसकी मृत्यु १४३४ और १४३६ के बीच कभी हुई।

हेरात के दरबार में कातिबी के साथ ही एक और कवि था, मुईनुद्दीन कासिमी अनवार जो शायद १४३४ में मरा। कासिम शिया सन्त भी माना जाता है। उसने अपने ग्रन्थ "अनीसुल आरिफीन" में अनेक सूफ़ी लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे कुछ लोगों ने उसे भी सूफ़ी माना है। उसे अपने शत्रुओं के कारण हेरात छोड़कर खुरासान भागना पड़ा। ऊपर लिखे मस्नवी के अतिरिक्त उसका एक दीवान भी उपलब्ध है जिसमें अनेक धार्मिक कविताएँ संग्रहीत हैं।

उबैद-ए-जाकानी की परंपरा के दो पैरोडीकार अबू इसहाक (बूशाक) और महमूद कारी थे। इनमें से पहला भोजन का कवि और उसका अनुयायी दूसरा "कपड़े का कवि" कहा गया है। पहले ने अपने रुबाइयों के संग्रह "कंजुल इश्तिहा" में भूख की निधि में स्वाद और भोजन के गुण गाए हैं। "दीवाने अल्बिस" का रचयिता "कारी" इस काल के प्रायः डेढ़ सौ वर्ष बाद हुआ परन्तु अपनी शैली और प्रतिपाद्य विषय के चुनाव में वह इसहाक का ऋणी है। दोनों पुरमजाक कविताएँ लिखने में सिद्ध-हस्त हैं।

अन्तिम तैमूरिया सुल्तान हुसेन का मंत्री मीर अलीशीर नवाई विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उसने अपने दरबार में दूर-दूर से साहित्यकार बुला रखे थे। इन्हीं में से एक दौलतशाह ने कवियों का जीवन चरित "तजिकरातुल शुअरा" लिखा। सुल्तान हुसेन ने स्वयं "मजालिसुल उश्शाक" नामक प्रशस्तिपरक ग्रन्थ लिखा। उसका मंत्री मीर अली शीर भी कवि था और उसने तुर्की जबान की चग़तई बोली और फ़ारसी दोनों में कविता की। उसके "मजालिसुल नफाएस" में समकालीन कवियों के चरित गाए गए हैं। इसका तुर्की से फ़ारसी में "लताएफनाम" नाम से अनुवाद हुआ। "अनवारे सुहेली" का प्रसिद्ध रचयिता हुसेन वाइजी काशिफी भी इसी काल हुआ जिसने पंचतंत्र की कहानियों के अरबी अनुवाद "कलील व दिमन" (करकट-दमनक) का फ़ारसी अनुवाद "अनवारे सुहेली" नाम से प्रस्तुत किया। "अहलाक-ए-मुहसिनी" उसकी मौलिक रचना है जो मुहम्मद इब्न असद दूवानी (मृत्यु १५०६) के "अखलाक-ए-जलाली" की शैली में लिखी गई। दवानी ने अपनी कृति में नसीरुद्दीन तूसी के "अखलाक-ए-नासिरी" का अनुकरण किया था।

मीर अली शीर के कवियों में प्रधान, वस्तुतः समूचे तैमूरी-काल का प्रधान कवि मुल्ला नूरुद्दीन अब्दुल रहमान जामी १४१४ में खुरासान के जामी नामक गाँव में जन्मा था। उसका तखल्लुस "जामी" फ़ारसी साहित्य के प्रसिद्ध नामों में है। ईरानियों के प्रधान सात कवियों में वह गिना जाता है। ईरानियों के दानिश में फ़िरदौसी वीरकाव्य में बेजोड़ है, निजामी रोमांस में, रूमी रहस्यवादी काव्यांकन में, सादी नीति-आचार के प्रसंगों में, हाफ़िज "लिरिक" में, पर जामी की महारत इन सारी विशेषताओं में एक सी है। पिछले खेवे के फ़ारसी कवियों में जामी प्रमुख माना जाता है। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उसका गद्य उतना ही प्रभावशाली है जितना अभिराम उसका पद्य है। लिरिक कविता के उसके तीन-तीन "दीवान" हैं। उसकी सात मस्नवी कविताओं का संग्रह (खम्स) अरबी में "सब" और फ़ारसी में "हफ्त औरंग" कहलाता है। इन पर निजामी की स्पष्ट छाप है यद्यपि इनमें से अनेक कविताएँ नैतिक, काल्पनिक, रूमानी आधार पर मौलिक और अभिराम चित्र उपस्थित करती हैं। उसकी भाषा और वर्णन की ताजगी सम्मोहक है। उसके मस्नवी संग्रह की कहानी "यूसुफ व जुलेखा" अभिराम है।

जामी की गद्य कृतियों में एक "अशीअतुल लमाआत" ईराकी की "लैमाआत" नामक रचना का भाष्य है। उसकी प्रधान कृति सूफ़ी सन्तों के चरित पर लिखा एक कोष "नफहातुल उन्स" है। उसके "लवाइह" में भी सूफ़ी सिद्धांतों का उल्लेख है। "बहारिस्तान" उसकी गद्य रचनाओं में सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह सादी के "गुलिस्तां" से प्रभावित है परन्तु उस अमर कृति की सादगी इसमें नहीं। तैमूरी काल की शैली अधिकतर शब्दा-डम्बर से बोझिल है, अलंकरण से भरी। जामी स्वयं उसी परंपरा का कवि है। यद्यपि

उसकी शैली में निखार प्रचुर है।

तैमूर की मृत्यु के बाद दक्षिण-पश्चिमी ईरान उसके वंशधरों के हाथ से निकलकर उन तुर्क सरदारों में बँट गया जिनमें शक्ति के लिए निरन्तर कशमकश चलती रही। तैमूरवंशीय हेरात का अंतिम सुल्तान हुसेन था जिसके बाद ईरान के उस भाग में भी अराजकता फैल गई। उस अराजकता का अन्त शियों के सातवें इमाम के वंशधर इस्माइल ने किया। इस्माइल ईरानी था और उसने ईरानी इतिहास में सफ़वी राजकुल की नींव डाली।

: ४ :

आधुनिक ईरान

पहली बार ईरान वैधानिक तौर से शिया हुकूमत में आया। इसका प्रभूत राजनीतिक महत्त्व तो है ही, साहित्य पर भी इसका बड़ा दूरगामी प्रभाव पड़ा। एक राष्ट्रीय चेतना का इस राजकुल के साथ आरम्भ होता है।

धीरे-धीरे ईरान का सम्बन्ध भारत और यूरोप के देशों से बढ़ा। इन सम्पर्कों का प्रतिबिम्ब उन्नीसवीं सदी के साहित्य पर पड़ा। इससे पहले का साहित्य अधिकतर प्राचीन फ़ारसी साहित्यकारों का अनुकरण है। पिछले साहित्य के निर्माण में जामीके प्रभाव और प्रेरणा का भी अपना स्थान है।

मीर अली शीर के प्रायः सौ वर्ष बाद सफवी शाह अब्बास महान् ने भी अपने दरबार में उस काल की सारी प्रतिभाओं को एकत्र किया। भारत में तैमूर और चिंगेज के वंशधर मुगल बाबर ने मंगोल-प्रभुता का विस्तार किया और साहित्य का ईरान से भी अधिक वहाँ पोषण हुआ। स्वयं बाबर ने तुर्की में अपने अनूठे संस्मरण लिखे जिनमें अमानवीय कर्मठता के साथ साहित्य के मलयानिल का मृदु स्पर्श है। उसके चचेरे भाई मिर्ज़ा हैदर दुग़लात ने मध्यएशिया के मंगोलों का इतिहास अपने "तारीख़-ए-रशीदी" में प्रस्तुत किया।

फ़ारस में भी जामी के बाद सुल्तानों की उदासीनता के बावजूद भी काव्य मर न सका। जामी के भतीजे स्वयं हातिफी (मृ. १५२१) ने "लैला व मजनूं" "खुसरो व शीरीं" आदि लिख कर रोमांटिक क्षेत्र में बड़ा नाम कमाया। वीर काव्य के रूप में अपने "तिमूरनाम" में जो उसने तैमूर का जीवन प्रतिबिंबित किया वह फ़िरदौसी के अनुयायी कवियों के निःशक्त कृतित्व के बहुत ऊपर उठ गया। हातिफी आर्थिक संघर्ष का शिकार था। उसने लिखा भी है कि यदि वहाँ आर्थिक परेशानियों से मुक्त हो जाता तो कला के क्षेत्र में अधिक लगन से काम कर सकता। कला और साहित्य के क्षेत्र में संघर्ष करने वालों में

हातिफी निस्सन्देह प्रथम नहीं और न अन्तिम ही था । उस क्षेत्र के साधकों को प्रायः जो संघर्ष करना पड़ा है वह भारत में अनजाना नहीं । सरस्वती और लक्ष्मी की विषमता के सम्बन्ध में यहाँ अनेक कहावतें ही बन गयी हैं ।

हातिफी का एक समकालीन फिगानी था । वह जामी की ही भाँति सुल्तान हुस्सैन का दरबारी था, परन्तु इर्ष्यालु शत्रुओं के कारण उसे हेरात से भागकर तब्रीज के आक कुयुन्लु के दरबार में शरण लेनी पड़ी । वहाँ उसकी काफी इज्जत हुई । वहाँ उसे बाबा-ए-शुअरा (कवियों का पिता) का खिताब मिला । फिगानी ने काव्य के पुराने अलंकरणों को छोड़ सर्वथा नयी और मौलिक उपमाओं का व्यवहार किया । काव्यांकन में वह इतना प्रवीण था कि उसे लोग "लघु हाफिज" कहा करते थे । वह १५१६ और १५१९ के बीच कभी मरा ।

जामी का शिष्य आसफी भी अपने गुरु की ही भाँति मीर अली शीर का दरबारी था । उसका समकालीन शीराज का अहली (१५३३) निष्णात विद्वान् तो था ही कशीदा लिखने में भी वह असाधारण था । अपने अधिकतर कशीदे उसने शाह इस्माइल पर लिखे । "सिह्-ए-हलाल" में उसने फ़ारसी-काव्य के क्षेत्र में टेकनीक को विशेष महत्त्व दिया । वह वस्तुतः परंपरागत था । परन्तु निश्चय है कि यह काव्य का गुण नहीं, उसका चित्रांकन है, कलम की कलाबाजी दिखाते हुए उसने 'शमा व परवाना' लिखकर रहस्यवाद की दिशा में भी कदम उठाया । अस्त्राबाद का हिलाली उसी काल का सूफ़ी कवि था जिसे हेरात के उजबक विजेता ने प्राणदण्ड दे दिया । उसकी विविध कविताएँ उसके "दीवान" में संगृहीत हुईं । "शाह व गदा" नाम का एक मस्नवी भी उसने लिखा और उसके रूपक "सिफातुल आशिकीन" ने विश्व भ्रातृत्व के राग गाये । अहली के "शाह व गदा" पर शाहरूख के दरबारी कवि आरिफी (मृत्यु १४४९) की रहस्यवादी कविता "गूय व चौगान" का स्पष्ट प्रभाव पड़ा ।

शाह इस्माइल के पुत्र साम मिर्जा ने भी "तुह्फा-ए-सामी"-लिख कर दौलतशाह के कवियों के जीवन सम्बन्धी घटना-लेखन को आगे बढ़ाया । शाह तह्मास्प का प्रधान कवि हैराती १५५४ में मरा और कासिमी ने "शाहनाम" लिख कर शाह इस्माइल और उसके उत्तराधिकारी का यश काव्यबद्ध किया । इस काल के कवियों में प्रधान मुहतशम क़ाशी था जो १५८८ में मरा और हुसेन की शहादत पर उसकी प्रशस्ति फ़ारसी साहित्य में मरसिया के रूप में अपना सानी नहीं रखती ।

१५८७ ईस्वी में शाह अब्बास महान् ने ईरान के सिंहासन पर आरूढ़ होकर ईरानी इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ किया, यूरोप से सम्पर्क के रूप में उसके दरबार में यूरोपीय राज्यों के अनेक दूत आये और एक अंग्रेज सर एन्थॅनी शरले उसके मन्त्रियों में से था । साहित्य की दिशा में भी उसने प्रभूत उत्साह दिखाया और उसका दरबार इस्पहान

में साहित्यिकों का अखाड़ा बन गया। इन्हीं में वह तेहरान का शानी (मृत्यु १६१४) था जिसकी कृतियों का पुरस्कार शाह ने उसे तौलकर सोने से दिया । अब्बास का दूसरा प्रशस्तिकार कवि हेरात का फसीही (१६३९) था जो पहले खुरासान के गवर्नर का दरबारी रह चुका था। मिर्ज़ा जलालअसीर भी जो दरबार का प्रधान पियक्कड़ और शाह का विशेष विश्वासभाजन था, कवि था। अब्बास का चिकित्सक शिफाई (मृ.१६२८) व्यंग्यकार था और उसने कुछ मस्नवी और मौलिक रचनाएँ कीं। उसकी जानी हुई रचनाएँ "मिहओ मुहब्बत", "नमकदान-ए-हकीकत," "किस्सए इराकैन" और "दीद-ए-बिदार" हैं। इनमें पहली रचना भगवान की सर्वज्ञता तथा सर्व-शक्तिमत्ता के विषय में है।

शाह अब्बास के दरबारी साहित्यकारों में एक और जुलाली (मृ० १६१५-१६) भी था जिसने कुछ मस्नवी लिखे। उसकी सात कविताओं के संग्रह में "महमूद व अयाज़" की प्रसिद्ध कहानी है। यह संग्रह "सब तैयार" (सात ग्रह) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी संग्रह में "शेबा की मलका" और "हसन" की भी कहानियाँ हैं। "महमूद व अयाज" की कविता अभिराम है। जुलाली ख्वान्सार का रहने वाला था। प्रगट है कि अब्बास का दरबार शियाओं का अखाड़ा था। प्रसिद्ध बहाउद्दीन आ मुली (मृ०१६२१) को अब्बास की संरक्षा प्राप्त थी। बहाउद्दीन शिया कानून का अधिकारी विद्वान माना जाता है। उस विषय पर उसने "जाम-ए-अब्बासी" नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा। उसने दरबार के प्रभावशाली जीवन को छोड़ तप का जीवन अपनाया और अपने इस नये जीवन की प्रशंसा में "नान व हलवा" नामक कविता लिखी। अब्बास १६२९ में मरा। उसके जीवन और कार्यों पर सब्जवार के कमाली ने अपना "शाहनाम" लिखा। उसी विषय पर गद्य में इस्कन्दर बेग मुन्शी ने अपना वृहत् इतिहास "तारीख-ए-जहाँनाराए-अब्बासी" लिखा।

भारत में उन दिनों साहित्य-निर्माण में जो प्रगति हो रही थी उसकी ओर संकेत किया जा चुका है। वहाँ जिन ईरानी लेखकों ने साहित्य-रचना की उनमें इतिहासकार ख्वान्दमीर भी था। वह "रौजातुल सफा" के लेखक मीरख्बान्द का पोता था और हेरात में जन्मा था। बाबर का निमंत्रण पाकर वह हिन्दुस्तान गया और वहाँ उसने अपने वहत ग्रंथ "हबीबुल सियर" की रचना की। यह ग्रन्थ आदि काल से लेकर शाह इस्माइल सफवी की मृत्यु (१९२४) तक का इतिहास है। इसमें भूगोल पर भी एक परिशिष्ट जुड़ा हुआ है। इसे उसने शरफुद्दीन के "जफरनाम" का संक्षिप्त संस्करण कहा है। उसके अन्य ग्रन्थ "खुला-सतुल-अखबार" "दस्तूरुल वुजरा" और "हुमायूँनाम" हैं जिनमें अलंकृत शैली का व्यवहार हुआ है। अकबर के जमाने में "तारीख-ए-अलफी" नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना का आरम्भ हुआ जिसमें मुहम्मद के बाद की घटनाओं का उल्लेख था।

अकबर केवल राजनीति का ही निर्माता न था, साहित्य के क्षेत्र को भी उससे बड़ा

प्रोत्साहन मिला। बुखारा का लिरिककार मुश्फिकी (मृ० १५८६) को उस सम्राट से बड़ी मदद मिली। दरबार के प्रधान कवि शीराज के उर्फी (मृ० १५९५) थे। फैजी की "नल दमन" नाम की एक रचना थी जिसमें नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कहानी छंद-बद्ध हुई। तेहरान के जुहूरी (मृ० १६१६) ने भी इसी काल अपना "साक़ीनाम" लिखा जो हाफिज का इसी नाम की एक कृति का मस्नवी अनुकरण है। अब्बास महान् की मृत्यु के बाद भी साहित्य में निर्माण-कार्य होता रहा। उस काल के इस्पहान का कवि साइब तो जामी के बाद के कवियों में प्रमुख माना जाता है। उसने कुछ समय शाहजहाँ के दरबार में भी बिताया था। फिर जब वह स्वदेश लौटा तो शाह अब्बास द्वितीय (१६४२-६७) ने उसे "मलिकुल शअरा" का खिताब देकर अपना राजकवि बना लिया। उसने काव्य के रूपायन में, उसके रूप और शैली में, नए प्रयोग किए जो अगली सदियों के लिए प्रतीक बन गए। उसका "दीवान" अभिराम-कविताओं और रुबाइयों से भरा है। साइब १६७७ में मरा।

फय्याज उसका समकालीन था और इमामों की प्रशस्ति में उसने सुंदर राष्ट्रीय 'कशीदे' लिखे। हसन और हुसेन पर उसके मरसिये तो बहुत ही करुण हैं। उसने शिया संप्रदाय के सिद्धांतों पर अरबी में भी एक ग्रंथ लिखा और मूर रहस्यवादी इब्नुल अरबी के "फुसूसुल हिकम" पर फ़ारसी में एक भाष्य लिखा। अब्बास द्वितीय का वजीर ताहिर वहीद पत्र-लेखन की साहित्यिक कला में निपुण था। उसने "तारीख-ए-शाह अब्बासे शानी" लिखकर इतिहास के क्षेत्र में नाम कमाया। सफवी शासन के अन्त में इस्पहान का कवि मीर अब्दुल अल नजात (मृ० १७१४) हुआ जिसके "दीवान" की उसके समसामयिकों में ही खासी चर्चा हुई। उसकी शैली को भद्दा कहा गया। उसने पहलवानी पर "गुल-ए-कुश्ती" नाम का एक मस्नवी लिखा जो लोकप्रिय हुआ और जिस पर अनेक टीकाएँ लिखी गयीं। कुश्ती सम्बन्धी कृति होने पर भी यह रचना अधिकतर श्रृंगारिक है।

सफ़वी काल के बाद यूरोपीय प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में दृष्टिगोचर होने लगे फिर भी अनेक कवि पुरानी शैली में ही लिखते रहे। उन्हीं में इस्पहान का शेख अली हज़ी भी था। जिसे राजनीतिक षड्यन्त्र के कारण हिन्दुस्तान भागना पड़ा। उसने बहुत लिखा और अपने समसामयिक तथा अन्य कवियों पर उसने ग्रन्थ लिखे। उसका "तज्किरातुल मुआसिरी" पुराने विद्वानों और कवियों का वर्णन करता है और अपने आत्मचरित "तज्किरातुल अह्वाल" में अपने समकालीनों का। इन्हीं में ईरानी शाहों के हिन्दुस्तान से सम्बन्ध का भी वर्णन है। उसने सात मस्नवी लिखे और चार दीवान। अली हज़ी १७६६ ईस्वी में बनारस में मरा। "आतशकदा" का इस्पहानी कवि लुत्फ अली आज़ुर, हज़ी से कहीं समर्थ कवि था और कुछ काल वह अफशारिदशाह (१७३६-९६) के दरबार में रहा। बाद में वह दरवेश हो गया। ऊपर लिखा उसका चरितकोष १७६०-७७ में लिखा

गया जिसमें ८०० से अधिक कवियों का उल्लेख है। उसके दीवान में विविध कविताएँ संग्रहीत हुई और मस्नवी में "यूसुफ और जुलेखा" की रोमांचक कहानी उसने प्रस्तुत की। यज्द का फौकी उसका समकालीन था और उसने भी प्रेम, शराब आदि पर कविताएँ और प्रशस्तिवाचक कशीदे लिखे परन्तु अली आजुर के काव्यस्तर को वह न छू सका। उसके वर्णन नितान्त यौन हैं।

१९ वीं सदी में (१७९७-१८३६) फतह अलीशाह ने भी गजनी के महमूद की भाँति अपने दरबार में अनेक साहित्यकार एकत्र किये। वह स्वयं पद्यकार था। और उसके राजकवि फ़तह अली खां सबा ने एक "दीवान" और एक "शाहशाहनाम" लिखा परन्तु काव्य रचना में वस्तुतः शाह का परराष्ट्र सचिव अव्दुल वहाबू नशात उससे बाजी ले गया। उसने अपने "दीवान" के अतिरिक्त अपने आका और उसके राजकवि की कविताओं की भूमिका तुकान्त छंदों में लिखी। वही जमाना था जब फ़ारस में अधिकारों के लिए इंग्लैंड, फ्रांस और रूस में कशमकश हो रही थी। फतह अली के दरबार में एक और कवि मिर्जा हबीबुल्ला (मृ० १८५३) था जो अपने तखल्लुस "काआनी" से अधिक प्रसिद्ध है। १९ वीं सदी के फ़ारसी-साहित्य का वह सबसे प्रतिभाशाली कवि है। उसके व्यंग्यों और प्रशस्तियों में ऊँची कविता रूपायित है। उसमें विनोद का भी पुट है यद्यपि अक्सर जीवन का निराशावाद उसकी ध्वनि बन जाता है।

मलका विक्टोरिया के जमाने में नासिरुद्दीन शाह (१८४८-९६) ने इंग्लैण्ड का भ्रमण किया। उसने यूरोप सम्बन्धी अपनी यात्राओं की अनुभूति फ़ारसी डायरी में सुन्दर सरल शैली में प्रस्तुत की। उसके शासनकाल के कवियों में रिजाकुली खां लालाबाशी (मृ० १८७९) प्रधान था। उसने लिरिक, वीर कविताएँ, और धार्मिक मस्नवी लिखे। साहित्यिक चरितों के क्षेत्र में भी उसने दो महान् ग्रन्थ रचे—"मजमाउल फुसहा" और "रियाजुल आरिफीन"। इनमें फ़ारसी-साहित्य के आदि से लेकर ग्रन्थकार के जमाने तक के साहित्यिकों का जिक्र है। वह कुछ दिनों ख्वारिज्म के दरबार में अपनी सरकार का दूत भी रहा। अपने "सिफारतनाम" में उसने अपनी खीव की यात्रा का विवरण दिया है।

यूरोप का प्रभाव रजाकुली खाँ के समकालीन शैबानी की कृतियों पर स्पष्ट है। वे १९वीं सदी के यूरोपीय साहित्य का उत्कट यथार्थवाद और निराशावाद प्रतिबिम्बित करती हैं। इसी काल पहले-पहल नाटकों का भी फ़ारसी में प्रादुर्भाव हुआ परन्तु वे सारे के सारे तुर्की नाटकों के अनुवाद थे, कॉमेडी जो कभी रंगमंच पर खेले न जा सके।

इनसे सर्वथा भिन्न नाटक वे "ताजिया" हैं जो प्रतिवर्ष मुहर्रम के अवसर पर हुसैन अली और हसन की मृत्यु पर प्रदर्शित होते हैं, इन नाटकों में ईरानी राष्ट्रीय चेतना ईरान

में जगी क्योंकि हुसैन और हसन ईरान के माने हुए सन्त और शहीद थे। ताजियों का उदय सर्वथा आधुनिक है जो कर्बला सम्बन्धी क़ुर्बानी के आधार पर उठे। ये नाटक केवल खेले जाते हैं, कभी लिखे न जा सके और इनके रचयिताओं का भी कुछ पता नहीं। इनका अंदाज भारतीय रामलीला आदि से लगाया जा सकता है।

१९वीं० सदी का सब से बड़ा ईरानी धार्मिक आन्दोलन "बाबीवाद" के नाम से विख्यात है। १८४४ ईस्वी में शीराज के मिर्ज़ा अली मुहम्मद ने अपने को "महदी" एलान कर इसका प्रवर्तन किया। "बाब" वह द्वार है केवल जिससे "सत्य" का लाभ हो सकता है। अली मोहम्मद का आन्दोलन सूफ़ी आधारों पर ही खड़ा हुआ, एक रहस्यवादी भ्रातृभाव उसने धारण किया और व्यावहारिक रूप से कम्यूनिस्ट प्रवृत्तियों की एक झलक उसके आन्दोलन में मिली। स्वाभाविक ही वैधानिक इस्लाम की आवाज उसके विरुद्ध उठी। आन्दोलन के अनेक अनुयायी मार डाले गये और अनन्त यन्त्रणाओं के शिकार हुए। शीघ्र ही बाद में बाबियों में आन्तरिक झगड़े खड़े हो गये। नए सम्प्रदाय का प्रधान नेता बहाउल्ला हुआ और उसी के नाम पर आन्दोलन का पिछला नाम "बहाई" पड़ा। यद्यपि इस आंदोलन का अधिकतर प्रभाव ऐतिहासिक है परन्तु साहित्य भी उससे अछूता न बचा। स्वयं बाब ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें प्रधान सिद्धान्तवादी "बयां" (व्याख्या) है। उसके अनुयायियों ने भी अपने सम्प्रदाय का साहित्य प्रस्तुत किया।

वर्तमान काल का फ़ारसी-साहित्य राजनीतिक वातावरण में स्वाभाविक ही एक नयी दिशा में चल पड़ा है। अनेक कवियों ने साहित्य की शोभा बढ़ायी है। बीसवीं सदी में मशवाद के बाहर ने अच्छी कविताएँ कीं और वहाँ से एक अखबार भी निकाला। आसिफ ने कुछ बड़े सुन्दर राजनीतिक बैलेड लिखे हैं। आसिफ को अपने विचारों के कारण कैद की सजा तक भुगतनी पड़ी है। गीलान के सैयद अशरफ ने रूढ़िवादी मुल्लाओं के विरुद्ध काफी सुन्दर काव्य रचना की। इनके अतिरिक्त अनेक नवोदित लेखक और कवि आज के ईरान में प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। वहाँ के प्रसिद्ध "तूदे" दल ने जिस प्रहारक नीति से विदेशी शोषण का प्रतिकार किया है उसमें वहाँ के अनेक प्रतिभाशाली प्रगतिशीलों का भी योग है और प्रकट है कि जनवादी साहित्य के क्षेत्र में ईरान उत्तरोत्तर प्रगति करता जायगा।

१७. फ़िनलैंड का साहित्य

फ़िनलैंड उसी भू-भाग में स्थित है जिसमें स्कैंन्डिनेविया के नार्वे और स्विडन हैं। यद्यपि वह स्कैन्डिनेविया का भाग नहीं माना जाता परन्तु कई अर्थ में वह उन्हीं देशों के समान है। उसकी आबादी में भी कम-से-कम दस प्रतिशत स्वीडी बोलने वाले हैं। फ़िनलैंड की आबादी कुल ४० लाख है। इस प्रकार वह दो भाषाओं का देश है।

फ़िनलैंड ६०० वर्षों तक रहा भी है स्विडन राज्य का अंग जिससे उसकी संस्थाओं और सांस्कृतिक अभिप्रायों का स्वीडी परंपरा में विकसित होना और उनसे प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। स्वीडी भाषा बहुत दिनों तक वहाँ राजकीय भाषा में स्वीकृत हुई। इसी कारण १९ वीं सदी से पहले का उसका साहित्य आज के अर्थ में विशेष महत्व का नहीं। हाँ, लोक-साहित्य की सम्पदा उसमें काफी रही है।

१२००-१५०० के बीच का तीन-चार सौ सदियों का साहित्य लोक-साहित्य है जिसमें वीर काव्य, लिरिक आदि सभी रचे गये हैं। प्रायः ५० हजार लोक-कविताएँ संगृहीत हो चुकी हैं, लगभग ३० हजार लोक कथाएँ, १० लाख कहावतें और प्रायः ४० हजार पहेलियाँ। लोक-साहित्य की मात्रा का इससे कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। उनका प्रकाशन पहली बार के मुद्रण माध्यम से १९ वीं सदी में हुआ।

स्विडन के शासन का अंग होने के कारण फ़िनलैंड के साहित्य की अपनी स्वतन्त्र स्थिति तो हो ही नहीं सकती थी। इससे स्वाभाविक ही उसका विकास श्रंखलित रूप से हुआ। फ़िन्नी साहित्य का जनक विशप माइकेल एग्रिकोला[१] कहलाता है। १६ वीं सदी के मध्य उसने इंजील की नई पोथी का अपनी भाषा में अनुवाद किया। वह सुधारवादी लूथर के आन्दोलन से प्रभावित था। विशप एरिक सोरोलैनेन[२] ने बाइबिल की पुरानी पोथी का अनुवाद भी समाप्त किया। अनुवाद की भाषा फ़िन्नी-गद्य का सुन्दरतम रूप मानी जाती है। विशप एरिक ने अपने उपदेशों का एक बड़ा संग्रह भी प्रकाशित किया था।

१७ वीं और १८ वीं सदियों में फ़िन्नी-साहित्य की सीमाएँ कुछ फैलीं। भाषा में कुछ नए अनुवाद हुए और साहित्य धर्म की सीमाओं के बाहर लौकिक विषयों की तरफ भी बढ़ा। फिर भी फ़िन्नी-साहित्य की प्रगति बहुत धीमी थी। उस काल की सबसे महत्व-पूर्ण साहित्यिक कृति माथयाज सालाम्नियस[३] की कविता "मेसिआ" (१६९०) है जिसमें ईसा का चरित सहज और स्पष्ट भाषा में अंकित हुआ है।

---

१. Bishop Michael Agricola. २. Bishop Eric Sorolainen (मृत्यु १६२५)

३. Mathias Salamnius

१८ वीं सदी से फ़िनलैंड में स्वतन्त्र सांस्कृतिक जीवन का आरम्भ होता है। उसका प्रधान केन्द्र तुर्क विश्वविद्यालय बना जहाँ जर्मन और अंग्रेजी रोमान्टिक प्रवृत्तियों का प्रवेश हुआ। हर्डर ने फ़िनलैंड के साहित्य को सिद्धांत प्रदान किये और अंग्रेजी साहित्य ने नए मॉडल। इस नए क्षेत्र का नेता प्रोफेसर पोर्थन[1] था। वह फ़िनलैंड का पहला इतिहासकार और भूगोलविद् था और उसी ने उस देश के अतीत के चित्र प्रस्तुत किये। उसने फ़िन्नी भाषा और लोक-साहित्य के क्षेत्र में भी बड़ा अनुसंधान किया और उसके अनेक शिष्यों ने उसके बाद भी उस अनुसंधान की श्रृंखला जारी रखी, जैकब तेंगस्तोम[2] और फ्रांस माइकेल प्राजेन[3] उसके शिष्यों में प्रधान थे। इनमें पहला इतिहासकार और रसवादी था और उसने ग्रीक तथा रोमन मॉडलों के विपरीत इब्रानी, अंग्रेजी और प्राचीन स्केन्डिनेविया के लोक-साहित्य को अपना आदर्श माना। इससे एक तो १९ वीं सदी को रोमान्टिक प्रवृत्तियों के देश में विकास का लाभ हुआ और दूसरे फ़िन्नी- संस्कृति तथा राष्ट्रीयता को शक्ति मिली।

उस काल का सबसे महत्वपूर्ण कवि पोर्थन का दूसरा शिष्य फ्रांस माइकेल फ्रांजेन[4] था उसने यूरोप का काफी भ्रमण किया था। उसकी कविताओं में बड़ी सादगी और स्वाभाविकता है। "मानव मुख" और "बूढ़ा सैनिक" उसकी दो प्रारम्भिक कविताएँ हैं। बाद में वह घरेलू जीवन पर कविताएँ लिखने लगा था। स्वदेश की प्रेरणा में भी उसने कुछ कविताएँ लिखीं और स्वीडन में उसकी प्रशंसा काफी हुई। वहाँ की एकेडेमी का वह सदस्य चुन लिया गया था। स्वीडन में ही वह १८४७ में मरा।

१८०९ में स्विडन से अलग होकर फ़िनलैंड रूसी साम्राज्य का अंग बन गया। तब उस देश के अनेक नेता स्विडन चले गये। १९ वीं सदी के प्राय: आरम्भ में ही रोमांटिक आंदोलन का फ़िनलैंड में प्रवेश हो गया था। उसके प्रचारकों ने भाव साम्राज्य की गाथा गायी और पुरानी रूढ़ियों को दबाने में वे सफल हुए। उस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीयता का जो देश में विकास हुआ उससे साहित्य को अच्छी मात्रा में लाभ हुआ। राष्ट्रीय भाव धारा का प्रधान समर्थक आर-विदसन[5] था जिसने अपने लेखों द्वारा राष्ट्रीय सुधारों की माँग की। उसने समकालीन रूढिवादी वृद्ध नेताओं को उनकी प्रतिगामी सक्रियता के लिए धिक्कारा। रूसी शासन के तेवर तब बदले और उसे फ़िनलैंड छोड़कर स्वीडन भागना पड़ा। १८२८ में विश्वविद्यालय तुर्कु से उठकर हेलसिंकी चला गया और हेलसिंकी में ही तब से फ़िनलैंड का सांस्कृतिक जीवन केन्द्रित हुआ। १८३० में वहाँ

---

१. Professor H. G. Porthan (१७५९-१८०४); २. Jacob Tengstrom; ३. Frans Mikael Franzen ; ४. Frans Mikael Franzen (जन्म १७७२); ५. A. I. Arwidsson (१७९१-१८५८)

जिस सोसाइटी की नींव पड़ी उसने फ़िनलैंड के सांस्कृतिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण काम किया। उसकी बैठकें शनिवार को होती थीं, इसीलिये उसका नाम भी "शनिवार-समाज" पड़ गया। उस समाज के सदस्य अधिकतर तरुण थे। उस दल का प्रधान पुरुष नरवान्दर[१] था। वैज्ञानिक होने के अतिरिक्त वह कवि भी था। उसकी कविताओं में सुन्दर-सरल भाषा में उस काल के रोमान्टिक आदर्श प्रतिबिम्बित हुए। उस दल का दूसरा महत्वपूर्ण सदस्य फ्रेडरिक किग्नियस[२] था। उसकी गद्य रचनाएँ रोमान्टिक प्रवृत्ति से भरी थीं। उसने फ़िनलैंड के सांस्कृतिक जीवन पर काफी प्रभाव डाला। वह आलोचक भी था। उस दल का सर्वोत्तम कवि जोहान लुडविग रूनेबर्ग[३] था। उससे समाज के आदर्शवाद को बड़ी प्रेरणा मिली। रूनेबर्ग ने अपनी कृतियों में फ़िन्नी किसान का बड़ा हृदयग्राही चित्र खींचा। उसकी यथार्थवादी किसान सम्बन्धी कृति में किसान की आत्मा जाग्रत हो उठी। "एल्क-शिकारी" "हन्ना" और "क्रिस्मस की संध्या" उनकी जानी हुई कृतियाँ हैं। पिछली रचनाओं में उसने मध्यवर्ग और अभिजातकुलीय जीवन को मूर्त किया है। "एल्क-शिकारी" राष्ट्रीय एपिक है। १८०८-९ के रूसी युद्ध में फिनलैंड ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया था। तत्सम्बन्धी घटनाओं का रूनेबर्ग ने अपनी सशक्त कविताओं में वर्णन किया और यह कविताएँ न केवल उसकी ही रचनाओं में श्रेष्ठ मानी गई वरन् फ़िनलैंड की राष्ट्रीय भावना का भी प्रतीक बन गईं। १९वीं सदी के मध्य से कुछ ही पूर्व यूरोप के साहित्य में यथार्थ-वादी प्रवृत्ति का आरंभ हुआ था। रूनेबर्ग उस यथार्थवादी प्रवृत्ति का सही प्रतिनिधि था। सशक्त प्रवृत्ति के स्पर्श से समर्थ जीवन उसके आकर्षण का केन्द्र बना और वह रोमान्टिक प्रवृत्ति के ऊपर उठ गया। बाद में निश्चय ही रोमान्टिक प्रवृत्ति, सम्भवतः और असफल प्रेम के फलस्वरूप उसकी चेतना में लौट पड़ी। "नादेश्दा" और "राजा फ्यालार" रूनेबर्ग की उसी प्रवृत्ति की कविताएँ हैं। फिर भी उससे उसकी यथार्थवादी चेतना नष्ट न हो सकी।

उस काल के रोमान्टिक लिरिक कवियों में सबसे विशिष्ट लार्स जैकब स्टेन्बैक[४] था। उसकी कविताओं में सौन्दर्य की उपासना थी। परन्तु कुछ ही काल बाद धर्म के पचड़े में पड़कर उसने साहित्य से प्रायः किनारा ही कर लिया। १९वीं सदी के मध्य के बाद भी फ़िनलैंड में रोमान्टिक प्रवृत्ति जीवित रही परन्तु उसके रूप में अब कुछ अन्तर पड़ गया था। अब वह दार्शनिक कम थी हल्की और सद्योजात अधिक। उसमें मातृभूमि की उपासना प्रायः आवश्यक हो गई। जाक्रिस तोपेलियस[५] उस युग का सबसे बड़ा लेखक है। वह पहले कवि था, लिरिक कवि और अपनी कविताओं में उसने स्वदेश के अभिराम प्राकृतिक दृश्यों का

---

१. J. J. Nervander (१८०५–४८); २. Fredrik Cygnaeus (१८०७–१८८१); ३. Johan Ludvig Runeberg (१८०४–७७); ४. Lars Jakob Stenback (१८११-७०); ५. Zachris Topelius (१८१८–९८)

है। चरित्र प्रकृति के निकटस्थ है, सभ्यता से प्राय: दूर। प्रकृति का भी उसमें प्रचुर वर्णन हुआ है। उसके शब्दचित्र अत्यन्त मार्मिक हैं। फ़िन्नी साहित्य, संगीत और चित्रकला पर 'कालेवाला' का गहरा प्रभाव पड़ा। लोनराट ने "कान्तेलेतार" नामक एक बृहद ग्रन्थ में प्राचीन लोक-लिरिक, बैलेड और ख्यातें एकत्र कीं। साथ ही उसने मुहावरों (१८४१) पहेलियों (१८४४) और मंत्रों (१८८०) के भी संग्रह प्रकाशित किए। फ़िन्नी भाषा इन संग्रहों से समृद्ध हुई। उसे बड़ा बल मिला।

आधुनिक फ़िन्नी भाषा का पहला मौलिक कवि अलेक्सिस कीवी[1] था। उसने विश्वसाहित्य का अध्ययन काफी किया था। रोमान्टिक परंपरा में उसने कुछ बड़ी सुन्दर भावुक और ताजी कविताएँ लिखीं। उसके नाटक "लिया" (१८६९) ने फ़िन्नी रंगमंच का सूत्रपात किया। उसने यथार्थवादी परंपरा में भी साहित्य रचा और फिनलैंड की जनता का सच्चा चित्रण किया। उसकी कॉमेडी "मोची" (१८६४) एकांकी "मँगनी" (१८६६) और उपन्यास "सात भाई" (१८७०) फ़िन्नी जीवन के सुघड़ संचायक हैं। कीवी युग का सबसे विशिष्ट कवि ओक्सानेन[2] था। उस काल के कुछ अन्य कवि निम्नलिखित थे। जिन्होंने अपने-अपने मौलिक तरीके से फ़िन्नी साहित्य का उपकार किया—

कार्लोक्रम्सू[3], जोहाना हेन्रिक्की एर्को[4], अर्वी जेनिस[5], पावो काजान्दर[6]।

मध्य १९वीं सदी के बाद फ़िनलैंड का साहित्य खूब बढ़ा। उसके पढ़ने वालों की संख्या बढ़ी और अन्य यूरोपीय साहित्यों के सीधा सम्पर्क में आ जाने के कारण 'स्थानीय' से अधिक व्यापक मानवीय प्रश्नों पर विचार होने लगा। नई प्रवृत्तियों का उसमें प्रवेश हुआ। १८८० के बाद प्रकृतिवाद का प्रचार हुआ जिससे सामाजिक समस्या विशेषत: सामाजिक वर्गों के पारस्परिक संघर्ष, वर्तमान समाज में नारी के अधिकार मजूरवर्ग के अधिकार—साहित्य का आराध्य बन गईं।

नई प्रवृत्ति जिसमें प्रकृतिवाद और रोमान्टिक शैली का समन्वय था—का आरम्भ एक लेखिका मिन्ना कान्थ[7] ने किया। पहले वह पुरानी परंपरा में लिखती थी जिसका इष्ट रोमान्टिक शैली से देहाती जीवन को व्यक्त करना था। अब अपने "मजूर की पत्नी" (१८८५) में उसने सामाजिक असुविधाओं पर आघात किया। अपने अन्य उपन्यासों— "गरीबलोग" और "छिपी चट्टान" में भी उसने सामाजिक विषमताओं और कुरीतियों का भण्डाफोड़ किया, नारी के अधिकारों की माँग की। संपत्तिहीन जनों का प्रश्न उसने

---

१. Alexis Kivi (१८३४–७२); २. Oksanen (१८२६–८९); ३. Kaarlo Kramsu; ४. Juhana Henrikki-Erkko; ५. Arvi Jannes; ६. Paavo Cajander; ७. Minna Canth (१८४४–९७)

अपने नाटक "अभाग्य की सन्तान" (१८८८) में लिया। उसके अन्य नाटक "सिल्वी" और "अन्नालीजा" (१८९५) था।

जोहानी आहो[१] ने भी अपने उपन्यासों—"रेलवे" "पादरी की बेटी" और "पादरी की बीबी"—द्वारा रोजमर्रा के जीवन और उसकी कुरीतियों का चित्र खींचा और नारी के अधिकारों का समर्थन किया। अन्तिम उपन्यास तो उसकी बड़ी सुन्दर कृति है। उसने कुछ अत्यन्त मार्मिक कहानियाँ भी लिखी हैं। उसकी शैली का फ़िनलैंड में काफी अनुकरण हुआ। अर्विद जर्नेफिल्ट[२] दूसरा लेखक था जिसने वहाँ का साहित्य भरा पूरा। उस पर टाल्सटाय[३] का प्रकट प्रभाव था। वह किसान हो गया। उसमें बलिदान और शान्तिपूर्ण व्यवस्था की मात्रा काफी है। उसने अपने उपन्यास, नाटकों और कहानियों द्वारा अपने विचारों का प्रचार किया। उसकी विशिष्ट कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

"पितृदेश", "मेरा परिवर्तन", "ग्रेटा और उसका भगवान्", "मनुष्य का भाग्य", और "जीवन-सागर"।

काजीमीर लेइनो[४] ने अपनी कविताओं द्वारा नए उदार विचारों का प्रकाश किया। उसके केवल तीन कविता संग्रह और एक नाटक हैं पर उनसे उसकी शैली का निखार प्रगट हो जाता है।

जोहानिज़ लिनान्कोस्की[५] अपनी कृतियों—"शाश्वत-संघर्ष" "लाल फूल का गीत" "हेइकिला के लिए संघर्ष" "भगोड़े" द्वारा फ़िन्नी साहित्य को समृद्ध किया। इनमें से पहली दो उपन्यास हैं अन्य कहानियाँ। एइनो लेइनो[६] काज़ीमीर का भाई और विशिष्ट कवि था। तीस वर्ष उसने काव्यरचना की और उस क्षेत्र में सारे पूर्वगामी कवियों से वह बढ़ गया। उसकी सुन्दरतम कविताएँ "हेल्गा सूक्त" है। अपनी प्रबन्ध कविताओं—"काल की लहरों से" में उसने जनता के प्रश्न प्रतिबिंबित किए। अपने भाई की ही भाँति वह कवि होने के अतिरिक्त आलोचक भी था। उसने अन्य भाषाओं की सुन्दर कृतियों का अपनी भाषा में अनुवाद भी किया। उस काल के कुछ और कवि, ओटो मानिनेन[७] कोस्केनिएमी[८] आदि थे।

आधुनिक फ़िन्नी-साहित्य के निर्माण में अनेक नारी साहित्यकारों का खासा हाथ रहा है माइला ताल्वियो[९] मारिया जोतुनी[१०] आइनो कालास[११] ने उपन्यास और नाटक के

---

१. Juhani Aho (१८६१–१९२१); २. Arvid Jarnefelt (१८६१–१९३२); ३. Tolstoy; ४. Kasimir Leino (१८६६–१९१९); ५. Johannes Linnankoski (१८६९–१९१३); ६. Eino Leino (१८७८–१९२६); ७. Otto Manninen (ज० १८७२); ८. V.A. Koskenniemi (ज० १८८५); ९. Maila Talvio (ज० १८७१) १०. Maria Jotuni (१८८०-१९४३); ११. Aino Kallas (ज० १८७८)

क्षेत्र में अपने साहित्य को अच्छी कृतियाँ भेंट कीं। माइला ने सामाजिक समस्याओं पर उपन्यास और नाटक लिखकर मिन्ना कान्थ की परंपरा जीवित रखी। मारिया के नाटक शैली में संक्षिप्त हैं और देहात का जीवन प्रतिबिंबित करते हैं। आइनो ने अधिकतर अपने उपन्यासों और कहानियों के पात्र 'इस्टोनिया' के समाज से चुने।

जर्मन अभिव्यञ्जनावाद प्रेरित लौरी हार्ला[१] ने अनेक स्पष्टाकृतिक नाटक लिखे। उसका सर्वोत्कृष्ट नाटक 'जूडास' प्रायः ऐतिहासिक है और अभिराम "पाप" सर्वथा यथार्थवादी। "पाप" में उसने 'अभिव्यंजनावाद' त्याग दिया है।

फ्रान्स एमिल सिलान्पा[२] आज का सुन्दरतम फ़िन्नी उपन्यासकार है। उसके उपन्यासों में सामाजिक वर्गों का वर्णन है। उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति "जीवन और सूर्य" (१९१६) है। उसके "शान्त दाय" (१९१९) में फ़िनलैंड के गृह-युद्ध के चित्र हैं। उसकी "नौकरानी"• "सिल्या" (१९३१) सरल निश्छल कुमारी के यथार्थवादी परिस्थितियों में जीवन का वर्णन हुआ है। उसका "मानव-पथ" (१९३२) भी सुघड़ कृति है। सिलान्पा को १९३९ में नोबुल पुरस्कार भी मिला था।

द्वितीय महासमर के बाद भी फ़िन्नी साहित्यकारों को कुण्ठा ने न घेरा। साहित्य निर्माण और प्रकाशन का कार्य होता रहा। देश में ८० प्रकाशक थे और तीन हजार से ऊपर पुस्तकालय। १९४५ में प्रायः एक करोड़ पुस्तकें बिकीं। भूलना न होगा कि फ़िनलैंड की कुल आबादी ४० लाख है जिसका १० प्रतिशत स्वीडी है। अर्थात् उस साल किताबों के बिकने का औसत १५ वर्ष से अधिक आयुवाले प्रत्येक जन पर पाँच का रहा। लिरिक कविता और उपन्यास के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। १९४५ में सिलान्पा ने स्वयं अपनी सुन्दर कृति "मानव-जीवन का सौन्दर्य और अभाग्य" लिखकर तत्कालीन जीवन का परिचय दिया। आइनो कालास, मार्या जोतुनी, और माइला तल्वियों का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। उन्होंने अपनी साहित्यिक सक्रियता जारी रखी। आइनो ने "मृत्यु का हंस" और "चन्द्रकिरण" नामक सुन्दर लिरिक लिखे। मार्या ने नाटक और माइला ने "बाल्टिक सागर की कन्या" नामक उपन्यास लिखा। लाउरीहार्ला[३] अपनी मृत्यु के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर झुका और वृद्ध कवि कोस्केनियेमी[४] ने लिरिकों के कई संग्रह प्रकाशित किये।

कुछ और फ़िन्नी आधुनिक साहित्यकार काव्य के क्षेत्र में लावरी विल्यानेन,[५] कातृवाला[६] साइमा हरमाजा[७] और ऊनो काइलास[८] हैं। हेला वुंओलियोकी[९] ने कुछ सफल

---

१. Lauri Haarla (१८९०-१९४४); २. Frans Emil Sillanpaa (जन्म १८८८); ३. Lauri Haarla; ४. V. A. Koskenniemi; ५. Lauri Viljanen; ६. Katri Vala (१९०१-४४); ७. Saima Harmaja; ८. Uuno Kailas (१९०१-३३); ९. Hella Vuolijoki

ड्रामा लिखे हैं और उन्तो सेपानेन[1] अपने रोमांटिक उपन्यास "सूरज और तूफान" (१९३९) तथा मिका वाल्तारी[2] ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास "मिस्त्री सिनुहे" (१९४५) लिखकर ख्याति पाई।

१. Unto Seppanen. २. Mika Valtari

१८. फ्रैंच-साहित्य

फ्रैंच-साहित्य संसार के अत्यन्त समृद्ध साहित्यों में से है। उसका काल-विस्तार अंग्रेजी को छोड़कर प्रायः सभी यूरोपीय वर्तमान साहित्यों से बड़ा है और उसमें केवल संख्या या परिमाण की ही बात नहीं, गुणतः भी वह बड़ा प्रभावशाली रहा है। जिस प्रकार यूरोप में एक काल तक फ्रैंच राज-दरबार ने अपने आचार को उदाहरण बना दिया था, उसी प्रकार फ्रांस का साहित्य भी एक लम्बे अर्से तक यूरोप के साहित्यिकों के लिए प्रेरणा तथा अनुकरण की वस्तु बन गया था। मध्यकाल के आरम्भ से अद्यावधि अटूट रूप से वह साहित्य-रत्न उत्पन्न करता गया है। अनेक बार उसी साहित्य ने यूरोपीय साहित्यों के आन्दोलनों का आरम्भ किया।

फ्रैंच साहित्य के अपने विशेष रूप का निर्माता सौन्दर्यबोध था। फ्रांस की कला और साहित्य दोनों में सौंदर्य की उपासना उसी मात्रा में हुई है जिस मात्रा में उसकी जनता ने सौन्दर्य की उपासना की है। फ्रेंच जनता जीवन में अकृत्रिम रूप से असाधारण भावुक और सौन्दर्यापेक्षी है। जीवन का साहित्य में उतर आना स्वाभाविक है और फिर फ्रेंच साहित्य का तो उस जाति से निरन्तर सम्बन्ध रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि और जातियों का संबंध उनके साहित्य से कम रहा है। बल्कि केवल यह कि जीवन में सौन्दर्य-बोध को विशेष महत्व देकर चलने वाले वे लोग संभवतः भावुक और साहित्य-स्रष्टा होने के कारण अपने साहित्य में भी उस बोध की छाया गहरे रूप से डाल सकते हैं और फ्रेंच साहित्य पर वह छाया निःसन्देह बहुत गहरी पड़ी। फ्रेंच भाषा की मधुरता भी उस सौन्दर्य की सहायक है।

: १ :

मध्य-युग

फ्रैंच-साहित्य का वस्तुतः आरम्भ मध्य-युग से होता है। उसकी पहली जानी हुई कृति ग्यारहवीं सदी ईस्वी के अन्त में प्रस्तुत "रोलाँ-का-गीत" है जिसमें फ्रांस के प्राचीन वीरों के पराक्रम का छन्दोबद्ध वर्णन है। शार्लमान[१] का शासनकाल उसके कथानक का युग है। "रोलाँ का गीत" में रोलाँ[२] की मृत्यु, गानेलों[३] के विश्वासघात और शार्लमान के न्याय तथा प्रतिशोध की ओजस्वी कथा है। साथ ही उसमें मूरों के युद्ध और स्वदेश के प्रति फ्रांसीसी सैनिकों के संस्मरण स्थान-स्थान पर सुन्दर रीति से अभिव्यक्त हुए हैं। इस रचना की भावधारा और छन्द की गरिमा स्तुत्य है। बड़ी योग्यता से अनेक वीर-कथाएँ

१. Charlemagne; २. Roland; ३. Ganelon

उस एक संग्रह में ढाल दी गयी हैं। शार्लमान, आरेन्ज की विलियम[1] गिरार्द-द-रोसिलां[2] सभी उसकी कथाओं में जीवन धारण करते हैं। इस काल से लेकर १३वीं सदी के मध्य तक फ्रांस में वीरकाव्य का ही प्राधान्य रहा यद्यपि वह धारा उत्तरोत्तर क्षीण होती गई।

वीर काव्यों के अन्त के पर्याप्त पूर्व ही अनेक वीर कथाएँ फ्रांसीसी-साहित्य में रचनाओं का आधार बन चली थीं। राजा आर्थर[3] और उसके वीरों की कहानियों का भी प्रादुर्भाव उस साहित्य में हुआ। बारहवीं सदी के मध्य पहले-पहल उनका उपयोग फ्रांस की भाषा में हुआ। छोटी-छोटी छन्दोबद्ध कहानियों में, जिन्हें "ले"[4] कहते हैं, सबसे पहले मारी-द-फ्रांस[5] ने उनका उपयोग किया। उनमें वीरों के पराक्रम और महिलाओं के प्रति उनकी भक्ति का वर्णन हुआ। "ले" प्रकार की कथा कविताओं का चरम विकास श्रीतियाँ द त्रौय[6] की कृतियों में हुआ। 'इरेक और एनिद', 'यवें', 'लांसलो और 'पर्सिवाल', श्रीतियाँ की प्रसिद्ध कृत्तियाँ हैं। श्रीतियाँ कहानी कहन में बड़ा चतुर था। और उसने अपनी वर्णनात्मक कविताओं में उन चरित्रों और आदर्शों का विकास किया जो मध्यकालीन संस्कृति के प्रतीक माने जाते हैं। चरित्र-चित्रण विनोदात्मक वर्णन शालीन रूपायन, वस्तु के अनुकूल ही अपने आप जैसे उसके स्पर्श के जादू से यथावांछित निर्मित हो जाते थे। 'त्रिस्तन" ख्यातें और अन्य अनेक रचनाएँ उसी परंपरा में सम्पन्न हुईं और प्रायः समान वीरों के ही कथानकों द्वारा भरी पड़ी है। आर्थर और उसके वीरों की कथाओं को फ्रेंच साहित्य का प्रारम्भिक आधार बनना इस बात को प्रमाणित करता है कि फ्रांस ने अपने साहित्यिक विषयों को चुनने में किसी भौगोलिक बाधा को स्वीकार नहीं किया। यह संभव भी न था और यद्यपि उस मात्रा में न सही फिर भी पर्याप्त मात्रा में स्वयं अंग्रेजी ने फ्रांस की शार्लमान संबंधी कथाओं को अपने कथासाहित्य का प्रारंभ में आधार बनाया।

फ्रांस ने जिस प्रकार अंग्रेजी ख्यातों से अपने साहित्य को समृद्ध किया उसी प्रकार ग्रीस और रोम की सामग्री भी उस साहित्य में प्रतिबिम्बित हुई। सिकन्दर, त्राय, थीवी आदि से संबंध रखने वाली घटनाओं पर अनेक छन्द कथाएँ उस काल फ्रांस में रची गयीं। सिकन्दर का रोमांस, त्रॉय का रोमांस, इनियां विल्गे' थीवी का रोमांस आदि उसी परंपरा की कहानियाँ हैं जिन्हें फ्रेंच भाषा में "रोमांस" कहते थे। अभी तक परंपरा छन्दों में ही लिखने की थी। धीरे-धीरे काव्य का प्रयोग शुरू हो गया और अधिकतर आर्थर संबंधी कथाएँ १२०० ई० के बाद गद्य में लिखी गयीं। 'ग्रेल की ऊँची पुस्तक'[7] उसका एक नमूना है।

---

१. Willliam of Orange; २. Girard-de-Roussillon; ३. King Arthur; ४. Lay; ५. Marie de France ६. Chretien de Troyes; ७. High Book of Grail (Perlesvaus)

उपन्यास धारा के प्रारम्भ होने के पहले कुछ काल तक सुन्दर गद्यबद्ध कहानियों का प्रचलन रहा जिनमें छन्द भी प्रचुर मात्रा में अपनी स्वाभाविक धारा में यत्र-तत्र प्रवाहित होता था। कथानक अधिकतर वीर नायक और नायिका के प्रणय, पर्यटन तथा असाधारण कृत्यों से अनुप्राणित होते थे। "ओकासें और निकोलेत" उसी परंपरा में लिखी गयी एक संक्षिप्त कथा है। जिसमें फ्रांसीसी, देहाती जीवन की भी जहाँ-जहाँ पर्याप्त झलक मिल जाती है। उस काल की रचनाओं में 'गुलाब का रोमांस' प्रख्यात हो गया है। इसके दो खण्ड हैं। जिनमें पहला गिलोम द लोरी[१] ने लिखा और दूसरा जां द मअं[२] ने पहले भाग में प्रणय के आदर्श चित्रित हैं और दूसरे में तर्क की प्रतिष्ठा है। पुस्तक निःसन्देह मध्यकाल का एक प्रबल रूपक है। इसकी काया छन्द-बद्ध है। इस काव्य ने यूरोपीय साहित्य पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। 'रनार का उपन्यास' उसी परंपरा में लिखा मध्यकालीन संस्थाओं पर समर्थ व्यंग्य है। इसमें अनेक प्रकार के पशुओं को पात्र बनाकर मानव कार्यों की पैरोडी की गयी है। पशुपात्रों के वक्तव्य समकालीन मानवों के कृत्यों का उपहास करते हैं। उसी तेरहवीं सदी का छन्द में प्रस्तुत कहानियों का संग्रह "फाब्लियो" समकालीन मनुष्यों की कथा मानव रूप में रूपायित करता है। उसका व्यंग्य भी कुछ कम गहरा नहीं।

मध्यकालीन लिरिक का प्रभाव भी उसी प्रकार दरबार की भूमि से मध्यवर्गीय समाज की ओर है। काव्य का आरंभ उत्तर और दक्षिण के पारंपारिक लोक-गायनों से हुआ। परन्तु साहित्य की शैली में बँधकर वे शालीन बन गए। १४वीं और १५वीं सदियों में कुछ काफी अच्छे लिरिक लिखे गये। उस युग का सबसे महान कवि फ्रांसुइस विलों[३] था। अपने ही जीवन की कटुताएँ और निर्मम कठिनाइयाँ उसने अपने लिरिकों में सजीव कर दीं। अपनी प्रसिद्ध कृति "तैस्तामां" में अपने झगड़े, अपनी माता की प्रार्थना-उपासना, वृद्धा वेश्या का अपने सौन्दर्यनाश पर विलाप, पेरिस के शोहदों की अभद्र चेष्टाओं, अपनी प्रेयसी मार्गो के विलास आदि का उसने बड़ा सफल चित्र खींचा। इस रचना में छंदोलंकार उलझे हुए हैं। परन्तु उसकी सादगी, हृदय पर सीधा और मार्मिक चोट करती है।

उस काल की नाट्य-धारा दो दिशाओं में बही, एक धर्म के क्षेत्र में और दूसरी लौकिक चेतना के क्षेत्र में। इनमें पहली का विकास चर्च की क्रिया-विधियों के आधार से हुआ, दूसरी का लोकाराधन की प्रवृत्तियों से। धर्म सम्बन्धी नाटक, गिर्जाघर की उपासना वेदी से उठकर पहले उसके आँगन में खड़े हुए, फिर राजमार्ग पर उतर आये। १५वीं सदी तक पहुँचते पहुँचते उसने अपना वह विराट रूप धारण किया जिसमें गाँव का गाँव तो प्रदर्शन में भाग लेता ही था स्वर्ग और नरक की कल्पना भी साकार हो उठती थी। इस प्रकार

---

१. Guillaume de Lorris (Ca. १२३०); २. Jean de Meun (Ca. १२७५);
३. Francois Villon

उसके गाँव, स्वर्ग और नरक तीन भाग होते थे। उन नाटकों में कुछ तो रहस्यपूर्ण होते थे जिनके विषय बाइबिल से चुन लिए जाते थे और कुछ सन्तों के जीवन और उनके चमत्कारों को प्रदर्शित करते थे। आर्नूल ग्रेबाँ[१] का "मिस्तैर द ला पेशन" पहले प्रकार का प्रतीक है और जां बोदेल[२] का "ज द सां निकोला" तथा रूतबूफ[३] का "मिराकेल द थियोफील" दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं।

लौकिक ड्रामा की पृष्ठभूमि पर अधिकतर विनोदपूर्ण और समसामयिक अथवा अन्य घटनाओं का प्रदर्शन होता था और अनेक बार उसमें नैतिकता का आदर्श उपस्थित किया जाता था। हास्य उसका प्रधान रस था और चरित्रों के आचरण पर कटु व्यंग्य उनका विशेष मन्तव्य। इसके सुन्दरतम उदाहरण "रोबें मारियाँ, तथा "ज दला फुइली" (ल० १२६०) है। इनमें पिछले का रचयिता आदम द ला हाल[४] है। इसी परंपरा में ग्रेंगवार[५] का "ज दु प्रेंस दे सोत" (१५१२) और "मास्टर पाथेलिन" लिखे गये। इस अन्तिम नाटक का नायक शठ है। वस्तुतः इस प्रहसन के सभी पात्र उसी की तरह शठ हैं। उनके वक्तव्य संसार की नीचता पर प्रकाश डालते हुए मनोरंजन और व्यंग्य का एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करते हैं।

: २ :

पुनर्जागरण-काल

रेनेसां[६] या पुनर्जागरण काल प्रायः सारे यूरोप में नयी भावनाओं के साथ प्रादुर्भूत हुआ। एक नयी चेतना, नया दृष्टिकोण, नयी अनुभूति साहित्य और सामाजिक जीवन में मूर्तिमती हुई। कला और साहित्य में जो नये-नये प्रयोग हुए उनसे स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि उस नई चेतना ने एक नए युग को प्रसव किया है। पारंपरिक ईसाई संकीर्ण प्रवृत्ति को इस नयी चेतना ने जोर का झटका दिया और राजनीति की ही भाँति साहित्यिक सक्रियता ने भी एक नयी दिशा में गति की। प्रकृति के अभिराम अनायास उपस्थित सौन्दर्य से मुँह मोड़ लेने की प्रवृत्ति की चूलें हिल गयीं और सौन्दर्य को उसके अकृत्रिम रूप में अपनाने की चेष्टा सफल हुई; जीवन को भी सौन्दर्य-सम्पन्न करने की प्रेरणा लोगों में जगी और अतीत की कृत्रिम कुण्ठा को सबल चुनौती मिली। ग्रीक और रोमन विचार जो सदियों से विलुप्त हो गये थे अथवा सुदूर पूर्व में होने से पश्चिमी यूरोप के लिए अनजाने थे, अब उस नयी परंपरा में प्रधान प्रतीक बन कर जागे। १४५३ में कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर तुर्कों ने

---

१. Arnoul Greban (ca. १४५२); २. Jean Bodel; ३. Rutebeuf; ४. Adam de la Halle; ५. Gringoire.; ६. The Renaissance

जो उधर ग्रीक-अध्ययन की परंपरा समाप्त कर दी तो वहीं के ग्रीक और रोमन पण्डित अपने वेष्टनावृत ग्रंथों को लिए दक्षिण पश्चिमी यूरोप की ओर भागे। यूरोप फिर एक बार प्राचीन ग्रीक और रोमन दर्शन साहित्यिक और कलागत मानदण्ड और मूल्यांकन से प्रभावित हुआ। उस दृष्टिकोण से पहले इटली प्रभावित हुआ फिर फ्रांस।

आल्प्स लाँघकर पुनर्जागरण की यह लहर जब फ्रांस पहुँची तब उसने साहित्य और कला के सिद्धांतों की एक नयी व्यवस्था की। उसने परंपरागत साहित्यिक सिद्धांतों पर गहरा आघात किया। मध्यकाल में भी साहित्यिक सिद्धान्त निःसंदेह थे परन्तु उनका संबंध शैली और अलंकार मात्र के महत्वहीन उपकरणों से था। पुनर्जागरण-काल के सिद्धान्त काव्यगत विषय, रूप, परंपरा, शैली, टैकनीक सभी से संबंध रखते थे। अरस्तू आदि प्राचीनों के साहित्यिक सिद्धान्त दार्शनिक शालीनता प्राप्त कर चुके थे। और उनका चिन्तन-निरूपण मध्यकालीन समीक्षकों की बुद्धि के परे था। शीघ्र ही नयी चेतना ने प्रमाणित कर दिया कि प्राचीनों का साहित्य संबंधी मूल्यांकन और उनके तत्संबंधी सिद्धांत स्तुत्य तथा अनुकरणीय थे। निकट की "गौथिक" परंपरा से हटकर सुदूर अतीत की ग्रीक और रोमन परंपरा का उन्होंने अभिवादन किया और उसी को अपना आदर्श बनाकर उसका अनुकरण किया।

इसी वातावरण में सोलहवीं सदी के फ्रांसीसी लिरिक काव्य का जन्म हुआ अभिराम और शालीन! पारंपरिक रूप उसके निर्जीव हो गये थे और सिवा उनके शब्द रूप के उन काव्य के सौरभ का सर्वथा अभाव हो चुका था। न तो उनमें कायिक सौन्दर्य था, न उनमें प्रतिपाद्य विषय में कोई वैयक्तितता थी। इस स्थिति का अपवाद कभी ही कभी दृष्टिगोचर होता था। क्लेमां मारो[1] के पत्र (१५२५) अभिराम छन्द में इसी प्रकार के एक अपवाद की सृष्टि करते हैं। यह काव्य शक्तिम इसलिए बन पड़ा है कि यह नितान्त प्रगतिशील है, समकालीन परिस्थितियों को विस्तृत रूप से अपनी काया में प्रति-बिंबित करता है। इसका कवि मारो असामान्य संघर्षशील है, निर्धन, कारावद्ध, निर्वासित होने के कारण और स्वदेश लौटने के लिए, बन्धन से मुक्ति के लिए, जीवन की आवश्यकताओं के लिए उसकी काव्यगत पंक्तियाँ पुकार उठती हैं। स्वतः अनुभूत स्थिति उधार ली हुई भावना से कितनी अधिक शक्तिमती होती है, कितनी यथार्थ, इसके क्लेमा मारो के "पत्र" असाधारण दृष्टान्त हैं और अगत विपत्तियों को चुनौती द्वारा झेलने की कवि की शक्ति एक अद्भुत हास्यरस का सृजन करती है। मानव जब विरोधी शक्ति की दुर्विनीत चोट का कायल हो जाता है तब वह उस चोट को अंगीकार कर लेता है। वही अंगीकरण उसकी हार का सबूत है। और यदि वह उस चोट को हँसकर निष्फल कर देता है तब उसे अंगी-

---

१. Clement Marot

कार न करने की सफल प्रेरणा शत्रु की शक्ति को हास्यास्पद कर देती है। मारो अपनी विपत्तियों को हँस कर हास्यास्पद कर देता है। और उसकी कृति अपनी अद्‌भुत ताजगी का प्रभाव पाठक पर डाले बग़ैर नहीं रहती। १५४९ ई० में जोखेम दु बेले[१] ने फ्रैंच स्थानीय काव्य परंपरा पर नये दृष्टिकोण से क्रान्तिकारी चोट की। उसके नये सिद्धान्त-निरूपण ने प्राचीन पिण्डर[२] और होरेस[३] का अनुकरण कर उनसे भी बढ़ जाने की चेष्टा करने वाले अभिनव फ्रेंच कवियों के दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित किया।

दु बेले स्वयं उस काल के नये कवियों में अग्रणीय था। वह लिरिककार था। अपना लिरिक-संग्रह 'जैतून' उसने १५४९ में 'खेद' 'रोम का पुरातत्व', और 'देहाती खेल' उसने १५५८ में प्रकाशित किये। उसने अधिकतर सॉनेट और ओड का उपयोग किया। उसका छन्द अधिकतर पेत्रार्च[४] के अनुकरण में था और अपने ओड के लिये उसने होरेस को आदर्श बनाया। इस क्षेत्र का दूसरा महान, कवि रौं सार[५] था जिसने अपने ३५ वर्ष के रचनाकाल में अनेक विषयों पर कवितायें लिखीं और उस दिशा में प्रायः प्रत्येक प्राचीन क्लासिक कवि का सफल अनुकरण किया। उसकी मेधा वीरकाव्य को छोड़ और सारी दिशाओं में कृतिमत्ता हुई। उसके अनेक लिरिक फ्रैंच साहित्य के अप्रतिम उदाहरण माने जाते हैं।

ग्रीक और रोमन परंपरा से प्रेरणा ग्रहण करने वाले अभिनव कवियों का फ्रांस में एक दल ही बन गया था जो 'प्लेइयाद'[६] कहलाता था। उस दल के अनेक कवियों ने उस काल में बड़ी अच्छी लिरिक रचना की। वैसे उनका प्रधान गढ़ तो पेरिस था पर लियों आदि नगरों में भी उस दल के सदस्यों की कमी न थी। मौरिस सेव[७] और लुई लबे[८] लियों नगर के ही दो विख्यात कवि थे जिन्होंने सॉनेट के रूप में सुन्दर काव्य रचना की। उनके प्रोटेस्टेन्ट वीर काव्यों के रचयिताओं ने भी इसी नयी प्रणाली का अनुकरण किया। मालर्ब[९] ने लिरिक रचना में अपनी भिन्न चेतना द्वारा एक प्रकार का अवरोध उपस्थित कर दिया। उसके काव्य का रूप उन्माद से ऊपर उठ कर चिन्तनशील बन गया। उसकी दो कृतियाँ "कोमान्टेयर सिर देपोते" और 'कौंसोलासियों द मोसियें दु पेरिये' विशेष प्रसिद्ध हैं। पहली में तो उसने भाषा और छन्द के सुधार की योजना रखी और दूसरी में उस योजना का सफल निर्वाह किया। उसके छन्द की परंपरा अगले फ्रेंच छन्दों का आधार बनी।

यद्यपि दर्शन की परंपरा को अनेक आलोचक साहित्य से भिन्न मानते हैं परन्तु शैली के रूप में भाषा और साहित्य के विकास में निस्सन्देह उसका योग होता है। अनेक बार तो दार्शनिक रचनाओं में साहित्य का अद्‌भुत सौरभ फूट पड़ता है। फिर निबन्ध के रूप में

---

१. Joachim du Bellay; २. Pindar; ३. Horace; ४. Petrarch; ५. Ronsard; ६. Pleiade; ७. Maurice Sceve; ८. Louise Labe; ९. Malherbe

तो दर्शन वैसे भी साहित्य के अनेक अन्तरतम स्तरों को छू लेता है। इसी विचार से १६वीं सदी के राबले,[१] काल्विन[२] और मौतने,[३] १७वीं सदी के देकार्त[४] और पस्कल[५], १८वीं सदी के अनेक दार्शनिकों, १९वीं सदी के रेनाँ[६] और २०वीं सदी के बर्गसों[७] की महान् साहित्यिकों में गणना हुई। इनमें राबले के सम्वन्ध में तो संभवत: किसी को आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि संसार के महान् साहित्यिक निर्माताओं में उसका स्थान है। उसके, 'गार्गन्तुआ और पांताग्रुएल' का रूप प्राय: उपन्यास का है यद्यपि वह १६वीं सदी में ही लिखा गया था। उसकी कथा-सामग्री बहुत कुछ मध्यकालीन परंपरा में साँस लेती है। परन्तु उसकी गति में चिन्तन का प्रवाह है। उस तथाकथित उपन्यास में उस काल के सारे विचारों, आदर्शों, परंपराओं और विद्रोहों का निरूपण है। उसमें अत्यन्त सुरुचि और सफल हास्य का निर्वाह हुआ है। पुनर्जागरण के सदाचरण के आदर्श के रूप में संभवत: इससे सुन्दर दूसरी कृति उद्धृत नहीं की जा सकती। मिशैल द मोतेन[८] ने १६वीं सदी को ऋद्ध निबन्ध भेंट किये जिनमें लेखक स्वयं प्रतिपाद्य विषय बन गया। निस्सन्देह शैली लेखक की अहम्भावना की द्योतक न थी वरन् इस विचार को लेकर चली थी कि वह स्वयं अपने समय का प्रतिनिधि है और जो वह अपने विषय में लिखता है वह समाज के संबंध में सत्य है। उसके निबन्ध शुद्ध हैं और आत्मपरक होने के कारण एक आत्मीयता लिये हुए हैं।

सुधारवादी आंदोलन ने ईसाई धर्मानुयायिओं को भी दो भागों में विभक्त कर दिया था। परिणामत: कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों में विचार-संघर्ष अनिवार्य हो गया। फ्रांस में प्रसिद्ध प्रोटेस्टेन्ट सिद्धान्तवादी काल्विन[९] साहित्यिक गद्य की एक विशिष्ट शैली का प्रवर्तक हुआ। १५४१ ई० में, 'ईसाई धर्म की संस्थायें' प्रकाशित कर काल्विन ने फ्रेंच-गद्य-शैली को एक नवीन प्रवाह और शक्ति प्रदान की। शैली नितांत संक्षिप्त थी और उसमें कम-से-कम शब्दों का अधिक-से-अधिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। इस दिशा में वह राबले तथा मांतेन का जवाब बन गया।

नाटक के क्षेत्र में ग्रीक ट्रैजेडी और कॉमेडी का विशेष अनुकरण हुआ। कथावस्तु चाहे जो हो नाम निश्चय ही ग्रीक और लैटिन ही लिये जाते थे। यद्यपि यह प्रयास 'क्लासिकल' साहित्य के रूप मात्र का अनुकरण कर सका। उसकी शालीनता नये अनुकरणों की सीमाओं में न समा सकी। ट्रैजेडी नितान्त विषादपूर्ण होने लगी पर उसमें नाटकीयता का प्राय: अभाव हो गया। कॉमेडी में भी असाधारण की जो प्रचुरता हुई उससे वस्तुस्थिति जीवन से भिन्न और कृत्रिम हो उठी। मध्यकाल में जिस कथा-परंपरा का आविर्भाव हुआ था वह भी

---

१. Rabelais.; २. Calvin; ३. Montigne; ४. Descarste; ५. Pascal; ६. Renan; ७. Bergson; ८. Michel de Montaigne ; ९. Calvin

अपेक्षाकृत कमजोर पड़ गई। हाँ, 'हैप्तामेरन' १५५८ में निस्सन्देह मार्गरीत द नवार[१] ने कथा शैली को एक नई गति और स्फूर्ति प्रदान की यद्यपि उसकी वह कृति इटली के कथाकार बुकाचो[२] के 'देकामेरन' के अनुकरण में प्रस्तुत हुई। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि मार्गरीत बुकाचो की सरल शक्ति का निर्वाह अपनी रचना में न कर सकी। उसी काल प्लूतार्च के जीवन चरितों का शुद्ध फ्रेंच शैली में अनुवाद कर आम्यो[३] ने साहित्य का भण्डार भरा।

: ३ :

सत्रहवीं सदी

सोलहवीं सदी के फ्रांस में जो 'प्लेइयाद' के सदस्यों ने ग्रीक और लैटिन मॉडलों के अनुकरण में साहित्य रचना प्रारम्भ की थी उसमें अनूठापन तो निस्सन्देह था परन्तु सफलता की मात्रा कम थी। विशेषकर प्रबन्ध काव्यों और नाटकों में उनके आदर्श मॉडलों का स्तर उनकी अपनी कृतियों के स्तर से नितान्त ऊँचा था। उसे वे अपनी रचनाओं में न उतार सके। यह कार्य सत्रहवीं सदी में सम्पन्न हुआ यद्यपि कार्य साधारण था नहीं। पहले तो भाषा को ही उन आदर्श कृतियों का वाहन बनाना था। भाषा में आवश्यक परिवर्तन हो चुकने पर ही क्लासिकल विचारों, प्रकृतियों और आदर्शों का मूर्तन हो सकना सम्भव था। इस उद्देश्य की सफलता में दो घटनायें बड़ी सहायक हुई। एक तो १६३४ में 'फ्रैंच एकेडमी' की स्थापना और दूसरी चौदहवें लुई[४] का राज्यारोहण। फ्रैंच एकेडमी की स्थापना ने पुनर्जागरण के आन्दोलन को प्रायः सरकारी और राष्ट्रीय बनाकर उसे स्थायित्व प्रदान किया। भाषा साहित्य और उनमें रची जाने वाली कृतियों को उसके अधिकारी सदस्यों ने निश्चित किया। साथ ही अपने कृतित्व से फ्रांस के सफलतम साहित्यिकों ने उसमें आदर्श भी उपस्थित किया। चौदहवें लुई के राज्यारोहण ने देश को एकता प्रदान की जिससे भाषा की एकता उत्पन्न होने में भी बड़ी सहायता मिली। लुई का दरबार अपनी शालीनता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हो गया है। वह शालीनता केवल दरबारी तड़क-भड़क तक ही सीमित न थी वरन् उसमें मेधा और प्रतिभा का भी प्रभूत योग था। लुई का दरबार फ्रैंच एकेडमी का ही एक दूसरा संस्करण बन गया था और फ्रेंच एकेडमी के अनेक जाज्वल्यमान नक्षत्र स्वयं उस सूर्य के चतुर्दिक भी घूमते थे। इतना ही नहीं, दोनों की स्थिति में एक अन्तर भी था जो दरबार के साहित्यिकों के पक्ष में था। वह था अपनी कृतियों के कथानक के लिए तत्काल और समसामयिक कथानक प्राप्त कर लेना। साथ ही उन्हें अपने स्थायी भावों को प्राणमय

१. Marguerite de Navarre; २. Boccaccio; ३. Amyot; ४. Louis XIV

बनाने के लिए विभाव भी वहाँ पर्याप्त मिल जाते थे। वर्साई के महलों में नन्दन को भी लज्जित करने वाले प्रमदा-वन थे और उनके निकुंज कामुकों की प्रवृत्ति का निरन्तर उद्दीपन करते रहते थे। राजा स्वयं कामुक था जो असंख्य ऐसे सामन्तों से घिरा रहता जिन्हें अपनी प्रजा से, सिवा उसके कुचल कर लगान वसूल करने के, और कोई सम्पर्क न था। जो सदा लुई के विलास के साधनों को सजीव करते रहते थे और स्वयं भी उसी वातावरण में जीते थे। कामियों और मुग्धाओं की कमी वर्साई के उस कृत्रिम वनप्रान्तर में न थी और दरबार के साहित्यिकों के लिए वातावरण नितान्त अनुकूल पड़ता था। यूरोप के अन्य देशों में ग्रीक अथवा रोमन जीवन के आदर्शों, विशेषकर सामाजिक रोमांटिक प्रवृत्ति को लेकर चलने वाले साहित्यिकों को जहाँ दूर की प्राचीन परिस्थितियों की कल्पना मात्र करके साध्य सँभालना पड़ता था वहाँ लुई के दरबार के प्रतिभाशील साहित्यकारों के सामने जैसे एथेन्स और रोम वर्साई में ही मूर्तिमान हो उठे थे। लुई स्वयं सुरुचि का अवतार था और उसके संरक्षित कलाकारों को भी सुरुचि का अपनी कृतियों में विशेष निर्वाह करना पड़ा। फिर लुई की चुहलबाजी भी कुछ ऐसी ही थी कि उसके समकालीन कृतिकारों को अपनी कृतियों में छाया के स्थान पर धूप का, चकाचौंध का, अपेक्षाकृत अधिक उपयोग करना पड़ा।

इस दिशा में सत्रहवीं सदी के फ्रांस के साहित्यकारों में पहला कदम पियर कार्नेल[१] ने लिया। पहले तो उसने कॉमेडी लिखकर नाम कमाया। फिर सहसा अपनी ट्रैजेडी-कॉमेडी मिश्रित कृति सी लिख कर उसने पेरिस और वर्साई दोनों को चमत्कृत कर दिया। उसकी यह कृति १६३६ में प्रकाशित हुई। चार वर्ष बाद उसने 'होरेस और चिना' १६४० तथा 'पौलियवत'' १६४२ लिख कर दर्शकों को आश्चर्य में डाल दिया। तत्कालीन लड़ाकों का जीवन में आदर्श था—रोमांचक परिस्थितियों में अपने कर्त्तव्य-पालन का निर्वाह। वह कर्त्तव्य चाहे राजा की सेवा में हो चाहे सुन्दरियों की। दोनों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जीवन को खतरे में डाल देने अथवा बलिदान तक कर देने का संकल्प उस युग का आदर्श था। और उसे मूर्त्त करने में कार्नेल की प्रतिभा बड़ी सफल हुई। उसने अपने नायकों और नायिकाओं को उसी वातावरण में सिरजा। समाज के सामन्तों अग्रणीयों को नित्य के प्रयोग के लिए भाव-संकुल शालीन वाक्य-परंपरा चाहिए थी और यह वाक्य-परंपरा बहुत कुछ कृत्रिम होती हुई भी प्रयोग बाहुल्य के कारण सहज और स्वाभाविक हो गयी थी उस परंपरा को स्वर और वहनीय बोझ देकर कार्नेल अपने समकालीनों का उपास्य बन गया। फिर भी कार्नेल 'क्लासिकल' आदर्श की दिशा में इच्छित मंजिल तक न पहुँच सका। उसके नाटकों में उसके आदर्शों की अपेक्षा गति की कमी थी। कथानक में आत्मा जैसे खो जाती

---

१. Pierre Corneille

थी और जीवन की संघर्षशील भावनाओं का उनमें अभाव हो जाता था। कथावस्तु के पेंच, भावों की विविधता और शैली की शालीनता उनमें एकत्र रूपायित न हो सकी।

कार्नेल की यह कमी रेसाइन[1] ने पूरी की। जॉ रेसाइन के अनेक ट्रैजेडी-नाटक ऐसे हैं जिनको पूर्ण की संज्ञा दी गई है। १६६७ और ७७ के बीच उसने सात गजब के नाटक रचे। 'आंद्रोमाक' और 'फ़ैद्र' तो प्रायः सर्वथा बेजोड़ थे। इनके अतिरिक्त उसने दो बाइबिल सम्बन्धी नाटक 'एस्थ' और 'अथाली' लिखे। रेसाइन की इस सफलता का एक विशेष कारण था। उसने रोमन के बजाय सूक्ष्म ग्रीक आदर्शों को अपना मॉडल बनाया। सुरुचि तो उसे अपने युग ने ही दी परन्तु भावों का आवेग और कवित्व की प्रतिभा उसकी अपनी थी सर्वथा वैयक्तिक। फिर जब उसने सुरुचिके साथ अपनी मेधा के योग से ग्रीक आदर्शों को स्थापित किया तब उसकी सफलता मानो सहज हो गयी। तीनों का एकत्र योग सजीव और सफल नाट्यांकन का कारण बना। कथानक अत्यन्त सहज स्थिति से उठता है। फिर धीरे-धीरे वह उलझनें और गुंजलक भरने लगता है। फिर तो उस उलझन में मनोवैज्ञानिक चेष्टाओं के घात-प्रतिघात शुरू हो जाते हैं। उदाहरणतः 'फ़ैद्र' पत्नी है परन्तु उसे प्रेम हो गया है। फिर वह अपने पति के प्रति अपना उत्तरदायित्व सहज ही निभाना चाहती है। उस दिशा में वह प्रयत्नशील भी है और अपनी आचार-गुरुता का दर्शकों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। वह अपने अपराध से स्वयं अत्यन्त भयान्वित हो उठती है। उसका हृदय इस ईमानदार चेतना के कारण मथ उठता है और वह दुःख, ईर्ष्या और प्रणय का शिकार हो जाती है। इस प्रकार उसके प्रणय की अकेली भावना में अनेक स्थितियाँ विकार उत्पन्न करती जाती हैं और कथानक में पेच पर पेच पड़ता जाता है।

कार्नेल और रेसाइन ने तो सुरुचि और शालीनता का फ्रेंच रंगमंच पर विकास किया, परन्तु उस काल के लिए इतना ही पर्याप्त न था। सुरुचि आखिर जनसाधारण की स्वाभाविक प्रकृति इतनी न थी जितनी लुई के दरबार के कृत्रिम और संयत पार्षदों की। जनसाधारण को कथागत गौरव तथा सुरुचि से परहेज न था परन्तु उसे इनके अतिरिक्त कुछ और भी चाहिये था। अकृत्रिम मुक्त हास्य। वह फ्रांस की जनता को उसके प्रिय नाटककार मौलिए[2] ने दिया। मौलिए रंगमंच का जादूगर था। भाषा, भाव, और पात्र जैसे सिरजी हुई परिस्थितियों में स्वाभाविक ही गतिमान हो उठते हैं। और उनका एक-एक स्फुरण दर्शकों के मुक्त और प्रतिध्वनित हास्य का कारण होता है। मौलिए सहज ही लोकप्रिय हो गया। फ्रेंच जनता कुछ स्वभाव से भी दूसरी जातियों की अपेक्षा अपने कृतिकारों का विशेष मान करती है। फिर मौलिए के पक्ष में तो उसकी असाधारण प्रतिभा भी थी। इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। कोई फ्रांसीसी शेक्सपियर पढ़ रहा था। किसी अंग्रेज ने अभिमान

---

१. Jean Racine; २. Moliere

पूर्वक कहा—"अच्छा, हमारा शेक्सपियर पढ़ रहे हो।" उत्तर मिला—"हाँ, तुम्हारा शेक्सपियर ही, यह देखने के लिए कि वह हमारे मौलिए की अपेक्षा कितना नगण्य है!"

मौलिए ने सत्रहवीं सदी के प्रायः मध्य में लिखना शुरू किया परन्तु उसकी महान् रचनायें—"तारतिफ", "दो जुआँ," "ला मिजां थ्रौप", "लै फाम सावात"—रेसाइन की कृतियों की ही समकालीन थीं। यह बात विशेष ध्यान देने की है कि जहाँ कार्नेल और रेसाइन, कम-से-कम रेसाइन, के सामने उनके क्षेत्र में सफल-असफल प्रयत्न के रूप में कुछ मॉडल उपलब्ध थे, मौलिए अपना मॉडल आप था। साधारण से साधारण विनोदात्मक परिस्थिति अथवा हास्य से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यंग्यात्मक चरित्राक्षेप तक सब कुछ मौलिए ने अपने आप ही सिरजा। उसकी अपनी ही रचनाओं में उसके साहित्य का समूचा विकास हुआ। न तो उसने पथ-प्रदर्शन के लिए किसी की ओर देखा और न देखने पर भी उसका मिल सकना संभव था। हास्य की परिस्थितियाँ वह सहज जीवन से जैसे चुन लेता था। समाज की स्वार्थ-परकता, वंचकता, कामुकता, हास्यास्पद चेष्टाएँ उसकी लेखनी की नोक से जैसे टपकती जाती थीं और उनके साधन से परिस्थितियों को मूर्त्त कर हाल को दर्शकों के हास्य की सहज प्रतिध्वनियों से गुँजा देता था। नाटक के क्षेत्र में मौलिए का वही स्थान है जो चित्र लेखन की दिशा में व्यंग्य चित्रकार का। कार्टून बनाने वाला रेखाढ्य कलावंत जैसे अपने आलेख्य को उसकी आकृति के अवयव विशेष को असाधारण खींच कर उसको रूपायित कर देता है और अपने इस प्रयास में उसके अन्य अंगों को नगण्य अथवा नितान्त छोटा बना देता है—उसी प्रकार मौलिए पापी अथवा अपराधी पात्र की कमजोरियों में से केवल एक को चुनकर उसे जाल की तरह तेजी के साथ बुनने लगता है, परिस्थितियों का योग और उनके प्रति उसके पात्र की प्रतिक्रिया उसकी उस अपराध-चेतना को बृहदाकार कर देती है। परिणामतः वह हास्यास्पद हो उठता है।

सत्रहवीं सदी के फ्रांस में नाटक-साहित्य ने तो असाधारण प्रगति की ही उस काल गद्य रचनाओं को भी फ्रेंच प्रतिभा का अपूर्व दान मिला। मौलिए के समकालीन साहित्यकार समर्थ जां द ला फौंतेन[1] ने कथा साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया। १६६८ और ९४ के बीच उसने बारह खण्डों में ऐसी काल्पनिक कथाएँ लिखीं जिनकी समता कोई आधुनिक साहित्य नहीं कर सकता। ला फौंतेन के कथा-साहित्य का अनुवाद अनेक यूरोपीय भाषाओं में हुआ और विदेशों के बढ़ते हुए साहित्य ने कथाओं की दिशा में उसी साहित्य का दामन पकड़ा। ला फौंतेन पशु पक्षियों की कथा तो लिखता है। परन्तु उसकी सैटिंग, उसका प्रसार और प्रवाह सब कुछ नाटकीय होता है। उसमें चरित्रों का विकास, परिस्थितियों की पारस्परिक प्रतिक्रिया, ललित डायलॉग और गति प्रभूत होती है। अन्त में स्थिति नुकीली

१. Jean de la Fontaine

होकर उपदेश के रूप में जैसे टपक पड़ती है । ला फौंतेन की नीति-कथाएँ वस्तुतः शैली, सूक्ष्मता और प्रतिभा की आकर हैं ।

उस युग ने अपने साहित्य में एक असाधारण प्रतिभा के व्यंग्यकार को भी जन्म दिया। वह था मौलिए, रेसाइन और ला फौंतेन का समान मित्र निकोला ब्वालो[१] । वह गजब का व्यंग्यकार और नीति-पद्यकार था । मजाक उड़ाने की उसकी प्रतिभा इतनी चुटकीली थी कि कम-से-कम शब्दों में वह स्थिति और पात्र दोनों पर गहरा प्रहार कर सकता था । उसके विचारों और साहित्यिक प्रहारों का प्रभाव अगली सदी तक बराबर लोगों पर पड़ता रहा। १६७४ में लिखे ब्वालो के 'आर पोएतिक', ने रेनेसां (पुनर्जागरण) के मूल सिद्धान्तों और आदर्शों का फ्रेंच में पहली बार दार्शनिक रूप से प्रकाश किया । १८वीं सदी में साहित्य के क्षेत्र में जो मनुष्य के व्यापक शाश्वत स्वरूप पर जोर दिया गया, कला के नियमों का अनिवार्यतः पालन हुआ और बौद्धिक न्याय के ऊपर सुरुचि की प्रमाण माना गया, वह सारा इस ब्वालो की लेखनी का ही परिणाम था । साहित्य में इन विचारों की सत्ता समकालीन दर्शन के कारण हुई और उस दर्शन का मूल निर्माता अकेला ब्वालो था । ब्वालो चिन्तन की दिशा में उस काल का अरस्तू था और उसी की भाँति दर्शन तथा साहित्य के सिद्धान्तों को, दार्शनिक रूप से उसने तर्कबद्ध किया । फ्रेंच साहित्य में सन्तुलन-समीक्षा-शास्त्र का पहला प्रणेता ब्वालो ही था ।

नाटक और नाट्यगत काव्य की महत्ता १७वीं सदी की अपनी चीज थी ही, उस सदी में कथा की साधारण स्थिति से उठ कर उपन्यास की परंपरा भी आकार धारण कर चली । द उफ[२] और स्किदेरी[३] ने सदी के आरंभ में ही उपन्यास-धारा का स्रोत उद्घाटित कर दिया । हाँ, उपन्यास का स्वरूप अभी घटना बहुल ही था और परिणामतः दीर्घकाय, यद्यपि चरित्रों के निर्माण और चित्रण से उपन्यासकार सर्वथा उदासीन न थे । परन्तु शीघ्र ही उस दिशा में भी विशेष प्रगति हुई । घटनाओं को परिस्थितियों के अनुकूल कर, अनावश्यक घटनाओं को काट-छाँट उसकी आकार चेष्टा युक्तिसंगत कर ली गई । उस दिशा में, मादाम द लाफायेत[४] ने अपने उपन्यास 'प्रेंसेस द बलीव' (१६७८) में बहुत कुछ वही सफलता प्राप्त की जो रेसाइन ने अपने नाटकों में की थी । यह उपन्यास निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता किसका है परन्तु साधारणतः यह मादाम लाफायेत की ही कृति माना जाता है ।

लुई चौदहवें की ही साहित्यिक परंपरा में बोसे[५] भी था । उसने धर्म को एक फैशन बना दिया । उसके करुण प्रवचनों में उच्चकोटि की नाटकीयता होती थी और उसकी भाषा का प्रवाह तथा उसकी साहित्यिक प्रतिभा उन्हें प्रथम श्रेणी की साहित्यिक कृति का पद

---

१. Nicolas Boileau; २. D'urfe; ३. Scudery; ४. Mme de Lafayette; ५. Bossue

प्रदान करते थे। उसकी गद्य की यह विशेषता ला ब्रियेर[१] के गद्य में भी मिलती है। ला ब्रियेर ने अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु पैनी नोक से सजी गद्य शैली का अपने 'कारक्तेर' (१६८८) में उपयोग किया। उसमें समकालीन महानुभावों पर गहरी चोट की गयी है। उस कार्य में साहित्यकार की चुस्ती अदभुत स्फूर्ति धारण कर लेती है। गद्य के इस चुटकीलेपन का दूसरा आचार्य ला रोशफूकोल[२] था जिसने उस दिशा में प्राय: एक सूत्र-शैली का प्रयोग किया। उसके 'माक्सिम' (१६६४-६५) १७वीं सदी के फ्रेंच गद्य की असाधारण शक्ति का परिचय देते हैं। उनमें गजब की स्पष्टता और व्यंग्य-बाहुल्य है। मदाम द सैविने[३] ने अपने गद्य में एक आत्मीयतापरक शैली का उद्‌घाटन किया। उसकी पुत्री और मित्रों को लिखे उसके पत्र उस शैली के माध्यम हैं जिनकी शक्ति और गहराई साधारण स्थिति में भी असाधारण प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उस काल में सिमों[४] ने फ्रेंच में अत्यन्त सुन्दर और मधुर संस्मरण लिखे। यह याद रखने की बात है कि उस काल का फ्रेंच-साहित्य संस्मरणों से भरा था जिसकी शैलीपरक ऊँचाई एकान्त-सिद्ध थी। परन्तु सेंट-सिमो उस दिशा में अनुपम प्रमाणित हुआ। उसकी भाषा और भावों के व्यंग्य शक्तिम होते थे और लुई के दरबारियों को पास से देख सकने के कारण वह अपनी कृति को यथार्थतः सच्चा और चुटीला बना सकता था।

परन्तु १७वीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण गद्य देकार्त्त[५] और पस्कल[६] ने लिखे। देकार्त्त और पस्कल दोनों फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक हो गये हैं और देकार्त्त तो दर्शन के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उसका कपाल आज भी "लोम्म" नामक पैरिस के नए नृशास्त्र-संग्रहालय में सुरक्षित है। यहाँ उसकी दार्शनिक विवेचना का उल्लेख न कर केवल उसकी गद्य शैली की ओर संकेत करेंगे। उस दशा में इतना कहना पर्याप्त होगा कि देकार्त्त के ग्रंथ "पद्धति पर विचार"[७] से प्रकट होता है कि फ्रेंच भाषा किस बौद्धिक स्तर तक पहुँच चुकी थी और किस प्रभूत मात्रा में दार्शनिक सूक्ष्मता का यह वाहन बन सकती थी। कहना न होगा कि देकार्त्त ने भी सूत्र पद्धति को ही अपने विचारों के प्रकाशन के लिए चुना यद्यपि उसकी धारावाहिक सरणि गति और व्याख्या के रूप में एक मंजिल उपस्थित करती है। ब्लेज़ पस्कल मेधावी वैज्ञानिक था, फ़िज़िक्स का पण्डित और गणितज्ञ। उसके पत्र असाधारण गतिमान और विनोद बहुल हैं। उनमें उनकी भाषा की ताजगी आज भी पाठकों को निहाल कर देती है। जीवन के अंतिम चरण में पस्कल 'मिस्टिक' हो गया था। उसकी दार्शनिक और विज्ञानवादिनी शैली भी संक्षिप्त और स्पष्ट है। वस्तुतः उसने उस काल के गद्य लेखकों के सामने साहित्य में एक मॉडल उपस्थित कर दिया।

---

१. La Bruyere; २. La Rochefoucauld; ३. Mme de Sevigne; ४. Saint Simon; ५. Descartes; ६. Blaise Pascal; ७. Discourse on Method (१६३७)

: ४ :

अट्ठारहवीं सदी

साहित्य-निर्माण के परिमाण में अट्ठारहवीं सदी भी कुछ कम महत्व की न थी। देकार्त्त की पद्धति ने उस सदी के विचारकों को काफी प्रभावित किया। १८वीं सदी बुद्धि-वादी थी और चर्च, ईश्वर, राज्य, अर्थशास्त्र, आचार-शास्त्र, दर्शन, विज्ञान सब पर अप-रिमित साहित्य उस काल प्रस्तुत हुआ। वस्तुतः उसने समाज को न केवल विचारने को वरन् गतिमान होने को बाध्य किया। उसका परिणाम हुआ अन्ततः १७८९ ई० की फ्रांसीसी राज्य क्रांति। उस क्रांति के कारणों में से एक प्रधान कारण १८वीं सदी के चिंतकों का विचार-प्रकाशन था। परंपरा के विरुद्ध विज्ञान के आगमन ने उँगली उठाई और कोई युक्ति-विरहित विचार केवल परंपरागत होने के कारण लोगों को स्वीकार्य न था। इस दिशा में इंग्लैंड के चिंतकों ने भी फ्रंच विचारकों पर कुछ कम प्रभाव न डाला। बेकन[१], न्यूटन[२], लॉक[३], सभी ने अपने-अपने विचारों से सचेत फ्रैंच चिंतकों को प्रभावित किया।

देकार्त्त और पस्कल ने धर्म की रक्षा के लिए दर्शन प्रयोग किया था। १८वीं सदी के तर्क ने उस धर्म पर मरणांतक चोटें कीं। पहली चोट पियर बैल[४] ने अपने 'ऐतिहासिक और आलोचनात्मक कोष' (१६९७) द्वारा की। ग्रंथ विविध विषयों से भरा असाधारण ज्ञान-कोष था जिसमें बाइबिल, चर्च-पिताओं के उपदेश और ईसाई धर्म के मूल सिद्धांतों पर गहरे तथा तर्कयुक्त सन्देह उपस्थित किये गये थे। युक्तिपूर्ण ऐतिहासिक विश्लेषण द्वारा उसने उनकी असत्यता सिद्ध कर दी। साधारणतया उस सदी के दार्शनिक अनीश्वरवादी न थे। इस काल के चिन्तकों ने इस बात को समझा कि चर्च सभी प्रकार की रूढ़िवादिता का गढ़ है। और उसे तोड़े बिना फ्रैंच समाज और जीवन में आवश्यक परिवर्तन नहीं किये जा सकते थे। उनमें पैम्फलेटों, निबन्धों और गद्य तथा पद्य द्वारा वोल्तेयर[५] का आक्रमण सबसे अधिक भीषण था। उसने चर्च के विरोध में अनेक निबन्ध लिखे और प्रत्येक निबन्ध के अन्त में वह लिखता—"इस घृणिततम वस्तु को कुचल डालो!" चर्च के प्रति उसकी घृणा इतनी घनी थी कि वह उसका नाम भी न ले सकता था। वोल्तेयर के विचार कुछ अपने ही न थे वरन् युग और समकालीन चिन्तकों की प्रेरणा का प्रतिनिधित्व भी करते थे। परन्तु उसका उत्कट व्यंग्य, नुकीली शैली, अनवरत धिक्कार, भाषा का अविरल शक्तिम्-प्रवाह इतने अपने थे कि वह रूढ़ियों पर तत्सामयिक प्रहार की एकान्त हरावल बन गया।

ईश्वरवादिता, ईसाई आचार शृंखला, परंपरा की अतर्क्य शक्ति, प्राकृतिक कानून सब की आधारशिला हिल गई जब वोल्तेयर ने अपने लेखों और व्यंग्य कविताओं, प्राकृतिक

---

१. Baeon; २. Newton; ३. Locke; ४. Pierre Bayle; ५. Voltaire

कानून पर कविता, तथा रूसो[1] ने अपने "विचारों" (१७५०-१७५५) और 'एमिल' (१७६२) द्वारा सबल आघात किया। दोनों ने अपनी कृतियों में अपने नये विचारों और आचारों की शिला रक्खी। दिदरो[2] की कृतियाँ भी उस दिशा में, उस संहार और निर्माण कार्य में, किसी से पीछे न रहीं। अनेक फ्रेंच पर्यटकों ने अपने भ्रमण-क्रम में देखी-सुनी प्रगतिशील भावनाएँ चुस्त और धारावाहिक फ्रेंच में व्यक्त करना आरंभ कर दिया जिससे साहित्य को बड़ा बल मिला। उन्होंने विदेशी राजनीति के सामने फ्रेंच राजनीति का भी सांगोपांग विश्लेषण किया और प्रथम राजनीति की राजसत्तात्मक प्रवृत्तियों पर प्रबल प्रहार किया। इस दिशा में दो ग्रन्थ बड़े महत्व के प्रस्तुत हुए—एक तो मांतेस्क[3] का 'कानूनों की आत्मा' (१७४८) और दूसरा रूसो का 'सामाजिक राजीनामा' (१७६२) था। मांतेस्क ने सरकारों के विविध प्रकारों पर विचार किया और रूसो ने समाज के आचार-स्वरूप सामाजिक राजीनामे पर। यह सामाजिक राजीनामा कुछ काल से समाज के निर्माण के संबंध में एक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में प्रयुक्त होता था। रूसो ने होब्स और लॉक के विचारों को काटते हुए मानव प्रवृत्ति को सर्वथा सुन्दर और समाज का प्रारम्भ जनता की प्रेरणा में माना। जनता को उस दिशा में उसने सर्वशक्तिमान और उसके अनुशासन को अनुलंघनीय घोषित किया। उसके विचारों का उपयोग स्वाधीनता युद्ध के बाद अमेरिका ने अपने संविधान में किया और एक दशाब्दि बाद फ्रांस में हीं फ्रेंच राज्यक्रांति ने अपनी विचारधारा में किया।

१८वीं सदी प्रभूत वैज्ञानिक सक्रियता की भी थी। प्रयोगशालाओं, व्याख्यानों और तर्क-संगत वाद-विवादों की विशेषकर तब के फ्रांस में धूम मच गई थी। साहित्य के दृष्टिकोण से भी कुछ प्रकाशन तब बड़े महत्व के हुए। इन प्रकाशनों में अत्यन्त दूरगामी और महान् 'विश्वकोष' (१७५१-७१) था। इसके प्रधान सम्पादक दिदरो और जां ल रौं दलांबर[4] थे। उनके अतिरिक्त उस विश्वकोष की काया सिरजने में देश के प्रमुख मेधावियों का भी हाथ था। उसमें विज्ञान की खोजों से प्रभावित सब प्रकार के प्रगतिशील विचार प्रस्तुत हुए। इसी प्रकार बिफों[5] ने अपने 'प्राकृतिक इतिहास' (१७४९-८८) की प्रौढ़ शैली में जीव विकास पर अद्भुत और गम्भीर विचार प्रकट किये। विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में बिफों का यह ग्रन्थ आधार-शिला बन गया। उस काल का वैसे सब से महान् विज्ञान का दार्शनिक डेनी-दिदरो[6] था जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। अपने "प्रकृति की व्यवस्था पर विचार" (१७५४) और "द लांबर–का स्वप्न" (१७६९) में उस मनीषी ने विकास के सिद्धान्त की ओर संकेत कर दिया। वह सिद्धान्त वैज्ञानिक रूप में तो कुछ काल बाद आया, परन्तु

---

१. Rousseau; २. Diderot; ३. Montesquieu; ४. Jean Le Rond Dalembert (१७१७-८३); ५. Buffon; ६. Denis Didrot

उसकी मूलभूत कड़ियाँ दिदरो ने ही गढ़ कर रख दीं। जीवन का अनादि प्रवाह और उसमें निरन्तर परिस्थितियों के अनुकूल, बदले हुए नये संसार के निर्माण के स्वप्न देखने वालों में महान् ऊपर गिनाये दार्शनिक थे। वोल्तेयर उस नव-निर्माण के देवता का तपोनिष्ठ पुजारी था और तत्सम्बन्धी साहित्य का असाधारण प्रकाशक। उसके हजारों पत्र, सैंकड़ों पैम्फलेट, बीसियों कहानियाँ-कविताएँ और व्याख्यान उसके मानवतावाद को प्रकट करते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि उसके अस्त्र उसकी सबल शैली और उसके संहारक व्यंग्य थे। जिस युद्ध का उसने प्रारम्भ किया था वह आज प्रायः जीता जा चुका है। फिर भी उसकी कृतियाँ आज भी उतनी ही ताजगी रखती हैं जितनी वह तब थीं। रूसो, वोल्तेयर के विपरीत एक दूसरी ही प्रकृति का व्यक्ति था। गंभीर, भावुक, विनोद विरहित। वैयक्तिक चेतना का वह प्रबल पक्षपाती था और उसकी शैली में गजब का प्रवाह, असाधारण माधुर्य था। गद्य ऐसा लिखता था जैसे छन्दोबद्ध पद्य अविरल अटूट रूप से बह चला हो। विचारों की शृंखला दार्शनिक की भाँति नहीं प्रौढ़ प्रेरिक साहित्यिक की भाँति मर्म को छू लेती थी। और पढने वाला कुछ कर गुजरने के लिए तत्पर हो उठता था। उसकी साहित्यिक प्रतिभा विशेषतः उसके "संस्मरणों" (१७८१-८८) और "एकान्त पथिक के स्वप्न"" में खुल पड़ी है। मौंतेस्क में भी गद्य की सुरुचि विशेषकर उसके "फ़ारसी पत्रों" (१७२१) में—रीढ़ की तरह व्याप्त है। जहाँ वह कहानीकार और सरल गद्यकार के रूप में प्रकट होता है वहाँ वह निश्चयपूर्वक असाधारण तेजवान सिद्ध होता है। ये लेखक प्रायः अपने विचार-प्रकाशन के लिए साहित्य के विविध रूपों को उनका वाहन बनाते थे। इस अर्थ वोल्तेयर ने कहानी को अपना माध्यम बनाया, रूसो ने उपन्यास को, दिदरो ने नाटक को। निस्सन्देह उनकी सक्रियता उद्देश्यपरक थी।

परन्तु जो साहित्य को साधना के रूप से साधक की निष्ठा से सिरजते थे वे इनसे भिन्न थे। उनका संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। 'उपन्यास' सदी की बढ़ती हुई दशाब्दियों में विशेष प्रौढ़ रूप धारण करने लगा। सदी की बौद्धिक चेतना का प्रभाव भी उस पर पड़े बिना न रह सका और परिणामतः सामाजिक उपन्यासों की अभिसृष्टि होने लगी। अब उपन्यासों के कथानक जन-साधारण के जीवन से चुने जाने लगे। लसाज[१] का "गिल ब्ला" (१७१५-३५) मारिवो[२] के "मारियान" (१७३१-४१) और "पैसं पार्वनी" (१७३५-३६) इसी दृष्टिकोण के नमूने हैं। निस्सन्देह उन पर स्पेनी साहित्य का प्रभाव पड़ा है। परन्तु फ्रच जीवन और आचार उनके प्राण हैं। इनमें पहला उपन्यासकार सामाजिक आचारों पर व्यंग्य करता है और दूसरा भावों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण। उस काल का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास अबे प्रेवोस[३] का "मानों लैस्को" (१७३१) था जिसने मारिवो की परंपरा

---

१. Lesage; २. Marivaux; ३. Abbe Prevost

में मनोविज्ञान का चित्रण किया। उसकी शैली सुरुचिपूर्ण और भाषा नितान्त प्रांजल है। कहानी एक विचारवान पुरुष और एक आचारहीन नारी की है। नाटक के क्षेत्र में वोल्तेयर ने कार्नेल और रेसाइन से बहुत कुछ सीखा परन्तु अपनी नयी चेतना से उसने एक नयी दिशा की ओर कदम लिया, यद्यपि नाटकीयता की दृष्टि से उसके नाटक सफल न हुए। सफल नाटक उस काल लसाज, मारिवो और बोमार्क[1] ने लिखे। लसाज की "तिरकारे" (१७०९) और मारिवो का "प्रणय और संयोग का खेल" (१७३०) नाटक के क्षेत्र में विशेष सफल हुए। बोमार्क की दो कमेडियाँ—"सैविल का नाई" और "फिगारो का विवाह"—क्रमश: १७७५ और १७८४ में प्रकाशित हुईं और दोनों ही भाषा शैली और ध्वनि की दृष्टि से बड़ी मनोरम मानी जाती है। दिदरो ने नाटक तो लिखे ही, तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का भी बड़ी प्रौढ़ता से अपने "आत्रेतिएं" और "पारादौज़"—"सिर ल कौमेंदिएं" में विवेचन किया। काश उसके सिद्धान्तों का निर्वाह अपने ही नाटकों से सफलतापूर्वक हो सका होता।

१८वीं सदी का लिरिक काव्य प्राय: नगण्य है। निश्चय ही आंन्द्रे शेनिए[2] की क्रांतिकारी कविताएँ उस सदी की शृंगार हैं। परन्तु उनकी रचना प्राय: सदी के अन्त में हुई। क्लासिकल प्रेरणा धीरे-धीरे मरती जा रही थी। और यद्यपि शेनिए की भावधारा स्वाभाविक थी, उसमें उसने संयम का अधिकाधिक प्रयोग किया जो क्लासिकल चेतना का प्राण था।

: ५ :

उन्नीसवीं सदी

उन्नीसवीं सदी नया जीवन, नयी प्रेरणाएँ लिए आयी। मध्यकाल के कवियों में क्रूसेडों और वीर कार्यों की चेतना बसी थी, पुनर्जागरण युग में प्राचीन ग्रीक और रोमन प्रवृत्तियाँ प्रेरक हुयीं और राष्ट्रीय भावना ने जोर पकड़ा, उसके बाद का युग वैयक्तिक प्राधान्य का था। ग्यारहवीं और पन्द्रहवीं सदियों के बीच मध्य युग ने निर्यौन प्रणय का उद्घाटन किया, सत्रहवीं और अट्ठारहवीं सदियों में पुनर्जागरण की प्रेरणा ने प्रतिष्ठा और विकास पाया। वर्तमान काल जो १९वीं सदी के साथ आरंभ होता है और प्राय: अद्यावधि वर्तमान है, नयी चेतनाओं से मुखरित हुआ। उसकी जिज्ञासा क्लासिकल की समस्त मानवीय जिज्ञासा के विपरीत वैयक्तिक थी। उसने राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों से भिन्न करके और व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों से भिन्न करके देखा। प्राचीनता उसने अपने दर्शन से अलग कर दी। वर्तमान और सावधि-वर्तमान उसके स्वप्न और सत्य बने। प्रयोगों की साहित्य में एक बाढ़ सी आ गई।

---

१. Beaumarchais; २. Andre Chenier

"पुनर्जागरण" की ही भाँति वर्तमान युग की वस्तुतः यूरोपीय विशेषता है—साहित्य में उसकी अपनी चेतना जिसने कालांतर में भूमण्डल के साहित्य को प्रभावित किया। यह चेतना पहले केवल यूरोपीय भूमि पर अवतरित हुई और वहाँ यूरोप के सारे देशों में समान रूप से उसका विकास हुआ। पिछली सदी में ही यूरोप के प्रधान देशों में अग्रदूत उसके सन्देश सुना चुके थे—यंग[१] ने इंग्लैण्ड में, रूसो ने फ्रांस में, गेटे[२] ने जर्मनी में। अब राजनीतिक और औद्योगिक क्रान्ति के साथ जो एक नये संसार का उदय हुआ तो उसमें साहित्य की अभिराम कली भी खिलने से बाकी न रही। क्लासिकल प्रेरणा से लोगों ने मुँह फेर लिया और फ्रांस ने बजाय ग्रीस और रोम की ओर देखने के इंग्लैण्ड, जर्मनी, इटली तथा स्पेन की ओर देखा जहाँ से उसने सामग्री और शैली दोनों लीं। इनसे भी बढ़कर उसने अपनी ओर देखा, अपने खेतों खलिहानों की ओर, देहात-नगरों की ओर, अपनी जनता की ओर। इस प्रकार रोमांटिक और यथार्थवादी साहित्य का समारम्भ हुआ। अलौकिक और अद्भुत को छोड़ कृतिकारों ने अपने चारों ओर घटने वाली परिस्थितियों को देखा और उन्हें अपने सृजन का आधार बनाया। फिर भावों के संघर्ष और भावुकता के उन्नयन को भी साहित्यकारों की प्रगाढ़ निष्ठा मिली जिससे उनकी रोमांटिक संज्ञा सार्थक हुई। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी की दो प्रधान प्रेरक चेतनाएँ "रोमांटिक' और "रियलिस्टिक" (रूमानी और यथार्थवादी) साहित्य-सृजन का आधार बनीं।

नये युग का आरम्भ करने वाले मादाम द स्ताईल[३] और शातोब्रियाँ[४] थे। जर्मन नेक द स्ताईल[५] ने अपने समीक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थों में साहित्य की साहित्यिकता, भौगोलिकता, धार्मिकता, जातीयता आदि के साथ सापेक्षता स्थापित की। उसके उपन्यास "डैल्फिन" और "कौरिन" ने उपन्यासों के क्षेत्र में नयी भूमि का निर्माण किया। उसे एक नये नारीत्व और कला का पुट मिला। रने द शातोब्रियाँ, मादाम स्ताईल के बाद हुआ और उसने रोमांटिक तथा यथार्थवादी दोनों प्रकृतियों का विकास साहित्य में अपने आप देखा जिससे उसकी कृतियों में इन चेतनाओं का अनिवार्य और सफल विकास हुआ। शातोब्रियां ने कल्पना और भावुकता से भरे अपने "अत्ताला", "रिनी", "ईसाई धर्म की प्रतिभा" रचे।

फ्रांस के आधुनिक युग के साहित्य में लिरिक कविता का फिर से विकास हुआ। १८२० और १८५० के बीच फ्रांस में लिरिक कविताओं की बाढ़-सी आ गयी। लिरिक जो अतीव सुन्दर, मधुर और शालीन थे। इन लिरिकों में वैयक्तिक पुकार "त्रुवादूरों" की वैयक्तिक चेतना से कहीं सबल है। लामार्तीन[६] मिसे[७] बिनी[८], ह्यूगो[९], लिरिक कविताओं

---

१. Young; २. Goethe; ३. Mme de Stael; ४. Rane de Chateaubriand; ५. Germaine Necker de Stael; ६. Lamartine; ७. AlFred de Musset; ८. Vigny; ९. Hugo

की पहली धारा में बहे और १८१० के लगभग उन्होंने अपने शालीन लिरिकों की धारा बहाई। लामार्तीन के लिरिक-संग्रहों के शीर्षक ही उनके भाव तत्व को प्रकाशित कर देते हैं। "काव्यगत चिन्तन", "काव्यगत और धार्मिक समन्वय" आदि। इन लिरिकों का विषय अधिकर प्रेम है। विषादमय, निराशपूर्ण प्रेम, जिस का प्रवाह अटूट और कर्ण मधुर है। लामार्तीन की योग्यता उसके गेय विषयों की सूझ में है। अपनी प्रकृति, प्रणय, धर्म आदि के सम्बन्ध में अपनी वैयक्तिक चेतना में आल्फ्रैद मिसे प्रयोगवादी था। इससे उसके लिरिकों में विविधता प्रचुर मात्रा में है। उसके "स्पेन और इटली की कहानियाँ" की ध्वनि व्यंग्यात्मक और विनोदशील है परन्तु मिसे की काव्य शक्ति की प्रतिष्ठा उसके प्रसिद्ध लिरिक "रातें" के प्रकाशन से हुई। इस संग्रह की कविताएँ हृदय को छू लेती है। उनमें प्रस्तुत चित्रों का रूपायन बड़ी भावुकता और बारीकी से हुआ है। उनकी गेयता स्वाभाविक है। उनमें लिरिक तत्व का असाधारण प्राचुर्य है। आल्फ्रे द विनी[1] की कविताएँ उनके मुकाबले कहीं अधिक अवैयक्तिक हैं, कहीं अधिक गर्वीली। उसके लिरिक विचार-प्रधान हैं। प्रणाय प्रधान नहीं। "मूसा" में उसने चिन्तन की प्रतिभा उद्‌घाटित की है। "भेड़िये की मृत्यु" में उसने स्तोइक शालीनता का चित्रण किया है और "सेम्सन का क्रोध" में नारीकी चपलता का। ये कविताएँ प्रतीकवादी हैं और इनके विचारों की बुलन्दी विनी की चिन्तन शक्ति और काव्य-क्रियता की सबल उदाहरण है। ह्यूगो का नाम भारत में भी विक्टर ह्यूगो[2] के रूप में जाना हुआ है। इसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा में असाधारण साहित्यिक प्रौढ़ता और समृद्धि है। पहले गिनाये लिरिककारों से वह बहुत ऊँचा है। विचारों की बुलन्दी और शब्दों के चयन दोनों में। ६० वर्ष उसने साहित्य-सृजन में लगाये। १८२२ में उसकी कविताओं का पहला संग्रह "ओड और कविताएँ" तथा १८८३ में "सदियों की ख्यात" प्रकाशित हुयीं। और इस बीच उस साठ वर्ष के दौरान में उसने सभी प्रकार की कविताएँ सभी विषयों पर लिखीं। सुकुमार स्निग्ध पितृस्नेह, चुभते व्यंग्य, वीर काव्य और चित्र प्रधान प्रबन्ध। कल्पना को काव्य में सदेह करने वाला उसका सा दूसरा कवि फ्रेंच लिरिक में दूसरा न हुआ।

१९वीं सदी के कवियों की दूसरी पीढ़ी नयी शैली और विचारधारा लिए फ्रेंच साहित्य क्षेत्र में उतरी। उनका प्राधान्य सदी के प्रायः बीच में हुआ। शैली के निखार, भावों का संयत निरूपण, विषयों की विविधता, उनकी प्रकृति के सूचक थे। इस दल के कवियों की संज्ञा "परनासी" है। यह नाम १८६६ में प्रकाशित काव्य के एक संग्रह—लापर्नास कांतां पौरें—से पड़ा। उसके पहले १८५२ में थियोफील गोतिये[3] ने उन्हीं चेतनाओं की अभिव्यक्ति अपने "एमो ए कामों" में की थी। इस कवि की पहले की कविताएं रोमांटिक शैली में लिखी गयी थीं। परन्तु इस संग्रह में उसने एक नये टैकनीक का प्रयोग किया जिसमें

---

१. Alfred de Vigny; २. Victor Hugo; ३. Theophile Gautier

रत्न जड़ने वाले सुनार और चित्रकार की कला का प्रयोग हुआ था। वैयक्तिक भावोद्बोधन से हटकर यह काव्यधारा परनासी परंपरा में सर्वथा व्यक्ति भिन्न भावना में सम्पन्न हुआ था और वह "कला कला के लिए" वाले सिद्धांत का पोषक था। पॉलिश के विचार से जोजे मार्या द आर दिया[१] की त्रौफी (१८९३) से बढ़कर कविता-संग्रह शायद उस काल नहीं रचा गया। "त्रौफी" में अभिराम सॉनेट का प्रयोग हुआ है और यह सॉनेट प्रण का वर्णन न कर मानव इतिहास के विशिष्ट क्षणों को पुनर्जीवित करते हैं। कल्पना, उपमा, रागमाधुर्य से वह अपने भावों का तन्तु प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार लकोंत द लिल[२] की कविताएँ— "पोएम आंतीक" (१८५२) "पोएम बरबार" (१८६२), "पोएम त्राजीक" (१८८५) भी इतिहास को ही अपना आधार बनाती हैं। इस दलका सब से महान कवि शार्ल बोदलेयर[३] है। कुछ लोगों की राय में तो वह १९वीं सदी का सब से सुन्दर कवि है। उसकी कविता में "अनोखी कुरुचि" का विस्तार हुआ है और विस्तार में भयानक और घृणित का भीषण योग है। असामाजिक, अत्यन्त कुरूप भावनाएँ कवि की मेधा द्वारा असामान्य सुन्दर कविताओं का कलेवर धारण करती हैं। अनेक बार भावों का विस्तार दार्शनिक चेतना उद्बुद्ध करता-सा जान पड़ता है। दृष्टान्ततः उसकी प्रख्यात साधारण सॉनेट "रसिलमां" शरण की कामना और विषाद से मुक्ति का प्रतीक हो गया है। १८५७ में प्रकाशित उसका "पाप के फूल" पिछले कवियों का आकर्षण केन्द्र बन गया। १९वीं सदी के कवियों के अन्तिम दल की चेतना में उसी रहस्यवाद का विस्तार मिलता है। इन कवियों के चित्रण और लाक्षणिक रूपायन में भाव सर्वथा खो जाते हैं। अस्पष्ट, धूमगत, प्रच्छन्न विचारों की ज्योति यहाँ वहाँ जब-तब दीख जाती है। परन्तु वस्तुतः गुह्य और गोपनीय ही जैसे उनके विकास का उद्देश्य हो जाता है और वह भी वास्तव में उनका विकास नहीं बल्कि समाधिस्थ चित्रण। प्रच्छन्नता उस रहस्यवाद की शैली और दृश्य दोनों हो जाती है। प्रतीकवाद धीरे-धीरे एकान्त व्यक्तिवाद का रूप धारण कर लेता है। और तथाकथित अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ अस्पष्ट रहस्यमय भाषा में मूर्त्त होती हैं। भावनाएँ, विचार, प्रवृत्तियाँ इतनी वैयक्तिक तथा निजी हो जाती हैं कि साधारण भाषा उनके प्रकाश का वाहन नहीं बन सकती और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर बढ़ता हुआ कवि अवचेतन में विलीन हो जाता है। उन कवियों का कहना है कि वे विश्व की उन अमूर्त भावनाओं का प्रकाशन करते हैं जिनके लिए सामान्य भाषा व्यंजना का माध्यम नहीं बन सकती। इस दल के फ्रेंच कवियों में मुख्य थे वर्लेन[४] मलार्मे[५] और रिम्बो[६]। वर्लेन के विचार यद्यपि उनका अभाव ही अधिक है सादे हैं परन्तु उसके साधन वही हैं। यौन ध्वनि, अस्पष्ट उपमाएँ, कविता का क्रमशः शुद्ध

---

१. Jose-Maria de Heredia; २. Leconte de Lisle; ३. Charles Baudelaire (१८४२-१९०५); ४. Verlaine; ५. Mallarme; ६. Arthur Rimbaud

संगीत की ओर आनयन। वर्लेन की कविताएँ सुन्दर गीत हैं। माला में तो जैसे गोपनीय में डुबकी लगा लेता है। अस्पष्ट, अप्रकट-चेतनाएँ उसकी कविता की प्राण हैं। उनमें कुछ कहा नहीं जाता केवल, ध्वनि-मात्र उत्पन्न की जाती है। उसकी कविता पढ़ने का अर्थ है उसमें प्रच्छन्न अर्थ की खोज। आर्थर रेम्बो उसी प्रवृत्ति का विस्तार है। उसका प्रकाश्य और भी प्रच्छन्न है। उसकी शैली और भी अस्पष्ट। पिछले कवियों ने उसे केवल सराहा ही नहीं है वरन देवता तक मान लिया है। परन्तु उसकी यह आस्था वस्तुतः गोपनीय की उस भ्रमपूर्ण श्रद्धा सी है जो असामान्य को पूजता है। यह वृत्ति हिन्दी के छायावाद में अनजानी नहीं है जहाँ बालू की भूमि पर सर्वथा वैयक्तिक, अस्पष्ट दार्शनिक सूचना का आडम्बर खड़ा किया जाता है, परन्तु जिसको दर्शन से कोई वास्ता नहीं है। वहाँ बाहर के जीवन और संघर्ष से भाग कर अन्तर्मुख हो रहने की ही प्रवृत्ति है और अस्पष्ट शब्दों की योजना द्वारा एक कृत्रिम संसार की सृष्टि की गयी है।

१९ वीं सदी का साहित्यकाल लिरिक के अतिरिक्त उपन्यासों का समृद्धि-काल है। उपन्यासों का प्रकाशन पहले स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में नहीं हुआ। अखबारों, पत्रिकाओं, जर्नलों में धारावाहिक रूप से पहले उनका छपना शुरू हुआ और इन पत्र-पत्रिकाओं की हजारों प्रतियाँ देखते ही देखते रेलवे बुकस्टालों से उठ जाने लगीं। उपन्यासों की लोकप्रियता का इससे भी बड़ा प्रमाण यह था कि हालैंड और बेल्जियम में उनके संस्करण चुपचाप चुरा लिये गये और वहाँ की भाषाओं में स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हुए। उस काल की सामाजिक प्रवृत्तियों की छाया भी इन उपन्यासों में घनी उतरी। १८३० तक उपन्यासों के स्वतन्त्र प्रकाशन का युग प्रारम्भ हो गया था। सन १८३१ में ईगो (विक्टर, ह्यूगो) का प्रसिद्ध उपन्यास "नात्रदाम द परी?" प्रकाशित हुआ जिसमें चित्रण की विविधता अनूठेपन का आकर्षण, और भावों की तारतम्यता उपन्यास के वस्तुतथ्य के रूप में बड़ी सुघड़ता से आकलित हुए। ईगो की काव्य-साधना का भी प्रतिबिम्ब उसके उपन्यासों पर पड़े बिना न रहा। उसके लिए यह कुछ कम गौरव की बात नहीं कि उसके उपन्यास—कम से कम—"नात्र दाम द परी"[१] और "ले मिजराब्ल"[२]—आज भी प्रायः उसी उत्सुकता से पढ़े जाते हैं जिस उत्सुकता से आरम्भ में पढ़े गये थे। यद्यपि फ्रेंच साहित्य के वे प्रायः प्रारम्भिक उपन्यास थे। "ले मिजराब्ल" (१८६२) में "समुद्र के पर्यटक" (१८६६) में और "निन्यानवे" (१८७४) में प्रकाशित हुए। इन सबके उपकरण प्रायःस मान थे। इनकी कला-चेतना प्रायः एकसी थी। चरित्रों का निर्माण ईगो के "लम्बकूर्च" से स्पष्ट और सफल हुआ। मनोरंजन और रुचि की भी उसमें पर्याप्त व्यवस्था थी। उपन्यास के क्षेत्र में उनकी काफी ख्याति हुई। उन्हीं दिनों प्रॉस्पे मेरिमे[३] ने दो विशिष्ट प्रकार के उपन्यासों का आरम्भ

---

१. Notre-Dame de Paris; २. Les Miserables; ३. Prosper Merimee

किया। ऐतिहासिक उपन्यास : दृष्टान्तः—क्रॉनीक दु रैन द शार्ल नौ, १८२९ और लघु कथा अथवा नूवेल (नावेल) जैसे "कोलम्बा" और "कारमा"। मेरिमे के उपन्यासों में शब्दों का चयन शायद ईगो के उपन्यासों से अच्छा हुआ। अधिक से अधिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए उसमें कम से कम शब्दों का उपयोग हुआ। यथार्थवादी समकालीनों के बहुत समीप मेरिमे की कृतियाँ पहुँच गयीं। भावों और रसों का अविरल प्रवाह रोमांटिक परंपरा के उपन्यासों में जार्ज सां[१] की रचनाओं में पाया जाता है। इन सारे उपन्यासों में समसामयिक जीवन निरन्तर उभरता गया है।

समसामयिकता का विस्तृत रूप वस्तुतः हेनरी बेल[२] (स्तांधाल) की कृतियों में प्रकट हुआ। उसके दो उपन्यास "लरूज़ ए ल न्वार" (लाल और काला) (१८३०) और "पारमां का चार्टर घर" (१८३९) काफी प्रख्यात हैं। दोनों एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न हैं। पहले की विशिष्टता उसके चरित्रों और घटनाओं में है, दूसरे की उसके चित्रण और आवेगों के अंकन में। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आरम्भ फ्रेंच रचनाओं से ही हुआ। स्तांधाल के चरित्र. शक्ति के साथ उसकी कृतियों में सयत्न फिरते हैं।

ओनोरी द बाल्ज़ाक[३] ने उपन्यासों के क्षेत्र में एक नई दिशा में कदम उठाया। अपने समाज की विविध वर्गीय परिस्थितियों को जितना बाल्ज़ाक ने अपने उपन्यासों में प्रतिबिम्बित किया है उतना शायद ही किसी और कृतिकार से हो सका हो। बाल्ज़ाक की "ला कौमेदी इमैन" १८२९ से १८५० तक के काल प्रसार में प्रस्तुत हुई। वह कृति कलाकार के प्रायः जीवन भर की रचना है। उसने अपनी जनता को चुम्बक की तरह अपनी ओर खींचा भी। साहित्य में उस कृति का प्रकाशन नितान्त साहस और मौलिक सूझ का काम था। उसने ऐसे उपन्यासों की एक परंपरा बाँध दी, जिसमें फ्रैंच-समाज के कुल स्तर, उसके विविध पेशे, उसके प्रान्तों और नगरों का जीवन चलचित्र की तरह प्रत्यक्ष हो उठे जैसे मनुष्य जीवन एक घटना से दूसरी घटना की ओर स्वाभाविक ही बढ़ता जाता है वैसे ही इन उपन्यासों में जाने हुए व्यक्तियों का एक समूह एक कहानी से दूसरी कहानी की ओर अनायास ही बढ़ता जाता है और अपने इस बढ़ने के क्रम में निरन्तर अपनी क्रियाओं के साथ जीवन का रहस्य खोलता जाता है। इतना बड़ा वितान साहित्य के क्षेत्र में जीवन के उपकरणों से बुना कभी न तना। प्रयास असाधारण ही नहीं एक जीवन के लिए असम्भव-सा था और बाल्ज़ाक की असामान्य प्रतिभा भी उसे समाप्त न कर पाई यद्यपि उसका वृहदांश प्रस्तुत हो गया। बाल्ज़ाक न केवल फ्रैंच साहित्य में बल्कि १९वीं सदी के सारे साहित्यों में जाज्वल्यमान आलोक बनकर चमका जिसका प्रकाश दीर्घकालिक प्रमाणित हुआ। उसने अनेक अद्भुत उपन्यास लिखे जिनमें "वृद्ध

---

१. George Sand; २. Henri Beyle (Stendhal); ३. Honore de Balzac

गोरिओ[१]" (१८३४) "यूजीनी ग्रान्द" (१८३३) "पूर्ण की खोज" (१८३४) विशेष विख्यात हैं। इनके चरित्र सर्वथा लौकिक हैं और इनका वर्णन नितांत घरेलू है। इनके स्रोत से उस यथार्थ जीवन की धारा बहती है जिसके लिए बाल्ज़ाक की कला प्रसिद्ध है।

बाल्ज़ाक की यथार्थता मॉडल के अभाव में काफी अप्रिय सत्य लेकर आयी। उस कला का और भी परिष्कार फ्लोबर[२] की निखरी शैली ने किया। "मानव कॉमेडी" (१८५०) और "मादाम बोवारी" (१८५७) दोनों में उसने प्रायः क्रमिक जीवन का उद्‌घाटन किया। समसामयिक जीवन का, जिसके चरित्र समाज में जैसे पहचाने जा सकते थे। फ्लोबर ने अनेक उपन्यास और कहानियाँ लिखीं। "सन्त एन्थॅनी का प्रलोभन" (१८४९) और "सालाम्बो" (१८६२) में फ्लोबर ने विदेशों का चित्र खींचा और "भावुक शिक्षण" (१८६९), "सरल हृदय" (१८७७) तथा "मादाम बोवारी" में स्वदेश का। "मादाम बोवारी" संसार के साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है और उपन्यास-कला के दृष्टिकोण से पूर्ण सफल उपन्यासों में से है। कहानी सहज और असाधारण है। किस प्रकार एक नारी मिथ्या के मोहन से निकल कर उद्‌घाटित सत्य से साक्षात्कार करती आत्महत्या की ओर चुपचाप बढ़ जाती है। उपन्यास के चरित्र रोजमर्रा जीवन के हैं। फ्लोबर शैली का उतना ही आचार्य है जितना व्यंजना के परिमाणों का। अनुभवी कथावस्तु नितान्त कटी-छँटी स्पष्ट, अनावश्यक से रहित साँचे में ढली हुई उसकी रचनाओं में उतरती है। भावों का आवेग सर्वथा उचित मात्रा में चरित्रों की प्रतिक्रियाएँ सिरजता जाता है। सुरुचि की सुघराई अनुपम है। आल्फोंज दोदे[३] तथा गी द मोपासां[४] दोनों फ्लोबर के कनिष्ठ समकालीन थे। दोनों ही ने कहानी-साहित्य में अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया। दोदे उस समय अपनी कथाओं में चरम कृतिमत्ता को छू लेता है जब उनमें वह दक्षिणी फ्रेंच पृष्ठभूमि और प्रोवांस के चरित्रों को रूपायित करता है। "मेरी मिल से पत्र" (१८६९) की कहानियों में गजब की सुरुचि, भावुकता का सम्मोहन और सूक्ष्म व्यंग्य अभिव्यक्त हुए हैं। स्थान-स्थान पर हास्य की धारा फूट पड़ती है। दोदे के उपन्यासों की ख्याति उसकी कहानियों के बराबर तो नहीं हुई परन्तु वे कुछ ऐसे बुरे भी नहीं और उसका "साफो" (१८८४) तो निस्संदेह एक विशिष्ट कृति है। मोपासां संसार के साहित्य के इतिहास में फ्रेंच कहानीकार के रूप में ही विशेष प्रसिद्ध हुआ। उस दिशा में वह इतना सफल हुआ कि कम लोगों को यह ज्ञात है कि उसने सुन्दर उपन्यास भी लिखे। "फौर कौम ला मौर" (१८८९) में उसकी कहानी कारिता कहानियों की ही भाँति खुल पड़ी है। परन्तु उसकी कहानियाँ निश्चय ही अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय देती हैं और वह उचित ही उस दिशा में भाषा के

---

१. Old Goriot; २. Flaubert; ३. Alphonse Daudet;
४. Guy de Maupassant

निखार और शैली की स्पष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं। मोपासां में फ्लोबर की सूक्ष्मता और सावधानी एक मात्रा में उपस्थित है यद्यपि उसकी कल्पना और रंग कहानीकार में नहीं।

बाल्ज़ाक की भाँति ही समसामयिक फ्रेंच जीवन को साहित्य के शीशे में सांगोपांग झलका देने वाला दूसरा सफल उपन्यासकार सदी के अन्त में एमिल ज़ोला[१] हुआ। परन्तु उसके टैक्नीक और चयन में उसके गुरु बाल्ज़ाक से काफी अन्तर था। उसने अकिंचन और साधारण को अपने "डीटेल" का आधार बनाया। उसकी वैज्ञानिकता स्पष्टतया सामाजिक जीवन के क्षेत्र में बाल्ज़ाक से कहीं आगे बढ़ गई। ज़ोला के कृतित्व-काल में वैज्ञानिकों ने जीव-शास्त्र पर विशेष खोज की और ज़ोला ने उन खोजों से पर्याप्त लाभ उठाया। अधिकतर उसने जीवन के उपेक्षित और घृणित अंगों को ही अपने चित्रण का माध्यम बनाया। कई बार तो ऐसा लगता है कि उस उपन्यासकार की प्रेरणा साहित्यिक नहीं सामाजिक और वैज्ञानिक है। फिर भी ज़ोला के कम से कम दो उपन्यास—"जर्मिनाल" (१८८५) और "देबावल" (१८९२) उच्चकोटि के हैं।

इस प्रकार लिरिक और उपन्यास साहित्य के ये दो अंग, १९ वीं सदी की फ्रेंच प्रेरणा के विशिष्ट प्रसाद थे।

ऐसा नहीं कि ड्रामा का आकर्षण लोगों अथवा साहित्यकारों को न रहा हो परन्तु रंगमंच उपन्यासों और कहानियों के समान तब न चमक सका। नाटक बहुत से लिखे गये परन्तु महान् की कोटि में उनमें से एक भी न आ सका। ड्यूमा[२] और ईगो[३] के नाटक, फिर भी काफी वेगवान् थे। उस काल का सफलतम और प्रसिद्ध नाटक "हरनानी" (१८३०) ईगो ने लिखा जिसने समीक्षकों में वादविवाद का एक तूफान खड़ा कर दिया। उसमें उसने काल और स्थान की एकता न रखी और गीतों का प्राधान्य प्रस्तुत किया। अगली पीढ़ी में ओगिये[४] और उसके पुत्र ड्यूमा ने कुछ नाटक लिखे जो टैक्नीक तें बाल्ज़ाक के उपन्यासों के से थे। १८९० के आस-पास ज़ोला की टैक्नीक से प्रभावित ब्रियो[५] और बैक[६] ने भी कुछ नाटक लिखे।

१९ वीं सदी के फ्रांस में अनेक साहित्यिकों ने साहित्य को अपना पेशा बनाया। पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य की समीक्षा बड़ी निष्ठा से हुई। साथ ही निबन्धों के भी अनेक संग्रह प्रकाशित हुए। सेन्ट-बव[७] उस सदी का सबसे बड़ा फ्रेंच समीक्षक था। उसने आलोचनात्मक चरित शैली का आरम्भ किया और उस दिशा में उसने प्रभूत सफलता पाई। दर्शन ने भी साहित्य की सीमा में प्रवेश किया और कौम्त[८] तथा रेनां[९] की सुथरी मधुर शैली में साहित्य में उसकी भी अभिराम धारा बही। तेन[१०] और मिशेले ने इतिहास

---

१. Emile Zola; २. Dumas; ३. Hugo; ४. Augier; ५. Brieux; ६. Becque; ७. Sainte-Beuve; ८. Comte; ९. Renan; १०. Taine

के क्षेत्र में कदम बढ़ाये और फ्रेंच-साहित्य प्रशस्य गति से अपनी मंजिलों को तय कर चला ।

: ६ :

बीसवीं सदी

बीसवीं सदी अपने प्रतीकों, नये साध्यों, प्रयोगों और यथार्थवादी साहित्य के साथ क्षेत्र में आयी । वस्तुतः वर्तमान सदी का पूर्वार्द्ध उपन्यासों के लिए विशेष उपजाऊ सिद्ध हुआ । उपन्यास ही साहित्य के क्षेत्र में विशेषतः फूला-फला । उसमें १९वीं सदी की परंपरा बनी रही यद्यपि टैक्नीक और रुचि में अन्तर काफी पड़ा । आनातोल फ्रांस[1] के उपन्यास इस दृष्टिकोण के ज्वलन्त उदाहरण हैं । आनातोल इस प्रकार दोनों सदियों का है । १८-९० में प्रकाशित उसकी "थाया"[2] ऐतिहासिक काल्पनिक उपन्यास है, जो यद्यपि आधुनिक उपन्यासों की गुँथी परंपरा का आरम्भ करता है, वस्तुतः १९ वीं सदी की परंपरा का ही । "लोर्म दु मेल" (१८९७) के से अन्य उपन्यासों में उसके विपरीत समसामयिक पृष्ठभूमि को आधार बनाया गया है । इन सब में निस्संदेह आनातोल की व्यंग्यात्मक सुरुचिपूर्ण शैली रूपायित है । उसने अपने जीवन की संस्मरणयुक्त रचनाएँ—"ल लिव्रद मोनामी" (१८८५) और "ल पेती पिएर" (१९१८)—भी सादगी और ताजगी में अनुपम हैं, यद्यपि थाया की सुघड़ आकृति-साहित्य में प्रायः बेजोड़ है । आनातोल के "पाग्वें द्वीप" (१९०८) में अत्यन्त व्यंग्यात्मक निरूपण मूर्तिमान हुआ है जिसमें वर्तमान सभ्यता पर गहरी चोट की गई है । उसकी "इस्त्वार कोतांपोरेन" (१८९७-१९०१) तो निस्संदेह समसामयिक जीवन का इतिहास ही है । उसका "देवता प्यासे हैं," फ्रैंच राज्यक्रांति पर चुटीला व्यंग्य है । आनातोल के उपन्यास विचार और शैली की सुघड़ कृतियाँ हैं ।

फ्रैंच-साहित्य में जिस अन्तर्मुखी प्रवृत्ति ने काव्य में छायावाद को प्रश्रय दिया वह बीसवीं सदी में मार्सेल प्रूस[3] की कृतियों में रूपायित हुई । "आ ला रिशार्श दु तांप पर्दू" (विगत संस्मरण १९१३-१९२७) उसी परंपरा की एक कृति है । इसमें उपन्यास, आत्मकथा और सामाजिक अध्ययन तीनों का एकत्र योग है । प्रूस की कृतियों का रूप और साध्य दोनों अनोखे होते हैं । उनमें वह अपने ही समाज, अपने ही जीवन आदि को व्यक्त करता है । परन्तु वह किसी दूसरे के संस्मरणों के सशक्त माध्यम द्वारा । उनकी घटनाओं की परंपरा में एक अद्भुत चेतना का विकास है जो शैली के योग से अत्यन्त आकर्षक हो उठती है और सहसा अतीत वर्तमान का अंग बन जाता है, अपनी इस अनोखी रचना के लिए प्रूस ने उपयुक्त

---

१. Anatole France; २. 'Thais'; ३. Marcel proust;

नयी शैली का व्यवहार किया। उसके अनेक स्थल अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। आंद्रे गीद[1] ने १९२६ में अपनी प्रसिद्ध कृति "प्रवंचक" प्रकाशित कर साहित्य में एक प्रश्न उपस्थित कर दिया। क्या सैक्स की अव्यवस्था या दुर्व्यवस्था साहित्यिक रचना का उचित प्रतिपाद्य विषय बन सकती है? इस दिशा में गीद प्रूस के पर्याप्त निकट है परन्तु दोनों की समानता यहीं तक है क्योंकि जहाँ प्रूस वर्णन और विश्लेषण पर जोर देता है वहाँ गीद गति और डायलॉग पर। गीद का चरित्र-चित्रण नितान्त स्पष्ट और सीधा है। चरित्रों का व्यक्तित्व निरन्तर खुलता चला जाता है। सूक्ष्मता चरित्रों के शब्दों आदि में प्रकट की जाती है। कथानक धीरे-धीरे एक विशेष पद्धति से समूचे प्रवाह से बढ़ता है जिसमें चरित्र और घटनाएं परस्पर सम्बद्ध होते जाते हैं। गीद की दो रचनाएँ इस दिशा में विशेष प्रसिद्ध हैं। "नूरितिर तैरेस्त्र" (१८९७) और "ले काव दु वातिकां" (१९१४)। इनमें से पहले में लिरिक की ध्वनि अदम्य है, दूसरी में व्यंग्यपूर्ण असंगतता भरपूर। गीद की सारी रचनाओं में समाज, धर्म और आचार की परंपरा के प्रति एक चुनौती है। वह यह कि व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार सब कुछ करने का अधिकार है। उसका यह दर्शन उसके उपन्यासों, राजनीतिक साहित्य और निबन्धों, आत्मकथाओं, कहानियों सभी में फूट पड़ा है। साथ ही उसकी शैली अत्यंत मधुर और रोचक है।

बीसवीं सदी के साहित्य का एक टैक्नीक उपन्यास-चक्र है जिसे लाक्षणिक रूप से "रोमांफलव"[2] कहते हैं। इसी परंपरा में रोमाँ रोलां[3] ने अपना "जां क्रिस्तोफ" (१९०४१२) लिखा जिसमें एक जर्मन गायक का तूफानी जीवन सूत की तरह कहानियों में गुँथता चला गया। वह कृति सामाजिक जीवन की एक सफल समालोचना है, दुआमेल[4] ने भी इसी प्रकार की दो सीरीज लिखीं जिनमें से पहली तो अपने हीरो सालावें के जीवन और आकांक्षाओं को मूर्त्त करती है और दूसरी—"पास्की क्रौनिकल" एक समूचे परिवार के जीवन और संघर्षों को रूपायित करती है। सालावें साधारण स्थिति का आदमी है जो जीवन की कठिनाइयों से घिरा अपने छुटपन से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है और अतीव आत्मबलिदान के बाद उठने में सफल भी होता है। सीरीज़ के दूसरे भाग में "लौरां पास्की" प्रधान पात्र है और उसका परिवार अपनी परिस्थितियों में डूबता-उतराता है। दुआमेल इस शैली का सफल कृतिकार माना जाता है। जूल रोमें[5] ने पहले तो साहित्य में अनेक प्रयोग किये पर अन्त में वह भी उसी रोमांफलव-शैली की ओर झुका जिसमें उसने "नेकनीयत के आदमी" लिखा। उसके दर्शन की चेतना उस सिद्धांत के अनुसार रही है कि व्यक्ति की ही भाँति समूह और दल अथवा समाज भी जन्मते-बढ़ते और मरते रहते हैं। रोमाँ

---

१. Andre Gide; २. Roman Fleuve; ३. Romain Rolland; ४. Georges Duhamel; ५. Jules Romains

ने इसी विचार से प्रेरित होकर अपने चक्र में एक समूचे समाज का निरूपण किया है। प्रकट है कि ऐसी रचना में बहुत कुछ अयुक्त तथा अनावश्यक भी स्वाभाविक ही उतर पड़ेगा। इसी दल के उपन्यासकार रोजे मार्ते दु गार[१] को अपने "तीबो" नामक उपन्यास पर (१९३७) में नोबुल पुरस्कार मिला। इसमें उपन्यासकार ने परिवार के जीवन का बड़ा स्पष्ट और हृदयग्राही चित्र खींचा है।

बीसवीं सदी के कवियों ने अपनी रचना को जब प्रयोग-बहुल बनाया तो उस परंपरा में प्रतीकवाद से लेकर "सुर्रियलिज्म" तक सभी वाद उतर आये। प्रथम महायुद्ध के बाद कला और साहित्य दोनों में जो "दादावाद" चला उसमें अर्थ का सर्वथा अन्त कर दिया गया। सार्थकता उसके लिए कोई बात ही न रह गई। फिर "सुर्रियलिज्म" में तर्क और संगत को सत्यार्थ का अवगुण्ठन मानकर उन्हें सर्वथा त्याग अवचेतन के धूमिल वातावरण को यान्त्रिक और नितान्त अस्वाभाविक स्वप्नों से भरा गया। परिणाम यह हुआ कि साहित्यिक कृतियाँ काव्य रचनाएँ और भावावेगों का रूपायन न होकर सिद्धांतों की परिचायक बन गईं। भाग्यवश अवचेतन की उस धारा ने लोकनिष्ठ जनता का स्पर्श न किया वह उसे प्रभावित न कर सकी। निस्संदेह नये प्रयोगों ने लिरिक के टैक्नीक में कुछ प्रगति की परन्तु साहित्य की कला को उसने कितना आगे बढ़ाया यह कहने की आवश्यकता न होगी। हाँ, पौल वालेरी[२] के से कुछ व्यक्ति निश्चय ही उस दिशा में असफल नहीं कहे जा सकते। वालेरी की कृतियों की प्रधान धारा दार्शनिक चिन्तन की है। अपनी कविताओं में वह उन विरोधी तत्वों को जन्म देता है जो संघर्ष करते हुए रचना के क्रम में आगे बढ़ते हैं और अन्त में वे एक दूसरे में लीन हो जाते हैं। उसकी शैली नितांत संक्षिप्त होती हुई भी कल्पना की सम्पदा से स्पष्ट हो उठी है। पर जहाँ वह केवल प्रतीकों में साध्य का वर्णन करता है निश्चय ही वहाँ वह समझ के परे हो जाता है। "ला जून पार्क" (१९१७) और "सिमेतिएर मारे" (१९२०) नामक कविताओं ने प्रसिद्धि पाई है परन्तु उनकी स्पष्टता फिर भी विवादास्पद है।

ड्रामा के क्षेत्र में अभिनय, वस्त्राभरण, संगीत, दृश्य, प्रकाश आदि के विषय में इस सदी में काफी प्रयोग और अनुसंधान हुए हैं और इस दिशा में निश्चय ही उसने प्रगति भी खूब की है। इस प्रगति का श्रेय अधिकतर गास्तों[३]-बाती,[४] जार्ज दुलें[५], जाक् कोपो[६], जां कोक्तो[७], आदि को है। ड्रामा में अनेक टैक्नीकों का भी आरम्भ हुआ जिनके प्रवर्तक ज़्यूल रोमें[८], सारमां[९] और लोनोर्मां[१०] आदि हैं। महान् नाट्यरचना, इनकी कृतियों को

---

१. Roger Martin du Gard; २. Paul Valery; ३. Gaston; ४. Baty; ५. Georges Dullin; ६. Jacques Copeau; ७. Jean Cocteau; ८. Jules Romain; ९. Sarment; १०. Lenormand

कहना उचित न होगा। वैसे नाटक के क्षेत्र में पाल गेराल्दी[१] फ्लेर[२] और कैलेवे[३] तथा मार्सल पाग्नोल[४] जाने हुए व्यक्ति हैं। वैसे ही गम्भीर नाट्यरचना में हेनरी बर्नस्तीन[५] और फ्रांस्वा द किरेल[६] भी। स्वप्निल कल्पनाओं का नाट्यकर्त्ता मतरलिंक[७] गायन प्रधान छंदात्मक नाटकों के रचयिता रोस्तां[८] तथा चमत्कार सम्बन्धी कृतियों के स्रष्टा क्लोदेल[९] हुए। समकालीन नाटक को उन्होंने अपने चित्रण के रंग और शैली विविधता से आकर्षक बनाया।

बीसवीं सदी में साहित्य के उपकरणों और सिद्धांतों पर विस्तृत कथोपकथन हुए। परिणामत: साहित्य के इतिहास और समीक्षा-शास्त्र की अभिसृष्टि हुई। सदी के पूर्वार्द्ध का अधिकतर समय सी साहित्यिक प्रवृत्ति ने लिया। साथ ही समाजवादी और कम्यु-निस्ट राजनीतिक चेतना तथा रचनाओं ने अपना दूरगामी प्रभाव और देशों की ही भाँति फ्रांस पर भी डाला। बर्गसों[१०] ने अपने दर्शन का निरूपण प्रौढ़ गद्य शैली में किया और सत्य को अपने रूप से देखने का प्रयत्न किया। अपने विचारों को उसने "सृजनशील विकास" (१९००) में रखा। दर्शन का शुष्क व्यापार उसकी लेखनी और शैली के मधुर योग से न केवल सह्य वरन् आकर्षक हो गया। उसमें उपन्यास की रोचकता ने घर किया। बर्गसों की कृति ने साहित्यिक सक्रियता को बड़ा बल दिया यद्यपि साम्यवादी चेतनाओं का प्रसार विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी फ्रैंच-साहित्य के क्षेत्र में निरन्तर होता गया।

द्वितीय महायुद्ध के बाद मार्क्सवादी साहित्यिकों का एक प्रगतिशील दल साहित्य क्षेत्र में उतर पड़ा है जो जीवन को आशा और विश्वास के साथ देख रहा है। उसने आक्रान्त मानव को आक्रान्ता के विरुद्ध ताल ठोंककर प्रेरित करने वाला साहित्य रचा है और रचता जा रहा है। उसकी प्रेरणा में सर्वहारा मानव के उच्छ्वास मूर्तिमान हो रहे हैं और उनकी रचनाओं का साध्य स्वयं सर्वहृत मानव के संघर्ष में सहायक हो रहा है।

: ७ :

लोक-साहित्य

फ्रांस का लोक-साहित्य बड़ा समृद्ध है। उसकी जादू सम्बन्धी लोक कथाएँ अभी हाल तक अमित मात्रा में प्रचलित रही हैं। उनका प्रसार प्राय: मौखिक ही रहा है। ये कथायें अधिकतम पश्चिमी यूरोप की लोक कथाओं के साथ ही समान आधार से ली गयी

---

१. Paul Geraldy; २. Flers; ३. Caillevet; ४. Marcel Pagnol; ५. Henri Bernstein; ६. Francois de Curel; ७. Maeterlinck; ८. Rostand; ९. Claudel; १०. Bergson

हैं। जिससे अधिकतर एक सी हैं–"दैत्य संहार," "अंडे में पिशाच का हृदय", "नीली दाढ़ी", "जादू की उड़ान", "युवक जो जानना चाहता था कि भय क्या वस्तु है", "बच्चे और पिशाच", "दानव की निधि चुराने वाला किशोर", "खोई पत्नी ढूँढने वाला पुरुष", "खोए पति की खोज", "सोई सुन्दरी", "सेंदरेला", "थल-जल पर चलने वाली नाव", "शीश पर्वत की शाहज़ादी," "पिता की संजीवनी की खोज में बेटे," कृतज्ञ पशुओं द्वारा खोजी अँगूठी," "मेज", "गधा और घड़ी" "पशुओं की रहस्यमयी बात सुनकर फिर अपनी दृष्टि पा लेने वाला अन्धा बालक", "बलवान जॉन और मूर्ख पिशाच", "करविहीन कुमारी" "हिम-श्वेत", "गाने वाली हड्डियाँ"—ये कहानियाँ लोक कहानियों के फ्रेंच संग्रहों में मिलती हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कहानियाँ पूर्व और दक्षिण में कही सुनी जाती हैं, अधिकतर केवल फ्रेंच कल्पना की उपज है। फ्रेंच जनता के अंध विश्वास में जो अलौकिक और अपार्थिव का उसके जंगलों-मैदानों, नदी पहाड़ों आदि में निवास है उससे लोक-साहित्य का अनायास निर्मित हो जाना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार भगवान और सन्तों द्वारा किए सैकड़ों चमत्कारों की धार्मिक कथाएँ भी उस भाषा में सुरक्षित हैं। वे विशेषतया ब्रितनी[1] में प्रचलित हैं। इसी प्रकार अनेक रोमांटिक सामाजिक कहानियाँ भी फ्रेंच साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गयी हैं।

इस साहित्य का निस्संदेह अब फ्रांस में ह्रास होने लगा है और देहाती दुनियाँ उसे भूल चली है। उन्नीसवीं सदी के पिछले काल तक फ्रांस में देहाती प्रणय, नृत्य व्यंग्य आदि के गीतों का बाहुल्य था - एक प्रकार के सामाजिक अथवा धार्मिक विषादमय गीत, कॉम्प्लेन्त[2] कहलाते थे। हजारों लोकगीत फ्रांस से १७ वीं १८वीं सदी में कैनेडा और मिसीसिपी की घाटी में ले जाये गये और वहाँ के जंगलों पहाड़ों को प्रतिध्वनित करने लगे। खेद है कि आज फ्रांस के अपने देहातों से लोक-साहित्य उठा जा रहा है।

---

१. Brittany; २. Complaintes

१९. मिस्र का प्राचीन साहित्य

मिस्र का इतिहास अति प्राचीन है । वस्तुतः यह कहना कठिन है कि उससे भी प्राचीन कोई सभ्यता कहीं थी । उसकी समकालीन सभ्यताएँ भारत की सिन्धु सभ्यता और दक्षिणी इराक की सुमेरी सभ्यता थीं । परन्तु जहाँ देखते ही देखते ये दोनों सभ्यताएँ (कम से कम भारतीय) लुप्त हो गईं, मिस्री सभ्यता जीवित रही और मिस्र के राजकुल दजला-फरात की घाटी तक छापे मारते रहे ।

संसार की सबसे प्राचीन लिखावट सम्भवतः मिस्र के पिरामिडों की है । लिखावट पहले चित्रपरक थी फिर घसीट की कई स्थितियों से गुजरी और क्रमशः हिरोग्लीफक[१] हिरेटिक[२] तथा डेमोटिक[३] कहलाई । ईसाई और इस्लाम धर्मों की संहारक चोट ने मिस्र का अत्यधिक साहित्य नष्ट कर दिया । जो कुछ बचा रहा है वह इन्हीं पिरामिडों और मंदिरों की दीवारों, मूर्तियों और पेपिरस (एक प्रकार का नरकटी कागज) पर है ।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, अनेक पुरानी सभ्यताओं के जन्म के पहले ही प्राचीन मिस्र काल के अन्तराल में सो चुका था । इससे उसका साहित्य भी उसी अनुसार पुराना है । जो कुछ हमें आज प्राचीन मिस्र की लिपि और इबारत के रूप में उपलब्ध है, उस सबको तो साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती पर साधारणतः उसका स्तर विभाजन किया जा सकता है ।

मिस्र की लिखित सामग्री पाँच भागों में उसकी भाषा के विकास के अनुकूल ही बाँटी जाती है । ये भाग हैं—(१) प्राचीन मिस्री-साहित्य इतिहास के आदि काल और लिपि के आरम्भ से लेकर प्रायः २४०० ई० पू० तक । (२) मध्य मिस्री—आज के साहित्य विभाजन के अनुसार "क्लासिकल-युग" २४०० से १३०० ई० पू० तक । यह मिस्री साहित्य का सबसे समृद्ध युग था । (३) उत्तरकालीन मिस्री—१५५० ई० पू० से ७०० ई० पू० तक । समृद्ध होते हुए भी इस युग में ह्रास आरम्भ हो गया था । (४) डेमोटिक काल—७०० ई० पू० से ४७० ई० पू० तक । डेमोटिक भाषा और लिपि दोनों का नाम है । व्यापार, धर्म और जादू सम्बन्धी तथा अनेक साहित्यिक लेख खण्ड उस काल के मिले हैं जिससे प्रकट है कि उस युग में साहित्यिक प्रयास किसी न किसी रूप में हुआ है । (५) कोप्टिक मिस्री युग—जब कोप्टिक[४] भाषा में ईसाई धर्म की पुस्तकों का मिस्री में अनुवाद हुआ । .

मिस्री साहित्य के मूल्यांकन में पहले तो भाषा की कठिनाई है । प्राचीन भाषा में कहीं स्वरों का प्रयोग नहीं होता था । केवल व्यंजन ही लिखे जाते थे जिससे ठीक-ठीक

---

१. Hieroglyphic; २. Hieratic; ३. Demotic; ४. Coptic

लिपिबद्ध साहित्य का अर्थ लगाना या उसकी ध्वनियों का माधुर्य आँकना कठिन हो जाता है। फिर भी जो लेख पढ़े जा चुके हैं और उपलब्ध हैं, उनसे मिस्री साहित्य पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है। वह बहुत तो नहीं है और इसका कारण यह है कि उस सभ्यता के बाद ही मनुष्य की उस भाव सत्ता और अभिव्यंजना का विकास हुआ है जिसे हम साहित्य कहते हैं, फिर भी जो कुछ उपलब्ध है उसका निकटतम ब्यौरा इस प्रकार है।

एक बात तो आरम्भ में ही स्पष्ट रूप से कह दी जा सकती है कि "एपिक" (ऐतिहासिक, वीर, महा-काव्य और नाटक, ड्रामा) जिस रूप में हम उन्हें आज जानते हैं, प्राचीन मिस्र की साहित्यिक परंपरा में न थे। "एपिक" काव्य का निकटतम रूप हमें मिस्र की उस काव्य प्रशस्ति में मिलता है जो रामसेज द्वितीय[१] की हत्तीसंघ[२] की विजय (१२९५ ई० पू०) पर रची और खोदी गई थी। प्रशस्ति वाचक होने से कविता अतीव अतिरंजित है और यद्यपि यह स्वीकार किया जा सकता है कि राजा की व्यक्तिगत वीरता से वह विजय मिली, निःसन्देह उसकी शब्द-योजना नितान्त हास्यास्पद है। स्वयं रामसेज उससे इतना सन्तुष्ट था कि उसने अपने तीन-तीन मंदिरों पर खुदवा कर उसे घोषित किया। वस्तुतः वह इतनी सुन्दर मानी गई कि सौ वर्ष बाद रामसेज तृतीय (११९८-६७ ई० पू०) उसकी शब्दावली अपनी प्रशस्ति में जोड़ने से न चूका। पेपिरस पर उसकी एक नकल आज भी सुरक्षित है।

आज की परंपरा के नाटक तो मिस्र के साहित्य में न थे। परन्तु मध्यकालीन यूरोप के से रहस्यमय धार्मिक नाटक निश्चय ही तब के मिस्र में खेले और पसन्द किए जाते थे। "प्राचीन राजकुल" के पिरामिडों की भीतरी दीवारों पर खुदे कुछ ऐसे नाटकों के खण्ड मिले हैं जिनसे इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है। किसी प्राचीन धार्मिक नाटक का डायलॉग (बातचीत) उस पश्चात्कालीन अभिलेख में भी मिला है जिसे मिस्री पुराविद् "मेम्फिस धर्मशास्त्र का अवशेष"[३] कहते हैं।

वस्तुतः मिस्री नाटक का प्राचीनतम खण्ड वह है जिसमें "बारहवें राजकुल" के राजा सेनुसर्त प्रथम[४] का राज्यारोहण (१९७२ ई० पू०) दिखाया गया है। नाटक में राजा ने तो स्वयं राजा का पार्ट किया था और देवताओं का पार्ट मन्दिर के पुरोहितों ने खेला था। अभिनय सम्भवतः साम्राज्य के सभी प्रधान नगरों में हुआ था। जान पड़ता है कि इस प्रकार राज्यारोहण का प्रदर्शन मिस्र में प्राचीनतम काल से होता आया था और जब तक वह स्वतन्त्र रहा तब तक होता रहा था। भारत में रामलीला में राम का राज्यारोहण (राजगद्दी) भी उसी परंपरा में है। अबिदोस[५] से प्राप्त एक समाधिपट पर एक

---

१. Ramesses II; २. Hittite Confedration; ३. Monument of Meenphite Theology; ४. Senusert I; ५. Abydos

नाटक-खण्ड खुदा हुआ है जिसमें लोकप्रिय देवता ओसिरिस[१] के जीवन-मरण की कथा नाटकीय रूप से प्रदर्शित है।

मिस्री लिरिक कविताएँ विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं और उनका काव्य-स्तर भी काफी ऊँचा है यद्यपि भाषा की उच्चारण-पद्धति नष्ट हो जाने के कारण उसकी छन्द-शैली का अनुमान नहीं किया जा सकता। सम्भवतः मिस्री लिरिकों में तुक का प्रयोग नहीं होता था। परन्तु वाक्यों की लम्बाई आदि से पता चलता है कि उसमें पंक्तियों का विभाजन और उनकी संख्या आदि का परिमाण "स्टैन्जा" के रूप में रहता था। मिस्री लिरिक कविता में श्लेषात्मक प्रयोगों का बाहुल्य था। वस्तुतः श्लेषात्मक शैली का उपयोग केवल पद्य में ही नहीं, गद्य तक में होता था। उन लिरिकों का विषय-परिमाण प्रभूत है। प्राचीनतम लिरिक पिरैमिडों के अभिलेखों में हैं। उनमें साहित्यिक गुण का अभाव है। उनका प्रयोग मन्त्र के रूप में हुआ है जिससे स्वर्ग जाती हुई राजा की आत्मा को राह में किसी प्रकार की क्षति न हो। उन्हीं के बीच जहाँ तहाँ राजा की प्रशस्ति गायी गई है। इनका विकास पहले मध्यकालीन राजकुलों के "ताबूत लेखों" में हुआ फिर नए "राजकुल की मर्त्य-पुस्तकों" में। इनका परिचय १३७५ ई० पू० के उस लिरिक में हुआ जो एकेश्वर "अत्तन" की प्रार्थना में गाई गई थी। तूतन खामन के पिता फेरो अखनातून[२] ने मिस्र के सारे देवताओं का अन्त कर एक सूर्य देव की प्रतिष्ठा की थी। वह देवता अत्तन था। अखनातून सम्भवतः संसार का पहला एकेश्वरवादी था। उस लिरिक कविता की रचना शायद उसी ने की थी।

"क्लासिकल" युग का बहुलतम लिरिक-काव्य बारहवें राजकुल के राजा सेनुसर्त तृतीय[३] की प्रशंसा में गाए गए हैं। ये निश्चय ही प्राचीन राजकुल कालीन कविताओं से भावरूप में सुन्दर हैं परन्तु अठारहवें—उन्नीसवें राजकुलों की कविताएँ इनसे कहीं अभिराम हैं। इनमें सबसे मधुर वह है जो फैरो-सम्राटों में सबसे महान थुतमोज़ तृतीय[४] की प्रशस्ति में रची गई है और कारणक के मन्दिर में शिलापट्ट पर अभिलिखित है। कविता शालीन है, वस्तुतः अतिरंजित, उसकी उपमाएँ हृदयग्राही और शक्तिम हैं। यह इतनी लोकप्रिय हुई कि सदियों पीछे तक फैरो इसकी इबारत और पंक्तियाँ अपनी प्रशस्तियों में प्रयुक्त करते रहे।

मिस्र से प्रचुर मात्रा में प्रेम सम्बन्धी लिरिक साहित्य मिला है। अभाग्यवश व अंशतः ही संरक्षित हैं जिससे उनका उचित मूल्यांकन हो सकना कठिन है। उनमें कल्पना का बाहुल्य है। उनमें से एक वाटिका स्थित प्रणयीयुगल का वर्णन करती है। बगीचे के

---

१. Osiris; २. Pharaoh Akhnaton; ३. Senusert III (१८७८–४० B. C.); ४. Thutmose III (१४७० B. C.)

नकल करते और इसे पढ़ते रहे थे। बारहवें राजकुल के फेरो एमेनेम्हेत प्रथम[१] की मृत्यु (अथवा हत्या) के बाद एक मिस्री अमीर सिनुहे देश छोड़कर भाग जाता है। भागने का कारण जैसे जानबूझकर वर्णन में दबा दिया गया है जिससे रहस्यमय होकर कहानी का प्रभाव और बढ़ जाता है। वह सीरिया में शरण लेकर वहाँ के अमीर की कन्या से विवाह करता है। उसका वहाँ एक परिवार खड़ा हो जाता है पर उसे वतन नहीं भूलता। स्वदेश लौटने के लिये वह लालायित है। फेरो के मरने पर जब सेनुसेर्त प्रथम राज्यारोहण करता है, तब उसे मिस्र लौटने का आदेश मिलता है और वह लौट आता है। कहानी के अनेक स्थल बड़े सुन्दर हैं। भागते समय सिनुहे की मनःस्थिति, सीरिया के आक्रान्ता शत्रु के साथ उसका द्वन्द्व युद्ध आदि बड़ी आकर्षक रीति से वर्णित है। जब वह लौटकर स्वदेश के राज दरबार में जाता है तब उसकी विदेशी वेश-भूषा का वर्णन कर कथाकार सुन्दर विनोद प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार एक कहानी "वाचाल किसान" की है। मजिस्ट्रेट के इजलास में वह अपना मुकदमा इस खूबी और वाक्य रीति से कहता है कि हाकिम बगैर फैसला दिए बार-बार उससे उसकी कहानी परंपरा है जिससे वह सम्राट् के मनोरंजन के लिए लिख ली जाय। कहानी की परंपरा प्रायः हजार वर्ष बाद तक मिस्र में जीवित रही। पश्चात्कालीन राजकुलों के समय की कहानियाँ तो अनेक उपलब्ध हैं, एक डेमोटिक भाषा में भी सुरक्षित मिली है। इनमें से एक "मनोरंजक कहानी" अभागे राजकुमार की है, उसके प्रणय और भाग्यहीन परिणाम की। "दो भाइयों की कहानी" भी बड़ी प्रभावोत्पादक है और "वेनामुन की यात्रा" तो और भी। वेनामुन पतनोन्मुख मिस्री साम्राज्य का राजदूत है जो अनेक दिशाओं में भ्रमण करता है परन्तु जिसका अपमान इसलिए होता है कि मिस्री प्रताप का प्रभाव अब विदेशों में मिस्रियों की रक्षा नहीं कर पाता।

गीज़ा के स्फिंक्स के पास जो एक शिलापट्ट मिला, इस पर फेरों की शारीरिक शक्ति सम्बन्धी—विशेषतः खेल की–प्रदर्शनों से भरी अनेक कहानियाँ एकत्र गुँथी मिलीं। इनके पाठ अन्यत्र भी मिले हैं। इसकी विशिष्ट कहानी आमेनहोतेप द्वितीय[२] सम्बन्धी। उसमें लिखा है कि अट्ठारहवें राजकुल के इस राजकुमार ने (जो बाद में फेरो हुआ) तीरन्दाजी, नौका खेने और रथाश्वों के शासन और संचालन में अपने सारे प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर दिया। इससे उसका इतिहास प्रसिद्ध पिता थुतमोज तृतीय बड़ा प्रसन्न हुआ।

---

१. Amenemhet I (१९९२–७२ B. C.); २. Amenhotep II (१४५०–२५ B. C.)

इनके अतिरिक्त कुछ आचार (अथवा नैतिक) ज्ञान सम्बन्धी साहित्य प्रायः प्रत्येक युग का उपलब्ध है जो असामान्य है। इनको साधारणतः ज्ञान-पोथियाँ कहते हैं। इनमें से अन्तिम पोथी, जो कहावतों के रूप में तरुणों को दिए उपदेश हैं, १००० ई० पू० के लगभग प्रस्तुत हुई। इनमें से प्रत्येक पोथी के साथ उसके स्रष्टा का नाम संबद्ध है। ये कहावतें बाइबिल की कहावतों से इतनी मिलती हैं कि इसमें सन्देह नहीं कि एक ने दूसरे से ली हैं और चूँकि सम्भवतः मिस्री कहावतें पहले की हैं, बाइबिल ने ही उन्हें वहाँ से लिया होगा। इनमें से विशिष्टतम संग्रह उन कहावतों का है जिनका रचयिता पाँचवें राजकुल (लगभग २४०० ई० पू०) का एक वजीर प्ताहोतेप[1] है। इसकी नकल अन्यत्र से भी मिली है। इसमें संग्रहीत नसीहतें विवाह, नारी, भोजन आदि के सम्बन्ध में हैं। साथ ही सरकारी अफसरों, राजदूतों, नेताओं, के सम्बन्ध में भी कुछ हैं, और कुछ माता पिता और गुरुजनों के प्रति आदर सम्बन्धी हैं।

इन्हीं नसीहतों की परंपरा में कुछ ऐसा साहित्य भी है जो सामाजिक न्याय और अच्छे शासन की माँग करता है। उससे प्रकट है कि देश किस मात्रा में गरीब था और फैरो की अमित स्वर्ण सम्पत्ति के बावजूद भी प्रजा कितनी कंगाल थी। साहित्य का एक वर्ग बड़ा दिलचस्प है। लगता है कि लिखने का पेशा, जैसा कि हजारों-लाखों अभिलेखों से प्रकट भी है, जोर पर था और महत्वाकांक्षी पिता अपने बच्चों को लिपि सिखाने वाले स्कूलों में भरती करा दिया करते थे। वहाँ ये लड़के पेपरिस साहित्य खंडों की नकल किया करते थे। इस प्रकार की काफी लिखावटें इन लड़कों की मिली हैं, जिन पर उनके गुरुओं का सही किया हुआ भी है। इस वर्ग की लेख मालाओं से मिस्र के प्राचीन-साहित्य पर बड़ा प्रकाश पड़ा है क्योंकि नकल करते समय विद्यार्थियों को गुरु प्राचीन कथा साहित्य आदि के खण्ड दे दिया करते थे। ये लेख मालाएँ स्वयं तो पीछे की हैं, प्रायः उन्नीसवें बीसवें राज-कुलों के समय की, परन्तु उन पर मश्क किया हुआ साहित्य पुराना है। एक मजे की बात यह है कि लेखक अपना पेशा निहायत अच्छा समझते थे और अपनी तुलना में व्यापारियों और सैनिकों को तुच्छ। एक पेपिरस लिपिपत्र पर दोनों के अप्रत्याशित मृत्यु आदि के दुर्भाग्यों पर दुःख प्रकट किया गया है।

कॉप्टिक में भी कुछ साहित्य लिखा गया, पर यह अधिकतर ईसाई साहित्य है, बाइबिल आदि के अनुवाद के रूप में। तब तक मिस्र के समुन्नत युगों का ह्रास हो चुका था और जो कुछ वहाँ लिखा गया वह मिस्रियों ने नहीं विदेशियों ने लिखा।

---

१. Ptahhotep

२०. युगोस्लाव-साहित्य

युगोस्लाव का साहित्य कई स्लाव का आज सम्मिलित साहित्य है। परन्तु प्राय: दो सदी पहले स्लाव की जातियाँ अलग-अलग कबीलों में बँटी थीं और उस देश में वे तब आयीं जब रोम और कुस्तुन्तुनियाँ के परस्पर विरोधी चर्चों में द्वन्द्व छिड़ा था। स्लोवीन[1] और क्रोआत्त[2] रोम के प्रभाव में आये। उन्होंने अपना साहित्य लैटिन भाषा और रोमन अक्षरों में लिखा और पूर्व के सर्व[3] तथा मान्तीनेग्रिनों[4] ने कुस्तुन्तुनिया के परंपरावादी ग्रीक चर्च का आश्रय लिया और ग्रीक अक्षरों में अपने भाव व्यक्त किये। वही अक्षर आज भी युगोस्लाविया में चल रहे हैं।

युगोस्लाविया का साहित्य भी अन्य पूर्वी यूरोपीय जातियों की ही भाँति पहले लैटिन में था। वह अधिकतर धार्मिक था। प्राचीनतम साहित्य वहाँ अन्य जातियों की अपेक्षा सर्बों का है। अन्य मध्यकालीन जातियों की ही भाँति सर्बों का साहित्य भी धर्म-प्रधान था। ग्यारहवीं सदी से ग्रीक से अनुवाद होने लगे। साथ ही सर्बों ने अपने संतों की कहानियाँ भी अपनी भाषा में लिखीं। इस प्रकार स्टीफेन[5] और संत सावा[6] ने अपने-अपने पिता के जीवन-चरित लिखे। स्वयं सन्त सावा का जीवन चरित सर्व भाषा में मिलता है। वर्लाम[7] और जोज़ाफ़त[8] तथा सिकन्दर महान् की कहानियाँ भी तब लिख डाली गयीं। वस्तुत: यह कहानियाँ सारे यूरोप के मध्ययुग की हैं।

प्रकट है कि ऊपर लिखे साहित्य का महत्त्व अधिक न था। वास्तविक महत्त्व लोकसाहित्य का है जो उस काल रचा अथवा एकत्र किया गया। यूगोस्लाव का वह साहित्य किसी यूरोपीय जाति के तद्वत् साहित्य से कम नहीं। उनके लोक-गीत तो काफी प्राचीन हैं और नारियों के गीत तो कम से कम १३ वीं सदी ई० के हैं। ये गीत व्यक्तिगत हैं और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को चित्रित करते हैं।

लोकसाहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग उन वीर काव्यों का है जिनमें "नेमान्या कुल" का चरित वर्णित है। वीर काव्यों के दो विशिष्ट भाग हैं, एक वे जिनका सम्बन्ध १३८९ के कोसोवो के युद्ध से है और दूसरे वे जो हिरो मार्को काल्यिविच से सम्बन्ध रखते हैं। ये "एपिक" और कुछ पिछले काल की कविताएँ युगोस्लाव लोक-काव्य की सुन्दरतम रचनाएँ हैं। इन कविताओं में अधिकतर तो अपनी घटनाओं की समकालीन हैं, इनमें से पिछली

---

१ The slovenes; २. The Croats; ३. Serbs; ४. Montenegrans; ५. Stephen; ६. St. Sava; ७. Varlaam; ८. Josaphat

संभवत: १६ वीं सदी की है। समय इनका चाहे जो भी हो इसमें सन्देह नहीं कि हैं वे अत्यन्त सुन्दर और हृदयग्राही। १८ वीं सदी के अन्त में जब उनका ज्ञान पश्चिमी यूरोप के सहृदयों को हुआ तो वे इनकी मार्मिकता पर मुग्ध हो गए। लोकसाहित्य, विशेषत: लोकगीत, यद्यपि वे पहले सर्बों की बोली में लिखे गये थे। कालान्तर में युगोस्लाविया के निवासी हर भाग में पहुँचे और वहाँ की स्लाव जातियों के समान रूप से उपास्य बन गये। एडियाटिक सागर के तट पर बसने वाले उस्कोकों के भी सर्बों की भाँति अपने गीत थे। उस्कोक वीर माँझी थे और तुर्क विजेताओं के जहाजों पर निरन्तर छापे मारते रहते थे।

काव्यों में कोसोवा की युद्धभूमि पर वनेज लाजार की मृत्यु का वर्णन बड़ा मार्मिक है। उनमें उसके साथियों—मिलोश ओबिलिच, युग बोगदान और उसके दस बेटों—के कृत्यों का सुन्दर वर्णन हुआ है। ये सब के सब उस दिन उसी युद्ध में मारे गये थे। फिर उनमें मार्को काल्येविच और उसके अद्भुत घोड़े शरत्स का भी अभिराम वर्णन हुआ है। मार्को बाल्कन जातियों का हीरो है जिसने उनके लिए बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना किया था। क्रोआत, स्लोवीन और सब तीनों जातियों ने उसके चरित्र गाये हैं। लोक साहित्य में पिछली घटनाओं का भी छन्दोबद्ध वर्णन हुआ है। १८०३ के सर्ब-द्रोह का भी उसमें विस्तृत उल्लेख है। इन गीतों की संख्या हजारों में है। इनको वस्तुत: युगोस्लाव अंध गायकों ने सुरक्षित रखा है। अपने भारत की ही भाँति वहाँ भी अंधे गायक ज्यादातर तंत्रियों पर पुराने गीत गाया करते थे। तन्त्री को "गुस्ल्या" कहते थे और उसके सहारे अन्धे गायकों को "गुस्ल्यार।"

युगोस्लाविया के जिन भागों में रोमन कैथोलिक धर्म का प्रचार था वहाँ लैटिन से भिन्न अन्य देशी बोलियों में साहित्य की प्रगति नितान्त थोड़ी हुई क्योंकि चर्च बराबर लैटिन के अनिवार्य प्रयोग पर जोर देता था। एड्रियाटिक तट के निवासियों में फिर भी चर्च के उस अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना जगी और उनमें स्लाव भाषा की रक्षा के लिए एक आन्दोलन ही चल पड़ा।

आधुनिक अर्थ में साहित्य का उदय दुब्रोवनिक में हुआ जान पड़ता है। दुब्रोवनिक नगर राज्य था। रेनेसां काल का बना। वहाँ वेनिस के अनुकरण में धनी सौदागरों ने सुन्दर इमारतें बनवानी शुरू कर दी थीं और धीरे-धीरे वह नगर सुन्दरतम नगरों में गिना जाने लगा था। १४ वीं सदी से ही वहाँ युगोस्लाव साहित्य के एक रूप का उदय होने लगा था। जो प्राचीन विजांतीनी साहित्य और लोकगीत दोनों से भिन्न था—वह साहित्य इटैलियन रेनेसां के प्रभाव से विकसित हुआ। अभिजात कुलों के तरुण इटली गए और वहाँ उन्होंने साहित्य के नेताओं से साक्षात्कार किया। "तास्सो" पेत्रार्च और त्रबादूरों के साहित्य से वे प्रभावित हुए। पेत्रार्च[1] का एक शिष्य १४वीं सदी में दुब्रोवनिक में पढ़ाने भी लगा था।

---

१. Patrarch

इटली की लोकप्रिय साहित्यिक प्रवृत्तियों से प्रभावित इन तरुणों ने अपने अनुवादों और स्वतन्त्र कृतियों में इटली से सीखी भावनाओं का समावेश किया।

१५वीं सदी के प्रायः मध्य से कवियों का कार्य शुरू होता है और इनकी एक खासी अदद भी है। इन कवियों में शिशिको मेंचेतिच[१] था। साहित्य जो बना निश्चय ही अधिकांश में कृत्रिम था क्योंकि वह पुराने रूढ़िगत भावों और रूपों के अनुसार ही प्रस्तुत हुआ था। जब यह दोष उन कविताओं में स्पष्टतः प्रकट होने लगा था तब अपने छंदों का उन्होंने इटैलियन मॉडल के अनुरूप आकार भी बदल दिया। इन छंद-शोधकों में प्रधान दिंको रानीना[२] और दिंको ज्लातारिच[३] थे।

उस आन्दोलन का विशिष्ट कवि ईवां गुन्दुलिच[४] था। उसने क्लासिकल शैली के अनेक नाटक लिखे—जैसे "आर्यादने" "प्रोसर्पिना पर बलात्कार" और "दुब्राव्का" उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति बीस सर्गों में समाप्त प्रबन्ध काव्य "ओस्मान" है। उसके १४वें और १५वें सर्ग आज उपलब्ध नहीं। वह काव्य तुर्कों के अत्याचार का अंकन करता है और चौदहवें तथा पन्द्रहवें सर्ग उस दिशा में विशेष सयत्न थे। अनुमानतः इसी कारण उन्हें तुर्कों ने नष्ट कर दिया। कहानी में पोलेण्ड के युवराज व्लादिस्ला के "ओस्मान" के विरुद्ध उस ऐतिहासिक संघर्ष का वर्णन है जिसका अंत १६२१ के चेकिम के युद्ध में हुआ। काव्य की कहानी १६२३ में ओस्मान की मृत्यु तक चलती है। गुन्दुलिच ने अपने काव्य को तास्सो की रचना "आजाद जेरुसलम" के आधार पर रचा था परन्तु उसमें उसने बहुत कुछ तो पोलेण्ड के इतिहास का अंकन किया था और अधिकतर युगोस्लाव के नेताओं के गौरव का। "ओस्मान" दुब्रोवनिक साहित्य की सुन्दरतम कृतियों में है। दुब्रोवनिक-कवि अधिकतर स्वान्तःसुखाय लिखते थे और उनकी कृतियाँ हस्तलिपि के रूप में मित्रों में ही घूमती रहती थीं। इसी कारण इस काव्य का प्रकाशन भी १८२६ के पहले न हो सका। दुब्रोवनिक साहित्य शृंखला का अंतिम विशिष्ट साहित्यकार इग्नात ज्योर्गिच[५] था। अधिकतर गद्य रचनाएँ तो उसने लैटिन में कीं परन्तु "मारी मागदालिनी" नामक नाटक अपनी बोली में लिखा।

युगोस्लाविया के स्लोवीन भाग में साहित्य एक पृथक रूप धारण कर रहा था। प्रिमोज त्रुबार[६] ने अपनी भाषा में धार्मिक पुस्तकों का अनुवाद शुरू कर दिया था। साथ ही उसने अपनी स्वतन्त्र पुस्तकों और लेखों द्वारा भी प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय का प्रचार किया। परन्तु अभाग्यवश उसकी कृतियाँ कैथोलिक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप नष्ट कर दी गयीं।

---

१. Sisko Mencetic (१४५७-१५२७); २. Dinko Ranina (१५३६-१६०७); ३. Dinko Zlataric (१५५८-१६०९); ४. Ivan Gundulic (१५८८-१६३८); ५. Ignat Gergjic (१६७५-१७३७); ६. Primoz Trubar (१५०८-८६)

१८ वीं सदी के मध्य तक युगोस्लाव-साहित्य एक नयी दिशा की ओर चल पड़ा था। शासन हैप्सबर्ग साम्राज्य का था जिसकी सीमाओं में जर्मन भाषा का प्रभुत्व था और वह भाषा जर्मन भिन्न प्रजा पर भी लादी जा रही थी। उधर तुर्की साम्राज्य युगोस्लाविया के अन्य कुछ भागों पर काबिज था जिससे उधर पढ़ने-लिखने से कोई वास्ता ही न रहा। साहित्य का भी वहाँ पनप सकना कठिन था। इससे क्रांति की आवश्यकता स्पष्ट हो गई। आखिर प्रतिक्रिया हुई। रूस ने युगोस्लाविया की सहायता की। उसने अपने विद्यापीठ सर्वों के लिए खोल दिए और सर्व वहीं जाने लगे। पहले जोवान रिजिच[१] धर्म शास्त्रीय अध्ययन के लिए वहाँ गया। रूस से लौटकर विद्वानों ने सर्ब साहित्य को पुनर्जीवित करने में बड़े प्रयत्न किए।

उनसे कहीं अधिक कार्य उन लोगों ने किया जो १८ वीं सदी के बुद्धिवाद के प्रभाव में आए। वह बुद्धिवाद आस्ट्रिया-हंगरी में "जोजेफिनवाद" कहलाता था। उससे आकृष्ट होकर अनेक सर्ब तरुण विएना पहुँचे। इन बुद्धिवादी विशिष्ट लेखकों में पहला दोसितेय ओब्रादोविच[२] था। वह पहले साधु था फिर गृहस्थ हो गया। उसने पश्चिमी देशों की यात्रा की। १७८९ में वह विएना में बस गया। परन्तु १८०४ में जब सर्ब-विप्लव हुआ तब वह जमून होता स्वतन्त्र सर्बियों में पहुँचा। और वहाँ का शिक्षा-मंत्री हो गया। बेलग्रेड में ही वह १८११ में मरा। यद्यपि उसकी रचनाएँ लोकप्रिय नहीं हो सकीं पर उसने सर्ब साहित्य की प्रगति के लिए राह बना दी।

शीघ्र ही युगोस्लाविया के अन्य भागों में भी विद्रोह हुए। साथ ही यूरिय यापेल्य[३] ने बाइबिल का अनुवाद किया और अनेक स्वतन्त्र पुस्तकें लिखीं। जीगा जोइस[४] के चतुर्दिक भी अनेक बुद्धिवादी लेखक एकत्र हो गए। तभी वालेन्तिन वोदनिक[५] ने भी लुबियाना में लोक-साहित्य की खोज शुरू कर दी। क्रोअशिया में भी कुछ प्रयत्न हुए परन्तु वहाँ साहित्य का सृजन अपेक्षा कृत कम हुआ। वहाँ लेखकों में विशिष्ट फ्रांसिसकी साधु आन्द्रिया काचिच-मियोसिच[६] था। जिसने "स्लाव जाति की चारुवार्ता" लिखा। उसमें उसने विविध स्लावों के प्रायः २०० गीत प्रकाशित किए।

साहित्य के उन क्षेत्रों में भी स्तुत्य प्रयत्न हुए। प्राग में जोज़ेफ़ दोब्रोवस्की[७] ने स्लाव भाषाओं के अध्ययन के लिए एक वैज्ञानिक आधार नियत किया। जरनेज कोपितार[८] ने वही कार्य स्लोवीन स्लाव के लिए किया। उसने अन्य स्लाव शाखाओं से भी सम्पर्क स्थापित

---

१. Jovan Rijic (१७२६-१८०१); २. Dositej Obradovic(१७४२-१८११); ३. Jurij Japelj (१७४४-१८०७); ४. Ziga Zois; ५. Valentin Vodnik (१७३८-१८१९); ६. Andrija Kacic Miosic (१७०२-६०); ७. Josef Dobr vsky; ८. Jernej Kopitar (१७८०-१८४४)

कर लिया। वुक काराद्चिच[१] सर्व तरुण भी उसके सम्पर्क में आया। इस सर्व तरुण ने अपनी भाषा के लिए एक व्याकरण लिखा था। उसके सर्व लोक गीतों के संग्रह ने सर्बों पर गहरा प्रभाव डाला। उसी प्रकार का कार्य क्रोआतों में ल्युदवित गया[२] ने किया। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्लावों ने अपने नये साहित्य निर्माण के लिए पर्याप्त साधन तैयार कर लिए।

उस काल के कवियों में प्रधान स्थान पैतर पेत्रोविच न्येगोश[३] का है। वह मान्टिनेग्रो का बिशप था। उसका काव्य "पार्वतीय स्रज" आधुनिक स्लाव साहित्यों की मुकुट मणि है उसमें मान्टिनेग्रो के तुर्कों से आजाद होने की कहानी लिखी है। न्येगोश उदारवादी और रोमान्टिक आन्दोलनों तथा ईसाई धर्म और इस्लाम के सन्धिस्थल पर खड़ा है। उसी पीढ़ी में वर्तमान स्लोवीन काव्यधारा का प्रवर्तक फ्रांस प्रेसर्न[४] हुआ। उस क्षेत्र में उसका सहायक मातिया चोप[५] था - प्रेसर्न कवि था और उसने अपनी भाषा को ऋद्ध करने के विचार से अन्य भाषाओं से भी शब्द लिए।

देश में एक "इलीरियक" आन्दोलन भी चला। उसका उद्देश्य स्लोवेनिया, कोआशिया और डाल्मेशिया को मिलाकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र इलीरिया कायम करना था। १८४८ तक के अनेक युगोस्लाव कवियों को इस आन्दोलन ने प्रभावित किया। क्रोआत स्लावों में इस आन्दोलन का बड़ा जोर था और स्वयं स्तांको व्राज[६] ने उसमें अपना योग दिया। प्रसिद्ध क्रोआत ईवां माजुरानिच[७] स्वयं उससे प्रभावित था। "स्माइल आगा केंगिच की मृत्यु" में एक क्रूर तुर्क सरदार की कथा है जिसको डालमेशिया की आजादी के लिए लड़ने वाले उस्कोकों ने मार डाला था। साहित्यिकों का एक दल पेतर प्रेरादोविच[८] के साथ हो गया जो रहस्यवादी था।

१८४८ का साल सारे यूरोप के राजनीतिक और साहित्यिक इतिहास में क्रांतिकारी महत्व का था। बाल्कन देशों में तो उस साल के आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। स्वतन्त्र सर्बिया और अन्य स्लाव देशों में भी हैप्सबर्ग राजकुल के विरुद्ध विद्रोह की प्रबल भावना जगी और साहित्यिक (तथा राजनीतिक) संस्थाएँ जैसे "ओम्लादीना" (तरुण) यकायक उठ खड़ी हुयीं। यह आन्दोलन रोमांटिक परंपरा का था परन्तु पश्चिमी यूरोप की तद्विषयक परंपरा से भिन्न। उसमें राष्ट्रीयता की भावना अधिक थी। "इलीरियन" आन्दोलन स्लाव जाति का आन्दोलन था, यह सर्बों, क्रोआतों, स्लावोनों का अलग-अलग जातीयता का आन्दोलन था।

---

१. Vuk Karadjic (१७८७-१८६४); २. Ljudevit Gaj (१८०९-७२); ३. Petar Petrovic Njegos (१८१३-५१); ४. France Presern (१८००-४९); ५. Matija Cop (१७९७-१८३५); ६. Stanko Vraz (१८१०-५१); ७. Ivan Mazuranic (१८१४-९०); ८. Petar Preradovic (१८१८-७२)

फ्रांक लेव्स्तिक[१] ने लोक बोलियों के आधार पर एक भाषा के निर्माण का प्रयत्न किया। परिणामतः स्लोवोन गद्य का जन्म हुआ। वह १९ वीं सदी की एक हस्ती था। इस आन्दोलन ने सर्बों में अनेक प्रसिद्ध लेखक उत्पन्न किये। इनमें प्रधान जमाज योवान योवानोविच[२] था। उसकी काव्य धारा ब्रांको रादिचेवच[३] सर्ब राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित रोमांटिक लिरिकों से ही प्रादुर्भूत हुई थी। योवानोविच की काव्य धारा अपनी जनता को प्रायः तीस वर्षों तक प्रभावित करती रही। उसने "एपिक", लिरिक, बाल-साहित्य लिखे और उन्हें किसान संस्थाओं की प्रगति का साधन बनाया। जूरा याक्शिच[४] भी उसी दृष्टिकोण का था उसने कविताएँ तो लिखीं ही अपनी सर्ब जनता के जीवन पर कहानियाँ लिखने वाला वह पहला साहित्यकार था। उसने सर्ब-मध्ययुग पर भी कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं।

क्रोआत लेखकों में प्रधान फ्रांजो मार्कोविच[५] और ओगुस्त सेनोआ[६] थे। इनमें पहला आलोचक था दूसरा कवि और उपन्यासकार। १८७० के बाद युगोस्लाव लेखकों पर रूसी यथार्थवादी साहित्यकारों का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। उसी काल रूसी जनवादी साहित्यिक आन्दोलन, साहित्य और कला को सामाजिक समाधान का साधन बनाने पर जोर देने लगा था। पिछले युग की निष्क्रियता वहाँ अनीश्वरवादी लोक चेतना में बदल चली थी। चेर-निशेव्स्की[७] दोब्रोल्युबोव[८] और पिसारेव[९] ने जो समसामयिक समाज व्यवस्था पर चोट की उसका स्लाव लेखकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। युगोस्लाविया के लेखक उस दिशा में चैतन्य हुए। रूस से इन नये विचारों को लेकर बुल्गेरिया के ल्युबेन कारावेलाव[१०] और सर्ब स्वेतोजार मार्कोविच[११] बेलग्रेड लौटे। मार्कोविच तो १८६८ से अपनी मृत्यु तक पुराने लेखकों की चाबुक और तरुणों का उपास्य बना रहा। उसने शुद्ध कला, रोमांटिक और भावुकतावाद आदि का घोर विरोध किया। उसने जनता और किसानों के जीवन को साहित्य और कला का आधार बनाने पर जोर दिया। सरकार को यह दृष्टिकोण न रुचा और उसे देश छोड़कर भागना पड़ा। मार्कोविच से प्रभावित मिलोवान ग्लीसिच[१२] ने गोगोल[१३] की "मृत आत्माएं" टाल्सटाय[१४] के "युद्ध और शांति" और गोन्चारोव[१५] के "आब्लोमोव" के अनुवाद किए। उसकी अपनी कहानियाँ भी बहुत कुछ

---

१. Fran Levstik (१८३१-८७); २. Zmaj Jovan Jovanovic १८३३-१९०४); ३. Branko Radicevic (१८२४-५३); ४. Djura Jaksic (१८३२-७८); ५. Franjo Markovic (१८४५-१९१४); ६. August Senoa (१८३८-८१); ७. Chernyshevsky; ८. Dobrolyubov; ९. Pisarev; १०. Lyuben Karayelov; ११. Svetozar Markovic (१८४६-७३); १२. Milovan Th. Glisic (१८४७-१९०८); १३. Gogol; १४. Tolstoy; १५. Goncharov

उसी प्रेरणा से प्रस्तुत हुई। अन्य यथार्थवादी साहित्यकारों में प्रधान यांको वेसेलिनोविच[1] और सिमो मातावुल्ज[2] थे। इनमें दूसरे ने अपने उपन्यासों में उस्काकों का जीवन चित्रित किया।

क्रोआत यथार्थवादी प्रकृतिवादी लेखकों में मुख्य सान्दोर जाल्स्की-बाकिच[3] था। स्लोवीनों में योसिप युर्चि[4] विशेषत: यांको केर्स्निक थे।[5] स्लोवीनों में निस्संदेह यथार्थवादी प्रेरणा इतनी प्रभावोत्पादक न हो सकी। उनके विशिष्ट साहित्यकार ईवां कंकर[6] ने तो प्रतीकवाद की भी शरण ली।

उन्नीसवीं सदी का अन्त होते ही युगोस्लाव लेखकों में प्रतीकों और उनसे सम्बन्धित आन्दोलनों का आकर्षण जगा। वोजीस्लाव ईलिच[7] जो सर्ब कवियों में सबसे विद्वान था इसी प्रवृत्ति का कवि रह चुका था। फिर भी पुश्किन[8] और लरमन्तोव[9] ने उस पर प्रभाव डाला और उसके साथ ही अगली पीढ़ी के लेखकों का दृष्टिकोण विशेषत: प्रथम महायुद्ध से कुछ काल पूर्व आशावादी हो चला। योवान दचिच[10] और बोरिस्लाव स्तांकोविच[11] क्रमश: कवियों और लेखकों में इस दृष्टिकोण के प्रतिनिधि थे। यह दूसरा प्रसिद्ध स्लाव उपन्यास "दूषित रक्त" का लेखक था। क्रोआतों में उस काल का विशिष्ट साहित्यकार दुब्रोवनिक का निवासी ईवो वोजनोविच[12] हुआ जिसने अपनी रचनाओं में अभिजातीयता की टूटती दीवारों का अंकन किया और समूची युगोस्लाव जाति की एकता पर जोर दिया। आन्ते ट्रेसिच पाविचिच[13] कारदूची[14] के प्रभाव में आया। उसने निराशावादी दर्शन का अपनी "ट्रिलोजी" (तीन भाग में ड्रामा) "फिनिस रई पुब्लिकी" में वितन्वन किया पर इटली को प्रजासात्मक प्रवृत्तियों का सिंहावलोकन करने के कारण मुसोलिनी ने उसका दूसरा भाग "उतिका का कातो" जब्त कर लिया।

स्लोवीन साहित्य का विशिष्ट कवि ओतोन जुपान्चिक[15] था। उसने पिछले आन्दोलन की अपने दृष्टिकोण द्वारा समष्टि प्रस्तुत की। प्रथम महायुद्ध के बाद सर्ब, क्रोआत औ स्लोवीन समान राष्ट्र के अंग बने। इससे "युगोस्लोवेन्स्का ओम्लादिना" आन्दोलन को बड़ी शक्ति मिली और युगोस्लाविया के साहित्य में एकता भी आई। यह एकता कुछ

---

१. Janko M. Vaselinovic (१८६२-१९०५); २. Simo Matavulj (१८५२-१९०८); ३. Sandor Djalski-Bakic (जन्म १८५४); ४. Josip Jurcic (१८४४-८१); ५. Janko Kersnik (१८५२-९७); ६. Ivan Cankar (१८७६-१९१८); ७. Vojislav J. Ilic (१८६२-९४); ८. Pushkin; ९. Lermontov; १०. Jovan Ducic (जन्म-१८७४); ११. Borislav Stankovic (१८७६-१९२७); १२. Ivo Vojnovic (१८५७-१९१९); १३. Ante Tresic—Pavicic (१८६७-१९४०); १४. Cardvcci; १५. Oton Zupancic (ज० १८७८)

आसान न थी। इसमें दो स्वतन्त्र सांस्कृतिक धाराओं लैटिन-इटैलियन-जर्मन और ग्रीक बिजान्तीनी-बाल्कनी-का परस्पर विरोधी योग था। पिछले युद्ध में सर्ब और क्रोआत विरोधी शक्तियों की ओर से लड़े थे इससे यह कार्य और कठिन हो गया था।

साम्यवाद ने अब युगोस्लावी आन्दोलनों में प्रवेश किया। तरुण अधिकतर उस क्षेत्र में प्रयत्नशील हुए। मिरोस्लाव क्रलेजा[1] ने अपनी एक कृति लेनिन को समर्पित की और अपने ग्रन्थ "क्रोआत देवता मार्स" में युद्ध के सम्बन्ध में जनता का दृष्टिकोण प्रकट किया। नात्सी आक्रमण (१९४१) के समय उसकी मृत्यु हो गई जिससे अकाल ही उसके साहित्यिक नेतृत्व और भाव-सम्पदा का अन्त हो गया।

निकोलाज वेलीमिरोविच[2] आलोचक के रूप में यूरोप और अमेरिका में प्रसिद्ध हो चुका है। उसने न्येगोश का अच्छा अध्ययन किया।

युगोस्लाव काव्यधारा में लोक-काव्य का मूलतः योग है। लोक साहित्य की परंपराओं में वर्तमान साहित्यिक दृष्टिकोण के समर्थन की अद्भुत शक्ति है। इसी कारण युगोस्लाविया का साहित्य पृथ्वी पर अपने पाँव टिकाए रख सका है और जीवन से सीधा आहार पाता आ रहा है। एकता का आन्दोलन भी साहित्य में वहाँ अच्छा चला। और इस्लामी बोस्निया की साहित्य शाखा भी मूल धारा में इधर मिलती जा रही है।

द्वितीय महासमर के बाद साम्यवादी दष्टिकोण का साहित्य अधिक मात्रा में प्रकाशित होने लगा है, उसमें युगोस्लाविया के विविध प्रांतों के लोक साहित्य का योग है वहाँ का रंग मंच लोक साहित्यिक परंपरा में प्रायः अभी खड़ा किया गया है। नृत्य आदि लोक कलाओं का पुनरुत्थान अत्यन्त सराहनीय है।

---

१. Miroslav Krleza; २. Nikolaj Velimirovic

२१. रूसी साहित्य

: १ :

विदेशी साहित्य से संबंध

रूसी साहित्य का इतिहास वस्तुतः १९ वीं सदी में एलेग्जैण्डर प्रथम के साथ आरम्भ होता है, यद्यपि इसे उसका सर्वथा प्रारम्भ नहीं कहा जा सकता। रूसी साहित्य का सम्बन्ध स्वाभाविक ही रूसी भाषा से है और फिर रूसी इतिहास से भी, यद्यपि ऐसा नहीं कि साहित्य सर्वथा भाषा के आरम्भ से ही सम्पर्क रखता हो। साहित्य भाषा का कलेवर धारण करके भी उसके विकास की स्थिति-विशेष में और उसके बोलने वालों के हर्ष-विषाद, जय-पराजय, संघर्ष जनित भावावेगों के अनुकूल मुखरित होता है। इस विचार से तो निश्चय ही रूसी साहित्य का इतिहास रूसी जनता का इतिहास है परन्तु चूंकि इस अध्यवसाय में उन सीमाओं का समा सकना सम्भव नहीं, उसकी मूल मंजिलों का ही निर्देश कर देना यहाँ समीचीन होगा।

स्लाव जाति का ७ वीं-८ वीं सदियों में नीपर नद के तट पर खीव, स्मोलेन्स्क और नवगोदर नामक नगरों में बसा होना सम्भवतः उस दिशा में पहली मंजिल थी। इन्हीं तीनों नगरों में रूसी जाति की पहली संस्कृति फूली। मॉस्को और सेन्टपीटर्सवर्ग को खीव की ही कालांतर में विरासत मिली। इन तीनों नगरों का हवाला रूसी-साहित्य के प्राचीनतम अभिलेखों में मिलता है।

रूसी साहित्य के इतिहास पर प्रभाव डालने वाली दूसरी ऐतिहासिक घटना नार्वे आदि उत्तर प्रदेशों के रहने वालों का रूस पर हमला था। उन्होंने उस इतिहास पर अपने गहरे पदचिन्ह छोड़े और स्वयं अधिकतर रूसियों में ही खो गए। अगली मंजिल रूस में ईसाई धर्म के प्रचार की थी। १०वीं सदी के चौथे चरण में खीव के राजा व्लादिमीर[१] ने बाइजेन्टियन के रोमन सम्राट् की भगिनी से विवाह किया और तत्काल ईसाई धर्म का प्रचार रूस में होने लगा। इस प्रकार रूस पश्चिमी जगत् की बौद्धिक परिधि के सम्पर्क में आया। स्लावों के बीच विशेषकर बल्गेरिया और सर्बिया में मकदूनिया की बोली का बलात्कार प्रचार भी उसी दिशा में एक कदम था क्योंकि यही प्रचार एक सदी बाद रूसी स्लावों के बीच भी जारी हुआ। पहली बार रूस का बने बनाये विदेशी साहित्य से सम्बन्ध स्थापित

---

१. Vladimir

हुआ। लिखी भाषा का प्रभाव शीघ्र ही संस्कृति, कला और आचार पर पड़ता है और रूस के सम्बन्ध में भी यह सिद्धान्त सार्थक हुआ। कहना न होगा कि ११ वीं सदी में खीव की गणना यूरोप के शिष्टतम नगरों में थी।

खीव के राजकुल का सम्बन्ध फ्रांस, हंगरी, नार्वे और इंगलैंड तक के राजकुलों से था। रूसी हस्तलिपियाँ जिनका संग्रह खीव के राजकुल की संरक्षा में हुआ उस प्राचीनकाल में भी पश्चिमी यूरोप के किसी संग्रह से घटकर न थीं। खीव तब पूर्वी यूरोप की कला और संस्कृति का प्रगतिशील केन्द्र था। परन्तु शीघ्र ही अभाग्यवश जो ईसाई धर्म की पूर्वी और पश्चिमी दो शाखाएँ बनीं तो यूरोप भी अनुकूल भूखण्डों में बँट गया। इससे रूस पश्चिमी जगत से कटकर अलग हो गया, यद्यपि उसका वह प्रथकत्व अभी इतने महत्व का न था। ११ वीं-१२ वीं सदियों में जो इतिहास रूस में प्रस्तुत हुआ वह गजब का जनवर्गीय था। रूसी गीतों का नायक बराबर किसान का बेटा होता था जो अपनी असामान्य शक्ति से देश के शत्रु को जीत लेता था और तब पुरस्कार के रूप में उसे तीन साल तक लगातार भट्टी में बैठकर स्वच्छन्द मादकपेय पीने का अधिकार हो जाता था। साहित्य की यह जनपरकता रूस में अविच्छिन्न रूप से कायम रही है।

१२ वीं सदी के खीव का साहित्य अधिकतर खीव के "क्रॉनिकल" नेस्टर के "क्रॉनिकल" और "राजा ईगोर के हमलों की कहानी" में सुरक्षित है। इनमें पहला मठ में लिखा गया था और वह वीर काव्य के गुणों से विभूषित है। रूसी प्रारम्भिक इतिहास लेखन पर इनका बड़ा प्रभाव पड़ा। "राजा ईगोर की कहानी" गद्यकाव्य है जो तत्कालीन रूसी लिखी जुबान का अदभुत स्मारक है। इसकी मौलिकता, इसका एतिह्य, इसकी अंकन शक्ति यूरोप के साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। ईगोर ने उत्तरी नवगोरद से दक्षिण के पोलोव्त्सी नाम की खानाबदोश जाति पर ११८५ में हमला किया था। पहले तो वह जीतता गया परन्तु बाद में उसे शत्रु ने ऐसा पराजित किया कि उसे घर लौटना पड़ा। गद्य के रूप में गति और काव्य शक्ति में उस काल की रचनाओं में यह कृति असाधारण है। इसका वर्णन बड़ा तेजस्वी और भाव प्रधान है। निसर्ग का उसमें निरन्तर अंकन है। ईगोर वाल्मीकि के राम की ही भाँति नदी-नालों से, पेड़-पत्तों से बात करता है। अन्त में उसका राज्य उसे फिर मिल जाता है और उसकी प्रजा उसे अपना शासक स्वीकार करती है। १८ वीं ईस्वी में यह कहानी पहले-पहल चौदहवीं सदी की पाण्डुलिपि के आधार पर प्रकाशित हुई। यह अमूल्यकृति मॉस्को के अग्निकाण्ड में बाद में जल गई।

१३ वीं सदी में तातारों के धावों ने रूस को प्रायः तीन सदियों के लिए निष्क्रिय कर दिया। १२४० में खीव को तातारों ने उजाड़ डाला और रूसियों को दक्षिण से उत्तर हट जाना पड़ा। अब रूस के जीवन और संस्कृति का केन्द्र मॉस्को बना। धर्म का क्षेत्र अब भी स्वतन्त्र था और १४५३ में जब कुस्तुन्तुनिया पर तुर्की की मरणान्तक चोट पड़ी तब

मॉस्को जैसे उधर का नया रोम बन गया । फिर भी रूसियों में सजीवता का संचार करके भी चर्च सर्वत्र की भाँति वहाँ भी प्रतिगामी सिद्ध हुआ । १४ वीं सदी से १९ वीं सदी के आरम्भ तक ५०० साल रूस के इतिहास में साहित्य की दृष्टि से प्राय: सर्वथा अनुर्वर सिद्ध हुए। पश्चिमी यूरोप उस बीच क्रांति पर क्रांति करता रहा पर रूस सोया पड़ा रहा। पन्द्रहवीं सदी की "खोज़ेनिया जात्रिमोर्या" तीन समुद्र पार की यात्रा नामकी एक मनोरंजक हस्तलिपि मिली है जिसमें अफासानिया निकितिन की रूस से भारत यात्रा का वर्णन है। वह (१४६६-१४७२) वास्को डिगामा से प्राय: ४० वर्ष पहले भारत आया था और बहमनी सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय (१४६२-८३) के राज्य में घूमता फिरा था। यह हस्तलिपि भी जो कारामिजन के रूसी इतिहास के छठें खंड में छपी, पन्द्रहवीं सदी के गद्य का एक सामान्य रूप प्रस्तुत करती है।

रूस के नवनिर्माण में फिर भी जब-तब कुछ प्रयास होते रहे। ईवां तृतीय से विवाह के बाद सोफिया पालिओलोगा कुस्तुन्तुनिया से अनेक इटालियन शिल्पी आदि लेकर रूस आई और रूस का नवीकरण एक प्रकार से शुरू हुआ। "भयानक" ईवां के शासनकाल में मास्को में जो छापाखाना खुला तो १५६४ में वहाँ पहली पुस्तक छपी। परन्तु साहित्य अभी चर्च के ही आधीन था उसमें अगला कदम बराबर सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। इसलिए स्वाभाविक ही १७ वीं सदी तक उस क्षेत्र में कुछ प्रगति न हुई। उस सदी में डेमेट्रियस एक साल के लिए मॉस्को की गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त प्रगतिवादी था। परन्तु अभाग्यवश उसे साल भर बाद ही अपनी प्रगतिशीलता का मूल्य अपने रक्त से चुकाना पड़ा। कुछ काल बाद खीव एक बार फिर जागा और अपना पुराना ज्ञान स्वायत्त करने लगा। खीव की देखादेखी मॉस्को में भी जेसुइट धार्मिक स्कूलों की परंपरा जागी और धार्मिक पुस्तकों का सुधार होने लगा । १७ वीं सदी में खीव से कुछ विद्वान मॉस्को आये जिनमें प्रधान सीमियन था—सीमियन पोलोत्स्की रूस का पहला पद्यकार। १८ वीं सदी तक साहित्य में सीमियन की ही परंपरा चलती रही।

१७ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पोलैंड ने भी रूसी साहित्यक प्रगति में अपना योग दिया। मॉस्को नगर के समीप ही स्लोबोदा नाम की जर्मनों की आबादी थी जो यूरोपियन संस्कृति का केन्द्र बन गई थी। यहीं रूसी रंगमंच का जन्म हुआ था। १६७२ ईस्वी में ज़ारेविच के जन्म के अवसर पर जार एलेक्सिस[1] ने यहीं के प्रोटेस्टेन्ट पादरी ग्रेगरी को एक "कॉमेडी" (विनोद प्रधान नाटक) लिखने का आदेश दिया। एक थियेटर की वहाँ स्थापना हुई और नाटक खेले जाने लगे। १६७४ में वहीं "बैले" (मूकनृत्य) का आरम्भ हुआ। एक नाटक कम्पनी वहाँ निरन्तर रहने लगी और जर्मन नाटक रूसी अनुवाद में प्रस्तुत किये जाने

१. Tsar Alexis

लगे। सीमियन पोलोत्स्की द्वारा लिखा पहला मौलिक रूसी नाटक "फिजूलखर्च बेटा" था।

१७ वीं सदी के अन्त तक रूस तातारों के जुए से भी आजाद हो गया था यद्यपि स्वयं रूस के भीतर उन संहारक शक्तियों की कमी न थी जो बराबर एक दूसरे से रूस में लोहा लेती रहती थीं। एक बार तो पोलों ने मॉस्को तक पर अधिकार कर लिया पर शीघ्र ही रूस अपने पैरों पर खड़ा हो गया। रूस के नवीकरण में पीटर महान् का बड़ा हाथ था। उसने देश को धर्म के विधानों से स्वतन्त्र कर दिया और उसकी रूढ़िवादिता के विरुद्ध कमर कस कर वह खड़ा हो गया। उसने रूसी लिपि और भाषा सरल कर दी और अनेक विदेशी ग्रंथों का रूसी में अनुवाद कराया। पहला रूसी पत्र उसी की संरक्षा में निकला। फिर भी पीटर की सक्रियता से साहित्य में तात्कालिक प्रगति न हुई। उसने राजनीतिक क्षेत्र में तो निश्चय ही सफलता पाई और यूरोप की ओर अपने देश में "खिड़की" भी खोल ली परन्तु सफलता अन्ततः समय आने पर ही मिली। पश्चिम की ओर से विचारों की अटूट धारा जो चली निश्चय ही रूसी जीवन को, विशेषतः उसके साहित्य को, प्रभावित किये बिना न रही। १८ वीं सदी में फ्रेंच और जर्मन विचारों का रूसी इतिहास पर प्रभूत प्रभाव पड़ा। तातिशखेव और मिखायल लोमोनोसोव[१] उसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

मिखायल लोमोनोसोव गणितज्ञ, रसायनिक, ज्योतिषी अर्थशास्त्री, इतिहासकार, भूतत्ववेत्ता, वैयाकरण, कवि, सभी कुछ था। उस किसान के बेटे ने बड़ी कठिन परिस्थितियों में मारबुर्ग और फ्राइबुर्ग में शिक्षा ग्रहण कर रूसी भाषा में दूरगामी परिवर्तन किये। उसी के प्रयत्नों से साम्राज्ञी एलिजाबेथ ने १७५५ में मॉस्को यूनिवर्सिटी की स्थापना की। आज मॉस्को विश्वविद्यालय के प्रांगण में उस लोमोनोसोव की आदम मूर्ति खड़ी है। मॉस्को यूनिवर्सिटी की स्थापना से रूसी संस्कृति में एक युगान्तर उपस्थित हो गया। फ्रेंच प्रभाव का कारण प्रिन्स कान्तेमीर[२] था जिसने पहला व्यंग्यात्मक रूसी पद्य लिखा, सीमियन की परंपरा में नहीं, शुद्ध साहित्यिक परंपरा में। उसकी पद्यरचना मुख्यतः ब्वालो की फ्रैंच शैली पर अवलम्बित थी। परन्तु उससे भी बढ़कर रूस पर फ्रैंच विचारों का प्रभाव जर्मन राजकुमारी साम्राज्ञी कैथेरिन[३] द्वितीय ने डाला। कैथेरिन उदारवादी निरंकुश शासकों में गिनी जाती है। फ्रांस के विश्व कोष के प्रसिद्ध अनेक लेखक-वोल्तेयर, मोतेंस्क, दिदरो उसके मित्र थे। दिदरो सेन्ट पीटर्सबर्ग आया और रूसी सैनिक स्कूल फ्रांसीसी शिक्षकों से भर गये। रूसो के विचार भी धीरे-धीरे रूसी प्रतिगामिता की नींव को शिथिल करने लगे। परन्तु फ्रांसीसी राज्य-क्रांति जारशाही को अंगीकार नहीं हो सकती थी और देश में प्रतिगामिता का शीघ्र ही पोषण होने लगा।

---

१. Mikhaylo Vasilyevich Lomonosov (१७०८–१७६५); २. Antiokh Kantemir (१७०८–४४); ३. Catherine (१७२९–९६)

इसी काल रादिशचेव[1] नामक एक अफसर ने रूसी सर्फो (कृषि मजूर) और श्रमिक गुलामों की दशा अंकित करते हुए २० परिच्छेदों में "सेन्ट-पीटर्सबर्ग से मॉस्को की यात्रा" नामक पुस्तक लिखी। १७९० में पुलिस की अनुमति पाकर वह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, फ्रांसीसी राज्यक्रांति के केवल वर्ष भर बाद ही ग्रन्थकार को अपनी प्रगतिशीलता का मूल्य चुकाना पड़ा। पहले वह साइबेरिया निर्वासित हुआ, अन्त में स्वतन्त्र कर दिया गया। फिर उसने आत्महत्या कर ली। रादिशचेव रूसी साहित्य का पहला शहीद था जिसने अपने स्वतन्त्र विचारों के प्रकाशन के लिए प्राणों का बलिदान कर दिया।

लोग आश्चर्य करते हैं कि उदारवादिनी कैथेरिन के शासन में साहित्यिक प्रगति क्यों नहीं हुई, तब एक भी कवि अथवा गद्यकार क्यों नहीं हुआ? कारण यह है कि कैथेरिन वस्तुतः उदार न थी, फ्रेडरिक महान् आदि की नकल भर करने वाली थी। फिर भी तब अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने पद्य रचनाएँ कीं यद्यपि उनका साहित्यिक स्तर बहुत नीचा था। उस काल "ओड" काफी लिखे गये और "ओड" लिखने वालों में डेर्ज़्हाविन[2] सबसे महान था। वह पहला रूसी कवि था और उसकी कविताएँ प्रभूत साहित्यिक क्रांति लेकर भाषा में उतरीं। फिर भी राष्ट्रीय साहित्य में विशेष प्रगति न हुई। शिष्टवर्ग की भाषा फ्रेंच थी और रूसी साहित्य स्वयं फ्रेंच विधानों के अनुकूल ही बाँधा जाने लगा। ऐसा नहीं कि रूसी भाषा में साहित्य सृजन की शक्ति न रही हो। जैसा लोमोनोसोव ने कहा था उसमें फ्रेंच भाषा की शालीनता थी, जर्मन की शक्ति थी, इटैलियन का माधुर्य था, ग्रीक और लैटिन का सूत्रपरक शक्तिम वैभव था; केवल उस भाषा का सही रूप में प्रयोग करने वाला अभी न था।

: २ :

पुश्किन-युग

रूस का नया युग पुश्किन[3] का युग है, १९ वीं सदी का। रूसी साहित्य का वास्तविक इतिहास,जैसा पहले लिखा जा चुका है एलेग्जैण्डर प्रथमके राज्यारोहण से शुरू होता है। उस काल जो साहित्य का अरुणोदय हुआ उसके प्रकाश में रूस का कोना-कोना जगमगा उटा। वह युग नेपोलियन के युद्धों का था। नेपोलियन रूस से भी टकराया और १८१२ में उसे अपने मुँह की खानी पड़ी। रूस ने तब प्रायः पहले पहल राष्ट्रीय एकता की शक्ति पहचानी।

---

१. Aleksander Nikolayevich Radishchev (१७४९–१८०२); २. Gavrila Romanovich Derz Havin (१७४३–१८१६); ३. Aleksander Sergeyevich Pushkin (१७९९-१८३७)

उस राष्ट्रीयता का नेता आरम्भ में ला हार्प का शिष्य स्वयं एलेग्जैण्डर प्रथम था जिसने देश में उदार सुधारों की नींव डाली यद्यपि उसकी प्रतिगामिता अपने सुधारवादी दृष्टिकोण को कायम न रख सकी।

एलेग्जैण्डर प्रथम के राज्यारोहण ने साहित्य संबंधी प्रतिबन्ध उठा दिये और उस अपेक्षाकृत मुक्त वातावरण से पहला लाभ उठाने वाला ग्रन्थकार काराम्जिन[1] था। १८०२ में उसने "यूरोप का सन्देशवाहक" नामक अपना "रिव्यू" निकाला। कैथेरिन के शासन-काल में ही वह मॉस्को आया था और जर्मन तथा अंग्रेजी साहित्यों का अध्ययन कर स्विट्ज़रलैण्ड, लन्दन और पेरिस आदि की उसने यात्रा की थी। लौटकर अपने ही निकाले मॉस्को जर्नल में उसने अपने यात्रा-वृतान्त "रूसी यात्री के पत्र" नाम से प्रकाशित किये। इंगलैण्ड और स्विट्ज़रलैण्ड का हिमायती होने के कारण उसे प्रजातान्त्रिक शासन पसन्द था और उसने उसके पक्ष में लिखा भी काफी। साहित्य में उसकी देन विशेषत: सरल स्वाभाविक गद्य की है। अपने "रिव्यू" में उसने साहित्य और आलोचना के लिए काफी स्थान दिया। फिर उसने सरल जोरदार गद्य में बारह जिल्दों में "रूस का इतिहास" लिखा। साहित्यिक गद्य का उसका इतिहास निश्चय ही परिमार्जित रूप था जिसमें न विदेशीपन की बू थी और न रूढ़िवादिता के रोड़े थे पहली बार रूसी गद्य में लिखे ग्रंथ को सफलता मिली और उस इतिहास ने रूसियों के सामने रूस को खोलकर रख दिया। स्वयं पुश्किन को इस इतिहास ने प्रभावित किया और अपने "बोरिस गोदुनोव" के लिए उसने वहीं से प्रेरणा पाई।

राष्ट्रीय महत्त्व का पहला रूसी कवि क्रिलोव[2] था। उसका रचनाकाल काफी पहले से आरम्भ होकर एलेग्जैण्डर प्रथम की मृत्यु के बाद तक है। उसके नाटक काफी सफल हुए यद्यपि उनमें टिकाऊ गुणों की कमी थी। १८०५ में उसने नैतिक कहानियाँ लिखनी शुरू कीं और अपनी मृत्यु तक बराबर "फेबुल" लिखता रहा। उसकी प्रारम्भिक कहानियाँ ला-फोतेन-की नैतिक कहानियों की अनुवाद थीं। जिनमें उसने उस फ्रांसीसी कवि के छंद का ही प्रयोग किया। उस अनुवाद के साथ ही उसने स्वयं भी कहानियाँ गढ़नी शुरू कीं, यद्यपि उसे उनके लिए भी प्रेरणा ईसप और ला फोन्तेन की कहानियों से ही अधिकतर मिलीं। उसका अनुवाद भी वास्तव में सीधे अनुवाद नहीं बल्कि मूल के ऊपर वे स्वतन्त्र कथाएँ हैं। क्रिलोव ने मूल को हृदयंगम कर उसे सर्वथा नया करके उस पर अपने व्यक्तित्व की छाप डाल दी है। ला फोन्तेन की फ्रेंच सर्वथा रूसी, नितान्त राष्ट्रीय हो गई है। एक बार क्रिलोव को पढ़कर कोई मूल की कल्पना नहीं कर सकता। नीति-सम्बन्धी कहा-

---

१. Nikolay Mikhailovich Karamzin (१७६६-१८२६); २. Ivan Andreyevich Krylov (१७६८-१८४४)

नियों का लेखक मूलतः व्यंग्यकार होता है परन्तु क्रिलोव व्यंग्यकार होता हुआ भी प्रधानतः कवि था। कहीं-कहीं तो कविता के आधार से उठकर समर्थ-व्यंग्य पाठक के चित्त को पकड़ लेता है। उदाहरणतः "किसान और नदी" वाली कहानी में किसान नदी के पास उसकी बाढ़ से अपने नुकसान की शिकायत करने जाते हैं, पर जब वहाँ पहुँचकर उसके पानी में वे अपनी चीजें तैरते हुए देखते हैं तब एक दूसरे पर नजर डालते हैं, सिर हिलाते हैं और घर लौट जाते हैं। भला शिकायत किस से करें। क्रिलोव की कहानियों का व्यंग्य तात्कालिक राजनीतिक पृष्ठभूमि पर खूब उतरता है। नदी वाला व्यंग्य स्वयं रक्षक की भक्षक वृत्ति को चरितार्थ करता है। अनेक बार तो उसकी कहानियाँ फ्रांसीसी राज्यक्रांति, नैपोलियन का रूस पर आक्रमण, विएना की कांग्रेस आदि के व्यंग्यपूर्ण प्रतिबिम्ब बन गई हैं सिंह वाली कहानी में एलेग्जेंडर प्रथम की शिक्षा पर व्यंग्य है। उसमें सिंह अपने बेटे को शिक्षा के लिए ईगल (गरुड़) के पास भेजता है, जिससे वह अन्त में घोंसला बनाना सीखता है। अनेक कहानियाँ रूसी न्याय की कमजोरियों पर व्यंग्य करती हैं। जैसे एक में किसान जब अपना मुकदमा भेड़ के विरुद्ध लोमड़ी के सामने रखता है तो लोमड़ी उल्टे उसी को अपराधी एलान करती है। इसी प्रकार साहित्य पर सरकारी प्रतिबन्ध का व्यंग्य उसने उस कहानी में अंकित किया है जिसमें बिल्ली के पंजे में पड़ी बुलबुल को गाने का प्रोत्साहन है। एक दूसरी कहानी में बड़ी गम्भीरतापूर्वक भेड़ों से कहा जाता है कि आक्रान्ता होने पर भेड़िये को वे निकटतम मजिस्ट्रेट के पास घसीट ले जायें। इस प्रकार रूसी साहित्य आरम्भ से ही जनपरक है, अपनी सरकार से मोर्चा लेने वाला और वह मोर्चा तब तक चलता है जब तक कि वह सरकार बदल कर सर्वथा जनवादी नहीं हो जाती।

क्रिलोव द्वारा प्रस्तुत साहित्य का सबसे बड़ा गुण उसकी सुगमता और सरलता है। दुरूहता का उसमें नाम तक नहीं। निरक्षर भी उसे सहज ही समझ सकता है। फलतः उसकी सफलता भी बड़ी व्यापक हुई। उसकी शैली कभी पुरानी नहीं हो सकती, उसका वर्तमान युग-युग का है। जीवन को वह जीवित घटते हुए देखता है और जैसा वह देखता है वैसा ही लिखता भी है। मुहावरेदार अर्थपूर्ण उसकी भाषा में सहज प्रभाव है और कविता उसकी मनोरम है। उसमें गजब की खूबसूरती है।

रूसी साहित्य के विकास में उसकी आन्तरिक राजनीतिक घटनाओं का बड़ा योग रहा। वस्तुतः इन्हीं घटनाओं के फलस्वरूप वहाँ साहित्य में रोमांटिक आन्दोलन का उदय हुआ। नैपोलियन की लड़ाइयों में अनेक रूसी अफसरों को विदेशों में रहना पड़ा था। और जब वे विएना की कांग्रेस (१८१५) के बाद स्वदेश लौटे तो विचारों और नये आदर्शों से उनके दिमाग भरे थे। जीवन को उन्होंने बहुत "सीरियस" तौर से लिया जिससे पुश्किन ने उन्हें "उत्तर के प्यूरिटन" कहा। परन्तु निश्चय ही वे क्रांतिकारी न थे। प्रतिक्रिया की यूरोप में लहर चलाने वाली विएना कांग्रेस और मेटरनिक के सम्पर्क में रहकर वे क्रांति-

कारी हो ही नहीं सकते थे। संस्कृति का नाम अनेक बातों पर पर्दा डाल देता है। उदीयमान क्रांतिकारी प्रवृत्तियों से मुंह मोड़ लेने में यह शब्द सहायक होता है। और उसी संस्कृति के नाम पर इन्होंने "उपकार समाज" नामक संस्था खोली जिसके ध्येय परोपकार, शिक्षा और आर्थिक अध्ययन थे। इसके नेता सेन्ट-पीटर्सबर्ग की शरीर-रक्षक सेना के अफसर थे। परन्तु यह संस्था भी १८२१ में प्रतिक्रियावादी सरकार द्वारा कुचल डाली गई। यद्यपि इसने आगे चल निकलने वाली क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को सहारा दे ही दिया। १८२५ में एलेग्जैण्डर प्रथम के मरने के बाद इतिहास प्रसिद्ध "दिसम्बरी" विद्रोह हुआ। सम्राट् के भाई कान्स्टेन्टीन को गद्दी का अधिकार छोड़ना पड़ा और निकोलस जार[१] बना। १४ दिसम्बर को विप्लव हुआ और फौजें विद्रोही हो उठीं, यद्यपि उसे कुचल डाला गया। अनेकों को फाँसी हुई जिनमें कवि रिलीव[२] भी था।

विद्रोह क्रांति तो न बन सका। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में उसका परिणाम दूरगामी सिद्ध हुआ। राजनीति का स्थान अधिकतर दर्शन ने ले लिया और उदारवादिता रोमैन्टिक आन्दोलन की जननी हुई। इसी रोमैन्टिक प्रवृत्ति के आधार पर रूसी काव्यधारा नयी शक्ति सेफूट पड़ी। पहली बार रूसी जनता को वाणी मिली। रूसी प्रतिभा राजनीति में प्रतिबन्ध पा कला और काव्य की ओर मुड़ी। दिसम्बरी विद्रोह की पूरी विरासत रिलीव को मिली। रूसी कॉमेडी के रूप में रूसी थियेटर पर उसका कुछ कम प्रभाव न पड़ा। रिलीव की शैली मँज चली थी। उसकी प्रतिभा प्रौढ़ हो चली थी कि उसे विप्लव के परिणाम स्वरूप अपने जीवन से ३१ वर्ष की आयु में ही हाथ धोना पड़ा। रिलीव की कविता में निराशावादी करुणा है और इसी रूप में वह उल्लेखनीय भी है। यद्यपि वह १८वीं सदी के शब्दाडम्बर और फ्रेंच मॉडलों की नकल के प्रतिबन्धों से मुक्त नहीं। रिलीव रूसी स्वतन्त्रता के लिए लड़ा था और उस दिशा में वह पहला शहीद था जिसका नाम रूसी इतिहास और साहित्य में अमर हो गया है।

ग्रिवोयेदोव[3] ने स्वयं तो दिसम्बरी-क्रांति में भाग नहीं लिया परन्तु था वह उसी युग का और उसी क्रांति की उपज। उसकी कामेडी "गोरे आत ऊमा" आज भी रूसी साहित्य में बेजोड़ है। ग्रिवोयेदोव पर-राष्ट्रविभाग का अफसर था और तेहरान में रूसी राजदूत था जहाँ उसका खून कर दिया गया। जब उस "कॉमेडी" की हस्तलिपि सेन्ट पीटर्स बर्ग में पहले पहल पढ़ी गई तो उसने साहित्यिक केन्द्रों में उथल-पुथल मचा दी। परन्तु उसका प्रकाशन १८३३ से पहले न हो सका। "गोरे आत ऊमा" पद्य में लिखी गई थी। उसका घटनाक्रम एक ही दिन एक ही घर में समाप्त हो जाता है। घर मॉस्को के एक सरकारी अफसर फामुसोव

---

१. Tsar Nicholas; २. Kondraty Fedorovich Ryleyev (१७८५-१८२६); ३. Aleksander Sergeyevych Griboyedov (१७९५-१८२९)

का है। नाटक मॉस्को के पश्चिम से प्रभावित कृत्रिम जीवन पर कठोर व्यंग्य है। समाज के अन्तरंग को खोलने वाली यह कॉमेडी अमर है। नाटकीय दृष्टिकोण से इसके कुछ अंश अस्वाभाविक हैं, पर यथार्थ पर व्यंग्य के रूप में उसकी शक्ति अमित है। उसका प्रत्येक चरित्र स्वाभाविक है, दृश्यों की कॉमेडी स्वाभाविक है जो तत्सामयिक रूसी समाज को प्रतिबिम्बित करती है, उसके डायलॉग स्वाभाविक हैं। कृति की भाषा अत्यन्त सबल नुकीली सूत्रवत है, स्पष्ट, स्फटिक की नाईं स्वच्छ। उसकी मौलिकता अपरिमेय है, रूसी जीवन की छाप लिए, रूसी मेधा से प्रसूत, आज भी बेजोड़।

इसी काल वासिली जुकोव्स्की[1] हुआ, कवि जिसका रूसी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने जर्मन और अंग्रेजी साहित्य को रूसी भाषा में उतारा। ग्रेकी "एलेजी" और बीर गरके "ल्योनोरे" के अनुवाद ने उसे विख्यात कर दिया। फिर उसने शिलर[2] की "आर्लीन्स की कुमारी" का भी रूसी भाषा में अनुवाद किया। अनेक अन्य जर्मन कवियों की कृतियाँ भी जुकोव्स्की ने अपनी भाषा में प्रस्तुत कीं और उनके ऊपर अपने व्यक्तित्व की छाप डाली। उसने १८४८-५० में होमर की "ओडिसी" का भी, अनुवाद किया। उसने फ्रांस के जादू को जो रूसी जबान पर प्रतिबन्ध का काम कर रहा था उड़ा दिया।

जब तक रूसी भाषा यूरोपीय भाषाओं के घातक बन्धन से मुक्त हो चुकी थी। आवश्यकता इस बात की थी कि कोई और रूसी भाषा के मिठास को साहित्य में घोल दे, उसके राग को ध्वनि पर साध कर अलाप दे। वह कार्य पुश्किन को करना था, रूसी भाषा और साहित्य के अप्रतिम जादूगर को। पुश्किन आया और तब जब अभी "क्लासिकल" और "रोमेंटिक" के बीच समर ठना था। दोनों की परिभाषाओं में लोगों को आपत्ति थी। प्रत्येक साहित्यकार इन्हें अपनी-अपनी परिभाषा देता था। पुश्किन के लिए जुकोव्स्की ने मैदान साफ कर दिया था और जब उसने रूसी भाषा को राष्ट्रीय साहित्य देना शुरू किया, अपने "मॉडल" सामने रखे तो ये झगड़े अपने आप शान्त हो गये।

पुश्किन[3] का जन्म मास्को में १७९९ की २६ मई को हुआ था। उसका घराना प्राचीन था। माता की ओर से उसे नीग्रो (हबशी) रक्त मिला था (उसकी परनानी पीटर महान् के नीग्रो हैनिब्ल की कन्या थी)। बचपन में ही उसने विविध साहित्यों का गहरा अध्ययन कर लिया। उसकी स्मरणशक्ति गजब की थी और वह जो कुछ पढ़ता उसके दिमाग पर नक्श हो जाता। स्कूल के दिनों में वह चुपचाप पढ़ता गया, बे-अन्दाजा, अन्धाधुंध। उस काल उसे वोल्तेयर की कविता से बड़ा स्नेह था। पहली पद्य रचना उसने फ्रेंच में की, फिर रूसी में। उसकी उस काल की रचनाओं तक में उसकी अपनी वह वाणी

---

१. Vasily Andreyevich Zhukovsky (१७८३-१८५२); २. Schiller;
३. Aleksander Sergeyevich Pushkin (१७९९-१८३७)

उतर पड़ी जिसके लिए पीछे वह प्रसिद्ध हुआ। उसकी भावी शक्ति का अन्दाज उसी काल रूस के यशस्वी साहित्यिकों डेर्ज़्हाविन, काराम्जिन, जुकोव्स्की को लग गया और उन्होंने उसे उत्साहपूर्वक मेटा भी। जुकोव्स्की तो उसके स्कूल में जाकर उसे अपनी कविता सुनाया करता था। जब पुश्किन ने अपने स्कूल जीवन के संस्मरण "जस्कोर्सिलो के संस्मरण" पढ़े तब जुकोव्स्की के उत्साह की सीमा न रही। ये कविताएँ १८१५ अर्थात् पुश्किन के सोलहवें वर्ष से पूर्व ही लिखी जा चुकी थीं। उनकी स्वाभाविकता ने बायरन के "आवर्स ऑव आइ-डिल्नेस" को तिरस्कृत कर कर दिया। दोनों के नाज़ो-अन्दाज में जमीन-आसमान का अन्तर था। पुश्किन का भविष्य उसके इन संस्मरणों में नाच उठा। उसने भाषा में एक नई टकसाल खड़ी कर दी जो सर्वथा रूसी थी, सर्वथा उसकी अपनी।

और जब १८२० में उसने अपनी कविता "हस्लान और लुदमिला" प्रकाशित की तब उस पर जमाना टूट पड़ा। हस्तलिपि की स्थिति में ही उसे पढ़कर रूसी साहित्य के पेशवा उस पर लुट चुके थे और उन्होंने उसे अब समान भूमि पर योग्यता की अपनी ऊँचाई पर स्वीकार कया। जुकोव्स्की ने तो पहला ही अंक सुनकर उसे अपनी तस्वीर भेंट करते समय उस पर लिखा—"उस शिष्य को जिसने अपने गुरु को पराजित कर दिया।" क्लासिकल कवि बाव्युश्कोव ने कहा—"ओफ ! शैतान ने क्या ग़ज़ब लिखना शुरू किया है।" रूसी लोकविश्वासों का यह पहला काव्यांकन था। सचित्र, सबल, अद्‌भुत। कुछ आलोचकों ने उसकी तीव्र भर्त्सना भी की, उसके कथानक को लेकर कि उसने अशिष्ट ग्राम्य किसान को चमचमाते रूसी ड्राइंग रूम में पहुँचा दिया। कविता में 'पैशन' न था, व्यंग्य न था, पर थी वह तरुण, अल्हड़, कामुक, स्वच्छन्द। सबने जाना कि एक रूसी नौजवान "मुँह में सोना भरे, आँखों में अरुणोदय लिये" दुनिया को पुकार रहा है।

वह हस्सार होना चाहता था, पर न हो सका। तब वह पराष्ट्रविभाग में अफसर हो गया। उदारवादी तरुणों की गोष्ठी में वह उठने-बैठने लगा। उसे "दिसम्बर" आन्दोलन से भी सहानुभूति थी यद्यपि वह स्वयं उसमें भाग न ले सका। कुछ काल बाद उसका दक्षिण में तबादला हो गया और उसने काकेशस और क्रीमिया की सैर की, जिसकी छाप उसकी कृतियोंपर पड़ी। इन्हीं दिनों उसने अंग्रेजी और इटैलियन लिखी और बाइरन तथा अद्रेशेनिए से प्रभावित हुआ। इन्हीं दिनों जो उसने अपना "काकेशसका कैदी" लिखा तो उस पर "चाइल्ड हेरोल्ड" का स्पष्ट प्रभाव झलका। उस कविता में काकेशस साफ उतर आया। क्रीमिया की प्रेरणा से उसने "बागचीसराय का स्रोता" लिखा, जिसमें एक तातार खान और उसकी ईसाई गुलाम की कथा है। खान की पुरानी प्रेयसी ईर्ष्यावश गुलाम प्रेयसी को मार डालती है और खान स्वयं उसे भी पानी में डुबा कर मरवा डालता है। उसी दक्षिणी इलाके में पुश्किन ने अपनी कुछ अमर कविताएँ लिखीं, जिसमें उसकी प्रसिद्ध "पुस्तक विक्रेता और कवि की बातचीत" भी थी। इस कविता की चार पंक्तियों के लिए तुर्गनेव

ने कहा था कि यदि अपनी सारी कृतियों के बदले इनको वह लिख पाता तो अपने को धन्य मानता। इसी संग्रह में उसकी कविताएँ "जिप्सी" "ओनेगिन" का आरंभिक भाग "बोरिस गोदुनोव" और "महर्षि ओलेग" "डाकू भाई" आदि थीं।

"जिप्सी" अत्यन्त लोकप्रिय हुई। उसका नायक आलेको जिप्सियों के गिरोह में शामिल हो जेम्फीरा से विवाह कर लेता है जो दूसरे पुरुष को प्यार करने लगती है। आलेको दोनों को मार डालता है। उसकी पत्नी का पिता, जो अपनी पत्नी की ओर से समान घटना का शिकार है, आलेको को अपने गिरोह से निकालते हुए कहता है—"हमें छोड़कर चला जा, मनस्वी तरुण। हम बनैले जीव हैं। हम कानूनों के कायल नहीं, हम बदला नहीं लेते, दण्ड नहीं देते। न तो हम रक्तपात करते हैं, न चाहते हैं। हम खूनीके साथ नहीं रह सकते। तू बनैले जीवन के लिए नहीं बना है। केवल अपने लिए तू आजादी चाहता है। हम शर्मीले और नेकर्दिल हैं, तू बद है, मनमानी करने वाला। जा, चला जा, विदा, आमीन।" इसमें जिप्सी जीवन, डेरों आदि का अनूठा वर्णन है।

"बोरिस गोदनोव" की कथा पुश्किन ने काराम्जिन के इतिहास से ली और उसका नायक उस डेमित्रियस को बनाया जिसने "भयानक" ईवां की मृत्यु के बाद अपने को उसका हतपुत्र घोषित किया। यह नाटक है। नायक गद्दी हासिल कर लेता है; उसकी प्रेयसी उसे प्यार इसलिए करती है कि वह जार का बेटा है। पर भेद खुल जाता है। और वह उसे त्याग देने का संकल्प कर लेती है। तब हारा नायक शर्म से शक्ति पाकर चीख उठता है—"मैं वंचक हो सकता हूँ पर मैं बादशाह होने के लिए ही जन्मा हूँ। मैं प्रकृत बादशाह हूँ और मैं तुम्हें ललकारता हूँ—भला बदल दो मेरी स्थिति। चाहो तो जो कुछ मैंने तुमसे कहा है सब से कह दो। कोई तुम्हारी बात का विश्वास न करेगा।" प्रेयसी मारीना उसके साहस और निर्भीकता से विजित हो जाती है। "बोरिस गोदुतोव १८३१ में प्रकाशित हुआ। धीरे धीरे उसके "ग्राफ नूलिन", "कोलोम्ना की झोंपड़ी" और "पोल्तावा"निकले। पहले दोनों में रोमेंटिक परिस्थितियों का अंकन था, "पोल्तावा में पीटर महान संबंधी काव्य" १८२९ में पुश्किन फिर काकेशस की ओर गया और वहाँ उसने अनेक मधुर लेख लिखे। १८३१ तक उसके "ओनेगिन" का अन्तिम अंक भी समाप्त हो गया।

"ओनेगिन" उपन्यास है, पुश्किन की लेखनी का जादू, रूस का पहला उपन्यास, जिसका नायक युजीन ओनेगिन है। अनेक आलोचकों की राय में उस उपन्यास की जोड़ का रूसी साहित्य में दूसरा नहीं। इसमें टॉलस्टॉय का यथार्थ है, तुर्गनेव की कलाकारिता। ओनेगिन, नायक सेन्ट पीटर्सबर्ग का साधारण स्थिति का आदमी है। पिता सरकारी नौकर है जो कर्ज करके तड़क-भड़क के साथ रहता है। ओनेगिन जमाने के अनुसार शिक्षित है, लन्दन में सिला सूट पहनता है, फ्रेंच बोलता है, "मजुरका" नाच लेता है। सब विषयों पर बोलता है, जब बातचीत का विषय गंभीर हो जाता है तो अपने अज्ञान छिपाने के लिए

यदाकदा एक आध शब्द बोल देता है। समाज का प्रतिबिंब है। पिता के मर जाने पर चचा की जायदाद पा कर देहात में जाता है। लेन्स्की जर्मनी से आकर उसका एक परिवार से परिचय कराता है जिसमें दो कुमारियाँ हैं जिनमें से छोटी को वह स्वयं प्यार करता है। उसका नाम ओल्गा है। तातियाना बड़ी बहन है। उसका सा यथार्थ चरित टॉल्सटॉय का जीवन-अध्ययन और तुर्गनेव की कला भी नहीं सिरज सकी। वह रूसी नारी की प्रतीक है। तातियाना ओनेगिन से प्रेम करने लगती है और जब अपना प्रेम व्यक्त करती है तो कविता उसका पानी भरती है। आलोचकों का कहना है संसार के काव्यक्षेत्र में ऐसी सरल और हृदयग्राही आत्माभिव्यक्ति और कहीं नहीं। कहते हैं, यदि पुश्किन ने केवल यही लिख दिया होता तो संसार के कवियों में वह अनूठा हो गया होता। वास्तव में तातीयाना का वह पत्र रूसी ही लिख सकता था और रूसियों में भी पुश्किन ही। ओनेगिन उससे कहता है कि वह उसे प्यार नहीं कर सकता, प्यार के लिए वह बना ही नहीं। पर नाच में वह ओल्गा की ओर आकृष्ट होकर लेन्स्की की चुनौती पर उसे डुएल में मार डालता है, फिर चला जाता है। तातियाना उसका इन्तजार करने के बाद सेन्ट पीटर्सबर्ग के एक धनी से ब्याह कर लेती है। ओनेगिन जब वहाँ पहुँचता है तो बुरी तरह उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है पर वह उससे साफ कह देती है कि उसके हृदय में अब भी ओवेगिन का ही निवास है पर वह अपने पति को धोखा नहीं दे सकती। बस कहानी यहां खत्म हो जाती है। "ओनेगिन" पुश्किन की प्रौढ़ तम कृति है, सर्वथा उसी की सी। काव्य रूप में लिखा यह उपन्यास अद्भुत है।

पुश्किन ने अपने अल्पकालिक जीवन में और भी कितनी रचनाएँ कीं, कविताएँ, नाटक और कहानियाँ लिखीं, "दुब्रोव्स्की", "कप्तान की बेटी", "आंधी", "पिस्तौल की गोली" "किसान-महिला", "हुकुम की रानी" आदि। इनमें अन्तिम अत्यन्त लोकप्रिय हुई। उसकी रचना "मिश्री" दिलचस्प कहानी है। उसने अनेक बैलड भी लिखे—"पोप और बाल्दा की कहानी", "मारचेन", "मृत-जारित्सा", "सोने का मुर्गा", "मछलीमार और मछली की कहानी "वर"। "पीतल का घुड़सवार" भी उसकी अच्छी काव्य रचना है। "काजबेक का मठ" के बाद उसने "पैगम्बर" नाम की बड़ी प्रौढ़ सर्वथा असामान्य कविता लिखी।

१८३७ में पुश्किन मरा या मारा गया। पत्नी के कारण उसे डुएल लड़ना पड़ा और उसी चोट से सैंतीस वर्ष की आयु में वह मर गया। छोटी उमर में मर कर भी उसने रूसी साहित्य को अमर कृतियाँ प्रदान कीं। जीवनकाल में भी उसका इतना प्रभाव था कि रूसी साहित्य के दिग्गज—काराम्जिन, जुकोव्सकी, गोगोल—उसे घेरे-घेरे फिरते थे। पुश्किन रूस का राष्ट्रीय कवि था। उसकी प्रतिभा का भेद उसकी सार्वभौमिकता है। वह कवि है, यथार्थवादी कवि, अद्भुत लिरिक कवि। उसने रूसी जबान को विदेशी प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया। वह असाधारण कलाकार था और उसकी रची आकृतियाँ संगमरमर की

की प्रतिमाओं सी स्पष्ट और सुघड़ हैं। वह पार्थिव था, सर्वथा मानव, इसी से रूसी कवियों में सबसे महान्। उसकी कविताओं का निवास रूसी हृदय में है। रूसी तरुणों की जबानपर उसकी पंक्ति-पंक्ति है। लेनिन पुश्किन की कविताएँ पढ़कर उमड़-उमड़ पड़ता था।

: ३ :

लेरमोन्तोव[1]

बैरन देल्विग[2] पुश्किन का मित्र था और उसका सहृदय आलोचक भी। उसने भी कविता लिखी। वह १८३१ में पुश्किन से पहले ही मर गया। उसी परंपरा में याजिकोव[3] बारातिन्स्की,[4] वेनोवितिनोव, पोलेजाव आदि ने भी अपनी रचनाएँ कीं। ये सभी लिरिक कवि थे। पर वस्तुतः पुश्किन के रिक्त स्थान पर बैठनेवाला लेरमोन्तोव था, रूसी साहित्य का सुन्दरतम लिरिक कवि। उसका जन्म १८१४ में, हिगेल की मृत्यु के चार वर्ष बाद, मार्क्स के जन्म के चार वर्ष पहले हुआ। प्रोफेसरों से झगड़ा कर उसे मॉस्को विश्व-विद्यालय छोड़ देना पड़ा। बीस वर्ष की आयु में वह हस्सार सेना में आफिसर हो गया और तब उसका जीवन आँधी की तरह उठा। आज यहाँ डुएल, कल अफसरों की नाराजगी, परसों जार्जिया को तबादला नवगोरह सेन्ट पीटर्स बर्ग, काकेशस, फिर सेन्ट पीटर्सबर्ग, फिर-फिर काकेशस, और अन्त में साधारण बात के लिए १८४१ में वहीं डुएल से मृत्यु २७ वर्ष की अल्पायु में।

और इसी बीच वह रूसी साहित्याकाश का अप्रतिम नक्षत्र बन गया। अपने काव्यो-पन्यास "इन दिनों का नायक (हीरो)" में उसने अपना ही चरित्र गाया है। वह कठिन मित्र था यद्यपि उसका हृदय तरल था स्नेह से भरा आँधी-सा उसका जीवन था, उसमें व्यवस्थान थी। पर उस में भाव था, तरल आवेग प्रवाह था, अकृत्रिम उल्लास था। उसनें अपनी कृतियों में समसामयिक जीवन की उत्कट आलोचना की। जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती गई उसकी अभिमान की मात्रा भी बढ़ी और एक दिन दुर्दैव का सामना करना ही पड़ा।

महत्वाकांक्षी जीवन असफल होने से खीझ गया था। और उसे सबसे शिकायत थी, सबसे झगड़ा था। इसी से वह जीवन से भी विरक्त हो उठा। वह अपनी कृत्तियों में समाज से बदला लेता था। समाज उसे काकेशश भेजकर उससे बदला लेता था। फिर भी उसकी रचनाओं में निराशा का कहीं संकेत नहीं।

---

१. Mikhail Yurevich Lermontov (१८१४-४१); २. Baron Anton Antonovich Delvig (१७९८-१८३१); ३. Nikolay Mikhaylovich Yazykov (१८०३-४६); ४. Evgeny Abramovich Baratynsky (१८००-४४)

लेरमोन्तोव भी पुश्किन की भाँति मूलतः लिरिक कवि था। अधिकाधिक व्यक्ति-मूलक स्वकीय। परन्तु पुश्किन के विपरीत वह सच्चा रोमान्टिक था। पुश्किन की ही भाँति अल्पायु में ही उसने भी फ्रेंच में पद्य लिखने शुरू किए। उसे पुश्किन की मृत्यु संबंधी कविता से ख्याति मिली। जिसमें उसने उस महाकवि को खून के प्यासे समाज का शिकार बताया। रचना का शब्द-शब्द कठोर था। उसके अविरल प्रवाह में गजब की चोट थी। एक-विचार में उसने इसी शक्ति से अपने समाज पर प्रहार किया। इसी प्रकार नेपोलियन का भस्मावशेष पेरिस ले जाए जाने के अवसर पर जो कविता लिखी उसमें भी तरल तीखापन था कि जिन फ्रांसीसियों ने जीवनकाल में उसे त्याग दिया वे अब मरने पर उसकी राख पूज रहे हैं।

परन्तु लेरमोन्तोव की ख्याति इन कविताओं पर अवलंबित नहीं। उसने अपने समकालीनों से कुछ न लिया। न पूर्ववर्तियों से ही, न ही उसने विदेशी प्रतीकों को ही अपना आदर्श बनाया। उसने अपने लिए आप राह बनाई और बिना झिझक के उसी पर निरन्तर चलता रहा। लिखा भी उसने उन्हीं विषयों पर जिन्हें उसने आरम्भ में चुन लिया था। उसका चुनाव रोमेंटिक था। उसकी रचना—दानव—सबसे अधिक जानी हुई है। उसमें एक नारी के प्रति दानव का प्रेम वर्णित है। नारी काकेशस की है। और अंकन के रंग विविध हैं। कभी मलिन न होने वाले, सतत उज्वल शैतान कहता है कि मैं वह हूँ जिसे कोई प्यार नहीं करता, प्रत्येक जन जिसे गाली देता है। अपनी प्रयेसी से जब वह अपना प्रणय निवेदन करता है तब भाव और भाषा सौन्दर्य में होड़ करते हैं। मूर्ति धारण कर लेते हैं। और पंक्ति के बाद पंक्ति अनूठी ताजगी लिए रस की हिलोर बनकर हृदय को आप्लावित करने लगती है। काकेशस की पृष्टभूमि का चित्रण तो इसमें पुश्किन से कहीं सबल है, कहीं चमत्कारी।

'दान' के अतिरिक्त कुछ अन्य और कहानियाँ लेरमोन्तोव ने काव्यबद्ध कीं—इस्माइल बे, हाजी अब्रेक, ओरशा। पहली दोनों कहानियों की पृष्ठ भूमि भी काकेशस की उपत्यका ही है। उसका 'मत्सिरी-नौसिखा'-सर्वांग सुन्दर कृति है। इसमें मठ में मरते एक अभागे यतीम का अपराध का स्वीकरण 'कन्फैशन'' है। जिसमें वह बाहर की उस पुकारती हुई दुनियाँ के समृद्ध निसर्ग और कमनीया नारी के रुदन का हृदय विदारक कोमल, करुण, अभिराम वर्णन है। काकेशस की भूमि जैसे सजीव होकर अपनी कमनीय आकृति खोलती जाती है। काकेशस का इतना शालीन अंकन लेखनी ने शायद कभी नहीं किया।

''दानव और मत्सिरी'' की परंपरा में ही जार ईवां वासिलिएविच का गान भी है, उन्हीं की भाँति मनोरम शरीर रक्षक सेना का सिपाही एक सौदागर की पत्नी का अपमान करता है। सौदागर उसे ललकारता है और घूसों से मार डालता है फिर प्राण दण्ड भोगता है। कविता लोक कथा के आधार पर उठकर कुछ ऐसे सरल, तरल, यथार्थ, रोमां-

चक दृश्य उपस्थित कर देती है कि उस दिशा में वह रूसी साहित्य में बेजोड़ हो जाती है।

इनके अतिरिक्त लेरमोन्तोव ने कुछ अन्य लिरिक भी लिखे—'पाल', फरिश्ता', 'प्रार्थना'—जो रूसी बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं। उसके रोमेंटिक स्पर्श के नीचे जीवन है, यथार्थ रोजमर्रा का जीवन, काँपता, इठलाता, उदास, विषाद भरा, कुचला। उसके वर्णन ज्वलंत हैं, अभिराम, फोटो के से सच्चे। पहाड़ों जंगलों का तो वह अप्रितम चित्र-कार है। वर्णनात्मक प्रतिभा में वह बाइरन सा लगता है पर बाइरन लेरमोन्तोव के मुका-बले कल्पना में कितना कंगाल है। लेरमोन्तोव उससे कहीं ऋद्ध रोमेंटिक है।

लेरमोन्तोव की भाषा आमफहम है, साधारण नागरिक की तरह जो कवि स्वयं अपने नित्य के जीवन में बोलता होगा, उसमें कहीं कृत्रिमता नहीं, कहीं दुविधा नहीं, कहीं दुर्गमता नहीं। जहाँ कजाकमाता अपने बच्चे को लोरी सुनाती है वहाँ घर-बाहर का जीवित चित्र खड़ा हो जाता है, ऐसा जैसा वह माता देखती है। भाषा वैसी ही है जैसी वह बोलती-सुनती है, जिसे बच्चा भी समझ लेता है। बोरोदिनों जो लड़ाई का वर्णन करता है वह कोई लड़ाका ही कर सकता है। निश्चय ही लेरमोन्तोव की मछलियाँ कभी ह्वेलों की बोली नहीं बोलतीं। लगता है, प्रकृति स्वयं उसकी कलम उठा लेती है और लिखने लग जाती है, लेरमोन्तोव बीच में नहीं आता। पुश्किन तक की शैली को हम सराहते हैं, वाह-वाह कह उठते हैं पर लेरमोन्तोव की शैली तो हमारे सामने से हट जाती है। दृश्य अपने आप बोल उठते हैं, प्रत्यक्ष, मूक और मुखरित। पुश्किन की भाँति लेरमोन्तोव की प्रतिभा बहुमुखी नहीं, पर उसमें व्यंजना, रसपाक, ऋद्ध अंकन प्रभूत है। पुश्किन के साथ ही रूसी राष्ट्रीय गायन का वसन्त निझर गया।

उसके बाद उस परंपरा का बस एक ही कवि हुआ कोल्त्सोव[१] उसीका समकालीन, रूसी लोक कवियों में सबसे महान्। उसका पिता मवेशियों का छोटा-मोटा रोजगार करता था। एक दिन मॉस्को के एक तरुण के हाथ कोल्त्सोव की कविताएँ लग गयीं और उसने चन्दा कर के उन्हें छपवाया, बगैर किसी बनावट या भावुक शब्दजाल के। कोल्त्सोव किसानों का जीवन खींचकर रख देता है। उसका जीवन जैसे भीतर से निकलता आता है। उसने अपनी लिरिकों में फसलों की बुवाई और कटाई, कुटिया करने वाली कुमारी को अपने अंतरंग की व्यथा, किसान के हृदय के राग और जीवन के स्वप्न सभी जाग उठे। वह लरेमोन्तोव की मृत्यु के बस साल भर बाद ही मारा गया। और उसके साथ ही रूसी तत्सा-मयिक कविता का यवनिकापात हो गया। फिर जब यवनिका उठी तो रंगमंच पर रूसी गद्य का प्रवेश हो चुका था।

---

१. Aleksyey Vasilyevich Koltsov (१८०८-४२)

: ४ :

गद्य का युग

गद्य-युग के प्रारम्भिक काल का महान् कलाकार निकोलेस गोगोल[1] था। गोगोल उपन्यास और नाटक दोनों क्षेत्रों का प्रतिनिधि साहित्यकार था। वह लघु रूसी था, कजाकिस्तान के पोल्तावा का पर १८२९ में वह उक्रेन छोड़कर सेन्टपीटर्सबर्ग चला गया। रंगमंच सम्बन्धी कुछ असफल प्रयत्न कर वह यूनिवर्सिटी में इतिहास का प्रोफेसर हो गया। यद्यपि उस कार्य में भी उसे सफलता न मिली और तब वह साहित्य की ओर मुड़ा।

पुश्किन से मित्रता होते ही उसे प्रेरणा मिली। उसने पहले कुछ स्केच लिखे—"खेत की सांझ" फिर "मीरगोरोद"। गोगोल रोमेंटिक प्रवृत्ति का था, कल्पना और स्वप्न उसके रोम-रोम में बसे थे। परन्तु अन्य रूसी साहित्यकारों की ही भाँति उसकी रोमेंटिक प्रवृत्ति को भी यथार्थ का योग सुलभ था। साथ ही उसमें हास्य की भी प्रतिभा थी। हास्य की सभी मात्राओं की—ठठाकर हाँसने से लेकर मुस्कराने और व्यंग तक की।

उसकी पहली पुस्तक की पहली कहानी में रूस का असाधारण यथार्थ रूप प्रस्तुत है। दक्षिण की दुपहरी में चमकती धूप में बालों भरी फसल खड़ी है, मेले में गेहूँ बेचा जा रहा है, मेले का शोर सही बू-बास के साथ सर्वत्र उठ रहा है। गोगोल अपने प्रारम्भिक प्रयास में ही अपनी विशेषता लिये उतरा। यह पहली पुस्तक उसकी "लाल जाकेट" थी। इसमें ही गोगोल की अलौकिक की भावना अंकित हो गई जो निरन्तर उसकी कृतियों में बनी रही। अप्सराएँ, चाँद चुराने वाला दानव, डाइनें, जादूगर सभी इसमें उतर पड़ते हैं। "मीरगोरोद" की कहानियाँ—"प्राचीन-पन्थी जमींदार" और "दो ईवानों का झगड़ा"—में यथार्थ लहराने लगा है। "तारास बुल्बा" इसी प्रकार अपनी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर कजाक जीवन साँचे में ढालकर रख देता है। इन कहानियों के अतिरिक्त उसकी कहानियों के दो संग्रह—"अरावेस्क" (१८३४) और "कहानियां" (१८३६) और निकले। इनकी भूमि अलौकिक से हट कर हास्य मिश्रित तथ्य पर निर्मित होती है। यद्यपि जहाँ तहाँ असाधारण का योग भी बना है। "गाड़ी" में यथार्थ और हास्य का मिश्रण है और "ओवर कोट" में यथार्थ और करुणा का।

इन्हीं दिनों गोगोल रंगमंच के लिये लिखता रहा पर वहाँ दिक्कत सेन्सर से पास होने में थी यद्यपि उसका "तहकीकात" या "इन्स्पेक्टर जेनरल" पास हो गया जो आश्चर्य की बात थी। यह जार की कृपा का परिणाम था। नाटक रूसी नौकरशाही के कृत्यों पर

---

१. Nikolay Vasilyevich Gogol (१८०९-५२)

प्रखर व्यंग्य है। इसका प्रत्येक चरित्र झूठा, बेईमान, बुद्धू और हृदय-हीन है, प्रत्येक साहित्यिक कला का नमूना है।

नाटक खेले जाने के बाद गोगोल सदा के लिये रूस छोड़ रोम में जा बसा। वहीं उसने अपनी सुन्दरतम और रूसी भाषा की अंतिम कृति "मृत आत्माएँ" प्रकाशित कीं। इसकी प्रेरणा भी "इन्स्पेक्टर जनरल" की ही भाँति उसे पुश्किन से ही मिली थी। गजब की कहानी थी। रूसी जमींदारों के सर्फों (खेत के कृषक-मजूर) को मृत आत्माएँ कहते थे। दस साल पर इनका मुआयना होता था और मरे हुए जीवों पर टैक्स लगता था। बीच में कोई इन्हें नहीं पूछता था। कहानी के नायक चिचिकोव को एक नई बात सूझी। उसने सोचा कि क्यों न मृत जीवों को खरीद कर सेन्ट पीटर्सबर्ग या मॉस्को में किसी बैंक में रहन कर दिया जाये। आखिर दूसरे दशक तक तो उनके विषय में कोई पूछेगा नहीं। ये मृत आत्माएँ कहीं क्रीमियाँ में हैं और चिचिकोव उनकी खोज में फिर रहा है। कहानी तीन भागों में सम्पन्न होने वाली थी परन्तु दूसरे ही भाग के बाद जब गोगोल की धार्मिक प्रेरणा ने उसे बुरा माना तो समाप्त द्वितीय भाग को उसने दो-दो बार आग में डाल दिया। पुस्तक का पहला भाग और अपूर्ण दूसरा प्रकाशित हुए। इनके प्रकाशन ने शिक्षित रूस पर गजब का असर किया। सचमुच गजब की पुस्तक है "मृत आत्माएँ" , बच्चों को हँसा देने वाली, तरुणों को चिन्तनशील कर देने वाली, बूढ़ों को रुला देने वाली। इसमें "सेक्स" कहीं न था, प्रेम का स्पर्श कहीं न था। साहित्य में यह क्रांति थी क्योंकि प्रणय का नशा कहानी के लिये स्वाभाविक अनिवार्य भूमि माना जाता था।

उपन्यास-कला के साथ ही साथ गद्य के क्षेत्र में आलोचना का भी विकास हुआ। काराम्जिन ने ही साहित्यिक आलोचना की बुनियाद डाल दी थी अब कुछ और भी आलोचक हुए जिन्होंने उसका विकास किया। प्रिन्स व्याजेम्सकी उनमें प्रथम था। परन्तु पहला पेशेवर जर्नलिस्ट पोलेव्या था जिसने आलोचना के क्षेत्र में नितान्त पैनी कलम चलाई। परन्तु आलोचना की रुचिपूर्ण शैली का वास्तविक निर्माता बेलिन्सिकी[१] था। पोलेव्या की ही भाँति वह भी निम्न वर्ग का था। और आत्म-शिक्षण के बल पर बढ़ा था। उसका जीवन बड़े संघर्ष का था। कंगाल, रुग्ण आवश्यकताओं से भरा। सेन्सर ने उसे बड़ा परेशान किया पर वह अपना काम कर गया और जागृत आलोचना की नींव पड़ गई। फिर तो उसे अगली पीढ़ी के गोन्चारोव, दॉस्त्वाएव्स्की, हैर्ज़ेन और दूसरों ने और आगे बढ़ाया। बेलिन्सकी ने पुश्किन, लेरमोन्तोव, गोगोल, ग्रिबोयेदोव, जुकोवस्की आदि की व्याख्या और समीक्षा की। उसके विचारों का साका चल गया। उसने जीवन को कला के ऊपर रखा। कला कला के लिए—वाले सिद्धांत का वह प्रबल शत्रु था।

---

१. Vissarion Grigoryevich Belinsky (१८१०-४८)

बेलिन्स्की की परंपरा का सीधा रुख समाजवादी था जिसका शद्ध विकास एलेग्जेंडर हैर्ज़ेन[१] के साहित्य में हुआ। हैर्ज़ेन का असली नाम याकोव्लेव था। वह समृद्ध रूसी पिता का पुत्र था। पिता ने जर्मनी में विवाह किया पर रूस लौटकर विवाह को जायज़ नहीं करवाया जिससे बच्चों को माता का उपनाम गृहण करना पड़ा। हैर्ज़ेन ने इसी से अपना जर्मन नाम ही चलने दिया।

हैर्ज़ेन अपने जमाने का बड़ा प्रभावशाली व्यक्तित्व था। असाधारण महान्। फिर वह अप्रतिम संस्मरण-लेखक भी था। यूनिवर्सिटी में उसने गणित की शिक्षा पाई पर उतरा वह साहित्य के क्षेत्र में। उसका उपन्यास "दोष किस का है?" साहित्य में असामान्य स्थान रखता है। अपने विचारों के प्रचार के कारण वह पहले पर्म फिर व्यात्का को निर्वासित कर दिया गया। फिर तो उसने १८४७ में सदा के लिए रूस छोड़ दिया। पहले वह पेरिस गया। फिर लन्दन गया। वहाँ उसने "दि बेल" का सम्पादन किया। हैर्ज़ेन समाजवादी था। मार्क्स का समकालीन वह सामूहिक स्वत्व का प्रचारक था और निहिलिस्टों का पूर्ववर्ती। उसके संस्मरण—"मेरा अतीत और मेरे विचार"–शैली के आकर्षण में बेजोड़ ह। १८-७० में वह मरा, रूसी साहित्य और इतिहास दोनों में अमर होकर।

स्लाव-विशिष्ट-चेतना को "स्लावोफिल" कहते हैं। इस प्रवृत्ति में विश्वास करने वालों का विचार है कि पश्चिमी सभ्यता सड़ गई है, उसका उद्धार रूसी किसान (स्लाव) करेगा। इस विचार का नेता रूस का असाधारण सुसंस्कृत और शिष्ट व्यक्ति होम्याकोव[२] था, द्वन्दवादी कवि, अतीतवादी। त्यूचेव[३] और ईवाँ अक्साकोव[४] भी उसी परंपरा के कवि थे। सेर्गे अक्साकोव हैर्ज़ेन की ही भाँति अपने विचारों के अनुकूल संस्मरण लिखने में सिद्धहस्त था। वह ईवाँ-कवि[५]-का पिता था जो १७९१ में जन्मा था और १८५९ में मरा। अपनी मृत्यु के तीन वर्ष पहले उसने अपना "पारिवारिक तवारीख" प्रकाशित किया जो अट्ठारहवीं सदी के अन्त और एलेग्जेंडर के युग के इतिहास के लिए बड़े महत्व का है। उसमें गद्य की चिरस्मरणीय शैली में चरितात्मक निबन्धों का संग्रह है। उसने जिन कृषकों का चित्र खींचा है वे उसके विचारों के अनुकूल ही निरक्षर होकर भी आचारवान् और स्तुत्य हैं, आधुनिकता और पश्चिमी सभ्यता से अविकृत, प्रकृति के स्वच्छ "मॉडल" और यह सारा जिस गद्य में प्रस्तुत है उसका अविरल प्रवाह अप्रतिम है। फिर भी इसकी शैली भाषा की पच्चीकारी है।

---

१. Aleksander Ivanovich Herzen (१८१२-७०); २. Aleksyey Stepanovich Khomyakov (१८०४-६०); ३. Fedor Ivanovich Tyutchev (१८०३-७३); ४. Sergey Timofeyevich Aksakov (१७९१-१८५९); ५. Ivan (१८०६-५६)

: ५ :

सुधार का युग

बेलिन्स्की की मृत्यु के बाद ७ वर्ष का समय (१८४८-५६) रूसी साहित्य के लिए बड़ा घातक था, भयानक जार निकोलस का शासन काल था और सेन्सर ने गजब की छान-बीन शुरू की थी। विशेषतः इसलिए कि पेरिस की १८४८ की क्रांति ने रूसी राजनीति और साहित्य के नरम-गरम दोनों दलों पर समान रूप से अपना असर डाला था।

फिर भी साहित्य को जीवित रखने और नई चेतनाओं का प्रचार करने के लिए कुछ साहित्यकार बराबर प्रयत्नशील रहे थे। इनके एक दल का नाम 'पेत्राशेव्त्सी' था, इसी नाम के नेता के नाम पर नेता परराष्ट्र-विभाग में अफसर था। शुक्रवार के दिन ये लोग मिलते और विविध विषयों पर परामर्श-आलोचना करते। दल क्रांतिकारी नहीं था पर पुलिस को जो उसका पता चला तो उस पर आफत ढा दी गई। उनमें से २१ को फाँसी का हुक्म हुआ इन्हीं में दॉस्त्वाएव्स्की भी था। अन्त में ये लोग प्राणदण्ड से मुक्त कर इधर-उधर जेलों में भेज दिए गए या निर्वासित कर दिए गए। १८५५ में जार निकोलस के मरने पर अलेग्जेंडर द्वितीय सम्राट बना और रूस में सुधारों का युग शुरू हुआ—'सर्फ' स्वतन्त्र कर दिए गए, न्याय, स्थानीय स्वतन्त्रता आदि सभी में कुछ न कुछ प्रगति हुई और एक नया जीवन नया सवेरा लिए रूस की जमीन पर उतरा। नए दिन ने रूसी साहित्य में जो नव सृष्टि आरम्भ की उसका दूरगामी प्रभाव हुआ और संसार के साहित्य में रूस अधिकारी बनकर आया। संसार के उपन्यास-क्षेत्र में शीघ्र ही रूस के असाधारण उपन्यासकार बेजोड़ अग्रणी बने तुर्गेनेव, टॉल्सटॉय और दॉस्त्वाएव्स्की।

ईवां तुर्गेनेव[1] ने पहले पद्य लिखना शुरू किया पर शीघ्र ही मोपासां की भाँति उसने जान लिया कि वह उसका क्षेत्र नहीं। १८४७ में किसान-जीवन के आधार पर उसने "समकालीन" लिखा "खोर और कालीनिच" भी उसी साल लिखा गया जो बाद में (१८५२ में) "खिलाड़ियों के स्केच" का अंग बना।

पुश्किन की ही भाँति तुर्गेनेव को भी सरकार ने दो-दो बार दक्षिण की ओर निर्वासित कर दिया जो उसके लिए प्रचुर उपादेय सिद्ध हुआ। वहाँ उसने जीवन को प्रत्यक्ष देखा। फिर वह पश्चिमी यूरोप चला गया। पेरिस और जब-तब रूस आता-जाता रहा। उसने अधिकतर सुधार-युग से पहले के रूस का अंकन किया, पर जब वह समसामयिक रूस का अपनी कृतियों में आधार बनाकर चला तब सैद्धान्तिक झगड़े खड़े हो गए। उसका "रूदिन" १८६० में, "पिता और पुत्र" "शिष्टों का नीड़" १८५९ में, "साँझ को" १८६० में, "पिता

---

१. Ivan Sergeyevich Turgenev (१८१८–८३)

और पुत्र" १८६२ में, और "धुवाँ" १८६७ में लिखे गए। जब उसने अपने उत्कर्ष के समय यूरोप का भ्रमण किया तब उसे बड़ा आदर मिला। यूरोप के साहित्यकार और आलोचक उसकी ओर युग-प्रवर्तक के रूप में देखने लगे। फ्लाबर्ट उससे चमत्कृत हो गया, जॉर्ज सैण्ड ने उसे शिष्य की शिष्टता से भेंटा, टेन ने उसकी कृतियों को सोफोक्लीज की कृतियों के बाद कला का अनुपम निखार माना। उसने यूरोप को सर्वथा जीत लिया।

रूस में तो उसको तत्काल लोकप्रियता मिली। उसके "शिष्टों का नीड़" ने उसे अमित ख्याति दी। केवल उसके "पिता और पुत्र" ने उसकी ख्याति को बड़ी क्षति पहुँचाई। क्रांतिकारी दृष्टिकोण ने उसके नायक बाजीराव को सर्वथा निन्द्य ठहराया और प्रतिगामियों को वह लुसिफर (शैतान) का अवतार तथा उपन्यास निहिलिज्मका प्रचार जान पड़ा। गरज कि तुर्गनेव दोनों दलों के क्रोध का शिकार हुआ।

तुर्गनेव मूलतः कवि है और उसने रूसी गद्य के क्षेत्र में वह किया जो पुश्किन ने पद्य के क्षेत्र में किया था—उसने शैली के "मॉडल" प्रस्तुत किए। उसकी शैली में पुश्किन की सी ही स्वच्छता और स्पष्टता थी। उसकी कृतियों में देहात सम्बन्धी घटनाएँ और किसान जीवन के चित्र यथार्थ पर अवलम्बित हैं और इन सबसे ऊपर कलाकार की सुरुचि में वह अपना प्रतीक आप था। इस रूप में उसका "खिलाड़ियों के स्केच" प्रमाण है। उसका "बेजिन मैदान" जिसमें बच्चे एक दूसरे से डरावनी कहानियाँ कहते हैं, यूरोपीय साहित्य में आज भी अप्रतिम है। उसी प्रकार उसके "गायक" "मृत्यु" आदि सभी असाधारण कृतियाँ हैं। "रूदिन" बड़ी करुण कृति है यद्यपि समय ने उसके प्रभाव को आज कमजोर कर दिया है। उसका "चश्मे का पानी" पद्य की मुखरता लिए हुए है। "पिता और पुत्र" विपरीत आलोचकों के बावजूद भी अद्भुत कृति है, कला की दृष्टि से अनूठी। "कुँवारी भूमि" में तुर्गनेव ने क्रांतिकारी आन्दोलन अंकित किया जिसमें वह सफल न हो सका। फिर भी अपने जीवन के उत्तर काल में, जो उसने "गद्य में कविताएँ" प्रस्तुत कीं तो उनसे उसने ध्वन्यात्मक माधुर्य का स्रोत खोल दिया। गद्य में यदि कहीं गायन की सामग्री किसी को देखनी हो तो तुर्गनेव की इस कृति में देखें।

रूस के लिए तुर्गनेव महान् था और यूरोप के लिए महत्तर। क्रांति की नयी धारा ने उसकी लोकप्रियता को झकझोर दिया और टॉल्सटॉय तथा दॉस्त्वाएव्स्की की सशक्त रचनाओं ने तुर्गनेव की नाजुक कलाचातुरी पर प्रचुर आघात किया यद्यपि स्रष्टा की कलात्मक रचना प्रणाली में वह आज भी अनोखा है।

गोन्चारोव[1] उच्चवर्गीय था और उसने संसार के भ्रमण के बाद यात्रा-सम्बन्धी अपने पत्र लिखे। उसके तीन उपन्यास—"रोजमर्रा की कहानी" "आब्लोमोव" और "भूपात"

---

१. Aleksander Ivanovich Goncharov (१८१२–९१)

उसकी यात्रा के बाद प्रकाशित हुए। "आब्लोमोव" इनमें सबसे सुन्दर कृति है। जो १८५८ में प्रकाशित हुई। "आब्लोमोव" ड्रेसिंग गाउन और स्लिपर पहन कर ड्राइंग रूम में रहने वाले पीटर्सबर्ग के श्रीमानों का प्रमादी रूप प्रस्तुत करता है।

इसी काल कुछ और भी गद्यात्मक रचनाएँ हुईं जिन्होंने रूस के साहित्य और इतिहास पर आलोचना में अपनी छाया डाली। इनमें अराजक बकनिक तो रूसी निहिलिज्म का अवतार ही था। ग्रिगोरिव ने कला का सम्बन्ध रूसी राष्ट्रीय भूमि से स्थापित किया था और उसका प्रभूत प्रभाव दॉस्त्वाएव्स्की पर पड़ा। कात्कोव पहले हेरजेन और बकूनिन की परंपरा में था। पहले वह दर्शन का अध्यापक था परन्तु उसे यूनिवर्सिटी अपने विचारों के कारण मजबूरन छोड़ देनी पड़ी। फिर उसने जर्नलिस्ट का जीवन अख्तियार कर लिया और "मास्को समाचार" का सम्पादन करने लगा। पोलैण्ड के विद्रोह के अवसर पर जो उसने राष्ट्रीय विचारों का नेतृत्व किया उससे हेर्ज़ेन के प्रकाशन "दि बेल" पर घातक चोट पड़ी। परन्तु कुछ ही दिनों बाद कात्कोव संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी बन गया। स्लावोफिल परंपरा के दो अन्य आलोचक स्त्राखोव और दानिलोव्स्की थे, दोनों ही दॉस्त्वाएव्स्की की ही भाँति ग्रिगोरिव के शिष्य थे जिन्होंने साहित्य में पाश्चात्यता का विरोध किया।

इस दिशा में रेडिकल विचारों का कर्ण वेरनिशेव्स्की[१], दोब्रोल्यूबोव[२] और पिसारेव[३] के हाथ रहा। चेरनिशेव्स्की ने जान स्टुअर्ट मिल के विचारों का अनुवाद किया, कला और यथार्थता के पारस्परिक सम्बन्ध पर एक पुस्तक प्रकाशित की सात वर्ष की कड़ी कैद झेली और २० वर्ष निर्वासित जीवन व्यतीत किया। उसने उत्कट समाजवादी प्रचारात्मक आलोचना द्वारा अभौतिक दर्शन की रीढ़ तोड़ दी और अपने उपन्यास—"क्या करना है ?" द्वारा अपनी और अगली पीढ़ी पर असाधारण प्रभाव डाला। इस उपन्यास का विषय निहलिज्म है। दोब्रोल्यूबोव जो २४ वर्ष की आयु में ही मर गया, उसी यथार्थवादी दृष्टिकोण का था - उसकी प्रधान आलोचना यह थी कि रूसी साहित्य आब्लोमोव की चित्तवृत्ति से जकड़ गया है, किचात्स्की, पिचोरिन और रूदिन सभी आब्लोमोव हैं। पिसारेव भी यथार्थवादी दार्शनिकता में चेरनिशेव्की का ही अनुयायी था और सौन्दर्य को जीवन से अलग देखने का विरोधी था। उसके विचार से कला का एकमात्र कर्त्तव्य जीवन को व्यक्त करना है। पिसारेव ने तुर्गेनेव के 'बाजारोव' को उपन्यासकार की ही प्रतिमूर्ति मानी जो तुर्गेनेव पर कुछ ओछा व्यंग्य न था। पिसारेव भी अल्पायु में ही मरा।

---

१. Nikolay Gavrilovich Ehernyshevsky (८०८–८९); २. Nikolay Alcksandrovich Dobrolyubov (१८३६–८१); ३. Dmitry Ivanovich Pisarev (१८४०–७८)

ब्लादिमिर सोलोनीव[१] [illegible] साहित्य का एक असाधारण निर्माता है। वह कवि, दार्शनिक और समालोचक तीनों था। समालोचना के क्षेत्र में उसने निहायत स्वाधीन वृत्ति का आचरण किया। वह राजनीतिक दलों की चेतनाओं से पृथक् था। उसे पुराने स्लावोफिलों से सहानुभूति थी परन्तु कात्कोव के से राष्ट्रीयतावादियों पर उसने गहरी चोट की। उसकी शैली शक्तिम और मार्मिक थी और महान् विचारकों की भाँति वह अपने युग से आगे था। उसे रूससे अगाध प्रेम था और वह ईसाई धर्मका बड़ा हिमायती था, उसके आचार विधान में ईसाई आचार की गहरी पुट है। उसी की परंपरा में मिखेल साल्तिकोव भी था।

साल्तिकोव[२] ने "शेद्रिन" नाम से लिखा और प्रतिभा तथा संसार के प्रधान व्यंग्यकारों के नाते रूसी साहित्य में उसका असामान्य स्थान है। उसकी व्यंग्यात्मक चोट क्रिलोव, गोगोल और ग्रिकोयेदोव सबसे भिन्न थी, उन सबकी शक्ति से परे। उसने बहुत लिखा। उसकी कृतियों के संग्रह ग्यारह जिल्दों में प्रकाशित हुए। उसमें अनेक साहित्यिक अमर रचनाएँ हैं। आरम्भ में ही वह व्यात्का निर्वासित कर दिया गया, जहाँ उसे आठ-नौ वर्ष रहना पड़ा। वहाँ उसके अनुभव ने बड़ी समृद्धि अर्जित की। उसने उसका प्रकाशन (१८५६-५७) में अपने "प्रांतीय जीवन के स्केच" में किया। उसकी दृष्टि सर्वत्र पहुँची, श्रीमानों के जीवन से लेकर किसानों और कैदियों के जीवन तक और उसके व्यंग्य की प्रखर चोट प्रस्तुत विषय पर गहरी पड़ी। रूसी साहित्य में शायद उसका सा व्यंग्यकार दूसरा नहीं हुआ। अधिकतर उसके व्यंग्य का प्रहार मध्यवर्ग, ऊँचे नीचे अफसरों और रूढ़ियों के ऊपर हुआ। उसकी सबसे ख्यातिलब्ध अमर कृति "मूल प्रमाणों के आधार पर एक नगर का इतिहास" है। इसमें ग्लोपोव नामक एक मूर्ख नगर का वर्णन है। जहाँ के लोग इतने मूर्ख हैं कि वे अपने से भी अधिक मूर्ख व्यक्ति को अपना शासक स्वीकार करते हैं। ग्लोपोव का अंतिम शासक वह है जो नगर को बैरक बना देता है। स्पष्टत: व्यंग्य निकोलस प्रथम पर है।

साल्तिकोव की एक दूसरी अद्भुत रचना "पाम्यदूरी" है। जिसमें उसने उच्च पदस्थ अधिकारियों के अन्तरंग को चीर कर खोल दिया है। कला की दृष्टि से व्यंग्य की भूमि पर कहीं कोई ऐसी कृति सुघड़ न उतरी। साल्तिकोव नितान्त मौलिक है, व्यंग्य की भूमि पर खड़ा अतिमानव। साल्तिकोव की ही परंपरा में लेस्कोव[३] था जिसने पहले "स्तेबनित्स्की" नाम से लिखा। लेस्कोव का स्थान भी रूसी आलोचना-साहित्य में पहली पंक्ति में है। उसमें प्रतिभा है, हास्य और विनोद है, रंग और भावनाओं की गहराई है, साथ ही कल्पना की समृद्धि भी है। परन्तु यह सब होते हुए भी शायद लेस्कोव के बराबर दूसरा आलोचक उपेक्षित न हुआ। १८६० में उसने अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ किया।

---

१. Vladimir Sergeyevich Solovyev (१८५३–१९००); २. Mikhail Evgrafovi Saltykov Shchedrin (१८२६–८९); ३. Nikolay Semenovich Lyeskov

परन्तु १९०२ तक यद्यपि सारे रूस ने उसकी कृतियों को पढ़ा, किसी ने उसका मूल्यांकन न किया और वह उपेक्षित ही रहा। इसका एक विशेष कारण था। आज का समाज अब वर्ग विशेष या गिने चुने लोगों का न रहा और उसकी इकाइयों ने जो फैलकर एक ठोस सिल-सिला कायम किया है उस पर वही ठहर सकेगा जो उससे अपनी आत्मीयता स्थापित कर सके। लेस्कोव समाज को उथल-पुथल कर देने वाली तत्कालीन रूसी विचार-धाराओं के संघर्ष से अलग था। इसी से वह उपेक्षित भी हुआ। कार्य के उपसंहार के रूप में उसने एक निर्माणात्मक परिशिष्ट जोड़ा। वह सुधारवादियों की आलोचना में लिखने वाला पहला उपन्यासकार था। उसकी आलोचना केवल नकारात्मक ही न होकर क्रियात्मक भी थी।

लेस्कोव की ही भाँति पिसेम्की[1] भी असामान्य प्रतिभा से सम्पन्न था और उसी की भाँति उसने भी नये आचार विचारों, सुधारों और सुधारकों की आलोचना की। पिसेम्स्की फिर भी लेस्कोव से कहीं अधिक तिक्त और निराशावादी था। उसने समसामयिक सुधारवादी जनसत्ता की प्रवृत्ति को बुरी तरह धिक्कारा यद्यपि वह स्वयं पुराणपंथी न था उसका 'क्रुद्ध सागर' (१८६२) क्रांतिकारी और रेडिकल रूस पर भयानक आघात था जिसका परि-णाम उसे भी लेस्कोव की ही भाँति भोगना पड़ा। दोनों साहित्यिक संसार से जैसे बहिष्कृत हो गये। ओस्त्रोव्स्की[2] का सम्बन्ध अधिकतर रंगमंच के इतिहास से था जहाँ उसने मध्यवर्ग के जीवन और नागरिक तथा निम्नवर्गीय अफसरों, सौदागरों आदि का समसामयिक रूप प्रस्तुत किया। वह एक अर्थ में आधुनिक रूसी यथार्थवादी कॉमेडी और ड्रामा का विधाता था। उसने रंगमंच को उसकी पुरानी मान्यताओं से मुक्त कर प्रायः सर्वथा आधु-निक बना दिया।

इस सुधारवादी युग की साहित्यिक प्रगति का अंकन ग्रिगोरीविच के उल्लेख बिना समीचीन नहीं हो सकता। वह भी उपन्यासकार था और यद्यपि उसकी सर्जनात्मक शक्ति पिसेम्स्की और लेस्कोव के स्तर पर नहीं रखी जा सकती, निस्संदेह रूसी साहित्य के किसान-परक कृतियों का वह प्रायः प्रवर्तक था। उसने तुर्गनेव से भी पूर्व किसानों के जीवन का जो चित्रण पहली बार किया तो उसके पाठक उस जगत के प्रति सहृदय हो सहानुभूति से सराबोर हो उठे। अपने 'माँझी' में उसने तुर्गनेव की ही भाँति चित्रण में कुशलता प्रदर्शित की और अपने 'देहात की सड़कें' में तो उसने पूर्ण जमाने का बड़ी चातुरी से चित्र खींचा। विनोद, हास्य, करुण और नैसर्गिक सहानुभूति की तो उसने एक नयी धारा ही बहा दी।

---

१. Aleksyey Feofilaktovich Pisemsky (१८२०-८१); २. Aleksander Nikolayevich Ostrovsky (१८२३-८६)

: ६ :

टॉल्सटॉय और दॉस्त्वाएव्स्की

तुर्गनेव ने रूसी साहित्य को यूरोपीय धरातल पर खड़ा कर दिया था। उससे रूसी साहित्य को असाधारण आदर मिला। उसी युग ने टॉल्सटॉय[१] और दॉस्त्वाएव्स्की[२] को भी उत्पन्न किया जो अपने देश के साहित्य के विशाल स्तम्भ होते हुए भी वस्तुतः विश्व-साहित्य के कर्णधार बन गये। उपन्यासों के क्षेत्र में उनके नाम आलोचक की लेखनी सम्भ्रम लिख जाती है। दोनों विचारवादी थे, दोनों ही क्रांतिकारी, दोनों सुधारक और असाधारण कलाकार थे।

टॉल्सटॉय ने तो धर्म और जीवन के क्षेत्र में भी एक वैयक्तिक क्रांति की थी। वह खोजी था, असाधारण खोजी। उसकी आँखें गरुड़ की आँखें थी जिससे समाज में कहीं कुछ छिप न सकता था। वह सुकरात की परंपरा में जन्मा था और जिस दिन से उसने अपने साहित्यिक अथवा चिन्तक जीवन का आरम्भ किया उस दिन से लेकर अपनी मृत्यु के दिन तक कभी कोई बात ऐसी अंगीकार न की जो केवल पारस्परिक थी। वह विचारों को, कथित सत्यों को, पूर्णतः विशिष्ट करके देखता था और उसके अनुसंधान की इस वृत्ति में एक नयी विश्लेषक चेतना का आविर्भाव हुआ। उसकी इस विश्लेषक शक्ति के साथ निर्माता की शक्ति का भी गहरा योग था। उपन्यासों की दुनिया में उसने चिन्तन का राज स्थापित किया परन्तु कला को उपेक्षित न होने दिया, उसकी महानता केवल रूसी साहित्य की निधि नहीं संसार के साहित्य का गर्व है। उपन्यास के क्षेत्र में तो वह संसार का सबसे बड़ा कलाकार है। कुछ अजब नहीं कि लेनिन का सा क्रांतिकारी उसकी कृतियों पर रीझ गया हो और गोर्की के सामने उसने उन्हें आदर्श रूप में धर दिया हो।

टॉल्सटॉय की रचनाएँ उसके अनुसंधान की परिणाम हैं, उसकी चेतनाओं और अनुभूतियों का कलात्मक निरूपण, अपने "बचपन,कैशोर और तारुण्य" में उसने इन तीनों विकास-कालों पर दृष्टिप्रक्षेपण किया है। इसे हम दृष्टि-प्रक्षेपण इसलिये कहते हैं कि वह केवल अतीत पर सिंहावलोकन नहीं वरन् उसका एक प्रकार से पुनरांकन है। जीवन की उन आरम्भिक मंजिलों से हटते ही वह प्रौढ पुरुष के वातावरण के अनुसंधान में लगा, "जमींदार की सुबह" में उसने जमींदार का जीवन खोलते हुए दिखाया, जो वास्तव में उसका अपना जीवन था, कि वहाँ सिवा असन्तोष के और कुछ न था। फिर वह काकेशस की ओर भागा और वहां से शक्ति पाकर सूझ के साथ उसने अपनी अद्भुत कृति "कज्जाक" रची फिर वह दुनियाँ की ओर लौटा और क्रीमिया के युद्ध में शरीक हुआ। उसने उस को युद्ध के दर्शन

---

१. Count Leo Nikolayevich Tolstoy (१८२८-१९१०); २. Feodor Dostoyevsky

पर एक दृष्टि दी। क्रीमिया के युद्ध से लौटकर वह भ्रमण के लिये निकला; विदेशों की यात्रा करता रहा। वहाँ से लौटकर उसने विवाह किया और गृहस्थ बना। गृहस्थ के जीवन का सुख उसने अपने "गार्हस्थ्य सुख" में व्यक्त किया। और तब १८६५ में अपना "युद्ध और शांति" लिखा। "दिसम्बरी" आन्दोलन पर लिखने की उसकी उत्कट इच्छा थी और "युद्ध और शांति" जैसे उसने उसकी भूमिका के रूप में लिख दी। उपन्यास उसके अपने ही संस्मरणों पर आधारित था, उसका जगत् काल्पनिक किंचित् न था। पहली बार ऐतिहासिक उपन्यास में उस ने अनुभूत सत्य को शरीरी बनाया। लगता है जैसे उस उपन्यास के पात्रों के बीच हम स्वयं जा पड़े हों, उनको हम जानते हों और उसकी पृष्ठभूमि हमारा अपना ही अनुभूत अतीत हो। उसमें उसने एक समूची पीढ़ी का अंकन किया। उसके "पियर बेजुखोव" के रूप में उसकी अपनी खोज मूर्तिमान हुई और रोस्तोवों के चरित सा पारिवारिक जीवन का सुन्दर निरूपण तो साहित्य में कहीं मिलने का नहीं और न "नताशा" का सा मनोरम व्यक्तित्व ही। तुर्गेनेव की नारियाँ अपने रूप में कलाकार की चित्रण कुशलता में अपनी सानी नहीं रखतीं, सही, पर टॉल्सटॉय की नताशा के मानव सौन्दर्य को कोई देखे और उसके विधाता कलाकार टॉल्सटॉय की निपुणता को। युद्ध और शांति ऐतिहासिक उपन्यासों की दुनियां में, चिन्तन और कला के क्षेत्र में बेजोड़ है।

टॉल्सटॉय का दूसरा संसार प्रसिद्ध उपन्यास "अना केरेनिना" (१८७५-७६) में प्रकाशित हुआ। इसमें वेलास्क की भाँति एक विशाल कन्वेस पर उस असाधारण कलाकार ने सेन्ट पीटर्सबर्ग और देश के उच्च वर्ग के समसामयिक जीवन को उतार दिया। "अना केरेनिना" का नायक लेविन स्वयं टॉल्सटॉय है। इस उपन्यास में भी टॉल्सटॉय की कला उसकी अन्य कृतियों की ही भाँति रूस की भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर बाहर निकल गयी है क्योंकि इसके पाठक को भी क्षण मात्र के लिये क्षोभ नहीं होता कि वह विदेशी कहानी पढ़ रहा है। लगता है, अना प्रत्यक्ष देख रही है, कुछ गुन रही है। अप्रतिम कुशलता के साथ व्रोन्स्की के प्रति अना के प्रेम का उद्‌घाटन और विकास हुआ है। उपन्यास का प्रत्येक दृश्य, प्रत्येक घटना, प्रणय के चढ़ाव-उतार, आखिरी विपद् तक सभी कुछ अद्‌भुत है, यद्यपि सारा सत्य, सुगम और स्वाभाविक है।

अपने "आत्मोद्‌घाटन" में भी टॉल्सटॉय ने अपनी विश्लेषक दृष्टि बरकरार रखी और स्वयं अपने को भी उसमें तार-तार कर दिया। उसे विश्वास हो गया था कि सम्पत्ति ही सारे दुःखों का मूल है। और उसने स्वयं सर्वथा मुक्त हो जाना भी चाहा यद्यपि वह ऐसा न कर सका। उसने तृष्णा का शमन कर लिया था और सम्पत्ति उसके लिये कोई आकर्षण न थी परन्तु पारिवारिक सम्बन्ध उसके मार्ग में बाधक सिद्ध हुए। फिर भी जीवन के अन्तिम दिनों में घर से उसका पलायन सिद्ध करता है कि सम्पत्ति छोड़ने की उसकी इच्छा बनावटी न थी।

"अना केरेनिना" के बाद टॉल्सटॉय ने साहित्य का क्षेत्र कुछ काल के लिये छोड़ दिया। फिर भी वह लिखता रहा। पहले उसने बच्चों के लिये कहानियाँ लिखीं फिर धर्म सम्बन्धी कुछ पेम्फलेट लिखे। १८८६ में वह फिर साहित्य के क्षेत्र में जो लौटा तो उसके हाथ में किसान जीवन का वह सबल निरूपण "अन्धकार की शक्तियाँ" था। फिर एक के बाद एक, उसके "कूत्सेर सोनाता" "ईवां ईलिच की मृत्यु और रिसरेक्शन" आये, एक से एक सुघड़। रिसरेक्शन तो कुछ आलोचकों की दृष्टि में उसकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। टॉल्सटॉय के मरने के बाद भी उसकी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उनमें प्रधान "जीवित लाश" है।

टॉल्सटॉय की कला चिन्तनशील पर सरल और स्वाभाविक है, उसमें क्रांतिकारी का साहस सर्वत्र है और निर्माण के लिये पुकार है। टॉल्सटॉय ने महात्मा गांधी पर कितना गहरा प्रभाव डाला यह उस भारतीय सुधारवादी नेता ने स्वयं स्वीकार किया है। टॉल्सटॉय ने संसार के अन्य महापुरुषों को भी अपनी सूझ और साहस से प्रभावित किया। संसार के साहित्याकाश में तो वह चन्द्रमा की शीतल चन्द्रिका के साथ उदित हुआ।

दॉस्त्वाएव्स्की[1] रूसी गद्य साहित्य में टॉल्सटॉय के बाद सबसे बड़ा व्यक्ति माना जाता है। यूरोप ने, जो तुर्गनेव से प्रभावित था, पहले दॉस्त्वाएव्स्की की उपेक्षा की। उसकी कृतियाँ उपलब्ध भी न थीं परन्तु आज वहाँ के आलोचक साधारणतः स्वीकार करते हैं कि दॉस्त्वाएव्स्की तुर्गनेव से उसी मात्रा में महान् है जिस मात्रा में लियोनार्दा दा विंची फान्डाइक से कला के क्षेत्र में महान् था। यूरोप ने तब अभी सिवा "अपराध और दण्ड" के दॉस्त्वाएव्स्की का और कुछ न जाना था। परन्तु जैसे-जैसे उसकी कृतियाँ पश्चिमी यूरोप की भाषा में अनूदित होती गईं वैसे ही वैसे उसकी सत्ता का बोध लोगों को होता गया। कुछ आलोचकों की दृष्टि में तो वह टॉल्सटॉय से भी बड़ा है। जो भी हो है वह टॉल्सटॉय का एक प्रकार से साहित्य में जवाब, उसका 'एन्टीथेसिस'। टॉल्स टॉय पार्थिव और स्वस्थ का सबल चित्रकार था, दॉस्त्वाएव्स्की असाधारण, अपराधियों, पागलों, रहस्यों का उद्घयिता था। टॉल्सटॉय अपने ही विस्तृत परिवार में सम्पन्न शान्त जीवन बिताता था, दॉस्त्वाएव्स्की दर दर की ठोकरें खाता फिरा, कानून और घृणित दण्ड विधान का शिकार था। पहले उसे प्राण दण्ड की आज्ञा मिली, फिर चार बरस तक साइबेरिया में उसने कठिन कैद की सजा भोगी, छः वर्ष निर्वासित रहा। घर की आर्थिक स्थिति सत्यानाश को पहुँच गई थी, सदा ऋण में रहता था : पुलिस और अधिकारी उसे एक ओर पीसते थे। प्रतिगामी उदारवादी दूसरी ओर उसे गाली देते थे। हजार-हजार विपत्तियों को झेलने वाला, पैसे कपड़ों के अभाव में दिन-दिन रात-रात कलम घिसने वाला, उस लेखनी के अहर्निश श्रम

---

१. Feodor Mikhailovich Dostoyevsky (१८२१-८१)

से भी कुछ कायदे से न कमा सकने वाला दॉस्त्वाएक्की टॉल्सटॉय से इस दिशा में सर्वथा भिन्न था। उस महान् साहित्यकार ने इतनी विपत्ति कहीं कभी न झेली।

दॉस्त्वाएव्स्की की पहली पुस्तक "कंगाल" १८४६ में निकली और उस कृति से यतीमों और अभागों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति का पता चल गया। उसकी दूसरी पुस्तक "मरणागार से भेजे पत्र" में यह मानव सहानुभूति और व्यापक हो उठी। कैद के दिनों पर आधारित यह कृति कारावास के जीवन का अद्भुत उद्घाटन है। उसके शब्द शब्द से मानव भाव की पुकार उठती है। १८६६ में उस उपन्यासकार का प्रसिद्ध उपन्यास- "अपराध और दण्ड" प्रकाशित हुआ जिसने उसे प्रभूत ख्याति प्रदान की। मनोविज्ञान का साहित्य में इतना सही निरूपण और निर्वाह कम हुआ है। आशा, भय, घबड़ाहट इसके विशेष स्थल हैं। वृद्धा का खून करके मौक्वेथ स्वरूप रास्कोलिनोव की जो मनः स्थिति हो जाती है वह व्यक्त करना कठिन है। राजुमिखिन जब वारांगना के सामने घुटने टेक कर कहता ह—"मैं तुम्हारे सामने नहीं झुका हुआ हूँ, मानव जाति की समूची पीड़ा के सामने झुका हूँ" तब जैसे उपन्यासकार अपनी कुल सहानुभूति सारी वेदना में अपने साहित्यादर्श को खोलकर रख देता है। जब दॉस्त्वाएव्स्की ने अपना यह उपन्यास लिखा तब तक यूरोप में अभी "मनोवैज्ञानिक उपन्यास" का पारिभाषिक उपयोग न हुआ था। पर बाद में जिस उपन्यास परंपरा की इस नाम से घोषणा हुई उसके उपन्यास इस "अपराध और दण्ड" के सामने नगण्य हो गये।

"अपराध और दण्ड" के बाद ही 'मूर्ख' (१८६८) का प्रकाशन हुआ। इसका नायक म्विश्किन, जिसकी संज्ञा पुस्तक के साथ ही मूर्ख है, वास्तव में बुद्धिमान मूर्ख है। उसमें व्यंग्य घृणा, अभिमान का अभाव है। उसकी सरलता धूर्तों, झूठों, चोरों और पापों से निरन्तर रक्षा करती है और उन सब पर वह अपने अकृत्रिम व्यक्तित्व की छाप छोड़ता जाता है। उसकी नेकनियती सारी बदी की सफल दवा है। उसमें आचरण का अदभुत माधुर्य है। उसके जवाब में सौदागर रोगोजिन अविनीत तृष्णाओं का गुलाम है। और जिस नताशा को प्यार करता है उसी को मार डालता है। उपन्यास के साधारण चरित्र भी अचरज की सफलता से नक्श हैं। अनेक लोगों को 'मूर्ख' दॉस्त्वाएव्स्की सबसे सुघड़ कृति लगी है।

१८७१ में उसने "भूत" लिखा जो निहिलिज्म के विरोध में प्रस्तुत हुआ। पिछले दशक में निहिलिज्म का भंडा-फोड़ हो चुका था फिर भी अभी अनेक उसका पल्ला पकड़े हुए थे और अपनी आदर्शवादिता के कारण स्वार्थ-साधकों के शिकार हो रहे थे। स्थिति विशेष के परिचय में पुस्तक अतिरंजित कही गई यद्यपि अगली घटनाओं ने "भूत" के दृष्टिकोण की सचाई प्रतिष्ठित कर दी। इसके बाद ही उसने फिर जर्नलिस्ट का जीवन अख्त्यार किया यद्यपि कुछ काल बाद वह फिर अपना 'कारामाजाव बन्धु' लेकर उपन्यास क्षेत्र में

नेक्रासोव[1] जन कवि था और उसने अपनी प्रेरणा सीधे जीवन से ली और जनता के हर्ष-विषाद का उसने काव्यांकन किया। उसकी कविता में मनुष्य और प्रकृति साथ आते हैं। परन्तु प्रकृति शेली, वर्डस्वर्थ की भाँति आदर्श भंडार की भाँति नहीं मनुष्य का मित्र-शत्रु होकर। क्रैब की भाँति वह भी सर्वथा यथार्थवादी है। उसी की तरह उसमें भी करुण रस का प्रभूत प्रवाह है। उसकी सबसे महत्वपूर्ण कृति जनपरक महाकाव्य थी "रूस में सुखी कौन है" इसमें अलौकिक कल्पना की बहुलता है। इसमें भी काफी तीव्र विषाद है, व्यंग्य है, कठोर यथार्थवाद है, प्रकृति-पर्यवेक्षण है, अमित विविधता है। उसकी दो लम्बी कविताओं में साइबेरिया में भेजे जाने वाले दिसम्बरी क्रांतिकारियों की पत्नियों का करुण वर्णन है।

यूरोप की "पारनेसियन" परंपरा के तीन रूसी कवि मइकोव (१८२१-८७) फेत[2] और पोलोन्स्की (१८२०-९८) हैं। ये तीनों राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं से मुक्त हैं। माइकोव क्लासिकल विषयों का प्रेमी है, इटली और पुराने बैलेडों से प्रभावित परन्तु उसकी शक्ति रूसी प्रसंग के चित्रण में है। माइकोव की ठोस मूर्तिवत रूपायनता के विपरीत फेत की कला उसकी काल्पनिक स्वप्निल मायावी शैली में है। उसकी कल्पना उसकी भावना, शब्द योजना सभी नाजुक हैं। पोलोन्स्की की कविता मधुर आकर्षक व्यक्तित्व का भेद खोलती है। उसमें संगीत का माधुर्य है और सादगी है। परन्तु तीनों में से कोई नेक्रासोव के स्तर को न छू सका। उसके मुकाबले तीनों साधारण कवि हैं। हाँ यदि उसके समीप इस काल का कोई कवि पहुँचता है तो वह काउण्ट अलेक्सीटॉल्सटॉय[3] है। वह भी पारनेसियन परंपरा का ही कवि था और नैतिक काव्यत्व से अलग था। यद्यपि कुजमा पुत्कोव के नाम से जो व्यंग्य उसने लिखा वह रूस में घर-घर प्रचलित है। उसने प्रिन्स-सेरेब्रियानी-नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा और रूसी इतिहास के प्रसिद्ध भयानक ईवां युग पर नाटकों की एक ट्रिलोजी भी। इनमें 'भयानक ईवां की मृत्यु' 'जार फयोदोर इवानोविच' और 'जार बोरिस' संग्रहीत हैं जो अकसर खेले जाते हैं और रंगमंच पर अच्छा प्रभाव लाते हैं। परन्तु अलेक्सी टॉल्स्टॉय की ख्याति उसकी लिरिक कविताओं पर अवलंबित है और उसकी बहुमुखी प्रतिभा पुश्किन की याद दिलाती है। उसकी लिरिक सौन्दर्य और माधुर्य की प्रतीक हैं। वसन्त और पतझड़ पर उसने सुन्दर कविताएँ लिखीं। वसन्त के सौरभ ताजगी, प्रेमवेग, प्रभात आदि पर तो उसकी कविताएँ यूरोप के साहित्य में भी अपना सानी नहीं रखतीं।

---

१. Nikolay Alekseyevich Nekrasov (१८२१-७७); २. AfanasiAfanasyevich Shenshin-Fet (१८२०-९२); ३. Aleksyey Kostantinovich Tolstoy (१८१७-७५)

इस साधारणतः सूखे युग में भी कोल्त्सोव की परंपरा में कवि निकितिन हुआ। उसने अपने विषय सीधे जीवन से लिए। क्रीमिया के युद्ध काल मेंउसने जो देश प्रेम सम्बन्धी कविताएँ लिखीं उनसे उसे खासी ख्याति मिली। परन्तु अधिक सफल वह हुआ प्रकृति के वर्णन में। उसकी सूर्यास्त, प्रभात, अबाबीलों के घोंसलों आदि पर कविताएँ अधिक सफल हुयीं। उस काल के दो और कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं जिनकी तब तो काफी उपेक्षा हुई पर जो बाद में काफी पढ़े गए। वे थे स्लुचेव्स्की और अपुख्तिन। इनमें पहला दार्शनिक कवि है और उसकी शैली बोझिल है। अपुख्तिन पारनेसियन, परंपरा का कवि था। १८-८० के बाद रूस में कवियों की बाढ़-सी आ गई। इस काल के कवियों में सबसे महत्व का नादसन (१८६२-८७) था। वह चौबीस साल की आयु में ही यक्ष्मा से मर गया। उसकी मृत्यु के बाद उसकी कविताओं के इक्कीस संस्करण हुए और उनकी १,१०,००० प्रतियाँ बिकीं। दस संस्करण तो उसके जीवनकाल में ही हो चुके थे। नादसन ने युवा-वस्था के विषाद, स्वप्न, निराशा आदि गाए। उसके सामने अन्य कवियों की कृतियाँ लोगों को बड़ी फीकी लगने लगीं। उसकी प्रकृति सम्बन्धी वसन्त, रात, विशेषतः रिवियश की रात पर कविताएँ बड़ी लोकप्रिय हुईं। वे उन्हें बड़ी मादक लगीं।

परन्तु अगली पीढ़ी ने उसकी अवहेलना कर दी। वह वर्तमान काल्पनिक जगत से दूर हटकर यथार्थ के समीप आता जाता था जिसकी आवश्यकताएँ, प्रवृत्तियाँ, प्रेरणा नई थी, अपनी। इस नवीन परंपरा में सर्वथा सावधि के पहले सोलोगुब ब्रूसोव, बाल्मोन्त, इवानोव और बेली ने अपनी रचनाएँ कीं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अलेग्जेण्डर ब्लाक इनमें प्रधान था। रूस के वर्तमान कवियों में उसका स्थान बड़ा ऊँचा है। अपनी सुन्दर-तम कृति "बारह" में उसने क्रांति की आत्मा के गीत गाए। परन्तु रूस इधर निरन्तर आगे बढ़ता गया है और उसकी समाजवादी निर्वर्गवादी परंपरा को नित्य नए कवियों का शक्तिम योग मिलता जा रहा है।

: ८ :

बीसवीं सदी और वर्तमान

तुर्गेनेव और दॉस्त्वाएव्स्की की मृत्यु के साथ एक महान् साहित्यिक युग का अन्त हुआ। उसके बाद का युग साहित्यिक निर्माण के विचार से अन्धकारमय था जो रूस-जापान के युद्ध तक कायम रहा। १९०५ में क्रांतिकारी आन्दोलन की लहर उठी जो धीरे-धीरे अपने जबड़े खोलती प्रथम महासमर के ही समय पुराने रूस को निगल गई।

परन्तु इस बीच कुछ ऐसे साहित्यिकों का प्रादुर्भाव हुआ जो न केवल रूस के लिए अमर हुए वरन संसार के साहित्य पर अपनी छाप छोड़ गए। इनमें प्रधान चेखोव[1] और मक्सिम गोर्की[2] थे। इनके अतिरिक्त गार्शिन, कोज्रलेंको और मेरेज्कोस्की ने भी अपनी प्रतिभा से रूसी साहित्य का कल्याण किया। इनमें चेखोव और गोर्की असाधारण हैं। चेखोव ने मध्यवर्ग और शिक्षित जनता का चित्रण कर रूसी साहित्य की परिधि विस्तृत की और उस साहित्य का खोया हुआ विनोद उसे फिर दिया। गोर्की तो अप्रतिम है। उसने सर्वथा नई भूमि तैयार की और अपनी कृतियों में सर्वहाराओं, अभागों, मजूरों, कंगाल शिल्पियों, ऐरो-गैरों का चित्रण किया। परन्तु उनके विषाद का निराशामय करुण रूप उसने अपने साहित्य में नहीं रखा, और यदि रखा भी तो उन्हें सचेत करने के लिए पृष्ठ भूमि के रूप में जिससे वे अगले संहार और निर्माण का स्वप्न पूरा कर सकें। उसमें कहीं मायूसी नहीं। कहीं बुजदिली नहीं।

गोर्की की कला एक नया सन्देश ले आई, एक नई दुनियाँ लिए जिसकी किसी ने कल्पना तक न की थी। जीवन के प्रति उसके नायकों का रुख उसके पूर्व के सारे उपन्यास-कारों के रुख से भिन्न था। उसके हीरो जीवन में हैमलेट का स्वांग नहीं करते, जीवन की विषमताओं और कठिनाइयों को हल करने के लिए दैन्य नहीं प्रदर्शित करते, न दान की भिक्षा माँगते या आत्मसमर्पण करते हैं। वे जीवन के संघर्ष में बचे हुए वीर हैं इससे वे हेय नहीं हो सकते। उनमें बदला लेने की ताकत और तमीज है।

गोर्की साहित्य का नया विधाता है, नया निर्माता। जीवन का वातावरण अभि-सृष्ट करने, उसके अमिट चित्रण में उसे कमाल हासिल है। और प्रकृति के चित्रण में तो वह जादू का असर पैदा कर देता है । रूसी गद्य साहित्य में पहली बार पुराणपन्थी प्रकृति निरीक्षण से हमारा छुटकारा होता है और हम असल प्रकृति के रूबरू खड़े होते हैं। लगता है जैसे साहित्य में नए प्राण फूँक दिए गए हैं, नई बयार बह गई है। गोर्की की सक्रिय कल्पना के साथ यथार्थ का निरूपण होता है जिसमें मेधा और हृदय दोनों अपना उचित भाग पाते हैं।

चेखोब ने पुरानी परंपरा में लिखा। उसकी भूमि दूसरी जरूर है पर जैसे वह तुर्गेनेव का वारिस है। उसने रूसी अन्धकार युग को अपनी कृतियों में प्रकाशित किया। उसमें यथार्थ जैसे केमरे के लेन्स में उठ जाता है। पर साथ ही वह अप्रतिम कलाकार भी है। उसका निराशावाद मानवता और हास्य के पुट से सदा सह्य हो रहता है। यदि कहीं

---

१. Anton Pavlovich Chekhov (१८६०-१९०४); २. Maxim Gorky (Aleksey Nikolayevich Pyeshkov), (१८६९-१९३९)

ऐसा न होता तो उसके चित्रित जगत का विषाद झेले नहीं बनता, सर्वथा असह्य हो उठता। उसकी कुछ कृतियाँ स्टेज के लिए लिखी गईं और उसने उनमें देहाती जीवन का खरा प्रतिबिम्ब रखा "काका कान्या" इसी प्रकार की उसकी रचना है। उसकी कहानियों की ही भाँति यहाँ भी वही थके, सरल, सुस्त लोग हैं, आशा से रहित, विचारों में कंगाल, परन्तु यहाँ भी ओछे और क्षुद्र जीवन के पीछे मानवता की मिठास है।

रूसी जापानी युद्ध छिड़ने के बाद ही १९०४ में चेखोव मरा। गोर्की उसके दशकों बाद तक लिखता रहा। उसी काल मेरेज्कोव्स्की ने भी लिखा, आलोचना, काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास उसकी ख्यातिलब्ध कृति, गद्य में ट्रिलोजी, "देवताओं की मृत्यु" (नास्तिक जुलियन की कहानी) और "अनार्किस्ट" (अराजक पीटर महान् और उसके पुत्र अलेक्सी की कहानी) और "देवताओं का पुनरुत्थान" (लियोनार्दा दा विंची की कहानी) हैं। इस ट्रिलोजी का अनुवाद प्रत्येक यूरोपीय भाषा में हो चुका है। आलोचना के क्षेत्र में टॉल्स्टॉय, दॉस्त्वाएव्स्की और गोगोल सम्बन्धी उसके ग्रंथ उत्कृष्ट हैं।

रूसी जापानी युद्ध काल में कुप्रिन[१] ने "यामा" लिखकर बड़ा नाम कमाया। वह उपन्यास है भी सुन्दर। अपने दूसरे उपन्यास 'डुएल' और बाद की कृतियों में भी उसने अपनी वर्णन शक्ति पूर्ववत कायम रखी। उसी काल लियोनिद आन्द्रीव ने भी अपनी कहानियाँ और नाटक लिखे जिनमें सुन्दर प्रांजल शैली में निराशावाद अपना दम तोड़ चला।

१९०५ में पहला क्रांति-आन्दोलन अपनी अनन्त साधों और आशाओं के साथ उठा। राजनीतिक दृष्टि से तो वह कुचल दिया गया परन्तु उसके परिणाम स्वरूप जिन प्रवृत्तियों ने साहित्य में पदार्पण किया उनमें लोकवादी आशावादी सबल गोर्की अनुयायी साहित्य परम महत्व का था। १९०५ के राजनीतिक प्रयत्नों का लाभ १९१७ की सफल क्रांति से हुआ।

नए रूस-सोवियत जनतंत्र—की मानव जाति को (साहित्येतर भी) देन उसकी अभिव्यक्ति है, सरल स्पष्ट सबल अकृत्रिम अभिव्यक्ति। सत्य के प्रति उसकी निष्ठा सर्वथा बेजोड़ है क्योंकि गद्य या पद्य समूचे रूसी साहित्य का मूल यथार्थ की भूमि में है। उसकी मानवता, मानव सहानुभूति, हृदय बड़ा व्यापक है, इतना व्यापक कि उसमें अपनी अपरिमित सहानुभूति, बन्धुत्व दया, दान और प्यार द्वारा वह संसार की सारी वेदना को डुबा सकता है।

---

१. Aleksander Kuprin. (१८७०–१९३९)

: ९ :

क्रान्ति के बाद

क्रांति-पूर्व और उत्तरकाल के मैक्सिम गोर्की का उल्लेख ऊपर हो चुका है। उसके अतिरिक्त भी अनेक साहित्यकार हैं जो दोनों युगों में लिखते रहे हैं। कुछ तो सर्वथा नए हैं जिन्होंने उत्तरकाल में ही लिखना शुरू किया। पुराने लेखकों में से जिन्होंने उत्तरकाल में लिखा उनमें से कुछ बोरिल पिलनिएक, इवानिन और लियोनेव हैं। पहले ने "ऊसर साल" दूसरे ने "साइबेरिया की कहानी" और तीसरे ने "आइज़क बैबेल" लिखा। उस काल का एक और उपन्यास "रक्तस्नान रूस" है।

उसके बाद ही प्रोलेतारियन (सर्वहारा) उपन्यासों की रचना विशेष शक्तिमती हुई। जामयतिन बुनिन[१], कुप्रिन[२] आदि भी पहले से लिखते आरहे थे और पीछे तक लिखते रहे परन्तु उन्हें अपने दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन करना पड़ा। क्रांति बाद के उपन्यासों में असामान्यकृति सेराफिमोविच का "लौह वाष्प" है। आलेग्जान्दर फेदेयेव ने "उन्नीस" लिखकर अपना स्थान उत्तरकालीन उपन्यासकारों में ऊँचा किया। उसमें मजूरों की दुनियाँ सिरजी गई। मिखेल शोलोकाव इन पिछले काल के उपन्यासकारों का अग्रणी रहा है। "और डान धीरे बहती है" लिखकर वह अमर हो गया। इस उपन्यास का सारे संसार में प्रचार हुआ। उसका दूसरा उपन्यास है "जोती हुई जमीन"। आलेग्जान्दर एवदेन्की का उपन्यास "मैं प्यार करता हूँ" बड़ा लोकप्रिय हुआ है। उसमें कामिक जीवन की महिमा प्रदर्शित है।

इधर के रूसी उपन्यासकारों में प्रधान इल्या एहरेनबुर्ग है। उसका "पेरिस का पतन" द्वितीय महासमर से सम्बन्ध रखता है और पेरिस के सर हो जाने के बाद के वहाँ के जीवन पर प्रकाश डालता है। रूस की लेखिकाओं में अन्नाकोरावेवा विशेष प्रसिद्ध हुई है। उसने रूस और फिनलैंड के युद्ध के अवसर पर अपना सफल उपन्यास "थ्रशग्रव की लेना" लिखा था। आलेक्सी टॉलसटॉय आज के प्रधान रूसी लेखकों में है। रूस के गृह-युद्ध का बड़ा सुन्दर चित्रण उसने अपने उपन्यास "कलवरी की राह" में किया। उसका उपन्यास "पीटर प्रथम" काफी विख्यात है। इसी पिछले महायुद्ध के समय वाण्डा वासिलेव्स्का ने अपना प्रसिद्ध उपन्यास "इन्द्रधनुष" लिखा था। युद्धकालीन उपन्यासों में वासिलीग्रास-

---

१. Ivan Aleksyeyvich Bunin (जन्म १८७०); २. Aleksander Ivanovich Kuprin (१८७०-१९३९)

मान का "जनता अमर है" अपना स्थान रखता है। इसी प्रकार लिओ सलाविन का "मेरे देश भाई" भी मार्मिक कृति है। पोलेकाव का प्रसिद्ध उपन्यास "शत्रु सेना के पीछे" भी पिछले युद्ध को ही मार्मिक रूप से चित्रित करता है। युद्ध के शीघ्र ही बाद स्तेपानोव का "पोर्ट आर्थर" प्रकाशित हुआ जिसका प्रसंग नाम से ही प्रकट है।

२२. लातीनी (लैटिन-साहित्य)

: १ :

रिपब्लिक-युग

जिस हिन्दी-यूरोपीय-आर्य-शाखा ने उत्तर से आकर इटली के प्राचीनतर निवासियों को भगा दिया, उसे 'लातिन' कहते थे। उन्हीं की भाषा "लातीनी" (लैटिन) कहलाती है। उनके आने के बाद ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी में एशिया माइनर से आकर एक और जाति के उत्तर तिबैर (टाइबर) नद की घाटी में बस गई। वह इत्रुस्कन[१] कहलाती है। उसकी रोम अपनी लिपि और भाषा थी जिन्हें जाति के ही नाम पर इत्रुस्कन कहते थे। कालान्तर में लातिन इनके ऊपर भी हावी हो गए और इटली का इतिहास उन्होंने ही बनाया।

इटली का अधिकतर इतिहास रोम (रोमा) का इतिहास है। इस नगर में इत्रुस्कनों की भी अपनी जनसंख्या थी, परन्तु कालान्तर में लातिन संख्या, बल और महत्त्व सबमें उनसे बढ़कर वहाँ के स्वामी हो गए। रोमा या रोम के मूल का अर्थ है "बहना" जिससे "स्रोततटीय" नगर (रोम) उसका नाम पड़ा। कुछ काल बाद लातिनों का सम्बन्ध ग्रीकों से हुआ और उन्होंने उनसे उनकी वर्णमाला सीख ली। वह इस प्रकार थी A B C D E F Z H I K L M N O P Q R S T V X ई० पू० तृतीय शती में Z के स्थान पर G कर ली गई, पर ई० पू० प्रथम शती में Z फिर लौट आया। जब वही ग्रीक वर्णमाला रोमन कहलाई और भाषा तो लातिनों की होने से "लातीनी" कहलाती ही थी।

पहले तो "इत्रुस्कन" ही रोमन किसानों के स्वामी जमींदार थे, राजा और निरंकुश शासक भी। पर धीरे-धीरे रोमनों ने इनकी शक्ति तोड़ दी और इनके निरंकुश शासकों को भगाकर उनसे शक्ति छीन ली। उस काल की इस लातिन या रोमन वीरता की कुछ कथाएँ प्राचीन लातीनी साहित्य में सुरक्षित हैं। यह बताना कठिन है कि प्राचीनतम लातीनी साहित्य कैसा था परन्तु जो सामग्री उपलब्ध है उससे संकेत मिलता है कि पहले स्वाभाविक ही उसमें प्रकृति के देवताओं के प्रति कहे मंत्रों का प्राचुर्य था और वही आज अनुपलब्ध लातीनी साहित्य की आधार शिला है। लातीनी के प्रारम्भिक साहित्य का एक रूप हमें उसके "विधान के द्वादश पत्रों" (कानून के बारह खाके) में मिलता है। ये ग्रीक आधार से उठे थे।

प्राचीनतम लातीनी साहित्य का कुछ ज्ञान हमें पहली सदी ईस्वी पूर्व के प्रख्यात

१. Etruscan.

राजनीतिज्ञ, कवि और प्रवक्ता सिसेरो[१] की रचनाओं से होता है। सिसेरो स्वयं हुआ तो था रिपब्लिकन (साधारणतः प्रजातंत्र परन्तु रोम में "अभिजातकुलीय-तंत्र") युग (ई० पू० २३०-३०) के अन्त में परन्तु उसकी कृतियों में प्राचीन लातीनी-साहित्य के प्रसंग भी उद्धृत और संरक्षित हैं। उससे पहले साहित्यकार लिवियस आन्द्रोनिकस[२] का पता चलता है जिसने लातीनी में होमर[३] की "ओदिसी" का अनुवाद किया था। उसकी शैली सम नहीं ऊबड़खाबड़ है, "सातुर्नी" छंद में प्रस्तुता उस अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ पश्चात्कालीन वैयाकरणों ने दृष्टान्ततः अपनी कृतियों में उद्धृत की हैं। उस प्राचीन कला के साहित्यकारों की कृतियाँ पाठ्यपुस्तकों के रूप में रोमन स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं और "ओदिसी" का यह अनुवाद प्रथम शती ई०पू० के महाकवि स्वयं होरेस[४] ने बचपन में पढ़ा था। लिवियस भाषाओं का शिक्षक था और उसने ग्रीक "ट्रैजेडियों" (दुखांत नाटक) के भी कुछ अनुवाद किए। २४० ई० पू० में होने वाले रोम के विख्यात खेल-उत्सव के अवसर पर खेले जाने के लिए लिवियस ने एक ग्रीक नाटक को लातीनी में प्रस्तुत किया था। सिराक्यूज में पहले प्यूनिक युद्धों के बाद रोमन जनरलों ने यूरिपिदिज[५] और मेनान्दर[६] के नाटक देखे थे। इन्हीं संभ्रान्तकुलीय जनरलों के प्रोत्साहन से ग्रीक नाटकों के अनुवाद हुए जो काफी स्वच्छन्द रूप से घटा-बढ़ा दिए गए थे। लिवियस अर्ध ग्रीक था जो रोम बन्दी के रूप में आया था।

निवियस[७] कम्पानिया का रोमन था और प्यूनिक युद्ध में लड़ चुका था। उसने भी ग्रीक नाटकों के लातीनी रूपान्तर किए। इस प्रकार के उसके अनुवाद पहली बार २३५ ई. पू. में प्रस्तुत हुए। वह लातीनी साहित्य का भी पहला नाटककार था। उसने कई प्रकार के मंचोपयोगी नाटकीय वेश भी प्रस्तुत किए। अपने "तारेन्तुम (स्थान विशेष) की लड़की" में उसने एक नागरिक लड़की के मन्दिर विलास का प्रदर्शन किया है। उसने प्यूनिक युद्ध पर एक ऐतिहासिक (एपिक) काव्य भी लिखा था। उसके कुछ खण्डित अंश भी मिले हैं जिनसे उसकी प्रतिभा प्रकट होती है। उस काव्य ने इनियस और वर्जिल[८] दोनों को प्रभावित किया था।

क्विन्टस इनियस[९] नीवियस का समकालीन था। वह लातीनी साहित्य का "जनक" कहा गया है। लिवियस की ही भाँति वह भी ग्रीक और लातीनी दोनों भाषाओं का आचार्य था परन्तु जहाँ लिवियस कंगाल और सामाजिक दृष्टि से उपेक्ष्य मुदर्रिस था, इनियस संभ्रान्त वर्ग का था। स्वयं मार्क्स की उसपर बड़ी कृपा थी। उसने अपने वीरकाव्य "एनाल्स" का विषय स्वभावतः ही राष्ट्रीय चुना। उसने अपना यह काव्य अठारह लघु

---

१. Cicero; २. Livius Andronicus (Ca. २८४-Ca २०४); ३. Homer; ४. Horace; ५. Euripides; ६. Menander; ७. Cn. Naevius (Ca. २७०-Ca.१९९ B.C.); ८. Virgil; ९. Quintus Ennius (२३९-१६९ ई० पू०)

खण्डों और ६०० पद्यों में रचा। इससे एक ओर तो होमर की वीर छन्द की परंपरा में पश्चात्कालीन काव्यकारों को लिखने का "मॉडल" मिला, और दूसरी ओर पहली बार होमर के षट्पदीय छन्द का रोमन कविता में व्यवहार हुआ। उसने नीतिपरक प्रबन्ध काव्य के रूप में व्यंग्य लिखने की भी परिपाटी प्रचलित की।

इनियस की परिपाटी का ही उसके भतीजे पासूवियस[1] ने विकास किया। वह भी राष्ट्रीय नाटककार था और उसकी ट्रैजेडियों की सत्तर पंक्तियों के अंश आज भी उपलब्ध हैं। आक्कियस[2] उसका समसामयिक था। सिसेरो लिखता है कि दोनों के नाटक खेल महोत्सवों में खेले जाते थे। तब पासूवियस ८० वर्ष का था और आक्कियस तीस-पैंतीस वर्ष का।

माक्कियस प्लातस[3] भी इनियस का समकालीन था। उसकी २१ "कॉमेडियों" का उसके सौ वर्ष बाद होने वाले विद्वान वारो[4] ने जिक्र किया है। अधिकतर ये नाटक ग्रीक कॉमेडी नाटकों के आधार पर लिखे गए थे परन्तु नाटककार ने इटली के वातावरण में उन्हें "उगाकर" सर्वथा देशी बना लिया है। उनमें तृतीय-द्वितीय शती ई.पू. का रोमन जीवन अपने सारे विनोद-वैभव के साथ बुना पड़ा है। वह उम्ब्रिया का निवासी था, परन्तु बाद में रोमन नागरिक हो गया था।

सिसीलियस स्तातियस[5] अपने प्रौढ़ समकालीन साहित्यक प्लातस से आयु में तीस वर्ष से भी अधिक छोटा था। वह पो नदी की घाटी के इन्सुब्रिया का "गॉल" था जो युद्ध के बन्दी के रूप में गुलाम बनाकर पहले लाया गया था। फिर स्वतन्त्रता लाभ कर वह इनियस[6] और तेरेन्स[7] दोनों का मित्र बन गया। वह ग्रीक मूल के आधार पर चालीस कॉमेडी नाटकों का रचयिता माना जाता है। शैली के दृष्टिकोण से वह प्रहास्यप्रिय प्लातस और शिष्ट कला प्राण तेरेन्तियस के बीच खड़ा है, दोनों की सन्धि पर। स्तातियस, तेरेन्तियस से प्रायः बीस वर्ष बड़ा था।

तेरेन्स अथवा तेरेन्तियस आफेर[8] अफ्रीका का रहनेवाला था और युद्ध में गुलाम बना कर रोम लाया गया था। और उसी से उसने अपने नाम का एकांश पाया। फिर वह स्वतंत्र कर दिया गया। बाद में उस पर हैनिबल के विजेता रोम के प्रधान राजनीतिज्ञ जनरल और ग्रीक संस्कृति के पोषक स्कीपियो आफ्रिकानस[9] की कृपा दृष्टि पड़ी जिससे तेरेन्तियस का भविष्य चमका। गुलाम रह चुकने के कारण लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया कि उसके

---

१. M. Pacuvius (२२० Ca. १३० ई. पू.); २. Accius (ज० १७०); ३. T. Maccius Plautus (२२०-१८४ ई. पू.); ४. Varro; ५. Caecilius Statius; ६. Ennius; ७. Terence (Ca. १९५-१५९ ई. पू.); ८. P. Terentius Afer; ९. P. Scipio Africanus

नाटक उसके स्वामी के लिखे हैं। इसका निराकरण उसने अपनी रक्षा में, अपने नाटकों कि भूमिका लिख कर किया। उसकी कॉमेडियों के चरित्र बारीक रेखाओं से खिंचे लगते हैं और उनकी रूपरेखा सुकुमार परन्तु स्पष्ट है। आज उसकी छह समूची कॉमेडी (विनोद नाटक-प्रहसन-सुखान्त) उपलब्ध हैं। अपने "आन्द्रोस की महिला" में उसने प्लातस के विपरीत संभ्रान्त वारांगना का चित्रण किया है। उसी प्रकार उसका "आत्म-पीड़क" भी संभ्रान्त कला का स्वच्छ आमोदयुक्त आदर्श प्रस्तुत करता है।

वर्जिल ने इटली की जमीन में लगाई इस ग्रीक-कला पर बड़ा सुन्दर व्यंग्य किया है। वह कहता है कि "वह फल-वृक्ष आश्चर्य के साथ अपने उन फलों को देखता था जो उसके न थे।" इसलिए चाहे जितनी सतर्कता और प्रतिभा से ग्रीक आधार से उठे नाटकों की रचना की गई, यह शीघ्र स्पष्ट हो गया कि आखिर वे विदेशी मॉडल थे। पहली सदी ई. पू. का रोमन समाज जनसंकुल लीलाओं, नकली और फार्सों का कायल था। भँडैती के प्रसंग और दृश्य उस काल की जनता को विशेषकर अपने रोमन वर्ष के चार त्योहारों पर अधिक आकृष्ट करते थे। उस काल संभ्रान्त रोमनों का स्वभाव अन्य प्रकार का था, जहाँ वे अपनी विजयों के स्मारक में बड़े-बड़े जलूस निकाल अपनी महत्वाकांक्षा की तृष्णा मिटाते थे वहाँ वे लोकप्रिय, अपने विचार से फूहड़, नाटक (भँड़ैती आदि) प्रदर्शन हेय समझ हीन जनसाधारण के लिए ही छोड़ देते थे। स्वयं वे दर्शन और सत्साहित्य में रुचि रखते थे और तेरेन्तियस, वारो या सिसेरो की भाँति "कृषि" अथवा "राज्य" पर डायलॉग रचने नगर से बाहर के अपने निभृत आवासों में चले जाते थे। आम जनता और संभ्रान्त कुलीय रोमन शासकों के बीच का यह प्रशस्त विषम अन्तर स्वाभाविक ही तत्कालीन ई. पू. प्रथम शती और पश्चात्कालीन साहिय की नई दिशा और नए "अभिप्रायों" का स्रष्टा था, इस कारण जनता की अधिकाधिक प्रकाशित साहित्य-कृतियों में इन्हीं संभ्रान्तकुलीयों (जो प्राचीनता, विजय, राजनीति, सम्पत्ति या शक्ति के कारण संभ्रान्त) के राग-द्वेष, गुण-दोष, महत्वाकांक्षा, विफलता आदि प्रतिबिंबित होने लगे। अधिकतर रचयिता इसी अल्पसंख्यक शक्ति की सेवा में लगे।

कम्पानिया का लूसिलियस[१] भी हेलेनिक (ग्रीक) साहित्य-प्रिय स्कीपियो आफ्रिकानस की ही गोष्ठी का था। उसकी कृतियाँ आज समूची और स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं, केवल उन हजारों छन्दों के रूप में बची हैं जो दो सौ वर्ष बाद लातीनी कोष में एक कोषकार ने दृष्टान्त रूप में एकत्र कर दी थीं। इससे उस प्रबल व्यंग्यकार का मूल्यांकन करना कठिन हो जाता है। जो हो यह असन्दिग्ध है कि उस लूसिलियस ने ही काव्य में व्यंग्य की लातीनी में प्रतिष्ठा की। नए रूपसे अब समसामयिक घटनाओं और व्यक्तियों

---

१. C. Lucilius (C. १८०–१०३ ई. पू.)

का काव्य में व्यंग्यांकन होने लगा। अब भी सही, अरिस्तोफेनिज[१] (पाँचवी सदी ई. पू. एथेन्स का प्रसिद्ध कॉमेडीकार) की पुरानी कॉमेडी के प्रेत रोम की गलियों और राज मार्गों पर चलते हैं परन्तु उनके स्थानीय वातावरण की आचार-चेतना शान्त-शालीनता सब दूसरे हैं, सर्वथा नए, अपने। रोमन संभ्रान्तकुलों के गम्भीर, कष्टसिद्ध विनयाचरण, उनका गर्वीला, अधिकार-अहंकारयुक्त और आशु क्षुब्ध स्वभाव लूसिलियस की कृतियों में फिर से स्पष्ट उतर आया। व्यंग्यकार होने के अतिरिक्त लूसिलियस ने भाषा का भी निर्माण किया और प्रभूत मात्रा में जन-भाषा का उपयोग किया। पश्चात्कालीन अनेक कवियों और नाटककारों ने उसे व्यंग्य-शैली का आदर्श माना।

इसी तीसरी शती ईस्वी पूर्व में सिकन्दरिया के ग्रीक कवि (ग्रन्थागाराध्यक्ष) कालिमाचुस[२] की आत्मपरक लिरिक कविता की भी रोमके तरुणों के हृदय में ई. पू. प्रथम शती में प्रतिध्वनि उठी। वह ग्रीक दार्शनिक बड़े ग्रन्थ को बड़ा दोष कहा करता था और उसी चित्त-वृत्ति का जो रोम में विकास हुआ तो वहाँ के तरुण भारी भरकम ऐपिक (वीर) काव्यों से घृणा करने लगे। लघु कविताओं, स्केचों और लिरिक-रचनाओं का परिणामतः उदय हुआ। इस काव्य-शैली का आरम्भ ई. पू. प्रथम शती में हुआ जिसकी धारा अविरल गति से कुछ काल लातीनी साहित्य में बही। उस ग्रीक लघु-काव्य शैली में लिखने वाले लूताशियस कातुलस[३], वालेरियस इदीतुअस[४] और पोर्सियस लिसिनस[५] थे। लीवियस[६] नाम के एक कवि ने तो इसके रूप को एक विशेष चेष्टा दी। उसने काव्य को कानों ही का विषय न रहने दिया। उसे नेत्रों का विषय भी बनाया। उसकी कविताओं में वैसे चित्र (छन्दध्वनि के माध्यम से) बनते जाते थे कि बराबर दृश्य देखने का आभास होता था। लिखने में भी उसका अजब रूप रखा जाता था और लीवियस ने तो अपनी एक भ्रमणपरक कविता की लिखावट को एक फीनिक्स (काल्पनिक पक्षी) का रूप दे दिया था। फूरियस बिबाकुलस[७] भी इसी वर्ग का कवि था। वह कुछ पीछे हुआ और उसकी कविताओं का बड़ा मजाक उड़ाया गया। आगुस्तसकालीन आलोचकों ने उसका मखौल उड़ा कर भी उसके अप्राप्य वीरकाव्य के अनेकस्थलों को सराहा था।

हेल्वियस चिन्ना[८] इसी वर्ग का एक तबके का था जिसने अपने लघु (खिलौना) काव्य पर नौ वर्ष खर्च किए। वही चिन्ना जूलियस सीज़र को मारने वाले षड्यन्त्रकारियों में भी था। शेक्सपियर की कृति में बदला लेने वाले नागरिकों में से एक उसे "उसकी बुरी

---

१. Aristophanes; २. Callimachus; ३. Q.Lutatius Catulus; ४. Valerius Aedituus; ५. Porcius licinus; ६. Laevius; ७. M. Furius Bibaculus; ८. C. Helvius Cinna·

कविताओं के लिए" (फॉर हिज बैड वर्सेज) मार डालना चाहता है। चिन्ना, फूरियस और आगुस्तस युगों का सेतु है।

यहाँ कातुलस[१] पर दो शब्द लिखदेना अनिवार्य है। यह वेरोना का निवासी था और उसकी कविताओं में वैयक्तिक चेतना और अनुभूति की गहरी ध्वनि थी। वस्तुतः जितना यूरोपीय लिरिक काव्यधारा पर उसका प्रभाव पड़ा है प्राचीनों में सैफो[२] को छोड़ कर शायद किसी और का नहीं। सैफो की एक विख्यात लिरिक को जो कातुलस ने अनुवाद किया तो उसकी आकृति और ध्वनि पर स्वयं अपनी छाप डाल दी। लेस्बिया[३] जिसका वास्तविक नाम क्लोदिया था, उसकी कविताओं की मूल प्रेरणा थी। इस प्रान्तीय तरुण के हृदय पर लगता है, उस चतुर नारी ने अपने सारे हावभावों से आघात किया और कातुलस बेबस हो गया। तुकान्त छन्द में वह लिखता है:—

"मैं प्रेम करता हूँ, उतना ही घृणा भी। पूछती हो क्यों?
नहीं जानता, क्यों, पर है यह सच, पीड़ा का स्वाद लग गया है!"

लातीनी आलोचकों ने उसे "विद्वान" कहा है, संकेत उसके ग्रीक काव्य-ज्ञान की ओर है। उसकी विवाहपरक कविताएँ शायद उस काल पसन्द न की गईं परन्तु यूरोप के कवियों ने उन्हें खूब सराहा। कातुलस की काव्य-प्रतिभा बहुमुखी थी।

लुक्रेशियस[४] कातुलस के विपरीत दार्शनिक कवि था जिसका आकर्षण वस्तुओं के वास्तविक स्वभाव के प्रति अधिक था। वह विश्व की जलती दीवारों के उस पार चला जाना चाहता था। उसने अपना आचारपरक काव्य छह खण्डों में समाप्त किया। वह एपिक्यूरस[५] का अनुयायी था। उसने एपिक्यूरस शान्ति को उस रोमन संभ्रान्तकुलीय परुष विनयन से समन्वित किया जिसके आदर्श एम्पेदोक्लीज[६] के से दार्शनिक ग्रीक कवि थे। एम्पेदोक्लीज ज्वालामुखी पर्वत के अग्निविस्फोटक मुख में कूद पड़ा था, कहते हैं, लुक्रेशियस ने भी "मृत्यु की अमरता" अपनाने के लिए आत्महत्या कर ली। वह मृत्यु को अमर कहता है उसे सराहता है उस जीवन के विपरीत जिसे जीवन-लोलुप रोगियों ने मरणान्तर का लोक कहा है। उसका आणुविक सिद्धांत प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रितस[७] के आधार पर बना है परन्तु महाकवि ने उसे अपनी रसमयी विवेचना से सरस कर दिया है। सिसेरो ने उसके "हजारों पंक्तियों के बीच" कुछ अद्भुत शक्ति प्रेरणा, रस और सौन्दर्य की मानी हैं। लुक्रेशियस कवि था परन्तु कवि से अधिक शायद दार्शनिक था।

अन्य साहित्यों की ही भाँति लातीनी में भी गद्य का आविर्भाव पद्य के पश्चात्

---

१. C. Valerius Catullus of Verona (Ca. ८४–५४Bc.); २. Sappho; ३. Lesbia (Clodia); ४. Lucretius (९५-५४ ई. पू.); ५. Epicurus; ६. Empedocles; ७. Democritus

हुआ और जब हुआ भी तब पहले ग्रीक प्रतीकों की छाया में। कातो (सेन्सोर)[1], पहला जाना हुआ गद्यकार है यद्यपि जिनकी कृतियाँ नष्ट हो गई हैं ऐसे कुछ गद्यकारों ने उससे पूर्व इतिहास पर ग्रन्थ लिखे थे। कातो इटली की देशी परंपरा का प्रबल पोषक था। वह ग्रीक विचारों का विरोधी था और ग्रीक-भाषा भी उसने इनियस के कहने से बहुत पीछे सीखी। स्वयं उसकी गद्य शैली प्रौढ़ है। उसके व्याख्यानों की भाषा भी प्रखर और शक्तिम है।

कातो के बाद और सिसेरो से दस वर्ष पूर्व मार्क्स तेरेन्तियस वारो[2] हुआ। वह बड़ा पण्डित था और उसने अनेक ग्रन्थ लिखे। डायलॉग-शैली में कृषि-सम्बन्धी उसकी कृति का वर्जिल पर काफी असर पड़ा। विविध विषयों पर लिखी उसकी चालीस पुस्तकों का पता चलता है। भाषा-शास्त्र पर भी उसने अधिकारी की योग्यता से लिखा। सिकन्दरिया के विद्वानों की भाँति उसने भी एक वृहद् कोष-ग्रन्थ में इटली के प्राचीन पाखण्डों और धार्मिक विश्वासों आदि का संग्रह किया। सिसेरो ने भी अपने निबन्धों में उसी के लातीनी में प्रचलित किए ग्रीक-डायलॉग का प्रयोग किया। सम्भवतः निबन्ध की शुष्कता दूर करने के लिए यह नाटकीय स्वरूप निबन्धों को दिया गया। सिसेरो का वह बड़ा आदर करता था, उसे गद्यकारों में सबसे महान् और अनुपम मानता था।

मार्क्स तुलियस सिसेरो[3] मानव इतिहास का असाधारण वक्ता और लातीनी साहित्य का सुन्दरतम गद्यकार अपने काल का महान् राजनीतिज्ञ भी था। संसार के गद्य पर जितना गंभीर प्रभाव उसका पड़ा है उतना और किसी का नहीं। वारो ने अपना लातीनी भाषा-साहित्य संबंधी ग्रन्थ सिसेरो को समर्पित किया था। आज उसकी ४७ वक्तृताएँ उपलब्ध हैं जो अपनी प्रखरता, मार्मिकता, तर्क और वाक्शक्ति में संसार के साहित्य में बेजोड़ हैं। ग्रीकों में वक्तृता का बड़ा आदर था और वे उस कला को विशिष्ट वाचालों से, विशिष्ट पीठों में सीखते थे। सिसेरो ने भी अपनी कला ग्रीस जाकर ही प्रौढ़ की थी। उसके उपलब्ध ७०० पत्रों में गजब की सरणिक ताजगी है, साथ ही उनसे तत्कालीन राजनीतिक-दार्शनिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। उसके व्यक्तित्व की शब्द-शब्द पर छाप है। दर्शन के क्षेत्र में भी सिसेरो ने बड़ा काम किया। उस क्षेत्र में उसके प्रायः एक दर्जन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें उसने ग्रीक दर्शन को खोलकर फिर एक बार लातीनी भाषा में रखा। १६वीं सदी में ग्रीक साहित्य के पुनरुद्धार के पहले ग्रीक दर्शन का प्रायः एक मात्र आधार सिसेरो की कृतियाँ थीं। उसका पद्य उस प्राचीन काल में भी बोझिल न हो सका। उसका अन्त हत्या से हुआ। जीवन के पिछले दिनों में हृदय की कमजोरी उसे कभी अन्तोनी कभी आगुस्तस के प्रति विश्वासघात करने को बाध्य करती रही।

---

१. Cato (Censor) (२३४–१४९ ई.पू.); २. Marcus Terentius Varro (११६–२७ ई० पू०); ३. Marcus Tullius Cicero (१०६–४३ ई. पू.)

प्रबल विजेता जूलियस सीजर[1] जो सिसेरो से छह साल छोटा था, गद्यकार भी था। उसकी विशिष्ट रचना गाल के युद्धों से सम्बन्ध रखती है जो शैली की दृष्टि में लातीनी साहित्य में असामान्य है। वह रचना उसके युद्धों के चित्र खींच देती है, और बड़ी कसी हुई है। उसने उसमें अपने प्रति संकेत अन्य पुरुष के रूप में किया है। भाषा का तो वह सुईकार है। कभी एक शब्द जाया नहीं करता फिर भी अनेक स्थल इस खूबी से वर्णित हैं कि वे नाटक के दृश्य बन जाते हैं। उसका एक प्रशंसक सालस्त[2] था. उसके दल का मित्र और रोम के संभ्रान्तकुलीन शासकों का अनुपम शत्रु। उसने कातिलीनी के षड्यन्त्र और जुगुर्थी युद्ध पर दो ग्रन्थ लिखे। उसकी शैली में काफी लोच और प्रौढ़ता थी। लातिन आलोचकों ने उसे सराहा है।

: २ :

आगुस्तस का युग

आगुस्तस[3] का युग लातीनी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। ई. पू. पहली सदी रोमन इतिहास में घोर रक्तपात और भयानक हत्याकाण्ड की थी। पहले तो बहुत दिनों तक कुलीनों और "रजीलों" में लड़ाई चलती रही फिर जूलियस सीजर की हत्या के बाद वह लड़ाई प्रायः कुलीनों में ही परिमित हो गई। अन्त में अन्तोनी आदि पर विजयी हो, सीजर की बहिन का पोता ओक्तेवियस आगुस्तस के नाम से रोम का सम्राट् हुआ। रिपब्लिक की रक्षा के लिए सैकड़ों महान रोमनों ने तप और साधना की थी, हजारों ने अपने प्राण होम कर दिए थे, स्वयं जूलियस सीजर की इसीलिए ब्रुट्स जैसे दार्शनिक ने, पुत्र होकर भी, हत्या की थी और अब उसी रिपब्लिकन रोमन साम्राज्य का आगुस्तस सम्राट् बन गया।

आगुस्तस का शासन-काल फिर भी बड़ी शान्ति और अद्भुत साहित्य-सृजन का था। लातीनी साहित्य के प्रधान कवि वर्जिल[4] होरेस,[5] प्रोपर्तियस,[6] ओविद[7] सब इसी युग में हुए। इनमें से पहले तीन ने तो नए शासन के गीत भी गाए, दरबारी कवि भी हुए। तीनों राजनीति में असफल रहे थे, तीनों की संपत्ति हाथ से निकल गई थी, तीनों सब कुछ खोकर रोम के वीर और कला के प्रबल संरक्षक मिकेनास[8] के पास बारी-बारी पहुँचते थे। इन तीनों में वय और प्रतिभा में बड़ा वर्जिल था, लातीनी साहित्य के उत्कर्ष काल का प्रमुख गायक।

---

१. Julius Caesar (१००–४४ ई. पू.); २. Sallust (८६–३५ ई. पू.);
३. Augustus (४३ ई. पू.–१४ ई०); ४. Virgil (७०–१९ ई. पू.)
५. Horace ६. Propertius. ७. Ovid ८. Maecenas.

वर्जिल की मन्तुआ की जमींदारी छीन कर सैनिकों में बाँट दी गई थी क्योंकि फिलिपी के युद्ध में वह कैसियस[१] और ब्रुतस[२] की ओर रहा था। रोम पहुँचने के बाद ४१ और ३९ ई० पू० के बीच उसने गडरिया-जीवन सम्बन्धी प्रसिद्ध दस कविताएँ रचीं जिनका नाम "एकलोग" पड़ा। इनकी पृष्ठभूमि सर्वथा इटली और सिसिली की है। उसका आदर्श उसमें ग्रीक थियोक्रितस[३] है। वर्जिल की कृति "ज्योर्जिक्स" में इटली की साँस निहित है। प्राचीनता का पोषण समाज में आरम्भ होगया था। वारो आदि ने बेकार ही लेखनी नहीं घिसी थी। और जब सेनेट[४] ने जूलियस सीजर के दत्तक पुत्र आँक्तेवियन[५] को "आगुस्तस" (परम श्रद्धेय) का विरुद प्रदान कर दिया तब तो जूलियस का अपनी कुल परंपरा देवताओं से जोड़ने का अध्यवसाय भी सिद्ध हो गया। आगुस्तस पुराने देववर्ग में देवी वीनस को मानता था। उसके कुल का प्रादुर्भाव इसी वीनस के पुत्र से माना गया। वह पुत्र ईनिस[६] था जो त्राँय के युद्ध में एचिलिस[७] से लड़ा था। त्राँय के विध्वंस के बाद त्रीयन वीर गृह विहीन होकर द्वीप-द्वीप फिरते हैं। उनके दुर्भाग्य से आर्द्र होकर कार्थेज की रानी दीदो[८] ईनिस से विवाह कर लेती है। बाद देव वाणी सुनकर ईनिस पत्नी को छोड़ इटली चला जाता है और वहाँ युद्धों में विजयी हो अपना राजकुल स्थापित कर लेता है। जूलियस और आक्तेवियस उसी कुल में उदित देवांश हैं। वर्जिल का यह महाकाव्य दृश्य वर्णन, चरित्र-चित्रण, रागाभिव्यंजन, सभी दृष्टि से असाधारण है। इसके चरित्र कभी स्मृति से लुप्त नहीं होते। संसार के महाकाव्यों में "ज्योर्जिक्स" का स्थान अपना है। उसके छठे खण्ड में वह अद्‌भुत और प्रख्यात भावी रोम का स्वप्न है।

होरेस[९] ने भी एक दृष्टि से वर्जिल का ही अनुकरण किया। रोमन लड़ाइयों में वह प्रजातांत्रिक (जन) दल की ओर से लड़ा था। उसके बाद उसे रोम में सालों क्लर्क का कठिन जीवन बिताना पड़ा था। यद्यपि उस काल उसे लिखने-पढ़ने की कुछ फुर्सत मिली। परिणामतः उसने कविताएँ (इपोड और सटायर—व्यंग्य) लिखीं। वर्जिल ने उसे अपने संरक्षक मिकेनास[१०] से मिलाया जिससे होरेस को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उसी के प्रोत्साहन से पहले उसने अपना "इपोड" लिखा जिसमें उसकी प्रसन्न और गम्भीर दोनों प्रकार की कविताएँ संग्रहीत हुईं, फिर उसने अपने विश्वविश्रुत "ओड" लिखे। ई. पू. २३ में उसके "ओडों" (कसीदों) का संग्रह निकला और उन लिरिक कविताओं के सौन्दर्य-माधुर्य न संसार को मोह लिया। लिरिक रूप में उन कविताओं का स्थान मानवजाति के इतिहास में अक्षुण्ण हो गया। उसके ओड तीन भागों में विभक्त थे। २० और १३ ई. पू. के बीच

१. Cassius; २. Brutus; ३. Theocritus.; ४. Senate; ५. Octavian; ६. Aeneas; ७. Achilles; ८. Queen Dido; ९. Horace (६५–८ ई. पू.); १०. Maecenas

उसने दो भागों में अपने "एपिस्तल" लिखे, उसकी मेधा की प्रौढ़ कृति। "आर्स पोएतिका" (एपिस्तल की द्वितीय पुस्तक में संग्रहीत) में उसने काव्यकला पर अभिराम विचार प्रगट किए।

लातीनी के "एलेजी" (मरसिया) लिखने वाले प्रमुख कवि कातुलस[१], प्रोपर्तियस[२] तिबुलस[३], और ओविद[४] थे। कातुलस ने व्यक्तिजन्य प्रणय को प्रश्रय दिया जिसे उसके परवर्ती लिरिक कवियों ने भी अपना ध्येय बनाया। कातुलस की लेस्बियाकी ही भाँति प्रोपर्तियस की लिरिकों का ध्येय सिन्थिया[५] थी, तिबलस की देलिया[६] और ओविद की कोरिन्ना[७]। आलोचक क्विन्टिलियन[८] ने लिखा कि लातानी की लीरिक कविताएँ अपनी प्रकार और भावव्यंजना में ग्रीक लिरिकों से किसी प्रकार घटकर नहीं हैं। सेक्सतस प्रार्पतियस की तीन खण्डों में प्रस्तुत "एलेजियों" की ७१ कविताओं की काव्यकारिता गजब की है। कहीं कहीं सिकन्दरिया की पद्धति झलक पड़ी है और तब कविता का अर्थ दुरूह हो जाता है। पर साधारणतः प्रोपर्तियस नितान्त मधुर है और उसकाप्रवाह अविच्छिन्न है। फ्रेंच कवि विलों[९] की भाँति राबर्ट बर्न्स[१०] की भांति। अल्बियस तिबुलस की सोलह "एलेजियों" का मुकाबला तो केवल वर्जिल ही कर सकता है। उनकी अभिराम गति निर्बाध है। देहात का जीवन उसे अपने जादू से मुग्ध कर लेता है। देहाती जीवन की हँसी-खुशी उसके व्रत त्योहार उसकी कविताओं में रूपायित होते हैं और तब उसकी देलिया की रेखाएँ भी धुँधली पड़ जाती हैं।

ओविद की अधिक कविताएँ भी एलेजी के "मीटर" में ही हैं। इसमें उपवाद केवल उसका पुराणपरक एपिक "मेतामारफोसेज़" और "रोमन कैलेण्डर" हैं जिन्हें उसने बाद में लिखा, सन् आठ ईस्वी में निर्वासित होने के पहले। मेतामारफोसेज" में पुराणव्यंजित रोम (संसार) का इतिहास है—सृष्टि के आदि से आगुस्तस तक १०००० छन्दों में सम्पन्ना ओविद की मृदुल भावना सर्वत्र उसकी कविताओं का प्राण है। उसकी प्रेयसी कोरिन्ना उसकी कृतियों में से टपकी पड़ती है। अपनी "हिरोइन्स" पत्रों में लिखकर उसने उपेक्षित और विषादग्रस्त नायिका और महिलाओं के प्रति औचित्य का समर्थन किया। उसकी "प्रणय की कला" अतीव हृदयग्राही है यद्यपि अनेक रूप से आज की नैतिक दृष्टि से वह अश्लील है। तब के रोमन संसार की आचार व्यवस्था के वह अनुकूल है और उसका तब के पाठकों—श्रोताओं पर प्रभाव भी प्रभूत पड़ा।

उसका "प्रणय का उपचार" तो और भी आचारहीन है, अश्लील। उसके प्रवास

---

१. Catullus २. Sextus Propertius (४७–१५ ई. पू.) ३. Albius Tibullus (५५–१९ ई. पू.) ४. Ovid (४३–१८ ई. पू.) ५. Cynthia, ६. Delia ७. Corinna ८. Quintilian. ९. Villon १०. Robert Burns

में लिखी कविताओं में आत्मग्लानि है पर साथ ही काव्यकारिता में वे आत्मविश्वास प्रकट करती है।

उस आगुस्तसीय स्वर्ण-युग में गद्य सृजन भी प्रभूत हुआ। लिवी[1] ने अपना बृहत् इतिहास लिखकर उस दिशा में बड़ी प्रगति की। काव्य में अपनी जनता के लिए जो काम वर्जिल ने किया वही लिवी ने गद्य में किया। प्राचीनतम काल से समसामयिक रोम तक का इतिहास उसने अपने असाधारण नगर और रोमनों का लिखा और अतीत के प्रति अपने पाठकों की भावना जगा दी। यद्यपि स्वयं वह अतीत से प्रभावित हो वर्तमान को तिरस्कृत कर देता है। और अनेक बार उसकी वैयक्तिक चेतना घटनाओं के ऊहापोह में दब जाती है। वह उस काल की दृष्टि से सफल इतिहासकार है और अनेक स्थलों पर उसके वर्णन-चित्रण कविकृत से चमक उठते हैं।

: ३ :

रजत-युग

१४ ई. से ११७ ईस्वी तक का काल लातीनी के साहित्यिक इतिहास में रजत-युग कहलाता है। इस काल गद्य ने अपना प्रखर और सफल रूप धारण किया। तासितस[2] और सुतोनियस[3]. दोनों ने गद्यों में तत्कालीन इतिहास प्रस्तुत किए। तासितस का दृष्टि-कोण सर्वथा एकांगी था और वह घटनाओं में घुसकर लिखता था। फिर भी उसने समसामयिक राजनीतिकों को तार-तार करके रख दिया। जितना घटनाओं का विश्लेषण उसने किया है प्राचीन जगत के किसी इतिहासकार ने नहीं किया। अपने इतिहास-ग्रन्थ "एनाल्स" और हिस्ट्रीज" में उसने पहली सदी के ऐतिहासिक व्यक्तियों के उद्देश्य जैसे—उनके भीतर से निकालकर इतिहास के पृष्ठों पर रख दिए। इनके अतिरिक्त उसने साहित्यिक आलोचना पर भी एक पुस्तक लिखी और इंग्लैंड के रोमन शासक का एक जीवन-चरित भी। उसकी "जर्मेनिया" प्रचुर प्रसिद्ध हुई जिसमें उसने अपने समकालीन विषयी, प्रमादी और स्वार्थपर रोमनों की तुलना तत्कालीन जर्मनों से उनका, उस ग्रन्थ में, चित्र खींच कर की है। तासितस की भाषा उसकी विश्लेषणात्मक शैली के अनुरूप ही कसी हुई और सूत्रवत् है। सुतेनियस का "सीजरों का जीवन चरित्" प्रसिद्ध है जिसमें उसने स्पष्ट सरल भाषा में जूलियस सीजर से लेकर डोमीशियन तक के रोमन सम्राटों का इतिहास लिखा है। वह स्वयं सम्राट हाद्रियन का सेक्रेटरी था और उसे सम्राटों के जीवन की इतिहास-सामग्री प्रभूतमात्रा में उपलब्ध थी। उसने उनके चरित लिखते

---

१. Livy (५९ ई. पू.–१७ ई०); २. Cornelius Tacitus (५५–११८ ई.); ३. Suetonius (७५–१६० ई०)

समय कुछ न छोड़ा, अच्छा-बुरा सभी लिख दिया और वैयक्तिक जीवन का यह उद्घाटन निस्सन्देह इस क्षेत्र में बेजोड़ है। उसी काल एक और इतिहासकार हुआ, प्लिनी[1] जो प्रसिद्ध तो काफी हुआ है पर जिसकी प्रतिभा लिवी, तासितस आदि के सामने कुछ नहीं है। वह श्रीमानों का मित्र था, उन्हीं की गोष्ठियों में रमा करता था। उसकी रचना में प्राचीन गौरव के प्रति आस्था झलकती है। तब भारत का रोम के साथ व्यापार उत्कर्ष पर था। मोती, मलमल और मसाले में भारत का व्यापारिक एकाधिकार था। प्लिनी ने उस व्यापार का बड़ा विद्रोह किया कि रोमन साम्राज्य का "सारा सोना विदेश बहा लेजाता था"। उसने सेनेट तक में इस व्यापार के विरुद्ध वक्तृताएँ दिलवाईं, सौ फीसदी कर भी भारत से आने वाले माल पर लगवाया पर रोम के छैले श्रीमानों उनकी प्रेयसियों और गृहपत्नियों ने अपने राग से भारत के उस व्यापार की रक्षा कर ली और भारतीय व्यापारी रोम के सम्बंध से समृद्ध होते रहे।

उस रजत-युग की एक विशेषता व्यंग्य-साहित्य (सेटायर) थी। पर्सियस फ्लाकस[2] और जुवेनाल[3] ने सेटायर लिखे। पर्सियस ने अपने छह व्यंग्य चित्रों में समसामयिक समाज पर उत्कट् व्यंग्य करते हुए नैतिक और आचार चेतना का प्रतिपादन किया। वह स्तोइक के दर्शन से प्रभावित था और प्रसिद्ध स्तोइक दार्शनिक कोर्नतस[4] के व्याख्यान सुना करता था। उसकी व्यंग्य-रचनाएँ मध्यकालीन यूरोप में खूब पढ़ी गईं। पर्सियस स्वयं संभ्रान्त कुल का होने के कारण प्रायः शक्तिमान् श्रीमानों के भय के कारण अपनी रचनाओं में तरह दे जाता था, बचा जाता था। जुवेनाल में इस प्रकार की कोई कमजोरी न थी और उसने शक्तिमान् श्रीमानों को भी अपनी रचनाओं में व्यंग्य-चोट से जर्जर कर दिया। उसने चाटुकारों (जिनकी संख्या समसामयिक रोम में बेहद बढ़ गई थी) की खूब खिल्ली उड़ाई। जुवेनाल के लिए कुछ भी "पावन" नहीं जो छुआ नहीं जा सकता। अपने दुर्गुण और पाप सम्बन्धी व्यंग्यों में उसने ऐसे किसी को न छोड़ा जो आलोचना के पात्र हो सकते थे। जुवेनाल का विशेष रोष उन पौर्वात्यों के विरुद्ध था जो रोम में घुसकर उसके निवासियों को धीरे-धीरे पदविचलित कर उनके स्थानापन्न होते जा रहे थे।

क्विन्तिलियन[5] का स्थान तासितस के समीप है। उसी की भाँति वह भी प्रथम शती ईस्वी का प्रतिनिधि लेखक है। वह जन्म से स्पेन का था परन्तु अनेक सम्राटों के शासन में रोम में "रेटोरिक" (वक्तृता, अलंकार, आदि) पढ़ाता रहा था और उससे वहाँ विशेष सामादृत हुआ था। "ओरेटरी" (वक्तृत्व के सिद्धान्त) पर लिखा उसका ग्रन्थ न केवल शिक्षा, वक्तृता और भाषालंकरण पर वरन् साहित्यालोचन पर भी प्रामाणिक

---

१. Pliny; २. A. Persius Flaccus (३४–६२); ३. Juvenal (५५–१३०); ४. Cornutus; ५. Quintilian (३५–१००)

निरूपण है। ग्रन्थ के दसवें स्कन्ध में ग्रीक और लातीनी साहित्य पर अद्भुत आलोचना-सामग्री उपलब्ध है। क्विन्तिलियन की आलोचक प्रतिभा प्रखर है और उसका वह ग्रन्थ आज भी आलोचना की दृष्टि से असाधारण और व्यापक प्रभाव का माना जाता है।

प्रथम शती ईस्वी के चार एपिक काव्यों में पाम्पेयाई के फार्सलस-युद्ध पर लिखा अन्नियस लुकानस[१] का काव्य सराहनीय है। उसका स्थान मध्यकालीन पठनीय कवियों में वर्जिल के पास ही था और यद्यपि क्विन्तिलियन ने उसके काव्य में "वक्तृता अधिक कवित्व कम" देखा। उस काल के अन्य काव्यों में लुकानस का काव्य निश्चय ही श्रेष्ठ है। लुकानस प्रसिद्ध सेनेका का भतीजा था। उसके काव्य का हीरो तो पाम्पेयाई है पर पाठक की समवेदना सीजर के साथ ह।

अन्नियस सेनेका[२] स्तोइक आचार समन्वित साहित्य के नए क्षेत्र में अग्रणी था। सिसेरो के समकालीन सालुस्त की भाँति सेनेका और उसका भतीजा लुकानस दोनों प्राचीनता-विरोधी थे। प्रतिष्ठित मान्यताएँ रूढ़िगत हो गई थीं और प्रगति में स्पष्ट बाधक हो रही थीं। सेनेका ने उनका प्रबल विरोध किया। उसके नौ ट्रैजेडी नाटक प्रवास (निष्कासन) में लिखे गए। वह और उसका भतीजा दोनों सम्राट् नीरो[३] के समकालीन थे, दोनों को ही देशद्रोही कहकर निर्वासित कर दिया गया, दोनों को मजबूर होकर आत्महत्या कर लेनी पड़ी।

ऊपर तासितस और प्लिनी का उल्लेख किया जा चुका है। वे दोनों भी इसी रजत-युग के रत्न थे। इनमें प्लिनी (प्लिनियस सिसिलियस सेकुन्दस)[४] आसाधारण धनी था। उसके प्रायः ३६८ सुन्दर पत्र उपलब्ध हैं जिनसे तत्कालीन रोम की वस्तु-स्थिति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। इन्हीं में कुछ तासितस और सुतोनियस को भी लिखे गए थे। परन्तु जो पत्र प्राचीन जगत् के सुरावादी सारे कवियों में श्रेष्ठ मार्तियल[५] पर उसने लिखा, उससे इस महाकवि की शक्ति प्रकट होती है। पत्र उस कवि की मृत्यु पर लिखा गया था जिसने उस शक्तिशाली धनाढ्य की संरक्षा कभी माँगी थी। प्लिनी उसे महाकवि मानता है, उसके काव्यगत् भाषा के ओज की सिसेरो की शब्दशक्ति से तुलना करता है। सेनेका और क्विन्तिलियन की ही भाँति मार्तियल भी स्पेन का था। वह स्वयं कहता है कि मेरी कविताएँ तब पढ़ो जब दावत खत्म हो चुकी हो और शराब के दौर चल रहे हों। लिखा उसने सुन्दर परन्तु अपनी प्रतिभा उसने बेच दी थी और अपने संरक्षकों के मनोरंजन

---

१. M. Annaeus Lucanus (३९–६५ ई०); २ Annaeus Seneca (Ca. ४ ई. पू.–६५ ई०); ३. Nero; ४. C. Plinius Caecilius Secundus ५. Martial

के लिए उनके बताए किसी विषय पर वह कुछ भी लिख सकता था। परन्तु उसकी कविताओं में रोम का घृणित सामाजिक जीवन खुल पड़ा है।

उसी प्रकार गेयस पेत्रोनियस[1] की कृतियों में भी रोम के प्रमादी, कामुक, घृणित जीवन का पर्दाफाश अमित मात्रा में हुआ है। उसने अपने व्यंग्य चित्रों (विशेषत: त्रिमाल्चियों की दावत) में समाज के भीतर घुसकर जैसे उसे विश्लिष्ट कर दिया है। मार्तियल ने रोम का जीवन बाहर से देखा और पेत्रोनियस ने भीतर से।

उसी प्रकार दूसरी सदी ईस्वी के मध्य होने वाले अपूलियस[2] ने गद्य में उस काल के रोम के धार्मिक और सांस्कृतिक ह्रास का चित्र अपने "हिरण्य-गर्दभ" में सबल शब्दों में खींचा। उस आत्मकथापरक गद्य "सुनहरे गद्य" में क्यूपिड[3] और साइकी[4] का प्रणय-निवेदन है पर उसी बहाने रोमन समाज रूपायित हो उठा है। इस कथा को वाल्टर पेटेर[5] ने पीछे फिर से साहित्य का आधार बनाया। अपूलियस प्रसिद्ध ग्रीक जीवन चरितकार प्लूतार्च[6] का समकालीन था।

द्वितीय शती ईस्वी में लातीनी साहित्य का पूर्वार्द्ध इतिहास समाप्त हो जाता है। ऊपर का विवरण "क्लासिकल" लातीनी का ह।

: ४ :

उत्तरकालीन लातीनी साहित्य

उत्तरकालीन लातीनी साहित्य अधिकतर ईसाई साहित्य है। ईसाई-लातीन का पहला गद्य तरतूलियन[7] की पुस्तक "अपोलोजेतिकस" में है जिस साधन से उसने ईसाई धर्म की रक्षा में रोमन मूर्तिपूजक धर्म को ललकारा, उसकी मुख्य रचना "द प्रिस्किप्ति-ओने हिरेतिकोरम" है। यह ग्रंथ कुवाच्य और व्यंग्य का भण्डार है। इसमें अग्निमय शब्दों में चर्च का पक्षसमर्थन किया गया है। तरतूलियन की भाषा में गजब का तीखापन है। उसकी भाषा अफ्रीकी लातीनी है, उसकी शैली शक्तिम और ओजभरी अलंकृता। शत्रु का विध्वंस करने में शत्रु जैसे सारे अस्त्रों का उपयोग करता है। तरतूलियन भी रोम के "पेगन" धर्म के विरुद्ध भाषाशैली की सारी शक्तियों का उपयोग करता है जैसे व्यंग्य, अलंकार, उपमा, प्रखर शब्दावली।

इसी काल (तृतीय शती ईस्वी) एक प्रभावशाली "डायलॉग" की रचना हुई जिसका नाम "आक्तावियस" है। इसे मिनूसियस फेलिक्स[8] ने लिखा। इसकी शैली में

१. Gaius Petronius (मृ. ७७); २. L. Apuleius; ३. Cupid; ४. Psyche; ५. Walter Pater; ६. Plutarch; ७. Tertullian (१६०-२२०); ८. Minucius Felix

बड़ा आकर्षण है। यह भी डायलॉग के रूप में ईसाई धर्म के समर्थन में लिखा गया। इसी स्पिरिट में अर्नोबियस[१] ने अपना "अदवर्सस नातिओनिज़" लिखकर "पेगन" (रोमन-ग्रीक) देवताओं की परंपरा पर आक्रमण किया। लाक्तान्तियस[२] वकील था और अपने पेशे की समूची मेधा प्रकाशित करते हुए उसने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिपादन और पेगन देव मण्डल के खंडन में अपना "इन्स्तुतिओनिज़ दिवीनी" लिखा। साहित्य की दृष्टि से इन सारी रचनाओं (सिवा तरतूलियन के) का स्तर क्लासिकल लातीनी की शालीनता से उतरता गया है, यद्यपि इनमें असाधारण तीव्रता और प्रखरता है।

जब "पेगन" धर्मावलम्बियों ने ईसाई लेखकों को अपने (पेगन) साहित्य की सम्पत्ति उपयोग करने से रोका तब सन्त जेरोम[३] और सन्त आगस्तिन[४] दोनों ने उसका इस्तैमाल "प्रभु" और सत्य के कार्य में उचित बताया। और इस प्रकार चर्च प्राचीन लातीनी और इटली की सांस्कृतिक दाय का उत्तराधिकारी बन गया। अगला काल सन्त आगस्तिन का युग कहलाता है। इस युग में बड़ा साहित्य निर्माण (साहित्य निस्संदेह धार्मिक अथवा धर्ममण्डन-खण्डन का था) हुआ। सन्त आगस्तिन के अतिरिक्त अन्य "चर्च-पिताओं" सन्त जेरोम[५] और सन्त अम्ब्रोस[६] तथा पौलिनस[७] ने भी अपनी हृदयग्राहिणी कविताएँ लिखीं और दोनातस[८] तथा मार्तियानस कापेला[९] ने अपने मार्मिक प्रवचन। इन महान् ईसाई सन्तों और लेखकों की सैकड़ों रचनाएँ बाइबिल, आचार, सिद्धांत, दर्शन, प्रवचन आदि पर विद्यमान हैं जिनका बराबर अध्ययन हुआ है और जो यूरोप के मध्यकाल में ईसाई तत्वविवेचन के स्तम्भ बन गईं। सन्त जेरोम ने पहली बार बाइबिल का अनुवाद लातीनी में किया, सन्त आगस्तिन ने "द सिवितात देई" में ईसाई दर्शन और इतिहास का प्रणयन किया और उसके "कन्फेशन्स" (आत्मानुभूतियाँ) तो आत्मानुभूति और आत्मानुचिन्तन की अद्भुत पोथी है। सन्त अम्ब्रोस ने पहली बार पद्य-सूक्त का प्रयोग किया। सन्त जेरोम का गुरु दोनातस उस काल का प्रमुख वैयाकरण था और कापेला प्रधान भाषाशास्त्री। कापेला का "सातों ललित कलाओं" पर प्रस्तुत ग्रन्थ "द नुप्तीस फिलोलोगी एट मेरकुरी" शब्द शास्त्र के साथ ही शिक्षा के अनेक विषयों पर भी प्रकाश डालता है और मध्यकालीन यूरोप का तो वह अनिवार्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ बन गया था।

इस क्रिश्चियन-पेगन द्वन्द्ववाद से प्रजनित एक समन्वित साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्पदा उठ रही थी, तभी उसे एक और शक्ति का योग मिला। रोमन साम्राज्य के

---

१. Arnobius (३०३); २. Lactantius (२५०-३१०); ३. St. Jerome; ४. St. Augustine (३५४-४२०); ५. St. Jerome (३४५-४२०); ६. Ambrose (३४०-३७९); ७. Paulinus (३५३-४३१); ८. Donatus (४ बी. सी.); ९. Martianus Capella

आक्रांता जिन्हें रोमन "बर्बर" कहते थे, धीरे-धीरे ईसाई धर्म में दाखिल हो गए जिससे उस काल के साहित्य को एक और पाया मिला। इन सारे तत्वों को एकत्र कर उनको समष्टि-भूत एक पिण्ड बनाने का काम जिन धार्मिक साहित्यकारों ने किया, उनमें प्रधान थे—बीथियस[१] कासियोदोरस[२] सन्त बेनेदिक्त[३] और ग्रेगरी महान्[४]। इनमें से पहले दोनों ने प्राचीन ग्रीक–रोमन सम्पदा की रक्षा की। कासियोदोरस ने तो अरस्तू के "ओर्गानों" का जो संस्करण प्रस्तुत किया वह मध्ययुगीय ध्वनि की शिला भित्ति बन गया। उसके अध्यवसाय और साहित्यिक प्रयास से ईसाई–मठों में ज्ञान-शोध का कार्य शुरू हुआ और सन्त बेनेदिक्त की तद्विषयक योजनाओं ने तो उन मठों को विद्यापीठों का रूप दे दिया। इन दोनों के प्रोत्साहन से वहाँ ग्रंथों के अनुवाद हुए, विशेषतः हस्तलिपियाँ प्रस्तुत कर प्राचीन साहित्य की रक्षा की गई। ग्रेगरी ने ईसाई धर्म के संगठन में अचरज का काम किया। उसने तरतूलियन की शक्ति से पेगन-विश्वासों पर चोट की। उसकी निष्ठा इस ल्केक की न थी। उसके ग्रन्थों में जीवन को परलोक के योग्य बनाने का विशेष राग मिलता है। ग्रेगरी उस धर्म के विशिष्ट और महान् प्रचारकों में हो गया है।

सन्त इसीदोर[५] ने ज्ञान की दिशा को दूसरी ओर मोड़ दिया। उसने प्राचीन ज्ञान की रक्षा के लिए "एतिमालोगी" नाम का एक विश्वकोष रचा जो सदियों ज्ञानकोष का काम करता रहा। सेदूलियस[६] ने तभी ईसाई धर्म सम्बन्धी अनेक कविताएँ लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि आखिर पेगन साहित्य ही साहित्य नहीं, यद्यपि प्राचीन ऊँचाइयों को छू सकना उसके लिए असम्भव था। साहित्य के लौकिक भावतत्व निस्संदेह धर्म के विश्लेषण पर नहीं खड़े हो सकते। हाँ, फोरतुनातस[७] निश्चय ही काव्यकला में निष्णात था और उसने अपने मधुर सूक्तों द्वारा गायन को शक्ति दी। अब तक लातीनी की प्रधान शैली बिखर चली थी। विविध जातियों के योग से यह सम्भव न था कि उनकी अपनी अपनी भाषा-विशेषताओं के सामने क्लासिकल लातीनी अपने प्राचीन शालीन रूप की रक्षा कर सके। उसमें प्रभूत संकरता का प्रादुर्भाव होने लगा जो तूर्स के ग्रेगरी[८] की कृतियों में विशेषतः लक्षित है।

पश्चिमी यूरोप में साहित्य निर्माण-कार्य पहले आयर्लैंड और इंग्लैंड में आरम्भ हुआ। कोलम्बानस[९] और बीड[१०] ने अपने लातीनी ग्रन्थों में प्रभूत साहित्य का सृजन किया।

---

१. Boethius (४८०-५२५); २. Cassiodorus (४८०-५७०); ३. St. Benedict (४८०-५४७); ४. Gregory the Great (५४०-६०४); ५. St. Isidore of Seville (५७०-६३६); ६. Sedulius; ७. Fortunatus (५३५-६००); ८. Gregory of Tours (५३८-५३९); ९. Columbanus (५४३-६१५); १०. Bede (६७३-७३५)

बीड का "इंग्लैंड का धार्मिक इतिहास" तो उस काल के लातीनी साहित्य में शैली का एक नमूना माना जाता है। महान् सम्राट शार्लमान[१] का शिक्षामंत्री अल्कुइन[२] उस काल का अप्रितम ईसाई साहित्यकार था। शार्लमान स्वयं पढ़ा लिखा न होने पर भी विद्वानों का संरक्षक था और उसने बाइबिल और अन्य धर्मग्रंथों के पाठ सुधार को बड़ा प्रोत्साहन दिया। अल्कुइन के सहायक उस काल के प्रधान पंडित ये थे—थियोडल्फ[३], पॉल[४], अंगिल्बर्त[५], आइनहार्ड[६], लूपस सेरवातस[७]। उसी परंपरा का ह्राबानुस मारूस[८] भी था। वालाफिद स्त्रावो[९] ने तभी प्रकृति सम्बन्धी अपनी सुन्दर कविताएँ लिखीं और प्रतिभाशाली गायक कवि गोत्सचाक[१०] ने अपने सम्मोहक लिरिक। नवीं सदी में जान[११] (स्कॉट) और सेदूलियस स्कोतस[१२] (आयीरा) ने अपने ग्रीक ज्ञान का परिचय दिया। साम्राज्य के विभक्त हो जाने से निस्संदेह दसवीं सदी में ज्ञान और लातीनी साहित्य का ह्रास हुआ, फिर भी अनेक प्रतिभाएँ उस काल भी अपनी मेधा का प्रकाश फैलाती रहीं। गर्बर्त[१३] और भिक्षुणी ह्रात्स्विथा[१४] थे। गर्बर्त उस काल का प्रकाण्ड गणितज्ञ था और ह्रात्स्विथा साहित्यानुरागिणी कवियित्री भी थी। उसने रोमन तेरेन्तियस अफर का अनुकरण कर लातीनी में अनेक "कॉमेडी" लिखीं।

ग्यारहवीं सदी में यूरोप की जन-भाषाओं का उदय हुआ यद्यपि उन पर लातीनी का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि उनकी संज्ञा ही रोमान्स भाषा हो गई। स्वयं उन्होंने लातीनी पर अपना प्रभाव कुछ कम न डाला। यही युग विश्वविद्यालयों के उदय का भी था इन दिनों और यूरोप में अनेक विश्वविद्यालयों की प्रतिष्ठा हुई जहाँ साहित्य, विशेषत: धार्मिक लातीनी का निर्माण होने लगा। रोमान्स भाषाओं का उदय तो हुआ परन्तु सैद्धान्तिक निरूपण—विशेष कर धार्मिक—सभी लातीनी में ही होते थे, यद्यपि वह लातीनी "क्लासिकल" लातीनी से बड़ी भिन्न थी। विषयतत्व में भी अब अन्तर पड़ा। आन्सेलम[१५] ने धार्मिक पैम्फ्लेट लिखने शुरू किए। सन्त पीटर दामियान[१६] ने ने सिसेरो[१७] के विरोध में दर्शन शास्त्र लिखा। आबेला[१८] ने पेरिस यूनिवर्सिटी को अपना केन्द्र बनाया। उसकी "हिस्तोरिया कालामितातुम" उसके अपने दुःखों का विवरण है। प्राचीन क्लासिकल साहित्य का असाधारण पंडित और शैली में सिसेरो का अनुगामी सैलिस्बरी का जान[१९] आबेलार

---

१. Charlemagne; २. Alcuin (७३५-८०४); ३. Theodulf; ४. Paul; ५. Angilbert; ६. Einhard; ७. Lupus Servatus; ८. Hrabanus Maurus; ९. Walafrid Strabo; १०. Gottschalk; ११. John the Scot; १२. Sedulius Scottus; १३. Gerbert (लग०-१०००); १४. Hrotswitha; १५. Anselm of Bec; १६. St. Peter Damian; १७. Cicero; १८. Abailard (१०७९-११४२); १९. John of Salisbury (१११५-८०)

का शिष्य था। मध्यकालीन यूरोप का वह सबसे बड़ा विद्वान माना जाता है। क्लेफो का बर्नार[1] इस युग का स्तुत्य चर्चपिता है जिसके तप और तप-पूत तथा रहस्यवादी ग्रन्थों ने सारे यूरोप को प्रभावित किया। फिर भी उस काल का सबसे ऊँचा व्यक्तित्व सन्त तामस अक्विनस[2] का है। उसकी कृति "सुमा थियोलोजिका" की उपमा मध्यकालीन चर्च की गोथिक इमारत से दी गई है जो अपने वास्तु में सर्वत्र पूर्ण है, जिसमें कहीं कोई खामी नहीं। कहते हैं कि सिसेरो के समय दार्शनिक विवेचन के लिए लातीनी उपयुक्त न थी। उसे दर्शन का सही वाहन इसी सन्त तामस ने अपनी महान मेधा से बनाया। सदियों इस महापुरुष के साहित्य का अनुशीलन हुआ है। मध्यकालीन यूरोप में जो चर्च और स्टेट के बीच निरन्तर दार्शनिक युद्ध हुआ था। उसमें भाग लेने वालों में सबसे महान् सन्त तामस ही था।

बारहवीं-तेरहवीं सदी में काव्य की प्रभूत साधना हुई। ओविद[3] विशेष लोकप्रिय हुआ। उसका फ्रेंच और अंग्रेजी कविता के विषय और रूप दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसका अनुकरण भी खूब हुआ। मध्यकालीन यूरोप का सबसे महान् कवि दांते[4] है। उसकी प्रधान कृति तो निश्चय ही इतालियन भाषा में है। 'दिवीना कोमेदिया" (दिव्य कॉमेडी) परन्तु उसकी लातीनी रचनाएँ भी बड़ी सुन्दर हैं। फिर भी वह इतालियन भाषा का हिमायती था और उसके पक्ष साधन के लिए उसने अपनी प्रसिद्ध लातीनी कृति "दि वुल्गारी एलोक्वेन्तिया" लिखी। दांते के साथ ही यूरोपीय मध्य-युग का अन्त हो गया। उसके बाद पुनर्जागरण का युग आरम्भ हुआ।

रेनेसां (पुनर्जागरण) के युग में प्राचीन ग्रीक और रोमन संसार की कला, साहित्य, विचार धारा के प्रति नई चेतना, नई अभिरुचि उत्पन्न हुई। हालेंड के टामस केम्पिस[5] ने मध्ययुगीय शैली में अपना "इमितातियो क्रिस्ती" लिखा। फ्रान्सिस्कस पेत्रार्का[6] ने पहलीबार यूरोप में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज शुरू की। उसने अपने पत्रों की शैली सिसेरो की शैली (अक्तिकस को पत्र) पर अवलम्बित की। उसने अपने प्रारम्भिक "सॉनेटों" को छोड़ बाकी सारी मुख्य रचनाएँ लातीनी में कीं। उसके पत्र, उसका एपिक सभी लातीनी में हैं। एपिक तो वर्जिल का अनुयायी है। सिसेरो और क्विन्तिलियन धीरे-धीरे फैशन हो गए। कोई बगैर उन्हें पढ़े-रटे शिक्षित नहीं कहलाता था। "एलोक्वेन्तिया" से प्रभावित होने का अर्थ था लातीनी धाराप्रवाह बोलना। फिर तो लातीनी पढ़ाने वाले अनेक शिक्षक उत्पन्न

---

१. St. Bernard of Clairvaux (१०९०-११५३); २. St. Thomas Aquinas (१२२४-७४); ३. Ovid; ४. Dante (१२६५-१३२१); ५. Thomas Kempis (१३८०-१४७१); ६. Franciscus Petrarca (१३०४-१३७४)

हो गए। वल्ला[1] ने अपनी पुस्तक "एलिगान्ती सेरमोनिस लातीनी" में मध्य-युग की बर्बता को धिक्कारा और सिसेरो आदि की शैली को सराहा। उसी परंपरा का पोप लियो दशम का सेक्रेटरी बेम्बो[2] भी था। परन्तु इस दिशा में मुरेतस[3] सबसे स्तुत्य था। उसने सिसेरो के असामान्य शब्दों के प्रयोग से अपने आलोचकों को चक्कर में डाल दिया। उत्तर में आक्सफोर्ड का प्रसिद्ध पंडित और ग्रीक तथा लातीनी का परम उपासक एरैस्मस[4] हुआ। वह उस काल के प्रसिद्ध मानवतावादियों में अग्रणी था।

सोलहवीं सदी में भी रेनेसां के भावुक अनुयायी लातीनी में ही लिखते रहे। उनमें प्रसिद्ध दो स्कालीगर्स,[5] कासोबन,[6] लिप्सियस[7] और सल्मासियस[8] थे। सत्रहवीं सदी में अद्भुत आलोचक रिचार्ड बेन्टली[9] हुआ जिसने केम्ब्रिज के आधार से सारे यूरोप के रेनेसांवादियों को प्रभावित किया। मिल्टन[10] ने अपनी कविता तो अधिकतर लातीनी में ही लिखी, उसका आधे से ज्यादा गद्य भी लातीनी में ही लिखा गया। आरम्भ में उसने पद्य भी लातीनी में ही लिखा। उसके अधिकतर निबन्ध, पत्र, धार्मिकग्रंथ, तर्क सम्बन्धी पुस्तक सब लातीनी में ही लिखी गईं। इसी प्रकार बेकन[11] अपनी सूत्रवत् चुस्त शैली के प्रसिद्ध निबन्धों के लिए अंग्रेजी को अपने विचारों का वाहन न बना सका। उसने अपना "नोवम आर्गेनन" और न्यूटन[12] ने अपना "प्रिन्सिपिया" लातीनी में ही लिखाऔर लातीनी में ही जेसुइतों का प्रसिद्ध "आक्ता सांक्तोरम" लिखा गया। लिपिशास्त्र धर्मशास्त्र, आचार-व्यवस्था सब लातीनी में ही हैं। जेसुइतों में कविताएं बराबर लातीनी में ही लिखी जाती थीं। सारबिव्स्की[13] ने लातीनी में एक एपिक और लिरिकों की चार पोथियाँ लिखीं। इसी प्रकार रीपिन[14] ने वाटिकाओं पर एक लम्बी कविता लिखी। आन्द्रियास स्कॉट[15] ने गद्य-पद्य दोनों लातीनी में लिखे और उस भाषा की अनेक हस्तलिपियाँ सम्पादित कीं तथा पाठ शुद्ध किए। हारदुइन[16] मुद्राशास्त्र के प्रारम्भिक जानकारों में से हैं। उसने अपने अनेक ग्रंथ इस विषय पर लातीनी में लिखे, साथ ही अनेक धर्मशास्त्र पर भी।

अब विविध देशों को अपनी-अपनी भाषा के साहित्य प्रस्तुत हो जाने से लातीनी की विशेष महत्ता न रही। उन्नीसवीं सदी तक उसका विशेष प्रभाव था। वैसे आज भी अनेक

---

१. Valla (१४०७-१४५७); २. Bembo (१४७०-१५४७); ३. Muretus (१५२६-८५); ४. Desiderius Erasmus; ५. Scaligers; ६. Casaubon; ७. Justus Lipsius; ८. Salmasius; ९. Richard Bentley; १०. Milton; ११. Bacon; १२. Newton; १३. Sarbiewski; १४. Rapin; १५. Andreas Schott; १६. Hardouin

यूरोपीय और अमेरिकन विश्व विद्यालयों में थीसिस कुछ विषयों में लातीनी में ही दी जाती है। पोप के वैटिकन राज्य के विधान लातीनी में ही होते हैं और मठों में अनेक ईसाई विद्वान आज भी लातीनी में लिखना अपना धर्म समझते हैं। फिर भी उसका इधर काफी ह्रास हुआ है और उसके पुनर्जागरण की कोई आशा नहीं।

२३. संस्कृत, पाली और प्राकृत

संस्कृत

: १ :

वैदिक साहित्य

संहिता-काल

'संस्कृत', जिसे श्रद्धालु हिन्दू देववाणी कहता है, हिन्दी यूरोपीय भाषा की प्राचीनतम शाखा है और "वेद" उसका प्राचीनतम साहित्य। "वेद" "विद्" धातु से बना है जिसका अर्थ है "जानना"; इसी से "वेद" का अर्थ हो गया है ज्ञान जो दैवी आधार से उठा। भावुक श्रद्धालु वैदिक ज्ञान को मनुष्यकृत न मानकर ईश्वरकृत मानता है। इसी से वेद का दूसरा नाम "श्रुति" भी पड़ा, अर्थात् वह ज्ञान जो सुना गया, 'इलहामी'। श्रुति का ज्ञान उस ज्ञान से पृथक् है जो "स्मृति" कहलाता है, स्मृति अर्थात् ज्ञान जो याद रखा गया। श्रुति ज्ञान अपरिवर्तनशील शाश्वत है। स्मृति ज्ञान श्रुति पर अवलम्बित है, उसी का अनुकारी, उसी की याद है वह। जो उसके अनुकूल नहीं है वह स्मृति नहीं है, क्योंकि वह "मूल की याद" नहीं। स्मृति ईश्वरकृत श्रुति के विपरीत मनुष्यकृत है। श्रुति से एक और स्थिति का बोध होता है, उस अलिखित साहित्य का जो केवल सुनकर याद रखा गया। लिपि और लेखन का उस अति प्राचीन काल में अभाव होने से वह सदियों मौखिक रूप से ही संरक्षित हुआ और उसका ज्ञान पिता पुत्र को अथवा गुरु शिष्य को उच्चारण द्वारा कराता था। श्रुति "सुनी हुई" तो कही ही जाती है, प्राचीन आचार्यों ने उस ज्ञान को देखा हुआ भी माना है। आखिर उसके संहितामंत्रों का सम्बन्ध ऋषियों से है, ऋषियों को मन्त्रकार कहते हैं परन्तु उस रूप में नहीं जिस रूप में कवि छंद की रचना करता है बल्कि दृष्टा के रूप में। ज्ञान पहले से था, वह केवल "देखा गया" इसी से ऋषियों की परिभाषा में कहा भी गया है:—साक्षात्कृत धर्माणः ऋषयः. मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः।

जो भी हो वेद भारतीय आर्यों और हिन्दुओं के धर्म और धार्मिक साहित्य के प्रधान स्रोत और आदि बिन्दु माने जाते हैं और उन्होंने हजारों वर्षों से उनका आदर पाया है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद। इनमें से पहले तीन विशेष श्रद्धा के केंद्र थे और एक साथ "त्रयी" कहलाते थे। अपने प्रतिपादित विषय के कारण शायद अथर्ववेद को बहुत काल तक "त्रयी" का आदर नहीं मिला था। अब वह भी चारों वेदों में से एक है।

वेदों की शुद्ध श्रुति मंत्रों में है, छंदोबद्ध सूक्तों में। यद्यपि यजुर्वेद के अनेकांश गद्य में भी हैं। इन्हीं मंत्रों-सूक्तों का संग्रह "संहिता" कहलाता है। बहुत काल तक ये मंत्र विविध पुरोहित परिवारों की निधि थे और यत्रतत्र लोगों की स्मृति मात्र में बिखरे थे, पश्चात् इन्हें एकत्र कर लिया गया और वही एकत्र किया हुआ साहित्य "संहिता" कहलाया। चार वेद वस्तुतः. शुद्ध रूप में यही चार संहिताएँ हैं। इन चारों में प्राचीनतम "ऋग्वेद" है, हिन्दी-यूरोपीय आर्यों की प्राचीनतम पुस्तक। "ऋग्वेद" अधिकांश में अन्य तीनों संहिताओं का मूलाधार भी है। "सामवेद" के केवल ७५ मंत्र अपने हैं, शेष ऋग्वेद के हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद के भी अधिकतर मंत्र ऋग्वेद के हैं और अथर्ववेद का भी बीसवाँ भाग उसी आधार का ऋणी है।

"ऋग्वेद" दस मंडलों में विभक्त है, मंडल अनेक अनुवाकों (अध्यायों) में, अनुवाक सूक्तों में और सूक्त मंत्रों में। सूक्तों के विषय विविध हैं—देवस्तुति, दानप्रशस्ति, कुलेतिहास आदि। और इनके क्रम में स्थान-स्थान पर अभिराम कवि-ग्रन्थि खुल पड़ी है। विविध ऋषिकुलों में विविध वेदों का अध्ययन होता था और यह स्वाभाविक था कि अलिखित साहित्य केवल मौखिक होने के कारण वितरित होते समय उच्चारणादि भेद से पाठभेद प्रस्तुत कर दे। इसी से ऋषि–"चरणों" की अपनी अपनी वेद–"शाखाएं", बन गईं। ऋग्वेद की जो शाखा आज उपलब्ध है उसे "शाकल" शाखा (शौनक की) कहते हैं। उसमें १०२८ सूक्त (अनेक मंत्रों का एक सूक्त होता है) हैं, और १०,६०० मंत्र। ये सूक्त सदियों के काल–विस्तार में रचे गए, अनेक ऋषियों द्वारा अनेक कालस्तरों में। इसी से ऋग्वेद के पहले ही सूक्त में प्राचीन और नूतन ऋषियों का उल्लेख हुआ है।

ऋग्वैदिक आर्यों के देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रायः मानुष रूप थे। उनकी चेष्टाएँ मानुष थीं। देवता अनेक थे, एकेश्वर वाद की कल्पना अभी नहीं हुई थी। इन देवताओं के तीन प्रकार थे। उच्चतम स्वर्ग अथवा आकाश के देवता–द्यौस, वरुण, मित्र, सूर्य, सवितृ, पूषन् (पिछले चारों सूर्य के ही अंश विशेष या नामान्तर थे) अश्विन (अश्विनी कुमार) और देवियाँ उषस और रात्रि, अन्तरिक्ष के देवता-इन्द्र, रुद्र, मरुत, वायु, पर्जन्य, और पृथ्वी के देवता–अग्नि, सोम और पृथिवी (देवी)। इनके अतिरिक्त अनेक देवता-देवी और थे। यह देवकुल द्यौस और पृथ्वी की सन्तान थे। अनेक अमूर्त देवी-देवताओं का उल्लेख भी हुआ है और नद-नदी, देव-देवियों के प्रति भी मंत्र कहे गए हैं। आर्यों का धर्म यज्ञ-परक था और यज्ञों में पशुबलि भी दी जाती थी। यज्ञावसर पर मंत्र और सूक्त देवताओं की स्तुति में गाए जाते थे और यज्ञपूत मांस खाया जाता था, सोम पिया जाता था। पुरोहितों की परंपरा आवश्यकतावश निरन्तर बढ़ती ही गई।

अनेक सूक्तों में डायलॉग का प्रयोग हुआ है, जैसे यम-यमी में, इन्द्र-इन्द्राणी में, पुरूरवा–उर्वशी में। इनमें से अन्तिम को तो महाकवि कालिदास ने उत्तरकाल में अपने

नाटक "विक्रमोर्वशी" का आधार बनाया। वस्तुत: संस्कृत नाटकों का मूल इन ऋग्वैदिक डायलॉगों को ही बताया जाता है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, सूक्त छंदोबद्ध मंत्रों में ह। प्रत्येक मन्त्र में साधारणत: "चार पद हैं। छंदों में विशेषत: "त्रिष्टुभ" "गायत्री" और "जगती" का उपयोग हुआ है। "ऋग्वेद" की भाषा प्राचीनतम आर्यों की साहित्यिक भाषा है जिसका अन्तिम रूप "क्लासि-कल" संस्कृत में निखरा, 'जिसका व्याकरण पाणिनि ने प्रस्तुत कर उसे निश्चित रूप दिया। सरल सम्मोहक भाषा में ऋग्वेद के अनेक सूक्त अत्यन्त मार्मिक हैं। ऊषा के प्रति गाए गए छंद लिरिक के रूप में प्राचीन साहित्य में अनुपम हैं। इन्द्र वाले मन्त्र शक्ति के परिचायक हैं और वरुण सम्बन्धी असामान्य शालीन। दसवें मण्डल में एक अत्यन्त मनोरम सूक्त (३४) जुआरी का है। हृदयस्पर्शी गायन में उसने द्यूत सम्मोहक आकर्षण का करुण वर्णन किया है। मृत्यु सम्बन्धी कविताएँ गम्भीर और रहस्यवादी हैं और वागम्भृणी की नितान्त ओजस्विनी। इन ऋग्वैदिक मन्त्रों की रक्षा के लिए ऋषियों ने 'पद' 'क्रम' 'जटा', 'घन' आदि पाठों का निर्माण किया। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ही वह प्रसिद्ध "पुरुष सूक्त" है जिसमें वैदिक साहित्य में पहली बार वर्णों के उदय का उल्लेख हुआ है। "सामवेद" गेय मन्त्रों की संहिता है। इसमें ७५ ऋचाओं को छोड़ शेष सभी "ऋग्वेद" की हैं। (विशे-षत: उसके आठवें-नवें मण्डल से आकृष्ट) इनको उद्गातृ और उसके सहकारी पुरोहित यज्ञ के अवसर पर गाते थे। इस संहिता की तीन शाखाएँ—'राणायनीय' 'जैमिनीय' और 'कौथुम' इसके दो भाग हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। "यजुर्वेद" केवल यज्ञ-मन्त्रों की संहिता है। इसकी अनेक शाखाएँ थीं परन्तु अब इसकी केवल पाँच शाखाएँ मिलती हैं—चार "कृष्ण" यजुर्वेद की और एक "शुक्ल" यजुर्वेद की। कृष्ण यजुर्वेद में यजुस (यज्ञपरक मन्त्र) और स्तुतियों के साथ-साथ अनेक स्थल पर उनकी गद्यात्मक व्याख्या भी है जिन्हें "ब्राह्मण" कहते हैं और शुक्ल में ये ब्राह्मण पृथक् कर दिए गए हैं जो एकत्र होकर "शतपथ" ब्राह्मण कहलाते हैं।

"अथर्ववेद" की नौ शाखाओं में से आज केवल दो—"पैप्पलाद" और "शौनकीय" उपलब्ध हैं। शौनकीय शाखा बीस मण्डलों ७३१ सूक्तों और ६००० पंक्तियों में संग्रहीत है। इसके अनेकांश ऋग्वेद से लिए गए हैं परन्तु इसके कुछ अंश अनुवृत्त और परंपरा के रूप में सम्भवत: ऋग्वेद से भी प्राचीन हैं। इस संहिता के अधिकतर मन्त्र झाड़ फूँक, मारन उच्चाटन, भूत-प्रेत, रोग व्याधि सम्बन्धी मंतर हैं। उससे स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक आर्यों की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना में अब तक प्रभूत अन्तर पड़ गया था। अथर्ववेद के भी अनेक स्थल अत्यन्त मार्मिक हैं। वरुण के प्रति कहे कुछ मन्त्र (४, १०) तो अपनी शालीनता में समूचे वैदिक-साहित्य में अपनी जोड़ नहीं रखते। माता भूमि सम्बन्धी सूक्त (१२,१,६३) भी देश प्रेम का रोमांचक आदर्श प्रस्तुत करता है। इसमें कुछ बड़े महत्व के

मन्त्र राज्यारोहण सम्बन्धी भी हैं जिनका उपयोग राज्यारोहण के समय हिन्दू राजा बराबर करते रहे हैं। उस वेद में पहले-पहल "इतिहास-पुराणों" का उल्लेख हुआ है।

वेदों का काल-निर्णय बड़ा कठिन है और इस विषय पर भी मत अनेक हैं। यह तो असन्दिग्ध है कि ऋग्वेद उनमें प्राचीनतम है और अथर्ववेद सबसे पीछे का। स्वयं ऋग्वेद संहिता के अनेक कालान्तर हैं और उसके मंत्रों के रचयिता-द्रष्टा ऋषियों तथा दान-स्तुतियों के नायक कुलागत राजाओं की परंपरा से प्रगट हो जाता है कि उसके मन्त्रों की रचना अनेक पीढ़ियों में हुई है। फिर मंत्रों का रचना-काल भी स्वाभाविक ही संहिता काल से भिन्न है। सर्वांगीय दृष्टि से ऋग्वेद का रचनाकाल ३००० ई० पू० और १३०० ई० पू० के बीच माना जा सकता है। सम्भव है उस वेद के प्राचीनतम मंत्र ३००० और २५०० ई० पू० में कभी रचे गए हों। राजा शान्तनु आदि महाभारतकालीन राजाओं का उसमें उल्लेख होने से यह भी सिद्ध है कि उसका अन्तिम अंश चौदहवीं शती ई० पू० से पहले नहीं रखा जा सकता। "अथर्ववेद" निश्चय ही बहुत पीछे का है और मंत्रों के रचना काल में भी परस्पर सदियों का अन्तर है। उसके समाज, संस्कृति, भूगोल आदि को देखते हुए उसकी रचना और पीछे संहिता का समय ई० पू० १००० के लगभग होना चाहिए। संभवतः उसके मंत्रों की वर्तमान संहिता तब तक प्रस्तुत हो चुकी थी।

उत्तरकालीन वैदिक साहित्य

ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्

"ब्राह्मण" वेदमंत्रों की व्याख्या और यज्ञ सम्बन्धी टीकाएँ हैं। यज्ञ के अवसर पर जो अनेक बार विधि की कठिनाइयाँ हो जाती थीं, उन्हीं के समाधान के लिए समय-समय पर सम्भवतः ये "ब्राह्मण" लिखे गए। इनमें सृष्टि सम्बन्धी उन कथाओं पौराणिक आख्यानों आदि का भी उल्लेख है जो यज्ञों से सम्पर्क रखती थीं। इनमें विशेषतः पुरोहितों को उनकी विधि-क्रियाओं के सम्बन्ध में विधिपरक अनुशासन भी मिलते हैं। वस्तुतः ब्राह्मणों—पुरोहितों के पेशे सम्बन्धी इसमें भेद बताए गए हैं जिनसे इनकी संज्ञा "ब्राह्मण" सार्थक जान पड़ती है। ये ज्ञानग्रंथ नहीं यज्ञग्रंथ हैं, पौरोहित्य के। "ब्राह्मण" गद्य में लिखे गए और संस्कृत गद्य की प्राचीनतम कठिन शैली प्रस्तुत करते हैं। उनमें बीच-बीच में पद्यबद्ध "गाथाएँ" भी दी हुई हैं। सम्भवतः प्रत्येक वेद की प्रत्येक शाखा के अपने-अपने ब्राह्मण थे। प्राचीनतम ब्राह्मण के एक रूप का दर्शन हमें कृष्ण यजुर्वेद के गद्यांशों में होता है। साधारणतः प्राचीनतम ब्राह्मण "पंचविंश" "तैत्तिरीय," "ऐतरेय", "जैमिनीय" और "कौषीतकि" माने जाते हैं, फिर "शतपथ" तब अथर्ववेद का "गोपथ" और अन्त में सामवेद के लघु ब्राह्मण। उनमें वेदों में आई आख्यायिकाएँ आदि विशेष रूप से महत्व धारण कर लेती हैं। "शतपथ" ब्राह्मण में अक्कादी साहित्य की जलप्रलय की कथा भी (जो वहाँ "गिल्गमेश" काव्य में

मिलती है) कही गई है। अन्तर बस इतना है कि उसमें अक्कादी जिउदुस्सू के स्थान पर नायक मनु है जो अपनी रक्षा के बाद यज्ञ के लिए "असुर-ब्राह्मण" को पुरोहित बनाता है। यह जलप्रलय (ई० पू० ३२०० के लगभग सुमेर (इराक का दक्षिणी भाग दजला-फरात का मुहाना, ऊर, उरूक आदि नगरों में) हुआ था। "गिलगमेश" ई० पू० २००० के पहले लिखा गया और शतपथ ब्राह्मण ई० पू० १००० और ८०० के बीच कभी। "ब्राह्मणों" में देवता वेदों के ही हैं परन्तु प्रजापति (यज्ञ का देवता और उसका स्वरूप) धीरे-धीरे प्रबल हो गया है। प्रजापति स्वयं यज्ञ है और यज्ञविधि का सर्वतः जानकार पुरोहित ब्राह्मण स्वयं देवता है।

"ब्राह्मणों" के अन्तिम अंश "आरण्यक" कहलाते हैं। विद्वानों का मत है कि इनका रहस्यमय ज्ञान अरण्य के एकान्त में शिष्य को दिया जाता था, इसी से इनका यह नाम पड़ा। उपनिषदों का भी अधिकतर यही अर्थ है। आरण्यक और उपनिषद् दोनों कभी "वेदान्त" कहलाते थे। बाद में यह संज्ञा केवल उपनिषद्-दर्शन की हो गई। प्रायः २०० उपनिषद् आज हमें उपलब्ध हैं। इनमें अनेक विविध सम्प्रदायों के हैं और प्राचीनों में भी काफी सामग्री बाद में मिलाई गई है। उपनिषदों में दार्शनिक विवेचन और रहस्यमय प्रसंगों के अतिरिक्त प्रणय-प्रसंग और रोग-मंत्रादि भी हैं (कौषीतकि और छांदोग्य)। उपनिषदों में ब्राह्मण-कर्मकाण्ड के विरुद्ध साफ विद्रोह प्रगटित है। यज्ञपरक धर्म के स्थान पर उसमें दार्शनिक चेतना और ज्ञान का प्रतिपादन हुआ है। ब्रह्म-आत्ममय जगत् का प्रतिपादन हुआ है। काशी के अजातशत्रु और गार्ग्य बालाकि के बीच, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी में और नचिकेता के उपाख्यान में भारतीय दर्शन का बीज उपलब्ध है यद्यपि इस बीज का कोई न कोई रूप स्वयं ऋग्वेद में भी झलक जाता है। उपनिषद्विद्या के द्रष्टा क्षत्रिय हैं, ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड और पौरोहित्य के विरोधी। उन्होंने रक्तहीन यज्ञ-बौद्धिक चिन्तन और ज्ञान को उत्तम माना जिसकी पराकाष्ठा जैन और बौद्ध धर्मान्दोलनों में हुई। ऋग्वेदिक काल में ही ब्राह्मण-क्षत्रियों में जो पारस्परिक द्वन्द्व चला आता था उपनिषद् उसी की परिणति थे। उनके सिद्धांतों का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा। ग्रीस के नौ अफलातूनी और सोफी सिद्धांत, सिकन्दरिया आदि के ईसाई दर्शन और ईरान-अरब के सूफी चिन्तन वेदान्त से ही प्रभावित माने जाते हैं। उपनिषदों में अनेक स्थल काव्य के निखरे प्रसाद-गुण-युक्त रूप हैं। शैली प्राचीन और कभी-कभी प्रसंगवश दुरूह होती हुई भी सरल और शालीन है। भाषा और छन्द के रूप में उपनिषदों की भूमि वैदिक और "क्लासिकल" संस्कृत के बीच की है। कुछ प्रामाणिक उपनिषदों के नाम हैं—कौषीतकि, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, मैत्रायणीय, कठ, मुण्डक, और माण्डुक्य।

वेदांग

"श्रुति" का बाह्य परिमाण उपनिषद् है। वस्तुतः अनेक तो संहिताओं तक ही

उसकी सीमा मानते हैं। वेदांगों का प्रकाश और विकास वेदों के अध्ययन के लिए हुआ, उनके अध्ययन में इनसे सहायता मिली। वेदांग ६ प्रकार के हैं। —शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष्। इन सभी पर आज अलग-अलग प्रभूत साहित्य संस्कृत में प्रस्तुत है जो अनेक रूप से विज्ञान का स्थान ग्रहण कर चुका है। इनमें शिक्षा में उच्चारण आदि पर प्रकाश डाला गया है, कल्प में यज्ञ और समाज सम्बन्धी विधि-निषेध है, व्याकरण में भाषा का निदान है, निरुक्त शब्दशास्त्र अथवा कोषविज्ञान का आरम्भ करता है, छन्द वैदिक छन्दों पर विचार कर परवर्ती "मीटर" पर शास्त्रीय विवेचन है और ज्योतिष् तत्सम्बन्धी ज्ञान का निरूपण करता है। इन वेदांगों पर ग्रन्थ सूत्र पद्धति से लिखे गए। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक विचार और भाव भरे गए।

सूत्र विचारों के सांकेतिक बीज हैं। इस साहित्य शैली का उदय केवल संस्कृत में हुआ, संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं। यह सूत्र-सरणि भाषा की सुईकारी है। सूत्रों का अनेकार्थ में निर्माण-काल ब्राह्मणों, आरण्यकों का ही है। उन्हीं के अधिकतर वे विकास हैं। उन्हीं के आचार्य आश्वलायन, शौनकादि के रूप में इनके भी प्रारंभिक प्रणेता हैं।

सबसे महत्व का वेदांग कल्प है। कल्प (यज्ञविधि—निरूपण) सभी वैदिक चरणों के अपने-अपने थे। इनके तीन मुख्य भाग हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। श्रौत सूत्रों में विविध वैदिक यज्ञों के विधान हैं—अग्निहोत्र सोमज्ञ आदि विभिन्न यज्ञों का। इन्हीं के एकांश (अन्त्यांश) "शुल्वसूत्र" भारतीय गणित का (यज्ञ-वेदी के माप आदि द्वारा) प्रारम्भ करते हैं। गृह्यसूत्रों में गृह और शरीर संबंधी आचार का विचार और वर्णन है। उसमें ४० संस्कारों का निरूपण है जिनमें सोलह शरीर से संबंध रखते हैं। ये संस्कार वस्तुतः मनुष्य के जन्म से भी पहले शुरू होकर उसकी मृत्यु के बाद तक चलते रहते हैं। धर्म सूत्रों में सामाजिक और धार्मिक क्रियाओं के संबंध में विधि-निषेध प्रस्तुत हैं। राजधर्म विविध वर्ण धर्म, दण्डनीति उसके विषय हैं। व्याकरण आदि के सूत्रग्रन्थ वस्तुतः विज्ञान से तात्पर्य रखते हैं और उनका उल्लेख यथा स्थान किया जायेगा।

: २ :

इतिहास-पुराण

ऐतिहासिक काव्य

"इतिहास-पुराण" का उल्लेख "अथर्ववेद" में हुआ है। जहाँ तक पौराणिक आख्यायिकाओं आदि का संबंध है, वे तो वेदों और ब्राह्मणों आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलती ही हैं, संस्कृत के दो प्राचीन महाकवियों के नायकों और उनके कुलों का भी संकेत वहाँ किसी न किसी रूप में मिलता है। ऐतिहासिक काव्य की सूत परंपरा किसी न किसी रूप में वैदिक

काल में कायम थी और चारणों की भाँति सूत अथवा अन्य गायक उन्हें यत्र-तत्र गाया करते थे। फिर एक दिन वह कवि वाल्मीकि उत्पन्न हुआ जिसने भारत और संस्कृत को उसका पहला महाकाव्य "रामायण" दिया। "रामायण" से पहले भी संस्कृत में कोई महाका-य था इसमें विद्वानों ने सन्देह किया है, यद्यपि उसके होने का संकेत मिलता है। द्वितीय शती ई. पू. के पतंजलि ने अपने "महाभाष्य" में वाल्मीकि के ही पूर्व-पुरुष च्यवन के रामकाव्य से दो श्लोक उद्धृत किए हैं। और प्रथम शती ईस्वी के बौद्ध-साहित्य-कार और दार्शनिक अश्वघोष ने अपने "बुद्धचरित" में लिखा है कि किस प्रकार वाल्मीकि रामायण की रचना में अपने पूर्वज च्यवन से प्रौढ़तर सिद्ध हुए। जो भी हो आज जो रामायण हमें उपलब्ध है वह एक कवि की कृति है और उसका रचयिता वाल्मीकि परंपरया "आदिकवि" कहलाता है। प्रगट है कि वाल्मीकि के आदि कवि होने से 'रामायण' भी संस्कृत का आदिकाव्य हुआ। रामायण की चुस्त और शालीन शैली तथा उसकी कथा की एक और प्रधान स्रोतज धारा प्रमाणित करती है कि उसका रचयिता वाल्मीकि अथवा जो कोई रहा हो, रहा वह अकेला। रामकथा को उसने काव्य का रूप देकर खड़ा किया। फिर धीरे-धीरे और कथाएँ भी उसके आकार में आ मिलीं।

रामायण की मूल कथा इस प्रकार है। अयोध्या के राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। कौशल्या के पुत्र राम ने अपने गुणों से प्रजा का मन हर लिया था और अवस्था ढल जाने पर दशरथ ने राम को युवराज बनाने का निश्चय किया इसी बीच कैकेयी की दासी मन्थरा ने उसे फुसलाकर अपने पुत्र भरत के लिए राजगद्दी माँगने को मजबूर कर दिया। कैकेयी की एक पुरानी सेवा के बदले राजा ने उसे वर देने का वचन दिया था जो कैकेयी ने भरत को गद्दी और राम को चौदह वर्ष के वनवास के रूप में माँगा और राजा को देना पड़ा। राम अपनी प्रिय पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ बन चले गए। भरत मामा के यहाँ थे। पिता राम का वियोग न सह परलोक सिधारे तब श्राद्ध में आने पर जब भरत को अपनी माँ का कृत्य मालूम हुआ तो वह भागे हुए वन पहुँचे और भाई को मना लेने के बड़े प्रयत्न किए। परन्तु जब राम पिता का वचन मिथ्या करने पर राजी न हुए तब भरत उनकी खड़ाऊँ लेकर लौट आए और उसे गद्दी पर रख प्रतिनिधि के रूप में प्रजा-पालन करने लगे। उधर लंका के राक्षस राजा रावण ने राम की सुन्दर पत्नी सीता को हर लिया। राम और रावण में भयानक युद्ध हुआ जिसमें रावण को सपरिवार मारकर राम ने सीता का उद्धार किया। फिर चौदह वर्ष बीत जाने पर वह अयोध्या लौटे। रामायण का प्रस्तुत आकार ई. पू. २०० के लगभग सम्भवतः समाप्त हो गया था। कुछ आश्चर्य नहीं यदि उसका प्रधान कथाकाव्य ई. पू. के लगभग ही समाप्त हो गया हो।

रामायण गार्हस्थ्य-गुणों का अद्भुत काव्य है। आज का हिन्दू परिवार अपने

सामाजिक आदर्शों के लिए रामायण की ओर ही देखता है । उसका पिछले काव्यों पर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा है। लगातार पश्चात्कालीन कवियों ने उससे अपनी कृतियों के लिए सामग्री ली है। उसकी भाषा सरल है और शैली शालीन। उसमें अधिकतर श्लोक छन्द का उपयोग हुआ है। उसके अनेक स्थल इतने मार्मिक हैं कि हृदय करुणा से ओतप्रोत हो जाता है।

रामायण की घटना ऐतिहासिक है या नहीं, है तो कब घटी, इस पर प्रबल मतभेद है। उसे ऐतिहासिक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उसका घटना-काल ई. पू सोलहवीं-पन्द्रहवीं शती हो सकता है।

संस्कृत का दूसरा प्रधान काव्य (एपिक) "महाभारत" है। महाभारत रामायण के विपरीत अनेक लेखनियों की उपज जान पड़ता है। कुछ बृहदाकार है, प्राय: एक लाख श्लोकों में सम्पन्न इसी से पाँचवीं सदी ईस्वी के एक गुप्तकालीन लेख में उसे "शतसाहस्री-संहिता" कहा भी गया है। उसकी मूल कथा इस प्रकार है—विचित्रवीर्य के मरने पर उसके पुत्र धृतराष्ट्र के जन्मांध होने के कारण उसका कनिष्ठ पुत्र पाण्डु राजा हुआ। उनकी असमय मृत्यु से धृतराष्ट्र कुरुओं की गद्दी पर बैठे। फिर अपने भतीजे युधिष्ठिर के गुणों पर मुग्ध होकर उन्होंने उन्हें युवराज घोषित किया। इस पर उसका पुत्र दुर्योधन ईर्ष्यालु होकर अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगा। तब पाण्डु के पुत्र पाण्डवों को भागना पड़ा। इधर-उधर जब वे घूम रहे थे तभी राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर हुआ और अर्जुन ने द्रौपदी को जीत कर अपनी और अपने भाइयों की उसे पत्नी बना लिया। फिर द्रुपद के बीच-बचाव से धृतराष्ट्र ने राज्य कौरवों और पाण्डवों में बाँट दिया। कौरवों की राजधानी प्राचीन कुरुओं की हस्तिनापुर हुई और पांडवों ने जंगल साफ कर इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया, परन्तु जब दुर्योधन से उनका वैभव न देखा जा सका तब एक दिन पाण्डवों को धोखे से जुए में हराकर उसने उनका राजपाट और पत्नी तक जीत लिया। बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास-पाण्डवों को करना पड़ा। बाद में जब लौट कर उन्होंने अपना राज्य माँगा तब दुर्योधन उन्हें सुई की नोक बराबर भूमि देने को भी तैयार न हुआ और कौरव-पाण्डवों में लड़ाई ठन गई। अठारह दिनों तक प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में तुमुल युद्ध हुआ जिसमें सारे कौरव और उनके मित्र तथा पाण्डवों के अनेक सम्बन्धी मारे गए। विजय पाण्डव-पक्ष की हुई और युधिष्ठिर कुछ काल राज्य कर भाइयों तथा पत्नी के साथ हिमालय चले गए। यह काव्य ओजभरी शैली में अनेक छंदों में प्रस्तुत है। इसका मूल नाम "जय" था और इसमें ८८०० श्लोक थे। कालान्तर में इसमें और भी कहानियाँ जोड़ दी गईं, तब उसका नाम "भारत" हुआ जिसमें भरतवंश के प्राचीन राजाओं का यश भी जहाँ तहाँ गाया गया। उस संस्करण में शायद २४००० श्लोक थे। अन्त में कृष्ण विषयक अनेक कहानियाँ जोड़ी गईं और "हरिवंश" नामक एक समूचा पुराण

भी उसमें जोड़ दिया गया। तब एक लाख श्लोकों का अठारह पर्वों में आज का महाभारत प्रस्तुत हुआ। इसका रचना-काल सम्भवतः ई० पू० ५०० और २०० ईस्वी के बीच है। महाभारत के रचयिता व्यास माने जाते हैं। पुराणों के रचयिता भी वही माने जाते हैं। पुराणवत् महाभारत का रचयिता उन्हें होना भी चाहिए।

महाभारत वस्तुतः पुराण ही है। इसमें भारतीय इतिहास और ख्यातें भरी पड़ी हैं। पश्चात्कालीन भारतीय साहित्य महाभारत का अनेक रूपेण ऋणी है। उसकी ख्यातें अनुवृत्त सभी उस आकार में सन्निहित हैं। भारतीय जीवन को इन दोनों महाकाव्यों ने प्रभूत रूप से प्रभावित किया है। कोई हिन्दू नहीं जो इनकी कथा न जानता हो। व्यवहारतः पद-पद पर पंडित और निरक्षर मूर्ख दोनों इनकी कथाओं का स्मरण और उल्लेख करते हैं। इनके नायक राम और प्रधान पुरुष कृष्ण हिन्दुओं के देवता बन गए। वेदों के देवताओं का इन्होंने अन्त कर दिया और राम-कृष्ण को उनके स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

पुराण

आज के हिन्दू समाज की धार्मिक क्रियाएँ और विश्वास पुराणों की भूमि से ही उठे हैं। पुराणों के देवता ही उसके देवता हैं। उन्हीं के महापुरुषों के चरित और कथाएँ साधारण हिन्दुओं के आदर्श हैं। इस काल के व्रत, उपवास, अवतार आदि सभी पुराणों के ही हैं। पुराण एक प्रकार से भारतीय विश्वासों और कथाओं के आकार हैं। उनका उपयोग बराबर विश्व कोष की भाँति हुआ है। उनमें इतिहास, अलंकार, चिकित्सा, व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, नाट्य, कला, विज्ञान, सभी विषयों पर साहित्य भरा पड़ा है। जिस प्रकार अन्य प्राचीन साहित्यों में विश्वकोषों और सृष्टि के आरम्भ से इतिहासों की रचना हुई है, संस्कृत में उसी प्रकार प्रायः उसी अर्थ पुराणों का प्रणयन हुआ। इनके पारंपरिक विषय पाँच माने जाते हैं—सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय के बाद नई सृष्टि), वंश (देववंशावलियाँ), मन्वन्तर (अनेक मनुकल्प) और वंशानुचरित (प्राचीन राजकुलों के ऐतिहासिक विवरण)। वंशानुचरितों ने, जो अनेक पुराणों में मिलते हैं, भारतीय इतिहास के शोध में बड़ी सहायता की है। उन्होंने उसके अनेक सन्दिग्ध स्थलों पर प्रकाश डाला है और अनेक ऐतिहासिक राजकुलों के वृत्तान्तों की रक्षा की है।

पुराणों की ओर भी अथर्ववेद ने संकेत किया है। "पुराण" शब्द का अर्थ है, प्राचीन, अर्थात् उस साहित्य में प्राचीन कथाओं का संकलन है। वर्तमान पुराणों की अनेक बातें समान होने से लगता है कि उनका आधार कोई मूल पुराण रहा है। ऐसे मूल पुराण के होने की परंपरा भी पुराणों में है। उसी मूल पुराण का महाभारतकार वेदव्यास (कृष्ण-द्वैपायन व्यास) ने सम्पादन किया। प्रधान पुराणों की संख्या अठारह है—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वराह, लिंग, स्कन्द, वामन,

कूर्म, मत्स्य, गरुड़, और ब्रह्माण्ड। प्रगट है कि इनमें से अनेक साम्प्रदायिक हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बड़े सौ के लगभग अन्य पुराणों का भी जहाँ तहाँ उल्लेख मिलता है।

पुराणों की रचना का काल प्रायः असम्भव है। समय-समय पर ये बनते गये हैं और इनमें सामग्री तो अभी हाल तक जोड़ी जाती रही है। अनेक प्रधान पुराणों का संकलन गुप्त काल में पाँचवीं सदी ईस्वी के आसपास हुआ।

रामायण-महाभारत की ही भांति पुराणों का भी संस्कृत और प्राकृत साहित्यों पर गहरा असर पड़ा है। इन तीनों ने केवल संस्कृत और प्राकृत के ही साहित्यों को प्रभावित नहीं किया वरन् समूचा भारतीय साहित्य, संस्कृत से लेकर जन बोलियों तक—अपनी सामग्री के लिए पुराणों के अमित भंडार का ऋणी है।

: ३ :

"क्लासिकल" साहित्य

"क्लासिकल" संस्कृत साहित्य का चरम विकास कालिदास है। परन्तु कालिदास पाँचवीं शती ईस्वी में हुए, गुप्तशासनकाल में। उनसे पहले अनेक कवि और नाटककार हो गए हैं। अपने पूर्ववर्ती तीन साहित्यकारों—भास, सौमिल्ल, कविपुत्र—का तो उसी महाकवि ने अपने "मालविकाग्निमित्र" में उल्लेख किया है। वैसे उनसे भी पहले के कवियों का निर्देश साहित्य में हुआ है आखिर जिस प्रतिभा का परिचय रामायण और महाभारत ने दिया उसके और पाँचवीं सदी के कालिदास के बीच साहित्यभूमि अनुर्वर कैसे रह सकती थी?

महाभाष्यकार पतंजलि (ल० १८५–ई० पू०) ने कविताओं और नाटकों का उल्लेख किया है। महर्षि च्यवन-कृत रामायण के प्रति संकेत का उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है, यहाँ यह और लिख देना असंगत न होगा कि "महाभाष्य" से जालूक और तित्तिरि के अनुष्टुभ श्लोकों का भी हवाला मिलता है और उसी आधार से वररुचि की एक कविता का भी पता चलता है। वररुचि वैयाकरण था। उसका दूसरा नाम कात्यायन था। यदि वररुचि ही कात्यायन रहा हो तो उसके चन्द्रगुप्त मौर्य-पूर्व नन्द का मंत्री होने में कोई सन्देह नहीं। पतंजलि के अतिरिक्त राजशेखर ने भी वररुचि को "कण्ठाभरण" नामक काव्य का प्रणेता माना है। इसी प्रकार भोज ने भी अपने "श्रृंगार प्रकाश" में कात्यायन की कृति कहकर दृष्टान्ततः "वसन्ततिलका" का अर्धांश उद्धृत किया है। महान् वैयाकरण पाणिनि की कुछ कविताएँ भी सुभाषितों में जहाँ तहाँ मिल जाती हैं। क्षेमेन्द्र ने उसे उसके उपजाति छंदों की सुन्दरता पर सराहा है। राजशेखर ने तो पाणिनि को "जम्बवती जय" (पाताल विजय) काव्य का रचयिता ही माना है। पाणिनि पाँचवीं सदी ई० पू० के थे और सम्भवतः वररुचि (कात्यायन जो उसका रन्ध्रान्वेषी था) नन्दराज के समसामयिक थे, शायद नन्द

के दरबारी भी । निश्चय ही पाणिनी कात्यायन से पहले हुए थे क्योंकि कात्यायन ने उनके सूत्रों का खंडन और पतंजलि ने उनका समाधान किया है ।

वररुचि के बाद की तीन सदियों के साहित्य का पता नहीं चलता । यह मानना कठिन होगा कि साहित्य की प्रतिभा उस काल म्लान हो गई थी क्योंकि संस्कृत साहित्य के इतने रत्नों का लोप हो गया है कि कुछ आश्चर्य नहीं यदि उस काल की कुछ रचनाएँ नष्ट हो गई हों । सुबन्धु और भास का नाम इस काल के लेखकों में लिया जाता है जो मानना कठिन है । उनका समय प्रमाणतः पीछे है । पहली शती ईस्वी में एक महान् काव्यकार और नाट्यकार अश्वघोष का प्रादुर्भाव हुआ । अश्वघोष साकेत का रहने वाला ब्राह्मण था और उसकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था । अश्वघोष बौद्ध हो गया था और उस सम्प्रदाय का वह दिग्गज दार्शनिक हो गया है । उसे कुषाणराज कनिष्क पाटलिपुत्र से बलपूर्वक पेशावर ले गया और कश्मीर में जब उसने तीसरी बौद्ध संगीति की तब प्रधान की अनुपस्थिति में अश्वघोष ने ही उसका संचालन किया था । जैसा ऊपर लिखा जा चुका है अश्वघोष ने काव्य और नाटक दोनों लिखे । उसने अपने विचारों के प्रकाशन और बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए साहित्य को वाहन बनाया, यह वह स्वयं अपने "बुद्धचरित" में स्वीकार करता है । उसने "रामायण" के बाद फिर महाकाव्यों की परिपाटी चलाई और "बुद्धचरित" तथा "सौन्दरनन्द" नाम के दो महाकाव्य लिखे । इनमें से पहला जैसा नाम से प्रगट है बुद्ध का चरित है, दूसरे में बुद्ध के वैमात्र भ्राता नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी की रोमांचक कथा है । बुद्ध भिक्षा के लिये जब आते हैं तब नन्द पत्नी का प्रसाधन करता होता है । कोई भिक्षा नहीं देता, सभी नौकर प्रसाधन प्रस्तुत करने में व्यस्त हैं । बुद्ध को रिक्तपात्र लिए जाते नन्द खिड़की से देख लेता है और उन्हें फिरालाने जाने के लिए पत्नी से अनुमति माँगता है । सुन्दरी कहती है—जाओ, पर कपोलों के "विशेषक" सूखने के पहले ही लौट आना ! नन्द जाता है तो बुद्ध उसे अपना भिक्षापात्र थमा देते हैं और दूसरों से बात करने लगते हैं, फिर उसे लिए-दिए बिहार में चले जाते हैं । नन्द को उन्हें पात्र पकड़ाकर घर लौटने का साहस नहीं होता और इधर बुद्ध अपने प्रवचनों में व्यस्त हो जाते हैं । नन्द उनसे मिलना चाहता है, घर जाने की अनुमति के लिए, पर मिल नहीं पाता । बहुत काल इसी प्रकार बीत जाता है तब बुद्ध एक दिन उसे आकाश-बिहार और स्वर्ग को ले जाते हैं । फिर नन्द को विरक्ति हो जाती है और वह संघ में शामिल हो जाता है । "सूत्रालंकार" भी अश्वघोष की ही रचना मानी जाती है । अश्वघोष रामायण से प्रभावित था परन्तु स्वयं उसने अनेक परवर्ती कवियों को प्रभावित किया । स्वयं कालिदास उससे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने "रघुवंश" और "कुमार सम्भव" दोनों में अश्वघोष के अनेक श्लोक शोध-सम्हाल कर इस्तेमाल कर लिए । जैसे बुद्ध को देखने नगर की स्त्रियाँ दौड़ती हैं, उसी प्रकार प्रायः उन्हीं शब्दों में अज और शिव को भी नारियाँ दौड़कर देखती हैं ।

हरिषेण और वत्सभट्टि दोनों कालिदास के समकालीन थे, एक बड़ा दूसरा छोटा। गुप्त अभिलेखों से तो उस काल की कवि प्रतिभा व्यक्त ही है। गुप्त सम्राटों की भी, प्रगट है, कविमेधा जाग्रत थी। कम से कम समुद्रगुप्त की तो "कविराज" आदि विरुदों द्वारा कवि शक्ति प्रयाग स्तंभवाले लेख में प्रदर्शित की ही गई है। जान पड़ता है महाकवि कालिदास का आविर्भाव समुद्रगुप्त के शासनकाल ही में हो गया था यद्यपि लिखते वे कुमारगुप्त के शासनकाल (स्कन्दगुप्त के जन्म) तक रहे थे। विशेषतः वे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (लग. ३७५-८०-४१४ ई.) के समकालीन थे। और सम्भवतः उसके दरबारी भी। कालिदास के समय पर बड़ा मतभेद रहा है। विद्वानों ने उस महाकवि का समय दूसरी शती ई. पू. (पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्नि-मित्र का समकालीन) से लेकर छठी शती ईस्वी तक आँका है। परन्तु महाकवि के काव्यों और नाटकों की आन्तरिक सामग्री गुप्तकालीन काव्यधारा, मुद्रा-अभिलेख, संस्कृति आदि सभी पुकारकर कालिदास का रचनाकाल चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समीपवर्ती घोषित करते हैं। दिंग्नाग प्रसिद्ध बौद्धदार्शनिक और "कुन्दमाला" का सम्भावित रचयिता, के प्रति भी शायद कालिदास ने अपने "मेघदूत" में संकेत किया है। दिंग्नाग समुद्रगुप्त का समकालीन था यद्यपि उसके कुन्दमाला के रचयिता होने में लोगों को सन्देह है।

कालिदास संसार के प्रधान कवियों में से है। उसकी कृतियों ने देशी-विदेशी सभी काव्य मर्मज्ञों को अपनी काव्य प्रतिभा से प्रभावित किया है। भारत में तो वह "कविकुल-गुरू" माना ही जाता है। उसका महत्व और बातों के अतिरिक्त तो इसी से प्रगट है कि उसके "मेघदूत" के अनेक अनुकरण हुए और अनेक पश्चात्कालीन कवियों ने उसके नाम से कविता लिखी। अनेक काव्य-कृतियाँ और ग्रन्थ इसी से कालिदास के नाम से संबंधित हैं यद्यपि वे उसकी रचनाएँ हैं नहीं। काव्य और नाटक दोनों क्षेत्रों में वह महाकवि औरों से गुणतः अग्रणी है। काव्यशक्ति की वह चरम परिणति है। "क्लासिकल" काव्य का वह चरम उत्कर्ष प्रकाशित करता है। आदि-कवि वाल्मीकि ने काव्य का प्रारम्भ किया था, महाकवि कालिदास ने उसे पराकाष्ठा दी। वह वाल्मीकि और अश्वघोष दोनों से प्रभावित था। एकाध दिशा में उसने दोनों का अनुकरण भी किया परन्तु उन दोनों से वह कितना भिन्न था।

महाकवि कालिदास की सात रचनाएँ आज उपलब्ध हैं, चार काव्य–'रघवंश' 'कुमारसम्भव,' 'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार'—और तीन नाटक—'अभिज्ञानशाकुन्तल' 'विक्रमोर्वशी' और 'मालविकाग्निमित्र'। उसकी एक और कृति "कौन्तलेश्वरदौत्य" का भी साहित्य में उल्लेख मिलता है परन्तु वह रचना उपलब्ध नहीं। रघुवंश प्रबन्ध काव्य का सुन्दरतम आदर्श है। महाकाव्यों में बेजोड़। उसके सैकड़ों सौन्दर्यों का वर्णन यहाँ असम्भव है। वाल्मीकि की कथा और पुराणों के सूर्यवंश का इतना अद्भुत और समन्वित रूप रघुवंश

में अभिव्यक्त हुआ है कि काव्य गुणेतर कला चातुरी में भी वह अप्रतिम है । रघुवंश की कथा विशेषतः रघु, राम और अग्निवर्ण के चतुर्दिक निर्मित हुई । इनमें से पहला शक्ति और साम्राज्य का परिचायक है, दूसरा कर्तव्यशीलता का प्रतीक, तीसरा अनुपम कामुक । रघुवंश उन्नीस सर्गों में रचा गया है । "कुमारसम्भव" आठ सर्गों में सम्भवतः अपूर्ण काव्य है । इसमें तारकासुर के वध के लिए देवताओं की प्रार्थना पर "कुमार" (स्कन्द) की उत्पत्ति के लिए शिव द्वारा पार्वती का पत्नी के रूप में पाणिग्रहण वर्णित है । स्कन्द के जन्म के पूर्व ही काव्य समाप्त हो जाता है । इसमें पार्वती का शिव के लिए तप जिस साधना से वर्णन किया गया है उसी कला-नैपुण्य से शिव पर काम का आक्रमण भी अभिव्यंजित है, और उसी प्रतिभा-प्रगलभता द्वारा आठवें सर्ग का शिवविलास भी । "मेघदूत" लिरिक काव्य में संसार का सबसे अभिराम नमूना है । अभिशप्त विरही यक्ष अपनी प्रेयसी से वर्ष भर के लिए दूर है । चुपचाप दीर्घकाल तक वह विरहवेदना का सहन करता है, परन्तु जब आषाढ़ के आरम्भ में मेघ घुमड़ने लगते हैं तब उसका हृदय भी असह्य द्रवित हो जाता है और वह मदिर शब्दों में दूर की प्रेयसी को अपना सन्देश मेघ द्वारा भेजता है । पूर्वमेघ में बादल के मार्गों का उसने वर्णन किया है, उत्तरमेघ में प्रियानिकेत अलका और प्रेयसी यक्षिणी का । करुण मन्दाक्रान्ता में मधुर गति से वेदना जैसे रूपायित होकर चल पड़ती है । मेघदूत संसार के लिरिक काव्यों में बेजोड़ है । सैफो की रचनाएँ उसके सामने सर्वथा मलिन पड़ जाती हैं । मेघदूत के सैंकड़ों अनुकरण हुए परन्तु मूल की सफलता का आँचल भी वे न छू सके । कालिदास का "ऋतुसंहार" भारत की षड्ऋतुओं का मनोहर वर्णन करता है और यद्यपि उसे उस अप्रतिम कवि के 'मेघदूत' आदि की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, उसकी अपनी सुन्दरता भी कुछ कम नहीं ।

कालिदास का नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तल" नाट्य क्षेत्र में एक चुनौती है । इसके वर्णन की सुकुमारता, वस्तु की गठन, शैली की मनोरमता, कला का चातुर्य सभी अनुपम हैं । जो सफलता इस नाटक को विदेशी आलोचकों के मूल्यांकन में मिली, वह सम्भवतः किसी विदेशी साहित्य को कभी यूरोप में नहीं मिली । ग्रीक नाटकों की यूरोप में धूम के बावजूद भी समीक्षकों ने स्वीकार किया कि शाकुन्तल वस्तु की एकता भावावेगों की अभिव्यक्ति और शैली के अभिराम निर्वाह में उनसे कहीं आगे है । उस नाटक का ऐतिह्य कुरूकुल के दुष्यन्त और उसकी प्रेयसी आश्रमवासिनी शकुन्तला से संबंधित है । कथा महाभारत की है यद्यपि कालिदास ने उसे काफी बदल दिया है । पिता की अनुपस्थिति में शकुन्तला सखियों के साथ आश्रम में अकेली है । दुष्यन्त आखेट के लिए जाता है और शकुन्तला के रूप-प्रणय का स्वयं शिकार हो जाता है । गन्धर्व संबंध के बाद वह हस्तिनापुर लौट जाता है और शकुन्तला के राजधानी आने पर शापवश उसे पहचान नहीं पाता । शकुन्तला कश्यप के आश्रम में चली जाती है और अन्त में पुत्र सर्वदमन के साधन से दोनों

मिलते हैं। दुःख दोनों की अनीत को जैसे धो डालता है और पति-पत्नी पुत्र के साथ सुखी होते हैं। शांकुंतल सर्वांगसुन्दर कृति है। "विक्रमोर्वशी" की कथा ऋग्वेद के पुरूरवा-उर्वशी के संवाद से ली गई है। उर्वशी को देख राजा प्रेम में पागल हो उठता है। देवकार्य के बाद इन्द्र की अनुमति से उर्वशी उसे कुछ काल के लिए मिलती है, पर केवल कुछ ही काल के लिए। प्रणय-सुख-जनित अल्प-कालिक मदनिद्रा तब सहसा टूट जाती है जब उर्वशी के पार्थिव निवास की अवधि पूरी हो जाती है। पुरूरवा का विलाप दिगन्त को व्याप्त कर देता है, चराचर को द्रवित, करुणा से ओतप्रोत। इस नाटक का भी अपना असाधारण स्थान है यद्यपि वह किसी भी दृष्टि से शाकुन्तल के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। "मालविकाग्निमित्र" कालिदास का तीसरा नाटक है, सम्भवतः यह आरम्भ काल में रचा गया। वह पुष्यामित्र शुंगकालीन कथा का उद्घाटन करता है। पुष्यमित्र शुंग मगध का ब्राह्मण सम्राट् था। जिसने १८५ ई. पू. के लगभग बृहद्रथ को मार मौर्यवंश का अन्त किया और जो महाऋषि पतंजलि का समकालीन था। "मालविकाग्निमित्र" में उसी पुष्यमित्र के पुत्र और विदिशास्थित प्रान्तीय शासक अग्निमित्र तथा उसकी प्रेयसी मालविका का प्रणय निर्दशित है। उसमें ग़जब की शान्ति और रसों का परिपाक हुआ है। संगीत के सिद्धांतों का भी उसमें अच्छा निरूपण है। शुंगकालीन इतिहास पर इस नाटक द्वारा बड़ा प्रकाश पड़ा है। इसी में पुष्यमित्र के पौत्र वसुमित्र की राजसूय के अवसर पर अश्वरक्षा के क्रम में उन यवनों (ग्रीकों) का उल्लेख है जिन्हें उस शुंग युवराज ने सीमा के सिन्धुतट पर परास्त किया था।

कालिदास की भारती अपनी कला और रूप में अप्रतिम है। वह भारती अनेक अलंकारों से मण्डित है अनेक छन्दों द्वारा निरूपित। वैदर्भी वृत्ति का उपयोग जैसा उस महाकवि ने किया है वैसा अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। उस कविकुलगुरु के वैयक्तिक जीवन के संबंध में हमारा ज्ञान नहीं के बराबर है।

इसी काल में अथवा कुछ पहले चौथी सदी में कुछ बौद्धकाव्यों का भी प्रणयन हुआ। "अवदानशतक", "दिव्यावदान" और आर्यसूर की "जातकमाला" सम्भवतः उस काल की रचनाएँ हैं। पर उनका सम्यक् उल्लेख यहाँ प्रासंगिक नहीं। बौद्ध मातृचेट की कृतियों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। मातृगुप्त को भी अनुवृत्त असाधारण कवि माना जाता है जिसकी रचनाओं से प्रसन्न होकर विक्रमादित्य ने उसे कश्मीर का राज्य दे दिया था। राजतरंगिणीकार कल्हण का यह उल्लेख सर्वथा स्वीकार करना कठिन है। कश्मीर कभी किसी मालव विक्रमादित्य के अधिकार में नहीं रहा। इससे इस वक्तव्य की सत्यता में संदेह होना स्वाभाविक है। फिर भी मातृगुप्त कवि और राजा दोनों हो सकता है। वह नाटक और नृत्यविषयक रचनाओं का कर्त्ता माना जाता है। वह भी सम्भवतः चौथी सदी ईस्वी का ही था। कुछ विद्वानों का मत है कि कल्हण द्वारा उल्लिखित "महाकाव्य हयग्रीववध" का रचयिता भ्रातृमेंठ इसी मातृगुप्त का दरबारी कवि अथवा कम से कम संरक्षित मित्र

था। मेण्ठ उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है। राजशेखर ने अपने "बालरामायण" के आरम्भ में उसे रामकथा सम्बन्धी कोई काव्य रचने का श्रेय दिया है। कल्हण ने मातृगुप्त और मेण्ठ के अतिरिक्त इनसे पूर्व के राजा तुंजिन प्रथम द्वारा संरक्षित नाटककार चन्द्रक का भी उल्लेख किया है। परन्तु उसका ज्ञान हमें नहीं के बराबर है। हाँ यदि "पद्यचूड़ामणि" के रचयिता बुद्धघोष प्रसिद्ध दार्शनिक बद्धघोष ही हों तो उसका समय भी पाँचवी सदी ही होना चाहिए।

यह चौथी-पाँचवीं सदी का गुप्तकाल इतिहास में राजनीति, कला और साहित्य की दृष्टि से स्वर्णयुग माना जाता है। बहुत कुछ पेरिक्लियन, आगस्तन और एलिजाबेथन युगों की भाँति। यह सर्वथा सही है। उस काल के उन साहित्यिक अग्रणियों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है जिनमें प्रधान कालिदास थे। समुद्रगुप्त तो कवि था ही। एक मत के अनुसार तो चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य भी कवि था। "सूक्ति-मुक्तावली" में साहसांक को "गन्धमादन" नामक काव्य कारचयिता माना गया है और साहसांक को कुछ लोग चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही मानते हैं। गन्धमादन आज उपलब्ध नहीं। प्राचीन अनुवृतों और अनुश्रुतियों के अनुसार "(चन्द्रगुप्त) विक्रमादित्य" बड़ा कवि-नाटककार-पण्डित संरक्षक था। उसके दरबार में "नवरत्न" थे। इन नवरत्नों में कौन कौन से ऐतिहासिक व्यक्ति थे, यह कहना आज कठिन है। परन्तु उनमें से अनेक उसके समकालीन ज्ञात होते हैं। कालिदास के उसके समसामयिक होने में तो कोई सन्देह होना ही नहीं चाहिए, प्रसिद्ध वैद्य धन्वन्तरि भी यदि तभी हुआ हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर (५०५-८७ ई.) कुछ बाद हुआ और विख्यात गणितज्ञ आर्यभट (जन्म ४७६ ई.) भी कुछ ही बाद अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने लगा था। गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त निश्चय बाद का है, क्योंकि उसका जन्म ५९८ में हुआ, यद्यपि वह भी गुप्तपरिधि के अन्तर्गत ही माना जाता है। "अमरकोश" का रचयिता अमरसिंह सम्भवतः चन्द्रगुप्त का समकालीन ही था। उसी गुप्तकालीन परिधि में अनेक पुराणों की रचना हुई और "मनुस्मृति" का अन्तिम संस्करण हुआ तथा "याज्ञवल्क्यस्मृति" रची गई। परन्तु ललित काव्य न होने के कारण इन कृतियों का यहाँ उल्लेख अप्रासंगिक है।

गुप्तकालीन कवियों में कालिदास परवर्ती कवि विशाखदत्त का उल्लेख यहाँ अनिवार्य है। वह सम्भवतः गुप्तों का कोई सामन्त था। उसकी कृतियाँ जानी हुई हैं। एक तो प्रसिद्ध नाटक "मुद्राराक्षस" ही है जिसमें चाणक्य की कूटनीति का उद्घाटन हुआ है। नाटक चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य के सम्मिलित प्रयास द्वारा नंदवंश के नाश के बाद आरम्भ होता है। इसमें नष्ट नन्दवंश के आमात्य राक्षस और चन्द्रगुप्त के मंत्री परमकूटनीति चाणक्य के परस्पर कूटसंघर्ष की कथा है जिसमें चाणक्य विजयी होता है। राजनीति "प्लाट" के रूप में संसार का कोई नाटक इतना महत्त्वपूर्ण नहीं

जितना "मुद्राराक्षस"। इसी विषय पर विशाखदत्त द्वारा रचित एक दूसरा नाटक "प्रतिज्ञा-चाणक्य" भी गिना जाता है। कुछ साल हुए फ्रेंच पण्डित सिल्वॉलेवी ने विशाखदत्त के एक तीसरे नाटक "देवी चन्द्रगुप्तम्" का हवाला दिया था। "जूर्नाल अशियातिक" में उस विद्वान् ने "नाट्यदर्पण" में उद्धृत इस नाटक के कुछ अंश भी प्रकाशित किए। इस नाटक अथवा इसके विषय का उल्लेख अनेक स्थलों में अनेक व्यक्तियों द्वारा स्वतंत्र रूप से हुआ है जिससे उसके अस्तित्व में तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। परन्तु नाटक समूचे रूप में उपलब्ध नहीं है। उसकी कथा इस प्रकार है। समुद्रगुप्त के बाद उसके बड़े बेटे रामगुप्त को साम्राज्य मिला। परन्तु वह दुर्बल था। उसकी दुर्बलता का लाभ उठाकर शकराज ने उस पर आक्रमण किया और सन्धि की शर्त में गुप्त सम्राट् की रानी ध्रुवस्वामिनी को भी माँगा जिसे देने को उसका पति रामगुप्त राजी हो गया। ध्रुवस्वामिनी के लाज की रक्षा रामगुप्त के अनुज ने ध्रुवदेवी के वेश में शकराज को मार कर की। फिर उसने ध्रुवदेवी से विवाह किया और गुप्त साम्राज्य के स्वामी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस ध्रुवदेवी का पता गुप्त अभिलेखों से भी चलता है। उसी के पुत्र कुमारगुप्त और दामोदरगुप्त थे। नाटक की सत्यता सिद्ध है। प्रगट है कि विशाखदत्त का ऐतिहासिक ज्ञान अत्यन्त प्रौढ़ था और उसका ऐतिहासिक निरूपण सर्वथा सफल। "मुद्राराक्षस" से चन्द्रगुप्त मौर्य के इतिहास पर प्रभूत प्रकाश पड़ा है और "देवीचन्द्रगुप्तम्" ने तो समुद्रगुप्त द्वितीय और विक्रमादित्य के बीच एक रामगुप्त राजा ही ढूंढ निकाला है। कहते हैं कि विशाखदत्त ने "अभिसारिकावंचित" नामका एक उदयनपरक प्रणयकाव्य भी लिखा था पर वह प्राप्त नहीं है।

इसी गुप्तकाल की कृति "कौमुदीमहोत्सव" मानी जाती है जिसकी रचयित्री एक नारी थी। इससे भी गुप्तकालीन राजनीति पर कुछ प्रकाश पड़ा है। काशीप्रसाद जायसवाल ने इसके चण्डसेन को गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम माना है। उसमें अभिभावक चण्डसेन द्वारा राजपुत्र से पाटलिपुत्र का राज्य हड़प लेने की बात लिखी है। । छठी सदी ईस्वी में सिंहल के राजा (जिसे कालिदास का मित्र भी कहा जाता है) कुमारदास ने अपना "जानकीहरण" लिखा। "जानकीहरण" पर कालिदास का गहरा प्रभाव स्पष्ट है।

"मृच्छकटिक" नाटक (प्रकरण) के रचयिता शूद्रक का समय निश्चय करना इस समय असम्भव-सा है। उसके नाम के साथ अनेक अनुश्रुतियाँ, किम्बदन्तियाँ और ख्यातें जुड़ गई हैं, जिनसे इतिहास को पृथक् करना आसान नहीं। फिर भी उसको इस काल के आसपास रखना अयुक्तियुक्त न होगा। "मृच्छकटिक" नाना रसों और दृश्यों से युक्त प्रकरण है। इसमें नायक दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त है और ब्राह्मण ही चोर भी है जो चोरी प्रायः सिद्धान्तपरक दृष्टि से करता है और जिसका यज्ञोपवीत ही सेंध लगाने के लिए आवश्यक मानसूत्र है। इस नाटक की नायिका वेश्या कन्या है। गरज की उदात्त नाटक के ठीक विपरीत

मृच्छकटिक की लीलाभूमि है। फिर उसका केन्वस बड़ा विस्तृत है। मजाक, जुआ, चोरी, कैद, पलायन, राज-विप्लव, न्याय की विडम्बना सभी कुछ उसमें है। उसके दस अंकों में जीवन के सारे दृश्य उपस्थित कर दिये गये हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जहाँ संस्कृत के नाटक प्रायः सभी गम्भीर हैं मृच्छकटिक अकृत्रिम और विनोद बहुल वातावरण प्रस्तुत करता है। व्यंग्य और विनोद उसमें प्रभूत मात्रा में विद्यमान है। उसका प्रतिपाद्य विषय तो चारुदत्त और वसन्त सेना का प्रेम और विरह है परन्तु भारतीय साहित्य में यदि ग्रीक अर्थ में (जो हँसाते हँसाते पेट में बल डाल दे) कोई "कॉमेडी" है तो वह मृच्छकटिक है। इसमें स्फुट हास्य, सस्वर हास्य के लिए बड़ी सामग्री है और रंगमंच के लायक यह कृति अतीव सुन्दर भी है।

भारतीय काव्य परंपरा में "पंच महाकाव्य" प्रधान माने गये हैं। इनमें दो तो कालिदास के ही "रघुवंश", "कुमारसम्भव" हैं, शेष तीन हैं—भारवि का "किरातार्जुनीय," माघ का "शिशुपालवध" और श्रीहर्ष का "नैषधीय चरित"। ६३४ के पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल वाले लेख में कालिदास के साथ ही भारवि का भी उल्लेख हुआ है। कवि दण्डिन को "अवन्तिसुन्दरी" में महाकवि भारवि का शैव और वंगी के चालुक्यकुल के प्रतिष्ठाता कुब्ज विष्णुवर्धन (६०८ ई.) का मित्र लिखा है। गंगराज दुर्विनीत ने भारवि के काव्य पर एक टीका लिखी थी। "किरातार्जुनीय" अठारह सर्गों में प्रस्तुत महाकाव्य है जिसका वर्णन विषय अर्जुन का शिवप्रसादन के लिए तप है। अर्जुन ने कौरवों को परास्त करने के लिए पाशुपतास्त्र के अर्थ तप किया था। भारवि का यह काव्य अपने "अर्थगौरव" के लिए विख्यात है।

माघ भी संस्कृत के पाँच प्रथितयशस् कवियों में से है। उसका "शिशुपालवध" ७०० ई. के लगभग लिखा गया यद्यपि न कवि न उसकी कृति के लिए सही तिथि निर्धारित की जा सकती है। माघ के काव्य को कालिदास और भारवि दोनों के गुणों का केन्द्र कहा गया है परन्तु निस्सन्देह यह मूल्यांकन अतिरंजित है। माघ का काव्य असाधारण है परन्तु न तो वह कालिदास के कृतित्व को छू पाता है न भारवि के ही स्तर पर है। फिर भी उसका काव्य सुन्दर है और "शिशुपालवध" के सातवें और नवें सर्ग में तो गजब का वर्णन-सौन्दर्य है। कथा चेदिराज शिशुपाल और वासुदेवकृष्ण के वैमनस्य की है और महाभारत से ली हुई है। जैसा नाम से प्रगट है कृष्ण द्वारा उसमें चेदिराज का वध प्रदर्शित है। श्रीहर्ष के महाकाव्य "नैषधीयचरित" का उल्लेख यथास्थान करेंगे।

नवीं सदी के कश्मीरराज अवंतिवर्मन् के दरबार से चार कवियों—मुक्ताकण, शिवस्वामिन्, आनन्दवर्धन, और रत्नकार का सम्पर्क था। मुक्ताकण की कृतियाँ सिवा सुभाषितों में कुछ श्लोकों के. नष्ट हो चुकी हैं। शिवस्वामिन् ने अनेक रचनाएँ कीं। वह आशुकवि था और द्विपदी में भी वाक्यरचना कर लेता था। उसके सात महाकाव्य बताए

जाते हैं और अनेक नाटक, परन्तु उपलब्ध काव्य उसका एक ही है—"कप्फिणाभ्युदय" —जिसमें राजा कप्फिण के राज्य छोड़ बौद्ध भिक्षु हो जाने की कथा वर्णित है। रत्नकार "वागीश्वर" कहलाता था। उसने पचास सर्गों में शैव महाकाव्य "हरविजय" लिखा जिसकी भाषा मधुर और शैली परिमार्जित है। आनन्दवर्धन प्रसिद्ध समीक्षक हो गया है, परन्तु वह स्वयं अच्छा कवि भी था। संस्कृत और प्राकृत दोनों में उसने काव्यरचना की। उसका काव्य "अर्जुनचरित" आज उपलब्ध नहीं। उसकी रचना "देवी-शतक" चित्र-काव्य का सफल नमूना है।

नवीं सदी में अनेक महाकाव्य लिखे गये। जैनों ने भी रामायणादि की भाँति अपने तीर्थंकरों के चरित काव्यबद्ध किये। जिनसेन और उसके शिष्य गुणभद्र के "हरिवंश" और "आदिपुराण" इसी प्रकार के काव्य हैं। इसी प्रकार "जटासिंहनन्दी" ने "वरांगचरित" वादिराज और माणिक्यसूरि ने अपने-अपने "यशोधरचरित", हरिश्चन्द्र ने "धर्मशर्माभ्युदय" और अमरचन्द ने "पद्मानन्दकाव्य" लिखा।

नाट्यप्रणयन भी साथ ही चलता रहा। सातवीं सदी के आरम्भ का हर्ष बाणभट्ट का संरक्षक था। हर्ष (६०६-४८) ने स्वयं "नागानन्द" नाटक और "प्रियदर्शिका" तथा "रत्नावली" नाटिकाएँ रचीं। नागानन्द में जीमूतवाहन का बौद्ध चरित प्रदर्शित है। रत्नावली बड़ी प्रौढ़ कृति मानी जाती है। हर्ष के दरबार में मातंगदिवाकर, द्रोण, मयूर आदि अनेक कवि रहते थे परन्तु इन सब में प्रधान संस्कृत का मुख्य शैलीकार और प्रसिद्ध "हर्षचरित" तथा "कादम्बरी" का प्रणेता बाणभट्ट था। वह लम्बे समस्पदीय वाक्य लिखता था। "कादम्बरी" तो एक मधुर "रोमान्स" है। उसका "चण्डीशतक" काफी विख्यात है। उसने महाभारत के आधार पर मुकुटताड़ित" नामक एक नाटक भी लिखा था जो अब प्राप्य नहीं है परन्तु जिसका उल्लेख नाट्यालंकार की पुस्तकों में हुआ है। "सूर्यशतक" का रचयिता कवि मयूर बाण का श्वशुर कहा जाता है।

हर्षवर्धन के पश्चात् कनौज की राजनीति पर कुछ काल के लिए पटाक्षेप हो गया परन्तु प्रायः सौ वर्ष के बाद जो वहाँ पर्दा उठता है तो अनेक साहित्यकार वहाँ प्रविष्ट दीखते हैं। आठवीं सदी के आरम्भ में वहाँ का राजा यशोवर्मन (लग. ७२५-७५०) हुआ जिसे कश्मीर राज ललितादित्य मुक्तापीड़ ने परास्त किया। स्वयं यशोवर्मन ने "रामाभ्युदय" नाम का एक नाटक लिखा जिसके एकाध अंश ही आज उपलब्ध हैं। परन्तु कनौज राज के दरबार के कवियों में महान् और सारे भारतीय नाट्यक्षेत्र में अग्रणी भवभूति था। भवभूति के तीन नाटक "मालतीमाधव" "उत्तररामचरित" और "महावीर-चरित" संस्कृत साहित्य की अक्षय निधि हैं। महावीरचरित अपूर्ण है। उत्तररामचरित में राम के सीता-परित्याग की कथा है और मालतीमाधव में मालती और माधव के प्रणय का दोनों में करूणारस का बाहुल्य है। करूणारस के प्रदर्शन में भवभूति बेजोड़ है। मालती

माधव में वह स्मरणीय स्थल है (१,८) जिसमें उसने अपने समीक्षकों को यह कह कर चुनौती दी है कि "यह यत्न उनके प्रति नहीं है, वरन् उनके प्रति जो समान धर्मों के रूप में कभी और कहीं प्रगट होंगे, क्योंकि पृथिवी विपुल है और काल की कोई अवधि नहीं। भवभूति की भाषा और शैली की शालीनता भी अन्यत्र अप्राप्य है।" "गौडवहो" नामक प्राकृत काव्य का रचयिता वाक्पतिराज भी यशोवर्मन का ही दरबारी था।

उसी काल के कुछ और अनेक नाटक हैं। उनमें एक "कृत्यारावण" है जिसमें अद्भुत रस का प्रदर्शन हुआ है और दूसरा "चलितराम"। कलचुरीराज मायुराज अथवा मात्रराज ने "उदात्तराघव" लिखा। शृंगार का प्रतिपादन करने वाली उस राजा की उदयन सम्बन्धी सुन्दर कृति "तापसवत्सराज" आज भी उपलब्ध है। भट्टनारायण का "वेणीसंहार" असामान्य गतिमान और शक्तिम नाटक है। महाभारत के भीम, दुःशासनादि के उसमें सुन्दर चित्र आए हैं और तीसरे अंक के दृश्य जिनमें अश्वत्थामा और कर्ण के परस्पर वैमनस्य का वर्णन है, बड़े सुन्दर हैं। त्रिलोचन के "पार्थविजय" की भी नाटकों में अच्छी चर्चा हुई है। उस काल के अनेक नाटककारों में कालंजराज भीमट का नाम उल्लेखनीय है। वह पाँच नाटकों का रचियता कहा जाता है। इनमें प्रधान "स्वप्नदशानन" है।

मुरारि और राजशेखर के समय से नाटकों में एक नई दिशा का आरम्भ हुआ। महाभारत आदि की कहानियाँ लेकर उन्हें प्रणय-शृंगार का रूप देना। मुरारि का "अनर्घराघव" उस दिशा में बड़ा सफल हुआ। इसी प्रकार का नाटक "आश्चर्यचूड़ामणि" दाक्षिणात्य शक्तिभद्रक है। राजशेखर प्रतीहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम (लग. ८८५-९१०) का राजकवि था। उसका "काव्यमीमांसा" समीक्षा का सुन्दर ग्रन्थ है। उसने "बालरामायण" और अपूर्ण "बालभारत" भी लिखा और "विद्धशालभंजिका नाटिका" भी प्राकृत में लिखी। उसकी "कर्पूरमन्जरी" भी सुन्दर "सट्टक" (एक प्रकार का ड्रामा) है। राजशेखर संस्कृत साहित्य का दिग्गज काव्य-मीमांसक हो गया है? उसका आदर प्रतिहार और कलचुरी राजाओं ने समान रूप से किया।

हास्य के क्षेत्र में प्रहसन और भांड प्रकार के नाटकों का भी संस्कृत में सृजन हुआ। कांची के पल्लवराज महेन्द्रवर्मन प्रथम (सातवीं सदी का आरम्भ) ने प्रहसन का रूप अपने "मत्तविलास" में रखा। "भगवदन्जुकीय" भी उसी की कृति माना जाता है। मत्तविलास में बौद्धों का मजाक उड़ाया गया है। चार प्रधान "भाग" काफी प्राचीन निम्नलिखित हैं—"वररूचिकृत" "उभयाभिसारिका" ईश्वरदत्तरचित "धूर्त विटसम्वाद" श्यामिलक का "पादताडितक" और शूद्रक का "पद्यप्राभृतक"।

यहाँ अब पीछे छोड़े काव्यों का सूत्र फिर पकड़ लेना उचित होगा। नवीं सदी में पालराज हाववर्ष का संरक्षित कवि अभिनन्द हुआ। उसकी कृतियाँ तो उपलब्ध नहीं हैं परन्तु "रामचरित" के प्राप्यांशों से उसकी काव्य कुशलता का पूरा प्रमाण मिल जाता है।

राजशेखर ने इसी काल में अपना महाकाव्य "हरविलास" लिखा था जो कुछ अप्राप्य है। पंचमहाकाव्यों में से अन्तिम "नैषधीयचरित" का रचयिता श्रीहर्ष कनौज के राजा जयचन्द (११७०-११९४) का राजकवि था। उसका महाकाव्य बाईस सर्गों में विभक्त है जिसमें नलदमयन्ती की कथा वर्णित है। काव्य सुन्दर है परन्तु उसमें असाधारण का उपयोग अधिक हुआ है। श्रीहर्ष दार्शनिक और तार्किक भी था। तर्क संबंधी उसका ग्रन्थ "खण्डनखण्डखाद्य" प्रसिद्ध है।

संस्कृत गद्य का आरम्भ तो जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ब्राह्मणों में ही हो गया था, परन्तु रोमान्स आदि गद्य-काव्यों का लिखना उचित रूप से सातवीं सदी में आरम्भ हुआ। बाण ने अपने "हर्षचरित" में भट्टार हरिचन्द्र के "गद्यबन्ध" का उल्लेख किया है, परन्तु वस्तुतः वही सुन्दर गद्य काव्य कार पहला हुआ। वैसे शैली के सौन्दर्य में तो गद्यकाव्य का सृजन दूसरी सदी ईस्वी में ही शुरू हो गया था जैसा शकराज रुद्रदामन के गिरनार वाले लेख (१५० ई.) से प्रमाणित है परन्तु ग्रन्थ के रूप में बाण की ही कृतियाँ पहले आईं। हम उसके ग्रन्थों की चर्चा ऊपर कर चुके हैं। उसके दोनों ग्रन्थ हर्षचरित और "कादम्बरी" अपूर्ण हैं। दूसरे का उत्तरार्ध उसके पुत्र पुलिन्द भूषण भट्ट ने लिखा. परन्तु शैली दोनों की प्रायः एक है। बाण श्लेष का अद्भुत लेखक है। उसने अतीव लम्बे समस्तपदीय वाक्यों का प्रयोग किया है परन्तु उसकी भाषा में असाधारण प्रवाह है। "हर्ष-चरित" में उसने अपने संरक्षक हर्षवर्द्धन की जीवनी लिखी और "कादम्बरी" में कल्पित रोमांस जिसमें प्रणय का अमित विलास प्रस्तुत है और उसका निर्वाह मरणान्तर तक होता है। अपने नाम के अनुसार ही "कादम्बरी" का प्रभाव वारुणी का प्रभाव है, अभिराम और मादक। सुवन्धु ने बाण का अनुकरण किया। उसने भी उसी के श्लिष्ट पदों में अपना रोमांस "वासवदत्ता" लिखा। कहना कठिन है कि एक और सुबन्धु का नाम मिलता है वह यही है या इससे भिन्न। धनपाटन (दसवीं सदी) की "तिलकमंजरी" की भी इस क्षेत्र में बड़ी ख्याति है। इसी परंपरा में पादलिप्त सूरि की "तरंगवती" रूद्र की "त्रैलोक्य-सुन्दरी" त्रिभुवनमाणिक्यचरित" नर्मदासुन्दरी, "विलासवती" आदि भी हैं।

परन्तु इस क्षेत्र का बाणवत् महान् कृतिकार दण्डी हुआ। जो अपने गद्य काव्यों के बल पर ही महाकवि कहलाया। उसके प्रपितामह दामोदर ने भी संस्कृत में "गन्धमादन" और प्राकृत में अनेक ग्रन्थ लिखे थे। काव्यालंकार पर भी संभवतः उसने एक ग्रंथ लिखा, परन्तु उसका प्रपौत्र दण्डी प्रत्येक दिशा में उससे बढ़ गया। अपनी कविताओं के अतिरिक्त वह अपने समीक्षाशास्त्र द्वारा विशेष यशस्वी हुआ। उसका "काव्यादर्श" काव्यालोचन का असामान्य ग्रन्थ है। उसका "दण्डीदिविसन्धान" भी काफी जाना हुआ है। परन्तु उसके "दशकुमारचरित" ने ही उसे कवि की प्रतिष्ठा दी। उसमें एक राजपुत्र और उसके नौ मंत्रिपुत्र साथियों की भ्रमण कथा लिखी है। उसने आत्मकथापरक और कुलपरिचायक "अवन्ति-

सुन्दरी'' नामक गद्य-काव्य भी शुरू किया, परन्तु वह अपूर्ण ही रह गया। दण्डी की शैली अनेक लोगों को बाण की शैली से सुन्दर लगती है। उसमें पद पद पर बाण की भाँति श्लेष नहीं है और भाषा में ओज और प्रवाह अमित है।

वैदिक काल से ही गद्य-पद्य की एक मिश्रित शैली चली आती थी जिसका कालान्तर में ''चम्पू'' नाम से विकास हुआ। त्रिविक्रम (लग० ९१५) के ''नलचम्पू'' अथवा ''दमयन्ती-कथा'' इसी चम्पू शैली में लिखा है। उस साहित्यकार ने संभवतः एक ''मदालसाचम्पू'' भी लिखा था जो अब उपलब्ध नहीं है। जैन साहित्यकार सोमदेव ने दसवीं सदी में अपना प्रसिद्ध ''यशस्तिलकचम्पू'' रचा। ग्रन्थ अन्त में आचार और नीति परक हो जाता है। उसी प्रकार हरिचन्द्र ने भी ''जीवन्धरचम्पू'' लिखा। परन्तु सबसे सुन्दर चम्पू प्रसिद्ध राजा भोज (ग्यारहवीं सदी के आरम्भ में) ने लिखा जो ''रामायण चम्पू'' के नाम से आज भी बड़े चाव से पढ़ा जाता है। राजा भोज द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की एक खासी तालिका है जिसमें सभी प्रकार और दिशा के ग्रन्थ गिनाये जाते हैं। फिर भी यह सच है कि भोज केवल साहित्यिकों का संरक्षक ही नहीं था, स्वयं साहित्यकार और कवि भी था और अपनी अटूट लड़ाइयों के बावजूद भी काव्य विनोद करता रहता था। उसने धारा में संस्कृत का एक कालेज खोला था। वस्तुतः उस काल एशिया में अन्यत्र भी शोध संबंधी कालेज खोले जा रहे थे जिनमें बगदाद का तो बड़ा प्रसिद्ध हुआ। भोज का ही समकालीन महमूद गजनी था जिसके दरबार में संसार के सबसे बड़े मेधावी थे, उदाहरणतः अलउतबी, अल-बेरूनी, फरिश्ता। भोज से कुछ पूर्व कोंकण के सोढल थे चम्पू परंपरा में ही अपनी ''उदयसुन्दरी-कथा'' लिखी थी। नवीं दसवीं सदी में ऐतिहासिक अथवा जीवनचरित काव्यों का आरम्भ होता है। यशोवर्मन और भवभूति के समकालीन वाक्यतिराज ने प्राकृत में ''गौडवहों'' लिखा। समीक्षक शकंक ने किसी काश्मीरी युद्ध पर ''भुवनाभ्युदय'' लिखा जो अप्राप्य है। ''नवसाहसांचरित'' पद्मगुप्त (परिमल) का राजा भोज के पिता सिन्धुराज नव-साहसांक अथवा सिन्धुल पर लिखा पहला वास्तविक ऐतिहासिक वीरकाव्य है। यह लगभग १००० ई० के लिखा गया। कल्यान के चालुक्य विक्रमादित्य पर कश्मीरी कवि बिल्हण ने अपना ''विक्रमांकदेवचरित'' (११वीं के लगभग) लिखा। उसने अपने नाटक ''कर्णसुन्दरी'' में भी उसने ऐतिहासिक सामग्री का ही उपयोग किया। प्रणय प्रसंग की कविताओं के लिये यह कवि प्रभूत विख्यात है। दूसरा कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र (११वीं सदी) ने छोटे बड़े अनेकों काव्य, व्यंग्य, नाटक, नीति काव्य आदि लिखे। उसकी रचनाओं की संख्या पचास से भी ऊपर है। उसकी 'राजावली' का उपयोग कल्हण ने भी अपनी ''राजतरंगिणी'' की सामग्री के अर्थ किया था। कल्हण संस्कृत ऐतिहासिक काव्य का सबसे महान् प्रणेता है। उसकी ''राजतरंगिणी'' कश्मीर के इतिहास पर अत्यन्त महत्व का ग्रन्थ है जिसके लिए सामग्री उसने क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त

अभिलेखों और राजकीय रेकार्डों से भी लिया था। जोनराज ने उसी इतिहास के क्रम में अपनी "द्वितीय राजतरंगिणी" लिखी। उसमें श्रीवरप्राज्य और शुकक्रामीयोग था। कल्हण की राजतरंगिणी बारहवीं सदी के मध्य लिखी गई थी, जोनराज की मुस्लिम काल में समाप्त हुई। बारहवीं सदी में ही पृथ्वीराजविजय लिखा गया। तंजौर के विरूपाक्ष ने प्राय: तभी चोलचम्पू लिखा जिसका आधार चोल शासन था।

रूपकों—उपरूपकों का आरम्भ ड्रामा साहित्य में चन्देलराज कीर्तिवर्मन् (११वीं सदी) के आश्रित कवि कृष्णमिश्र ने किया। इस वर्ग के नाट्क-साहित्य की सुन्दरतम रचना जयदेव का "गीत गोविन्द" है। जयदेव उड़ीसा का था। परन्तु बंगाल के सेन वंशीय अन्तिम नरेश लक्ष्मण सेन (११७५-१२००) का राजकवि था। गीतगोविन्द राधा और कृष्ण के प्रणय, विरह और संयोग का काव्य है। संस्कृत साहित्य में इतना मधुर और संगीत परक काव्य और दूसरा नहीं। जयदेव ने "प्रसन्नराघव" नाम का एक नाटक और अलंकार ग्रन्थ भी लिखा। उसी दरबार में कवि धोयिक भी था जिसने मेघदूत के अनुकरण में पवनदूत लिखा। स्वयं लक्ष्मण सेन ने पिता के प्रारम्भ किए "अद्भुतसागर" को समाप्त किया।

कुछ काव्य व्याकरण को लेकर श्लेष में लिखे गए। भट्टि ने अपना "भट्टिकाव्य" (रावणवध) इसी शैली में लिखा। इस प्रकार के काव्यों को "दृयाश्रय" कहते थे। भूमक ने भी अपना व्याकरण ग्रन्थ "रावणार्जुनीय" इसी पद्धति से लिखा जिसमें रावण और कार्तवीर्यार्जुन (सहस्रबाहु) का युद्ध भी साथ ही साथ निरूपित हुआ। उसी परंपरा में राष्ट्रकूटराज कृष्ण तृतीय (लग. ९५०) के राजकवि ने अपने संरक्षक का चरित लिखते हुए अपना व्याकरण ग्रन्थ "कविरहस्य" रचा। इसी प्रकार हेमचन्द्र (१०८८-११७२) ने अपने "द्वयाश्रयकाव्य" को संस्कृत और प्राकृत व्याकरण का वाहक बनाया। उसका दूसरा नाम "कुमारपाल प्रतिबोध" था। इस प्रकार का काव्य व्याकरण, इतिहास और काव्य तीनों का वाहन होता था। उदाहरण तो ऐसे काव्यों के भी हैं जो अपना विषय प्रतिपादित करते हुए रामायण महाभारत की कथाएँ भी साथ कहते जायें। कविराज का "राघवपाण्डवीय" इसी प्रकार का एक काव्य है। ग्यारहवीं सदी के अन्त में सन्ध्याकरनन्दी ने इस प्रकार का अपना काव्य "रामचरित" लिखा जिसमें रामकथा के साथ ही बंगाल के नृपति रामपाल का जीवन चरित भी अंकित है। लगभग ३२ काव्य ऐसे हैं जिनमें तीन अर्थ की कथाएँ एक साथ कही गई हैं। जैन पण्डित हेमचन्द्र के लिए तो अनुश्रुति है कि उसने सात-सात कहानियों का एक ही काव्य (सप्तसन्धान) लिखा। परन्तु कहना न होगा कि इस प्रकार का काव्यांकन काव्य को गुणहीन कर देता है। इस शैली को चित्रकाव्य कहते हैं।

एक प्रकार के काव्य जो सौ श्लोकों में सम्पन्न होते थे "शतक" कहलाते थे। ऊपर मयूर के "सूर्यशतक" और बाण के चण्डीशतक का उल्लेख किया जा चुका है। सातवीं सदी के आसपास के भर्तृहरि ने तीन शतक लिखे—"शृंगारशतक" वैराग्यशतक" और

"नीतिशतक"। कश्मीरी कवि अमरूक ने "अमरूशतक" लिखा जिसकी एक-एक पंक्ति प्रणय का अभिराम वर्णन करती है। सातवीं सदी से ही, सम्भवतः उसने अपना शतक लिखा वह लोकप्रिय हो गया और उसके श्लोक निरन्तर उद्धृत किए जाते रहे हैं। बिल्हण ने अपनी "चौरपंचाशिका" में पचास पंक्तियों में पचास अभिराम अनुभूतियों का वर्णन किया है। जयदेवकालीन गोवर्धन की "आर्यासप्तशती" में ७०० श्लोक हैं। इसी प्रकार भर्तृहरि के अतिरिक्त घटकर्पर, वररुचि और वेतालभट्ट के क्रमशः नीतिसार "नीतिरत्न, और नीतिप्रदीप" हैं। इस प्रकार के अनेक अन्योपदेश काव्य कवियों ने लिखे। बल्लट (कश्मीरी) (नवीं सदी) इनमें मुख्य था। क्षेमेन्द्र की भी अनेक इस प्रकार की रचनाएँ हैं। साथ ही उसने व्यंग्य भी काफी लिखा। "कलाविलास" में उसने वैद्यों, संगीतज्ञों, वारांगनाओं का खूब मजाक उड़ाया है। उसके "देशोपदेश" और नर्ममाला" में कायस्थों, गणकों, लेखकों आदि पर प्रशस्त व्यंग्य है। उसकी "समयमातृका" में वारांगनाओं को अपना पेशा सम्हालने की अनुभव जन्य सलाह दी गई है। इसका आधार अधिकतर "कुट्टनिमत" है जिसे कश्मीरनरेश जयापीड़ के मंत्री दामोदर गुप्त ने रचा था। इसी प्रकार जल्हण ने अपने "मुग्धोपदेश" में वारांगनाओं और उनके कृपापात्रों पर उत्कट व्यंग्य किए। सत्रहवीं सदी के दीक्षित ने "कलिविडम्बन" लिखकर वैद्यों, अनाड़ी शिक्षकों, ज्योतिषियों आदि का मजाक उड़ाया। उसका "सभारन्जन" भी इसी प्रकार का काव्य है। तंजोर के कुट्टि कवि (वाछेश्वर यन्वन्) ने "महिषशतक" में तंजोर के ह्रास शील मराठा दरबार पर व्यंग्य किया। इस प्रकार की कविताएँ "चाटू" कहलाती हैं। प्रशस्तिवाचक होती हैं। चाटुकारिता से भरी ये अधिकतर प्रेमियों और संरक्षक राजाओं तथा श्रीमानों के प्रति कही गई हैं। सुभाषितों का भी संस्कृत में बाहुल्य है। ये कविकृतियों के संग्रह हैं। अनेक कवियों की सूक्तियाँ अनेक प्रकार से इनमें संगृहीत हैं। इनमें प्राचीनतम और विषयानुसार संगृहीत सुभाषित "कवीन्द्रवचनसमुच्चय" है। इसमें विषयों के कवियों के नाम भी दिए हुए हैं। इसके अतिरिक्त कश्मीरी वल्लभदेव की "सुभाषितावली" बंगाली श्रीधरदास (१२०५) की "सदुक्ति कर्णामृत" वैद्यभानु पण्डित रचित (देवगिरि के यादवराज कृष्ण के महावत कश्मीरी जल्हण कृत "सूक्तिमुक्तावली"—१२५७ शार्गंधर पद्धति (१४वीं सदी के जिसमें कालिंगराय सूर्य का सूक्ति रत्नहार है) आदि बड़ी उपादेय हैं। सैंकड़ों काव्य संग्रह इस प्रकार के मुस्लिम-शासन काल में भी बने जिनमें प्रधान "सुभाषितरत्न-भाण्डागार" है। इन्हीं सुभाषितों से कवियों के अतिरिक्त ४० कवियित्रियों का पता चला है। इनमें सबसे महत्व की पुलकेशिन द्वितीय की पुत्रवधू और चन्द्रादित्य की रानी विज्जिका (विजयांका—७वीं सदी) थी।

कुछ नारी कवियों ने महाकाव्य और चम्पू आदि भी स्वतन्त्र रूप से लिखे हैं। कम्पराय (१४वीं सदी) की रानी ने "मदुरा विजय" में अपने पति की विजयों का बखान

किया। तिरूमलाम्बा ने राजा अच्युतराय (१६ वीं सदी) के वादम्बिका के साथ विवाह पर एक चम्पू लिखा। रामभद्राम्बा ने अपने पति तन्जोर के राजा रघुनाथ (१७ वीं सदी) के जीवन पर एक महाकाव्य लिखा। इसी प्रकार तन्जोर दरबार की मधुरवाणी नाम्नी कवियित्री ने रामायण नामक एक काव्य लिखा।

स्तोत्रों (भक्तिकाव्यों) का भंडार भी संस्कृत में बड़ा है। अनेक भक्त कवियों ने अपने इष्टदेव की प्रशंसा और प्रार्थना में स्तोत्र लिखे। इनमें अनेक तो अत्यन्त हृदयग्राही हैं। उनकी परंपरा तो बहुत प्राचीन है, वैदिक मंत्रों आदि की और निकटतम भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय की हैं। ये स्तुतियाँ अधिकतर शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य आदि की अर्चना में गाई गई हैं। प्राचीनता में बौद्ध मातृचेट का "शतपंचाशतिक" अधिक प्रसिद्ध है। मयूर ने "सूर्यशतक" और बाण ने "चण्डीशतक' लिखा। पुष्पदन्त का "शिवमहिम्नस्तव" दण्डी, हलायुध, बिल्हण, मल्हण, और मलयराज की स्तुतियाँ एकत्र "शिवपंचाष्टवीं" भट्टनारायण की "स्तवाचिन्तामणि" उत्पलदेव (१० वीं सदी) का "शिवस्तोत्रावली" कुलशेखर की "मुकुन्दमाला", यामुनाचार्य का "स्तोत्ररत्न" श्री वत्सांक की "पंचष्टवी" सौन्दर्यलहरी "देवी-पंचष्टवी" आदि अनेक स्तोत्र हैं जि नकी शैली बड़ी मधुर और गेय है। कृष्ण के ऊपर भी प्रभूत स्तोत्र साहित्य रचा गया इनमें लीला शुक बिल्वमंगल (दसवीं-ग्यारहवीं सदी) का "कृष्णकर्णामृत" तो बालकृष्ण पर अत्यन्त मधुर रचना है। कुछ आश्चर्य नहीं यदि सूरदास की कृतियों पर इसका प्रभाव पड़ा हो।

कथा साहित्य का आरम्भ सम्भवतः भारत में ही हुआ। वेदों में भी अनेक आख्यायिकाएँ हैं। फिर पुराणों की कितनी ही कथाएँ तो ऋग्वेद से भी प्राचीन मानी जाती हैं। महाभारत में भी सैकड़ों कथाएँ संग्रहीत हैं। "पंचतन्त्र" का अनुवाद अरबी में सदियों पहले हुआ। "तन्त्राख्यायिका"और"हितोपदेश" भी कहानियों के आकर हैं। गुणढ्य की"बृहत्कथा" पैशाची में ईस्वी दूसरी सदी में ही लिखी जा चुकी थी। इसका मूल तो नष्ट हो गया परन्तु सातवीं सदी के गंगराज दुर्विनीत ने इसका संस्कृत संस्करण प्रस्तुत कर दिया। कश्मीर के राजा अनन्त की रानी सूर्यमती के मनोरंजन के लिए सोमदेव द्वारा प्रस्तुत (१०६३-८१) "कथासरित्सागर" कहानियों की खान है। अन्य कथासंग्रह हैं—"शुकसप्तति", सिंहासनद्वत्रिंशिका, शिवदासकृत "कथार्णव" राजशेखर का "प्रबन्धकेश" मेरुतुंग की "प्रबन्धचिन्तामणि" विद्यापति की "पुरुषपरीक्षा" बौद्धों की "जातकमाला" आदि।

पिछले काल में भी काफी काव्यरचना हुई। सोलहवीं सदी के शाहजहाँकालीन पंडितराज जगन्नाथ अपने ज्ञान और काव्य शक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। इधर की सदियों में उनका सा कवि और रसमर्मज्ञ दूसरा नहीं हुआ। उनकी "गंगालहरी" माधुर्य और शब्दलालित्य में संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। "भामिनीविलास" भी बड़ा मधुरकाव्य है।

इस काल अथवा कुछ पूर्व से ही फारसी कृतियों के संस्कृत अनुवाद शुरू हो गए थे। पन्द्रहवीं सदी में ही श्रीवर ने युसुफ और जुलेखा की कहानी "कथा कोथुक" में लिख डाली थी। "अकबरनामा" का संस्कृत रूपान्तर भी "अकबरनाम" नाम से प्रस्तुत हुआ। फारसी से एक और कहानीग्रंथ का अनुवाद "सर्वदेशवृत्तान्त संग्रह" है। अब्दुल रहमान ने "अपभ्रंशदूतकाव्य" और "संदेशवाहक" लिखा। अकबरशाह ने "श्रृंगार-मंजरी" रचा और लक्ष्मीपति ने सैयद-भाइयों में से एक पर "अबदुल्ला-चरित" प्रस्तुत किया। इसी प्रकार बाइबिल के दाऊदपुत्र सुलेमान (सालोमन) पर (अनुवाद रूप में) कल्याणमल्ल ने "सुलेमच्चरित" की रचना की।

: ४ :

पाली

वस्तुतः पाली (पालि) भी प्राकृत ही है, बुद्ध कालीन मगध की प्राकृत। बौद्धों का साहित्य विशेषतः पालि-प्राकृत में ही लिखा गया यद्यपि संस्कृत भी, विशेषतः उत्तर काल में, उनकी व्याख्या और चिन्तन का माध्यम बनी। साधारणतः हीनयानियों का साहित्य पाली में है। और महायानियों का संस्कृत में। कुछ लोगों का मत है कि पाली गौतम बुद्ध के पितृस्थान की भाषा न थी बल्कि अनेक प्राकृत भाषाओं के सम्मिश्रण से बनी थी जो पहिले बुद्ध के उपदेशों की संज्ञा बनी फिर उनके साहित्य की। आज उसका साहित्य विशेषतः सिंघल, बर्मा और स्याम में प्रचलित है।

बौद्धों के सिद्धान्त अधिकतर त्रिपिटकों में संगृहीत हैं। त्रिपिटक-साहित्य प्रायः समूची मात्रा में आज हमें उपलब्ध है। उसके तीन भाग हैं—विनय पिटक, सुत्तपिटक, और अभिधम्म पिटक। इनमें उपदेशों, गीतों, आख्यानों, संघ के विधानों और दार्शनिक तत्वचेतना का संग्रह है। इनके अंश विविधकाल में संगृहीत होते गये। उनको एकत्र करने का पहला प्रयास बुद्ध की मृत्यु के शीघ्र ही बाद राजगृह में हुआ। दूसरा १०० वर्ष बाद संघ में विधान और सिद्धान्त सम्बन्धी विवाद उपस्थित होने पर प्रस्तुत हुआ। तीसरा संग्रह अशोक द्वारा आहूत पाटलिपुत्र का तीसरा बौद्ध संगीति में हुआ। उसी काल तीसरी संगीति के प्रधान तिस्सामग्गलिपुत्त ने विरोधियों के उत्तर में अपना "कथावस्तु" रचा। कथावस्तु भी त्रिपिटकों में ही प्रायः मान लिया गया है और बौद्ध धार्मिक सिद्धान्तों का एक अंग बन गया है।

बौद्ध धार्मिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य साहित्य भी पाली भाषा में लिखा गया। "नेत्तिप्पकरण" और "पेटकापदेश" भाषा और शैली सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। पाली का एक विशिष्ट ग्रंथ "मिलिन्दपन्ह" है जिसे साकल (स्यालकोट) के ग्रीक राजा मिलिन्द (मेनान्दर) के दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर में उसके गुरु नागसेन ने प्रस्तुत किया। इस प्रश्नोत्तर

के परिणामस्वरूप यवनराज मेनान्दर बौद्ध हो गया। इस ग्रंथ की सी साहित्यिक प्रवीणता पाली के अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती। मेनान्दर का समय १५० ई० पू० के लगभग माना जाता है। जातक कहानियों का संग्रह पाली साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी कथाएँ ५५० के लगभग हैं और बुद्ध के (बोधिसत्व के रूप में) जन्म से सम्बन्ध रखती हैं। भारतीय सभ्यता के इतिहास में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। ईसा पूर्व तृतीय शती से पाँचवीं शती ई० तक का भारतीय जीवन इनमें प्रतिबिम्बित है।

बौद्ध साहित्य की अनेक टीकाएँ और भाष्य पाली में ही लिखे गये। बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धर्मपाल ने अपनी साहित्यिक चर्या द्वारा पाली साहित्य का भंडार भरा। बुद्धदत्त ने अपने "विनय-विनिच्चय" में विनय पिटक को संक्षिप्त किया। बुद्धघोष ने त्रिपिटकों पर अपनी अनेक टीकाओं के अतिरिक्त "विसुद्धिमग्ग" नाम का अनुपम ग्रंथ लिखा। धम्मपाल की "विमानवत्थु" और "थेर-थेरिगाथा" पर टीकाएँ वस्तुतः कथाओं और आख्यानों के संग्रह हैं। सिंहल के प्रसिद्ध धार्मिक इतिहास दीपवंस और महावंस भी पाली में ही हैं। जो बौद्ध धर्म के इतिहास पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं। इनके अतिरिक्त "चूलवंस" "दाथावंस" "सासनवंस" आदि भी इसी वंस-साहित्य के अंग हैं। पाली में महाकाव्य तो उपलब्ध नहीं परन्तु कुछ छंदोबद्ध कृतियाँ फिर भी उपलब्ध हैं। इनमें "जिनचरित" "तेलकठाहगाथा" "पंजमधु" और "सद्धम्मोपायन" संस्कृत की पद्धति के अनुसार ही कच्चायन और मोग्गल्लान ने भी पाली व्याकरण का निर्माण किया। "सद्दनीति" नाम का पाली व्याकरण भी उसी काल रचा गया। मोग्गल्लान ने भी पाली व्याकरण का निर्माण किया। मोग्गल्लान वैयाकरण होने के अतिरिक्त कोषकार भी थे। उनकी "अभिधान-प्पदीपिका" इस दिशा में पर्याप्त प्रसिद्ध है। "वुत्तोदय" और "छंदोविचिति" में छंदशास्त्र का अध्ययन हुआ और "सुबोधालंकार" में अलंकार शास्त्र का। परन्तु निस्संदेह संस्कृत अनुशीलन का अनुयायी पाली साहित्य इस क्षेत्र म मूल की तुलना में सर्वथा नगण्य है।

: ५ :

संस्कृत में बौद्ध साहित्य

संस्कृत में प्रस्तुत बौद्धों का प्रभूत साहित्य मूल में नष्ट हो गया है और आज उसके कुछ अनुवाद चीनी और तिब्बती भाषाओं में ही उपलब्ध हैं। उस संस्कृत की शैली पाली और प्राकृतमिश्रित हैं। उसमें माधुर्य और प्रवाह है।

धार्मिक चिन्तन का पर्याप्त साहित्य संस्कृत में निर्मित हुआ। बुद्ध को लोकोत्तर मानने वाला और उनके जीवन के चमत्कारों का उल्लेख करने वाला (विनयपिटक का) "महावस्तु" संस्कृत में ही था। महाकाव्य के रूप में बुद्ध का जीवन "ललितविस्तर"

में छंदोबद्ध हुआ। वस्तुतः यह ग्रंथ गद्य और पद्य दोनों में प्रस्तुत है। संभवतः चीनी में इसका पहला अनुवाद ३०८ ई० में हुआ और तिब्बती में ९वीं सदी में। सूत्रों की मर्यादा महायान शाखा के बौद्धों में बढ़ी है। इनकी रचना भी संस्कृत में ही हुई। नैपाल में विशेष आदृत नवधारणीयों में इस संस्कृत में लिखी "अष्टसाहास्निका" "प्रज्ञापारमिता" "सद्धर्मपुण्डरीका" "लंकावतार" सुवर्णप्रभास" की गणना है। इन सूत्रों में "प्रज्ञापारमिता" विशेष महत्व की है। बौद्ध संस्कृति के महान कवियों में नागार्जुन, आर्यदेव, अश्वमेघ और कुमारलव्ध (कुमारलाभ) हुए। अश्वमेघ तो संस्कृत का महाकाव्यकार हो गया है। इनमें से पहले दो महायान के शून्यवाद के प्रवर्तक थे। नागार्जुन ने उसी सिद्धान्त की व्याख्या में "मध्यमक शास्त्र" रचा। नागार्जुन के दो और ग्रंथ "युक्तिषष्टिका" और "शून्यतासप्तति" पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। नागार्जुन के शिष्य आर्यदेव ने "चतुःशतक" की रचना की। महायान सम्प्रदाय का दूसरा दिग्गज दार्शनिक वसुबन्ध असंग था जिसने "अभिधर्मकोष" और उसके ऊपर एक संक्षिप्त , भाष्य लिखा। यशोमित्र ने "अभिधर्म कोषव्याख्या" नाम की टीका रची जिसका ज्ञान-विस्तार अपूर्व है।

दिगनाग बौद्ध तर्क शास्त्र का प्रतिष्ठाता था। बौद्ध दर्शन में उसकी ऊँचाई के नाम कम हैं। वह गुप्तकाल म हुआ, संभवतः चौथी शती ईस्वी में और "न्यायप्रवेश" तथा "प्रमाणसमुच्चय" लिखकर उसने तर्क शास्त्र की नींव डाली। दिग्नाग की साहित्यिक सक्रियता केवल बौद्ध दर्शन तक ही सीमित न थी। कुछ विद्वानों के मत से "कुन्दमाला" का भी रचयिता वही है। पंडितों ने उसको कालिदास का समकालीन भयावह समीक्षक भी माना है। सातवीं सदी के विचक्षण बौद्ध दार्शनिकों में महान् धर्मकीर्ति हुआ जिसके "प्रमागवार्तिक" और "न्यायविन्दु बौद्ध तर्कशास्त्र के अनुपम स्तम्भ हैं। इस दिशा के महापंडितों में ही "बोधिचर्यावतार" के रचयिता शान्तिदेव और तत्वसंग्रह के प्रणेता शान्तरक्षित की भी गणना है।

अश्वघोष का नाम ऊपर आ चुका है। उसने "बुद्धचरित" और "सौन्दरानन्द" नाम के काव्य लिखे। मध्यएशिया से मिले कुछ नाटकांशों से विदित होता है कि अश्वघोष नाटककार भी था। "शारिपुत्रप्रकरण" उसका एक प्रकरण-नाटक था जिसके अंश मिले हैं।

जातकों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन पाली जातकों की शैली में ही संस्कृत में "अवदान" लिखे गये। "दिव्यावदान" इसी प्रकार का बौद्ध महापुरुषों के महान् कार्यों का संग्रह है। आर्यसूर ने संस्कृत में "जातकमाला" और कुमारलात ने "कल्पनामण्डितिका" लिखी। अवदानों में सबसे प्राचीन "अवदान शतक" है जो तीसरी सदी ईस्वी में ही चीनी भाषा में अनूदित हो चुका था। स्वयं "दिव्यावदान" जिसमें सहज गद्य और अलंकृत काव्य दोनों का सुन्दर एकत्र संग्रह है. ४०० ई० के पहले प्रस्तुत हो चुका था। अवदानों की परंपरा में ही "कल्पद्रुमावदानमाला" "रत्नावदानमाला" "भद्रकल्पना-

वदान" "विचित्रकर्णिकावदान" और "अवदानकल्पलता" लिखे गये। इनमें से अन्तिम प्रसिद्ध कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने १०५२ ई० में लिखा। क्षेमेन्द्र के अवदानों में उसके पुत्र सोमेन्द्र ने "जीमूतवाहनावदान" नाम के एक नये अवदान के साथ एक भूमिका भी जोड़ी।

वौद्ध साहित्य का एक अंग तन्त्र है। उनका विस्तार देश में बड़ा है, यद्यपि उनका आरम्भ वस्तुतः आसाम और बंगाल में हुआ। ८वीं सदी ई० अथवा उससे कुछ पहले से भारतीय तन्त्र तिब्बती और चीनी में भी अनूदित होने लगे थे। ७२० ई० के लगभग वज्रबोधि और अमोघवज्र नामक दो आचार्यों ने चीन जाकर वहाँ तन्त्रों का प्रचार किया। तन्त्रों की संस्कृत शैली बड़ी बर्बर है। उतनी ही बर्बर जितना उनका प्रतिपाद्य विषय। तन्त्रों का प्रभाव भारत और एशिया पर गहरा पड़ा। कछ लोग तो उन्हें अत्यन्त प्राचीन मानते हैं और उनके साथ के आगमों की प्राचीनता तो वेदों की सी पुरानी घोषित की गई है।

: ६ :

प्राकृत

प्राचीन भारतीय भाषा में साधारणतः दो प्रधान भाग किये जाते हैं—संस्कृत और प्राकृत। प्राकृत का अर्थ है स्वाभाविक अथवा साधारण, वस्तुतः संस्कार रहित, और संस्कृत का संस्कारयुक्त अर्थात्, शिष्ट। कुछ लोगों ने प्राकृत को संस्कृत का बिगड़ा हुआ रूप भी माना है जो नितान्त असंगत है। सच तो यह है कि जिस स्वाभाविक जन साधारण की भाषा का संस्कार हुआ और जिसे संस्कृत कर शिष्ट व्यवहार में लाने लगे वह प्राकृत थी—जनभाषा—और संस्कारयुक्त होकर वही संस्कृत कहलाई। इससे उसका प्रधान. मूलभूत और संस्कृत पूर्व होना अनिवार्य है, यद्यपि यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि संस्कृत भी अनेकबार जनसाधारण के सम्पर्क में आकर जो सरल रूप में व्यवहृत हुई वह भी कालान्तर में प्राकृत की अपनी स्वतन्त्र, साहित्यिक शैली बनी और उस शैली का विविध प्रांतों में विविधतः विकास होकर अनेक स्वतन्त्र प्राकृत शैलियों का जन्म हुआ।

वैदिक संस्कृत साहित्य के समकालीन प्राकृतों के हमें दर्शन नहीं होते परन्तु निःसन्देह छठी सदी ई० पू० के महावीर और बुद्ध के प्राकृत प्रवचनों से सिद्ध है कि प्राकृतों का प्रादुर्भाव शैलियों के रूप में भी उस सदी से काफी पूर्व हो चुका था। क्रमशः तीसरी और दूसरी ई० पू० की सदियों के अशोक और खारवेल के लेख भी प्राकृत में ही सम्पन्न हुए। वैसे ही सातवाहनों के भी अभिलेख प्राकृतों में ही हैं। पहली में पहली सदी से ही कुछ पात्रों की प्राकृत बोलने की परंपरा चल पड़ी। स्वयं अश्वघोष इसका प्रमाण है। नाटकों में राजा और महान् कर्मा वीर तथा ब्राह्मण पुरोहित आदि तो संस्कृत में बोलते हैं परन्तु महिलाएँ

और निम्नपात्र प्राकृतों में। महिलाओं का साधारणतः वक्तव्य शौरसेनी में होता है और निम्नवर्गियों का मागधी में।

प्राकृत की विभिन्न शैलियों में प्रधानतः महाराष्ट्रीय, शौरसेनी. मागधी, पैशाची, अपभ्रंश आदि मानी गई हैं। पाली और अर्ध-मागधी भी जिनका उपयोग बौद्ध तथा जैन धार्मिक सिद्धांत ग्रन्थों में हुआ है प्राकृत ही थीं। प्राकृत का पहला रूप पाली और पैशाची में मिलता है और दूसरा शौरसेनी तथा मागधी में। अर्धमागधी यद्यपि उत्तरकालीन है, पाली से ही बहुत मिलती है। महाराष्ट्रीय अनेक काव्यकृतियों की भाषा बनी। पाँचवीं सदी ईस्वी तक प्राकृत भी संस्कृत की ही भाँति शैली के रूप में रूढ़िगत हो चुकी थी और एक नयी जनवाली,अपभ्रंश जो शिष्टों के सम्पर्क से अपनी शक्ति अब तक नष्ट होने से बचाए हुए थी, अब साहित्य की नयी शैली के रूप में प्रयुक्त हुई लगती। ऐसा है कि शिष्टों की भाषा और काव्य, कथा आदि की वाणी संस्कृत होते हुए भी उसकी परिष्कृत शैली के बावजूद भी व्यंजना को जब-जब शक्ति और नवीनता की आवश्यकता हुई तब-तब उसने अपने रूढ़ि आधार को छोड़ प्राकृतों को बरा। शूद्रक ने "मृच्छकटिक" में महाराष्ट्री का प्रयोग किया और कालिदास ने "विक्रमोर्वशी" में (यदि उनको प्रक्षिप्त न माना जाय) गीतों के लिए अपभ्रंश का। हजार वर्ष बाद प्रायः १४०० ई० में विद्यापति ने अपने संस्कृत–प्राकृत नाटकों में मैथिली छंदों का उपयोग किया।

एक विशेष प्रकार के ड्रामा, सट्टक, में मात्र संस्कृत का प्रयोग होता है। संस्कृत नाटिका के वह अत्यन्त निकट है। इस प्रकार का एक नाटक "कर्पूरमन्जरी" है जिसे ९०० ई० के आसपास राजशेखर ने लिखा। इसका कथानक प्रलय-कलह है जिसके अन्त में चण्डपाल और कर्पूरमन्जरी का विवाह सम्पन्न होता है। राजशेखर साहित्यिक व्यंजना और छंद शैली का अनुपम पंडित है और उसके छंदों में असाधारण सांगीतिक झंकृति है। प्रवाह भी उसका तरल और अविरल है। प्रायः ९०० वर्ष बाद कालीकट के ज़मूरिन (समुद्रिन) की सभा के रुद्रदास ने चन्द्रलेखा नामक सट्टक लिखा जिसमें मानवेद और चन्द्र-लेखा के विवाह की कथा है। तंजोर के मध्य १८ वीं सदी के राजा तुलजाजी के राजकवि घनश्याम ने "आनन्दसुन्दरी" नामका सट्टक लिखा। उत्तरकाल में उत्तरापथ में भी प्राकृत में नाटक लिखने के कुछ प्रयोग हुए जिनमें मुख्य "नयचन्द्रगाथा" है। वह पन्द्रहवीं सदी के लगभग हुआ और उसने अपने सट्टक "रम्मामंजरी" में काशी के राजा जैत्रसिह और गुज-रात के मदवर्मन की कन्या रम्मा की कथा प्राकृत और संस्कृत की परस्पर गुथित शैली में लिखी।

यह तो हुई प्राकृत के धर्मेतर साहित्य की बात, परन्तु उस साहित्य का प्रधान अंग तो धार्मिक जैन सिद्धांतों में विकसित हुआ। जैन आगम में महावीर और उनके शिष्यों के उपदेश अर्धमागधी में संग्रहीत हैं। चौथी शती ईस्वी पूर्व में पाटलिपुत्र की संगीति में इनका संग्रह

सम्पन्न हुआ और प्राय: ९०० वर्ष बाद वल्लभी संगीति ने देवर्द्धि के नेतृत्व में जैन धर्म के इन प्राकृत सिद्धान्तों का विशेष वर्गीकरण किया। इन ग्रंथों की सीमा में सारा मानव ज्ञान जैसे सिमट कर आ गया है। "आचारांग" "देशवैकालिक" आदि ने भिक्षु आचार का वृहत उल्लेख किया। "जीवाधिगम" आदि में प्राणियों के सम्बन्ध के विचार बिखरे. "उपासक दशा:" "प्रश्नव्याकरणांग" ने आदर्शों और गृहस्थों के आचारों का विवेचन किया। अन्य ग्रंथों में विशदरूप से सुकर्म, सृष्टि, उपदेश सम्बन्धी आख्यानों का संग्रह हुआ। "भगवती" के से ग्रंथ तो विश्वकोष का रूप धारण कर चुके हैं।

"आचारांग" के गद्य में छंदों का भी सन्निवेश है। जैन प्राकृत शैली में सूत्र और प्रवाहतरल दोनों रूपों का विकास हुआ है। दर्शन अथवा प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल उनकी प्राकृत शैली चुन ली गई है। महावीर ने अर्धमागधी में अपने प्रवचन कहे थे। इसी से जैन सिद्धांत ग्रंथों की भाषा की संज्ञा अर्धमागधी है। शास्त्रीय प्रवचनों के अतिरिक्त साहित्यिक व्यंजना के वाहन स्वरूप प्राकृत के प्रयोग का श्रेय श्वेताम्बर जैनों को है। दिगम्बरों और श्वेताम्बरों की शैलीगत भाषा के प्रयोग में काफी अन्तर है।

एक मनोरंजक जैन प्राकृत शैली उत्तरापथ के पर्यटकों ने दक्षिण के सम्पर्क से विकसित की। चौथी शती ई० पू० के प्राय: अन्त में चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के अकाल से पीड़ित हो जैनाचार्य भद्रबाहु और उनके कुछ अनुयायियों के साथ दक्षिण चले गये। अपने सम्प्रदायिकों की मनस्तुष्टि के लिए भद्रबाहु आदि ने अपने स्मृतिगत भावों को लिख डाला। इनका एक विशिष्ट वर्ग बन गया जो जैन सम्प्रदाय में आदर और महत्व का विषय बना। इनमें से प्राचीनतम "सत्कर्म" और "कषायप्राभृत" हैं जो दृष्टिवाद के अवशेष माने जाते हैं। ८१६ ईस्वी में वीरसेन–जिनसेन ने अपने ग्रंथ में प्राकृत की पूर्वकालीन टीकाओं का समावेश किया। इन टीकाओं में कर्म के सिद्धांत का अद्भुत वितन्वन है। इस प्रकार के सिद्धांत परक ग्रंथों में वट्टकेर का "मूलाचार" और शिवराम की "आराधना" भी गिनी जाती हैं। इनमें जैन-प्रवृजित जीवन के आचार-विधान सांगोपांग वर्णित हैं। जैन-प्राकृत में एक वर्ग का साहित्य "भक्ति" कहलाता है जिसमें स्वाभाविक ही भक्तिमूलक गायनों का बाहुल्य है।

जैनग्रंथों का एक पूरा परिवार कुन्दनकुन्द के नाम से सम्बन्धित है। कितना उस यती का है, कितना दूसरों का आज यह नहीं कहा जा सकता। वह सारा परिवार आज हमें उपलब्ध भी नहीं। "पंचासतिकाय" और "प्रवचनसार" निश्चय ही माननीय ग्रंथ हैं जो उस महाभूत की लेखनी से प्रसूत हुए। उसका "समयसार" अद्भुत प्रेरणामूलक कृति है। यतिवृषभ का "तिलोयपणत्ति" अनेक विषयों का संग्रह है। कुन्दकुन्द और यतिवृषभ के ग्रंथ ईसा की प्रारम्भिक सदियों में रचे गये। मूलग्रंथों पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गईं जिनमें कई तो छंदोबद्ध हैं और "निर्युक्ति" कहलाती हैं। इनमें से अनेक भद्रबाहु की लिखी बताई जाती हैं। इनका तर्क और दार्शनिक शैली असाधारण है। आवश्यक निर्युक्ति पर

६०९ ई० में जिनभद्र क्षमाश्रमण ने प्राकृत में जो भाष्य लिखा वह इसी परंपरा का अ मान्य ग्रंथ माना जाता है। भाष्य निर्युक्तियों के ऊपर यत्र-तत्र उनके पूरक के रूप में छन्दोबद्ध लिखे गये। उन्हीं निर्युक्तियों की गद्य टीकाएँ प्राकृत और संस्कृत के अनोखे मिश्रण के रूप में सम्पन्न होकर "चूर्णि" कहलाए। जिनदास महत्तर द्वारा लिखा "नन्दीचूर्णि" ६७६ ईस्वी में सम्पन्न हुआ।

प्राकृत का काव्य-साहित्य भी बड़ा अनमोल और पर्याप्त प्राचीन है। अनेक गेय अथवा लिरिक कविताओं की हाल से भी पहले रचना हुई। प्राचीनतम विशद गाथा रचना हाल की "सत्तसई" है जिसमें ७०० गाथाओं का संग्रह है। हाल वस्तुतः इस अद्भुत संग्रह का सम्पादक है। इनमें से उसकी अपनी कुछ ही गाथाएँ हैं। अधिकतर उसने लोकगीतों से ही संग्रह किया और उनका संग्रह करते समय निस्संदेह उसने उनकी शैली, विषय, भावादि का विशेष ध्यान रखा। हाल का यह संग्रह केवल अपनी कलात्मक मधुरता अथवा काव्यगत सौंदर्य के लिए ही प्रख्यात नहीं वरन् उसकी महत्ता उसके प्रारम्भिक प्राकृत लोक-साहित्य होने में भी है जिसकी रचना में मूलरूप में अनेक नारियों ने भी सक्रिय भाग लिया था। हाल आन्ध्रसातवाहन राजा था जिसके समय का निश्चित पता तो हमें नहीं है परन्तु जो संभवतः ईसा की पहली और तीसरी सदियों के बीच कभी हुआ था। कम-से-कम हाल का यह संग्रह दूसरी अथवा तीसरी सदी ईस्वी तक प्रस्तुत हो चुका था। संस्कृत और हिन्दी में इस सत्तसई के अनुकरण में अनेक संग्रह प्रस्तुत हुए परन्तु मूल प्राकृत के सौंदर्य तक कोई नहीं पहुँच सका। हिन्दी की बिहारी आदि की सत्त-सईयाँ भी इसी हाल की "गाथा सत्तसई" पर अवलम्बित हुई। "गाथासत्तसई" का विषय प्रधानतः और साधारणतः जनपदों के जन-जीवन पर अवलम्बित है, परन्तु किसी मात्रा में साहित्यिक रुचि अथवा शिष्टता को उसकी शैली दूषित नहीं करती। ऋतुओं की पृष्ठ-भूमि, देहात का काव्योपकरण, गाँव की जनता का भाव विलास, और निस्सीम चराचर का अभिराम निरूपण यथार्थ रूप से "सत्तसई" के एक-एक दो-दो पंक्तियों में उभर पड़े हैं। काव्य का प्रधानभाव शृंगार और करुणा है और प्रणय के प्रसंग विविध रूप से अंकित हुए हैं। विरह और संयोग, अनंग रंग और परिताप रोमांचक प्रवीणता से चित्रित हुए हैं। अनेक दृश्यों में करुणा का अविरल प्रवाह है। प्रमदा पिपासु पर्यटक को जल पिला रही है, जल की धार अटूट रूप से ऊपर से गिरती है, नेहमूढ़ पिपासु के स्निग्ध लोचन ऊपर टँग गये हैं और शिथिल उँगलियों के बीच से जल नीचे अविराम टपकता जाता है। कभी ऊपर से गिरने वाली धारा अनंगाहत नारी के शैथिल्य से नितान्त पतली होकर अपेय हो जाती है। दोनों की क्रिया में सचेतक प्रमाद है, सद्योजात प्रणय से सम्भूत, और दोनों ही अपने-अपने तरीके से मिलन की अवधि लम्बी कर रहे हैं। "गाथा–सत्तसई" संसार के जनसाहित्य में प्रणय संवाद के रूप में, शैलीगत साहित्य के रूप में, प्राचीनतम और अनुपम है।

ऊपर कहा जा चुका है कि "सत्तसई" के अनुकरण में अनेक ग्रंथ संगृहीत हुए। संस्कृत और हिन्दी में तो उनके अनुकरण हुए ही, संस्कृत सुभाषितों के "पर्याय" संग्रह स्वयं प्राकृत में भी कुछ कम संख्या में नहीं बने। यहाँ पर्याय लिखने से तात्पर्य किसी प्रकार यह नहीं कि प्राकृत सत्तसईयां संस्कृत सुभाषितों की अनुवर्ती हैं। हाँ, भावों की समता निश्चय ही सिद्ध है। परन्तु वह अधिकतर इस कारण है कि दोनों का (पारस्परिक आदान-प्रदान से भिन्न) आधार, समान कोष, लोकचर्या है, यद्यपि इस लोकचर्या से सामीप्य संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का सर्वदा अधिक रहा। हाल से मिलता-जुलता एक संग्रह "वजालग्ग-इन्" नाम से जयवल्लभ ने किया। यह भी एक प्रकार की सत्तसई ही है यद्यपि पाठभेदों के कारण इसके छंदों की संख्या ठीक ७०० नहीं। इसमें हाल के अनेक छंद मिलते हैं। इसमें तीन विशेष प्रसंगों-धर्म, अर्थ और काम—का निरूपण है, यद्यपि काम सम्बन्धी अंश शेष दोनों से कहीं अधिक और ग्रंथ का प्रायः आधा है। सत्तसईकार जैन है परन्तु संग्रह में साम्प्रदायिकता का स्पर्श तक नहीं। गाथाएँ महाराष्ट्री में हैं जिनमें अपभ्रंश की मात्रा भी कुछ कम नहीं।

नीतिपरक छंदों के भी अनेक संग्रह प्राकृत में मिलते हैं। इस प्रकार का प्राचीनतम संग्रह "उवएसमाला" है जिसमें श्रमणों और गृहस्थों के आचार ५४० छंदों में निबद्ध हैं। संग्रह का रचयिता महावीर का समकालीन या कुछ बाद का प्रव्रजित राजा धर्मदास माना जाता है। ग्रंथ की रचना उसने अपने पुत्र कुमार रणसिंह के लिए की। नवीं सदी ईस्वी से ही इस पर टीकाएँ लिखी जाने लगीं जिनकी संख्या की अनेकता से इसकी लोकप्रियता प्रकट है। इसमें जैन सिद्धांतों का भी आख्यायिकाओं के रूप में विवेचन है। प्रायः हजार गाथाओं में हरिभद्र का संग्रह "उपदेशपद" है जो आठवीं सदी में संग्रहीत हुआ। इसको वस्तुतः, साहित्यिक कृति कहना अन्याय होगा क्योंकि इसकी शब्द योजना नितान्त दुरूह है और इसकी शैली असाधारण पाण्डित्यपूर्ण। हेमचन्द्र की "उपदेशमाला" की ५०० गाथाएँ प्रायः २० धार्मिक विषयों पर उपदेश करती हैं, शैली अलंकार बोझिल है। हेमचन्द्र गुजरात के प्रसिद्ध राजा जयसिंह सिद्धराज (१०९४-११४३) का समकालीन था। ११९१ में आसड ने १४० दोहों में धार्मिक जागरण के लिए अपनी "विवेकमन्जरी" लिखी। उत्तरकाल में भी इस प्रकार के अनेक संग्रह हुए यद्यपि उनकी शैलीगत काव्यता से कहीं अधिक महत्व की उनकी धार्मिकता है।

उपासना के लिए भी प्राकृत में, विशेषकर जैन सिद्धान्तों से अनुप्राणित अनेक प्रार्थना परक प्राकृत स्तोत्र लिखे गये। स्तोत्रकारों में प्रधान भद्रबाहु, मानतुंग, धनपाल और अभयदेव हुए। "ऋषिमण्डल स्तोत्र" श्रमणों का एक प्रकार से इतिहास ही प्रस्तुत करता है और "द्वादशांग प्रमाण" अर्धमागधी में रचित जैनानुशासन का ग्रंथ है। सोमसुन्दर ने १५ वीं सदी में विविध प्राकृत बोलियों में अपनी प्रार्थनाएँ रचीं। यह प्रार्थनाओं की परंपरा

भारत की अनेक प्रान्तीय बोलियों में प्रायः अद्यावधि सन्तों ने जीवित रखी है। प्राकृत में साहित्यिक प्रबन्धों की एकान्त प्रचुरता है विशेषतः जैन महाराष्ट्री और अपभ्रंश में। इनमें "बृहत्कथा" के अतिरिक्त शलाका पुरुषों के चरित प्रव्रजित महात्माओं की कथाएँ और लौकिक—अलौकिक ऐतिहासिक अनैतिहासिक प्रसंगों का कथागत संग्रह है। "बृहत्कथा" की रचना गुणाढ्य ने पैशाची में की। आज स्वयं "बृहत्कथा" तो प्राप्य नहीं परन्तु उसकी तीन संस्कृत अनुकृतियाँ उपलब्ध हैं। उससे प्रगट है कि मूलग्रंथ कितना विशद और शालीन रहा होगा। उत्तर-कालीन साहित्यिकों की रचनाओं के लिए अनन्त कथानक इस "बृहत्कथा" ने प्रदान किये। दण्डी, सुबन्धु, बाण और अन्य साहित्य-धुरीणों ने निरन्तर श्रद्धापूर्वक गुणाढ्य की इस अनुपम कृति का उल्लेख किया है। गुणाढ्य का व्यक्तित्व तिमिराच्छन्न है। संभवतः वह भास से पूर्व ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में हुआ हो।

रामकथा का एक जैन रूप विमल द्वारा प्रणीत "पऊमचर्या" में मिलता है जो चौथी सदी ईस्वी की कृति है। इसमें रावण और मारुति (हनुमान) को क्रमशः राक्षस और बन्दर न मानकर विद्याधर माना गया है। ग्रंथ की काव्यकारिता इसकी शक्तिम और तरल शैली से प्रगट है। प्रायः उसी काल पादलिप्त ने आज अप्राप्य धार्मिक उपन्यास "तरंगवयी" प्राकृत में लिखा। कहानी प्रणय की थी परन्तु उसका अन्त उपदेशपरक था। यदि उसे उपन्यास माना जाय तो सम्भवतः संसार के साहित्य में वह पहला उपन्यास रहा होगा, यद्यपि उसकी अनुपस्थिति में आज यह कह सकना कठिन है कि आधुनिक उपन्यासों के किस रूप का वह प्रकाशन करता है। इसके साहित्यिक सौंदर्य का कुछ पता हमें एक अन्य विशद प्राकृत ग्रंथ "तरंगलना" से मिलता है। ६०० ई० से पहिले संघदास और धर्मदास ने "वसुदेव हिन्दी" नाम की एक वृहद् गद्य-कथा लिखी जिसमें हरिवंश के वसुदेव के भ्रमणों और अनेक दन्तकथाओं का वर्णन है।

८६८ ई० में शीलाचार्य ने प्रधानशलाका पुरुषों के चरितों का अपने "महापुरुष चरित" में संग्रह किया। दसवीं सदी ईस्वी के लगभग प्रसिद्ध जैनग्रंथ "कालकाचार्य कथानक" की रचना हुई जिससे शक इतिहास पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है। सन्तकालक शक क्षत्रयशाहियों के पास जाकर अपनी भगिनी सरस्वती के आहर्त्ता उज्जैन के राजा गर्दभिल्ल के नाश में उनकी सहायता माँगता है। कथानक के साथ ही ग्रंथ में प्रौढ़ शैली का प्रयोग हुआ है। १०३८ ई० में लिखा घनेश्वर का "सुरसुन्दरीचर्य" एक लम्बा रोमान्स (काल्पनिक उपन्यास) है जिसके १६ सर्गों में विद्याधर राज की प्रणय कथा का निर्वाह हुआ है। इसमें कथानक के अन्तर्गत कथानक प्रस्तुत हैं और उनका वर्णन धारावाहिक है। महेश्वरसूरि ने उदाहरणों द्वारा सूत्रपंचमी केशव का महत्व अपनी "पंचमीकहा" में लिखा है। विजयचन्द्र केवलिन्, वर्द्धमान आदि ने भी अपने ग्रंथ इसी ग्यारहवीं सदी में लिखे। कुमारपाल की मृत्यु के केवल ग्यारह वर्ष बाद सोमप्रभ ने अपना "कुमारपाल प्रतिबोध" लिखा

जिसमें उस राजा के जैन सम्प्रदाय में दीक्षित होने की कथा है, अपभ्रंश के प्रादुर्भाव से प्राकृतों में एक नया जीवन, नया चांचल्य झलक पड़ता है। भाषा का प्रवाह, भावों की यथार्थ चेतना, शैली की सहज तरलता सभी कुछ नवजीवन लिए आते हैं और कुशल कवि के अंकन से अमर बन जाते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि किस प्रकार कालिदास ने अपनी "विक्रमोर्वशी" में अपभ्रंश गीतों का उपयोग किया। वस्तुतः प्रत्येक भारतीय भाषा के अपने-अपने विशिष्ट छंद रहे हैं—संस्कृत में श्लोक, प्राकृत में गाथा और अपभ्रंश में दोहा। दोहों का प्रभाव प्राकृत, संस्कृत और अनेक जन-बोलियों पर पड़ा है।

अपभ्रंश के प्राचीनतम कवियों में से एक चतुर्मुख है। अपभ्रंश के "पद्धदिया" छंद का संभवतः उसी ने प्रकाश किया। आठवीं सदी में स्वयम्भू और उसके पुत्र त्रिभुवन् स्वयम्भू ने अपभ्रंश साहित्य को श्रीसम्पन्न किया। अपभ्रंश का सबसे महान् कवि पुष्पदन्त दसवीं सदी के मध्य हुआ। राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज तृतीय के मन्त्री भरत की संरक्षा में उसकी मेधा श्रीसम्पन्न हुई और उसने अपने अद्भुत ग्रंथ महापुराण "जसहर चरिऊ" और "नायकुमारचरिऊ" रचे। उनकी शैली काव्य सौन्दर्य में अपभ्रंश साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। कनकामर संभवतः उसका समकालीन था। उसने "करकण्डचरिऊ" की रचना तरल शैली में की। हरिभद्र के प्रायः ढाई सौ वर्ष बाद मैथिल विद्यापति हुआ जिसने अपभ्रंशोत्तर भाषा में अपनी "कीर्तिलता" रची।

कालान्तर में प्राकृत में भी संस्कृत की ही भाँति काव्यों और रोमान्सों की रचना हुई। प्रवरसेन का "सेतुबन्ध" रामायण की ही एक घटना पर अवलम्बित है परन्तु काव्य के रूप में सारे गुणों का उसका रचयिता अपनी कृति में प्रतिबिम्बित करता है। इसकी कल्पना, भावाकर्षण और श्लेष काव्यरचना में अपना स्थान रखते हैं। बाण और दण्डी दोनों ने "सेतुबन्ध" की प्रशंसा की है। आठवीं सदी के कन्नौज के राजा यशोवर्मन के राजकवि वाकपतिराज ने "गाऊडवले" की रचना की। वाक्पति जनपद कवि है। उसमें देहात के जीवन का इतना बाहुल्य है कि उसके सौन्दर्य और ताजगी से वह अपने काव्य को अनुपम बना देता है।

हरिभद्र ने आठवीं सदी में "समराइच्चकहा" नाम का अपना प्राकृत चम्पू लिखा। मानवजीवन का वह गम्भीर अध्येता है, यद्यपि उसके इस चम्पू में आत्माओं के संघर्ष का ही निरूपण है। हरिभद्र ने भारतीय साहित्य में अनुपम अपना अद्भुत व्यंग्य "धूर्ताख्यान" लिखा जिसमें चार पुरुष और एक स्त्री धूर्त अपनी अपनी अनुभूतियों का वर्णन करते हैं। साहित्यिक कृतीत्व के रूप में यह ग्रंथ अपने समय से बहुत आगे है। हरिभद्र के शिष्य अद्योत्तन ने "कुवलयमाला" लिखकर हूण, तोरमान के ऊपर काफी प्रकाश डाला है। वह उस दिशा में साहित्यिक और अच्छी ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करता है, कुतूहल का "लीलावती" रोमांचक काव्य है जिसमें गतिमान वर्णन हुआ है और जो निस्संदेह भोज से

पहले रची गई। काव्य में सातवाहनराज और सिंहल की राजकुमारी लीलावती का प्रणय वर्णित है। कथा के तन्तु निश्चय ही उलझे हुए हैं। परन्तु भावों का प्रवाह आकर्षक है।

ग्यारहवीं सदी में जैन महाराष्ट्री गद्य-पद्य में गुणचन्द्र ने "महावीर-चरित" लिखा। ग्रंथ १०८२ ई. का है और उसमें व्याकरण की चुस्ती अपूर्व है। काव्यांकन दूषित नहीं होता। जैन साहित्य में विशेषकर उसके धार्मिक क्षेत्र में हेमचन्द्र (१०८९-११७२) का नाम अग्रणी है। गुजरात में तो जैन सम्प्रदाय के विस्तार का सबसे अधिक श्रेय इसी महापुरुष को है। उसने अपने व्याकरण और कोषकारिता द्वारा प्राकृत शब्दशास्त्र की नींव रखी। उसका "कुमारपालचरित" जीवन चरित होकर भी व्याकरण का प्रकाश करता है। काव्य की पद्धति अपूर्व है जो चरित के साथ-साथ ही प्राकृत व्याकरण का वर्णन करती है।

दक्षिण में भी प्राकृत साहित्य का प्रणयन हुआ और श्री कंठ, रामपाणिवाद आदि ने अनेक काव्यकृतियाँ इस भाषा को भेंट कीं।

कर्म सिद्धान्त के निरूपण में भी प्राकृत में जैनों ने अनेक मूलग्रंथ और टीकाएँ लिखीं, शिववर्मन, चन्द्रर्षि और नेमिचन्द्र की कृतियों पर विशद भाषा संस्कृत में रचे गये यद्यपि उनके मूल-क्रमशः "कम्मपयदि" "पंचसैन्ग्रह" "गोम्मटसार" प्राकृत में थे। सातवीं सदी के सिद्धसेन दिवाकर ने नयस् और अनेकान्तवाद नामक जैन सिद्धान्तों पर अपना अद्‌भुत पाण्डित्यपूर्ण प्राकृत ग्रंथ "सन्मतितर्क" लिखा। इसी प्रकार हरिभद्र का "धर्म संगहणि" भी विशेष प्रसिद्ध हो गया है। कुमारदेव, सेन, जोइन्दु आदि ने भी प्राकृत साहित्य को अपनी मेधा से परिपूर्ण किया। हिन्दी के प्रारम्भिक दोहाकार कन्हपा और सरहपा ने भी कान्ह और सरह नाम से अपने दोहाकोष प्राकृत में ही लिखे।

प्राकृत में व्याकरण की दिशा में भी कुछ प्रयास हुए जैसा अनेक उद्धरणों से प्रमाणित होता है परन्तु अभाग्यवश आज वे उपलब्ध नहीं। आज जितने भी प्राकृत सम्बन्धी व्याकरण उपलब्ध हैं वे संस्कृत में ही हैं। हाँ, कोषकारिता के क्षेत्र में अनेक स्तुत्य प्रयत्न हुए हैं। धनपाल ने ९७२-७३ ई० में अपनी भगिनी सुन्दरी के लिए प्रसिद्ध पर्याय कोष "पाइयलच्छीनाममाला" प्रस्तुत किया। इसी प्रकार जिन देशी शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत मूल से नहीं किया जा सकता ऐसों की एक तालिका उनके प्रयोग सम्बन्धी उद्धरणों के साथ हेमचन्द्र ने "देशीनाममाला" में प्रस्तुत की। हेमचन्द्र ने अपने इस ग्रंथ में प्रायः एक दर्जन पूर्वगामी प्राकृत कोषकारों की ओर संकेत किया है परन्तु उनकी कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं। अलंकार सम्बन्धी "अलंकारदर्पण" नामक एक ग्रंथ मिलता है जिसके रचयिता का पता नहीं। अपभ्रंश ग्रंथों में छंदों की नयी सरणियों का उद्‌घाटन हुआ है। नन्दीनाव्य ने अपने "गाथालक्षण" में गाथा के प्रकारों पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार स्वयम्भू ने अपने "स्वयम्भू छंद" में विविध छंदों का उल्लेख मय उनके प्रयोगों के किया है। प्राकृत कोष और पिंगल सम्बन्धी कुछ कृतियाँ "वृत्तजातिसमुंच्चम", "कविदर्पण", "छंदःकोष"

और "प्राकृतपायंगल" आदि हैं। इस दिशा में हेमचन्द्र के "छंदोनुशासन" से प्राकृत छंदों पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है। इनके अतिरिक्त प्राकृत में ज्योतिष और चिकित्सा सम्बन्धी भी कुछ ग्रंथ उपलब्ध हैं।

प्राकृत साहित्य बहुमुखी है और उसमें जनसम्बन्धी उन जीवित स्तरों का साहित्य है जिसे संस्कृत की शिष्टता न अपना सकी और जो प्रान्तीय बोलियों की सम्पदा बन गया। साहित्य और आन्दोलन के वाहन के रूप में उसके प्रयोग का श्रेय महावीर और बुद्ध को है और राजकीय घोषणाओं का महामना अशोक को। प्राकृतों का मूल रूप में अध्ययन आज की प्रान्तीय जन बोलियों के अध्ययन में प्रचुर सहायक होगा।

२४. स्पेनी साहित्य

: १ :

मध्य युग

वीर काव्य

स्पेनी भाषा की उत्पत्ति लातीनी से हुई, लातीनी और स्थानीय बोलियों के योग से। उसका आरम्भ अरबों और स्पेनियों की विजय से होता है। उस काल का स्पेनी साहित्य "वीर कृत्यों के गीतों" (कान्तार) [1] का है। इनमें प्राचीनतम दसवीं सदी ईस्वी की हत्या और प्रतिशोध हें मुख्य विषय हैं। तब का अधिकतर काव्य साहित्य इन्हीं खूनी कारनामों से भरा है। इस प्रकार के अनेक छोटे बड़े वीर काव्य पूर्ण-अपूर्ण दशा में आज स्पेनी भाषा में उपलब्ध हैं। प्राचीन स्पेन के वीर काव्यों का सुघड़ और समूचा रूप "इल कान्तार द मिओ किद" (विदेशों में "किद" मात्रसे प्रसिद्ध) है नामक एपिक में मिलता है। यह ११४० ई० में प्रस्तुत काव्य अशेष रूप में उपलब्ध भी है। उसके तीन भाग हैं। दोन 'रोद्रिगो' (किद) का अल्फोज़ो षष्ठ द्वारा लगभग १०७५ के निर्वासन, उसकी कन्याओं का उनके पतियों द्वारा अपमान, समझौता और काउण्टों को दण्ड। काव्य शालीन और मधुर है, दृश्यों में सम्पन्न और शक्तिम भावांक में समृद्ध। इसी प्रकार के एक और वीर काव्य "रोसेन्वालेस" के कुछ खंडों का पता चलता है। यह एपिक १३ वीं सदी का है। कहानी काउण्ट जूलियन की कन्या के साथ अन्तिम गोथ राज रोद्रिगो के बलात्कार की है। परिणाम स्वरूप काउण्ट मूर तारीक को बुला भेजता है। ७११ में जब्र-अल-तारीक स्पेन जाकर उस पर कब्जा कर लेता है और वहाँ अरबी साम्राज्य के पाये खड़े हो जाते हैं। उसी अरब विजेता के नाम पर जिब्राल्टर नाम पड़ता है। यह कहानी कुछ ही हेर-फेर के साथ लातीनी, अरबी और स्पेनी तीनों में मिलती है। अरबी पाठ ११ वीं सदी का है।

स्पेनी काव्य धारा पर फ्रेंच का भी प्रभाव पड़ा। उस प्रभाव ने अनेक बार धार्मिक रूप धारण किया। फ्रेंच प्रभाव में प्रस्तुत १३वीं सदी का एक काव्य "ला विदा द सान्ता मारिया ईगिप्सियाका" है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। उसके बाद की गोन्जालो द बर्सियो[2] पादरी और गायक ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। उसने छंदों में अनेक सन्तों के चरित्र लिखे। उसके अनेक गीत सुरक्षित हैं। युआन लोरेन्जो द आस्तोर्गा[3] द्वारा १०,०००

---

१. Cantares; २. Gonzalo de Berceo (११९८-१२६५); ३. Juan Lorenzo de Astorga

पंक्तियों में प्रस्तुत सिकंदर सम्बन्धी एक काव्य : लिब्रो द आलिजान्द्रे (ल० १२५०) है। जिसमें बाबली नरेश के विरुद्ध सिकन्दर के युद्ध का वर्णन है। नैसर्गिक सौन्दर्य और पार्थिव सम्पदा का उसमें मार्मिक वर्णन है। १३ वीं सदी के साधु सान पेद्रो द आर्लान्जा[१] की एक बड़ी हृदयग्राही कविता—"एल पोएमा द फर्नान गोन्जाले"—उपलब्ध है। इस प्रकार के अनेक एपिक काव्य खण्डशः अथवा सम्पूर्णतः सुरक्षित हैं। जो स्पेनी भाषा की गेयता प्रमाणित करते हैं। १४ वीं सदी के लगभग स्पेन की एपिक काव्य धारा और छंदोबद्ध इतिहासों का अन्त हो गया।

एपिक काव्य की ही भाँति प्राचीन स्पेन में लिरिक काव्य भी फूला-फला। उसके निर्माण में जिन आधारों का योग था उनमें अरबी "ज़ेजेल" (ग़ज़ल) प्रधान था। उत्तर कालीन लातिनी गीतों का भी उस काल पर्याप्त प्रचार था। वस्तुतः उत्तर कालीन लातिनी और प्राचीन स्पेनी भाषाओं की सीमाएँ काल रूप से प्रायः समान थीं। फिर "रोमांस" काव्य धारा अल्फोन्जो षष्ठ[२] के काल तक देशी गायन-समारोहों में अत्यंत लोकप्रिय थी। गड़रियों—नर-नारी दोनों—के गीत भारतीय अहीरों के बिरहाओं की भाँति देश में सदा और सर्वत्र गाये जाते थे। फ्रेंक प्रभाव की ओर संकेत ऊपर किया जा चुका है। कास्तिल के १३वीं सदी के गीतों पर फ्रेंच "देवा" का प्रभाव स्पष्ट है। अल्फोन्जो दसवां स्पेन का पहला "त्रोवादोर" (त्रूवादूर, कवि, गायक) था। कवि होने के अतिरिक्त वह सुन्दर गद्यकार और प्रकांड पंडित (१२२०-८४) भी था। कास्तिल की सभ्यता का वह जनक कहा जाता है। उसने प्रोवेन्स—पुर्तगाली शैली में सान्ता मारिया संबंधी ४५० गीत लिखे। इनमें अधिकतर चमत्कारी कहानियाँ थीं। फिर भी उनमें "लूर" (स्तोत्र) ४१ थे और सूक्त १५। उनकी शैली नितान्त सरल है।

लोक-बोलियों में गीत लिखने और गाने वाले अनेक "त्रोवादोरों" के नाम भी मिलते हैं। इनमें प्रधान "पैद्रो आमिगो द सेविला[३], राजा सांचो प्रथम[४], ऐरास नूजे द सान्तियागो[५], और पुर्तगाल के राजा दोन दिनिस[६] हैं। नारी-गीतों के अनुकरण में युवान जोरों[७] और पैरो मेओगो[८] तथा पुरुष-गीतों के अनुकरण में नुञो फर्नान्दिज़ तोर्नियोल[९] ने गीत लिखे। मधुर और लोकप्रिय लिरिकों के अनेक प्राचीन संग्रह आज उपलब्ध हैं।

मध्य-युग का गद्य प्रायः समूचा ही नीत्यात्मक है। कानून पुराण इतिहास के अतिरिक्त कहानियों, कहावतों, कथोपकथनों, आदि के लिए गद्य का प्रयोग हुआ है। दृष्टांत-

---

१. San Pedro de Arlanza; २. Alfonso VI (१२२६-५७); ३. Pedro Amigo de Sevilla; ४. King Sancho I; ५. Airas Nunes de Santiago; ६. King Don Dinis of Portugal; ७. Juan zorro; ८. Pero Meogo; ९. Nuno Fernandes Torneol

परक नीतिकथाओं का स्पेनी भाषा में प्रादुर्भाव तो पूर्वात्य देशों के प्रभाव से हुआ है। उनका उपयोग पादरी और उपदेशक अपने प्रवचनों तथा उपदेशों में करते थे। इन दृष्टांतपरक कहानियों में सबसे रुचिकर भारतीय "पंचतंत्र" की कहानियाँ हैं। जो अरबी अनुवाद "कलील-ए-दिम्न" (करकट-दमनक पंचतंत्र के सियारों के नाम) में संग्रहीत हुई। कास्तिल के युवराज दौन युवान मानुएल[1] ने उनका कास्तिली कथाओं के सम्मिलित संस्करण के रूप में "एल कोन्दे लुकानोर" प्रकाशित किया। कास्तिल के जनपदों का वातावरण भारतीय परिस्थितियों में घुल-मिल कर एक हो गया है।

नीतिपरक कहानियों का एक संग्रह "एल लिब्रो द इयेम्पलोज" नाम से क्लिमेन्त सान्शेज[2] ने किया। इनमें नारियों के आचार पर बड़ी शंका की गई है। वस्तुतः युवराज दोन फाद्रीक[3] के आदेश से १२५३ में अरबी "सेन्देबार" से अनूदित त्रियाचरित्र के प्रचार के बाद नारी के प्रति घृणा और बढ़ी। "दिसिप्लिना क्लेरिकालिस" पर यहूदी प्रभाव स्पष्ट है। "एल-लिब्रो देल कावालेरो जिफार" पहला वीर-उपन्यास है जिसमें कथा में कथा निकलती आती है। प्राचीन स्पेनी साहित्य का पहला उपन्यास "एल सिएर्वो लिब्रे द आमोर" (ल० १४४०)—युवान रोद्रिगेज़ द कामार[4] का है। पेद्रो रोद्रिगेज द लेना द्वारा वर्णित एक ऐतिहासिक वृतान्त को सौ वर्ष बाद उपन्यास की संज्ञा दी गयी।

कोप्लाज़ देल प्रोविन्शियल" (ल० १४७०) में दरबार सम्बन्धी एक व्यंग्य है। इसी प्रकार "कोप्लाज़ द यिंगो रेविल्गो" में एन्रिक चतुर्थ[6] के विरुद्ध जनता की शिकायत है। इनिगो लोपेज द मेन्दोज़ा[7] की वृद्धाओं की कहावतें नामक संग्रह में घरेलू सीखों का बाहुल्य है। कारियोन के रब्बी (यहूदी पुरोहित) सेम तोब[8] ने "क्रूर" पैद्रो[9] के लिए छन्दोबद्ध व्यंग्यात्मक कहावतों का एक संग्रह" प्रोवर्बियोस मोरालेज" नाम से प्रस्तुत किया था। कहावतों और कहानियों का विस्तार मध्ययुगीय स्पेनी साहित्य में बहुत बड़ा है। स्वयं बौद्धधर्म का उस पर कुछ कम प्रभाव न पड़ा। बुद्ध संबंधी कथाओं का आयात स्पेनी भाषा में लातीनी द्वारा हुआ। "ला एस्तोरिया द योसाफात ए द बरलाम" की अनेक स्पेनी कथाओं पर बौद्ध कहानियों ने प्रभाव डाला।

युवान रुइज[10] और आरसीप्रेस्त द हिता[11] दोनों मध्यकालीन प्रख्यात कवियों ने ७००० पंक्तियों में "एल-लिब्रो द बुएन आमोर" नाम का एक संग्रह लिखा जिसमें

---

१. Don Juan Manuel (१२८२-१३४९); २. Climente Sanchez (१३७९-१४२६); ३. Don-Fadrique; ४. Juan Rodriguez de la Camar; ५. Pedro Rodriguez de Lena; ६. Enrique IV; ७. Inigo Lopez de Mendoza; ८. Sem Tob (The Rabbi of Carrion); ९. Pedro the Cruel (१३५०-६९); १०. Juan Ruiz; ११. Arcipreste de Hita

धार्मिक चमत्कार, दृष्टांत-कहानियाँ सभी कुछ थे। ये कृतिकार बोकाचो[१] और चौसर[२] के प्रायः समकालीन हैं और उन्हीं की रुचि के स्मारक हैं। इस संग्रह की शब्दावली प्रखर है और प्रणय, प्रकृति आदि का वर्णन सजीव है। अनेक स्थल पर चरित्र-चित्रण भी सुन्दर हुआ है। मनुष्य की कमजोरियों का उसमें अच्छा चित्रण है। पैरो लोपेज द आयाला[३] राजनीतिज्ञ और इतिहासकार था। उसके "रिमादो दि पालासियो" में दरबारी रहन-सहन पर गहरा व्यंग्य है। अविग्नान में कैद पोप की स्थिति और परिणामतः चर्च के अभाग्य पर उसने दुःख प्रकट किया है। कंगालों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति है। दोन एन्रिक द विलेना[४] की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह जादूगर और स्वप्नों का व्याख्याता भी था। उसने काव्य रूपक और शिष्टाचार पर विचार लिखे, साथ ही काव्यकला पर भी "आर्ते द ट्रोबार" नामक एक ग्रन्थ लिखा। उसने "ईनिद" और 'दैवी कोमेदी" का अनुवाद भी किया। सान्तिलाना का मार्क्विस दोन इनीगो लोपेज द मेन्दोजा[५] मध्य वर्ग का असाधारण व्यक्तित्व था। उसने प्राचीन स्पेनी काव्य शैली का विकास किया और इतालियन सरणी का स्पेनी में उपयोग किया। युवान द मेना[६] ने "ईलियद" का अनुवाद किया। उसने सन्तों के भी कुछ सुन्दर चरित भी लिखे हैं।

अल्फोन्जो मर्तीनेज द तोलेदो[७] तालावेरा का प्रधान पादरी था। परन्तु उसकी कृतियों में यौन श्रृंगार का खुला वर्णन हुआ। अद्भुत शब्द बाहुल्य से उसने नगरनारियों की चपलता और धूर्तता का वर्णन किया है। गोमेज मान्रिक[८] मार्क्विस द सान्तिलाना[९] का भतीजा था। अपनी "पोएजिया" में उसने अच्छी काव्य शक्ति का परिचय दिया है। उसके अनेक धार्मिक नाटक लीलाओं की तरह खेले गये। योर्गे मान्रिक[१०] गोमेज का भतीजा था। उसकी ५१ कविताएँ उपलब्ध हैं। अधिकतर वे मनुष्य की अन्तर चेतना से संबंध रखती हैं। मृत्यु पर उसने कुछ सुन्दर लाइनें लिखी हैं। फर्नान पेरेज द गुज्मान[११] पहला सुन्दर चरित्रकार है। उसने दो खंडों में सन्तों, वीरों और समकालीनों के मनोहर और आलोचनात्मक चरित लिखे हैं। वैसे उससे भी अभिराम चरित हरनान्दो द पुल्गार[१२] ने लिखे हैं।

पन्द्रहवीं सदी के कवियों की कृतियाँ अधिकतर संग्रहों में संग्रहीत हैं जो आरा-

---

१. Boccaccio; २. Chaucer; ३. Pero Lopez de Ayala (१३३२-१४०७); ४. Don Enrique de Villena (१३८४-१४३४); ५. Don Inigo Lopez de Mendoza; ६. Juan de Mena (१४११-५६); ७. Alfonso Martinez de Toledo (१३९८-१४७०); ८. Gomez Manrique (१४१२-९०); ९. Marques de Santillana; १०. Jorge Manrique; ११. Fernan Perez de Guzman (१३७६-१४६०); १२. Hernando de Pulgar (१४३६-९३)

गान और कास्तिल के राजाओं के आदेश से समय-समय पर प्रस्तुत हुए। इस प्रकार के एक संग्रह में ५४ कास्तिली कवियों की रचनाएँ हैं। उसी में प्रसिद्ध आल्फोंजो द विला-सान्दिनो[1] के हृदयग्राही और यौन-श्रृंगारिक लिरिक भी हैं। फ्रांसेस्को[2] और रे द रिबेरा[3] की रचनाएँ भी उसमें संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त अनेक विनोदप्रिय कवियों की कवि-ताएँ उस संग्रह के कलेवर में गुथी हैं। पन्द्रहवीं सदी के विनोद-शील कवियों में में सबसे प्रतिभाशाली युवान अल्वारेज गातो है।[4]

: २ :

पुनर्जागरण-युग[5]

रूढ़िवादी परंपरा पर आघात

रैनेसाँ की जिस धारा ने यूरोप के अन्य देशों को आप्लावित किया उससे स्पेन का साहित्य भी वंचित न रह सका। पुनर्जागरण का उद्गम मूलतः इटली में हुआ था। और स्पेन उसका केवल निकटतम पड़ोसी ही नहीं लातीनी का आंशिक उत्तराधिकारी भी था। अरबों और यहूदियों के कारण स्पेनी साहित्यकारों का सम्बन्ध वैसे भी पूर्वात्य ज्ञान-भंडार से किसी न किसी मात्रा में हो चुका था और जब पुनर्जागरण की लहर चली तब उसे उस लहर को प्रयोगशः अपनाने की आवश्यकता न पड़ी। वह जैसे उसका स्वाभाविक उत्तराधिकार बन गया स्पेन में शीघ्र ही लातीनी ग्रीक और इब्रानी ग्रंथों का अध्ययन आरंभ होने लगा। वस्तुतः रेनेसाँ की दिशा में स्पेन की प्रगति औरों से अधिक सहज न हुई। कारण कि उसकी भौगोलिक खोजों और तत्संम्बन्धी आविष्कारों ने उसे एक नई चेतना और साहित्यिक एकता प्रदान कर दी थी जिससे रेनेसां का कलम आसानी से वहाँ लग सका।

विज्ञान के उदय से स्पेन में जिज्ञासा की प्रवृत्ति और प्रबल हो उठी। इरैस्मस के लेखों ने उसे और भी जागरूक बना दिया और १६ वीं सदी के पहले चरण में स्पेन ने वस्तुओं को आलोचनात्मक दृष्टि से देखना शुरू किया। फ्रांसिस्को सान्शेज एल ब्रोकेन्जे[6] ने फतवा तक दे दिया कि धर्म के विषय को छोड़कर अन्य सारे विषयों की समीक्षा होनी चाहिए। पोप की सत्ता के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के साहित्य का आलोचक दृष्टि से निर्माण होने लगा। अनेक नारियों ने भी उसमें भाग लिया। पहली बार जुआन ने "दियालोगो द ला लेंगुआ" में साहित्य का शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन किया। भाषा और शैली सम्बन्धी विचारों को रक्खा। अनेक स्वतन्त्र चिन्तकों ने रूढ़िवादी परंपरा पर

---

१. Alfonso de Villasandino; २. Francisco; ३. Rey de Ribera; ४. Juan Alvarez Gato (१४४०-१४९६); ५. The Renaissance; ६. Franciso Sanchez el Brocense (१५२३-९९)

आघात भी किया। धर्म को इस प्रकार समीक्षक की दृष्टि से देखने में एक बड़ा खतरा था क्योंकि हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि कैथोलिक धर्म के विरोधियों पर क्रूर प्रहार करने वाले "इन्क्विज़िशन" का प्रारम्भ स्पेन में ही हुआ था। वहाँ उसकी सत्ता सर्वथा निरंकुश थी।

मानवतावादी-साहित्य का अधिकाधिक सृजन स्पेन में होने लगा था। उस दिशा में गद्य के क्षेत्र में विविध प्रयोग हुए थे। और अब दर्शन की दिशा में ग्रीक दार्शनिकों का अध्ययन भी शुरू हो गया। रेनेसाँ के क्षेत्र में स्पेन के लेखकों और चिन्तकों का ध्यान पहले ग्रीक-ज्ञान की ओर गया। अफलातून काव्य के क्षेत्र में और अरस्तू दर्शन के क्षेत्र में उनके आराध्य बने। प्रेम की एक नयी व्याख्या हुई और नारी के सम्पर्क में उसकी आराधना होते हुए भी उसका एक पक्ष भगवान की दिशा में जागरूक हुआ। इस प्रकार की कविताएँ जिनमें मानव प्रेम मनुष्य की सीमाओं को पार कर श्रृंगारिक चेतना से अलौकिक का स्पर्श करता है, स्पेन में पहले भी अनजानी न थीं। सूफी अरबों और इब्रानी लेखकों ने किसी न किसी मात्रा में उसका आरम्भ स्पेन में कर दिया था। फिर प्राचीन ग्रीस की सोफिस्ती परंपरा स्वयं उस दिशा में कृतकार्य हुई। अब सौन्दर्य का अनुशीलन भी ग्रीक परंपरा के अनुसार शुरू हुआ। हाँ अन्य देशों की रेनेसां परंपरा और स्पेनी दृष्टिकोण में एक विशेष अन्तर पड़ चला। जहाँ अन्य देशों में तर्क संगत चेतना मानव और प्रकृति के सम्बन्ध में साहित्य में मुखरित हुई वहाँ स्पेन में मनुष्य और ईश्वर सम्बन्धी सीमाओं को भी पार कर वह चेतना अन्तर प्रेरणा तथा धनी भक्ति के प्रति दृढ़ हुई।

रेनेसां का साहित्य-गौरव स्पेन में उसके नाट्य-क्षेत्र में विशेषत: प्रतिष्ठित हुआ। जुआन देल एन्सिना[१] ने नाटकों को इटालियन रेनेसां सम्बन्धी सिद्धान्तों पर उतारा। "क्रिस्तिनों इ फैबी" में गड़रिया-जीवन का अच्छा चित्रण है, और स्वयं ईसाई साधु पशु-पालन का जीवन अपने से उच्चतर मानते हैं। बार्तालोमे द तोरेस नाहारो[२] ने अपनी कॉमेडी "ला सोल्दादेस्का" (सैनिक) अथवा "ला तिनलारिया" में सुन्दर हास्यमय यथार्थवादी दृश्यों का आकलन किया है। "कोमेदिया हिमेनी" स्पेन के उस काल की एक सुन्दर कॉमेडी है जो लोक चेतना और पैने व्यंग्य को भी चरितार्थ करती है। गिल विकेन्ते[३] इन प्रारम्भिक नाट्यकारों में सबसे समर्थ था। वह पेशे से सुनार था। उसने पुरानी ख्यातों और पौराणिक आख्यायिकाओं का अच्छा प्रयोग किया। चर्च की उसने बड़ी तीखी आलोचना की और श्रृंगारिक चेतना को विनोद द्वारा हल्का कर दिया। उसके नाटकों की शैली बड़ी रोचक और शक्तिम है।

---

१. Juan del Encina (१४६९-१५२९); २. Bartolome de Torres Naharro (मृत्यु १५३० के बाद); ३. Gil Vicente (१४६५-१५३९)

स्पेनी रंगमंच को धार्मिक ड्रामा से भी बड़ी सहायता मिली। प्राचीन रहस्यवादी लीलाओं का स्थान धीरे-धीरे बाइबिल के नाटकों ने ले लिया। ट्रैजेडी विशेषत: बड़ी सफलता से खेली जाने लगी और तब जैसा कॉमेडी के क्षेत्र में भी संगत है, ग्रीक-दृष्टिकोण का समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक ही था। कुछ नाटककारों ने तो क्लासिकल कथानकों को उनके रूपक तत्व को छोड़कर, अपने प्लॉट के लिये चुना। फर्नान पेरेज़ द ला ओलिवा[1] का 'ला वैगान्ज़ा द आगामेम्नोन" (१५२८) तथा जुआन द तिमोनेडा[2] का "फिलोमेना" (१५६४) इसी प्रकार के ग्रीक कथानकों से सनाथ कृतियाँ हैं। परन्तु उस दिशा में अनेक कृतियाँ तो समसामयिक घटनाओं को लेकर चलीं। फ्रे जेरोनिमो बर्मूदेज सालामान्का[3] के नाटक "नीजे लास्तिमोजा" और "नीजे लारियादा" (१५७७) समकालीन वस्तु से ही संगठित हुए। क्रुस्तोबाल द विरूएज[4] ने सेनेका[5] की पद्धति स्वीकार कर लड़ाई-भिड़ाई और खून-खराबे के ड्रामे लिखे। उसकी "आत्तिला फूरियोजो" "एलिसा दिडो" और "ला इन्फेलिके मार्केला" उसी परंपरा की कृतियाँ हैं।

स्पेन की सामुद्रिक विजयों ने जो एक औपनिवेशिक साम्राज्य का निर्माण कर दिया तो उसके साहित्यकारों का अनेक मानव-जातियों से परिचय हुआ और यह संभव न था कि उनके प्रति उनकी किसी मात्रा में प्रतिक्रिया न हुई हो। सेविल के अभिनेता लोपे द रुएदा[6] ने चटपटी भाषा में अनेक लोकप्रिय यथार्थवादी लघुनाटकों की रचना की जिसमें "लास असितुनास" और "यूफेमिया" तथा "आर्मेलिन्दा" जानी हुई हैं। उसने नीग्रो पात्रों को भी अपने रंगमंच पर स्थान दिया। जुआन द ला कुएवा[7] ने ट्रैजेडी और कॉमेडी दोनों लिखीं, जिनका विस्तार क्लासिक कथानकों से लेकर समसामयिक कहानियों तक था। दोन जुआन[8] की कहानी ने भी बीज रूप में उसके एक नाटक में स्थान पाया।

स्पेनी रेनेसाँ का सबसे महान् नाटककार लोपे द वेगा[9] था। उसने क्लासिक कथानकों का भी परित्याग कर अपने प्लॉट स्थानीय लोकप्रिय लोककथाओं से लिये। उसके पात्रों में विविधता थी और शैली में बड़ी सजीवता। पशुपालन सम्बन्धी कॉमेडी, "किसान अपने कोने में" में उसने देहाती जीवन का चित्रण किया। वह यथार्थ को कल्पना के स्पर्श से सम्मोहक बना देता था। उसकी कृतियों में देश-प्रेम की भी काफी मात्रा होती थी और ईमानदार तथा वीर नारियों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में ईर्ष्या और मान का योग दे वह कृतियों को सर्वथा मानवीय तथा सफल बना देता था। उसने बहुत लिखा। उसके नाटकों

---

१. Fernan Perez de La Oliva; २. Juan de Timoneda; ३. Fray Jeronimo Bermudez Salamanca; ४. Cristobal de Virues (१५५०-१६०९); ५. Senecan blood and Thunder Drama; ६. Lope de Rueda (मृ० १५६५); ७. Juan de la Cueva (१५५०-१६१०); ८. Don Juan; ९. Lope de Vega;

में ५०० रचनाओं की गणना की जाती है। उनमें से अधिकतर तीन-तीन अंकों की हैं। उसने कुछ धार्मिक नाटक भी लिखे। जिनमें "आत्मा की यात्रा" प्रसिद्ध है। उसकी कॉमेडी "मिथ्या-सत्य" अनेक समीक्षकों की दृष्टि में सुघड़ कृति है। उसने ऐतिहासिक नाटक भी लिखे जिनमें स्पेनी इतिहास के रोमांसों पर आधारित रचनाएँ तो निस्संदेह अत्यन्त आकर्षक हैं। "आस्तूरिया की प्रसिद्ध कुमारियाँ" "सेविल का नक्षत्र" "फ़ुएन्ते ओवेज़ना" और "एल अल्काल्दे द ज़ालामी" उनमें सबसे अधिक सफल रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त उसने पूर्वात्य कथानकों के आधार पर भी कुछ नाटक लिखे। लोपे की कृतियों में गति और चित्रण में बड़ा समुचित सन्तुलन है।

तिर्सो द मोलीना[1] ने धार्मिक और दार्शनिक नाटकों की रचना की। उसकी शब्द-योजना लोपे से भी अधिक सुन्दर है। उसका दृष्टिकोण उससे कहीं वैयक्तिक है। अपनी कृतियों को वह बराबर सुधारता रहता था और इस प्रकार उसने उन्हें एक नया रूप प्रदान किया। वह जीवन का तत्व तप में खोजता था। इसी से उस की कृतियों में आचार की शक्ति सदा मोह और घृणा पर विजय पाती है। अपने नाटक "गृह शासिका नारी" और "राज प्रसाद की लज्जाशीला" में उसने पतनोन्मुखी नारी के निकट आचारवान तरुण को खड़ा कर दिया है। उसने नारी की साधुता और मातृ-स्नेह तथा साहस का भी चित्रण किया है। "सान्ता जुआना" दोयाँ मार्या द मोलीना. "सेविल का रसिया" और "दोन गिल" उस दिशा में प्रमाण हैं।

दोन गिलेन द कास्त्रो ई बेलविस[2] स्पेन का बड़ा लोकप्रिय नाटककार हो गया है। उसने भी राष्ट्रीय कथानकों को ही अपनाया और विदूषक के सम्बन्ध में शेक्सपियर की शैली का ही अनुकरण किया। यद्यपि उसकी गहराई वह न पा सका। अपने प्रधान पात्रों को वह सर्वथा प्रतिकूल चित्रण में उपस्थित करता है। ईसाई और मूर (अरब) पुरुष और नारी उसके परस्पर विरोधी पात्र होते हैं। उसकी प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं। "किद का यौवन" "किद के कृत्य", "वालेन्सिया का असम विवाह" और "एल कूरीओसो इमपर-तिनेन्त"।

जुआन रूइज़ द आलारकोन ई मेन्दोज़ा[3] मैक्सिको में उत्पन्न हुआ था। उसने सुन्दर काव्य-पद्धति में २१ नाटक लिखे, जिनमें प्रधान निम्नलिखित थे :—"संदिग्ध सत्य", "मित्र-चयन", "दीवालें सुनती हैं" "पति-परीक्षा", "उसका छाया पुरुष" और "गुफा"।

मानवतावादी स्पेनी कवियों ने क्लासिकल तथा इटैलियन काव्य का अध्ययन तो किया, परन्तु अपने देश की काव्य-धारा से वे कभी विमुख न हुए। प्राचीन रोमान्सों को

---

१. Tirso de Molina; २. Don Guillen de Castro Y Bellvis; ३. Juan Ruiz de Alarcon Y Mendoza (१५८१-१६३९)

उन्होंने एकत्र किया और उनकी परंपरा आगे बढ़ाई। मूरों और सरहदी-बैलैडों को भी उन्होंने अपनी निष्ठा प्रदान की और देशी-विदेशी विविध विषयों पर उनकी कल्पना ने हृदयग्राही कृतियाँ रचीं। १६ वीं सदी के कवियों ने इन लोक-गीतों के आधार पर अधिकतर अपनी रचनाएँ कीं। उस काल की अनेक कविताएँ विविध संग्रहों में आज भी उपलब्ध हैं। क्रिस्तोबाल द कास्तिलेजो[१] ने ओविद[२] और कातुलस[३] का अनुकरण तो किया, परन्तु छंद, शब्द-योजना, पैनी उक्ति अपनी भाषा के ही प्रयुक्त किये। उसने अपनी कृतियों में शृंगार-रस का अधिकाधिक उपयोग किया है। जुआन बोस्कान द आल्मोगावेर[४] उसका समकालीन था। बोस्कान ने स्पेनी काव्य टैकनीक को निखार कर उसे एक नई इटैलियन चमक दी। वह शैली अधिकतर इटैलियन टैकनीक पर ही मँजी। उसकी कविताओं के तीन संग्रह उसके निधन के बाद उसकी पत्नी ने १५४३ में प्रकाशित किये। बोस्कान की शैली तो बड़ी प्रांजल थी। परन्तु उसमें जीवन की कमी थी। उस जीवन की ताजगी का उसके मित्र गार्सिलासो दे ल बेगा[५] ने अपनी कविताओं में संचार किया। बोस्कान की कविताओं के साथ ही गार्सिलासो के लिरिक भी प्रकाशित हुए। स्पेन के रेनेसाँ युग के सबसे सुन्दर लिरिक इसी ने लिखे। उनकी करुणा उसके अपने ही असफल प्रणय की अभिव्यंजना थी। उसकी कृतियों में तर्क और भावुकता, सौन्दर्य और नेकी-बदी-सुख और दुख एक साथ घुले-मिले हैं।

काव्य जगत् में तब सबसे अधिक गौरव सेविल के कवि फरनान्दो द हेरेरा[६] को मिला। उसने, तुर्की, पुर्तगालियों, मूरों आदि पर स्पेन की विजयों से प्रेरणा ली और उनके आधार पर अत्यन्त सबल "ओड" रचे। प्रणय सम्बन्धी उसके लिरिक भी अत्यन्त क्षमता रखते हैं। उसके समकालीनों ने फिर भी उससे कहीं अधिक गार्सिलासो का अनुकरण किया। फर्नान्दो से भी अधिक शृंगारिक फ्रांसिस्को द फिगेरोआ[७] है। उसकी शैली बड़ी प्रभावोत्पादक और शब्द-योजना नितान्त चित्र-बहुल है। रोद्रिगो कारो[८] ने अपनी कविताओं में रोमन गौरव की पुकार उठाई। लुपरसिओ[९] और बार्तोलोमे[१०] नामक दो भाइयों ने भी भी उस काल सुघरी कविता की। क्लासिकल रूप के बावजूद भी उनके व्यंग्य और सॉनेट स्वदेशी भावनाओं के वाहन बने।

गद्य की दिशा में भी स्पेन ने रेनेसाँ काल में कुछ कम उन्नति न की। फ्रांस, जर्मनी आदि विदेशों से तो धारावाहिक रूप में उसे नया साहित्य मिलता ही रहा, स्वयं उसका अपना

---

१. Cristobal de Castillejo (१४९०-१५५०); २. Ovid; ३. Catullus; ४. Juan Boscan de Almogaver (१४९५-१५४२); ५. Garcilaso de le Vega; ६. Fernando de Herrera; ७. Francisco de Figueroa (१५३६-१६१७); ८. Rodrigo Caro (१५७३-१६४७); ९. Lupercio Leonardo de Argensola (१५५९-१६१३); १०. Bartolome Leonardo de Argensola (१५६२-१६३१)

कृतित्व भी उस दिशा में कुछ कम न था। तपशील और रहस्यवादी धार्मिक दृष्टिकोण, सामाजिक रहन सहन की तीखी आलोचना, भाषा और शैली सम्बन्धी विचार सभी स्पेन में स्थानीय दृष्टि से विकसित हुए। फ्रे हरनान्दो द तालावेरा[1] आलेजो वेनेगास[2] आदि उस क्षेत्र में प्रारम्भ में अग्रणी रहे। सन्त इग्नातियस ऑफ लोयोला[3] "इनक्विजिश" की घातक न्याय परंपरा का प्रवर्तक होने से अधिकतर निन्दा का पात्र हुआ। परन्तु उस काल उसके प्रवचन और पत्र गद्य की दिशा में एक शक्तिम शैली के द्योतक हुए। उसी धार्मिक चेतन का समर्थन बर्नार्दिनो[4] ने भी किया और जुआन द आविला[5] ने भी। इस दूसरे का शिष्य लुइस द ग्रानादा[6] अपने प्रवचनों, उपदेशों और रचनाओं में बड़ा समर्थ सिद्ध हुआ। उसके उपदेश असाधारण वाग्मिता के उदाहरण हैं। उसने अनेक लैटिन कृतियों के सुन्दर स्पेनी में अनुवाद भी किये। उसके व्याख्यान रहस्यवादिता के सिद्धांत भी भाषा के आधार पर से मधुर से मधुर वाणी में प्रस्तुत करते हैं। उस रहस्यवाद का एक सतही निरूपण फ्रांसिस्को द ओसुना[7] ने भी किया। ओसुना स्पेन के उस युग का एक विशाल कृतिकार हो गया है उसमें लुइस की सी गहराई तो न थी परन्तु रहस्यवाद का स्पष्ट और सरल विवेचन उसी ने किया। उसी का अनुकरण ओलोन्जो द ओरोज्को[8] और फ्रांसिस्कन जुआन द लास एन्जिलिस[9] ने किया। जुआन स्वयं अपनी शैली में चित्रकार की क्षमता रखता था।

सान पेद्रो द आल्कान्तारा[10] रहस्यवाद को प्रेम का विज्ञान बना देता है। स्पेनी रहस्यवाद की पराकाष्ठा सान्ता तेरेसा द जसूज[11] ने की। यह साधुनी सर्वथा निपढ़ थी। परन्तु उसकी बहुश्रुत मेधा ने रहस्यवाद के क्षेत्र में इतने मौलिक प्रतीकों को रूप दिया कि उस आधार से अनेक नई रहस्यवादी धाराएँ फूट पड़ीं। उसकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं। उनमें प्रसिद्ध "लिब्रो द परफेक्सिओं" (१५८५) हैं। उसने भगवान के स्वरूप को पहचान कर उसमें रम जाने की पुकार उठाई। वह समाधि द्वारा अनेक बार अपनी चेतना अन्तर-निविष्ट कर एक प्रकार की तुरियावस्था उत्पन्न कर लेती थी। उसकी कविताएँ अद्भुत गीत-तत्वों से सरस हुईं। फ्रे लुईस द लिओन[12] तेरेसा की कृतियों का सम्पादक था। वही उसके उद्गारों को एकत्र करता था। स्वयं उसने अफलातूनी, इंजीली और रहस्यवादी तत्वों का समुचित साहित्य प्रस्तुत किया। उसके चिन्तनों में उसका प्रकृति प्रेम प्रायः

---

१. Fray Hernando de Talavera (१४२८-१५०७); २. Alejo Venegas (१४९३-१५५४); ३. St. Ignatius of Loyola (१४९१-१५५६); ४. Bernardino de Laredo (१४८२-१५४५); ५. Juan de Avila (१५००-६९); ६. Luis de Granada; ७. Francisco de Osuna; ८. Alonso de Orozco (१५१२-९१); ९. Franciscan Juan de los Angeles; १०. San Pedro de Alcantara (१४९९-१५६२); ११. Santa Teresa de Jesus; १२. Fray Luis de Leon

झलक जाता है। उसकी काव्य-कृतियाँ तो मधुर हैं ही, गद्य रचनाएँ भी कुछ कम आकर्षक नहीं। उसके लिरिक अपनी गेयता में रहस्यवाद को भुला बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। सानुजुआन द ला क्रुज[1] का जीवन जितना तपःशील था उसका गद्य भी उतना ही रहस्यवादी हुआ। परन्तु उसमें एक खूबी यह थी कि वह अपने प्रतीकों और उनके भावों को पहचानने योग्य बना देता था। उस दिशा में उसकी कल्पना और शैली सहायक थीं।

स्पेन के प्रारम्भिक साहित्य-निर्माण के युग में इतिहास अथवा "क्रॉनिकल" की रचना अन्य देशों की ही भाँति सर्वथा अवैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न होती थी। तर्क हीनता उसकी शैली थी, रोचकता उसका उद्देश्य था। रेनेसाँ के युग में इतिहास की जिस परंपरा का विकास हुआ वह अपने पूर्व-पर तथा कारणों और परिणामों से भली प्रकार मंडित थी। उसमें घटना के कारणों और विकास का पर्याप्त विश्लेषण होने लगा। फिलिप द्वितीय १५५६-९८ के विरुद्ध प्रबल मोस्किो विद्रोह पर दियेगो हर्तादो द मेन्दोजा[2] ने अपना "ग्रानादा का युद्ध" (गेर्राद ग्रनादा) लिखा। कृति में इतिहासकार ने वक्ताओं तक को उद्-धृत कर साक्षात् दृष्टा का चित्र उपस्थित कर दिया। जेरोनिमों जुरिता[3] में दियेगो की साहित्य-शैली तो न थी परन्तु आलोचक की पैनी दृष्टि उससे कहीं अधिक थी। इसी प्रकार इस्तेवां द गारिबे[4] फ्लोरियन द ओकाम्पो[5] आम्ब्रासिओ द मोरालेस[6] आदि ने भी अनेक दिशाओं में ऐतिहासिक रचनाएँ कीं। जुआन द मार्याना[7] का "स्पेन का इतिहास" १६०१ तो एक साहित्यिक अभिसृष्टि है जिसकी शैली का सौंदर्य समसामयिक समान रचनाओं में नहीं मिलता। विशप बार्तोलोमे द लास कासस[8] ने अपने इतिहास की पुकार अमेरिका के इंडियनों के पक्ष में उठाई। फ्रे जोजे द सिगुएन्जा[9] की इतिहास सम्बन्धी कृति क्लासिकल शैली में लिखी गयी है परन्तु रचयिता की वैयक्तिक चेतना का भी पूरा विकास हुआ है।

अनेक इतिहासकारों ने तो छंदोबद्ध इतिहासों की रचना की। वस्तुतः उनकी कृतियों का रूप वीर-काव्यों सा हो गया। इन रचयिताओं में प्रधान बर्नार्दो[10] बाराहोना,[11] आलोन्जों.[12] फ्रे दियगो[13] आदि थे।

---

१. Sanjuan de la Cruz; २. Diego Hurtado de Mendoza; ३. Jeronimo Zurita (१५१२-८०); ४. Esteban de Garibay (१५२५-९९); ५. Florian de Ocampo (१४९५-१५५८); ६. Ambrosio de Morales (१५१३-९१); ७. Juan de Mariana; ८. Bishop Bartolome' de las Casas (१४७५-१५६६); ९. Fray Jos'e de Siguenza (१५४४-१६०६); १०. Bernardo de Balbuena (१५६८-१६२७); ११. Barahona de Soto (१५४८-९५); १२. Alonso de Ercilla (१५३३-९४); १३. Fray Diego de Hojeda (१५७०-१६१५)

थे। "ला गितानिला" और "ला एस्पाओला इंग्लेसा" उसी श्रेणी की कृतियाँ थीं। इसी प्रकार "एल कैलोसोएक् स्त्रेमेजो" उसकी यथार्थवादी रचना थी। "दोन किजोते" की व्या या में अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। और समीक्षकों ने उसे अनेक प्रकार से समझने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः वह मध्ययुगीय वीर व्यवस्था (शिवेलरी) पर व्यंग्य है। साथ ही भविष्य के कारखानों पर भी वह एक प्रकार की टिप्पणी है। तथ्य चाहे जो हो वह कम से कम मानव अतीत का ऋद्ध विवरण और भविष्य का द्रष्टा निःसंदेह है। वह अपने प्रकार का अनूठा उपन्यास है।

अनेक कथाकारों ने "देकामेरान" के अनुकरण में कहानियाँ लिखीं। आन्तोनियो द एस्लाबा.[1] सालास बारबार्दिलो[2] कास्तिलो सोलोर्ज़ानो.[3] गोन्जालो[4] आदि उसी परंपरा के कथाकार थे। स्पेनी भाषा में सैरवान्तिस के भी अनेक अनुकरण हुए। जुआन मेरेज द मान्ताल्वां[5] ने उसका अनुकरण किया और मारिया द जायास इ सोतोमायोर[6] ने भी। मारिया ने नारी अधिकारों की रक्षा के लिये गैर-कानूनी प्रणय को सराहा और उन्हीं की चेतना से अपने कथानक गढ़े सैरवान्तिस की ही भाँति उसके उपन्यासों का भी पश्चात्कालीन कथाकारों की कृतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इसी काल स्पेन के साहित्य-क्षेत्र में उस शैली का आरम्भ हुआ जिसे "बारोक"[7] कहते हैं। यह शैली केवल साहित्य में ही नहीं थी, चित्रकला में भी थी। यह रेनेसाँ, अफ्रीकी लातीनी, अरबी सैद्धान्तिक चिन्तन, जैसूइत विचार-मूर्तन आदि सबका सम्मिश्रण थी। तप और काम तर्क और अतर्क पार्थिव और अपार्थिव सभी उसमें घुले-मिले थे और वह अद्भुत शालीन समष्टि बारोक कहलाई। उसकी व्याख्या अनेक प्रकार से हुई परन्तु स्पेन में उसने धर्म-सुधार-विरोधी-भावना में मध्ययुगीय वीर व्यवस्था और कामुक प्रवृत्ति की मांग की।

जोजे द वाल्दिविएल्सो[8] ने अत्यन्त सरल कविताएँ लिखीं। जो बारोक परंपरा में थीं। परन्तु उस परंपरा का प्रतिनिधि कवि लुइस द गांगोरा इ आर्गोते[9] था। उसके कविता संग्रह "लास सोलेदादिज" (निर्जनताएँ) और पालिफेमों की अनेक कविताएँ उत्तरकालीन कवियों के लिए प्रमाण बन गईं। उसकी कविताओं के कुछ पंक्ति-शीर्षक इस प्रकार थे। "मुझे सागरतट पर रोने दो" "फूलों में गाने वाला प्रत्येक पक्षी बुल-बुल नहीं,"

---

१. Antonio de Eslaba; २. Salas Barbardillo (१५८१-१६३५); ३. Castillo Solorzano; ४. Gonzalo de Cespedes Y Meneses (१५८५-१६३८); Juan Perez de Montalban (१६०२-३८); ६. Marin de Zayas Y Sotomayor ५. (१५९०-१६६१); ७. The Baroque; ८. Jose de Valdivielso (१५६०-१६३८); ९. Luis de Gongora y Argote

"प्रणय-कलह के लिये मैदान पंखों का" "नीली घड़ियों में जब ऊषा रक्तिम होती है और दिन लाल"।

जुआन द आर्गीजो[१] ने अपने विषाद और करुणा का अंकन स्पष्टाकृतिक सॉनेटों में किया। पेद्रो द एसिपनोजा[२] ने तप और प्रकृति-प्रेम का एकत्र निदर्शन किया। उसकी कविताओं में रूपकों और पौराणिक आख्यायिकाओं का भी उपयोग हुआ। मार्तिनेज द जोरेगी[३] फ्रांसिस्को द रियोजा[४] और एस्तेबान मानुएल द बिलेगास[५] ने भी गोंगोरा की शैली में ही अधिकतर अपनी रचनाएँ कीं। बारोक के रुग्ण, घृणित और माँसल अभि-तृप्ति की माँग फ्रांसिस्को द क्विवेदोई विलेगास[६] ने पूरी की। उसने मृत्यु-चिन्तन के बीच अभिराम जीवन की तृष्णा जगाई। उसकी पंक्तियों में सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य का स्रोत फूट पड़ा। वह अपनी कविताओं में स्पेनी राजनीति और दोन दिनेरो (थैलीशाह) पर व्यंग्य-प्रहार करता है। व्यंग्य-कविताएँ तो उसने अनेक लिखीं। सुन्दर और शांति-दायिनी कविताएँ भी उसने पर्याप्त मात्रा में रचीं।

बाल्तजार ग्रासियां[७] ने अपने युग के ह्रास पर कविताएँ लिखीं। अपने 'एल क्रितिकों' में धीमान और शिष्ट, दुर्बल और रूखे और सबल प्राकृत मानव को, वह समान मानता है। उसकी रचनाओं के अनेक स्थल अपनी नैतिक ऋद्धता के लिए प्रसिद्ध हैं।

बारोक शैली का सबसे सुन्दर रोमांटिक नाटककार लुइस वालेस द गेवारा[८] था। उसने अपने "जूलियानो आपोस्ताता" में धर्म और भक्ति की शान प्रतिष्ठित की। "एल काबालेरो देल सोल" में वह शानदार और चमत्कारी दृश्यों से विमुख हो अशान्त और विद्रोही प्रवृत्तियों को चित्रित करता है। दोन सोल की मृत पत्नी के शरीर में प्रवेश होकर एक बनैला जीव सोल फिर से विवाह करने और अपना वारिस उत्पन्न करने को कहता है। "एल दियाबोलो एस्ता एन सान्ति लाना" में लोपे भूत का चेहरा लगा कर "क्रूर" पीटर को डराता है और इस प्रकार उससे अपनी वधू ले लेता है। "ला सेराना द ला वेरा' में किसान की कन्या अपने बेवफा पति का पीछा कर उसे मार डालती है। पेद्रो काल्देरोन द ला बार्का[९] ने भी प्रायः इसी प्रवृत्ति से अपने नाटक लिखे। परन्तु उसकी शैली बड़ी प्रांजल थी। अनेक विरोधाभासों की रचना कर वह दिखा देता है कि उन सारे विरोधों के बावजूद, विकृत सत्य के पीछे भगवान की सत्ता है। अद्भुत डायलॉग और शब्द, ध्वनि, संगीत,

---

१. Juan de Argui Jo (१५६७-१६२३); २. Pedro de Espinosa (१५७८-१६५०) ३. Martinez de Jaure Gui (१५८३-१६४१); ४. Francisco de Rioja (१५८३-१६५९); ५. Esteban Manuel de Villegas (१५८९-१६६९); ६. Francisco de Quevedo Y Villegas; ७. Baltasar Gracian; ८. Luis Velez de Guevara; ९. PedroCalderon de La Barca.

सेटिंग से वह अभिराम नाटक प्रस्तुत कर देता है। उसके नाटकों में प्रसिद्ध 'एल ग्राँ तियात्रो देल मुन्दो', 'ला विदा एस सेजो' (जीवन स्वप्न है) 'एल अल्काल्दे द ज़लामिया', 'एल मेदिको द सु ओनरा', और 'एल पिन्तोर द सु देज़ोनरा' हैं। इनमें से पिछले तीन नाटक बारोक प्रवृत्ति को पूर्वतः प्रकाशित करते हैं। अन्तिम में दोन जुआन की कहानी है। काल्देरोन बारोक नाटक क्षेत्र का प्रधान कृती है।

तब का स्पेन रंगमंच की दृष्टि से काफी आगे था। उस पृष्ठभूमि में फ्रांसिस्को रोजास ज़ोरिल्ला[1] की नाट्य कृतियाँ विशेषतः व्यंग्य कॉमेडी, पर्याप्त सफल हुईं। आगोस्तिन मोरेताँ[2] ने नाटकों की शैली में आचार और मनोविज्ञान का एक खास पुट दिया। लुइस क्विनोजोनिस द बेनावेन्ते[3] उस शैली का प्रायः अंतिम रचयिता था।

बारोक शैली की तब अनेक रचनाएँ धार्मिक क्षेत्र में हुईं। उस दिशा में सोर मारिया द आग्रेदा[4], मिगुऐल द मोलीनोस[5] और फ्रे होर्तेन्सियो फेलिक्स पाराविसिनो[6] विशेष प्रयत्नशील हुए। इनमें पिछला पादरी था और उसके प्रवचनों की भाषा नितान्त अलंकृत थी।

: ३ :

अट्ठारहवीं सदी

अट्ठारहवीं सदी के मध्य बारोक शैली का स्पेन में ह्रास हो चला। इसका एक कारण फ्रेंच उदार दृष्टिकोण का प्रभाव था। उस दृष्टिकोण का स्पेन में प्रचार फ्रांस में जन्मे स्पेनी राजा फेलिपे पंचम और फर्नान्दो षष्टम ने किया। परन्तु उस दिशा में स्वयं धार्मिक क्षेत्र के अनेक मनीषियों ने दूरगामी प्रयत्न किये। इनमें प्रधान फ्रेबेनितो जेरोनिमो फइजो इ मान्तिनिग्रो[7] था। उसके 'तिआत्रो क्रीतिको यूनिवर्साल' और 'कार्ताज़ एरुदी-ताज' (पांडित्यपूर्ण पत्रों) ने अज्ञान, पूर्वाग्रह और अन्धविश्वास पर प्रहार किया। साथ ही उसने साहित्य और भाषा भी समृद्ध की। उसमें वोल्तेयर की सी शंकाशीलता न थी परन्तु स्पेनी समीक्षाशास्त्र को उससे बड़ी शक्ति मिली। उसने अरस्तू तक को न छोड़ा। उसके चिकित्साशास्त्र के ज्ञान की ओर संकेत किया। नारी के गौरव और अधिकारों का वह पक्षपाती था। उसकी कृतियों ने उस दिशा में अच्छा प्रचार किया। वनस्पति-शास्त्र का पंडित

---

१. Francisco Rojas Zorrilla (१६०७-४८); २. Agostin Moreto (१६१८-६९); ३. Luis Quinones de Benavente (मृ० १६५२); ४. Sor Maria de Agreda (१६०२-६५); ५. Miguel de Molinos (१६२८-९६); ६. Fray Hortensio Felix Paravicino (१५८०-१६३३); ७. Fray Benito Jeronimo Feijoo Y Montenegro.

और साहित्यकार इतिहासकार फ्रे मार्तिन सार्मिएन्तो[1] उसका शिष्य था। उसके भाषा संबंधी विचारों का अध्ययन और प्रचार जेसुइट पादरी लोरेन्जो हेर्वास इ पान्डुरो[2] ने किया। यह वैज्ञानिक भाषा शास्त्री था। इसी प्रकार जुआन आन्द्रेज[3] और एस्तेबान अर्तियागा[4] ने भी फेइजो की अन्य साहित्यिक प्रवृतियों का अध्ययन किया। जनता के अन्धविश्वास पर फेइजो के मित्र जोजे फ्रांसिस्को द इस्ला[5] ने अपने व्यंग्य उपन्यास "फ्र गेरुन्दिओ द कम्पाजास" द्वारा किया। साथ ही गणित के पंडित दोन दियेगो द तोरेस विलारोएल[6] ने समसामयिक साहित्यिक रिक्तता का भंडाफोड़ किया। उसने अपने "सेजोज मोरालेज (१७४३), 'विदा' और मसखरे पंचागों द्वारा राष्ट्रीय ह्रास की ओर उँगली उठाई। और बौद्धिक क्रान्ति की आवश्यकता सिद्ध की।

मानव कार्यों में सापेक्ष्यता का सिद्धान्त जोजे काद्दाल्सो[7] ने प्रचलित किया। उसे निःशेष प्रगति में विश्वास नहीं। न मनुष्य की स्वाभाविक नेकी में ही था। उसने मूर (अरब) की दृष्टिकोण से तत्कालीन स्पेन की दशा पर पत्र लिखे। जो उत्कट् व्यंग्य प्रमाणित हुए। साथ ही उसने अनुवादों की शैली पर विचार प्रकट किये और यथार्थ तथा कृत्रिम ज्ञान की सही व्याख्या की। शिक्षण के संबंध में भी उसने अनेक दृष्टिकोणों से विचार व्यक्त किये। विश्वकोषीय ज्ञान का वह विरोधी था। उसे एक विषय का सांगोपांग ज्ञान अधिक अभीष्ट था। फ्रेंच फिजिओक्रात दार्शनिकों के विचारों से प्रभावित दोन गास्पर मेलकोर द जोवेलानोज[8] ने अपने "दिस्कुर्सोज" (विचारों') और संस्मरणों द्वारा सार्वजनिक शिक्षा. नारी के अधिकारों और रंगमंचीय सदाचरण का प्रबल समर्थन किया। वह फ्रांसिसी राज्य क्रांति और प्रेस की स्वतन्त्रता का वैसे विरोधी था। दोन पेद्रो रोद्रिगेज द काम्पोमानेज[9] ने उसी की भाँति सार्वजनिक शिक्षा और न्याय आदि का समर्थन किया यद्यपि वह चर्च का विरोधी था।

शुद्ध साहित्य के क्षेत्र में दोन फेलिक्स मारिया समानिएगो[10] ने देशी सामग्री के आधार पर अपने "फाबुलाज मोरालेज" लिखे। उस दिशा में विशेष यत्नवान तामास द इरियार्ते[11] हुआ जिसने प्राचीन कहानियों के दृष्टांतों को समकालीन कवियों पर घटाया।

---

१. Fray Martin Sarmiento (१६९५-१७७१); २. Jesuit P. Lorenzo Hervas Y Panduro (१७३५-१८०९); ३. P. Juan Andres (१७४०-१८१४); ४. P. Eesteban Arteaga (ज० १७४७); ५. Jose Francisco de Isla (१७०३-८१); ६. Don Diego de Torres Villarroel (१६९३-१७७०); ७. Jose Cadalso (१७४१-८२); ८. Don Gaspar Melchor de Jovellanos (१७४४-१८१०); ९. Don Pedro Rodriguez de Campomanes (१७२३-१८०२); १०. Don Felix Maria Samaniego (१७४५-१८०१); ११. Tomas de Iriarte (१७५०-९१)

उस दिशा में विविध छन्दों में उसने अपने ७६ "फाबुलाज़ लितरारियाज़" लिखे। उसने भी साहित्य में देशीयता पर जोर दिया और स्वदेशी कथानकों तथा शैलियों का महत्व प्रदर्शित किया। अपने "दियारियो द लोस लितेरातोज" द्वारा इरियार्त ने नव-क्लासिक-चेतना के समर्थक इग्नासियो द लुजान[१] पर प्रबल प्रहार किया। लुजान ने अपनी "पोएतिका" (१७३७) में अरस्तू और उसके इटैलियन व्याख्याताओं के साहित्यिक सिद्धान्तों का विकास किया। उसने अपने विचारों को काव्य तक ही सीमित रखा था। गद्य के क्षेत्र में ग्रैगोरियो मायान्स[२] ने "रेतोरिका" लिखी। दोन जुआन पाब्लो फोर्नेर[३] भी "क्लासिकल" प्रवृत्ति का ही समर्थक था। परन्तु फ्रेंच माँडलों ने भी उसे आकृष्ट किया था, पर मूलतः वह स्पेनी साहित्यिक सिद्धान्तों का ही हिमायती था।

शीघ्र ही फ्रेंच नाटकों के भी स्पेनी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत हुए। दोन रामोन द ला क्रूज इ अल्मेदिला[४] ने मोलिए[५], बोमार्क[६], क्रेबिलों[७] आदि के नाटकों का अनुवाद किया। उसके अपने नाटकों की प्रवृत्ति अधिकतर नैतिक थी। उसने उनमें फ्रेंच शैली और टेकनीक का प्रयोग किया। उसकी कृतियाँ पर्याप्त लोकप्रिय हुईं। वस्तुतः इतनी कि मोरातीन आदि के यश को उसने मलिन कर दिया। दोन निकालाज फर्नान्देज द मोरातीन[८] ने क्लासिकल अनुकरण में अपना "होर्मेजिन्दा" लिखा। उसके पुत्र लियान्द्रो फर्नान्देज द मोरातीन[९] ने क्लासिक और देशी दोनों की सम्मिलित शैली का प्रयोग किया। उसके क्लासिक दृष्टिकोण में भी फ्रेंच शैली का समावेश था। उसने समकालीन नाटककारों पर गहरे व्यंग्य किये। उसने भी मोलिए के नाटकों के अनुवाद और स्पेनी रूपान्तर किये। उसकी "लड़कियों की हुँकार" स्पेनी साहित्य की सुघड़तम कॉमेडियों में हैं। उसमें सशक्त नाटकीयता, फ्रेंच टेकनीक और स्पेनी मुहावरों का अनुपम प्रयोग हुआ है।

नव क्लासिकल वाद का अभ्युदय लिरिक काव्य और साहित्यिक गद्य में भी हुआ। जुआन मेलेन्देज वाल्देज[१०] उसका प्रबल प्रचारक था। शैली की दृष्टि से वह शुद्धतावादी था। और उसने स्पेनी काव्यरूप को विशेष प्रश्रय भी दिया परन्तु वह फ्रेंच मानवतावादी विचारों से प्रभावित था। उसने काफी रचनाएँ कीं, प्रणय प्रधान और नीति परक दोनों और यद्यपि जहाँ तहाँ उसने अमूर्त की भी व्यंजना की उसकी शैली बोझिल कहीं न हो पाई। अलंकृत गद्य के क्षेत्र में भी उसने अच्छा काम किया। दोन मानुएल जोजे किन्ताना[११] के ओड

---

१. Ignacio de Luzan (१७०२–५४); २. Gregorio Mayans (१६९९–१७८१); ३. Don Juan Pablo Forner (१७५६–९७); ४. Don Ramon de la Cruz Y olmedilla (१७३१–९४); ५. Moliere; ६. Beaumarchais; ७. Crebillon; ८. Don Nicolas Fernandez de Noratin (१७३७–८०); ९. Leandro Fernandez de Noratin (१७६०–१८२८); १०. Juan Melendez Valdes (१७५४–१८१७); ११. Don Nanuel Jose Quintana (१७७२–१८५७)

और दोन निकासियो अल्लवारेज द सियेन्फुएगोज[1] की करुण कृतियों पर उसका खारा प्रभाव पड़ा। साथ ही निकासिया गालेगो[2] ने नव-क्लासिकवाद, सांचेज वार्बेरो[3] ने मानवतावाद और कला में आल्बर्तो लिस्ता[4] ने उसकी विरासत पाई। पर इसी काल धीरे-धीरे रोमांटिक और यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ भी साकार होती जा रही थीं। उनका विशेष विकास अगली सदी में हुआ।

: ४ :

उन्नीसवीं सदी

स्पेन ने साहित्य की रचनाओं में इतनी रोमांटिक-प्रवृत्ति नहीं दिखाई जितनी उसके सिद्धान्तों के निरूपण में। स्पेन में उन सिद्धान्तों का प्रचार हर्डर[5] और श्लेगेल[6] से सीख कर निकालेस बोल फाबर[7] ने किया। वहाँ ओसियन शैली का विकास "एल यूरोपिया" नामक पत्र द्वारा हुआ। दुके द रिवाज[8] के "एल मोरो एक्सपोजिये" की भूमिका में गालियानो[9] ने रोमांटिक सिद्धान्तों की सबलतम प्रतिष्ठा की। १८१४ और २३ के बीच अनेक स्पेनी नागरिक फ्रांस. जर्मनी और इंग्लैंड से लौटे और वहाँ जो कुछ उन्होंने उस दिशा में जाना-सुना था उससे स्वदेश की साहित्य चेतना में अभिवृद्धि की। लापेज सोलर,[10] एस्प्रोन्सदा[11] दूरान[12] जोजे गोमेज द ला कोर्तिना[13] आदि ने ह्यूगो[14] बायरन[15] बुतरवेक[16] की कृतियों के अनुवाद प्रस्तुत कर या उनके अनुकरण में अपनी रचनाएँ कर रोमांटिक प्रवृत्तियों का प्रचार किया। रोमांस और ड्रामा संबंधी जर्मन विचार भी बड़ी तेजी से स्पेनी साहित्य की सिद्धान्त-कृतियों में भर चले। स्पेन की कृतियों में फिर भी इस उधार ली हुई प्रवृत्ति का उज्ज्वल रूपायन न हो सका। उसके ऐतिहासिहक उपन्यासों और नाटकों का स्तर ऊँचा न उठा। हाँ, लिरिक काव्य और कहानियों की दिशा में निश्चय ही उसने मौलिक और सफल प्रयोग किये। उन क्षेत्रों में उसने स्थानीय रंग-राग का विकास किया। उस व्यापक स्थानीय रंग-राग का सांकेतिक नाम "कोस्तुम्ब्रिस्ता" पड़ा।

१८३४ से १८४४ तक दस वर्ष स्पेन में रोमांटिक ड्रामा के थे। रंगमंच परिणामतः

---

१. Don Nicasio Alvarez de Cienfuegos (१७६४–१८०९); २. Nicasio Gallego (१७७७–१८५३); ३. Sanchez Barbero (१७६४–१८१९); ४. Alberto Lista (१७७५–१८४८); ५. Herder; ६. Wilhelm Schlegel; ७. J. Nicolas Bohl de Faber; ८. Duque de Rivas.; ९. Galiano; १०. Lopez Soler; ११. Espronce Da; १२. Duran ; १३. Jose Gomez de la Cortina; १४. Hugo; १५. Byron; १६. Bouterweck

प्रेम, कामुकता, घृणा, पागलपन. भूत-प्रेतों और लोमहर्षक दृश्यों का केन्द्र बन गया। यूरोप के अन्य देश उस रोमांटिक वीभत्सता से अभी-अभी मुक्त हुए थे। स्पेन में उसका अभी आरंभ ही हुआ था। अलौकिक का प्रादुर्भाव बारोक शैली की विश्वास संपदा थी. रोमांटिक परंपरा में उपादान की टेकनीक। स्पेन में उस क्षेत्र में अनेक साहित्यिकों ने प्रयत्न किये। फ्रांसिस्को मार्तीनेज द ला रोजा[१] जिसने अपनी कृतियों की लोकप्रियता से पेरिस में यश कमाया था। १८३४ के स्पेन में अपनी कृति "ला कोंजुरासियो द वेने-सिया" लिए आया। भावों के अन्तर्द्वंद्व में उसी प्रकार तीखा आलोचक मारियानो जोजे द लारा[२] का "मासियाज" था। उसको उसने उपन्यास के रूप में भी प्रकाशित किया। दोन एन्जेल द सावेद्रा[३] की प्रसिद्ध रचना "दोन आल्वारो" अथवा नियति की शक्ति" में उसी प्रकार भाग्य के उलट फेर हैं।

सावेद्रा रिवास का ड्यूक था। प्रण और रहस्य का उद्‌घाटन आन्तोनियो ग्रासिया गुतिएरेज[४] ने अपने "एल त्रोवादोर" (१८३६) में किया। रोमांटिक क्षेत्र के अन्य नाटककार थे—जुआन उगानिओ हार्त्जेनबुश[५] आन्तोनियो गिल इ जाराते[६] जोजे जोरिला[७] आदि। जोजे जोरिला का प्रसिद्ध नाटक "दोन जुवान तेनोरियो" (१८४४) विख्यात दोन जुआन कहानी परंपरा का एक रूप प्रकाशित करता है। यह स्पेन में एक विशिष्ट त्योहार पर सालों खेला जाता रहा है।

रोमांटिक लिरिक पहले तो विदेशी कवियों के अनुकरण में लिखे गये। फिर अपनी स्थानीय विशेषताओं से सजे। स्पेन की भाव-संपदा से ऋद्ध लिरिकों का सौंदर्य अधिक निखरा, अधिक स्वाभाविक हुआ। जोजे द एस्प्रोन्सेदा[८] के बायरन के ऋण से मुक्त होते ही उसके लिरिक अकृत्रिम वैभव से लद गये। प्रेम और करुणा की भाव-सत्ता सुनने वालों को विभोर कर चली। गुसतावो आदोल्फो बेकर[९] की रचनाएँ—"लयेन्दाज" और "रीमाज"—आदर्श प्रणय और अभिराम काव्यधारा की प्रतीक हैं। उनकी शैली भी अतीव प्रांजल है। दान रामोन द काम्पोआमोर[१०] के गंभीर "दोलोराज, चुस्त और ताजे" "हुमोरादाज" और भावुक पुकारों से ध्वनित "पेकेजो पोएमाज" अपनी विविध भावनाओं में अनुपम हैं।

रोमांटिक उपन्यासों का आरंभ कॉस्ट प्रभावित ऐतिहासिक कृतियों द्वारा हुआ।

---

१. Francisco Martinez de la Rosa (१७८७–१८७२); २. Mariano jose de larra; ३. Don Angel de Saavedra; ४. Antonio Garcia Gutierrez (१८१३-८४); ५. Juan Eugenio Hartzenbusch (१८०६-८०); ६. Antonio Gil Y Lzarate (१७९६-१८६१); ७. Jose Zorrilla; ८. Jose de Espronceda; ९. Gustavo Adolfo Becquer; १०. Don Ramon de Campoamor (१८१७-१९०१)

तोलेस्फोरो द त्रेबा इ कोसिओ[१] का "गोमेज आरीयाज" (१८२८) पात्रीसियों द ल एस्कासूरा[२] का "नीरेनी रोक" (१८३५) एगिलक इ कारास्को[३] का "एल सेजोर द बाम्बिब्रे" (१८४४) आदि सभी ऐतिहासिक उपन्यास थे। उजेनियो द ओकोआ[४] ने अपने उपन्यास "एल आतो द फे' (१८३७) में दोन कारलोस की कथा दुहराई। नाट्यकार और लिरिक कवि गर्त्रदिस गोमेज द आवेलानेदा[५] के अनेक उपन्यासों में कम से कम दो—"मैजिको" (१८४६) और दोस मुजेरेस (१८४३)–हृदयग्राही हैं। निकोमिदिज पास्तोर दियाज[६] के उपन्यास "विलहर्मोसा आ ला चीना" (१८५८) में करुण-भावुकता का विकास हुआ।

धीरे-धीरे यथार्थवादी भाव-धारा भी उपन्यासों में बही। पेरेज़ एसृख[७] और जुआन द आरिजा[८] ने यथार्थवादी उपन्यासों का आरम्भ किया। अर्द्ध जर्मन फर्नान काबालेरो[९] ने लाक्षणिक रूप से यथार्थवाद का अपनी कृतियों में उपयोग किया। उसका उपन्यास "ला गोविओता" (१८४९) सागर-पक्षी-मल्लाह की काया की स्वाभाविक कहानी है। धूप की तेजी, सड़कों का शोर, बच्चों, की चिल्ल-पों, लोगों की दौड़-धूप इस स्वाभाविकता से चित्रित हुए हैं कि समाज जैसे कहानी में जीवित हो उठा है। उसके "ला फामीलिया द आल्वारेदो (१८५६) में उस किसान की कहानी है जो डाकुओं के साथ रहने लगा है और उनके साथ रह कर भी वह उनसे भिन्न है।

दोन पेद्रो आन्तोनियो द आलारकौन[१०] की सुन्दरतम कृति "तिकोनी टोपी" (१८७४) है। उसमें पर-पत्नी-गमन और प्रतिशोध का प्लॉट विनोद से मुखरित हो उठा है। उसकी दो रचनाएँ "एल एस्कान्दालो" (१८७५) और "एल निजो देला बोला" (१८८०) हैं।

"मसीआज" नाटक के रचयिता ने अपने और अन्य पत्रों में सामाजिक रीति-रस्मों के विरुद्ध अनेक व्यंग्य लिखे। अपने इन निबन्धों के लिए मारियानो जोजे द लारा[११] प्रसिद्ध हो गया है। उसके निबन्धों ने यथार्थ की ओर लोगों का रुख स्पष्टतः फेर दिया। मेसोनेरो रोमानोज[१२] ने अपनी रचनाओं में पुराने माद्रिद के दृश्य चित्रित किये। उसके

---

१. Telesforo de Trueba Y Cossio (१७९९-१८३५); २. Patricio de la Escosura (१८०७-७८); ३. Enrique Gil Y Carrasco (१८१५-४६); ४. Eugenio de Ochoa (१८१५-७२); ५. Gertrudis Gomez de Avellaneda (१८१४-७३); ६. Nicomedes Pastor Diaz (१८११-६३); ७. Perez Esrich (१८२९-९७); ८. Juan de Ariza (१८१६-७६); ९. Fernan Caballero; १०. Don Pedro Antonio de Alarcon; ११. Mariano Jose de Larra; १२. Mesonero Romanos (१८०३-८२)

संस्मरणात्मक लेख भी बड़े सुन्दर हैं। दोन सेराफीन स्तेवानेज काल्देरोन[1] की कृतियाँ रंग-बिरंगे लोक-चित्रों से भरी हैं। इसी प्रकार जोजे मारिया काद्रादो[2] ने सारे स्पेन के विविध सौंदर्यों का बखान किया। जाइमे वाल्मेज[3] ने अपने "एल क्रितेरियो" (१८४५) में इतिहास के तर्क संगत दर्शन का विकास किया है। जुआन दोनोसो कोर्टेस[4] के उदारवादी विचारों तथा समाजवाद पर आघात किये।

कास्तुम्ब्रिस्ता (स्थानीयता) के आन्दोलन ने यथार्थवादी उपन्यास को अपने सिद्धान्त की चोटी पर पहुँचा दिया। जोजे मारिया द पेरेदा[5] ने स्थानीय रंग अपनी कृतियों पर खूब चढ़ाए। उसकी प्रवृत्ति धार्मिक थी और भक्त की निष्ठा से उसने इस दिशा में साधना की। वह उदार मध्यवर्गीयों पर प्रहार करते समय भी उनके प्रति सदय होता है, विशेष कर स्वतंत्र-विचारकों के प्रति उनके प्रोत्साहन पर। वह कभी अपने देहातों को नहीं भूलता। उसकी यथार्थवादी प्रतिभा "सोतिलेजा" (१८८५) और "पेंजाज अरीबा" (१८९५) में पूर्णतया खुल पड़ी है। पहली में मछुओं की कहानी है, दूसरी में एक नगर का निवासी प्रकृति के जादू का शिकार हो आस्ट्रिया के पर्वतों पर लुभा जाता है। उसका चरित्र-चित्रण तो इतना प्रौढ़ नहीं है, परन्तु उसका वर्णन अनुपम सुन्दर होता है। उसकी शैली बड़ी मनोहर है। सुन्दर डायलॉगों से भरी, संक्षिप्त ललित पदावली से संयुक्त जिसमें भाषा की काकली लोकबोली के हाशिये से चमक उठी है।

पेरेदा का उदार चेता मित्र बेनितो पेरेज गाल्दोज[6] उससे भी महान् साहित्यकार है। उसकी कृतियों का दायरा पेरेदा के दायरे से कहीं बड़ा है और अपनी उन्हीं कृतियों में वह स्पेन के समसामयिक समाज को ढाल देता है। अपनी ४७ "नेशनल कहानियों" और ३३ "समकालीन उपन्यासों" में उसने तत्कालीन समाज, राजनीति, रुढ़िवादी परंपरा पर राष्ट्रीय, सुधारवादी और आवश्यकतावश क्रांतिकारी दृष्टिकोण से विचार किया है। उसकी रचनाओं में प्रधान "दोंजा परफेकता" (१८७६) "ग्लोरिया" (१८७७) और "ला फामिलिया द ल्योन रोच" (१८७९); हैं। इनमें से पहले में उसने धार्मिक असहिष्णुता का वर्णन किया है। (तब का स्पेन यहूदी तथा अन्य विधर्मियों के रक्त में नहा रहा था।) दूसरे में जातीय असहिष्णुता का सत्यानाशी परिणाम प्रदर्शित है (ग्लोरिया एक यहूदी से प्रेम करने लगती है) और तीसरा ढुलमुल स्वतंत्रता की ट्रेजेडी प्रस्तुत करता है।

---

१. Don Serafin Estebanez Calderon (१७९९-१८६७); २. Jose Maria Quadrado; ३. Jaime Balmes (१८१०-४); ४ Juan Donoso Cortes (१८०९-५३); ५. Jose Maria de Pereda; ६. Benito Perez Galdos

दोन जुआन वालेरा[१] का दृष्टिकोण अधिक मनोवैज्ञानिक है और शैली अधिक प्रांजल। "आमोर ई मीस्तिका एस्पांजोला" उसका आलोचनात्मक अध्ययन है जिसमें तप की निष्ठा रूपायित है। उसका उपन्यास "पेपिता जैमेनेज" (१८७४) व्यंग्यपरक है जिसमें प्रेम की महिमा मूर्त हो उठी है। तप और प्रेम की ही विविध स्थितियाँ और पारस्परिक तनाव वालेरा के "एल कोमेन्डादोर मेन्दोजा" (१८७६) "दौन्जा लूज" (१८७९) तथा "मोर्सामोर" (१८९९) में भी है। जीवन के प्रच्छन्न चित्र उसके "लास इलजिओनेज देल दाक्तर फास्तीनो" (१८७५) और "पासार्से द लिस्तो" में खुल पड़े हैं। पिछली कृति का नायक तो अपनी कमी के कारण अपने को अपनी पत्नी के अयोग्य ठहराता है और उधर वह उसके साथ बराबर विश्वासघात करती जा रही है। वालेरा का एक अन्य उपन्यास "गेनिओ इ फिगुरा" (१८९७) भी इसी व्यंग्य-विरोध को प्रकाशित करता है। गंभीर दृष्टिकोण और मनोवैज्ञानिक चेतना में तो ये उपन्यास निश्चय ही प्रशंस्य है। परन्तु डायलॉगों का विकास सामाजिक स्तर पर नहीं हो पाता और स्वाभाविकता पाण्डित्य के घटाटोप में लोप हो जाती है।

अकृत्रिम प्रकृतिवाद का पक्ष काउन्टेस एमीलिया पार्दो वजान[२] ने अपने प्रसिद्ध पैंफ्लेट "ला केस्तियों पाल्पितान्तें" (१८८३) में सम्हाला। स्पेन के प्रकृतिवादी (नेचुरलिस्टिक) उपन्यासों में पहली बार एमीलिया ने स्थानीय चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूझ से काम लिया। उसकी सर्वोत्तम कृति "लोस पाजोज द अलोआ" (१८८६) है। उसका उपसंहार "ला माद्रे नाचुरालेजा" (१८८७) है। उस रचना में उसने गालीशिया के एक प्राचीन ह्रासोन्मुख कुल का अध्ययन किया है। "ला त्रिबूना" (१८८२) भी उसकी प्रौढ़ कृति है जिसमें एक विद्रोही नारी की कहानी है। "एल किज्नेन द विलामोर्ता" (१८८५) में एक रोमांटिक और कामुक क्लर्क के लिए सत्यानाश का चित्र है। 'मोरिजा' (१८८९) की करुण कहानी में यत्र-तत्र विनोद की लौ चमक जाती है। दोना एमीलिया[३] छोटी कहानियाँ भी उसी क्षमता से लिखती है जिससे अपने उपन्यास "लास मेदियास रोजाज", और 'रिकोंसिलिआदोज' उसकी सुन्दर सफल कहानियाँ हैं।

समाज के भ्रष्टाचार और चर्च के छल-कपट का भंडाफोड़ आर्मान्दो पालसियो वाल्देज[४] अपने उपन्यासों में करता है। "मार्ता ई मारिया" (१८८३) "ला हर्माना सान सान सुल्पिसियो' (१८८९) और "ला फे" (१८९२) इसी परंपरा के उपन्यास हैं। 'ला एस्पूमा' में पार्थिव जीवन का एक विशेष चित्र उतर पड़ा है। साथ ही अभिजात जीवन का 'एल

---

१. Don Juan Valera; २. Countess Emilia Pardo Bazan; ३. Dona Emilia; ४. Armando Palacio Valdes

माइस्त्रोन्ते' (१८९३) में और 'कादिज' के बहिरान्त का "लोस माजोस द कादिज" (१८९६) में। उसकी छोटी कहानियाँ भी बड़ी प्रौढ हैं। सौलो में बच्चा अपने पिता को डूबते हुए देखता है। गजब की शक्ति है इस कहानी में।

जासिन्तो ओक्तावियो पिसोन[1] के प्रकृतिवाद (नेचुरलिज्म) को उसकी कला के लिए कला प्रवृत्ति ने विकृत कर दिया है। वह इस विचार का समर्थक तो नहीं है। परन्तु उसकी भाषा की सुन्दरता और शब्दों का एकान्ततम चयन इसकी पुष्टि करते हैं। उसके 'लाजरो', 'पेकेजेसेज' आदि इसके प्रमाण हैं। पादरे-लुइस कोलोमा[2] ने भी कैथोलिक सिद्धान्तों और मानवीय नेकी पर जोर देने के लिए प्रकृतिवादी लक्षणों और दृश्यों का उपयोग किया है।

उस काल में रंगमंच का भी नया सुधार हुआ। नाट्यकार, गीतकार अभिनेता, अभिनेत्रियों ने भी उस दिशा में अनेक नई सूझें प्रदर्शित कीं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तो सभी प्रकार के नाटकों की स्पेन में बाढ़ सी आ गई। जोजे एकागारे[3] ने अकेले ६० नाटक लिखे जिनमें समसामयिक जीवन का प्रतिबिंब था। उस काल के बीसियों नाट्यकारों में वस्तुतः साहित्यिक और सैद्धान्तिक मूल्यों को नाट्यकारिता की टेकनीक के साथ सही संयोग करने वाला विचक्षण नाट्यकार जाकिन्तो बेनावेन्ते[4] था। उसके नाटकों का मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय है। यद्यपि स्पेन उसमें सर्वत्र बोलता है। उसकी कृतियों का मूलाधार नेकीबदी है।

: ५ :

वर्तमान काल

१८९८ के युद्ध ने स्पेन की राजनीति कुण्ठित कर दी। उसका गौरव प्रायः नष्ट हो चुका था और उसके उपनिवेश स्पेन के साम्राज्यवादी शिकंजे से आजाद हो चुके थे। स्वयं उनमें अपना साहित्य ऊँचे तबके का एक जमाने से प्रस्तुत हो रहा था। फिर भी यदि उन पर राजनीतिक सत्ता नहीं स्थापित की जा सकी तो कम से कम उन उपनिवेशों के साथ सांस्कृतिक और साहित्यिक एकता तो स्थापित की ही जा सकती थी। इसी विचार के अनेक पोषक पिछली सदी के अन्त में स्पेन में थे। आलोचकों ने उस दिशा की ओर संकेत भी किया।

---

१. Jacinto Octavio Picon (१८५३-१९२४); २. Padre Luis Co'oma (१८५१-१९१४); ३. Jose Echegaray (१८३२-१९१६); ४. Jacinto Benavente

उस दिशा में अग्रणी बार्तोलोम जोजे गालार्दो[1] था। उस एकता के क्षेत्र में दोन मार्सलीनो मेनेन्देज ई पेलायो[2] उससे भी आगे बढ़ गया। उसने कैथोलिक धर्म को ही तत्व-महत्ता और साहित्य तथा कला सौंदर्य का आधार माना। अपनी महान् कृति में उसने अरबों और यहूदियों के सांस्कृतिक आदानों को भी अंगीकार किया। वह साहित्य के रसास्वादन में सौंदर्य विश्लेपण की शक्ति अनिवार्य मानता है, साथ ही साहित्यिक समीक्षा के लिए भाषा-शास्त्रीय और ऐतिहासिक ज्ञान आवश्यक।

उस राष्ट्रीय ह्रास के विषय में जो स्पेन में विवाद चला उसमें अनेकों धीमानों ने भाग लिया जिससे आलोचना, यद्यपि सदा वह आलोचना साहित्यिक ही न थी परन्तु उसमें प्रौढ़ चिन्तन शैली का प्रयोग तो निरन्तर ही हुआ, साहित्य को शक्ति मिली। इन आलोचकों में प्रधान आंगेल गानिवेत[3], मिगुएल द उनामुनो[4] आजोरिन (जोजे मार्तिनेज)[5] और जोजे ओर्तेगा इ गासेत[6] थे। अन्य विशिष्ट और विवादास्पद विषयों पर निम्नलिखित समीक्षकों और चिन्तकों ने अपने विचार प्रगट किये। रूबियो इ ओर्स[7] मादरियागा[8] रोद्रीगेज मरीन[9], रामोन मेनेन्देज पिदल,[10] मिगुएल आर्तिगिज[11], सेन्ज रोद्रिगेज[12] वालुबुएना प्रात[13], एन्त्राम्बासागुआज[14] दामासो[15], अमादो अलोन्सो[16], और दिआस प्लाजा।[17] ये प्रायः सभी जीवित हैं।

हमारे समकालीन राजनीतिक और सामाजिक उपन्यासकारों में प्रधान पिओबारोजा[18] है। उसने शोहदों, लुटेरों आदि की मुसीबतों का अपने उपन्यासों में चित्रण किया है। 'ला-बुस्का', 'माला हिएर्बा' आदि उसी प्रकार की कृतियाँ हैं। पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह कर सकने वाले सर्वहाराओं का चित्रण उसके 'आरोरा रोजा' (लाल सबेरा १९०४) में हुआ है। यह उपन्यास रूसी क्रांति के पहले का है। परन्तु अपनी किसी रचना में बारोजा स्पेन को नहीं भूल पाता। विन्सेन्ते ब्लास्को इवांनेज[19] ने भी अनेक उपन्यास लिखे हैं। उसकी कृतियाँ अधिकतर धर्म-विरोधी हैं। उसका आपोकालिप्से के चार घुड़सवार (१९१६) बहुत लोकप्रिय हो गया है।

रामोन पीरेज द आयाला[20] ने अपने उपन्यासों में धर्मव्यवस्थित गार्हस्थ्य सदाचार

१. Bartolome Jose Gallardo (१७७६-१८५२); २. Don Marcelino Menendez Y Pelayo; (१८५६-१९१२); ३. Angel Ganivet; (१८६२-९८); ४. Miguel de Unamuno; ५. Joes Martinez ruiz (जन्म १८७४); ६. Jose Ortega Y Gasset; ७. Rubio Y Ors; ८. Madariaga; ९. Rodriguez Marin; १०. Ramon Menendez Pidal; ११. Miguel Artigas; १२. Sainz Rodriguez; १३. Valbuena Pratt; १४. Entrambasagua; १५. Damaso; १६. Amado Alonso; १७. Dias-Plaja; १८. Pio Baroja (ज० १८७२); १९. Vicente Blasco Ibanez (१८६७-१९२८): २०. Ramon Perez de Ayala (ज० १८८०)

के स्थान पर विश्रृंखलित यौन-संबंध का चित्रण किया है। उसमें व्यंग्य भी कम नहीं, परन्तु वह उसके मनोवैज्ञानिक सविस्तार रसिया जीवन के चित्र को नीरस नहीं होने देते। यौन-सौंदर्य जो जीवन से हट कर स्वप्न देश में चला जाता है। रामोन मारिया देल वाले-इंक्लान[1] ने विशेष अंकित किया है।

लिरिक काव्य की आधुनिक प्रेरणा वस्तुतः स्पेनी अमेरिका से आई, रूबेन दारियो[2] से। उसी ने आधुनिक कवियों के लिए लिरिक का मार्ग प्रशस्त किया। आन्तोनिओ माकांदो[3] के लिरिक सौंदर्य सत्य और भगवान के लिए अपने अन्तर में झाँकते हैं।—अन्धकार से अन्धकार की ओर! एक उदाहरण—

कल मैंने स्वप्न देखा कि मैंने देखा भगवान् को और
कि मैं बोला भगवान् से और मैंने कि भगवान् ने
मेरी बात सुनी—तब मैंने स्वप्न देखा कि मैंने स्वप्न देखा

जुआन रामोन जिमेनेज[4] ने भी अन्तर्निविष्ट चेतना से ही अपना मार्ग आलोकित किया है। उसके मूलाधार निराशा, शून्य और माया (इलूजिओन) है। उससे अधिक सार्थक कविता जोजे मारिया गाब्रिएल इ गलान[5] और पेद्रो सालिनास[6] की है। फेदेरिको गार्सिया लोर्का[7] सुरियलिस्ट (अवचेतन अथवा अतिचेतन) कवि हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कवि स्पेन में आज विविध प्रकार के काव्य प्रयोग कर रहे हैं। पिछले गृहयुद्ध के बीच और बाद भी कुछ अच्छे साहित्य का स्पेन में सृजन हुआ है। परन्तु वस्तुतः सुन्दर साहित्य विशेषतः काव्य की अभिसृष्टि स्पेन में नहीं स्पेनी अमेरिका में हुई है।

: ६ :

स्पेनी अमेरिका

सोलहवीं सदी में ही अमेरिका के स्पेनी उपनिवेशों में किसी न किसी मात्रा में साहित्य रचना होने लगी थी। अमेरिका में अनेक स्पेनी बोलने वाले देश हैं। जैसे उत्तर अमेरिका में मैक्सिको, और दक्षिण अमेरिका में चिली, क्यूबा, कोलंबिया, वेनेजुएला, ग्वातामला, इक्वेडोर, पेरू, आर्जेन्टाइना, उरूगुए, ब्राजील आदि। यहाँ हम नितान्त संक्षेप में, कुछ, केवल कुछ (अधिकतर आधुनिक) साहित्यकारों का उल्लेख करेंगे। ये

१. Ramon Maria del Valle-Inclan (१८६९-१९३६); २. Rubendario; ३. Antonio Macnado; (ज० १८७५) ४. Juan Ramon Jimenez (ज० १८८१) ५. Jose Maria Gabriel Y Galan (१८७०-१९०५); ६. Pedro Salinas (ज० १८९२); ७, Federico Garcia Lorca; (१८९९-१९३६)

अधिकतर ऐसे होंगे जिन्होंने अपना प्रभाव स्वदेश के साहित्य पर डाला है, अथवा अन्तर्राष्ट्रीय यश कमाया है। अन्यथा विस्तार इतना बड़ा है कि प्रधान साहित्यकारों, अथवा स्पेनी अमेरिका की साहित्यिक प्रगति का साधारण परिचय भी स्थान की असुविधा उत्पन्न कर देगा।

आर्जेन्टिना में यथार्थवादी ड्रामा की परिणति फ्लोरेन्सिओ सान्चेज[1] ने की। वह पैदा तो उरूगुए में हुआ था परन्तु जीवन उसने अधिकतर आर्जेन्टिना में बिताया। सान्चेज इब्सन का अनुयायी था और प्लॉट के निर्माण में उसकी प्रतिभा अद्भुत क्षमता रखती थी। उसके चरित्र स्पष्टाकृतिक हैं और देहात तथा नगर दोनों के जीवन से आकृष्ट हुए हैं। दर्शकों में अपने नाटकों द्वारा भावान्दोलन उत्पन्न करने में वह बेजोड़ है। राष्ट्रीय प्रभाव भी उसमें काफी है। वह स्वयं समाजवादी विचारों से प्रभावित था। उसने प्रायः २० नाटक लिखे जिनमें सबसे अधिक प्रशंसा "मीजो एल दोतोर" (१९०३) और "ला ग्रिंगा" को मिली है।

वर्तमानवादी यथार्थ शैली के साहित्यिकों में अग्रणी पेरू का रहने वाला मनुएल गोन्जालेज प्रादा[2] और क्यूबा का जोजे मार्ती[3] थे। प्रादा, पेरू के विचार क्षेत्र का नेता था और साहित्य में भी वह शक्तिमान आलोचक हो गया है। उसने रुढ़िवादिता पर गहरा आघात किया और राजनीतिक तथा धार्मिक व्यवस्थाओं पर उसने निर्भीक और निर्दय चोट की। कोई शक्ति उसे उसके मार्ग से हटा न सकती थी। न उसे धन का लालच जीत सकता था न दण्ड का भय। वह देश के तरुणों की नवचेतना के क्षेत्र में प्रेरणा बन गया। गद्य की उसकी शैली नितान्त प्रखर थी। वह बड़ी ऊँची कोटि का कवि था। उसने छन्द को कुछ नए रूप और काव्य की भाषा को नए शब्द दिये। जोजे मार्ती क्यूबा की आजादी का पहला स्तम्भ था। अत्याचार के प्रति घृणा और समकालीन व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह उसकी कृतियों को गति प्रदान करते थे। दो-दो बार वह देश से निर्वासित कर स्पेन भेज दिया गया। फिर न्यूयार्क में रहकर वह क्यूबा की सेवा में तत्पर हो गया। १८९२ में उसने एक क्रांतिकारी दल का निर्माण किया। वह लड़ते हुए मारा गया। क्यूबा का तो वह राष्ट्रीय हिरो था। उसका साहित्यिक प्रभाव उसके राजनीतिक प्रभाव से भी ऊँचा था। वह अमेरिका के नितान्त मौलिक लेखकों में से था। उसकी शैली में गजब की मर्म-स्पर्शिता और असाधारण शालीनता थी।

रूबेन दारियो[4] का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। वह स्पेनी अमेरिका के

---

१. Florencio Sanchez (१८७५-१९१०); २. Manuel Gonzalez Prada (१८४८-१९१८); ३. Jose Marti (१८५३-९५); ४. Ruben Dario (१८६७-१९१६)

कवियों में सबसे महान् था। वहाँ का वही पहला पेशेवर लेखक भी था। अपनी कृति "आजूरे" (१८८८) द्वारा उसने, वर्तमानवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया। और "प्रेजाज प्रोफानाज" (१८९६) द्वारा उसकी परिणति की। स्पेन और स्पेनी अमेरिका दोनों पर उसका काफी गहरा प्रभाव पड़ा। उसकी प्रतिभा असामान्य थी और छन्द की दिशा में भी उसने कुछ नए प्रयोग किये। "जीवन और आशा के गीत" (१९०५) में उसकी कविता नितान्त सरल और अद्भुत सुन्दर बन पड़ी है। उसने "यांकी" साम्राज्यवाद का प्रबल विरोध किया। वह उत्पन्न तो दूर के नीकारागुआ में हुआ था परन्तु घूमता यूरोप और उत्तर अमेरिका में रहा।

स्पेनी अमेरिका के गद्यकारों में उरूगुए के जोजे एन्रिक रोदो[१] का स्थान बड़ा ऊँचा है। वह निबन्धकार और दार्शनिक था। उसने अपने बाद की पीढ़ी पर विचारों से गहरा प्रभाव डाला। उसका प्रधान ग्रन्थ "आरिएल" था। उसकी शैली प्रांजल और प्रभावशाली है। वह स्पेनी अमेरिका का सबसे बड़ा निबन्धकार माना जाता है। उसने चिन्तन के अतिरिक्त साहित्यिक समीक्षा में भी निबन्ध लिखे। उसके निबन्धों की भाषा बड़ी अलंकृत है।

वर्तमानवाद साहित्य के प्रधान स्पेनी निर्माताओं में ही रूफिनी बलांको फोम्बोना[२] भी था। वह उपन्यासकार और लेखक था। उसने वेनेजुएला के समाज पर अपना गहरा प्रभाव डाला। वह अत्याचार तथा राजनीतिक असभ्यता का प्रबल विरोधी था और अपना अधिकतर जीवन उसे प्रवास में ही बिताना पड़ा। उसकी शैली का भी काफी अनुकरण हुआ। उसका उपन्यास "केन्तोज अमेरिकानोज" (१९०४) में वेनेजुएला की राजनीतिक समस्याओं का अच्छा प्रतिबिम्ब मिलता है।

स्पेनी अमेरिका के उत्तर वर्तमानवादी साहित्यिकों में प्रधान आर्जेन्टिना के मानुएल गाल्वेज[३] और रिकार्दो गिराल्दिज[४] उरुगुए के होरासिओ किंरोगा[५], मैक्सिको के मार्यानो आजुएला[६]. क्यूबा के कार्लोस लोवेहरा[७], कोलम्बिया के जोजे उस्तासिओ रिवेरा[८] और वेनेजुएला के रोमूलो गाले गोस[९] गिने जाते हैं। इन्होंने अपने-अपने देश में उपन्यास के क्षेत्र में काफी नाम कमाया। गाल्वेज ने आर्जेन्टिना के जीवन को अपनी कहानियों और उपन्यासों में चित्रित किया। उसने अपने उपन्यासों में वेश्या से लेकर कैथोलिक

---

१. Jose Enrique Rodo (१८७२-१९१७); २. Rufino Blanco Fombona (१८७४-१९४५); ३. Manuel Galvez (ज० १८८२); ४. Ricardo Guiraldes (१८८६-१९२७); ५. Horacio Quiroga (१८७८-१९३७); ६. Mariano Azueela (ज० १८७३); ७. Carlos Loveira (१८८२-१९२८); ८. Jose Eustacio Rivera (१८८९-१९२८); ९. Romulo Gallegos (ज० १८८४)

मिशन तक का अंकन किया है। उसका सर्वोत्तम उपन्यास "नार्मल स्कूल की शिक्षिका" है। किरोगा स्पेनी अमेरिका का सुन्दरतम कहानीकार माना जाता है। उसकी तुलना पो और मोपासाँ के साथ की जाती है। वर्णन की दृष्टि से उसकी "सोलिटेयर", "सिर कटी मुर्गी" और "किराये के हाथ" नामक कहानियाँ उसकी कृतियों में सुन्दरतम हैं। आजुएला ने वैद्य का पेशा करते हुए भी साहित्य में बड़ा नाम कमाया। उसकी प्रारंभिक कृतियों से ही सर्वहारा वर्ग के प्रति उसका दायित्व प्रकट हो गया। उसने मैक्सिको की क्रांति संबंधी उपन्यास भी अनेक लिखे। अधिकतर वे मैक्सिको नगर के निचले स्तर के लोगों का अंकन करते हैं।

"लोस द अबाजो" (१९१५) अनेक समीक्षकों की दृष्टि में उसकी सफलतम कृति है। लोविहरा क्यूबा का सबसे महान् उपन्यासकार है। वह समाज का प्रबल आलोचक है। उसने अपने देश के सर्वहाराओं की स्थिति सुधारने में जीतोड़ परिश्रम किया। अपने उपन्यास "अमर" में उसने तलाक के कानून की पुकार की। उसका अंतिम उपन्यास "जुआन" उसकी सबसे सुन्दर कृति है। वह असाधारण यथार्थवादी है और उसने अपनी कृतियों में सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है। उसके चरित्र क्यूबा के जीवन से जैसे सीधे ले लिये गये हैं। उसने साहित्य के निर्माण में सौंदर्य से अधिक सत्य को महत्त्व दिया। रिवेरा की सुन्दरतम रचना "वोरतेक्स" है। उसमें उसने कोलम्बिया के फैले मैदानों और जंगलों का चित्र खींचा। उसके चरित्रों के चित्रण ने रबड़ उत्पन्न करने वालों के पक्ष में संसार को जीत लिया। उनकी दयनीय स्थिति को उसने खोलकर रख दिया और उनको सताने वालों की स्वार्थपरता पर घने आघात किये। रिवेरा ने अपनी कविताओं का भी एक संग्रह प्रकाशित किया था। गोलेगोस अपने उपन्यास "दोयां बर्बर" (१९२९) द्वारा जगत्-प्रसिद्ध हुआ। उसके माध्यम से वेनेजुएला का जीवन संसार के साहित्य में मूर्त्त हुआ। उसकी इस कृति में सभ्यता और बर्बरता के संघर्ष का अंकन है।

चिली के साहित्यिक जीवन में लुसिला गोदोय अल्कायागा[1] ने भी पर्याप्त यश अर्जित किया। उसका कवि नाम गाब्रियेला मिस्त्रलथा। गाब्रियेला उच्चकोटि की कवियित्री है और निचले वर्ग के पक्ष में अधिकतर रचनाएँ करती है। उसके आकर्षण के विशेष केन्द्र माँ और बच्चे भी हैं। उसकी कविताओं में बड़ी सादगी, गेयता और भावुकता है। मृत्यु संबंधी सॉनेटों ने उसे पर्याप्त यश दिया। १९४५ में उसे नोबुल पुरस्कार मिला।

वर्तमानवाद काव्य का निकटतम विकास एक नई दिशा में हुआ। जिसे सावधि फ्रेंच लिरिककारों से प्रभावित कवि "शुद्ध काव्य" कहते हैं। इस क्षेत्र के कवियों में टेकनीक की मौलिकता का विशेष पक्षपात है। उन्होंने अधिकतर तुकान्त छन्द का त्याग कर अतु-

---

१. Lucila Godoy Alcayaga (ज० १८८९) or Gabrielamistral

कान्त छन्द का प्रयोग किया है और उस दिशा में अनेक नयी शैलियाँ चलाई हैं। उनकी कविता (गद्य भी) सरल होती हुई भी अनेक नयी प्रतीकों से भरी होती है। और उनकी उपमाएँ सर्वथा विचित्र। स्पेनी अमेरिका में इस क्षेत्र के कवियों में प्रधान मैक्सिको के तोरेसबोदेत[1] के पद्य और गद्य दोनों स्पेनी अमेरिकी साहित्य की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों के साथ ही उसके निजी विकास के भी प्रमाण हैं। उसकी शैली में सरल से सरल से लेकर नितान्त अवचेतन 'सुपर रियलिज्म' तक का विकास प्रस्तुत है। पहली स्थिति के द्योतक उसके "गीत" (१९२२) हैं और दूसरी का उसका "निर्वासन" (१९३०)। उसकी सुन्दरतम कृतियाँ नितान्त कवित्वपूर्ण गद्य में हैं। उसकी शैली में गजब की साहित्यिक शालीनता है। नेरूदा[2] का प्राकृत नाम नेफ़ताली रेयस है। वह आज के स्पेनी-अमेरिकी तरुण कवियों में सबसे प्रतिभाशाली है। उसके प्रारंभिक संग्रह "दावत का गीत"—ने ही उसकी गहरी काव्यानुभूति का परिचय दिया था, यद्यपि उसकी प्रतिभा की प्रतिष्ठा एकान्त वर्तमानवादी कृति "क्रैपुस्कुलम्" से हुई। उससे उसकी मेधा की गहराई का परिचय मिला। १९२७ से जो वह राजनीतिक दौत्य के प्रसंग में देश-देश घूमता रहा है उससे उसका कृतित्व और भी चमक उठा है। पहले उसकी कविताओं में एक आत्मगत निष्ठा थी और रोमांटिक प्रवृत्ति से बोझिल निराशा का अंकन होता था। परन्तु आज नेरूदा संसार के जन कवियों में अग्रणी है। राजनीतिक स्वार्थपरता को उसने बहुत पास से देखा है। और उसके विरुद्ध उसकी लेखनी ने बगावत की है। उसका स्वर आज सर्वहारा वर्ग के थके नथुनों में प्राण फूंक रहा है। वह साम्यवादी यथार्थवादी है और उसकी कविताएँ निरन्तर 'प्रोलोतारिएत' के अधिकारों तथा शांति के पथ में मुखरित हो रही हैं। उसकी अनेक कविताएँ आज देश-देश के मजदूरों और उनके अधिकारों के लिए लड़ने वालों की जबान पर हैं। परन्तु स्टालिनग्राड वाली कविता तो नितान्त असाधारण है। उसमें अनुपम शक्ति और गीत है।

---

१. Jaime Torres Bodet (ज० १९०२); २. Pablo Neruda (Neftali Reyes ज० १९०४)

२५. स्वीड साहित्य

: १ :

मध्यकालीन साहित्य बाइबिल के अनुवाद

स्वीडन में लिपि का पर्याप्त प्रयोग प्राचीन काल से ही होने लगा था। वहां ८०० ई० से भी पूर्व के अभिलेख मिले हैं। इनसे ज्ञात होता है कि वहाँ लिरिक और वीर काव्य तभी लिखे जा चुके थे। नार्वे और आइसलैंड की भाँति "एद्दा" साहित्य-सा भी कुछ प्रस्तुत हो चुका था। ११वीं सदी के आरम्भ में ईसाई धर्म के प्रचार के बाद वहाँ का वह साहित्यनष्ट कर दिया गया। प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य प्रान्तीय न्यायालयों के कानून से सम्बन्ध रखता है।

१३ वीं सदी तक स्वीडन का दक्षिणी और पश्चिमी यूरोप से सम्बन्ध स्थापित हो चुका था और उसके विद्यार्थी पेरिस यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगे थे। मध्यकालीन साहित्य की विख्यात साहित्यिकारिणी सन्त बर्गिता[१] थी। उसके प्रवचन यूरोप में लिखे-पढ़े जाने लगे और उसका वादस्तेना का मठ शिक्षा का केन्द्र बन गया। मध्यकालीन धर्मेतर साहित्य अधिकतर छंदोबद्ध इतिहास था। तब की कुछ कविताएँ, बैलेड और लोकगीत मिली हैं।

१५२७ में स्विडन प्रोटेस्टैंट संप्रदाय का हिमायती होने से चर्च की संरक्षा से अलग हो गया जिससे उसकी शिक्षा को कुछ क्षति हुई। स्वीड ओलौस पेत्री[२] लूथर[३] का शिष्य था। उसने तत्कालीन स्वीड साहित्य को अपनी रचनाओं से पुष्ट किया। उसके प्रवचनों की शैली अत्यन्त प्रौढ़ है। बाइबिल की "नई पोथी" का उसका अनुवाद इतना सुन्दर हुआ कि पेत्री "स्वीड गद्य का जनक" कहलाने लगा। १७ वीं सदी में जो स्विडन में एक प्रकार का पुनर्जागरण हुआ उससे उस देश के साहित्य का बड़ा लाभ हुआ। १४७७ में ही स्थापित "उपसाला" यूनिवर्सिटी[४] पहले केवल पुरोहितों की संख्या थी जो १७ वीं सदी में अब गुस्तवस अदोल्फस[५] के प्रयत्न से वास्तविक यूनिवर्सिटी बनी और आज भी अपनी बौद्धिक क्रियाशीलता के लिए विख्यात है।

स्विडन का पहला लिरिक कवि लार्स विवालियस[६] था। वह घुमक्कड़ था जो बिना रुपये-पैसे के यूरोप में फिरा करता था। एकाध बार तो उसे कैद भी भुगतनी पड़ी। उसने प्रकृति और पर्यटन सम्बन्धी कुछ बड़ी सुन्दर कविताएँ लिखीं। वैसी कविताएँ स्विडन में तब तक नहीं लिखीं गई थीं। वे बड़ी लोकप्रिय हुईं। अन्य यूरोपीय देशों की ही भाँति स्विडन में भी ड्रामा पहले बाइबिल के दृश्यों के प्रकाशन तक ही सीमित था।

---

१. St. Birgitta; २. Olaus Petri; ३. Luther; ४. Uppsala University; ५. Gustavus Adolphus; ६. Lars Wivallius (१६०५-६९)

जार्ज स्टियर्नहिएल्म[१] ने प्राचीन परंपरा में अपना प्रसिद्ध काव्य "हरक्यूलिज" १६४८ में लिखा जो १६५८ में प्रकाशित हुआ। जार्ज उस काल का प्रतिनिधि लेखक माना जाता है। उसके दो शिष्यों—सामुएल कोलंबस[२] और उर्बान ह्यिार्ने[३] ने भी क्रमशः "ओदी सतिकी" और ट्रैजेडी "रोजीमुण्डा" लिखकर साहित्य को गति दी। साहित्य में स्टियर्नहिएल्म का उत्तराधिकारी वस्तुतः हाक्विन स्पेगेल[४] था जिसने "गुदज वर्क ओख ह्वीला" लिखा। अब इटैलिन साहित्य से मॉडल चुने जाने लगे थे और ये रोसार्न्ड[५] के आधार पर स्कोगेकार बार्गबो[६] ने अपनी श्रृंगारिक कविताओं का संग्रह "वेनेरीद" (१६८०) प्रकाशित किया। मध्यवर्गीय समाज के कवि जोहान रूनियस[७] ने विवाह और मृत्यु पर कुछ बड़ी मार्मिक कविताएँ लिखीं। धार्मिक कविताओं में मुख्य बाइबिल की "स्तोत्रपुस्तक" थी जिसे विशप जेस्पर स्वेड्बर्ग[८] ने सम्पादित किया और जो १८१९ तक स्विडन के गिरजाघरों में चलती रही थी। १७ वीं सदी में पहली बार वहाँ पेशेवर अभिनेता और थ्येटर हुए। स्वीडी नाट्य-कारों के रचे नाटक अब स्विडन में खेले जाने लगे।

: २ :

अठारहवीं सदी में विज्ञान और साहित्य सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ हुईं। स्वतन्त्रता का युग (१७१८-७२) स्विडन के लिये स्वर्ण-युग सा था जब देश में अनेक पंडितों का प्रादुर्भाव हुआ। गणित और भौतिक विज्ञान में सैमुएल क्लिगेंतस्त्येर्ना[९] गणितज्ञ ज्योतिषी आन्डर्स सल्सियस[१०] रासायनिक तोर्बर्न बर्ग मान[११] आक्सीजन का अन्वेषक रासा-यनिक कार्ल विलहेल्म शीले[१२] रहस्यवादी हो जाने के पूर्व शुद्ध वैज्ञानिक एमानुएल स्विडे-नबोर्ग[१३] तब के वैज्ञानिक जगत में विख्यात हुए।

साहित्य के क्षेत्र में कार्लवान लिने[१४] भाषा-शास्त्री था और स्वेन लागरब्रिंग[१५] विख्यात इतिहासकार। फ्रेंच और अंग्रेजी साहित्यक प्रवृत्तियों ने स्वीडी साहित्य को भर-पूर प्रभावित किया। स्विडन का विशिष्ट साहित्यकार तब ओलोफ-वान-दालिन[१६] था।

---

१. Georg Stiernhielm (ज० १५९८); २. Samuel Columbus (१६४२-१६७९); ३. Urban Hiarne (१६४१-१७२४); ४. Haqvin Spegel (१६४५-१७१४); ५. Ronsard; ६. Skogekar Bargbo; ७. Johan Runius (१६७९-१७१३); ८. Bishop Jesper Svedberg (१६५३-१७३५); ९. Samuel Klingenst Jerna (१६९८-१७६५); १०. Anders Celsivs (१७०१-४४); ११. Torbern Bergman (१७३५-८४); १२. Carl Wilhelm Scheele (१७४२-८६); १३. Emanuel Swedenborg (१६८८-१७७२); १४. Carl Von Linne (१७०७-७८); १५. Sven Lagerbring (१७०७-८७); १६. Olof Von Dalin

उसने ऐडिसन के "स्पेक्टेटर" के अनुकरण में अपना साप्ताहिक "आर्गुस" (१७३२) निकाला और वोल्तेयर के "हेन्रियाद" से प्रेरणा पाकर "स्वेन्स्का" "फ्रीहेतेन" (स्वीडी स्वाधीनता) नामक "एपिक" लिखा। उसका "सागा ओम हास्तेन" लोकजीवन पर अवलम्बित रूपक है। वह राजकवि भी था और उसने अनेक किताबें लिखीं। उसके साप्ताहिक ने स्वीडन के साहित्यिक जीवन में एक क्रांति उपस्थित करदी। सदी की प्रतिनिधि कवियत्री रूसो से प्रभावत और स्वीडन में फ्रेंच प्रवृत्तियों की पोषिका हेद्विग चारलोती नोदेनफिलख्त[1] हुई। स्वीड भाषा के कुशल कवि काउण्ट गुस्ताफ फ्रेड्रिक गिलेन बोर्ग[2] और काउण्ट गुस्ताफ फिलिप[3] उसी महिला कवि के अनुयायी और भक्त थे। उनके बाद दूसरा प्रसिद्ध साहित्यकार केलग्रेन[4], जिसनै "स्टाक होल्सत्योस्तेन" निकाला, हुआ। फिर दो विशिष्ट कवि-वालेनबर्ग[5] और बेलमान[6] साहित्य क्षेत्र में उतरे। कवि जैकोब् वालेनबर्ग ने चीन की यात्रा का आत्मकथात्मक वृत्तान्त लिखा। बेलमान और बालेनबर्ग, स्विडन के पहले हास्यकार थे। कार्ल माइकेल बेलमान उस देश के प्रधान लिरिककारों में हो गया है। वह मध्यवर्ग का कवि था, उस वर्ग का प्रिय गायक।

गुस्ताव-युग के आरम्भ में दो विशिष्ट कवि हुए "स्कोर्दार्नी" का रचयिता जोहान गाब्रिएल ओक्सेन्स्तिएर्ना[7] और गुदमुन्ड जोरन आदलरबेथ[8]। इस दूसरे ने राजकीय रंगमंच के लिए अनेक नाटक लिखे। उसी काल कोलग्रेन ने, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, प्रभूत रूप से सुरुचि के साथ साहित्य का संस्कार शुरू किया। उसने देश प्रेम की कविताएँ भी लिखीं। परन्तु फ्रांस के रूसो और जर्मनी के "तूफान और आग्रह, (स्तूर्म उण्ड द्रांग) का वास्तविक प्रतिनिधि स्वीडन में तोमातथोरिल्द[9] था। उसने "ग्रान्स्कारेन" (आलोचक) नाम की एक पत्रिका प्रकाशित करनी शुरू की। आलोचना सिद्धांतों पर उसका और केलग्रेन का काफी दिनों तक कथोपकथन चला जिससे उस दिशा में काफी चर्चा हुई। थोरिल्द को राजनीतिक कारणों से स्वदेश छोड़ जर्मनी की शरण लेनी पड़ी जहाँ वह प्रोफेसर हो गया। उस काल का वह विशिष्ट गद्यकार था। उस काल का, विशेषकर "तूफान और आग्रह आन्दोलन" का कवि बेंग्त लिदनर[10] था। थोरिल्द संसार को सुधारना चाहता था। उसके विपरीत लिदनर का जीवन के प्रतिरुख सर्वथा नकारात्मक था।

---

१. Hedvig Charlotte Nordenflycht (१७१८-६३); २. Count Gustaf Fredrik Gyllen Borg (१७०३१-१८०८); ३. Count Gustaf Philip Creutz (१७३१-८५); ४. Kellgren; ५. Jakob Wallenberg (१७४६-७८); ६. Karl Mikael Bellman (१७४०-९५); ७. Johan Gabriel Oxenstierna (१७५०-१८१८); ८. Gudmund Joran Adlerbeth (१७५१-१८१८); ९. Tomas Thorild (१७५९-१८०८); १०. Bengt Lidner (१७५७-९३)

उसके ओपेरा "मेदिया" (१७८४) में उस काल की कुछ सर्वोत्तम कविताएँ हैं। उसकी प्रसिद्ध कविता है, "इत्तेस्तो दोमेन" (अन्तिम निर्णय, १७८८) जो अन्य यूरोपीय साहित्यों के धार्मिक आन्दोलनों के अनुकूल थी।

उसी काल कार्ल गुस्ताफ आॅफ लियोपोल्द[1] ने भी अपनी दार्शनिक कविताएँ नाटक और व्यंग्य लिखे। आना मारिया लेनग्रेन[2] मध्यवर्गीय यथार्थवादी कविताओं के लिए देश में काफी विख्यात हुई। स्वीडी काव्यक्षेत्र में शिशु को पहली बार विषय बनाने वाला कवि फ्रांस माइकेल फ्रान्जेन[3] था।

पहला स्वीडी उपन्यास १७४२-४४ में प्रकाशित हुआ। उसका लेखक हेन्रिक मोर्क[4] था। परन्तु लोग विदेशी उपन्यासों को अधिक पसन्द करते थे। इससे उनका प्रचार विशेष नहीं हुआ। हाँ, नाटकों की रचना काफी हुई। स्विडन का रंगमंच जर्मन और विशेषत: फ्रेंच प्रभाव से चमका फिर गुस्ताफ तृतीय की संरक्षा में वह बढ़ चला। तभी ओपेरा की भी प्रतिष्ठा हुई। जोहान ओलोफ वालिन[5] ने "रोमेन्टिक" प्रवृत्तियों का प्रचार किया। उस साहित्य प्रवृत्ति का प्रधान नायक अत्तरबोम[6] था जो शेलिंग[7] से प्रभावित था। उसी भावना से प्रेरित लोरेन्जो हेमरशोल्ड[8] ने स्विडन का पहला साहित्यिक इतिहास लिखा। वह काल स्विडन के साहित्य का स्वर्णयुग था। उसके प्रतिनिधि स्वरूप बोम ने अपने दो पौराणिक नाटक "आनन्द का द्वीप" और "नीला पक्षी" लिखे। उसी काल तेग्नेर[9] स्ताग्नेलियस[10] और गेइजेर[11] ने अपनी सुघड़ काव्य कृतियाँ प्रस्तुत कीं जिनकी गणना उस देश के साहित्य की अमर रचनाओं में की जाती है। एरिक स्योबर्ग[12] का कविनाम "वितालिस" था। वह रोमान्टिक आदर्शवादी था। वह काफी मानी था और यक्ष्मा का शिकार होकर भी लोगों की सहायता लेने से उसने इनकार कर दिया। गेइजेर को १८०३ में स्वीडी अकेडेमी का उसके वीरकाव्य पर पुरस्कार मिला। वह इंगलैंड भी कुछ काल जाकर रहा था और उसका उस पर खासा असर पड़ा था। उसने प्राचीन विषयों पर कुछ बड़ी मधुर कविताएँ लिखीं। वह उपसाला विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्यापक नियुक्त हुआ और रोमान्टिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक विवेचना की। आचार्य की हैसियत से वह बड़ा प्रभावशाली हो गया। परन्तु उस युग का महान कवि तेग्नेर[13] था। वह आन्दोलनों में रहता हुआ भी स्वतन्त्र रूप से कविताएँ लिखता था। उसकी कविताओं को राजनीतिक

---

१. Carl Gustaf af Leopold (१७५९-१८२९); २. Anna Maria Lenngren (१७५५-१८१७); ३. Frans Michael Franzen (१७७२-१८४७); ४. Henrik Mork (१७१४-६३); ५. Johan Olof Wallin; ६. Atterbom; ७. Schelling; ८. Lorenzo Hammarskiold (१७८५-१८२७); ९. Tegner; १०. Stagnelius; ११. Geijer; १२. Eric Stoberg (Vitalis) (१७९४-१८२८); १३. Tegner

पृष्ठभूमि से वस्तुतः प्रेरणा मिली। स्विडन पर रूस की विजय पर उसने अपनी प्रसिद्ध कविता "सेना का युद्धगीत" (१८०८) लिखा। उसका राजनीतिक करुणस्रोत उससे भी अधिक "देत एविगा" (अन्तहीन, १८१०) और "स्वेआ" (१८११) में फूटा और इन्हीं के कारण वह विशेषतः स्विडन का राष्ट्रीय कवि कहलाने लगा। उसकी सबसे विशिष्ट कृति "फ्रितिओफ्स सागा" (१८२०-५) है।

आल्मकिस्त[1] था तो अत्तरबोम का समकालीन परन्तु उसकी कृतियों का प्रकाशन पीछे हुआ। फ्रेंच उदारवादी आन्दोलन से प्रभावित उसने अनेक लोकप्रिय निबन्ध और कहानियाँ श्रमिकों के पक्ष में लिखीं। इस प्रकार वह यथार्थवादी आन्दोलन का अग्रदूत बन गया और उस दिशा में निरंतर बढ़ता हुआ प्रायः अराजक क्रान्तिकारी होगया। वह उस काल का सर्वोत्तम उपन्यासकार तो था ही, आदरणीय नाटककार भी था। उसके पहले ओगुस्त ब्लांश[2] और फ्रांस हर्डबर्ग[3] ने स्वीडी भाषा में कुछ नाटक लिखे थे। आल्म किस्त के बाद दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यासकार फ्रेडिका ब्रेमेर[4] था।

धीरे-धीरे स्कैन्डिनेविया (नार्वे, स्विडेन, डेन्मार्क) के देशों में पारस्परिक एकता का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। उस आन्दोलन के कवि आस्कर पात्रिक स्टूर्जेन्बेकेर[5] (उपनाम ओर्वारआद) कार्ल विलहेल्म आगुस्त स्त्रान्दबर्ग[6] (उपनाम तालिस क्वालिस) और गुन्नार वेनेरबर्ग[7] थे। वैसे उस काल का सबसे विशिष्ट कवि जोहनलुड्विग रुनेबर्ग[8] था, यद्यपि उसका अधिक सम्बन्ध फिन्लैंड के साहित्य से है।

सही अर्थ में महान कृतिकार स्विडन में १८७० के बाद हुए। विक्तर रिदबर्ग[9] और कार्ल स्नोइल्स्की[10] उस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। रिदबर्ग उदारवादी था परन्तु उसकी कविता रोमान्टिक आदर्शवादी है, रहस्यवादी भावधारा लिए हुए। उसमें रूप और टेकनीक का आकर्षण और आदर्शवाद की दार्शनिकता है। वह निम्नवर्गीय था। उसके विपरीत स्नोइल्स्की संभ्रांतकुलीय था यद्यपि उदारवादी आन्दोलन को समझने का उसने निश्चय प्रयत्न किया। अपनी कविताएँ उसने आनन्द विभोर होकर लिखीं। "स्वेन्स्का बिल्डर" (स्वीडी चित्र) में उसने तीन सदियों के बिखरे चित्र अंकित किए। रिदबर्ग निस्संदेह उससे विशिष्ट कवि था। पर जहाँ तक प्रभाव का सम्बन्ध है साहित्य के

---

१. Almquist; २. August Blanche (१८११-६८); ३. Frans Hedberg (१८२८-१९०८); ४. Fredrika Bremer; ५. Oscar Patrick Sturzen-Becker (Orvar Odd १८११-६९); ६. Carl Vilhenlm August Strandberg (Talis Qualis १८१८-७७); ७. Gunnar Wennerberg (१८१७-१९०१); ८. Johan Lodvig Runeberg; ९. Viktor Rydberg; १०. Carl Snoilsky (१८४१-१९०३)

इतिहास में तत्कालीन आन्दोलन प्रकृतिवाद के प्रतिनिधि-स्ट्रिन्डबर्ग[१] का महत्व अधिक है। उस आन्दोलन के अन्य प्रतिनिधि हाइडेन्स्ताम,[२] फ्रोदिग,[३] सेल्मा लागरलोफ[४] आदि हैं। स्ट्रिन्डबर्ग की रचनाएँ १९ वीं सदी के साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण देन मानी जाती हैं बड़ी जल्दी वह उस दार्शनिक आदर्शवाद से मुक्त हो गया था जो उस काल स्वीडी यूनिवर्सिटियों को अपने सिद्धांतों से जकड़े हुए था। उसने अपने पहले वर्तमानकालीन ड्रामा "मास्टर ओलोफ" (१८७८) में अपने क्रांतिकारी यथार्थवादी उत्साह की घोषणा की। "मास्टर ओलोफ" की ही भाँति उसका "रोदा रूम्मेत" (लाल कमरा, १८७९) स्वीडी साहित्य का पहला महान सामाजिक उपन्यास था। वह फिर भी समाजद्रोही था। उसने "गिफ्ताज" (विवाहित, १८८४) में नारी-स्वतन्त्रता का विरोध किया। अपने दृष्टिकोण के कारण उसे स्वदेश छोड़कर जाना पड़ा। १८८७ में उसने देहाती जीवन व्यक्त करते हुए अपनी भाषा का सुन्दरतम उपन्यास "हेम्सोबोर्ना" (हेम्सो के निवासी) लिखा। उसका "फ्रोकेन जुली" सारे यूरोप में खेला गया। उसने अनेक रहस्यवादी ड्रामा भी लिखे। अपनी रचना "स्वर्ता फानोर" (स्याह झंडे) १९०४ में उसने अपने पुराने मित्रों पर आघात किया। अपने अन्तिम विशिष्ट लिरिक ड्रामा, "स्तोरा लान्दस्वागेन" (प्रशस्त राजमार्ग, १९०९) में उसने आत्मविरोधी जीवन का हल ढूँढ़ने का प्रयत्न किया।

स्ट्रिन्डबर्ग के यथार्थवादी युग का प्रसार १८७९ से १८८८ तक है। उस काल के साहित्यिकों में दो प्रधान नारियाँ एन-चारलोटी-एडग्रेन[५] और विक्टोरिया बेनेडिक्टसन[६] हैं। इनमें से पहली ने ड्रामा और कहानियाँ लिखीं और वह इब्सन तथा स्ट्रिन्डबर्ग से प्रभावित थी। दूसरी ने कहानियाँ और उपन्यास लिखे। उसका साहित्यनाम अर्न्स्ट आलग्रेन[७] था। उसका जीवन दुःखमय था। इसलिए उसने आत्महत्या कर ली। उस दल का सबसे प्रतिभावान कवि ओला आन्सन[८] था। उसने अच्छी कविताओं के अनेक संग्रह प्रकाशित किए जिनसे उसे समर्थ लिरिककार की प्रतिष्ठा मिली। अल्बर्ट उलरिक बाथ[९] ने भी अपनी लोकप्रिय कविताओं द्वारा यश कमाया। गुस्ताफ आफ गेइजरस्टाम[१०] यथार्थवादी उपन्यासों और नाटकों का लोकप्रिय रचयिता था।

तोर हेडबर्ग[११] ने पहले कुछ यथार्थवादी उपन्यास लिखे। फिर इब्सन की प्रेरणा से यथार्थवादी नाटक। उसने कुछ प्रतीकवादी कविताएँ भी लिखीं। आस्कर लेवर्तीन[१२]

---

१. Strindberg; २. Heidenstam; ३. Froding; ४ Selma Lagerlof; ५. Anne-Charlotte Edgren (१८४९-९२); ६. Victoria Benedictson (१८५०-८८); ७. Ernst Ahlgren; ८. Ola Hanson (१८६०-१९२५); ९. Albert Ulrik Baath (१८५३-१९१२); १०. Gustaf af Geijerstam (१८५८-१९०९); ११. Tor Hedberg; १२ Oscar Levertin (१८६२-१९०६)

ने हेइदेन्स्ताम[1] के साथ नए रोमान्टिक आन्दोलन का आरम्भ किया। उसने अपने "लिजें-न्डेर-ओसविजोर" (ख्यातें और बैलेड) में रोमांन्टिक परंपरा का निर्वाह किया । और "न्या दिक्तर" (नई कविताएँ, १८९४) में अभिजात व्यक्तिवाद की ओर वह झुका । उसकी कविताओं में एकाकीपन का चित्रण है। वह विद्वान और आलोचक था। स्वीडी संस्कृति का वह प्रेमी था। परन्तु युग के साहित्य का नेतृत्व वर्नेर फान हाइडेन्स्टाम ने किया। वर्नेर अभिजात कुलीय था। स्वास्थ्य सुधारने के लिए उसे विदेश जाना पड़ा। दक्षिण और पूर्व में वह फिरता और उधर की संस्कृति का अध्ययन करता रहा। २९ वर्ष की आयु में उसने अपनी कविताओं का संग्रह "वालर्फात ओख वान्द्रिग्सार" (तीर्थयात्रा और पर्यटन के वर्ष) प्रकाशित किया उसने झट स्विडन के कवियों, आलोचकों और पाठकों के हृदय जीत लिए। सात वर्ष उसने "कविताएँ" प्रकाशित कीं। उसके पहले उसने "रेनेसांस" निबन्ध और आत्मकथा "हान्स आलिएन्स" (१८९२) लिख लिया था। उसने प्रकृतिवाद को पुराना और हेय कहकर उसके स्थान पर राष्ट्रवाद को प्रतिष्ठित किया। उसकी कविताओं ने स्विडन के अतीत के प्रति लोगों की सुप्त निष्ठा जगा दी।

हाइडेन्स्टाम की विशिष्ट गद्यकृतियाँ "कारोलिनेर्ना" हेलिगा ब्रिगितास "पिल्ग्रि-म्स्फार्द" और "फोल्कुंग्स्त्रादेत" थीं। उनके जरिए उसने चार्ल्स बारहवें और सन्त बिर्गित्ता[2] आदि के प्राचीन उदात्तचरितों को पत्थर की मूर्ति की भाँति कोर कर रख दिया। "क्लासिकल के प्रति उसकी प्रेरणा उसकी इस अतीत साधना में बड़ी सहायक हुई। उसने ओलेतारियन उसूलों को स्विडन के लिए घातक बताया। पीछे की ओर मुँह कर खड़े होने वाले राष्ट्रीय-तावादियों की यह सर्वत्र लचर दलील रही है। उसने स्ट्रिन्डबर्ग के साथ भी वादविवाद शुरू किया। और उसके विचारों के विरोध में अपने निबन्ध—सर्वहारावर्ग का ह्रास और पतन (१९११) लिखे। उसके बाद वह अपने पाठकों से केवल पद्य में बोला। १९१५ में उसने "न्या दिक्तेर" (नई कविताएँ) प्रकाशित कीं। इनके भाव गम्भीर हैं, रूप प्रौढ़ है, आवेग अंकन स्फटिक की भाँति स्पष्ट हैं। उसके बाद उसने केवल अपनी आत्मकथा लिखी जो उसकी मृत्यु के बाद छपी। हाइडेन्स्टाम को नोबुल पुरस्कार मिला।

सेल्मा लागेरलोफ[3] की प्रतिभा शालीन अतीत के अध्ययन से द्युतिमती हुई। उसने अतीत के अध्ययन में भौगोलिक सीमाएँ न बाँधीं। दक्षिणी स्विडन में वह कई वर्ष तक शिक्षिका रह चुकी थी। उसके बाद उसने अपना उपन्यास "गोस्ता बर्लिंग्ससागा" लिखा जिसे लेवर्तिन ने हाइडेन्स्टाम-लेवर्तिन परंपरा की पहली कृति मानी। उसमें कहानी कहने की क्षमता अनुपम थी। उसके उपन्यास ने पाठकों का मन मोह लिया। स्विडन का तो वह

---

१. Heidenstam (Verner Von Heidenstam १८५९-१९४०); २. Saint Birgitta; ३. Selma Lagerlof

सर्वप्रिय उपन्यास है ही, अब वह उसकी सीमाओं को लाँघ चुका है। तीस भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है और आज वह संसार के साहित्य का अंग है। इसी प्रकार उसने अपने दूसरे उपन्यास "चमत्कार" (१८९७) में इटली (सिसिली) के देहाती जीवन का सबल चित्र अंकित किया। इसी प्रकार "ईसा-शिशु" "खजाना" "जेरुसलेम" में उसने पूर्वात्य वातावरण में किसान और श्रद्धालु का चित्र खींचा। उसे भी नोबुल पुरस्कार मिला।

गुस्ताफ फ्रोदिंग[1] पर हाइडेन्स्टाम का गहरा प्रभाव पड़ा था। उसकी कविताओं का पहला संग्रह "गितार ओख दागरमोनिका" (१८९१) उसका प्रमाण है। लेवर्तीन[2] ने उसकी कविताओं को पसन्द नहीं किया, परन्तु जनसाधारण की वे बड़ी प्रिय बन गईं। उनमें काफी हास्य है। उसका दूसरा संग्रह "न्या दिक्तर" (१८९४) भी हास्य-प्रधान है परन्तु "स्ताक ओख फ्लिकर" में विषाद की धारा बही।

उपसाला सदा साहित्यिकों का केन्द्र रहा था। फ्रोदिंग ने स्वयं एक विद्यार्थी एरिक एक्सेल कार्लफेल्ट[3] को दिखाकर कहा था कि वह उसे कवित्व शक्ति में लाँघ जाएगा। एरिक कार्ल फेल्ट समर्थ कवि हुआ। उसके संग्रह "फ्रिदोलिन्स विजोर" और "फ्रिदोलिन्स लुस्तगार्द" किसान जीवन के सम्मोहक चित्रों को लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे और अपनी अमिट छाप छोड़ गए।

उस युग का अन्तिम विशिष्ट कृतिकार हाल्स्ट्राम[4] था। वह करुणा से भरा है और उसके चित्रण अधिकतर निराशाजनक हैं। वह बड़ी सहृदयता पूर्वक "विल्स्ना फाग्लर" (१८९४) और "एन गायल-हिस्टोरिया" (१८९५) में अभागों के चित्र अंकित करता है। उसके ड्रामा उपन्यासों के से ऊँचे नहीं, फिर भी काफी प्रशंसित हुए हैं। उनमें उसने अपनी स्वस्थ मानवता का परिचय दिया है। उसकी सबसे अधिक लोकप्रिय कृति "चार तत्व" (१९०४) है। उसमें प्रायः सेलमा लागरलोफ की कला से किसानों का जीवन अंकित हुआ है।

: ३ :

नयी कविता का उदय

१८८० और १९०० का साहित्य स्विडन के साहित्यक इतिहास में महान माना जाता है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि वह सदी के साथ ही समाप्त हो गया। वस्तुतः उसके अनेक विशिष्ट निर्माता बीसवीं सदी के पिछले दशक तक लिखते रहे हैं। कम से कम उन उन्नीसवीं सदी के पिछले दशकों में जिस लोक-साहित्य और किसान परंपरा का साहित्य में विकास हुआ वह मर न सकी। उस दृष्टिकोण ने स्विडन की संस्कृति

---

१. Gustaf Froding; २. Levertin; ३. Erik Axel Karlfeldt; ४. Per Hallstrom (१८६६)

का अनुसंधान कर लोक चेतना जगाई, नगर-नगर, गाँव-गाँव में संग्रहालय (म्यूजियम) स्थापित किए।

लोक-संस्कृति का एक प्रबल प्रतिनिधि कार्ल एरिक फोस्लुंड[1] हुआ जिसने श्रमिक-वर्ग के लिए एक विशिष्ट स्कूल की स्थापना की। उस वर्ग के अनेक प्रतिनिधि वहां से कवि और उपन्यासकार होकर निकले। फोस्लुंड का उपन्यास "स्टोरगार्डन" जो कि रूसो के सिद्धांतों पर आधारित था, काफी उत्साह से पढ़ा गया। बाद में उसने अपना समय पुरातत्व के अनुसंधान में लगाया। कार्ल गुस्ताव ओसियननिल्सन[2] फ्रोदिंग और अंग्रेज कवियों द्वारा प्रभावित है और अपनी कविताओं में सामाजिक सहानुभूति के चित्र प्रस्तुत करता है। उससे कहीं अधिक राजनीतिक रुचि का कवि तूरे नरमान[3] है परन्तु उसकी प्रेरणा विशेषतः यौन है, घोर शृंगारिक।

अनेक नए कवियों और उपन्यासकारों की प्रेरणा स्विडन की पिछली सदी के राष्ट्रवाद और राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना से उदासीन हो गई है। अनातोले फ्रांस[4] आस्कर वाइल्ड[5] हरमान बांग[6] से प्रभावित उनका दृष्टिकोण अधिकतर निराशा सूचक हो गया है। उस दल का एक प्रतिनिधि ह्यालमार सोदरबर्ग[7] है जिसकी प्रभाववादी टैकनीक और दुःशील नायकों ने आस्कर द्वितीय युग के स्वीडी पाठकों को व्यथित कर दिया था। ब्रो बर्गमान[8] ने अपनी कहानियों में जीवन के प्रति उसी दृष्टिकोण का अंकन किया है। परन्तु प्रधानतः वह लिरिककार है। धीरे-धीरे पिछले सालों में उसकी सहानुभूति ने एक नया रूप धारण किया है, मानवतावादी।

सोदरबर्ग, बर्गमान, विलहेल्म एकेलुंड[9] आंडर्स ओस्टर्लिंग[10] आदि सभी पिछले काल के कवियों ने अधिकतर देश के स्थानीय सौन्दर्य को ही अपनी विविध शैलियों से काव्य में व्यक्त किया। बात यह है कि जिस अभिजातीय व्यक्तिवाद का साहित्य में इस सदी के आरम्भ में उदय हुआ था वह चल न सका और फिर यथार्थवादी सामाजिक समस्याओं को साहित्य का विषय बनाना पड़ा। स्वेन लिदमान[11] जो उस व्यक्तिवाद का नेता था, धार्मिक साहित्य उत्पन्न करने लगा और व्यक्तिवाद सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध हुआ। उस पर पहली गहरी चोट अपनी कहानियों द्वारा अलबर्ट एंगस्त्रोम[12] ने की। उसने कृत्रिम मनोवैज्ञानिक परंपरा के विपरीत प्राकृतिक स्वस्थ यथार्थवाद का समर्थन किया

---

१. Karl Erik Forsslund (१८७२-१९४१); २. Karl Gustav Ossiannilsson (जन्म १८७५); ३. Ture Nerman (जन्म १८८६); ४. Anatole France; ५. Oscar Wilde; ६. Hermann Bang; ७. Hjalmar Soderberg; ८. Bo Bergman (जन्म १८६९); ९. Vilhelm Ekelund (जन्म १८८०); १०. Anders Osterling (जन्म १८८४); ११. Sven Lidman (जन्म १८८२); १२. Albert Engstrom

और किसानों तथा मछुओं के रंग-बिरंगे चित्र अपनी कृतियों में प्रस्तुत किये। ओलोफ होग्बर्ग[१] ने वही रुचि प्रारम्भिक लोक साहित्य में प्रदर्शित की। होग्बर्ग की ही भाँति उत्तरी स्वीडन के प्रतिनिधि साहित्यकार पेले मोलिन[२] और लुड्विग नोर्दस्त्रोम[३] भी थे। लुडविग के उपन्यासों की पृष्ठिभूमि सामाजिक है। पहले महासमर के बाद उसने सामाजिक रिपोर्ताज लिखे। ह्यालमार बर्गमान[४] ने मध्य स्विडन के जीवन के चित्र अपनी कृतियों में अंकित किये। बर्गमान में कल्पना की बड़ी शक्ति थी, उसकी शैली भी थोड़ी बहुत रोमान्टिक है। कई बार तो उसका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक होकर दोस्तोएवस्की[५] की याद दिलाने लगता है। उसके कुछ उपन्यास विनोद प्रधान हैं, कुछ विषाद प्रधान। बर्गमान नाटककार भी सुन्दर था और उस दिशा में तो केवल स्ट्रिन्डबर्ग ही उससे बड़ा कहा जा सकता है। उसने कुछ दिनों हालीवुड में फिल्मी सिनेरिओ भी लिखे। सीगफ्रिड सीवेर्त्स[६] भी उसी साहित्यिक दल का था और व्यक्तिवाद को छोड़ जीवन के सक्रिय पहलुओं का अंकन करने लगा था। उसकी कृतियों ने समसामयिक जीवन का चित्रण अपना आदर्श बनाया। उसकी प्रतिनिधि रचना "एल्डेन्स आर्क्सकेन" (१९१६) प्रथम महासमर के बीच लिखी गई थी। उसकी रचनाओं में सबसे सुन्दर पारिवारिक उपन्यास 'सेलाम्बस' (१९२०) है। उसमें बड़ी चतुराई से आज के विलासी धुनवादी स्वार्थतः व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का उन्मूलन किया गया है। उसने बड़ी सुन्दर शैली में अनेक असामान्य कहानियाँ भी लिखीं। पर अनेक बार वह यथार्थ को इतना प्रतीक बना देता है कि उसकी शैली से "कला के लिए कला" की ध्वनि निकलने लगती है। समसामयिक समस्याओं ने उससे कहीं अधिक गुस्ताफ हेलस्त्रोम[७] को आकृष्ट किया। उसके उपन्यासों में सुन्दरतम् "लेस बनाने वाले लेकहोल्म का एक विचार" है (१९२७) जिसमें उसने स्वीडन जनसंख्या पर विचार किया। सेलमा लागरलोफ[८] के निधन के बाद स्वीडी एकेडमी में उसका स्थान एलिन वाग्नर[९] को मिला। वह पहले जर्नलिस्ट थी। उसकी नायिकाएँ अधिकतर आधुनिक नारियाँ हुईं जो स्वतन्त्र रूप से अपना खर्च चलाती हैं। स्वावलम्बन उनका मूल मन्त्र है। उसने नारी-आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और अपनी कृति "पेन्स्काफ्तेर" (क़लम) में उसने स्विडन में नारी-स्वतन्त्रता के प्रारम्भिक वर्षों का अंकन किया। उसके उपन्यास सुधार के द्योतक हैं और समाज के जीवन का अच्छा विश्लेषण करते हैं। "आसा-हन्न"

---

१. Olof Hogberg (१८५५-१९३२); २. Pelle Molin; ३. Ludving Nordstrom; ४. Hjalmar Bergman; ५. Dostoievsky; ६. Sigfrid Siwertz (जन्म १८८२); ७. Gustaf Hellstrom (जन्म १८८२); ८. Selma Lagerlof; ९. Elin (जन्म १८८२)

(१९१८) उसकी सफल कृति है। मारिका स्टीअर्नस्टेड[1] ने उच्चवर्गीय जीवन का अपने उपन्यासों में अंकन किया है। उसका उपन्यास "उल्लाबेल्ला" (१९२२), जो युवतियों का वर्णन करता है, देश में काफी लोकप्रिय हुआ। नारी-उपन्यासकारों में उसका अपना स्थान है। गेर्ट्रुड लिल्जा[2] मारिका से प्रायः १२ वर्ष छोटी है। कहानीकारों में उसका ऊँचा स्थान है और उसके उपन्यासों में "स्थानीय" पृष्ठभूमि अधिकाधिक चित्रित हुई है। उसने असफल व्यक्तियों का काफी सफल अंकन किया है। उसी की भाँति उसकी सहकारिणी अना-लेना-एल्गस्त्रोम[3] ने भी अपने समाज के निचले स्तर के चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस दिशा में उसके उपन्यास "कंगाल लोग" (१९१२) और "माताएँ" (१९१७) खासे सफल हुए हैं। स्वयं वह मध्यवर्ग की है, परन्तु उसकी सहृदयता निम्नवर्गीयों के प्रति है। इस प्रकार के चित्र-निरूपण में मार्टिन कोच[4] योग्यता और ज्ञान दोनों दृष्टियों से उससे बड़ा है। उसके चित्रण में रूसी साहित्यकारों की परख और पकड़ मूर्तिमान हो गई है। अपने "आर्वेतारे" (मजूर, १९१२) में उसने देश के साहित्य में पहली बार श्रमिकों के जीवन का सही अंकन किया है। उसकी सुन्दरतम रचना "भगवान का सुन्दर संसार" (१९१६) है। उसमें उसने निचले स्तर के लोगों की स्थिति का, उनके अनिवार्य अपराधों का समाजवादी दृष्टि से अद्भुत अंकन किया है। फाबियन मान्सोन[5] ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे और उनमें बढ़ते हुए जीवन को प्रतिबिम्बित किया। गुस्ताव-हेदन्विन्ड एरिक्सोन[6] उससे अधिक समर्थ कलाकार था और उसने मजूरों तथा गिरी स्थिति के लोगों का समर्थ चित्र खींचा। अलबर्ट विक्स्टेन[7] के आर्कटिक महासागर सम्बन्धी उपन्यास भी स्विडन में चाव से पढ़े जाते हैं।

प्रथम महासमर ने स्विडन के साहित्य पर भी स्वाभाविक ही गहरा प्रभाव डाला। परिणामतः समकालीन समस्याओं पर गहरा विचार होने लगा। लुण्ड यूनीवर्सिटी के दर्शन के प्रोफेसर हान्स लारसन[8] ने समसामयिक प्रश्नों पर अपने डायलॉग-उपन्यासों में विचार किया। उस युद्ध के बाद अनेक कवियों ने जीवन के दुःखों का अंकन आरम्भ किया। अनेक धर्म की ओर झुके। दूसरों ने कठिनाइयों को हल करने वाले संघर्ष को अपनाया। परन्तु इनकी चेतना अधिकतर मध्यवर्गीय थी जो दुख के कारणों पर इतना विचार नहीं करती जितना उसके समसामयिक रूप पर और उसी के परिणामस्वरूप वे कभी कुंठा और कभी विषाद के शिकार होते हैं, वास्तविक समस्या सम्बन्धी कृतियाँ १९२० के बाद काव्य-क्षेत्र में प्रस्तुत होने लगीं जब मजूर वर्ग के अधिकारी साहित्यकारों ने उस क्षेत्र में पदार्पण किया।

---

१. Marika Stiernstedt (जन्म १८७५); २. Gertrud Lilja (जन्म १८८७); ३. Anna Lenah Elgstrom (जन्म १८८४); ४. Martin Koch; ५. Fabian Mansson (१८७२-१९३८); ६. Gustav Hedenvind-Eriksson (जन्म १८८०); ७. Albert Viksten (जन्म १८८९); ८. Hans Larsson (१८६२-१९४४)

उन्होंने परंपरा और सांस्कृतिक दाय को मानकर भी समसामयिक जीवन की मू भूत आवश्यकताओं और उनके समाधान को उनके ऊपर रखा। उनके शब्दों में सादगी और ताजगी है और रोजमर्रा का जीवन सस्वर हो उठता है। इस दल के कवियों में विशिष्ट और दीर्घायु बिरगेर सिओबर्ग[१] है। उसकी प्रसिद्ध रचना "फ़िदाज बोक" (फ़ीदा की पुस्तक, १९२२) बड़ी सुन्दर कृति है और साधारण से धीरे-धीरे उठकर कला का अद्‌भुत प्रतीक बन जाती है। वह ४४ वर्ष की अल्पायु में ही मर गया और वर्तमान स्वीडी साहित्य को परिणामतः बड़ी हानि हुई। डान ऐण्डरसन[२] भी उसी की भाँति 'प्रोलेतारियेत'[३] का कवि है। उसकी मृत्यु १९२० में ३८ वर्ष की अवस्था में ही हो गई। उसने कविता के अतिरिक्त कुछ उपन्यास भी लिखे और वह आधुनिक स्वीडी साहित्य में काफी ऊँचा साहित्यिक माना जाता है।

एरिक लिन्डोर्म[४] बर्गमान परंपरा का कवि था जो १९४१ में मरा। उसकी कविताएँ मधुर और मृदुल कल्पनाओं द्वारा जीवन का स्पर्श करती हैं। वह दृष्टिकोण से क्रांतिकारी था। रोजमर्रा के जीवन को विशेषतः कार्ल आस्प्लुन्ड[५] और गुन्नार मास्कोल सिल्फरस्तोल्पे[६] ने अपनी कृतियों का आधार बनाया। प्रथम महासमर की घटनाओं को लेकर जो सिल्फर स्तोल्फे ने अपना "स्वाल्लार्ना" (हिरो, १९१९) लिखा तो उसकी बड़ी ख्याति हुई। उसने अपने प्रांत के स्थानीय चित्रों का भी लिरिकों में अंकन किया है। वह स्विडन के देहातों के भी अभिराम चित्र प्रस्तुत करता है। राग्नर यान्देल[७] ने अपनी कविताओं में पहले गहरी सामाजिक सहृदयता दिखाई। वह स्वयं सर्वहारा वर्ग का था। एक नितांत करुण संघर्ष बहुल लिरिक में उसने क्रांतिकारी नायकों की स्तुति की है। धीरे-धीरे उसकी कृतियों में एक धार्मिक चेतना का विकास हुआ जिसने उसकी सवल समाजवादी प्रेरणा को कुंठित कर दिया। जिन अन्य कवियों ने स्विडन को अपने लिरिक दिये उनमें प्रधान बेरित स्पोंग[८] गाब्रियल जोन्सन[९] आइनर माल्म[१०] आदि हैं। स्टेन सेलान्दर[११] संस्कृति और सामाजिक प्रश्नों पर विचार रखता है। उसकी कविताओं के अनेक संग्रह हैं जिनमें शैली का सुन्दर विकास हुआ है। पार लागरक्विस्त[१] पहले महासमर की क्रूर स्मृतियों से उद्वेलित कवि है। उसने ड्रामा के क्षेत्र में एक प्रकार के पुनर्जागरण का

---

१. Birgar Sjoberg; २. Dan Andersson; ३. Proletarian Poet; ४. Erik Lindorm; ५. Karl Asplund (जन्म १८९०); ६. Gunnar Mascoll Silfverstolpe (१८९३-१९४२); ७. Ragnar Jandel (१८९५-१९३९); ८. Berit Spong (जन्म १८९५); ९. Gabriel Jonsson (जन्म १८९२); १०. Einar Malm (जन्म १९००); ११. Sten Selander (जन्म १८९१); १२. Par Lagerkvist (जन्म १८९१)

भी स्वप्न देखा। जर्मन अभिव्यंजनावाद से भी वह काफी प्रभावित है। सांस्कृतिक दृष्टि से वह मानवतावादी है और उस मानवतावाद का हिंसक शक्तियों से उसने अपने "जल्लाद" और "बौना" नामक नाटकों में बचाव किया है। बर्तिल माल्मबर्ग[१] पलायनवादी है जो संसार के दुखों से भागकर अनन्त सौन्दर्य के उपचेतन संसार में शरण लेता है। उसकी कविताओं में वैयक्तिक रंग है, विषादपूर्ण, निराशावादी अपने कवितासंग्रह "ऐटलान्टिस" (१९१६) और सीमा की कविताएँ (१९३५) में उसका यह दृष्टिकोण मूर्त्त है। एरिक ब्लोमबर्ग[२] ने पार्थिव संसार को काल्पनिक के ऊपर स्थान दिया है, यद्यपि आदर्शवाद उसका भी इष्ट है। कारिनबोये[३] उसी चेष्टा का कवि है। यद्यपि उसके आदर्शवाद का आधार धर्म नहीं है। काव्य-क्षेत्र में उसका स्थान ऊँचा माना जाता है। १९४१ में ४१ वर्ष की आयु में उसका निधन हुआ।

प्रथम महासमर के बाद मजूर वर्ग की शक्ति बढ़ चली। उसमें शिक्षा का विशेष प्रचार हुआ और उसके "सर्वहारा कवि" देश के साहित्य में अग्रणी हुए। समसामयिक जीवन उनकी कृतियों में स्पष्टतः मूर्त हो उठा है। सामाजिक दृष्टिकोण प्रोलेतारियन पृष्ठभूमि से अंकित होता है। कुछ तरुण प्रोलेतारियन लेखकों के आत्मकथात्मक उपन्यासों ने मजूर वर्ग की स्थिति को समाज के दृष्टिकोण का केन्द्र बना दिया। कविताओं की दिशा में भी सर्वहारा वर्ग के कवियों ने लम्बे कदम बढ़ाये।

परन्तु ऐसे साहित्यकारों की विदेश में कमी न रही जिन्होंने उपस्थित सत्य की अवहेलना कर "सब्जेक्टिव" का पोषण किया। एग्निस वान क्रूसेन्स्त्येर्ना[४] इसी वर्ग की लेखिका थी। शृंगारिकता के अमर्यादित निरूपण ने उसके दृष्टिकोण को शीघ्र ही विकृत कर दिया। आइविन्द जान्सन[५] बौद्धिक और व्यापक दृष्टिकोण से उससे ऊँचा मनोवैज्ञानिक है। उसकी पिछली कृतियों में मजूर जीवन का अच्छा मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुआ है। तरुण मनोविज्ञान के चित्रण में स्वीडी साहित्य में जान्सन के बराबर कोई कृती नहीं। अपने युद्धकालीन उपन्यासों में उसने व्यक्तिवाद और शक्ति पूजा का प्रबल विरोध किया है। रूडोल्फ वार्नलुण्ड[६] ऊँचे तपके का उपन्यासकार है और उसकी कृतियों में मजूर जीवन छलका पड़ता है। जोजेफ करयेलग्रेन[७] उसी दल का लेखक है और उसके मूर्तन का विषय भी साधारण श्रमिक है।

स्वीडी देहात का जीवन चित्रित करने वालों में अग्रणी विल्हेल्म मोबर्ग[८] है।

---

१. Bertil Malmberg (जन्म १८८९); २. Erik Blomberg (जन्म १८९२); ३. Karin Boye; ४. Agnes Von Krusenstjerna; ५. Eyvind Johnson (जन्म १९००); ६. Rudolf Varnlund (१९००-४५); ७. Josef Kjellgren (जन्म १९०७); ८. Vilhelm Moberg (जन्म १८९८)

उसका उपन्यास "रास्केन्स" (१९२७) काफ़ी प्रसिद्धि पा चुका है। उसने ड्रामा और उपन्यास दोनों साधनों से किसान जीवन का सफल चित्रण किया। ऐतिहासिक उपन्यास "रिद ईनात" (१९४१) उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। उसमें उसने अत्याचार और तानाशाही के विरुद्ध स्विडन की जनता की प्रतिक्रिया अंकित की है। उसने किसी स्कूल में शिक्षा न पाई थी। इवार लो-जोहान्सन[१] भी उसी की भाँति आत्म-शिक्षित है। उसने अपने उपन्यासों में समाज का चित्रण काफी खूबी के साथ किया है। उसके "गोड नाटयोर्द" (१९३२) में मजूरों की शक्ति, भावावेग और लक्ष्य का बड़ी यथार्थवादी उत्तमता से मूर्त्तन हुआ है। सर्वहारा चेतना की यह एक अदभुत कृति है। मोआ मर्तिन्सन्[२] भी उसी दृष्टिकोण से देहाती सर्वहारा वर्ग का अपनी कृतियों में अंकन करती है। वह स्वयं देहात का जीवन देख-जान चुकी है। जान फ्रिडगार्द[३] भी उसी दल का साहित्यकार है।

स्विडन में एक पाँच तरुणों का दल है जिसके सदस्यों ने आलोचकों को घनी मात्रा में आकृष्ट किया। उनमें हैरी मार्तिन्सन[४] काफी समर्थ साहित्यकार है। उसने आधुनिक गद्य में समुद्र सम्बन्धी कुछ सुन्दर प्रकाशन किये। १९४५ में प्रकाशित उसके कविता संग्रह ने उसे प्रतिभाशील कवियों की पंक्ति में खड़ा कर दिया। उसी दल का गुस्ताव सेन्टग्रेन[५] ने वर्तमानवादी कवि के रूप में पहले लिखना शुरू किया, फिर वह गद्य में स्केच लिखने लगा। उस दल का वास्तविक प्रतिनिधि आर्थर लुण्डक्विस्त[६] है। उसने अपनी कविताओं में उत्साहपूर्वक अकृत्रिम जीवन के आनन्द की प्रशंसा की है। नैराश्य का उनमें कहीं नाम नहीं। फिर भी १९३० के बाद के अनेक कवियों में कुंठा और निराशा मूर्तिमान हुई है। निल्स फर्लिन[७] ऐसा ही निराशावादी कवि है, परन्तु उस दिशा में जीवन की निरर्थकता का प्रतिपादन ह्यालमार गुलबर्ग[८] ने दार्शनिक की निष्ठा से किया। उसी निराशावादी चेतना के साहित्यकार जोहान्स एडफेल्ट[९] और कार्ल रागनर गिएरो[१०] भी हैं। पिछले काल के कुछ वर्तमान उपन्यासकारों में आचारवादी भी हुए हैं, जैसे ओले हेडबर्ग[११] हेराल्द बेइजर[१२] हैरी ब्लोमबर्ग[१३] और स्वेन स्तोलपे[१४]।

---

१. Ivar Lo-Johansson (जन्म १९०१); २. Moa Martinsson (Helge Svarts १८९०); ३. Jan fridegard (जन्म १८९७); ४. Harry Martinson (जन्म १९०४); ५. Gustav Sandgren (जन्म १९०४); ६. Arthur Lundkvist (जन्म १९०६); ७. Nils Ferlin (जन्म १८९८); ८. Hjalmar Gullberg (जन्म १८९८); ९. Johannes Edfelt (जन्म १९०४); १०. Karl Ragnar Gierow (जन्म १९०४); ११. Olle Hedberg (जन्म १८९९); १२. Harald Beijer (जन्म १८९६); १३. Harry Blomberg (जन्म १८९३); १४. Sven Stolpe (जन्म १९०५)

स्विडन का साहित्य उत्तरी यूरोप के साहित्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। पिछले काल निम्नवर्गीय जीवन को जितना उसके साहित्यकारों ने आलोकित किया है, उतना दूसरे साहित्यों में कम हुआ है। पिछले युद्ध-काल में भी वहाँ के साहित्यकार अपने नात्सी विरोधी प्रयत्नों में लगे रहे। नात्सी जुल्म के शिकार अनेक नार्वे और डेन-साहित्यकारों ने स्विडन में ही शरण ली और वहाँ अपनी कृतियों का विकास किया था।

२६. हित्ती साहित्य

बोगजकोइ के खण्डहर

हित्तियों के अपूर्व साहित्य भंडार के प्रतीक

हित्ती[१]—साहित्य को भी हम आज के अर्थ में साहित्य नहीं कह सकते । परन्तु जो कुछ भी उस भाषा और लिपि में उपलब्ध है उसका यहाँ कुछ हाल लिख देना समीचीन होगा। हित्ती, वैसे, हिन्द-यूरोपीय भाषा परिवार की ही एक शाखा है परन्तु उसकी लिपि और साहित्य अक्कादी (आसुरी-बाबुली) अथवा उससे भी पूर्ववर्ती सुमेरी से प्रभावित हैं।

अभी हाल तक तो पता भी न था कि हित्ती संस्कृति या इतिहास का भी कोई अपना अस्तित्व है। परन्तु अब पुराविदों के फावड़े ने प्रभावित कर दिया है कि तुर्की (एशि-याई) साम्राज्य के एक बड़े भाग के स्वामी हित्ती थे और उनका अपना साम्राज्य था जो प्राचीन काल के मध्य-पूर्व के साम्राज्यों में (ई० पू० १७ वीं-१२ सदियों में) तीसरा स्थान रखता था। उससे बड़े साम्राज्य अपने-अपने समय में केवल मिस्रियों और आसुरी-बाबु-लियों के ही रहे थे।

जर्मन पुराविद् ह्यूगो विंक्लर[२] ने प्राचीन हित्ती साम्राज्य की राजधानी बोग़-ज़कोइ (प्राचीन का आधुनिक प्रतिनिधि) से खोद कर जब कीलनुमा अक्षरों में लिखी प्रायः बीस हजार ईंटें और पट्टिकाएँ रखदीं तब हित्तियों के उस भंडार का पता चला। भारत के लिए इन खोजों का बड़ा महत्त्व था क्योंकि बोगजकोइ से ही मिली एक चौदहवीं सदी ई० पू० की पट्टिका पर ऋग्वेद के इंद्र, वरुण, मित्र आदि देवताओं के नाम "पदपाठ" (सिलेबिक लिखावट) में मिले। पट्टिका हित्ती-मितन्नी दो राष्ट्रों के युद्धान्तर का सन्धि पत्र थी जिस पर साक्ष्य के लिए इन देवताओं के नाम दिए गए थे। इस अभिलेख से आर्यों के संक्रमण-ज्ञान पर प्रभूत प्रकाश पड़ा है ।

हित्ती कब उठकर प्रबल हो गए यह कहना तो बड़ा कठिन है परन्तु इतना निश्चित है कि अट्ठारहवीं सदी ई० पू० में उनकी शक्ति का लोहा बाबुली और मिस्री दोनों साम्रा-ज्यों ने माना और फिलिस्तीन, एशिया माइनर, सीरिया और दजलाफरात के द्वाब पर उनका दबदबा बढ़ा। उनका पहला साम्राज्य-काल सत्रहवीं से पंद्रहवीं सदी ई० पू० तक रहा और दूसरा चौदहवीं से बारहवीं सदी ई० पू० तक ।

---

१. Hittite; २. Hugo Winckler

पूर्वी एशिया माइनर के स्थानीय निवासी "खत्ती" कहलाते थे। उन्हीं के नाम से हित्ती या हत्ती शब्द निकला। परन्तु खत्ती न तो हित्तियों की भाँति हिन्द-यूरोपीय भाषा बोलते थे, न हित्तियों के रक्त सम्बन्धी थे। ई० पू० की तीसरी सहस्राब्दी में कभी हित्तियों का एशिया माइनर के पूर्वी भाग में प्रवेश हुआ और उन्होंने स्थानीय संस्कृति की अनेक बातें अपना लीं। बोग़ाज़कोइ से मिली पट्टिकाओं में एक बड़े महत्त्व की थी क्योंकि इस पर कालम बनाकर बराबर सुमेरी, अक्कादी, हित्ती आदि भाषाओं के शब्द पर्याप्त दिए हुए थे। इससे यह भी पता चला कि किस प्रकार अनेक भाषाओं से हित्तियों का सम्पर्क था और उन्होंने उन सारी भाषाओं और उनके साहित्यों से सीखा और अपना ज्ञान भंडार भरा। अनेक बार तो बाबुली आदि के साहित्य के लिपिपाठ हित्ती समानान्तर अनूदित साहित्य से शुद्ध किए गए हैं। प्रसिद्ध बाबुली काव्य "गिल्गमेश" के अनेक अंश, जो पट्टिकाओं के टूट जाने से नष्ट हो गए थे, हित्ती पट्टिकाओं से ही पूरे किए गए।

हित्ती ऐतिहासिक साहित्य का अधिकांश राजवृत्तों से भरा है। लेखक वृत्त गद्य की साहित्यिक शैली में वृत्त लिखते थे और उनके नीचे अपना हस्ताक्षर कर दिया करते थे। इन वृत्तों में अनेक प्रकार का ऐतिह्य है—असुर-बाबुली-मिस्री राजाओं और सम्राटों के साथ सुलहनामें, राजघोषणाएँ और राजकीय दानपत्र, नगरों के पारस्परिक झगड़ों में बीचबचाव, विद्रोही सामन्तों के विरुद्ध साम्राज्य के अपराध-परिगणन, सभी कुछ इन हित्ती अभिलेखों में भरा पड़ा है। इनमें विशेष महत्त्व के वे अगणित पत्र हैं जो हित्ती सम्राटों ने दूसरे समकालीन नरेशों को लिखे थे या उनसे पाए थे। इन पत्रों को साधारणतः अमरना (तेल-एल-अमरना) पत्र कहते हैं। प्राचीन काल की यह पत्र-निधि सर्वथा अद्वितीय और अनुपम है। इन पत्रों में एक बड़े महत्त्व का है। उसे हित्तियों के राजा शुप्पिलुलिउमाश[१] के पास मिस्र की मल्का ने लिखा था। उसमें मल्का ने लिखा था कि हित्ती नरेश कृपया अपने एक पुत्र को उसका पति बनने के लिए भेज दें। कुछ काल बाद राजा का एक पुत्र भेजा भी गया परन्तु मिस्रियों ने शीघ्र ही उसे पकड़ कर मार डाला।

बोग़ज़कोइ के उसी लेखभांडार से एक बड़ा महत्त्वपूर्ण हित्ती और मिस्र के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सन्धिपत्र उपलब्ध हुआ। जब हित्ती नरेश मुत्तालिश की सेनाओं ने मिस्री विजेता रामसेज[२] द्वितीय की सेनाओं को १२८८ ई० पू० में कदेश के युद्ध में बुरी तरह पराजित कर दिया तब मुत्तालिश[३] के उत्तराधिकारी खुत्तुशिलिश[४] तृतीय और मिस्र राज के बीच सन्धि हुई। उसमें तै पाया कि मिस्र और हित्ती साम्राज्य के बीच बराबर मैत्री और पारस्परिक शान्ति रहेगी। ई० पू० १२७२ में इकरारनामा लिख डाला गया।

१. Shuppiluliumash (१३८५-१३५०); २. Ramesses (Rameses) II; ३. Muttalish ४. Khattushilish III;

उसमें १८ पैराग्राफ हैं और वह चाँदी की पट्टिका पर खुदा है। खोदकर वह रामसेज के पास भेजा गया था उसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं दोनों में से कोई दूसरे पर आक्रमण न करेगा, दोनों पक्ष दोनों देशों के बीच की पहली सन्धियों का फिर से समर्थन करते हैं, दोनों शत्रु के आक्रमण के समय एक दूसरे की सहायता करेंगे; विद्रोही प्रजा के विरुद्ध दोनों का सहयोग और राजनीतिक झगड़ों का परस्पर परिवर्तन। यह सन्धि इतनी महत्त्वपूर्ण समझी गई कि मिस्री और हित्ती रानियों ने भी परस्पर सन्धि की खुशी में बधाई के पत्र भेजे। पश्चात् हित्ती नरेश की कन्या मिस्र भेजी गई जो सम्राट् रामसेज द्वितीय की रानी बनी।

बोगजकोइ की पट्टिकाओं पर २०० पैरों में हित्ती कानून-विधान लिखा हुआ है। साधारणत: हित्तियों की दण्डनीति आसुरी, बाबुली, यहूदी दण्डनीति से कहीं मृदुल थी। प्राणदण्ड अथवा नाक-कान काटने की सजा शायद ही कभी दी जाती थी। कुछ यौन सम्बन्धी दण्ड तो इतने नगण्य हैं कि हित्तियों की आचार-चेतना पर विद्वानों को सन्देह होने लगा है। उस विधान का एक बड़ा अंश राष्ट्र के आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। उससे प्रगट है कि वस्तुओं के मूल्य, नाप-तोल के बटखरे पैमाने आदि निश्चित कर लिये गये थे। कृषि और पशुपालन-प्रधान सभ्यता की समस्याओं का उसमें आश्चर्यजनक मृदु-उपायों से हल हुआ है। कानून और न्याय के प्रति उसमें प्रगटित आदर वस्तुत: अत्यन्त सराहनीय है। अनेक अभिलेखों में महाई धातुओं के प्रयोग. युद्ध-बन्दियों के प्रबन्ध, चिकित्सा और शालिहोत्र आदि पर हित्ती में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। मध्यपूर्व में ही सम्भवत: पहले-पहल अश्व का प्रयोग शुरू हुआ। उस दिशा में अश्व-विज्ञान पर पहला साहित्य (शालिहोत्र) मितनियों ने प्रस्तुत किया। उनसे हित्तियों ने सीखा और वे अपने पड़ौसियों तथा उत्तरवर्ती सभ्यताओं को सिखा गए।

इस साहित्य-भाण्डार में सबसे अधिक भाग धर्म को मिला है। उससे प्रगट है कि हित्तियों के देवताओं की संख्या विपुल थी और वे प्राय: छह आत्याधारों से लिये गये थे। ऊपर सन्धि पत्रों पर देवसाक्ष्य का उल्लेख किया जा चुका है। इन्हीं सन्धिपत्रों पर देवताओं के नाम हैं जो सुमेरी-बाबुली, हुर्री, लूवी, खत्ती, हित्ती और भारतीय हैं। इन देवताओं के अतिरिक्त हित्ती आकाश, पृथ्वी, पर्वतों, नदियों, कूपों, वायु और मेघों की भी आराधना करते थे।

पौराणिक अनुवृत्तिक साहित्य में प्राधान्य उनका है जो सुमेरी-बाबुली से ले लिये गए हैं। हित्तियों में बाबुली आधार से अनूदित गिल्गमेश बड़ा लोकप्रिय हुआ। उस काव्य के अनेक खंड अक्कादी हित्ती और हुर्री में लिखे बागेजकोई से उस अपूर्व भंडार से मिले थे। हुर्री में लिखे "गिल्गमेश के गीत" तो पन्द्रह से अधिक पट्टिकाओं पर मिले थे। हित्तियों से ग्रीकों ने गिल्गमेश का पुराण पाया।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि हित्तियों का धार्मिक साहित्य प्रचुर था। उसमें भी अक्कादी साहित्य की ही भाँति सूक्त और गायन थे। मन्दिरों में यज्ञ आदि पर जो क्रिया होती थी उसे पुरोहित पुरुष और नारी दोनों सम्पन्न करते थे। दोनों के नाम क्रियाओं में लिखे जाते थे। मंत्रदोष, प्रायश्चित, क्रिया सभी सम्बन्धी थे। अपनी संस्कृति के निर्माण में जितना योग अन्य संस्कृतियों से सर्वथा उदारभाव से हित्तियों ने लिया उतना सम्भवत: और किसी जाति ने नहीं। कोष निर्माण का पहला प्रयत्न उन्होंने ही अनेक भाषाओं के पर्याय एक साथ समानान्तर लिख कर किया। विविध भाषाओं के समानान्तर पर्यायों से ही भाषा-शास्त्र की नींव की पहली ईंट रखी जा सकी, और वह ईंट हित्तियों ने ही प्रस्तुत की। हित्तियों के अन्तकाल में आर्यग्रीकों (डोरियनों) का आक्रमण ग्रीस पर हुआ और एशिया माइनर पर भी धीरे-धीरे उनका दबदबा बढ़ा जब उन्होंने त्रॉय का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर नष्ट कर दिया। तब हत्ती राष्ट्रसत्ता निस्तेज होकर केवल अपने साहित्य के उपकरणों से ग्रीस के नवागन्तुकों के पुराण भरने लगी।